जयकृष्णदास-कृष्णदास प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला ५

॥ श्रीः ॥

कालिकापुराणम्

सम्पादकः
श्रीविश्वनारायणशास्त्री, संसदसदस्यः

हिन्दी भूमिकालेखकः
आचार्य बलदेव उपाध्यायः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

जयकृष्णदास-कृष्णदास प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

५

॥ श्रीः ॥

कालिकापुराणम्

सम्पादकः

श्रीविश्वनारायणशास्त्री, संसदसदस्यः

साहित्य-व्याकरण-मीमांसाशास्त्रि-काव्यतीर्थः

प्रस्तावना-लेखक

आचार्य बलदेव उपाध्याय

भू० पू० संचालक, अनुसन्धान संस्थान

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७२

THE

JAIKRISHNADAS-KRISHNADAS PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA

5

****

KĀLIKĀPURĀṆAM

Edited by

ŚRĪ BIŚWANĀRĀYAN ŚĀSTRĪ, M. A.

Sāhitya-vyākaran-Mīmānsā Shāstri-Kāvyatīrthā,

Member of Pārliāment (India)

PREFACE

By

ĀCĀRYA BALDEVA UPĀDHYĀYA

Ex-Director Research Institute

Varaṇaseya Sanskrit University, Varanasi.

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1 (India)

1972

Gopal Mandir Lane
P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (India)
1972
Phone : 63145

First Edition
1972
Price Rs. 35-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 63076

FOREWORD

The Kālikāpurāṇa is one of the important Upa-purāṇas. This Purāṇa is also known as Kālipurāṇa. Kālikāpurāṇa is extensively quoted by the Smṛtinibandha-Kāras of Assam, Bengal and Mithilā. Internal and external evidences show that this work was composed in or around Kāmarūpa i. e. Assam in tenth or eleventh century A. D. These aspects will be dealt with in a separate volume proposed to be published as "Studies in the Kālikāpurāṇa."

The present edition of Kālikāpurāṇa is based on the Calcutta edition of Pt. Pañchānana Tarkaratna and two sets of manuscripts collected in Assam. The two manuscripts are almost identical. No major or substantial difference is noticed. For preparing the text of the present edition the text of the two manuscripts are minutely compared with the text of the Calcutta edition. The readings which appear to be more reasonable and correct are accepted and the variant readings are given at the foot note. Variant readings due to scribing mistake are ignored. Variation such as च, वा तु हि are also not mentioned.

The two manuscripts differ from the printed edition in arrangement of chapters. Following chapter-division of the manuscripts the present edition is divided into 90 chapters instead of 91 or 92 as is found in some editions.

While the printing was in progress I had the opportunity to compare the text of the present edition with a manuscript preserved in Gaikawad Oriental Library, Baroda. Photostat

copy of the work from India Library, London was also compared. Variant reading, however, could not be inserted. I propose to refer to all the important variant readings in the second volume "Studies in the Kālikāpurāṇa" where all aspects of this Purāṇa are dealt with.

I am gratefull to Pt. Monoranjana Shastri for his advice and to Prof. Naliniranjan Sharma for his help in preparing the text of the work.

I am also thankfull to the authority of M/S Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi for bringing out the work to the light.

65 North Avenue
New Delhi.
15-3-72

Biswanarayan Shastri

प्रस्तावना

(विवेचनिका)

पुराण के विस्तृत साहित्य में कालिका पुराण की भूयसी ख्याति है। शक्ति-पूजा के महत्त्वपूर्ण विषय को आश्रित कर लिखे गये पुराणों में इसका स्थान नितान्त महनीय तथा आदरणीय है। धर्मशास्त्र के निबन्धकारों ने इस पुराण से अनेक उद्धरण अपने ग्रन्थों के तत्तत् प्रसङ्ग पर बड़े आदर, श्रद्धा तथा सत्कार के साथ उद्धृत कर अपने कथन की पुष्टि की है। ऐसे निबन्धकारों की एक लम्बी परम्परा है जिनमें मुख्य निबन्धकार तथा उनके निबन्ध इस प्रकार हैं—लक्ष्मीधर का कृत्यकल्पतरु, अपरार्क की याज्ञवल्क्यस्मृति-टीका, वल्लालसेन का दान-सागर, हेमाद्रि का चतुर्वर्ग-चिन्तामणि, श्रीदत्त उपाध्याय का समयप्रदीप एवं आचारादर्श, चण्डेश्वर का कृत्यरत्नाकर तथा गृहस्थ-रत्नाकर, मदनपाल का मदनपारिजात, माधवाचार्य का कालनिर्णय और पाराशरस्मृति का भाष्य, विद्यापति की गंगावाक्यावली, वाचस्पति मिश्र का द्वैतनिर्णय, कृत्यचिन्तामणि एवं शुद्धिचिन्तामणि, मदनसिंहदेव का मदनरत्न-प्रदीप, रुद्रधर का शुद्धिविवेक, नरसिंह वाजपेयी का नित्याचारप्रदीप। इन निबन्धों में कालिकापुराण के पद्य उद्धृत हैं, परन्तु डा० हाजरा के अनुसार वे वर्तमान पुराण में उपलब्ध नहीं होते। इनसे भिन्न निबन्धों में वर्तमान कालिका पुराण के श्लोक मिलते हैं। ऐसे निबन्धकारों के नाम हैं—शूलपाणि, विद्यापति (दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में) श्रीनाथ आचार्यचूडामणि, गोविन्दानन्द, रघुनन्दन, कृष्णानन्द आगमवागीश, गदाधर, मित्रमिश्र, अनन्त भट्ट, कमलाकर भट्ट, नन्द पण्डित। इन निबन्धकारों के उद्धरणों तथा नाम-निर्देशों से किसी भी आलोचक को कालिकापुराण के महत्त्व, प्रामाण्य तथा प्रसिद्धि के विषय में किसी प्रकार के सन्देह करने की गुंजाइश नहीं रहती।

कालिकापुराण के प्रस्तुत संस्करण में ९० अध्याय हैं जिनके श्लोकों की संख्या आठ सहस्र तीन सौ चौरानबे (८३९४) हैं। मेरी दृष्टि में इस पुराण के वर्ण्य विषयों तथा वक्ता-श्रोता की भिन्नता के कारण दो प्रधान खण्ड है। आदि के ४५ अध्यायों को हम पूर्वार्द्ध कह सकते हैं एवं अन्तिम ४५ अध्यायों को हम उत्तरार्ध मान सकते हैं। पूर्वार्ध में कथानक का प्राधान्य है। विष्णु, शिव तथा महामाया की अनेक स्तुतियाँ हैं तथा शङ्कर एवं सती का,

तदनन्तर शङ्कर तथा पार्वती का विश्रुत आख्यान प्रायः प्रसिद्ध घटनाचक्र से संवलित यहाँ दिया गया है। कालिका-पुराण का उत्तरार्ध कामरूप में प्रतिष्ठित कामाख्या देवी के अनुष्ठान तथा पूजा के विधिविधान का बड़ा ही विस्तृत विशद विवरण प्रस्तुत करता है। इसी प्रसङ्ग में शक्ति के अन्यरूपों का भी विशेषतः त्रिपुरा की उपासना की भी विस्तृत उपलब्धि होती है। इस पूजा के ऊपर तान्त्रिकता की पूरी छाप है। आधारभूत तन्त्रों के नाम भी यहाँ दिये गये हैं। तथ्य तो यह है कि कालिकापुराण का यह उत्तरार्ध पूर्वार्ध की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है और ऊपर निर्दिष्ट निबन्धकारों द्वारा इसी खण्ड के श्लोक बहुशः उद्धृत किये गये हैं। दोनों खण्डों के स्वरूप की जानकारी के लिए अध्यायों के वर्ण्यविषय का प्रथमतः परिचय देना समुचित है।

वर्ण्य विषय का विवरण

१ अध्याय—आरम्भ में भगवान् विष्णु के पादपद्म की प्रणति के अनन्तर माया की स्तुति है। प्रष्टा ऋषिगण हैं तथा उत्तरदाता मार्कण्डेय हैं। ब्रह्मा की मानसी कन्या सन्ध्या की उत्पत्ति तथा रूप का वर्णन (श्लोक २७-३८) ब्रह्मा के मानस पुत्र कामदेव का वर्णन (श्लोक ४२-४५)।

२ अध्याय—कामदेव द्वारा ब्रह्मा के मोहन का वर्णन।

३ अध्याय—दक्ष की कन्या रति का जन्म तथा कामदेव द्वारा उसका ग्रहण; रति के सौन्दर्य का वर्णन (३९-४२)।

४ अध्याय—कामदेव के सहायतार्थ ब्रह्मा के निःश्वास से वसन्त का प्रादुर्भाव हुआ। वसन्त के रूप का वर्णन बड़ा सुन्दर है (श्लोक २५-२९)।

५ अध्याय—शिव को मोहने के लिये विष्णु-माया की स्तुति ब्रह्मा ने की। यह पर्याप्तरूपेण दार्शनिक तथा मनोरम है, (श्लोक १५-५०)। योगमाया का स्वरूप स्निग्ध अंजन द्युति-वाला, चार भुजाओं से युक्त, सिंह पर आसीन, तलवार एक हाथ में और नीलकमल दूसरे हाथ में, केश बिलकुल खुले हुए बतलाया गया है (श्लोक ५२)। योगमाया की पुनः स्तुति (श्लोक५४-५९)। इन्हीं का नाम 'काली' था। इन्हीं के पूजा-विधान के प्रतिपादक होने से यह पुराण कालीपुराण और कालिकापुराण दोनों कहलाता है।

६ अध्याय—शिव के गणों का रूपतः वर्णन (श्लोक ३०-४५) मार शब्द की व्युत्पत्ति (श्लोक ४९-५०); योगमाया की महिमा का बहुत सुन्दर दार्शनिक वर्णन (श्लोक ५९-७२)।

७ अध्याय—काम द्वारा शिव को मोहने के लिये अपने मारगणों को उद्बुद्ध करना।

८ अध्याय—दक्ष द्वारा महामाया की स्तुति (श्लोक १२-२६) तपस्या द्वारा दक्ष ने महामाया को प्रसन्न किया और वे ही सती रूप में उनकी पुत्री बनीं (श्लोक ५९)।

९ अध्याय—सती द्वारा शिवप्राप्ति के लिए शिव की आराधना प्रतिमास में क्रमशः उल्लिखित है। ब्रह्मा ने सती को पत्नी के रूप में ग्रहण करने के लिए शिव से प्रार्थना की। (हरानुनयन; श्लोक २३–४३)।

१० अध्याय—दक्ष से शिवजी की पत्नी ग्रहण करने के लिए ब्रह्मादिक देवों की प्रार्थना (श्लोक ५०–६१)।

११ अध्याय—त्रिदेवों—विष्णु, ब्रह्मा तथा शङ्कर—का एकत्व प्रतिपादित किया गया है। यह वर्णन कालिकापुराण के उदारभाव का संकेत करता है, इस प्रसङ्ग में नारायण के ये वचन ध्यान देने योग्य हैं—

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा।
न चाहं युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्वं सनातनम् ॥ ५१ ॥
यज्ज्योतिरग्र्यं स्वपरप्रकाशं कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम्।
नित्यं च दीर्घादिविशेषणाद्यैर्हीनं परं तच्च वयं न भिन्नाः ॥ ५६ ॥

१२ अध्याय—सृष्टि का विस्तार से वर्णन किया गया है (श्लोक ११–३७)। इसमें भी देवत्रय के एकत्व का विधान है। काल तथा माया का वर्णन (श्लोक ६०–६६)। उपनिषद् की यह प्रख्यात अद्वैत भावना यहाँ भी उल्लिखित है—"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किञ्चन" (श्लोक ६०) और इसी भावना के फलरूप तीन देवों में अभेद है।

[यहाँ १३ से १८ अध्याय तक विषय की एक ही इकाई वर्णित है और वह है शिव तथा सती का चरित्र-वर्णन]।

१३ अध्याय—ब्रह्मा से क्रुद्ध होने वाले शङ्कर को विष्णु ने त्रिदेवों का एकत्व प्रतिपादित कर शान्त किया। एकत्वप्रतिपादक श्लोक बड़े ही भावसम्पन्न हैं (श्लोक ४८–५०)।

१४ अध्याय—शिव और सती के विहार का विशद एवं विस्तृत वर्णन (श्लोक १५–५५)।

१५ अध्याय—बड़ा ही कवित्वपूर्ण अध्याय है जिसमें वर्षाकाल का भव्य, रोचक तथा अलङ्कार-प्रचुर वर्णन है (श्लोक २–१७ श्लोक) हिमालय का भी वर्णन साहित्यिक सौन्दर्य से मण्डित है (श्लोक २५–४८)।

१६ अध्याय—दक्ष के यज्ञ में शिव के भाग को न देखकर पति के घोर अपमान से सती का शरीर जल उठा और होमाग्नि में उसने अपने को भस्म

कर दिया। इसपर सती की सखी विजया का क्रन्दन अतीव करुणोत्पादक है। वियोग का वर्णन सीधे-सादे शब्दों में अतीव प्रभावशाली है (श्लोक ५३–६८)।

१७ अध्याय—दक्ष के यज्ञ का शिवगुणों द्वारा विध्वंस (श्लोक ३०–४८)।

१८ अध्याय—सती के दाह की बात सुन कर शङ्कर अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगे। उनके आँसुओं को रोकने के लिए देवों ने शनैश्चर की स्तुति की (श्लोक १३–२०) शनैश्चर के सन्तत उद्योग करने पर भी शिव के नैत्रों की अश्रु-धारा रुकी नहीं। पर्वत को विदीर्ण कर वह अश्रुधारा समुद्र में गिर कर कुछ शान्त हुई। इसलिये पृथ्वी पर आते-आते धारा शान्त हो गई और पृथ्वी की हानि नहीं पहुँचा सकी। सती के शव को शिव अपने कन्धे पर रखकर उन्मत्त की तरह चारों ओर घूमने लगे। अन्य उपाय न देखकर ब्रह्मा, विष्णु ओर शनैश्चर सती के शव के भीतर घुस गये और उसे काट-काट गिराने लगे। सती के अङ्गों के गिरने के स्थानों पर तीर्थ की प्रतिष्ठा हुई (श्लोक ४०–५०)। यह अध्याय भौगोलिक तथा धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

देवीकूट पर सबसे पहिले सती के दोनों पैर गिरे;

उड्डीयान पर सती के दोनों जंघा गिरे;

कामरूप में कामगिरि पर सती का योनिमण्डल गिरा (कामरूपे कामगिरौ न्यपतद् योनिमण्डलम्);

कामगिरि की भूमि पर सती का नाभि–मण्डल गिरा;

जालन्धर में सुवर्णहार से भूषित स्तन–युगल गिरा;

कामरूप से आगे पूर्णगिरि पर सती के कन्धे, ग्रीवा तथा शिर गिरे।

सती के शव को लेकर शिव जिस प्रदेश में घूमते रहे, पूर्वप्रान्त में वही याज्ञिक प्रदेश बन गया। सती के अन्य अंग काटकर आकाश-गंगा में फेंक दिये गये। सती के अंग गिरने वाले स्थानों पर शिव लिंग के रूप में विद्यमान रहने लगे। सती से उनका अत्यधिक जो नैसर्गिक अनुराग था। महामाया भिन्न-भिन्न नामों से उन स्थानों पर विश्रुत हुई (श्लोक ४८–५०):—

देवीकूट पर महाभागा ;

उड्डीयान पर कात्यायनी ;

कामरूप पर कामाख्या ;

पूर्णगिरि पर पूर्णेश्वरी ;

जालन्धर गिरि पर चण्डी ;

कामरूप के पूर्वी प्रान्त में दिक्करवासिनी तथा ललितकान्ता नाम से।

सती का सिर जहाँ गिरा, वही पर्वत पर शंकर बैठ गये और देवों ने उनकी

प्रशस्त स्तुति की (श्लोक ५५–६७) ब्रह्मा ने भी उन से प्रार्थना की (श्लोक ७०–८१)।

१९–२३ अध्याय—शिव को शान्त करने की इच्छा से ब्रह्मा उनको हिमालय के पश्चिम भाग में स्थित शिप्रसरोवर पर ले गये जहाँ से शिप्रा नदी निकलती है।

[यहाँ तीन अवान्तर कथायें दी गई हैं—(१) शिप्रा नदी के उद्गम की कथा; (२) अरुन्धती का जन्म जो ब्रह्मा की मानसी कन्या सन्ध्या थी—(अध्याय २०) तीव्र तपस्या और वसिष्ठ के साथ विवाह (अध्याय २३); (३) दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दिया जिससे वे यक्ष्मा से पीडित हो गये। ब्रह्मा ने उन्हें इस रोग से मुक्त कराया—देवगण जहाँ चन्द्रमा को बचाने के लिए भूतल पर आये, वहीं सीता नामक नदी निकली जो बृहत् लोहित–सरोवर में गिर कर बाहर बहने लगी, तब उसका नाम चन्द्रभागा हुआ (अध्याय २०–२१)—चन्द्रभागा की उत्पत्ति की कथा यहाँ दी गई है।]

२४ अध्याय—ब्रह्मा ने योगमाया की प्रशस्त स्तुति की (श्लोक ९–२७) कि शिव के हृदय में अपना आवास छोड़ दे। विष्णु ने वहाँ प्रवेश कर शिव को शान्त किया; तब शिव एक हजार वर्ष तक तपस्या में लीन हो गये। (श्लोक ७०–८०)

[अध्याय २४ से लेकर ४० तक अवान्तर कथा—२४ वें अध्याय में सृष्टि का वर्णन; २५ अध्याय में वराह की उत्पत्ति; २६—२९ अध्याय में सृष्टि का वर्णन तथा छोटी कथायें; ३० अध्याय में गोविन्द की सुन्दर स्तुति (श्लोक ४–१७) देवों ने विष्णु से वराह के द्वारा किये गये संकट से स्वर्ग के रक्षण के निमित्त प्रार्थना की। शिव ने वराह का रूप छोड़ कर शरभ का रूप धारण कर लिया, तब वराह को शरभ ने पराजित कर दिया।

३१ अध्याय—वराह शरीर से यज्ञ के विभिन्न अंगों के उदय की रहस्यमयी कथा। इसीलिए वराह यज्ञवराह के नाम से प्रख्यात हैं।[1]

---

१. यज्ञवराह का वर्णन निम्न लिखित पुराणों में उपलब्ध होता है—(१) मत्स्य २४८।६७–७२; (२) वायु ६।१६–२३; (३) ब्रह्माण्ड का प्रक्रियापाद ५।९–२३; (४) ब्रह्मपुराण २१३।३३–३७; (५) हरिवंश, (६) पद्म–सृष्टिखण्ड १६।५५–६१; (७) विष्णुधर्मोत्तर १।२, ३।८; (८) विष्णुस्मृति १।३–९; (९) विष्णुसहस्रनाम का शांकरभाष्य (यज्ञांग शब्द की व्याख्या पर, श्लोक ११७)। इन पुराणों में एक ही प्रकार के श्लोक हैं। इन से भिन्न पाठ मिलता है विष्णुपुराण १।४।३२–३५; भागवतपुराण ३।१३। ३५–३८; अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७।४०–४८। यज्ञवराह के इस रूप को आध्यात्मिक व्याख्या के लिए द्रष्टव्य पुराण, पञ्चम खण्ड पृ० १९९–२३६ (वाराणसी : रामनगरदुर्ग, काशिराजन्यास द्वारा प्रकाशित, १९६३)।

३२ अध्याय—सृष्टि के प्रसंग में मत्स्यावतार का संक्षेप में कथन।

३३ अध्याय—अकाल में प्रलय होने का वर्णन।

३४ अध्याय—अकाल प्रलय के अनन्तर पदार्थों की सृष्टि।

३५ अध्याय—शिव ने वराह के उपद्रवों से जगत् की रक्षाकर अपना शरभ रूप छोड़ दिया।

३६ से ४० अध्याय तक पाँच अध्यायों की एक इकाई है—जिसमें नरक की कथा विस्तार से दी गई है। नरक पृथ्वी और वराह का पुत्र था। उसके जन्म की कथा ३७ अध्याय में, अभिषेक की ३८ अध्याय में, उसकी तीव्र तपस्या की ३९ अध्याय में तथा उसके राज्य एवं चरित का विस्तार से वर्णन ४० अध्याय में किया गया है।]

४१ से ४५ अध्याय तक पाँच अध्यायों में शिव-पार्वती का प्रसिद्ध आख्यान वर्णित है। ४१ अध्याय में हिमालय की पुत्री के रूप में पार्वती का जन्म होता है तथा नारद जी वहाँ आकर उसके भावी पति के विषय में कहते हैं। ४२ अध्याय में शिव की समाधि भंग करने के लिए कामदेव का प्रयाण तथा उसकी सहायता के रूप में वसन्त का उदय होता है। वसन्त का वर्णन (श्लोक १३६–१४०)। ४३ अध्याय में मदनदहन के अनन्तर हताश होकर काली (पार्वती) हिमालय पर घोर तपस्या करती है। शिव परीक्षा के लिए जाते हैं आदि प्रख्यात कथा ४४—४५ अध्याय में दी गई है।

यहाँ कालिका पुराण का पूर्वार्ध समाप्त होता है।

४६ से ९० अध्याय तक कालिकापुराण का उत्तरार्ध

इस खण्ड के प्राश्निक हैं सगर और उत्तरदाता हैं और्व और इन्हीं दोनों के प्रश्नोत्तर रूप में शक्तिपूजा से सम्बद्ध नाना विषयों का विराट वर्णन प्रस्तुत होता है और इसी तान्त्रिक पूजा के वर्णन तथा रहस्योद्घाटन के लिए कालिकापुराण की चरितार्थता है।

४६ अध्याय—भैरव तथा वेताल के शिवपुत्र के रूप में उत्पन्न होने की कथा का आरम्भ है। शिव की स्तुति (श्लोक २९–४०)

४७—५० अध्याय शिव पौष्यराज के पुत्र चन्द्रशेखर के रूप में तथा पार्वती तारावती के रूप में उत्पन्न होते हैं। इन दोनों के विवाह की कथा यहाँ दी गई है। कपोत मुनि का प्रसंग यहाँ आता है (४९ अध्याय) चन्द्रशेखर तथा तारावती के विलास का स्थान करवीरपुर बताया गया है (५०।१५१) मेरी दृष्टि में यह करवीरपुर दक्षिण महाराष्ट्र का कोल्हापुर है जो महालक्ष्मी का प्रख्यात क्षेत्र आज भी माना जाता है और जहाँ महालक्ष्मी की पूजा विशेष रूप से प्रचलित है।

५१ अध्याय—वसिष्ठ द्वारा शिव के पूजन का विधान वर्णित है पञ्चवक्त्र शिव के पूजन के पाँच प्रकार के मन्त्रों का वर्णन तथा शिव का ध्यान निर्दिष्ट है (श्लोक १३७–१४८)। मन्त्रों के नाम हैं—सम्मद, सन्दोह, नाद, गौरव तथा प्रासाद। इन नामों का अर्थ वर्णित है (श्लोक १३१–१३५)। शिव के पाँच मुख हैं—(१) सद्योजात पश्चिम ओर वाला शुक्ल वर्ण; (२) वामदेव (उत्तर तथा पीतपर्ण); (३) अघोर (दक्षिण तथा नील वर्ण); (४) तत्पुरुष (पूर्व तथा रक्तवर्ण) तथा (५) ईशान् (मध्यस्थित तथा श्यामल वर्ण)। शिव के पूजन का विधान यहाँ वर्णित है। वेताल तथा भैरव द्वारा पञ्चवक्त्र की सुन्दर स्तुति (श्लोक १७९–१९७)।

५२ से ५६ अध्याय तक पाँच अध्यायों में वर्णित पूजाविधान वैष्णवी तन्त्र कहा गया है। सगर के प्रश्न करने पर ओर्व ने इस पूजापद्धति का वर्णन किया है जो अष्टादश पटलों द्वारा निर्णीत बतलाया गया है।[1] ५२ अध्याय की पुष्पिका है—महामायाकल्पेऽष्टादशपटले। वैष्णवी देवी का अष्टाक्षर मन्त्र है—ओं ह्रीं श्रीं वैष्णव्यै नमः। पूजाविधान का प्रकार इस प्रकार संक्षेपमें हैं—प्रथम किसी नदी या तीर्थ में स्नान करना चाहिये। आसन ग्रहण करने के बाद जल से भूमि का अभ्युक्षण कर भूतों का अपसारण करे। हाथ से दिग्बन्धन करे। तदनन्तर रक्त वर्ण के मण्डल की रचना करे। अर्घपात्र में ओं ह्रां ह्रौं मन्त्र के द्वारा गन्ध, पुष्प तथा जल डाले। मन्त्रों के द्वारा अंगन्यास और करन्यास करे—पूजा के उपकरणों का शोधन, कामेश्वरी, गुप्तदुर्गा, विन्ध्यकन्दर-वासिनी कोटेश्वरी, भुवनेश्वरी आदि ६४ योगिनियों का मध्य में पूजन (अध्याय ५४ श्लोक ३५–३९) इसके अनन्तर शैलपुत्री, चण्डघण्टा, स्कन्दमाता, कालरात्रि आदि अष्ट योगिनी का पूजन आठों दिशाओं में करने का विधान (अध्याय ५४। श्लोक ४३-४४), बलिदान जिसके पक्षी, महिष, छाग आदि नाना पशुओं का नाम निर्दिष्ट है (अध्याय ५५ श्लोक २–५) तथा नर–बलिदान के लिए उल्लिखित है। माला तथा जप का विधान, माला-जप की गणना करने का निर्देश (असंख्यातं च यजू जप्तं तस्य तन्निष्फलं भवेत्—५५।५७); सर्वकर्मों के साधन में समर्थ मन्त्र का जप (जो सप्तशती का प्रसिद्ध मन्त्र है)—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ —सप्तशती ११।१०

योनिमुद्रा का प्रदर्शन (५५।६५)—ये पूजा के क्रमिक अंग बतलाये गये हैं।

---

१. यदष्टादशभिः पश्चात् पटलैश्च स भैरवः।
सनिर्णयविधिं कल्पं निबबन्ध शिवामृते ॥ —कालिकपु० ५२।५

५६ अध्याय—देवी का कवच वर्णित है जिसके द्वारा साधक अपने शरीर के अंगों का तथा मन का रक्षण विधिवत् सम्पन्न करता है।

विशेष रूप से ध्यातव्य है—५२ वें अध्याय का विषय अष्टादशपटल वाले 'महामायाकल्प' में वर्णित बताया गया है और ५६ अध्याय तक पञ्चाध्यायी का विषय 'महामायाकल्प' के अनुसार निर्दिष्ट किया गया है; क्योंकि इन अध्यायों की पुष्पिका में यही नाम सर्वत्र निर्दिष्ट हुआ है। अतः इन अध्यायों की पूजा विधि 'महामायाकल्प' के अनुसार है।

५७ अध्याय—यहाँ पूजनविधि उत्तरतन्त्र के अनुसार है। पूजा का प्रकार बड़े विस्तार से वर्णित है। इसमें कामराज मन्त्र तथा वाग्भव बीज का वर्णन है।

५८ से ६१ अध्याय देवी तन्त्र का कथन—देवी की विशेष तिथियों पर नाना विशिष्ट द्रव्यों से पूजन—५८ अध्याय कामाख्या देवी के विषय में कहता है कि वही मूलमूर्ति, महामाया, योगनिद्रा हैं तथा प्रथम प्रतिपादित वैष्णवी तन्त्र-मन्त्र उन्हीं का है (५८।४८)। कामाख्या ही प्रधान देवी हैं जो वास्तव में एक रूप ही हैं, परन्तु विभिन्न कार्यों के सम्पादन के निमित्त नाना रूपों को धारण करती हैं—

> एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नतां गता ॥ ५१ ॥
> कामाख्या तु महामाया मूलमूर्तिः प्रगीयते।
> पीठैर्भिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ॥ ५२ ॥
>
> —कालिका पुराण, अध्याय ५८।

कामाख्या के विशिष्ट स्वरूपों का वर्णन (श्लोक ५६—७१)

५९ अध्याय—चण्डिका का पूजा विधान, देवी के रूपका वर्णन (श्लोक १२-२१)। उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चामुण्डा तथा चण्डिका इन आठ शक्तियों से परिवृत देवी का पूजन अभीष्ट है (श्लोक २२—२३)।

६० अध्याय—दुर्गातन्त्र के अनुसार महानवमी तिथिको दुर्गोत्सव का विधान—महिषमर्दिनी के पूजन का अन्य तिथियों में विधान और इसी प्रसंग में महिषासुरवध की कथा निर्दिष्ट है।

६१ अध्याय—इस अध्याय में अष्टादश-भुजा उग्रचण्डा, षोडश-भुजा भद्र-काली तथा दशभुजा दुर्गा के शारदीय उत्सव का वर्णन विस्तार से किया गया है। अष्टमी तथा नवमी में पूजन कर दशमी में विसर्जन करना चाहिये। दशमी को नाना प्रकार के वाद्य, गायन, नर्तन आदि के द्वारा उत्सव मनाना चाहिये। (श्लोक १९-२२) इस अवसर पर अश्लील गायनों की छूट दी गई है। अन्य देवियों के भी पूजाप्रकार का विवरण यहाँ विस्तार से दिया गया है।

६२ अध्याय—नीलगिरि पर्वत पर स्थित कामाख्या देवी की पूजा-अर्चा का विशेष विधान विस्तार से किया गया है। अन्त में उनकी दिव्य स्तुति है (श्लोक १३८–१४४) इस अध्याय की पुष्पिका में इसे 'कामाख्यापूजातन्त्र' कहा गया है।

६३ अध्याय—त्रिपुरातन्त्र के अनुसार त्रिपुरा का पूजन—देवी के पूजन से पूर्व बटुक आदि भैरवों की पूजा बताई गई है। शक्तियों तथा इतर देवियों के साथ प्रधानभूता देवी त्रिपुरा की पूजा विशेषरूपेण वर्णित है।

६४ अध्याय—कामेश्वरीतन्त्र—कामेश्वरी के पूजनप्रकार वर्णित हैं। षट्कोण रक्तवर्ण मण्डल की रचना जिसके उत्तर में जालन्धर पीठ, पश्चिम में ओड्रपीठ, दक्षिण में कामरूप पीठ को अंकित करना चाहिये (श्लोक ११)। देवी का आवाहन, पूजन षोडशोपचारों से, अन्त में विसर्जन।

६५ अध्याय—शारदातन्त्र—सिंह पर आसीन तथा दशभुजाओं को धारण करने वाली देवी शारदा हैं (रूपमस्याः पुरा प्रोक्तं सिंहस्थं दशबाहुभिः— (६५–८)। शारदा के विशेष पूजन नवरात्र में होता है जिसका यहां पूरा विस्तृत वर्णन किया गया है।

६६ अध्याय—इस अध्याय में (क) नमस्कार तथा (ख) मुद्रा का यथाविधि विशद वर्णन है। सात प्रकारों के नमस्कारों के नाम और लक्षण— त्रिकोण (श्लोक १०), षट्कोण (श्लोक १२) अर्धचन्द्र (श्लोक १३), प्रदक्षिण (श्लोक १४), दण्ड (श्लोक १५), अष्टाङ्ग (श्लोक १७), तथा उग्र (श्लोक १८–१९) इनमें उग्र सबसे श्रेष्ठ तथा विष्णु को प्रसन्न करने वाला कहा गया है (योऽसावुग्रो नमस्कारः प्रीतिदः सततं हरेः (श्लोक २३) (ख) मुद्रा—ब्रह्मा के द्वारा १०८ मुद्राओं की उत्पत्ति बताई गई है जिनमें ५५ मुद्रायें ही देवों के चिन्तन, योग, ध्यान, जप तथा विसर्जन में उपादेय मानी गई हैं। उनका नाम (श्लोक २५–३१) तथा उनका लक्षण (श्लोक ३६–१२०) मुद्रा के विना जप, प्राणयाम आदि सब निष्फल होते हैं—

मुद्रां विना तु यज्जप्यं प्राणायामः सुरार्चनम्।
योगो ध्यानासने वापि निष्फलानि च भैरव॥ —का० पु० ५६।३५

६७ अध्याय—बलिदान का विशद विवेचन। बलि देने के योग्य पक्षि पशुओं के नाम—सब पक्षी, कच्छप, ग्राह, मत्स्य, महिष, गोधिका, गौ, छाग, रुरु, शूकर, खड्ग (गैंड़ा), मृग, शरभ, शार्दूल। बलि के लिए मनुष्य का तथा स्वगात्र-रुधिर को बलि देने का उल्लेख है। इन पशुओं की बलि का फल।

नर-मांस की बलि देवी तथा कामाख्या दोनों को अत्यन्त प्रीतिकारक[1] होता है। बलि के शीर्ष के रुधिरदान का विधान है। कहा गया है कि मन्त्रपूत रक्त सद्यः अमृत बन जाता है (मन्त्रपूतं शोणितं तु पीयूषं जायते सदा, श्लोक २०)। क्षत्रिय राजा के लिए बलिदान के विशेष नियम हैं—मनुष्य के रक्त को राजा कभी पत्ते में रख न देवे, बल्कि उसे धातु के पात्र में अथवा मिट्टी के बने बरतन में ही अर्पण करे। अश्वमेध को छोड़कर राजा अश्व की बलि न करे (श्लोक ४५–४६) नरबलि क्षत्रिय के लिए विहित है, ब्राह्मण के लिए नहीं। ब्राह्मण महादेवी के निमित्त कभी मद्य न देवे। सिंह, व्याघ्र तथा मनुष्य के बलि देने पर उसे नरक प्राप्त होता है। परन्तु जहाँ इनके बलि का विधान है वहाँ इनका प्रतिरूप बनाना चाहिये। बलि—पशु की प्रतिमा घी, अपूप (पूआ) अथवा यव-चूर्ण की बनानी चाहिये और उसे मन्त्रों से संस्कृत कर तलवार (चन्द्रहास) से काटना चाहिये।[2]

इस सामान्य बलिविधान के अनन्तर विशेष बलिदान विशिष्ट देव या देवी के लिए देने का बिधान है, जैसे भैरवदेव या भैरवी देवी को भैंसे की बलि दी जानी चाहिए और इसके लिए उपयुक्त मन्त्र का निर्देश है। (श्लोक ५७–५८) खड्ग (गैंड़ा), कृष्णसार, शरभ आदि पशुओं की बलि के विशेष नियम तथा मन्त्र हैं। बलिदान का विषय यहाँ बड़े विस्तार तथा वैशद्य के साथ दो सौ श्लोकों में प्रतिपादित है।

६८ से ७१ अध्याय तक चार अध्यायों में षोडश उपचारों का विस्तृत वर्णन है।

६८ अध्याय—भिन्न-भिन्न वृक्षों के काष्ठ के आसन बनाये जाते हैं जिस पर देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित की जाती है। पशुओं के (जिनमें ९ प्रकार के मृग सम्मिलित किये गये हैं) चर्म से भी आसन बनाने का विधान है (श्लोक १८)। आसन की लम्बाई-चौड़ाई का वर्णन। धातु से बने आसन उत्तम माने गये हैं, परन्तु लोहा, कांसा तथा सीसे के आसन न होकर शिला, मणि तथा रत्न के

---

१. नरेण बलिना देवी सहस्रं परिवत्सरान्
विधिदत्तेन चाप्नोति तृप्तिं लक्षं त्रिभिर्नरैः ॥ १८ ॥
नारेणेवाथ मांसेन त्रिसहस्रं च वत्सरान्
तृप्तिमाप्नोति कामाख्या भैरवी मम रूपधृक् ॥ १९ ॥

२. कृत्वा घृतमयं व्याघ्रं नरं सिंहं च भैरव ॥ ५३ ॥
अथवाऽपूपविकृतं यवक्षोदमयं च वा।
घातयेत् चन्द्रहासेन तेन मन्त्रेण संस्कृतम् ॥ ५४ ॥ का० पु०—अध्याय ६७

बने होने चाहिये।[1] इस निषेध के कारण इन धातुओं की हीनता है। ये तीनों धातु अधम कोटि के माने जाते हैं। अर्घपात्र का भी विधान बतलाया गया है।

६९ अध्याय—चार प्रकार के वस्त्र (कपास, ऊनी, बल्कल तथा रेशमी) के नाम नियत हैं, निषिद्ध वस्त्रों का भी निर्देश है (श्लोक २–४) परिधान सिले हुये वस्त्रों से बनाये जाते हैं; ४० प्रकार के आभूषण तथा विभिन्न प्रकार के गन्ध तथा धूप का विधान; पुष्पों का चयन; देवताविशेष के लिए विशिष्ट पुष्पों का उपहार दिया जाता है।[2] उनका यहाँ उल्लेख है। दीपक की तैयारी–दीपवर्ति बनाने के लिए विशिष्ट कपड़े का उल्लेख है। दीपक के प्रकार–ध्यान देने की बात है कि जिस दीपक से चार अंगुल की दूरी पर गरमी का अनुभव हो, तो वह दीप नहीं होता;[3] उसे कभी पूजा में प्रयुक्त न करना चाहिए। यक्षधूप, वृक्षधूप आदि नाना प्रकार के धूप प्रकार (श्लोक १४२–१४३) देवता के प्रीत्यर्थ षड्विध अंजन का उपदेश (सौवीर, यामुन, तुत्थ, मयूरयामुन, दुर्विका तथा मेघनील श्लो० १५५–१५६)

७० अध्याय—नैवेद्य का विधान। फलों के विभिन्न प्रकार देवताप्रीत्यर्थं; अन्य वस्तुओं का नैवेद्य के लिए निर्देश; भोज्य द्रव्यों का उल्लेख। खिचड़ी के नैवेद्य चढ़ाने से अतुल सौभाग्य पाने का उल्लेख है (कृशरान्नप्रदानेन सौभाग्यमतुलं लभेत्। श्लोक ३४) नाना प्रकार के नैवेद्यार्थं शाकों के नाम निर्दिष्ट हैं (श्लोक ४७–४९);

७१ अध्याय—परिक्रमा तथा नमस्कार का विवरण। इस विधान के साथ षोडश उपचार का वर्णन समाप्त होता है।

७२ अध्याय—कामाख्या देवी की महिमा का वर्णन। नील पर्वत पर स्थित देवी गरुडगामी विष्णु को समुद्रतल पर फेंक देती है और उसके पूजन से ही विष्णु का संकट छूटता है। कामाख्या का कवच (श्लोक ४७–६५) यहाँ कामाख्या के ध्यानविषयक रमणीय पद्य हैं (श्लोक ६३–६५)

७३ अध्याय—मातृकान्यास का वर्णन।

---

१. आयसं वर्जयित्वा तु कांस्यं सीसकमेव वा।
शिलामयं मणिमयं तथा रत्नमयं मतम्॥—वही श्लोक २०

२. इसके लिए द्रष्टव्य पुष्पचिन्तामणि (प्रकाशक राजकीय पुस्तकालय, काठमाण्डू, नेपाल)

३. लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरंगुलात्।
न स दीप इति ख्यातो ह्योघवह्निस्तु स श्रुतः॥
—कालिकापुराण ६९।१२०

७४ अध्याय—नाना देवों के मन्त्र, यन्त्र, जप तथा ध्यान का वर्णन बड़े विस्तार से दिया गया है (२३६ श्लोकात्मक अध्याय)

७५ अध्याय—आरम्भ में पुरश्चरण का विधान (श्लोक १–२६) तथा त्रिपुराकवच का विस्तार से निर्देश (श्लोक ३२–६६)। त्रिपुरा ही भैरवी नाम्ना प्रसिद्ध है। अतः 'त्रिपुराभैरवी' इन्हींका अपर नाम है। स्तुति भी बड़ी सुन्दर है—

आद्या मध्या भाविनी नीतियुक्ता सम्यग्ज्ञानज्ञेयरूपा परा वा।
आदावन्ते मध्यभागे च तारा पायाद् देवी त्रैपुरी भैरवी वा॥ ६४॥

अनन्तर त्रिपुरा के पूजन का विधान बतलाया गया है।

७६ अध्याय—मन्त्रों द्वारा सिद्धि का वर्णन। मन्त्रों के चार प्रकार होते हैं—सिद्ध, सुसिद्ध, साध्य तथा शात्रव। वसिष्ठ के उपदेश से वेताल तथा भैरव ने महामाया कामाख्या का पूजन किया और शिव के गणों का पदप्राप्त किया। इस अध्याय में शिव की गीतिमयी स्तुति अत्यन्त सरस तथा साहित्यिक सौन्दर्य से सम्पन्न है।

७७ से ८० अध्याय—इन चार अध्यायों में कामरूप-मण्डल का बड़ा ही विस्तृत भौगोलिक वर्णन है। वहाँ के नदी, पर्वत, कुण्डों का तथा वहाँ स्नान करने के माहात्म्य का प्रतिपादन किया गया है। ८० अध्याय में नाना देवों के पूजाविधान के अवसर पर तत्तत् मन्त्रों का बाहुल्येन निर्देश है। वासुदेव की पूजा विस्तार से दी गई है जहाँ नारद द्वारा प्रोक्त 'पांचरात्र' से मन्त्रों के ग्रहण का उपदेश दिया गया है (पञ्चरात्रोदिते भागे नरदेन यथोदितः, ८०।१४०) फलतः उस युग में वासुदेव-पूजन के लिए 'नारदपञ्चरात्र' वैष्णवों का सर्वाधिक मान्य ग्रन्थ प्रतीत होता है।

८१ अध्याय—वसिष्ठमुनि के शाप के कारण कामरूप में वामाचार के प्रचार का उल्लेख किया गया है। यह महत्त्वपूर्ण कथा इस प्रकार है—एक बार वसिष्ठ ने शिव से कामरूप को यम के अधिकार में रखने की प्रार्थना की। तब शिव ने उग्रतारा तथा अपने गणों को समस्त लोगों को और चारों वर्णों के जनों को भी वहाँ से निकालने का आदेश दिया। आदेश के पालन के बाद ये लोग सन्ध्याचल पर रहने वाले वसिष्ठ को भी वहाँ से निकालने लगे। क्रुद्ध वसिष्ठ ने शाप दिया[1] कि हे उग्रतारा, तुमने उन्हें वामभाग से

---

१. यस्मादहं धृतो वामे त्वयोत्सारयितुं मुनिः।
तस्मात् त्वं वाम्यभावेन पूज्या भव समन्त्रिका॥
भ्रमन्ति म्लेच्छवद् यस्मात् गणानां मन्दबुद्धयः।
भवन्तु म्लेच्छास्तस्माद् वै भवन्तो कामरूपके॥

खदेड़ने का प्रयत्न किया था, इसलिये तुम्हारी पूजा वामभाव से होगी। शिव के गण म्लेच्छ हो जायँगे और शिव स्वयं म्लेच्छप्रिय बन कर अस्थि और भस्म धारण करेंगे और पूरा कामरूप-मण्डल म्लेच्छों से व्याप्त हो जायेगा। न विष्णु का वहाँ आगमन न होगा, और न उनके आगम का प्रचलन होगा—आगम विरल हो जायेंगे। इस विरल कामरूपागम को जो कोई जानेगा, वही समय आने पर सम्पूर्ण फल को प्राप्त करेगा। वसिष्ठ के इसी शाप के कारण मूलतः विशुद्ध वैष्णवभावापन्न कामरूप में वामाचार का प्रचण्ड प्रचार सम्पन्न हुआ।

समग्र काम रूप जलप्लवित हो गया और ब्रह्मा का पुत्र लौहित्य नामक नद ही एकमात्र जलस्रोत रहा जो दक्षिण समुद्र में जाकर गिरता है।

८२ अध्याय—लौहित्य (अर्थात् ब्रह्मपुत्र) नद की उत्पत्ति की कथा यहाँ वर्णित है। शन्तनु की पत्नी अमोघा थी। शन्तनु कैलास के समीपस्थ लोहित सरोवर के किनारे रहते थे। अमोघा की नासिका से जलधारा प्रवाहित हुई जिसके एक बालक वर्तमान था। उसके रूप का वर्णन इस प्रकार है—

………नीलवासाः किरीटधृक् ॥ ३३ ॥
रत्नमालासमायुक्तो रत्नगौरश्च ब्रह्मवत्।
चतुर्भुजः पद्मविद्याध्वजशक्तिधरस्तथा ॥ ३४ ॥
शिशुमारशिरःस्थश्च तुल्यकायो जलोत्करैः।

शन्तनु ने इस लौहित्यनामा पुत्र को चार पर्वतों के बीच में रख दिया—कैलास उत्तर में, गन्धमादन दक्षिण में, जारुधि पश्चिम में तथा संवर्तक पूरब में। कालान्तर में वह बढ़ते-बढ़ते पञ्च योजन तक फैल गया और दूसरा समुद्र प्रतीत होने लगा (श्लोक ४०)। उस ब्रह्मकुण्ड पर परशुराम अपने मातृवध के दोष के निवारणार्थ कालान्तर में आये।

८३ अध्याय—परशुराम के चरित का विस्तृत वर्णन।

८४ अध्याय—सदाचार का वर्णन। साधारण नीति के वर्णन के अनन्तर नृपधर्म का विस्तार से कथन।

तस्मात् म्लेच्छप्रियो भूयात् शंकरश्चास्थिभस्मधृक् ॥
एतत्तु कामरूपाख्यं म्लेच्छैर्गुप्तं मदत्वरम्।
स्वयं विष्णुर्न चायाति यावत् स्थानमिदं पुनः ॥
विरलाश्चागमाः सन्तु य एतत्प्रतिपादकाः।
विरलं यस्तु जानाति कामरूपागमं बुधः ॥
स एव प्राप्ते कालेऽपि सम्पूर्णफलमास्यति ॥

—कालिकापुराण ८१।१९-२४

८५ अध्याय—राजा के कर्तव्य का वर्णन। इसी प्रसंग में राजा के द्वारा करणीय उत्सवों का विवरण है—शरत्काल में शारद नवरात्र की महाष्टमी में दुर्गापूजन, दशमी में नीराजन, पौष मास की तृतीया तिथि को पुष्याभिषेचन, श्री पञ्चमी को भी यज्ञ, ज्येष्ठ मास में दशहरा पर्व तथा भाद्रपद द्वादशी को इन्द्रध्वज महोत्सव (श्लोक ९–१२)। इस अध्याय के शेषभाग में नीराजन विधि का वर्णन विस्तार से है (श्लोक १८–६०) तथा शत्रुबलि का भी संकेत है।

८६ अध्याय—पुष्यस्नान की विधि। पुष्यनक्षत्र से युक्त तृतीया को देवी का विशेष पूजन करना राजा का विशिष्ट कर्तव्य है।

८७ अध्याय—शक्रध्वज के उत्थापन का विशिष्ट विवरण। पुराण का कथन है कि इस उत्सव का प्रवर्तन राजा उपरिचर ने (जिनका दूसरा नाम वसु था) किया था। भाद्रपक्ष की द्वादशी को करणीय इस पूजन का विवरण बड़े विस्तार से यहाँ वर्णित है।

८८ अध्याय—जेठ की दशहरा में विष्णु की इष्टि राजा को करनी चाहिये। तथा श्रीपंचमी को लक्ष्मी का पूजन कुन्द पुष्पों से करना चाहिये (श्लोक २१–२३) तदनन्तर राजा के लिए निषिद्ध कर्मो का निर्देश विस्तरशः किया गया है (श्लोक २५–६५) १२ प्रकार के पुत्रों के नाम—औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम गूढोत्पन्न तथा अपविद्ध—ये छः पुत्र राजा के भाग के अधिकारी हो सकते हैं,) परन्तु कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त तथा दास—ये छः पुत्र अधिकार के अयोग्य हैं। इनमें अन्तिम दासी पुत्र सबसे अधम होता है जो राज्य का अधिकारी नहीं होता। अनन्तर शूद्रों के आचार का वर्णन उपलब्ध है (श्लोक ४७–५०) अवशिष्ट भाग में राजा के कर्तव्याकर्तव्य का संक्षिप्त वर्णन है। विष्णुधर्मोत्तर में प्रथम ही इस विषय के वर्णन का निर्देश किया गया है (विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रहसि भाषितम् ८८!७०)।

८९ अध्याय—'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' का उदाहरणों से समर्थन। भैरव और वेताल के इस प्रसंग में कथानक का प्रतिपादन। खाण्डवदाह की कथा। भैरव के सन्तानों का वर्णन।

९० अध्याय—वेताल के सन्तान का कथन। कालिकापुराण की प्रशंसा। कालिका नामक पुण्यपुराण मन्त्र-यन्त्रमय है, शुद्ध, ज्ञान तथा काम देने वाला, वेद तथा लोक दोनों में गुह्यतम है।[1] मार्कण्डेय का कथन है कि वसिष्ठ जी ने इस अमृतमय पुराण को मुझसे सुना और पढ़ा था। इन्हों ने इसे सुरालय

---

१. इति वः कथितं पुण्यं पुराणं कालिकाह्वयम्।
मन्त्र-यन्त्र-मयं शुद्धं ज्ञानदं कामदं परम्॥ २९॥
इति गुह्यतमं लोके वेदेषु च तथा द्विजा; ।—कालिकापुराण, अध्याय ९०

(स्वर्गभूत) कामरूप में छिपा रखा था और अब महर्षियों को इस गुह्यपुराण को प्रकाश में ले आने का श्रेय है। अन्त में विष्णु तथा माया की स्तुति से यह कालिकापुराण समाप्त होता है।

इति सकलजगद् बिभर्ति यासां मधुरिपुमोहकरी रमास्वरूपम्।
रमयति च हरं शिवास्वरूपा वितरतु वो विभवं शुभानि माया॥

कालिकापुराण—महापुराण या उपपुराण ?

कालिकापुराण के धार्मिक महत्त्व की मीमांसा से पूर्व उसके स्वरूप का विवेचन आवश्यक है। प्रश्न है कि वह महापुराणों के अन्तर्गत माना जाय अथवा उपपुराण समझा जाय। महापुराणों की नामावली प्रस्तुत करने वाले, देवी-भागवत के प्रख्यात श्लोक

मद्वयं भद्वयं चैव वत्रयं व्रचतुष्टयम्।
आनापल्लिङ्गकूस्कानि पुराणनि विनिर्दिशेत्॥

के कथनानुसार केवल एक ही पुराण ककार या 'कू' से आरम्भ होता है और वह है कूर्मपुराण। कालिकापुराण का इसमें निर्देश नहीं है। परन्तु इसे भी महापुराणों के अन्तर्गत मानने का प्राचीन काल में आग्रह था और यही मूल भागवतपुराण माना जाता था। इस तथ्य का परिचय हमें हेमाद्रि (१३ शती) के प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' के इस कथन से होता है :—

यदिदं कालिकाख्यं च मूलं भागवतं स्मृतम्। (प्रथम जिल्द पृ० ५३१)

परन्तु हेमाद्रि से लगभग एक शताब्दी पूर्व होने वाले, वाराणसी के गहड़वालवंशी राजा जयचन्द्र के धर्माध्यक्ष लक्ष्मीधर ने अपने कृत्यकल्पतरु में कालिकापुराण को स्पष्टतः उपपुराण की संज्ञा दी है :—

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्तु दृश्यते।
विजानीध्वं मुनिश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्॥

विनिर्गतम् उद्भूतं यथा कालिकापुराणादि। (कृत्यकल्पतरु, खण्ड १, पृ० ३०)

यहाँ लक्ष्मीधर ने कालिकापुराण को अष्टादश पुराणों से ही उद्भूत बतलाया है। चण्डेश्वर ने अपने 'कृत्यरत्नाकर' में भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। बंगाल के निबन्धकार बल्लालसेन (१२ शती का अन्तिम चरण) ने दानविधि के स्पष्ट प्रतिपादक जिन उपपुराणों का निर्देश किया है उनमें कालिकाह्वय पुराण भी है :—

उक्तान्युपपुराणानि व्यक्तदानविधीनि च।
आद्यं पुराणं साम्बं च कालिह्वयमेव च॥ (दानसागर, पृ० ३)

उपपुराणों की जितनी सूची उपलब्ध हुई हैं उनमें कालिकापुराण का उल्लेख

सर्वत्र है। इतने स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिकापुराण निःसन्दिग्ध रूप से उपपुराण ही है। महापुराणों के अन्तर्गत इसे मानना साम्प्रदादिक हठधर्मिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

मूल कालिकापुराण का अस्तित्व

इस प्रस्तावना के आरम्भ में ही नान्यदेव आदिकों का नामोल्लेख किया गया है जिनके ग्रन्थों में कालिकापुराण के मत तथा उद्धरण तो मिलते हैं, परन्तु ये उद्धरण वर्तमान कालिकापुराण में उपलब्ध नहीं होते। उद्धरणों का सम्बन्ध इन धर्मशास्त्रीय विषयों से है[1]—सुवर्णादि पदार्थों का दान, वर्ण तथा आश्रमों के धर्म, कालिका और शिव की पूजा, नाना प्रकार के व्रत, श्राद्ध, गंगा-स्नान की विशिष्ट पवित्रता आदि आदि। उपलब्ध कालिकापुराण में इन विषयों का नितान्त अभाव है। अतः इससे भिन्न कालिकापुराण की कल्पना करना असंगत न होगा। एक और भी विषय विचारणीय है। इन प्राचीन निबन्धकारों के ग्रन्थों में दिये गये कालिकापुराण के लम्बे-लम्बे उद्धरणों में कहीं भी तान्त्रिक प्रभाव लक्ष्य नहीं होता। प्रचलित कालिकापुराण के स्वरूप से ठीक विपरीत स्वरूप वाले मूल कालिकापुराण की सत्ता मानने का विशदतर प्रमाण उपस्थित करता है वल्लालसेन का दानसागर। वल्लालसेन ने अपने 'दानसागर' में दान विधिविषयक पुराणों के स्वरूप का गम्भीरता से विचार किया है। वे देवीपुराण को इसीलिए त्याज्य मानते हैं कि उसमें तान्त्रिक प्रभावों का स्पष्ट निर्देश था।[2] इतना ही नहीं, भविष्यपुराण के उन्हीं परिच्छेदों वाले भागांश का अपने कार्य के लिये उपयोग किया है, जहाँ तक सप्तमी कल्प का वर्णन हुआ था। अष्टमी तथा नवमी कल्प वाले परिच्छेदों पर तान्त्रिक प्रभावों की सत्ता होने से वे उनके उपयोगक्षेत्र के बाहर ही रहे।[3] परन्तु कालिकापुराण के विषय में वल्लालसेन ऐसी कोई चर्चा नहीं करते। पुराणों पर तान्त्रिक प्रभाव के इस गम्भीर विवेचक का कालिकापुराण के विषय में मौनावलम्वन इस तथ्य का स्पष्ट

---

१. विशेष के लिए द्रष्टव्य डा० हाजरा—स्टडीज इन उपपुराणज् पृष्ठ २३६—२३८, द्वितीय खण्ड, कलकत्ता, १९६३

२. तत्तत्-पुराणोपपुराण-संख्या बहिष्कृतं कश्मलकर्मयोगात्।
पाषण्ड-शास्त्रानुमतं निरूप्य देवीपुराणं न निबद्धमत्र॥
—दानसागर, श्लोक ६७

३. सप्तम्यवधि पुराणं भविष्यमपि संगृहीतमतियत्नात्।
त्यक्त्वाऽष्टमीनवम्योः कल्पौ पाषण्डिभिर्ग्रस्तौ॥
—दानसागर, श्लोक ५९

संकेत करता है कि उस युग में प्रचलित कालिकापुराण में तान्त्रिक विधि-विधानों का सर्वथा अभाव था और वह पुराण अधुना प्रचलित तन्त्रबहुल कालिकापुराण से सर्वतोभावेन भिन्न एवं पृथक् था। और यही था मूल कालिकापुराण। इस सिद्धान्त का पोषक प्रमाण रघुनन्दन के दुर्गापूजातत्त्व में उद्धृत इस वाक्य से उपलब्ध होता है—दुष्प्रापकालिकापुराणान्तरेऽपि। जहाँ कई पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि रघुनन्दन प्रचलित कालिकापुराण से भिन्न कालिकापुराण को जानते थे, जिसके हस्तलेख उनके समय में भी दुर्लभ हो गये थे।

निष्कर्ष—किसी मूल कालिकापुराण का अस्तित्व मध्य युग में अवश्य था जिसमें योगमाया शिव की शक्ति के रूप में चित्रित थी, जहाँ शैवमत का प्राचुर्य था तथा जहाँ धर्मशास्त्रीय विषयों के तथा पूजानुष्ठाव के वर्णन में तान्त्रिक प्रभाव का सर्वतोभावेन अभाव था। प्रचलित कालिकापुराण इन तीनों तथ्यों में उससे भिन्नता रखता है। इसमें योगमाया नारायण की शक्ति बताई गई है (तत्र गत्वा जगद्धात्रीं विष्णुमायां जगन्मयीम्—कालिका ५।१४) तथा नारायण की पूजा नारदपञ्चरात्र की विधि से आदिष्ट है और वैष्णव आगमों का प्रभाव बहुशः निर्दिष्ट हैं तथा देवीपूजा के अवसर पर मन्त्र, यन्त्र, मुद्रा कवच आदि समस्त तान्त्रिक उपकरणों का प्रचुर वर्णन है।[1]

मूल (?) कालिकापुराण का हस्तलेख

कालिकापुराण का एक अपूर्व हस्तलेख वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री बलरामशास्त्री भारद्वाज के पास सुरक्षित है, जो प्रचलित कालिकापुराण से एकदम भिन्न है। यह मूल कालिकापुराण प्रतीत होता है। नान्यदेव, हेमाद्रि, चण्डेश्वर आदि के अनुसार मूल कालिकापुराण तृणबिन्दु तथा अनिलाद के मुख्य संवाद रूप में वर्णित है,[2] यहाँ भी ये ही दोनों व्यक्ति आदि से अन्त तक संवाद चलाते हैं। तृणबिन्दु प्रश्न करते हैं जिनका उत्तर अनिलाद (या पवनाद) देते हैं। यह हस्तलेख अशुद्धि-प्रचुर तथा अधूरा है, परन्तु उपलब्ध अंश की परीक्षा इसके स्वरूप की पर्याप्त परिचायिका है। इसमें भगवान् शङ्कर तथा सती का चरित्र बड़े विस्तार के साथ दिया गया है। तदनन्तर पार्वती का विवाह तथा स्कन्द की पूरी कथा (जन्म तथा उनका वृत्तान्त; युद्धभी) बड़े विस्तार से दी गई है। कथा के प्रसङ्ग में अवान्तर

---

१. द्रष्टव्य कालिकापुराण, अध्याय ५२—७६

२. डा० हाजरा—स्टडीज इन उपपुराणज् भाग २ पृष्ठ २३५ पर प्रथम टिप्पणी द्रष्टव्य।

कथाएँ भी हैं। स्तुतियाँ भी हैं। पूजन का भी प्रसङ्ग है, परन्तु तान्त्रिक विधि-विधान का कहीं स्पर्श भी नहीं है। तीर्थमाहात्म्य का भी यत्र तत्र प्रसङ्ग आता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त, नीलाचल–तीर्थों के नामनिर्देश मिलते हैं (अध्याय ३९, श्लोक० ८५) इसी अवसर पर कहा गया है :—

स्नात्वादौ कणितीर्थेसु मुक्तकेतुशिवामुखे।
कुशाख्ये तु ततो नीले मोक्षः स्याद् देहसंक्षये॥ (३९।८)

देवी का जहाँ-जहाँ स्थान है, वहाँ-वहाँ 'ऊषर तीर्थ' माना जाता है और ऐसे नव ऊषरों का नाम निर्दिष्ट है, परन्तु यह नाम स्पष्ट प्रतीत नहीं होता (४०।७४) नव ऊषर तीर्थों की परम्परागत नामावली वाराहपुराण में इस प्रकार निर्दिष्ट है :—

रेणुका सूकरः काशी काली कालो वटेश्वरी।
कालिञ्जरो महाकालो ऊषरा नवमुक्तिदा॥[1]

इन नव स्थानों में प्राणत्याग करने वाले जीवों को समान पुण्य मिलता है (नवेषु सदृशं पुण्यं मृतानामेषु देहिनाम्। (४० ७५)

स्तुतियों से दो-चार पद्य नमूने के तौर पर उद्धृत किये जाते हैं।

शिव की स्तुति—

नमः काण्डसृजे तुभ्यं हरिवामांगभूषिते।
विरंचिजनने तुभ्यं नीलकण्ठाय धन्विने॥ १७॥
पुरुषोत्तमस्त्वमेवैको स्थूलसूक्ष्मो निरञ्जनः।
अणोरणुतरश्चासि अलक्षः सर्वलक्षकः॥ २०॥

—अध्याय २३

स्कन्द की स्तुति—

त्वं ब्रह्मा ब्रह्मवादी त्वं सुब्रह्मो ब्रह्मवत्सलः।
ब्रह्मण्यो ब्रह्मदेवश्च ब्रह्मज्ञो ब्रह्मसंग्रहः॥ ११॥
त्वं सावित्रीमयो देवः सर्वत्रैवापराजितः।
मनुः सर्वात्मको देवः षडक्षररतीपरः॥ १३॥
त्वं भर्ता सर्वभूतानां त्वं भूतः त्वं सुखावहः।
सर्वदृक् सर्वं जेता षड्वक्त्रो भयनाशनः॥ १७॥
भीमसेनः सुषेणश्च वीरसेनश्च भूपतिः।
सिद्धसेनः सुराध्यक्षो भीमसेनो निरामयः॥ १९॥

—अध्याय २५

---

१. शब्दार्थचिन्तामणि में यह श्लोक वाराहपुराणीय मानकर उद्धृत है, परन्तु वाराहपुराण की किसी भी मुद्रित प्रति में यह उपलब्ध नहीं होता।

अर्धनारीश्वर की स्तुति—

शरण्यानां शरण्यस्त्वं भव देव त्रिशूलिनः।
नमो मुञ्जार्धदेहाय रसनार्धविधारिणे॥ ११॥
पीनोन्नतकुचार्धाय वक्षोर्धाय नमो नमः।
युग्मरूपाय तुर्याय विस्मयानन्दकारिणे॥
अर्धनारी—शरीराय स्त्रीपुंसाय नमो नमः॥ १२॥

—अध्याय ४०

अनेक अध्यायों की पुष्पिका में यह कालिकापुराण कालीपुराण भी कहा गया है। यह हस्तलिखित प्रति पाठ की दृष्टि से नितान्त महनीय तथा आदरणीय है। हस्तलेख की छिन्नभिन्नता के कारण विशुद्ध पाठ का निर्णय नहीं किया जा सकता। अत एव अन्य साधनों के अभाव में यह प्रकाशन-योग्य नहीं है[1]।

कालिकापुराण : देश और काल

कालिकापुराण के अन्तरङ्ग परीक्षण से स्पष्ट है कि इस पुराण का भौगोलिक क्षेत्र भारतवर्ष का पूर्वाञ्चल है और तिस पर भी कामरूप का प्रदेश। कालिका-पुराण के ७७ वें अध्याय में कामरूप के क्षेत्र में वर्तमान नदियों, सरोवरों, कुण्डों तथा पर्वतों का निर्देश बड़ी ही सूक्ष्मता तथा विस्तार के साथ किया गया है। पुराण का लेखक उस प्रदेश के इन भौगोलिक इकाइयों के पूर्ण परिचय रखता है। इस प्रसंग में एक प्रमाण विचारणीय है। विद्यापति ने अपने 'दुर्गाभक्ति-तरंगिणी' में देवी के नैवेद्य के लिए उपयुक्त फलों के नाम प्रस्तुत करने वाले श्लोक कालिका पुराण (अध्याय ७०।४–१२) से उद्धृत किये हैं जिनमें एक श्लोक है :—

अक्षोडं पिण्डखर्जूरं करुणं श्रीफलं तथा।
औदुम्बरं च पुन्नागं माधवं कर्कटीफलम्॥ ६॥

—कालिका० अध्याय ७०

इन फलों के ऊपर टीका करते हुये वे करुण को गौडदेश में प्रसिद्ध फल बतलाते हैं (करुणं गौडदेशे प्रसिद्धम्) इससे विद्यापति का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि पुराण का रचयिता बंगाल में प्रख्यात फल से परिचित था। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कालिकापुराण का उत्पत्तिस्थल

---

१. इसके १६० + ९६ पृष्ठों को श्री बलिरामशास्त्री भारद्वाज ने मुद्रित भी किया था, परन्तु साधनाभाव से आगे मुद्रण नहीं हो सका। इन छपे फार्मों को मुझे अवलोकनार्थ देने के लिए मैं भारद्वाज जी का आभार मानता हूँ।

आसाम का कामरूप प्रदेश है अथवा आसाम का वह भाग है जो बंगाल के सन्निकट है।

कालिकापुराण के रचनाकाल के विषय में इदमित्थं रूप से निर्णय करना कठिन व्यापार है। रचना-काल का कोई भी संकेत ग्रन्थ के भीतर उपलब्ध नहीं होता। केवल बाह्य साक्ष्य के ऊपर अवलम्बित होना पड़ता है। कालिकापुराण का प्राचीनतम निर्देश नान्यदेव के 'भरतभाष्य' में उपलब्ध होता है :—

इति रोविन्दकं समाप्तम् ॥ कालिकाख्यपुराणे। यत्पुराणे पुरुषेरितं रोविन्दकाभिधं गीतं नान्यमहीभुजा। इति रोविन्दकं प्रोक्तं स्यादुत्तरमतः परम ॥

(भाष्य के हस्तलेख के पृष्ठ १३८ पर, मद्रास)

'भरतभाष्य' के रचयिता नान्यदेव महीपति मिथिला के राजा नान्यदेव से अभिन्न माने जाते हैं जिसका राज्यकाल ईस्वी १०९७ से लेकर ११३३ है। डा० सिलवन लेवी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि नान्यदेव का सिंहासनारूढ़ होने का काल १०९७ ई० में पड़ता है।

फलतः कालिकापुराण का रचनाकाल १०५० ई० से अनन्तर नहीं हो सकता। पूर्वतन मर्यादा का उल्लेख हेमाद्रि के उस उद्धरण के द्वारा किया गया है जिसमें कालिकापुराण ही वास्तव में भागवतपुराण माना गया है (यदिदं कालिकाख्यं च मूलं भागवतं स्मृतम्)। यह उल्लेख श्रीमद्भागवत की पूर्ण प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने के पश्चात् युग का संकेत करता है। श्रीमद्भागवत की रचना का काल[1] ईस्वी सन् से षष्ठ शतक निर्णीत है। रचना के बाद एक शताब्दी का समय भागवत को प्रतिष्ठित तथा प्रख्यात होने में लगा होगा—ऐसा अनुमान किया जा सकता है। उसी युग में मूल कालिकापुराण की रचना सम्भावित है। फलतः कालिकापुराण को सप्तम शती में मानना उचित होगा। वर्तमान कालिकापुराण के सर्वाधिक प्राचीन निर्देश बंगाल के ग्रन्थकार शूलपाणि तथा मैथिल विद्यापति के द्वारा किये गये हैं। ये दोनों ग्रन्थकार १४ शती के लेखक हैं। शूलपाणि ने दुर्गोत्सव-विवेक में तथा विद्यापति ने अपने दुर्गाभक्तितरंगिणी में पूजाविषयक श्लोकों को उद्धृत किया है। कालिकापुराण कालिदास के कुमारसम्भव से तथा माघ के शिशुपालवध (७०० ई०) से परिचय रखता है। फलतः अष्टमी शती से (७५० ई०) वह कथमपि प्राचीन नहीं हो सकता। ग्रन्थ की रचना के अनन्तर प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा पाने के लिए शूलपाणि तथा विद्यापति से कम से कम दो तीन सौ वर्ष का काल—व्यवधान

---

१. द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय पृ० १५१–१५३, वाराणसी, सं० २०१०

मानना अनुचित न होगा। फलतः प्रचलित कालिकापुराण का निर्माण सम्भवतः दशम शती के उत्तरार्ध में मानना चाहिये।[1]

कालिकापुराण का महत्त्व : दार्शनिक दृष्टि

पुराण साहित्य के अन्तर्गत कालिकापुराण अपना एक स्पृहणीय महत्त्व तथा आदरणीय वैशिष्ट्य धारण करता है। इसके वैशिष्ट्य का संकेत जो ग्रन्थ के अन्त में (अध्याय ९० श्लोक २९) दिया गया है वह सर्वथा यथार्थ है। यह शुद्ध मन्त्र-यन्त्रमय पुराण है जो ज्ञान और काम दोनों को देने वाला है (मन्त्र-यन्त्र-मयं शुद्धं ज्ञानदं कामदं तथा)। यह कथन सत्य है। महामाया तथा उसकी प्रतिनिधिभूता कामाख्या, त्रिपुरा, चण्डिका, देवी आदि के स्वरूप का प्रतिपादन कर उनकी उपासना की प्रक्रिया का विवरण सांगोपांग रूप से यह पुराण प्रदान करता है। इतना ही नहीं, नारायण, गोविन्द, विष्णु, शंकर, गणपति आदि देवों के अर्चाविधान का भी वर्णन मिलता है। यह पुराण उदारभाव से सम्पन्न है। वह विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा को एक ही परमात्मा का स्वरूप मानकर उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं स्वीकारता। विष्णु ने इस अभेदभावना को स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है :—

> न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा।
> न चाहं युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्वं सदातनम् ॥ ५१ ॥
> शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव धर्मिणः।
> अङ्गानि मे तथैकस्य भागत्रयमिदं हर ॥ ५५ ॥
>
> —कालिकापुराण, अध्याय ११

सर्वप्रथम योगमाया के स्वरूप का तात्त्विक विवेचन है (अध्याय ५, श्लोक ५४–५९) अध्याय ८, श्लोक १२–२६; अध्याय ६, श्लोक ५९–७२) योगमाया स्निग्ध अंजन के समान क्रान्ति वाली, सुन्दर रूप, ऊँची डील-डौल वाली, चार भुजाओं से सम्पन्न, तलवार और नील कमल हाथ में लिए तथा खुले केशकलाप को धारण करने वाली बतलाई गई हैं। उनका वाहन सिंह है :—

> स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपोत्तुङ्गा चतुर्भुजा।
> सिंहस्था खड्ग-नीलाब्जहस्ता मुक्तकचोत्करा ॥—कालिका ५।५२

योगमाया जगत् की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति उभयरूपा है; चर और अचर जीवों की सनातनी शक्ति है तथा समस्त जगत् को मोहने वाली हैं (५।५४); योगियों के हृदय में प्रमिति (ज्ञानरूपा) वे ही हैं तथा विविध विषयों का अवलम्बन करने वाली विद्या है (५।५६); सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों की विकार–

---

१. विशेषरूप से द्रष्टव्य डॉ० राजेन्द्रचन्द्र हाजरा–स्टडीज इन उपपुराणज् (अंग्रेजी) दूसरा खण्ड, पृष्ठ २०९–२४५ (संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९६३)

हीन समवस्थिति हैं; अशेष जगत् की बीजरूपा, ज्ञेय तथा ज्ञानरूपिणी संसार के हितार्थं अवतीर्णं होने वाली विष्णुमाया वे ही है (५।५९) मन्त्र के अन्तस् को बोधन करने वाली, परमानन्द स्वरूपा, योगियों के अन्तस्तल में शुद्ध विद्यारूपिणी योगमाया जगन्मयी कहलाती है।[1] वह नित्या है तथा जगत् के गर्भ में नित्यरूप से प्रकाशित होती है; इस जगत् के बाहर भी वे ज्योतिःस्वरूप से विराजमान है जो ज्योति, व्यक्त (कार्य-जगत्) तथा अव्यक्त (कारण-जगत्) दोनों को प्रकाशित करती है (६।६९)। योगमाया परा, परात्मिका, शुद्ध, मलरहित, लोक को मोहने वाली, वेदत्रयी, देवत्रयीरूपा, कीर्ति तथा संसार की वार्ता और गति दोनों हैं (८।१६)

इस अचिन्त्य शक्तिसम्पन्ना योगमाया की नाना अभिव्यक्तियाँ देवी के रूप में जगत् के कल्याणार्थं विराजमान हैं। उनमें कामाख्या सर्वातिशायिनी है। कामाख्या का विशिष्ट पूजाविधान कालिकापुराण का प्रधान सुचिन्तित विषय है। कामाख्या ही महामाया है; वही मूलमूर्ति है।[2] भिन्न-भिन्न पीठों के साथ सम्बद्ध होने पर वही नाना नामों से प्रसिद्ध होती हैं। जिस प्रकार एक ही विष्णु नित्य होने से 'सनातन' तथा दुष्टजनों के अर्दन करने से 'जनार्दन' नाम से अभिहित होते हैं, उसी प्रकार महामाया कामरूपगिरि पर कामसम्पादन के लिए उत्पन्न होने से 'कामाख्या' नाम से विश्रुत हैं। वही कामकाल में रक्तकमलों से सम्पन्न प्रेतरूपी शिव पर रमण करती हैं। त्यक्तकामा होने पर वही कामाख्या श्वेत प्रेत पर रमण करती हैं। अन्य विवरण के अनन्तर उनके आसन का वर्णन है (५८।६९)। कामाख्या का ध्यानपरक यह श्लोक उनकी दिव्य सौन्दर्यमूर्ति का चित्रण करता है—

कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरां सिद्धसूत्रैकहस्तां
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुतां कुङ्कुमापीतवर्णाम्।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठाम् अतिशयविनयां ब्रह्मशक्रादिवन्द्याम्।
अग्नौ विन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषयां नौमि सिद्ध्यै रतिस्थाम्।

—कालिकापुराण अध्याय ७२, श्लोक ६३

---

१. मन्त्रान्तर्भावनपरा परमानन्दरूपिणी।
योगिनां सत्त्वविद्यान्तः सा निगद्या जगन्मयी ॥—कालिका० ६।६१

२. मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ॥ ४८ ॥
एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नतां गता।
कामाख्या तु महामाया मूलमूर्तिः प्रगीयते ॥ ५१ ॥

—कालिकापुराण, अध्याय ५८

कालिकापुराण की भाषा-शैली

कालिकापुराण का साहित्यिक चमत्कार विशेष दर्शनीय है। भाषा में अपाणिनीय प्रयोगों का उतना बाहुल्य नहीं जितना इतर पुराणों में दृष्टिगोचर होता है। अनेक स्थलों पर यह काव्यसौष्ठव से सम्पन्न है। पार्वती-तपस्या के प्रसंग पर कालिदास के कुमारसम्भव की अविस्मरणीय छाया है। इस अवसर पर वसन्त के आगमन का स्निग्ध वर्णन है (अध्याय ४२, श्लोक १३६–१४३) पन्द्रहवें अध्याय में वर्षा का बड़ा ही रसपेशल, मधुर तथा यथार्थ वर्णन है (अध्याय १५, श्लोक २–१८) इस वर्णन की चारुता निरखने के लिए दो पद्य उद्धृत किये जाते हैं :—

स्निग्धनीलाञ्जनश्याममुदिरौघस्य पृष्ठतः।
बलाकाराजिर्भात्युच्चैर्यमुनाघुष्टफेनवत् ॥ ८ ॥

चिकने-नीले-आँजन के तरह श्याम बादलों की पीठ पर बगुले की पाँत वैसे ही शोभा पाती है जैसे श्याम यमुना के ऊपर सफेद फेन के टुकड़े। उपमा की चारुता स्पृहणीय है। हवा के थपेड़े खाने से हिलते-डुलते हुये बड़े-बड़े पेड़ आकाश में नाचते हुये प्रतीत होते हैं। ये कामीजनों को तो प्रीति पैदा करते हैं, परन्तु भीरुजनों को त्रास दे रहे हैं—

वाताहता महावृक्षा नृत्यन्त इव चाम्बरे।
दृश्यन्ते हर भीरूणां त्रासकाः कामुकेप्सिताः ॥ ७ ॥

कालिकापुराण देवों की स्तुति के लिए स्मरणीय रहेगा। ये स्तुतियाँ दार्शनिक तथ्य तथा साहित्यिक सौन्दर्य दोनों से सर्वथा भूषित हैं। विष्णु की स्तुति (अध्याय २२) गोविन्द की रमणीय स्तुति (अध्याय ३०), शिव की स्तुति (अध्याय १८) तथा देवी की गीतिमयी स्तुति (अध्याय ७६) साहित्यिक सुषमा, कोमल पदविन्यास तथा गाढ़ भक्तिभावना के कारण कालिकापुराण को काव्यमय कोमल विग्रह प्रदान कर रही है। एक दो उदाहरण इस सुषमा के परिचायक होंगे :—

विष्णु की स्तुति—

नमो नमः कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय।
समस्तलोकान्तरमोहनाय प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥ (२२।६२)
त्वं पद्मया पद्मकरो विभासि वरासि-चक्राब्जधनुर्धरस्त्वम्।
त्वं तार्क्षे प्रतिभासि नित्यं स्वर्णाचले तोययुतो यथाब्दः ॥ (३०।१६)

केशव की स्तुति—

अयोनिस्त्वं जगद्योनिः, अपादस्त्वं सदागतिः।
त्वं तेजः स्पर्शहीनश्च सर्वेशस्त्वमनीश्वरः ॥ (३३।२३)

शिव की स्तुति—

यदष्टशाखस्य तरोः प्रसूनं चिदम्बुवृद्धस्य समीपजस्य ।
तपश्छदःसंस्थगितस्य पीनं सूक्ष्मोपगं ते वशगं सदैव ॥ (१८।७४)
सूक्ष्मं जगद् व्याधि गुणौघपीनं मृग्यम्बुवेः साधनसाध्यरूपम् ।
चोरैरक्षैर्नोज्झितं नैव नीतं वित्तं तवास्त्यर्थहीनं महेश ॥ (१८।७७)

देवी की स्तुति—

जय जय देवि सुरगणार्चित–पादपङ्कजे ।
विश्वस्य भूतिभाविनि शशिमौलि-केलिभाविनि गिरिजे ।
नेत्रत्रयनिर्जितविवस्वद्विधुवह्निकान्तितुलितकमलजे ।
मध्यनेत्रगतभ्रूभङ्गभक्तरक्तमति-चयज्वायकविमलजे ॥ (७६।९६)

देवी की यह कमनीय स्तुति तान्त्रिक सिद्ध की भक्तिमयी गीर्वाणवाणी का मधुमय प्रसाद है। यह मनोरम गीतिका है, जिसका मधुर गायन वीणा पर बड़ी सरसता से किया जा सकता है। यह गीतिका सचमुच भक्तिरसाप्लुत हृदय का अमृतमय उद्गार है। इस गीतिका के लिए भी यह कालिकापुराण साहित्य—संसार में चिर–स्मरणीय रहेगा। अन्त में भगवती के चरणारविन्द में यह प्रस्तावना भक्तिभावना से संप्लुत हृदय से समर्पित की जा रही है, जिससे उनकी कृपाधारा के कतिपय कणों को पाकर लेखक धन्यंमन्य बन जाय। तथास्तु—

सा पातु नः सकलयोगिजनस्य चित्तेऽ-
विद्यातमिस्रतरणिर्यतिमुक्तिहेतुः ।
या चास्य जन्तुनिवहस्य विमोहिनीति
माया विभोर्जनुषि शुद्ध-कुबुद्धि हन्त्री ॥ १।२

× × × ×

विश्वविख्यात चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी के प्रकाशक तथा पुराणों के विशुद्ध-लोकप्रिय संस्करण के पुरस्कर्ता बन्धुद्वय श्री मोहनदास गुप्त तथा श्री बिट्ठलदास गुप्त को कालिकापुराण के इस लोकप्रिय मनोहर संस्करण के प्रकाशन के लिए मैं धन्यवाद देता हूं। वे इसी प्रकार अनुपलब्ध अन्य पुराणों का भी ऐसा ही सुन्दर संस्करण प्रकाशित कर धार्मिक जनता का कल्याणसाधन करें तथा श्रद्धालु जनों को भगवान् व्यास की वाणी का प्रसाद प्रदान करें।

चैत्रपूर्णिमा सं० २०२९
२९–३–७२
वाराणसी

—बलदेव उपाध्याय

अध्याय-सूची

समाप्तम्

कालिकापुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

यद्‌योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्य-
मासाद्य वन्दितमतीवविविक्तचित्तैः ।
तद् वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्म-
माविर्भवत् क्रमविलङ्घितभूर्भुवः स्वः ॥ १ ॥

सा पातु वः सकलयोगिजनस्य चित्ते-
ऽविद्यातमिस्रतरणिर्यतिमुक्ति-हेतुः ।
या चास्य[1] जन्तुनिवहस्य विमोहिनीति
माया[2]विभोर्जनुषि शुद्ध-कुबुद्धिहन्त्री ॥ २ ॥

ईश्वरं जगतामाद्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।
नित्यज्ञानमयं वक्ष्ये पुराणं कालिकाह्वयम् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठं स्थितं हिमधरान्तिके[3] ।
मुनयः परिपप्रच्छुः प्रणम्य कमठादयः ॥ ४ ॥

भगवन् सम्यगाख्यातं सर्वशास्त्राणि तत्त्वतः ।
वेदान् सर्वांस्तथा सांगान् सारभूतं प्रमथ्य च ॥ ५ ॥

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु यो यो नः संशयोऽभवत् ।
स स च्छिन्नस्त्वया ब्रह्मन् सवित्रेव तमश्चयः ॥ ६ ॥

जैवातृकाग्रय भवतः प्रसादाद्द्विजसत्तम ।
निःसंशया वयं जाता वेदे शास्त्रे च सर्वशः ॥ ७ ॥

---

1 चान्य। 2 विधोः। 3 हिमवर ···।

कृतकृत्या वयं ब्रह्मंस्त्वत्तोऽधीत्य समन्ततः।
सरहस्यं धर्मशास्त्रं यदवादि स्वयम्भुवा ॥ ८ ॥

भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामो हरं काली पुरा कथम्।
मोहयामास यतिनं सतीरूपेण चेश्वरम् ॥ ९ ॥

सर्वदा ध्याननिलयं यमिनं यतिनां वरम्।
संक्षोभयामास कथं संसारविमुखं हरम् ॥ १० ॥

सती वा कथमुत्पन्ना दक्षदारासु[4] शोभना।
कथं हरो मनश्चक्रे दारग्रहणकर्मणि ॥ ११ ॥

कथं वा दक्षकोपेन त्यक्तदेहा सती पुरा।
हिमवत्तनया जाता भूयो वा कथमागता ॥ १२ ॥

कथमर्द्धशरीरं[5] साहरत् स्मररिपोः पुनः।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तम ॥ १३ ॥

नान्योऽस्ति संशयच्छेत्ता त्वत्समो न भविष्यति।
यथा जानीम विप्रेन्द्र तत् कुरुष्वैतदात्मवित् ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं[6] मुनयः सर्वे गुह्याद् गुह्यतरं मम[7]।
पुण्यं शुभकरं सम्यग् ज्ञानदं कामदं परम् ॥ १५ ॥

एतद् ब्रह्मा पुरोवाच नारदाय महात्मने।
पृष्टस्तेन ततः सोऽपि बालखिल्येभ्य[8] उक्तवान् ॥ १६ ॥

बालखिल्या महात्मानस्तत आचक्षिरे पुनः।
यवक्रीताय मुनये स प्रोवाचासिताय च ॥ १७ ॥

---

4 दक्षदारेषु। 5 शरीरन्त्वहरत्। 6 शृण्वन्तु। 7 परम्।
8 बालक्षिल्येपुचोक्तवान्।

अहं वः कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।
असितो मे समाचष्ट एतद्विस्तरतो[9] द्विजाः।
प्रणम्य परमात्मानं चक्रपाणिं जगत्पतिम्॥ १८॥

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय सदसद्व्यक्तिरूपिणे।
स्थूलाय सूक्ष्मरूपाय[10] विश्वरूपाय वेधसे॥ १९॥

नित्याय नित्यज्ञानाय निर्विकाराय तेजसे।
विद्याविद्यास्वरूपाय कालरूपाय वै नमः॥ २०॥

निर्मलायोर्मिषट्कादिरहिताय विरागिणे।
व्यापिने विश्वरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे॥ २१॥

योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ वेदान्तान्तगचिन्तकैः।
अन्तरन्तः परं-ज्योतिःस्वरूपं प्रणमामि तम्॥ २२॥

तमेवाराध्य-भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रजाः ससर्ज सकलाः सुरासुरनरादिकाः॥ २३॥

सृष्ट्वा प्रजापतीन् दक्षप्रमुखान् स यथाविधि।
मरीचिमत्रिं पुलहं तथैवाङ्गिरसं क्रतुम्॥ २४॥

पुलस्त्यञ्च वशिष्ठञ्च नारदञ्च प्रचेतसम्।
भृगुञ्च मानसान् पुत्रान् यदा दश ससर्ज सः।
तदा तन्मनसो जाता चारुरूपा वरांगना॥ २५॥

नाम्ना सन्ध्येतिविख्याता सायंसन्ध्यां यजन्ति याम्।
न तादृशी देवलोके न मर्त्ये न रसातले।
कालत्रयेऽपि भविता सम्पूर्णगुणशालिनी॥ २६॥

निसर्गचारुनीलेन[11] कचभारेण राजते।
मयूरीव विचित्रेण वर्षासु द्विजसत्तमाः॥ २७॥

---

9 विस्तरशो। 10 स्थलरूपाय। 11 चारुरूपेण।

आरक्तगौरमलिन[12]माकर्णान्तं तथालकैः।
रेजे सुराधिपधनुश्चारुबालेन्दुसन्निभम् ॥ २८ ॥

प्रफुल्लनीलनलिनश्यामलं नयनद्वयम्।
चकाशे चकितायास्तु कुरंग्याः सदृशं चलम् ॥ २९ ॥

निसर्ग-चंचलं चारु भ्रूयुग्मं श्रवणायतम्।
मीनाङ्ककोदण्डसमं नीलं तस्या द्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥

भ्रूमध्याधोनिम्नभागादायत-प्रांशु-नासिका।
लावण्यानि द्रवन्तीव ललाटात्तिलपुष्पवत् ॥ ३१ ॥

तद्वक्त्रं शोणपद्माभ-पूर्णचन्द्रसमप्रभम्।
बिम्वाधरारुणिम्नाभीरेजे रागि-मनोहरम् ॥ ३२ ॥

सौन्दर्यलावण्यगुणैरापूर्णं वदनं पुनः।
अभितश्चिवुकं यातुमुद्यताविव तत्कुचौ ॥ ३३ ॥

राजीवकुट्मलाकारौ पीनोत्तुंगौ निरन्तरौ।
श्यामास्यौ तत्कुचौ विप्रा मुनीनामपि मोहनौ ॥ ३४ ॥

वलिभाजि क्षीणमध्यं मुष्टिग्राह्यमिवांशुकम्[13]।
तन्मध्यं ददृशुः सर्वे शक्तितुल्यं मनोभुवः ॥ ३५ ॥

तस्याश्चोरुयुगं रेजे स्थूलोर्द्ध्वं करभायतम्।
आनमद्वारणकरप्रतिमं मृदुमन्थरम् ॥ ३६ ॥

स्थलाम्बुजारुणं पादयुग्मं सत्पार्ष्णिराजितम्।
अंगुलीदलसंकीर्णं कुसुमायुधबाणवत् ॥ ३७ ॥

तां चारुदर्शनां तन्वीं तनुरोमावलीवृताम्।
सस्वेदवदनां दीर्घनयनां चारुहासिनीम् ॥ ३८ ॥

---

12 मणिक। 13 ...मिवाशुगम्।

चारुकर्णयुग्मां कान्तां त्रिगम्भीरां षडुन्नताम्।
दृष्ट्वा धाता समुत्थाय चिन्तयामास हृद्गतम्॥ ३९॥

दक्षादयस्ते स्रष्टारो मरीच्याद्यास्तु मानसाः।
दध्युः समुत्सुकाः सर्वे तां दृष्ट्वा वरवर्णिनीम्॥ ४०॥

किं कर्मास्या भवेत् सृष्टौ कस्य वा वरवर्णिनी।
भविष्यतीति ते सर्वे चिन्तयामासुरुत्सुकाः॥ ४१॥

एवं चिन्तयतस्तस्य ब्रह्मणो मुनिसत्तमाः।
मनसः पुरुषो वल्गुराविर्भूतो विनिसृताः॥ ४२॥

काञ्चनीचूर्णपीताभः पीनोरस्कः सुनासिकः।
सुवृत्तोरुकटीजंघो नीलवेष्टितकेशरः[14]।
लग्नभ्रू युगलो लोलः पूर्णचन्द्रनिभाननः॥ ४३॥

कपाटविस्तीर्णहृदि रोमराजिविराजितः।
शुभ्रमातङ्गकरवत् पीननिस्तलबाहुकः।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भवः॥ ४४॥

क्षीणमध्यश्चारुदन्तः प्रमत्तगजकन्धरः[15]।
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षः केशरघ्राणतर्पणः।
कम्बुग्रीवो मीनकेतुः[16] प्रांशुर्मकरवाहनः॥ ४५॥

पञ्चपुष्पायुधो वेगी पुष्पकोदण्डमण्डितः।
कान्तः कटाक्षपातेन भ्रामयन्नयनद्वयम्॥ ४६॥

सुगन्धि-मरुता[17] भ्रान्तं श्रृंगाररससेवितम्।
तं वीक्ष्य तादृशं दक्षप्रमुखा मानसाश्च ते॥ ४७॥

मरीच्याद्या दश ततो विस्मयाविष्टचेतसः।
औत्सुक्यं परमं जग्मुरापुर्नैकारिकं मनः॥ ४८॥

---

14 वेल्लितकंधरः। 15 बन्धनः। 16 नीलकेतुः। 17 मारुतप्रान्तं।

स चापि वेधसं वीक्ष्य स्रष्टारं जगतां पतिम्।
प्रणम्य पुरुषः प्राह विनयानतकन्धरः॥ ४९॥

पुरुष उवाच

किं करिष्याम्यहं कर्म ब्रह्मंस्तत्र नियोजय।
मां[18] न्याय्ये पुरुषो यस्मादुचिते शोभते विधे॥ ५०॥

अभिधानं च यद्योग्यं स्थानं पत्नी च या मम।
तन्मे कुरुष्व लोकेश त्वं स्रष्टा जगतां यतः॥ ५१॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं तस्य वचः श्रुत्वा पुरुषस्य महात्मनः।
क्षणं न किंचित् प्रोवाच स्वसृष्टावपि विस्मितः॥ ५२॥

ततो मनः सुसंयम्य सम्यगुत्सृज्य विस्मयम्।
उवाच पुरुषं ब्रह्मा तत्कर्मोद्दिशमावहन्॥ ५३॥

ब्रह्मोवाच

अनेन चारुरूपेण पुष्पबाणैश्च पञ्चभिः।
मोहयन् पुरुषांस्त्रीश्च कुरु सृष्टिं सनातनीम्॥ ५४॥

न देवो न च गन्धर्वो न किन्नर-महोरगाः।
नासुरो न च दैत्यो वा न विद्याधर-राक्षसा॥ ५५॥

न यक्षा न पिशाचाश्च न भूता न विनायकाः।
न गुह्यका न वा सिद्धा न मनुष्या न पक्षिणः॥ ५६॥

पशवो न मृगाः कीट-पतङ्गाजलजाश्च ये।
न ते सर्वे भविष्यन्ति न लक्ष्या ये शरस्य ते॥ ५७॥

---

18 मां न्यस्येत् पुरुषो यस्मात् उचिते शोभिते विधौ।

अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तमः।
भविष्यामस्तव वशे किमन्यैः प्राणधारिभिः॥ ५८॥

प्रच्छन्नरूपी जन्तूनां प्रविशन् हृदयं सदा।
सुखहेतुः स्वयं भूत्वा कुरु सृष्टिं सनातनीम्॥ ५९॥

त्वत् पुष्पबाणस्य सदा मुख्यं लक्ष्यं मनोऽस्तु तत्।
सर्वेषां प्राणिनां नित्यं मदमोदकरो भवान्॥ ६०॥

इति ते कर्म कथितं सृष्टि-प्रावर्तकं पुनः।
नामापि च गदिष्यामि यत्ते योग्यं भविष्यति॥ ६१॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वाथ च सुरश्रेष्ठो मानसानां मुखानि च।
आलोक्य स्वासने पद्मे सूपविष्टोऽभवत् क्षणात्॥ ६२॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामप्रादुर्भावो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते मुनयः सर्वे तदभिप्रायवेदिनः।
चक्रुस्तदुचितं नाम मरीच्यत्रिमुखास्तदा॥ १॥

मुखावलोकनादेव ज्ञात्वा वृत्तान्तमन्यतः।
दक्षादयस्तु स्रष्टारः स्थानं पत्नीश्च ते ददुः॥ २॥

ततो निश्चित्य नामानि मरीचिप्रमुखाद्विजाः।
ऊचुः संगतमेतस्मै पुरुषाय द्विजोत्तमाः॥ ३॥

ऋषय ऊचुः

यस्मात् प्रमथ्य चेतस्त्वं जातोऽस्माकं तथा विधेः।
तस्मान्मन्मथनाम्ना त्वं लोके ख्यातो[19] भविष्यसि ॥ ४ ॥

जगत्सु कामरूपस्त्वं त्वत्समो नहि विद्यते।
अतस्त्वं काम नाम्नापि ख्यातो भव मनोभव ॥ ५ ॥

मदनान्मदनाख्यस्त्वं शम्भोर्दर्पाच्च दर्पकः।
तथा कन्दर्प नाम्नापि लोके ख्यातो भविष्यति ॥ ६ ॥

त्वदाशुगानां यद्वीर्यं तद्वीर्यं न भविष्यति।
वैष्णवानाञ्च रौद्राणां ब्रह्मास्त्राणाञ्च[20] तादृशम् ॥ ७ ॥

स्वर्गे[21] मर्त्त्ये च पाताले ब्रह्मलोके सनातने।
तव स्थानानि सर्वाणि सर्वव्यापि भवान् यतः।
किं वाचातिविशेषेण सामान्ये नास्ति ते समः ॥ ८ ॥

यत्र यत्र भवेत् प्राणी शाद्वलास्तरवोऽथवा[22]।
तत्र तत्र तव स्थानमस्त्वाब्रह्मसदोदयम् ॥ ९ ॥

दक्षोऽयं भवतः पत्नीं स्वयं दास्यति शोभनाम्।
आद्यः प्रजापतिर्यो हि यथेष्टं पुरुषोत्तम ॥ १० ॥

एषा च कन्यका चारुरूपा ब्रह्ममनोभवा।
सन्ध्यानामेति विख्याता सर्वे लोके भविष्यति ॥ ११ ॥

ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात् सम्यग्जाता वराङ्गना।
अतः सन्ध्येति लोकेऽस्मिन्नस्याः ख्यातिर्भविष्यति ॥ १२ ॥

---

19 ज्ञेयो। 20 यक्षाणां न च तादृशम्। 21 स्वर्गमर्त्यञ्च पातालः ब्रह्मलोकः सनातनः। 22 शार्दुलाः···

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे तूष्णीं तस्थुर्द्विजोत्तमाः।
अवेक्ष्य ब्रह्मवदनं विनयावनताः पुरः॥ १३॥

ततः कामोऽपि कोदंडमादाय कुसुमोद्भवम्।
उन्मादनेति विख्यातं कान्ताभ्रू तुल्य-वेल्लितम्॥ १४॥

कौसुमानि तथास्त्राणि पञ्चादाय द्विजोत्तमाः।
हर्षणं रोचनाख्यञ्च मोहनं शोषणं तथा॥ १५॥

मारणञ्चेति संज्ञाभिर्मुनिमोहकराण्यपि।
प्रच्छन्नरूपी तत्रैव चिन्तयामास निश्चयम्॥ १६॥

ब्रह्मणा मम यत्कार्यं समुद्दिष्टं सदातनम्।
तदिहैव करिष्यामि मुनीनां सन्निधौ विधेः॥ १७॥

तिष्ठन्ति मुनयश्चात्र स्वयञ्चापि प्रजापतिः।
एषा सन्ध्या वरस्त्री च दक्षोऽप्यत्र प्रजापतिः॥ १८॥

एते शरव्यभूता मे भविष्यन्त्यद्य निश्चयम्।
सन्ध्यापि ब्रह्मणा प्रोक्तमिदानीमेव यद्वचः॥ १९॥

अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशर्तिनः।
किमन्यैर्जन्तुभिरिति तत्सार्थं करवाण्यहम्॥ २०॥

मार्कण्डेय उवाच

इति सञ्चिन्त्यमनसा निश्चित्य च मनोभवः।
पुष्पज्यां पुष्पचापस्य योजयामास मार्गणैः॥ २१॥

आलीढस्थानमासाद्य धनुराकृष्य यत्नतः।
चकार वलयाकारं कामो धन्विवरस्तदा॥ २२॥

संहिते तेन कोदण्डे मारुताश्च सुगन्धयः।
ववुस्तत्र मुनिश्रेष्ठाः सम्यगाह्लादकारिणः॥ २३॥

ततस्तानथ धात्रादीन् सर्वानेव च मानसान्।
पृथक् पृथक् पुष्पशरैर्मोहयामास मोहनः॥ २४॥

ततस्ते मुनयः सर्वे मोहिताश्चतुराननः।
मोहितो मनसा किंचिद्विकारं प्रापुरादितः॥ २५॥

सन्ध्यां सर्वे निरीक्षन्तः सविकाराः मुहुर्मुहुः।
आसन् प्रवृद्धमदनाः स्त्री यस्मान्मदवर्द्धिनी॥ २६॥

ततः सर्वान् स मदनो मोहयित्वा पुनः पुनः।
यथेन्द्रियविकारांस्ते[23] प्रापुस्तानकरोत्तथा[24]॥ २७॥

उदीरितेन्द्रियो धाता वीक्षाञ्चक्रे यदाथ ताम्।
तदैव ह्यूनपञ्चाशद्भावा जाताः शरीरतः॥ २८॥

विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुःषष्टिकलास्तथा।
कन्दर्पशरविद्धायाः सन्ध्याया अभवन् द्विजाः॥ २९॥

सापि तैर्वीक्ष्यमाणाथ कन्दर्पशरपातजान्।
चक्रे मुहुर्मुहुर्भावान् कटाक्षावरणादिकान्॥ ३०॥

निसर्गसुन्दरी सन्ध्या तान् भावान् मदनोद्भवान्।
कुर्वन्त्यतितरां रेजे स्वर्णदीव तनूर्मिभिः॥ ३१॥

अथ भावयुतां सन्ध्यां वीक्षमाणः प्रजापतिः।
घर्म्माम्भः पूरिततनुरभिलाषमथाकरोत्॥ ३२॥

ततस्ते मुनयः सर्वे मरीच्यत्रिमुखा अपि।
दक्षाद्याश्च द्विजश्रेष्ठाः प्रापुर्वैकारिकेन्द्रियम्॥ ३३॥

दृष्ट्वा तथाविधान् दक्ष मरीचिप्रमुखान् विधिम्।
सन्ध्याञ्च कर्मणि निजे श्रद्दधे मदनस्तदा॥ ३४॥

---

23 यदेन्द्रियविकारांस्ते। 24 तदा।

यदिदं ब्रह्मणा कर्म ममोद्दिष्टं मयापि तत् ।
कर्तुं शक्यमिति श्रद्धाभावितात्माभवत्तदा ॥ ३५ ॥

ततो वियद्गतः शम्भुर्विधिं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
सदक्षान्मानसांश्चापि जहासोपजहास च ॥ ३६ ॥

ससाधुवादं तान् सर्वान् विहस्य च पुनः पुनः ।
उवाचेदं द्विजश्रेष्ठा लज्जयंस्तान् वृषध्वजः ॥ ३७ ॥

ईश्वर उवाच

अहो ब्रह्मंस्तव कथं कामभावः समुद्गतः ।
दृष्ट्वा स्वतनयां नैतद्योग्यं वेदानुसारिणाम् ॥ ३८ ॥

यथा माता तथा जामिर्यथा जामिस्तथा सुता ।
एष वै वेदमार्गस्य निश्चयस्त्वन्मुखोत्थितः ।
कथन्तु काममात्रेण तत्ते विस्मारितं विधे[25] ॥ ३९ ॥

धैर्ये जगदिदं ब्रह्मन् समस्तं चतुरानन ।
कथं क्षुद्रेण कामेन तत्ते विघटितं विधे ॥ ४० ॥

एकान्तयोगिनः कस्मात् सर्वदा दिव्यदर्शनाः[26] ।
कथं दक्षमरीच्याद्या लोलुपाः स्त्रीषु मानसाः ॥ ४१ ॥

कथं कामोऽपि मन्दात्मा प्राप्तकर्माधुनैव तु ।
युष्मान् शरव्यान् कृतवानकालज्ञोऽल्पचेतनः[27] ॥ ४२ ॥

धिगस्तु तं मुनिश्रेष्ठ यस्य कान्ताजनो हठाद् ।
धैर्यमाकृष्य लौल्येषु मज्जयत्यपि तन्मनः ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा लोकेशो गिरिशस्य च ।
व्रीडया द्विगुणीभूतस्वेदार्द्रो ह्यभवत् क्षणात् ॥ ४४ ॥

---

25 मनः । 26 दिग्दर्शिनः । 27 अल्पचेतसः ।

ततो निगृह्यैन्द्रियकं विकारं चतुराननः।
जिघृक्षुरपि तत्याज तां सन्ध्यां कामरूपिणीम्॥ ४५॥

तच्छरीरात्तु घर्माम्भो यत् पपात द्विजोत्तमाः।
अग्निष्वात्ता वर्हिषदो जाताः पितृगणास्ततः॥ ४६॥

भिन्नाञ्जननिभाः सर्वे फुल्लराजीवलोचनाः।
नितान्त-यतयः पुण्याः संसारविमुखाः पराः॥ ४७॥

सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः।
षडशीतिसहस्राणि तथा वर्हिषदो द्विजाः॥ ४८॥

घर्माम्भः पतितं भूमौ यद्दक्षस्य शरीरतः।
समस्तगुणसम्पन्ना तस्माज्जाता वराङ्गना॥ ४६॥

तन्वंगी तनुमध्या च तनुरोमावली शुभा।
मृद्वंगी चारुदशना तप्तकाञ्चनसुप्रभा॥ ५०॥

मरीचिप्रमुखैः षड्भिर्निगृहीतेन्द्रियक्रिया।
ऋते क्रतुं वशिष्ठञ्च पुलस्त्याङ्गिरसौ तदा॥ ५१॥

क्रत्वादीनां चतुर्णाञ्च यो भूमौ निपपात ह।
ततः पितृगणा जाता अपरे द्विजसत्तमाः॥ ५२॥

सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिनः।
हविर्भुजस्तु ते सर्वे कव्यवाहाः प्रकीर्तिताः॥ ५३॥

क्रतोस्तु सोमपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः।
आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः॥ ५४॥

जातेषु तेषु विप्रेन्द्रा अग्निष्वात्तादिकेष्वथ।
लोकानां पितृवर्गेषु कव्यवाहाः[28] समन्ततः॥ ५५॥

---

28 क्व्यावात् सु।

सर्वेषामेव भूतानां ब्रह्मा भूतः पितामहः।
सन्ध्या पितृप्रसूर्भूता तदुद्देशाद्‌यतोऽभवत् ॥ ५६ ॥

अथ शङ्करवाक्येन लज्जितः स पितामहः।
कन्दर्पाय चुकोपाशु भ्रूकुटीकुटिलाननः ॥ ५७ ॥

पुरैव तदभिप्रायं विदित्वा सोऽपि मन्मथः।
स्वबाणान् सञ्जहाराशु[29] भीतः पशुपतेर्विधेः ॥ ५८ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो ब्रह्मा लोक-पितामहः।
यच्चकार द्विजेन्द्रास्तच्छ्रुणुध्वं सुसमाहिताः ॥ ५६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे ब्रह्मामोहनो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततः कोपसमाविष्टः[30] पद्मयोनिर्जगत्पतिः।
प्रजज्वालातिबलवद्दिधक्षुरिव पावकः ॥ १ ॥

उवाच चेश्वरं कामो भवतः पुरतो यतः।
पुष्पेषुभिर्मामभजत् तत्फलस्याप्नुयाद्धर ॥ २ ॥

तव नेत्राग्निनिर्दग्धः कन्दर्पो दर्पमोहितः।
भविष्यति महादेव कृत्वा कर्मातिदुष्करम् ॥ ३ ॥

इति वेधाः स्वयं कामं शशाप द्विजसत्तमाः।
समक्षं व्योमकेशस्य मुनीनाञ्च यतात्मनाम्[31] ॥ ४ ॥

अथ भीतो रतिपतिस्तत्क्षणात् त्यक्तमार्गणः।
प्रादुर्बभूव प्रत्यक्षं शापं श्रुत्वातिदारुणम् ॥ ५ ॥

---

29 शरासनं जहाराशु। 30 कोपसमायुक्तः। 31 महात्मना।

उवाच चेदं ब्रह्माणं सदक्षं समरीचिकम् ।
तथ्यश्च गद्गदं भीत्या भीतिर्हि गुणहानिकृत् ॥ ६ ॥

मन्मथ उवाच

ब्रह्मन् किमर्थं भवता शप्तोऽहमतिदारुणम् ।
अनागस्तव[32] लोकेश न्यायमार्गानुसारिणः ॥ ७ ॥

त्वयैवोक्तन्तु तत्[33] कर्म यत्तु कुर्यामहं विभो ।
तत्र योग्यो न शापो मे यतो नान्यन्मया कृतम् ॥ ८ ॥

अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सर्वे त्वच्छरगोचराः ।
इति यद्भवता प्रोक्तं तन्मयापि परीक्षितम् ॥ ९ ॥

नापराधो ममास्त्यत्र ब्रह्मन् मयि निरागसि ।
दारुणं शमयस्वैनं शापं मम जगत्पते ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा विधाता जगतां पतिः ।
प्रत्युवाच यतात्मानं मदनं सदयं मुहुः ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

आत्मजा मम सन्ध्येयं यस्मादेतत्सकाशतः[34] ।
लक्ष्यीकृतोऽहं भवता ततः शापो मया कृतः ॥ १२ ॥

अधुना शान्तरोषोऽहं त्वां वदामि मनोभव ।
भवतः शापशमनं भविष्यति यथा तथा ॥ १३ ॥

त्वं भस्म भूत्वा मदन भर्गलोचनवह्निना ।
तस्यैवानुग्रहात् पश्चाच्छरीरं समवाप्स्यसि ॥ १४ ॥

---

32 अनागस्तव······सारतः । 33 यत् कर्म तत् तत् । 34 सकामतः ।

यदा हरो महादेवः कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।
तदा स एव भवतः शरीरं प्रापयिष्यति ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वाथ मदनं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अन्तर्दधे मुनीन्द्राणां मानसानाञ्च पश्यताम् ॥ १६ ॥

तस्मिन्नन्तर्हिते शम्भुः सर्वेषाञ्च विधातरि ।
यथेष्टदेशं गतवान् ब्रह्मा मारुतरंहसा ॥ १७ ॥

वेधस्यन्तर्हिते तस्मिन् गते शम्भौ निजास्पदम् ।
दक्षः प्राहाथ कन्दर्पं पत्नीं तस्य निदर्शयन् ॥ १८ ॥

दक्ष उवाच

मद्देहजेयं कन्दर्प मद्रूप-गुणसंयुता[35] ।
एनां गृह्णीष्व भार्यार्थं भवतः सदृशीं गुणैः ॥ १९ ॥

एषा तव महातेजाः[36] सर्वदा सहचारिणी ।
भविष्यति यथाकामं धर्मतो वशवर्तिनी ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ दक्षो देहस्वेदाम्बुसम्भवाम्[37] ।
कन्दर्पायाग्रतः कृत्वा नाम कृत्वा रतीति[38] ताम् ॥ २१ ॥

तां वीक्ष्य मदनो रामां रत्याख्यां सुमनोहराम् ।
आत्माशुगेन विद्धोऽसौ मुमोह रतिरञ्जितः ॥ २२ ॥

क्षणप्रभावदेकान्तगौरी मृगदृशी सदा ।
लोलापांग्यथ तस्यैव मृगीव सदृशी बभौ ॥ २३ ॥

---

35 मद्रूपगुणशालिनी । 36 महाभागा । 37 देहस्वेदात् समुद्भवा ।
38 रतिं तु ।

तस्या भ्रूयुगलं वीक्ष्य संशयं मदनोऽकरोत् ।
उन्मादकृन्मे[39] कोदण्डं कि[40] धात्रा स्यान्निवेशितम् ॥ २४ ॥

कटाक्षाणामाशुगतिं दृष्ट्वा तस्या द्विजोत्तमाः ।
आशुगत्वं निजास्त्राणां श्रद्दधे न च चारुताम् ॥ २५ ॥

तस्याः स्वभावसुरभि धीरं श्वासानिलं तथा ।
आघ्राय मदनः श्रद्धां त्यक्तवान् मलयानिले ॥ २६ ॥

पूर्णेन्दुसदृशं वक्त्रं दृष्ट्वा भ्रूलक्ष्मलक्षितम्[41] ।
न निश्चिकाय मदनो भेदं तन्मुखचन्द्रयोः ॥ २७ ॥

सुवर्णपद्मकलिकातुल्यं तस्याः कुचद्वयम् ।
रेजे चुचुकयुग्मेन भ्रमरेणेव सेवितम् ॥ २८ ॥

दृढपीनोन्नतघन-स्तनमध्याद्विलम्बिनीम् ।
आ नाभितो रोमराजिं[42] तन्वीं चार्वायतां शुभाम् ॥ २९ ॥

ज्यां पुष्पधनुषः कामः षट्पदावलिसम्भृताम्[43] ।
विसस्मार च यस्मात्तां विगृह्यैनां[44] निरीक्षते ॥ ३० ॥

गम्भीरनाभिरन्ध्रान्तश्चतुष्पार्श्वत्वगावृताम् ।
आननाब्जेक्षणद्वन्द्वमारक्तकमलं यथा ॥ ३१ ॥

क्षीणामध्येन वपुषा निसर्गाष्टपदप्रभा ।
रत्नवेदीव[45] ददृशे कामेन द्विजसत्तमाः ॥ ३२ ॥

रम्भास्तम्भायतस्निग्धं तदुरुयुगलं मृदु ।
निजशक्तिसमं कामो वीक्षाञ्चक्रे मनोहरम् ॥ ३३ ॥

आरक्तपार्ष्णिपादाग्रप्रान्तभागं पदद्वयम् ।
अनुरागमयं चित्रं स्थितं तस्यां मनोभवः ॥ ३४ ॥

---

39 उन्मादनं मत् । 40 किं त्वस्त्वस्यां । 41 भ्रूयुगं ।
42 आनाभितोरोमवीथिं । 43 रञ्जितां । 44 विसृज्येनां । 45 रुक्म··· ।

तस्याः करयुगं रक्तनखरैः किंशुकोपमैः।
वृत्ताभिरङ्गुलिभिश्च सूक्ष्माग्राभिर्मनोहरम्॥ ३५॥
इति दृष्ट्वा स्मरो मेने[46] ममास्त्रैर्द्विगुणीकृतैः।
मां मोहयितुमुतिद्यक्ता किमेषा द्विजसत्तमाः॥ ३६॥
तद्बाहुयुगलं कान्तं मृणालयुगलायतम्।
मृदुस्निग्धं रराजातिकान्ति-तोयप्रवाहवत्॥ ३७॥
नीलनीरदसङ्काशः केशपाशो मनोहरः।
चमरीबालभारवद्विभाति स्म स्मरप्रियः॥ ३८॥
तां वीक्ष्य मदनो देवीं रतिमतिमनोहराम्।
कान्तितोयौघसम्पूर्णां कुचवक्त्राब्जकुड्मलाम्[47]॥ ३९॥
वक्त्रपद्मां चारुबाहु-मृणालीशकलान्विताम्।
भ्रू युग्मविभ्रमद्व्रात-तनूर्मिपरिराजिताम्[48]॥ ४०॥
कटाक्षपातभृङ्गौघां[49] नेत्रनीलोत्पलान्विताम्।
तनुलोमालिशैवालां मनोद्रुमविशातिनीम्॥ ४१॥
निम्ननाभिह्रदां दक्षप्रालेयाद्रिसमुद्भवाम्।
गङ्गामिव महादेवो जग्राहोत्फुल्ललोचनः॥ ४२॥
उवाच च तदा दक्षं कामो मोदभरान्वितः[50]।
विस्मृत्य शापञ्च तदा विधिदत्तं सुदारुणम्॥ ४३॥

मदन उवाच

अनया सहचारिण्या सम्यक् सुन्दररूपया।
समर्थोमोहितुं शम्भुं किमन्यैर्जन्तुभिर्विभो॥ ४४॥
यत्र यत्र मया लक्ष्यं क्रियते धनुषोऽनघ।
तत्रानयापि चेष्टव्यं[51] मायया रमणाह्वया॥ ४५॥

---

46 रेमे। 47 कुचरक्ताब्ज···। 48 परिवारिताम्। 49 तुङ्गौघां।
50 मोदभराननः। 51 द्रष्टव्यं।

यदा देवालयं यामि पृथिवीं वा रसातलत्।
तदैषाप्यस्तु सध्रीची सर्वदा चारुहसिनी ॥ ४६ ॥
यथा पद्मालया विष्णोर्जलदानां यथा तडित्।
तथा ममैषा भविता प्रजाध्यक्षसहायिनी ॥ ४७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा मदनो देवीं रतिं जग्राह सोत्सुकः।
सागरादुत्थितां लक्ष्मीं हृषीकेश इवोत्तमाम् ॥ ४८ ॥
रराज स तया सार्द्धं भिन्नपीतप्रभः स्मरः।
जीमूत इव सन्ध्यायां सौदामिन्या मनोज्ञया ॥ ४९ ॥
इति रतिपतिरुच्चैर्मोदयुक्तो रतिं तां
हृदि परिजगृहे यां योगदर्शीव विद्याम्।
रतिरपि पतिमग्र्यं प्राप्य तोषञ्च लेभे
हरिमिव कमलोत्था पूर्णचन्द्रोपमास्या ॥ ५० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे रत्युत्पत्तौ तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रभृति धातापि यदैवान्तर्हितः पुरा।
चिन्तयामास सततं शम्भुवाक्यविषार्दितः ॥ १ ॥
कान्ताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत्।
मुनीनां पुरतः कस्मात् स दारान् संग्रहीष्यति ॥ २ ॥
का वा भवित्री तज्जाया का[52] च तन्मनसि स्थिता।
योगमार्गमवष्टभ्य[53] तस्य मोहं करिष्यति ॥ ३ ॥

52 या। 53 अवज्ञाप्य।

मन्मथोऽपि समर्थो नो भविष्यत्यस्य मोहने।
नितान्तयोगी रामाणां नामापि सहते न सः॥ ४॥
अगृहीतेषु दारेषु हरेण कथमादितः।
मध्येऽन्ते[54] च भवेत् सृष्टिस्तद्बधो[55] न न्यकारितः॥ ५॥
केचिद्भविष्यन्ति भुवि मया बाध्या महाबलाः।
केचिद्विष्णोर्वारणीयाः केचिच्छम्भोरुपायतः॥ ६॥
संसारविमुखे शम्भौ तथैकान्तविरागिणि।
अस्मादृते न कर्मान्यत् करिष्यति न संशयः॥ ७॥
चिन्तयिन्निति लोकेशो ब्रह्मा लोकपितामहः।
पुनर्ददर्श भूमिष्ठान् दक्षादीन वियति स्थितः॥ ८॥
रतिद्वितीयं मदनं मोदयुक्तं निरीक्ष्य च।
पुनस्तत्र गतः प्राह सान्त्वयन् पुष्पसायकम्॥ ९॥

ब्रह्मोवाच

अनया सहचारिण्या राजसे त्वं मनोभव।
एषा च भवता पत्या युक्ता संशोभते भृशम्॥ १०॥
यथा श्रिया हृषीकेशो यथा तेन हरिप्रिया।
क्षणदा विधुना युक्ता तया युक्तो यथा विधुः॥ ११॥
तथैव युवयोः शोभा दाम्पत्यञ्च पुरस्कृतम्।
अतस्त्वं जगतः केतुर्विश्वकेतुर्भविष्यसि॥ १२॥
जगद्धिताय वत्स त्वं मोहयस्व पिणाकिनम्।
यथा सुखमनाः[57] शम्भुः कुर्य्याद्दारपरिग्रहम्॥ १३॥
विजने स्निग्धदेशे च पर्वतेषु सरित्सु च।
यत्र यत्र प्रयातीशस्तत्र तत्रानया सह॥ १४॥
मोहयस्व यतात्मानं वनिताविमुखं हरम्।
त्वदृते विद्यते नान्यः कश्चिदस्य विमोहकः॥ १५॥

---

54 मध्ये चैव। 55 सृष्टिस्तद्बाधानन्यवारिता। 56 बाधनीयाः।
57 सर्गमनाः।

भूते हरे सानुरागे भवतोऽपि मनोभव।
शापोपशान्तिर्भविता तस्मादात्महितं कुरु॥ १६ ॥
सानुरागो वरारोहां यदीच्छति मनोभव[58]।
तदा तवोपभोगाय[59] स त्वां सम्भावयिष्यति॥ १७॥
तस्माज्जगद्धिताय त्वं यतस्व हरमोहने।
शिवस्य भव केतुस्त्वं मोहयित्वा महेश्वरम्॥ १८॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
उवाच मन्मथस्तथ्यं ब्रह्माणं जगतो हितम्॥ १९ ।

मन्मथ उवाच

करिष्येऽहं तव विभो वचनाच्छम्भुमोहनम्[60]।
किन्तु योषिन्महास्त्रं मे तत्र[61] कान्तां प्रभो[62] सृज॥ २०॥
मया सन्मोहिते शम्भौ यया तस्यानुमोहनम्।
कार्यं मनोरमां रामां तां निदेशय लोकभृत्[63]॥ २१॥
तामहं नहि पश्यामि यया तस्यानुमोहनम्।
कर्तव्यमधुना धातस्तत्रोपायं तथा कुरु॥ २२॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं वादिनि कन्दर्पे धाता लोकपितामहः।
कुर्यां सन्मोहनीं योषामिति चिन्तां जगाम ह॥ २३॥
चिन्ताविष्टस्य तस्याथ निःश्वासो यो विनिःसृतः।
तस्माद्वसन्तः संजातः पुष्पव्रातविभूषितः॥ २४॥
चूताङ्कुरान्[64] मुकुलितान् बिभ्रद्भ्रमरसंहतिम्।
किंशुकान् सारसान् रेजे प्रफुल्ल इव पादपः॥ २५॥

---

58 महेश्वरः। 59 भवोपयोगाय। 60 हरमोहनम्। 61 ततः। 62 मायां। 63 लोकसृट्। 64 चुताङ्क राम्रकलिकां।

शोणराजीवसंकाशः फुल्लतामरसेक्षणः ।
सन्ध्योदिताखण्डशशिप्रतिमास्यः सुनासिकः ॥ २६ ॥
शंखवच्छ्रवणावर्तः श्यामकुञ्चितमूर्द्धजः ।
सन्ध्यांशुमालिसदृश-कुंडलद्वयमंडितः ॥ २७ ॥
प्रमत्तमा[65]तङ्गगतिर्विस्तीर्णहृदयस्तलः ।
पीनस्थूलायतभुजः कठोरकरयुग्मकः ॥ २८ ॥
सुवृत्तोरुकटीजंघः कम्बुग्रीवोन्नतांसकः ।
गूढजत्रुः पीनवक्षाः सम्पूर्णः सर्वलक्षणैः ॥ २६ ॥
तादृशेऽथ समुत्पन्ने सम्पूर्णे कुसुमाकरे ।
ववौ वायुः स-सुरभिः पादपा अपि पुष्पिताः ॥ ३० ॥
पिकाश्च नेदुः शतशः[66] पञ्चमं मधुरस्वराः ।
प्रफुल्लपद्मा अभवन् सरस्यः पुष्टपुष्कराः[67] ॥ ३१ ॥
तमुत्पन्नमवेक्ष्याथ तथा तादृसमुत्तमम् ।
हिरण्यगर्भो मदनं जगाद मधुरं[68] वचः ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच

एष मन्मथ ते मित्रं सदा सहचरो भवेत् ।
आनुकूल्यं तव कृते सर्वदैव करिष्यति ॥ ३३ ॥
यथाग्नेः श्वसनो मित्रं सर्वत्रोपकरोति च ।
तथायं भवतो मित्रं सदा त्वामनुयास्यति ॥ ३४ ॥
वसतेरन्तहेतुत्वाद्वसन्ताख्यो भवत्वयम् ।
तवानुगमनं कर्म तथा लोकानुरञ्जनम् ॥ ३५ ॥
असौ वसन्तः शृंगारो वसन्ते मलयानिलः ।
भवन्तु सुहृदो भावाः सदा त्वद्वशवर्तिनः ॥ ३६ ॥
विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुःषष्टिकलास्तथा ।
कुर्वन्तु रत्याः सौहृद्यं सुहृदस्ते यथा तव ॥ ३७ ॥

---

65 प्रमत्तवारण ·····66 सततं । 67 स्वच्छपुष्कराः । 68 मधुरस्वरः ।

एभिः सहचरैः काम वसन्तप्रमुखैर्भवान् ।
अनया सहचारिण्या त्वद्युक्तपरिवारया ॥ ३८ ॥
मोहयस्व महादेवं कुरु सृष्टिं सनातनीम् ।
यथेष्टदेशं गच्छ त्वं सर्वैः सहचरैर्वृतः ।
अहं तां भावयिष्यामि यो हरं मोहयिष्यति ॥ ३९ ॥
एवमुक्तोऽथ मदनः सुरज्येष्ठेन हर्षितः ।
जगाम[69] सगणस्तत्र सपत्न्यनुचरस्तदा ॥ ४० ॥
दक्षं प्रणम्य तान् सर्वान् मानसानभिवाद्य च ।
यत्रास्ति शम्भुर्गतवांस्तत्स्थानं[70] मन्मथस्तदा ॥ ४१ ॥

तस्मिन् गते सानुचरेऽथ मन्मथे
श्रृंगारभावादियुते द्विजोत्तमाः ।
प्रोवाच दक्षं मधुरं पितामहः
सार्द्धं मरीच्यत्रिमुखैर्मुनीश्वरः ॥ ४२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वसन्तोत्पत्तौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्मा तदोवाच दक्षाय सुमहात्मने ।
मरीचिप्रमुखेभ्यश्च वचनञ्चेदमञ्जसा ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

भवित्री शम्भुपत्नी का का तं सन्मोहयिष्यति ।
इति सञ्चिन्तयन् कान्तां न स्थिरीकर्तुमुत्सहे ॥ २ ॥

---

69 ननाम चरणौ तस्य । 70 शम्भुस्तत्स्थानं मन्मथोगतवान् तदा ।

विष्णुमायामृते दक्ष महामायां जगन्मयीम् ।
नान्या तन्मोहकर्त्री स्यात् सन्ध्यासावित्र्युमामृते[71] ॥ ३ ॥
तस्मादहं विष्णुमायां योगनिद्रां जगत्प्रसूम् ।
स्तौमि सा चारुरूपेण शंकरं मोहयिष्यति ॥ ४ ॥
भवांस्तु दक्ष तामेव यजतां विश्वरूपिणीम् ।
यथा तव सुता भूत्वा हरजाया भविष्यति ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं वचनमाकर्ण्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
उवाच दक्षः स्रष्टारं मरीच्यादिभिरीरितः ॥ ६ ॥

दक्ष उवाच

यथात्थ भगवंस्तथ्यं त्वं लोकेश जगद्धितम् ।
तत् करिष्यामहे सम्यग् यथा स्यात्तन्मनोहरा ॥ ७ ॥
तथा तथा भविष्यामि यथा मम सुता स्वयम् ।
विष्णुमाया भवेत् पत्नी भूत्वा शम्भोर्महात्मनः ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एपमेवेति तैरुक्तं मरीचिप्रमुखैस्तदा ।
यष्टुं दक्षः समारेभे महामायां[72] जगन्मयीम् ॥ ९ ॥
क्षीरोदोत्तरतीरस्थस्तां कृत्वा हृदयस्थिताम् ।
तपस्तप्तुं समारेभे द्रष्टुं प्रत्यक्षतोऽम्बिकाम् ॥ १० ॥
दीव्यवर्षेण दक्षोऽपि सहस्राणां त्रयः[73] समाः ।
तपश्चचार नियतः संयतात्मा दृढव्रतः ॥ ११ ॥
मारुताशी निराहारो जलाहारी च पर्णभुक् ।
एवं निनाय तत्कालं चिन्तयंस्तां जगन्मयीम् ॥ १२ ॥

---

71 सावित्र्युपासिता। 72 विष्णुमायां। 73 त्रयं।

गते दक्षे तपः कर्तुं[74] ब्रह्मा सर्वजगत्पतिः ।
जगाम मन्दराभ्यासं पुण्यात्पुण्यतरं[75] वरम् ॥ १३ ॥
तत्र गत्वा जगद्धात्रीं विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
तुष्टाव वाग्भिरर्थ्याभिरेकतानं[76] शतं समाः ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच

विद्याविद्यात्मिकां शुद्धां निरालम्बां निराकुलाम्[77] ।
स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं स्थूलाणीयःस्वरूपिणीम् ॥ १५ ॥
यस्या[78] उदेति च जगत्प्रधानाख्यं जगत्परम्[79] ।
यस्यास्तदंशभूतां[80] त्वां स्तौमि निद्रां सनातनीम् ॥ १६ ॥
त्वं चितिः परमानन्दा परमात्मस्वरूपिणी ।
शक्तिस्त्वं सर्वभूतानां त्वं सर्वेषां च पावनी[81] ॥ १७ ॥
त्वं सावित्री जगद्धात्री त्वं सन्ध्या त्वं रतिर्धृतिः ।
त्वं हि ज्योतिःस्वरूपेण संसारस्य प्रकाशिनी ॥ १८ ॥
तथा तमःस्वरूपेण च्छादयन्ती सदा जगत् ।
त्वमेव सृष्टिरूपेण संसारपरिपूरणी ॥ १९ ॥
स्थितिरूपेण च हरेर्जगतां च हितैषिणी ।
तथैवान्तस्वरूपेण जगतामन्तकारिणी ॥ २० ॥
त्वं मेधा त्वं महामाया त्वं स्वधा पितृमोदिनी ।
त्वं स्वाहा त्वं नमस्कार-वषट्कारौ तथा स्मृतिः ॥ २१ ॥
त्वं पुष्टिस्त्वं[82] धृतिर्मैत्री करुणा मुदिता तथा ।
त्वमेव लज्जा त्वं शान्तिस्त्वं कान्तिर्जगदीश्वरी ॥ २२ ॥
महामाया त्वंच स्वाहा स्वधा च पितृदेवता ।
या सृष्टिशक्तिरस्माकं स्थितिशक्तिश्च या हरेः ॥ २३ ॥

---

74 सर्तुं । 75 पुण्यं पुण्यकरं बहु । 76 वाग्भिरर्थ्याभिरेकतां स तन्मनाः । 77 निरर्गलां । 78 यस्मात् । 79 जगद्भवम् । 80 तस्मात्तदङ्गभूतां । 81 भाविनी । 82 सृष्टिः ।

अन्तशक्तिस्तथैशानी[83] सा त्वं शक्तिः सनातनि ॥ २४ ॥
एका त्वं द्विविधा[84] भूत्वा मोक्षसंसारकारिणी ।
विद्याविद्यास्वरूपेण स्वप्रकाशाप्रकाशतः ॥ २५ ॥
त्वं लक्ष्मीः सर्वभूतानां त्वं छाया त्वं सरस्वती ।
त्रयीमयी त्रिमात्रा[85] त्वं[86] सर्वभूतस्वरूपिणी ॥ २६ ॥
उद्गीतिः सामवेदस्य या पितृगणरञ्जनी ।
त्वं वेदिः सर्वयज्ञानां साम्निधेनी तथा हविः ॥ २७ ॥
यदव्यक्तमनिर्देश्यं निष्कलं परमात्मनः ।
रूपं तथैव[87] तन्मात्रं सकलं च जगन्मयम् ॥ २८ ॥
या मूर्त्तिर्वितता[88] सर्वधरित्री बिभ्रती क्षितिम् ।
सा त्वं विश्वम्भरे लोके शक्तिभूतिप्रदा सदा ॥ २९ ॥
त्वं लक्ष्मीश्चेतना कान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं सनातनी ।
त्वं कालरात्रिस्त्वंमुक्तिः शान्तिः प्रज्ञा तथा स्मृतिः[89] ॥ ३० ॥
संसारसागरोत्तार-तरणिः सुखमोक्षदे[90] ।
प्रसीद सर्वजगतां त्वं गतिस्त्वं मतिः सदा[91] ॥ ३१ ॥
त्वं नित्या त्वमनित्या च त्वं चराचरमोहिनी ।
त्वं सन्धिनी सर्वयोग-सांगोपांगविभाविनी ॥ ३२ ॥
चिन्ता कीर्तिर्यतीनां त्वं त्वं[92] तदष्टांगसंयुता ।
त्वं खड्गिनी शूलिनी च चक्रिणी घोररूपिणी ॥ ३३ ॥
त्वमीश्वरी जनानां त्वं सर्वानुग्रहकारिणी ।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वं विश्वयोनिरयोनिजा ।
अनन्ता सर्वजगतस्त्वमेवैकान्तकारिणी ॥ ३४ ॥
नितान्तनिर्मला त्वं हि तामसीति च गीयसे ।
त्वं हिंसा त्वमहिंसा च त्वं काली चतुरानना ॥ ३५ ॥

---

83 तथैशस्य । 84 त्रिविधा । 85 त्रिमूर्तिः । 86 चतुष्क । 87 तवैव तत् सूक्ष्मं । 88 विस्तृता । 89 धृतिः । 90 भोग्यदे । 91 तथा । 92 दण्डदंष्ट्रांशसंयुता ।

त्वं परा सर्वजननी दमनी दामिनी[93] तथा।
त्वय्येव लीयते विश्वं भाति तत्त्वं तद्बिभर्त्ति च ॥ ३६ ॥
त्वं[94] सृष्टिहीना त्वं सृष्टिस्त्वमकर्णापि सश्रुतिः।
तपस्विनी पाणिपादहीना त्वं[95] नितरां ग्रहा ॥ ३७ ॥
त्वं द्यौस्त्वमापस्त्वं ज्योतिर्वायुस्त्वं च नभो मनः।
अहंकारोऽपि जगतामष्टधा प्रकृतिः कृतिः ॥ ३८ ॥
जगन्नाभिर्मेरुरूपधारिणी नालिकापरा।
परापरात्मिका शुद्धा माया मोहातिकारिणी ॥ ३९ ॥
कारणं कार्यभूतञ्च सत्यं शान्तं शिवाशिवे।
रूपाणि तव विश्वार्थे रागवृक्षफलानि च ॥ ४० ॥
नितान्त ह्रस्वा दीर्घा च नितान्ताणुबृहत्तनुः।
सूक्ष्माप्यखिललोकस्य व्यापिनी त्वं जगन्मयी ॥ ४१ ॥
मानहीना विमानाति-विमानोन्मानसम्भवा।
यदष्टिव्यष्टिसम्भोगरागादिगलिताशया[96]।
तत्ते महिम्नि तद्रूपं तव भ्रान्त्यादिकं च यत् ॥ ४२ ॥
इष्टनिष्टाविपाकज्ञा[97] यथेष्टानिष्टकारणम्।
सर्गादिमध्यान्तमयं निम्नं[98] रूपं तथैव च ॥ ४३ ॥
विचाराष्टाङ्गयोगेन सम्पाद्यैवं मुहुर्मुहुः।
यत् स्थिरीक्रियते तत्त्वं तत्ते रूपं सनातनम् ॥ ४४ ॥
वाह्यावाह्ये सुखं दुःखं ज्ञानाज्ञाने लयालयौ[99]।
उपतापस्तथा शान्तिर्भूतिस्त्वं जगतः पतेः। ४५ ॥
यस्याः प्रभावं नो वक्तुं शक्नोति भुवनत्रये[100]।
तस्यैव सन्मोहकरी सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥ ४६ ॥
योगनिद्रा महानिद्रा मोहनिद्रा जगन्मयी।
विष्णुमाया च प्रकृतिः कस्त्वां स्तुत्या विभावयेत् ॥ ४७ ॥

---

93 यामिनी। 94 त्वं दृष्टिहीना सदृष्टिस्त्वमकर्णातिसद्गतिः।
95 निरताग्रहा। 96 समष्टिव्यष्टिसंयोग ·····। 97 ······विकारज्ञा।
98 कृत्स्नं। 99 नयानयौ। 100 जगतः पतिः।

मम विष्णोः शंकरस्य या[1] वपुर्वहनात्मिका।
तस्याः प्रभावं को वक्तुं गुणान् वेत्तुं च कः क्षमः॥ ४८॥
प्रकाश[2]करणज्योतिःस्वरूपान्तरगोचरा।
त्वमेव जंगमस्थेयरूपैका बाह्यगोचरा॥ ४९॥
प्रसीद सर्वजगतां जननी स्त्रीस्वरूपिणी।
विश्वरूपिणि विश्वेशे प्रसीद त्वं सनातनि॥ ५०॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा विरिञ्चिना।
आविर्बभूव प्रत्यक्षं ब्रह्मणः परमात्मनः॥५१॥
स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपोत्तुङ्गा चतुर्भुजा।
सिंहस्था खड्गनीलाब्जहस्ता मुक्तकचोत्करा॥ ५२॥
समक्षमथ तां वीक्ष्य स्रष्टा सर्वजगद्गुरुः।
भक्त्या विनम्रतुंगांसस्तुष्टाव च ननाम च॥ ५३॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्ति-
निवृत्तिरूपे स्थितिसर्गरूपे।
चराचराणां भवती च शक्तिः
सनातनी सर्वविमोहनीति॥ ५४॥
या श्रीः सदा केशवमूर्त्तिमाया[3]
विश्वम्भरा या सकलं बिभर्त्ति।
ह्रीर्योगिनी[4] या महिता मनोज्ञा
सा त्वं नमस्ते परमात्मसारे[5]॥ ५५॥
यामादिपूर्वे हृदि योगिनो यां
विभावयन्ति प्रमितिप्रतीताम्।

---

1 यावत् प्रस्रवनान्तिके। 2 ......करुणा। 3 ...माला। 4 योगिनां।
5 परमार्थसारे।

प्रकाशशुद्धादियुतां विरागां
सा[6] त्वं हि विद्या विविधावलम्बा ॥ ५६ ॥
कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्य-रूपं[7]
त्वं विभ्रती कालमयं जगन्ति ।
विकारवीजं प्रकरोषि नित्यं
प्रलानि न्यूलान्यथ मध्यमानि ॥ ५७ ॥
सत्त्वं रजोऽथो तम इत्यभीषां
विकारहीना समवस्थितिर्या ।
सा त्वं गुणानां जगदेकहेतु-
र्वाह्यान्तरालं[8] भवतीव याति ॥ ५८ ॥
अशेषजगतां वीजे ज्ञेयज्ञानस्वरूपिणि ।
जगद्धिताय[9] जगतां विष्णुमाये नमोऽस्तुते ॥ ५९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य काली[10] लोकविमोहिनी ।
ब्रह्माणमूचे जगतां स्रष्टारं घनशब्दवत् ॥ ६० ॥

देव्युवाच

ब्रह्मन् किमर्थं भवता स्तुताहमवधारय ।
उच्यतां यदभृष्योऽस्ति तच्छीघ्रं पुरतो मम ॥ ६१ ॥
प्रत्यक्षं मयि जातायां सिद्धिः कार्यस्य निश्चिता ।
तस्मात्ते वाञ्छितं ब्रूहि यत् करिष्यामि भाविता ॥ ६२ ॥

ब्रह्मोवाच

एकश्चरति भूतेशो न द्वितीयां समीहते ।
तं मोहय यथा दारान् स्वयं स च जिघृक्षति ॥ ६३ ॥

---

6 विशुद्धवुध्या सततं गृणन्ति । 7 त्वं देवमव्यक्तमनन्तरूपं त्वं विभ्रती कालमयं जगन्ति । कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं त्वं विभ्रतां कालमयं जगन्ति ॥ 8 वाह्यान्तरावस्तु निरस्य याति । 9 विष्णुमाये नमस्तुभ्यं प्रसीद परमेश्वरि । 10 नीलोत्पलासिनी ।

त्वदृते तस्य नो काचिद् भविष्यति मनोहरा।
तस्मात्त्वमेकरूपेण भवस्य भव मोहनी॥ ६४॥
यथा धृतशरीरा त्वं लक्ष्मीरूपेण केशवम्।
आमोदयसि विश्वस्य हितायैतं तथा कुरु॥ ६५॥
कान्ताभिलाषमात्रं मे निनिन्द वृषभध्वजः।
कथं पुनः स वनितां स्वेच्छया संग्रहीष्यति॥ ६६॥
हरेऽगृहीतकान्ते तु कथं सृष्टिः प्रवर्तते।
आद्यन्तमध्यहेतौ च तस्मिञ्छम्भौविरागिणि॥ ६७॥
इति चिन्तापरो नाहं त्वदन्यं शरणन्त्विह।
लब्धवांस्तेन विश्वस्य हितायैतत् कुरुस्व मे॥ ६८॥
न विष्णुरस्य[11] मोहाय न लक्ष्मीर्न मनोभवः।
न चाप्यहं जगन्मातस्त्वस्तस्मात् त्वं मोहयेश्वरम्॥ ६६॥
कीर्तिस्तं सर्वभूतानां यथा त्वं ह्रीर्यतात्मनाम्।
यथा विष्णोः प्रियैका त्वं तथा सन्मोहयेश्वरम्॥ ७०॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्माणमाभाष्य काली योगमयी पुनः।
यदुवाच महाभागास्तच्छृण्वन्तु द्विजोत्तमाः॥ ७१॥

इति श्री कालिकापुराणे कालीस्तुतौ पञ्चमोऽध्यायः।

---

11 विष्णुस्तस्य।

षष्ठोऽध्यायः

देव्युवाच

यदुक्तं भवता ब्रह्मन् समस्तं सत्यमेव तत्।
मद्दते मोहयित्रीह शंकरस्य न विद्यते ॥ १ ॥
हरेऽगृहीतदारे तु सृष्टिर्नैषा सनातनी।
भविष्यतीति तत् सत्यं भवता प्रतिपादितम् ॥ २ ॥
मयापि[12] च महान् यत्नो विद्यतेऽस्य जगत्पतेः[13]।
त्वद्वाक्याद्द्विगुणो मेऽद्य प्रयत्नोऽभूत्सुनिर्भरः ॥ ३ ॥
अहं तथा यतिष्यामि यथा दारपरिग्रहम्।
हरः करिष्यत्यवशः स्वयमेव विमोहितः ॥ ४ ॥
चार्व्वीं मूर्तिमहं धृत्वा तस्यैव वशवर्तिनी।
भविष्यामि महाभाग यथा विष्णोर्हरिप्रिया ॥ ५ ॥
यथा सोऽपि ममैवेह वशवर्ती सदा भवेत्।
तथा चाहं करिष्यामि यथेतरजनं हरम् ॥ ६ ॥
प्रतिसर्गादि मध्यं[14] तमहं शम्भुं निराकुलम्।
स्त्रीरूपेणानुयास्यामि विशेषेणान्यतोविधे ॥ ७ ॥
उत्पन्ना दक्षजायायां चारुरूपेण शंकरम्।
अहं सभाजयिष्यामि प्रतिसर्गं[15] पितामह ॥ ८ ॥
ततस्तु योगनिद्रां मां विष्णुमायां जगन्मयीम्।
शंकरीति वदिष्यन्ति रुद्राणीति दिवौकसः ॥ ९ ॥
उत्पन्नमात्रं सततं मोहये प्राणिनं यथा।
तथा सन्मोहयिष्यामि शंकरं प्रमथाधिपम् ॥ १० ॥
यथान्यजन्तुरवनौ वर्तते वनितावशे।
ततोऽप्यति हरो वामावशवर्ती भविष्यति ॥ ११ ॥

---

12 मोहने। 13 जगत्पते। 14 मध्यान्तेऽत्वहम्। 15 यथानान्या कथञ्चन।

विभिद्य[16] भुवनाधीनां लीनां स्वहृदयान्तरे।
यां विद्याश्च महादेवो मोहात् प्रतिग्रहीष्यति ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्मै समाभाष्य ब्रह्मणे द्विजसत्तमाः।
वीक्ष्यमाणा जगत्स्रष्ट्रा तत्रैवान्तर्दधे ततः ॥ १३ ॥
तस्यामन्तर्हितायान्तु धाता[17] लोक-पितामहः।
जगाम तत्र भगवान् स्थितो यत्र मनोभवः ॥ १४ ॥
मुदितोऽत्यर्थमभवन्महामायावचः[18] स्मरन्।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने च मुनिपुंगवाः ॥ १५ ॥
अथ दृष्ट्वा महात्मानं विरञ्चिं मदनस्तथा।
गच्छन्तं हंसयानेन चाभ्युत्तस्थौ त्वरान्वितः ॥ १६ ॥
आसन्नं तमथासाद्य हर्षोत्फुल्लविलोचनः।
ववन्दे सर्वलोकेशं मोदयुक्तं मनोभवः ॥ १७ ॥
अथाह भगवान् धाता प्रीत्या मधुरगद्गदम्।
मदनं मोदयन्[19] सूक्तं यद् देव्या विष्णुमायया[20] ॥ १८ ॥

ब्रह्मोवाच

यदाह वत्स शर्वस्य मोहने त्वं पुरा वचः।
अनुमोहनकर्त्री या तां सृजेति मनोभव ॥ १९ ॥
तदर्थं संस्तुता देवी योगनिद्रा जगन्मयी।
एकतानेन मनसा मया मन्दरकन्दरे ॥ २० ॥
स्वयमेव तया वत्स प्रत्यक्षीभूतया मम[21]।
तुष्टयांगीकृतं शम्भुर्मोहनीयो मयेति वै ॥ २१ ॥
तया च दक्षभवने स समुत्पन्नया हरः।
मोहनीयस्तु न चिरादिति सत्यं मनोभव ॥ २२ ॥

---

16 विभिद्य ...मोहने प्रगहीष्यति। 17 ब्रह्मा। 18 वरं।
19 मदयन् तूक्तं। 20 योगमायया। 21 यया।

मदन उवाच

ब्रह्मन् का योगनिद्रेति विख्याता या जगन्मयी ॥
कथं तस्या हरो वश्यः कार्यस्तपसि संस्थितः ॥ २३ ॥
किम्प्रभावाथ सा देवी का वा सा कुत्र संस्थिता ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो लोकपितामह ॥ २४ ॥
यस्य त्यक्तसमाधेस्तु न क्षणं दृष्टिगोचरे ॥
शक्नुमोऽपि वयं स्थातुं तं कस्मात् सा विमोहयेत् ॥ २५ ॥
ज्वलदग्निप्रकाशाक्षं जटाराजिकरालितम् ।
शूलिनं वीक्ष्य कः स्थातुं ब्रह्मन् शक्नोति तत्पुरः ॥ २६ ॥
तस्य तादृक्स्वरूपस्य सम्यङ्मोहनवाञ्छया ।
मयाभ्युपेतं तां श्रोतुमहमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मनोभवस्य वचनं श्रुत्वाथ चतुराननः ।
विवक्षुरपि तद्वाक्यं श्रुत्वानुत्साहकारणम् ॥ २८ ॥
शर्वस्य[22] मोहने ब्रह्मा चिन्ताविष्टो भवन्नहि ।
समर्थो मोहयितुमिति निशश्वास मुहुर्मुहुः ॥ २९ ॥
निःश्वासमारुतात्तस्य नानारूपाः महाबलाः ।
जाता गणा लोलजिह्वा लोलाश्चाति भयंकराः ॥ ३० ॥
तुरंगवदनाः केचित् केचिद्गजमुखास्तथा ।
सिंहव्याघ्रमुखाश्चान्ये श्ववराहखराननाः ॥ ३१ ॥
ऋक्षमार्जारवदनाः शरभास्याः शुकाननाः ।
प्लवगोमायु वक्त्राश्च सरीसृपमुखाः परे ॥ ३२ ॥
गोरूपा गोमुखाः केचित्तथा पक्षिमुखाः परे ।
महादीर्घा महाह्रस्वा महास्थूला महाकृशाः ॥ ३३ ॥

22 सर्वमोहने ।

पिंगाक्षा विरालाक्षाश्च त्र्यक्षैकाक्षा महोदराः।
एककर्णास्त्रिकर्णाश्च चतुष्कर्णास्तथा परे ॥ ३४ ॥
स्थूलकर्णा महाकर्णा बहुकर्णा विकर्णकाः।
दीर्घाक्षाः स्थूलनेत्राश्च सूक्ष्मनेत्रा विदृष्टयः ॥ ३५ ॥
चतुष्पादाः पञ्चपादास्त्रिपादैकपदास्तथा।
ह्रस्वपादा दीर्घपादाः स्थूलपादा महापदाः ॥ ३६ ॥
एकहस्ताश्चतुर्हस्ता द्विहस्तास्त्रिशयास्तथा।
विहस्ताश्च विरूपाक्षा गोधिकाकृतयः परे ॥ ३७ ॥
मनुष्याकृतयः केचिच्छुशुमारमुखास्तथा[23] ।
क्रौञ्चाकारा वकाकारा हंससारसरूपिणः।
तथैव मद्गुकुरर-कंककाकमुखास्तथा ॥ ३८ ॥
अर्द्धनीला[24] अर्द्धरक्ताः कपिलाः पिंगलास्तथा।
नीलाः शुक्लास्तथा पीता हरिताश्चित्ररूपिणः ॥ ३९ ॥
अवादयन्त ते शंखान् पटहान् परिवादिनः।
मृदङ्गान् डिडिमांश्चैव गोमुखान् पणवांस्तथा ॥ ४० ॥
सर्वे जटाभिः पिंगाभिस्तुंगाभिश्च करालिताः[25] ।
निरन्तराभिर्विप्रेन्द्रा गणाः स्यन्दनगामिनः ॥ ४१ ॥
शूलहस्ताः पाशहस्ताः खड्गहस्ता धनुर्द्धराः।
शक्त्यंकुशगदावाण-पट्टिशप्रासपाणयः ॥ ४२ ॥
नानायुधा महानादं कुर्वन्तस्ते महाबलाः।
मारय च्छेदयेत्यूचुर्ब्रह्मणः पुरतो गताः[26] ॥ ४३ ॥
तेषान्तु वदतां यत्र मारय छेदयेत्युत।
योगनिद्रा प्रभावात् स विधिर्वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ४४ ॥
अथ ब्रह्माणमाभाष्य[27] तान् दृष्ट्वा मदनो गणान्।
उवाच वारयन् वक्तुं गणानामग्रतः स्मरः ॥ ४५ ॥

---

23 परे। 24 अर्द्धनीलार्ध्वरक्ताः। 25 करालिनः। 26 गणाः।
27 ब्रह्माणमाभास्य।

मदन उवाच

किं कर्म ते करिष्यन्ति कुत्र स्थास्यन्ति वा विधे।
किन्नामधेया एते वा तत्रैतान् विनियोजय ॥ ४६ ॥
नियोज्यैतान्निजे कृत्ये स्थानं दत्त्वा नाम च।
कृत्वा पश्चात् महामायाप्रभावं कथयस्व मे ॥ ४७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य सर्वलोकपितामहः।
गणान् समदनानाह तेषां कर्मादिकं दिशन् ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

एत उत्पन्नमात्रा हि मारयेत्यवदंस्तराम्।
मुहुर्मुहुरतोऽमीषां नाम मारेति जायताम् ॥ ४९ ॥
मारात्मकत्वादप्येते माराः सन्तु च नामतः।
सदा विघ्नं करिष्यन्ति जन्तूनाञ्च विनार्चनम् ॥ ५० ॥
तवानुगमनं कर्म मुख्यमेषां मनोभव।
यत्र यत्र भवान् याता स्वकर्मार्थं यदा यदा।
गन्तारस्तत्र तत्रैते साहाय्याय तदा तदा ॥ ५१ ॥
चित्तोद्भ्रान्तिं करिष्यन्ति त्वदस्त्रवशवर्तिनाम्।
ज्ञानिनां ज्ञानमार्गञ्च विघ्नयिष्यन्ति सर्वदा ॥ ५२ ॥
यथा सांसारिकं कर्म सर्वे कुर्वन्ति जन्तवः।
तथाचैते करिष्यन्ति सविघ्नमपि सर्वतः ॥ ५३ ॥
इमे स्थास्यन्ति सर्वत्र वेगिनः कामरूपिणः।
त्वमेवैषां गणाध्यक्षः पंचयज्ञांशभोगिनः।
नित्यक्रियावतां तोय-भोगिनो वै भवन्त्विति[28] ॥ ५४ ॥

---

28 भवन्त्विमे।

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा तु ते सर्वे मदनं सविधि ततः ।
परिवार्य यथाकामं तस्थुः श्रुत्वा[29] निजां गतिम् ॥ ५५ ॥
तेषां वर्णयितुं शक्यो भुवि किं मुनिसत्तमाः ।
माहात्म्यञ्च प्रभावञ्च ते तपःशालिनो यतः ॥ ५६ ॥
नैषां जाया न तनया निःसमीहाः सदव हि[30] ।
न्याखिनोऽपि महात्मानः सर्वे त ऊर्द्ध्वरेतसः ॥ ५७ ॥
ततो ब्रह्मा प्रसन्नः[31] स माहात्म्यं मदनाय च ।
गदितुं योगनिद्रायाः सम्यक् समुपचक्रमे । ५८ ॥

ब्रह्मोवाच

अव्यक्तव्यक्तरूपेण रजःसत्त्वतमोगुणैः ।
संविभज्य यार्थं कुरुते विष्णुमायेति सोच्यते ॥ ५९ ॥
या निम्नान्तस्थलाम्भस्था जगदण्डकपालतः ।
विभज्य पुरुषं याति योगनिद्रेति सोच्यते ॥ ६० ॥
मन्त्रान्तर्भावनपरा परमानन्दरूपिणी ।
योगिनां सत्त्वविद्यान्तः[32] सा निगद्या जगन्मयी ॥ ६१ ॥
गर्भान्तर्ज्ञानसम्पन्नं प्रेरितं सूतिमारुतैः ।
उत्पन्नं ज्ञानरहितं कुरुते या निरन्तरम् ॥ ६२ ॥
पूर्वातिपूर्वं[33] सन्धातुं संस्कारेण नियोज्य च ।
आहारादौ ततो मोहं ममत्वं ज्ञानसंशयम् ॥ ६३ ॥
क्रोधोपरोधलोभेषु क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुनः पुनः ।
पश्चात् कामे नियोज्याशु चिन्तायुक्तमहर्निशम् ॥ ६४ ॥
आमोदयुक्तं व्यसनासक्तं जन्तुं करोति या ।
महामायेति सा प्रोक्ता तेन सा जगदीश्वरी ॥ ६५ ॥

---

29 कृत्वा निजां कृतिं । 30 ते । 31 पुनस्तस्मै । 32 विद्यायां ।
33 पूर्वातिपूर्वं संबन्ध...... ।

अहंकारादि संसक्त[34]सृष्टिप्रभवभाविनी ।
उत्पत्तिरितिलोकैः सा कथ्यतेऽनन्तरूपिणी ॥ ६६ ॥
उत्पन्नमंकुरं बीजाद् यथापो मेघसम्भवाः ।
प्ररोहयति सा जन्तूंस्तथोत्पन्नान् प्ररोहयेत् ॥ ६७ ॥
सा शक्तिः सृष्टिरूपा च सर्वेषां ख्यातिरीश्वरी ।
क्षमा क्षमावतां नित्यं करुणा सा दयावताम् ॥ ६८ ॥
नित्या सा नित्यरूपेण जगद्गर्भे प्रकाशते ।
ज्योतिःस्वरूपेण परा व्यक्ताव्यक्तप्रकाशिनी ॥ ६९ ॥
सा योगिनां मुक्तिहेतुर्विद्यारूपेण वैष्णवी ।
सांसारिकाणां संसारबन्धहेतु-विपर्यया ॥ ७० ॥
लक्ष्मीरूपेण कृष्णस्य द्वितीया सुमनोहरा[35] ।
त्रयीरूपेण कण्ठस्था सदा मम मनोभव ॥ ७१ ॥

सर्वत्रस्था सर्वगा दिव्यमूर्ति-
र्नित्या देवी सर्वरूपा पराख्या ।
कृष्णादीनां सर्वदा मोहयित्री
सा स्त्रीरूपैः सर्वजन्तोः समन्तात् ॥ ७२ ॥

इति श्री कालिकापुराणे योगनिद्रास्तुतौ षष्ठोऽध्यायः ॥

34 संसर्ग । 35 सा मनोहरा ।

सप्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्मा महामाया-स्वरूपं प्रतिपाद्य च ।
मदनाय पुनः प्राह युक्तासौ[36] हरमोहने ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुमाया महादेवो यथा दारपरिग्रहम् ।
करिष्यति तथा कर्तुमंगीकारं पुराकरोत् ॥ २ ॥
सावश्यं दक्षतनया भूत्वा शम्भोर्महात्मनः ।
भविष्यति द्वितीयेति स्वयमेवावदत् स्मर ॥ ३ ॥
त्वमेभिः स्वगणैः सार्द्धं रत्या च मधुना सह ।
यथेच्छति[37] तथा दारान् ग्रहीतुं कुरु शंकरः[38] ॥ ४ ॥
शम्भौ गृहीतदारे तु कृतकृत्या वयं स्मर ।
अविच्छिन्ना सृष्टिरियं भविष्यति न संशयः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथाब्रवीद्द्विजश्रेष्ठा लोकेशाय मनोभवः ।
मधुरं यत् कृतं तेन महादेवस्य मोहने ॥ ६ ॥

मदन उवाच

शृणु ब्रह्मन् यथास्माभिः क्रियते हरमोहने ।
प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा तस्य तद्गदतो मम ॥ ७ ॥
यदा समाधिमाश्रित्य स्थितः शम्भुर्जितेन्द्रियः[39] ।
तदा सुगन्धिवातेन शीतलेन विवेगिना ।
तं वीजयामि लोकेश नित्यं मोहनकारिणा ॥ ८ ॥

---

36 यतोऽसौ । 37 यथेच्छसि । 38 सत्वरं । 39 नियन्त्रितः ।

स्वसायकांस्तथा पञ्च समादाय शरासनम् ।
भ्रमामि तस्य सविधे मोहयंस्तद्गणानहम् ॥ ९ ॥
सिद्धद्वन्द्वानहं तत्र रमयामि दिवानिशम् ।
भावा हावाश्च ते सर्वे प्रविशन्ति च तेषु वै ॥ १० ॥
यदि प्रविष्टे सविधे शम्भोः प्राणी पितामह ।
को वा न कुरुते द्वन्द्व-भावं तत्र मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥
मम प्रवेशमात्रेण तथा[40] स्युः सर्वजन्तवः ।
न शम्भुर्न वृषस्तस्य मानसीं विक्रियां गतौ ॥१२ ॥
यदाहि भवतः प्रस्थं स याति प्रमथाधिपः ।
तत्र गन्ता तदैवाहं सरतिः समधुर्विधे ॥ १३ ॥
यदा मेरुं प्रयात्येष यदा वा नाटकेश्वरम् ।
कैलासं वा यदा याति तत्र गच्छाम्यहं तदा ॥ १४ ॥
यदा त्यक्तसमाधिस्तु हरस्तिष्ठति वै क्षणम् ।
ततस्तस्य पुरश्चक्रमिथुनं योजयाम्यहम् ॥ १५ ॥
तच्चक्रयुगलं ब्रह्मन् हावभावयुतं मुहुः ।
नानाभावेन कुरुते दाम्पत्य-क्रममुत्तमम् ॥ १६ ॥
नीलकण्ठानपि मुहुः सजायानपि तत्पुरः ।
सन्मोहयामि सविधे मृगानन्याश्च पक्षिणः ॥ १७ ॥
विचित्रभावमासाद्य यदा प्रकुरुते रतिम् ।
मयूरमिथुनं वीक्ष्य तत्तदा को नचोत्सुकः ॥ १८ ॥
मृगाश्च तत्पुरस्थाश्च स्वजायाभिस्तु सोत्सुकाः ।
अकुर्वन् रुचिरं भावं तस्य पार्श्वे पुरस्तदा ॥ १९ ॥
अपश्यन् विवरं नास्य कदाचिदपि मच्छरः ।
निपात्यः स यदा देहे यन्मया सर्वलोकधृत् ॥ २० ॥
बहुधा निश्चितं ज्ञातं रामासंगादृते हरम् ।
अलं च सन्मोहयितुं ससहायोऽपि निष्फलम् ॥ २१ ॥

---

40 सुखाः ।

मधुश्च कुरुते कर्म यद्‌यत्तस्य विमोहने ।
तच्छृणुष्व महाभाग नित्यं तस्योचितं पुनः ॥ २२ ॥
चम्पकान् केशरानाम्रान् करुणान् पाटलांस्तथा ।
नागकेशर पुन्नागान् किंशुकान् केतकान् धवान् ॥ २३ ॥
माधवीर्मल्लिकाः पर्णधारान् कुरुवकांस्तथा ।
उत्फुल्लयति तत्तस्य यत्र तिष्ठति वै हरः ॥ २४ ॥
सरांस्युत्फुल्लपद्मानि वीजयन् मलयानिलैः ।
सुगन्धीकृतवान् यत्नादतीव शंकराश्रमम् ॥ २५ ॥
लताः सर्वाः सुमनसः फुल्लपादपसंचयान् ।
वृक्षान् रुचिरभावेन वेष्टयन्ति स्म तत्र वै ॥ २६ ॥
तान् वृक्षांश्चारुपुष्पौघांस्तैः सुगन्धि समीरणैः ।
दृष्ट्वा कामवशं यातो न तत्र मुनिरप्युत ॥ २७ ॥
तद्‌गणा अपि लोकेश नानाभावैः सुशोभनैः ।
वसन्ति स्म सुराः सिद्धा ये ये चातितपोधनाः ॥ २८ ॥
न तस्य पुनरस्माभिर्दृष्टं मोहस्य कारणम् ।
भावमात्रं न कुरुते कामोत्थमपि शंकरः ॥ २६ ॥
इति सर्वमहं दृष्ट्वा ज्ञात्वा च हरभावनाम् ।
विमुखोऽहं शम्भुमोहान्नियतं मायया विना ॥ ३० ॥
इदानीं त्वद्वचः श्रुत्वा योगनिद्रोदितं पुनः ।
तस्याः प्रभावं श्रुत्वाथ गणान् दृष्ट्वा सहायकान् ॥ ३१ ॥
मया शम्भोर्विमोहाय क्रियते मुहुरुद्यमः ॥
भवानपि त्रिलोकेश योगनिद्रा द्रुतं पुनः ।
भवेद् यथा शम्भुजाया तथैव विदधात्वियम् ॥ ३२ ॥
यमानां नियमानाञ्च प्राणायामस्य नित्यशः ।
आसनस्य महेशस्य प्रत्याहारस्य गोचरे ॥ ३३ ॥
ध्यानस्य धारणायाश्च समाधेर्विघ्नसम्भवम् ।
मन्ये कर्तुं न शक्यं स्यादपि मारशतैरपि ॥ ३४ ॥

तथाप्ययं मारगणः करोतु
हरस्य योगांगविकारविघ्नम्।
यदेव शक्यं किमु वा समर्थः
समक्षमन्यस्य न कर्तुमोजः ॥ ३५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे मदनवाक्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्मापि मदनमुवाचेदं वचः पुनः।
निश्चित्य योगनिद्रायाः स्मृत्वा वाक्यं तपोधनाः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं शम्भुपत्नी सा योगनिद्रा भविष्यति।
यथाशक्ति भवांस्तत्र करोत्वस्याः सहायताम् ॥ २ ॥
गच्छ त्वं स्वगणैः सार्द्धं यत्र तिष्ठति शंकरः।
द्रुतं मनोभव त्वं च तत् स्थानं मधुना सह ॥ ३ ॥
रात्रिन्दिवस्य[41] तुर्यांशं जगन्मोह्य नित्यशः।
भागत्रयं शम्भुपार्श्वे तिष्ठ सार्द्धं गणैः सदा ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
शम्भोः सकाशं मदनो गतवान् सगणस्तदा ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दक्षश्चिरं कालं तपोरतः।
नियमैर्बहुभिर्देवीमाराधयत सुव्रतः ॥ ६ ॥

---

41 रात्रिन्दिवं चतुर्यामं।

ततो नियमयुक्तस्य दक्षस्य मुनिसत्तमाः ।
योगनिद्रां पूजयतः प्रत्यक्षमभवच्छिवा ॥ ७ ॥
ततः प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
कृतकृत्यमथात्मानं मेने दक्षः प्रजापतिः ॥ ८ ॥
सिंहस्थां कालिकां कृष्णां पीनोत्तुंगपयोधराम्[42] ।
चतुर्भुजां चारुवक्त्रां नीलोत्पलधरां शुभाम् ॥ ९ ॥
वरदाभयदां खड्गहस्तां सर्वगुणान्विताम् ।
आरक्तनयनां चारुमुक्तकेशीं मनोहराम् ॥ १० ॥
दृष्ट्वा दक्षोऽथ तुष्टाव महामायां प्रजापतिः ।
प्रीत्या परमया युक्तो विनयानतकन्धरः ॥ ११ ॥

दक्ष उवाच

आनन्दरूपिणीं देवीं जगदानन्दकारिणीम् ।
सृष्टिस्थित्यन्तरूपां तां स्तौमि लक्ष्मीं हरेः शुभाम् ॥ १२ ॥
सत्त्वोद्रेकप्रकाशेन यज्ज्योतिस्तत्त्वमुत्तमम् ।
स्वप्रकाशं जगद्धाम तत्तवांशं महेश्वरि ॥ १३ ॥
रजोगुणातिरेकेण यत् कामस्य प्रकाशनम् ।
रागस्वरूपं मध्यस्थं तत्तेंऽशांशं[43] जगन्मयि ॥ १४ ॥
तमोगुणातिरेकेण यद्व्यन्मोहप्रकाशनम् ।
आच्छादनं चेतनानां तत्ते चांशांशगोचरम् ॥ १५ ॥
परा परात्मिका शुद्धा निर्मला लोकमोहिनी ।
त्वं त्रिरूपा त्रयी कीर्तिर्वार्त्तास्य जगतो गतिः ॥ १६ ॥
विभर्ति माधवो धात्रीं यया मूर्त्या निजोत्थया ।
सा मूर्त्तिस्तव सर्वेषां जगतामुपकारिणी ॥ १७ ॥
महानुभावा त्वं विश्वशक्तिः सूक्ष्मापराजिता ।
यदूर्द्ध्वाधोनिरोधेन व्यज्यते पवनैः परम् ॥ १८ ॥

---

42 पीनोन्नतपयोधराम् 43 तत्तवांशं महेश्वरि ।

तज्ज्योतिस्तव मात्रार्थं सात्त्विकं भावसन्मतम् ।
यद्योगिनो निरालम्बं निष्कलं निर्मलं परम् ॥ १९ ॥
आलम्बयन्ति तत्तत्त्वं त्वदन्तर्गोचरन्तु तत् ।
या[44] प्रसिद्धा च कूटस्था सुप्रसिद्धाति निर्मला ॥ २० ॥
सा ज्ञप्तिस्त्वन्निष्प्रपञ्चा प्रपञ्चापि प्रकाशिका ।
त्वं विद्या त्वमविद्या च त्वमालम्बा निराश्रया ।
प्रपञ्चरूपा जगतामादिशक्तिस्त्वमीश्वरी ॥ २१ ॥
ब्रह्मकण्ठालया शुद्धा वाग्वाणी या प्रगीयते ।
वेदप्रकाशनपरा सा त्वं विश्व प्रकाशिनी ॥ २२ ॥
त्वमग्निस्त्वं तथा स्वाहा त्वं स्वधा पितृभिः सह ।
त्वं नभस्त्वं कालरूपा[45] त्वं काष्ठा त्वं वहिःस्थिता ॥ २३ ॥
त्वमचिन्त्या त्वमव्यक्ता तथानिर्देश्यरूपिणी ।
त्वं कालरात्रिस्त्वं शान्ता त्वमेव प्रकृतिः परा ॥ २४ ॥
यस्याः संसारलोकानां परित्राणाय यद्बहिः ।
रूपं जानन्ति धात्राद्यास्तत्त्वां ज्ञास्यन्ति के पराम् ॥ २५ ॥
प्रसीद भगवत्यम्बे प्रसीद योगरूपिणि[46] ।
प्रसीद घोररूपे त्वं जगन्मयि नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुता महामाया दक्षेण प्रयतात्मना ।
उवाच दक्षं ज्ञात्वापि स्वयं तस्येप्सितं द्विजाः ॥ २७ ॥

भगवत्युवाच

तुष्टाहं दक्ष भवतो मद्भक्त्या ह्यनया भृशम् ।
वरं वृणीष्व चाभीष्टं तत्ते दास्यामि तत् स्वयम् ॥ २८ ॥
नियमेन तपोभिश्च स्तुतिभिस्ते प्रजापते ।
अतीव तुष्टा दास्येऽहं वरं वरय वाञ्छितम् ॥ २९ ॥

---

44 चाप्रसिद्धा प्रसिद्धा च कूटस्था यातिनिर्मला । 45 कामरूपा ।
46 शिवरूपिणि ।

दक्ष उवाच

जगन्मयि महामाये यदि त्वं वरदा मम।
तदा मम सुता भूत्वा हरजाया भवाधुना ॥ ३० ॥
ममैष न वरो देवि केवलं जगतामपि।
लोकेशस्य तथा विष्णोः शिवस्यापि प्रजेश्वरि ॥ ३१ ॥

देव्युवाच

अहं तव सुता भूत्वा त्वज्जायायां समुद्भवा।
हरजाया भविष्यामि न चिरात्तु प्रजापते ॥ ३२ ॥
यदा भवान्मयि पुनर्भवेन्मन्दादरस्तदा।
देहं त्यक्ष्यामि सपदि सुखिन्यप्यथ वेतरा ॥ ३३ ॥
एष दत्तस्तव वरः प्रतिसर्गं प्रजापते।
अहं तव सुता भूत्वा भविष्यामि हरप्रिया ॥ ३४ ॥
तथा सन्मोहयिष्यामि महादेवं प्रजापते।
प्रतिसर्गं यथा मोहं सम्प्राप्स्यति निराकुलम् ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा महामाया दक्षं मुख्यं प्रजापतिम्।
अन्तर्दधे[47] ततो देवी सम्यग् दक्षस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥
अन्तर्हितायां मायायां दक्षोऽपि निजमाश्रमम्।
जगाम लेभे च मुदं भविष्यति सुतेति सा ॥ ३७ ॥
अथ चक्रे प्रजोत्पादं विना स्त्रीसंगमेन च।
संकल्पाविर्भवाभ्यान्तु[48] मनसा चिन्तनेन च ॥ ३८ ॥
तत्र ये तनया जाता बहुशो द्विजसत्तमाः।
ते नारदोपदेशेन भ्रमन्ति पृथिवीमिमाम् ॥ ३९ ॥

---

47 अन्तर्हितवती तत्र। 48 संकल्पायुर्भवाभ्याञ्च।

पुनः पुनः सुता ये ये तस्य जाता सहस्रशः।
ते सर्वे भ्रातृपदवीं ययुर्नारद वाक्यतः॥ ४० ॥
पृथिव्यां सृष्टिकर्तारः सर्वे यूयं द्विजोत्तमाः।
पश्यध्वं पृथिवीं कृत्स्नामुपान्तप्रान्तमायताम्॥ ४१ ॥
इति नारदवाक्येन नोदिता दक्षपुत्रकाः।
अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्तः पृथिवीमिमाम्॥ ४२ ॥
ततः समुत्पादयितुं प्रजाः मैथुनसम्भवाः।
उपयेमे वीरणस्य तनयां दक्ष ईप्सिताम्॥ ४३ ॥
वीरिणी नाम तस्यास्तु असक्नीत्यपि सत्तमाः।
तस्यां प्रथम संकल्पो यदा भूतः प्रजापतेः॥ ४४ ॥
सद्योजाता महामाया तदा तस्यां द्विजोत्तमाः।
तस्यां तु जातमात्रायां सुप्रीतोऽभूत् प्रजापतिः।
सैवैषेति तदा मेने तां दृष्ट्वा तेजसोज्ज्वलाम्॥ ४५ ॥
वभूव पुष्पवृष्टिश्च मेघाश्च ववृषुर्ज्जलम्।
दिशः शान्तास्तदा तस्यां जातायाञ्च समुद्गताः॥ ४६ ॥
अवादयन्तस्त्रिदशाः शुभवाद्यं वियद्गताः।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्तास्तस्यां सत्यां नरोत्तमाः॥ ४७ ॥
वीरिण्या लक्षितो दक्षस्तां दृष्ट्वा जगदीश्वरीम्।
विष्णुमायां महामायां तोषयामास भक्तितः॥ ४८ ।

दक्ष उवाच

शिवा शान्ता महामाया योगनिद्रा जगन्मयी।
या प्रोच्यते विष्णुमाया[49] तां नमामि सनातनीम्॥ ४६ ।
यया धाता जगत्सृष्टौ नियुक्तस्तां पुराकरोत्।
स्थितिञ्च विष्णुरकरोद्यन्नियोगाज्जगत्पतिः॥ ५० ॥

49 विष्णुनैव।

शम्भुरन्तं ततो देवीं त्वां नमामि महीयसीम्।
विकाररहितां शुद्धामप्रमेयां प्रभावतीम्।
प्रमाणमानमेयाख्यां प्रणमामि सुखात्मिकाम्॥ ५१॥
यस्त्वां विचिन्तयेद्देवीं विद्याविद्यात्मिकां पराम्।
तस्य भोग्यश्च मुक्तिश्च सदा करतले स्थिता॥ ५२॥
यस्त्वां प्रत्यक्षतो देवीं सकृत् पश्यति पावनीम्।
तस्यावश्यं भवेन्मुक्तिर्विद्याविद्याप्रकाशिकाम्[50]॥ ५३॥
योगनिद्रे महामाये विष्णुमाये जगन्मयि।
या प्रमाणार्थसम्पन्ना चेतना सा तवात्मिका॥ ५४॥
ये स्तुवन्ति जगन्मातर्भवतीमम्बिकेति च।
जगन्मयीति मायेति सर्वं तेषां भविष्यति। ५५॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुता जगन्माता दक्षेण सुमहात्मना।
तथोवाच तदा दक्षं यथा माता शृणोति न॥ ५६॥
सन्मोह्य सर्वं तत्रस्थं यथा दक्षः शृणोति तत्।
नान्यः शृणोति च तथा माययाह तदाम्बिका॥ ५७॥

देव्युवाच

अहमाराधिता पूर्वं यदर्थं मुनिसत्तम।
ईप्सितं तव सिद्धं तदवधारय साम्प्रतम्॥ ५८॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा तदा देवी दक्षश्च निजमायया।
अस्थाय शैशवं भावं जनन्यन्ते रुरोद सा॥ ५९॥
ततस्तां वीरिणी यत्नात् सुसंस्कृत्य यथोचितम्।
शिशुपालेन विधिना तस्यै स्तन्यादिकं ददौ॥ ६०॥

---

50 ब्रह्मविद्याप्रकाशिका।

पालिता साथ वीरिण्या दक्षेण सुमहात्मना ।
ववृधे शुक्लपक्षस्य निशानाथो यथान्वहम् ॥ ६१ ॥
तस्यान्तु सद्गुणाः सर्वे विविशुर्द्विजसत्तमाः ।
शैशवेऽपि यथा चन्द्रे कलाः सर्वा मनोहराः ॥ ६२ ॥
रेमे सा निजभावेन सखीमध्यगता यदा ।
तदा लिखति भर्गस्य प्रतिमामन्वहं मुहुः[51] ॥ ६३ ॥
यदा गायति गीतानि तदा बाल्योचितानि सा ।
उग्रं स्थाणुं हरं रुद्रं सस्मार स्मरमानसा[52] ॥ ६४ ॥
तस्याश्चक्रे नाम दक्षः सतीति द्विजसत्तमाः ।
प्रशस्तायाः सर्वगुणैः सत्त्वादपि नयादपि ॥ ६५ ॥
वबृधे दक्षवीरिण्योः प्रत्यहं करुणातुला ।
तस्यां बाल्येऽपि भक्तायां तयोर्नित्यं मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥
सर्वकान्त[53]-गुणाक्रान्ता सदा[54] सा नयशालिनी ।
तोषयामास पितरौ नित्यं नित्यं नरोत्तमाः ॥ ६७ ॥
अथैकदा पितुः पार्श्वे तिष्ठन्तीं तां सतीं विधिः ।
नारदश्च ददर्शाथ रत्नभूतां क्षितौ शुभाम् ॥ ६८ ॥
सापि तौ वीक्ष्य मुदिता विनयावनता तदा ।
प्रणनाम सती देवं ब्रह्माणमथ नारदम् ॥ ६९ ॥
प्रणामान्ते सतीं वीक्ष्य विनयावनतां विधिः ।
नारदश्च तथैवाशीर्वादमेतमुवाच ह ॥ ७० ॥
त्वामेव यः कामयते यं त्वं कामयसे पतिम् ।
तमाप्नुहि पतिं देवं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ॥ ७१ ॥
यो न्नान्यां जगृहे नापि गृह्णाति न ग्रहीष्यति ।
जायां स ते पतिर्भूयादनन्यसदृशः शुभे ॥ ७२ ॥
इत्युक्त्वा सुचिरं तौ तु स्थित्वा दक्षाश्रये पुनः ।
विसृष्टौ तेन संयातौ स्वस्थानं द्विजसत्तमाः ॥ ७३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सत्युत्पत्तौ अष्टमोध्यायः ॥

---

51 बहु । 52 स्मरशासनं । 53 सर्वबालगुणा...... । 54 तदा ।

नवमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

बाल्यं व्यतीत्य सा प्राप यौवनं शोभनं ततः।
अतीव रूपेणांगेन सर्वाङ्गसुमनोहरा ॥ १ ॥
तां वीक्ष्य दक्षो लोकेशः प्रोद्भिन्नान्तर्वयः स्थिताम्।
चिन्तयामास भर्गाय कथं दास्य इमां सुताम् ॥ २ ॥
अथ सापि स्वयं भर्गं प्राप्तुमैच्छत्तदान्वहम्।
आराधयामास च तं गृहे मातुरनुज्ञया ॥ ३ ॥
आश्विने नन्दकाख्यायां लवणैः सगुडोदनैः।
पूजयित्वा हरं पश्चाद्ववन्दे सा निनाय तत् ॥ ४ ॥
कार्तिकस्य चतुर्दश्यां सापूपैः पायसैर्हरम्।
समाकीर्णैः समाराध्य सस्मार[55] परमेश्वरम् ॥ ५ ॥
कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे सतिलैः सयवोदनैः।
पूजयित्वा हरं नीलै[56]र्निनाय दिवसं पुनः ॥ ६ ॥
पौषे तु कृष्णसप्तम्यां कृत्वा जागरणं निशि।
अपूजयच्छिवं प्रातः कृसरान्नेन सा सती ॥ ७ ॥
माघस्य पौर्णमास्यान्तु कृत्वा जागरणं निशि।
आर्द्रवस्त्रा नदीतीरे ह्यकरोद्धरपूजनम् ॥ ८ ॥
नानाविधैः फलैः पुष्पैः सम्यक् तत्कालसम्भवैः।
चकार नियताहारं तं मासं हरमानसा ॥ ९ ॥
चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे तपस्यस्य विशेषतः।
कृत्वा जागरणं देवं विल्वपत्रैरपूजयत् ॥ १० ॥
चैत्रे शुक्लचतुर्दश्यां पालाशैः कुसुमैः[57] शिवम्।
अपूजयद्दिवारात्रौ तं स्मरन्ती निनाय तम् ॥ ११ ॥
वैशाखस्य तृतीयायां शुक्लायां सयवोदनैः।
पूजयित्वा हरं देवं[58] हव्यैर्मासं चरन्त्यनु।

---

55 शंकरं परमेश्वरी। 56 दीपैः। 57 दमनैः। 58 गव्यै र्देवं मासं।

निनाय सा निराहारा स्मरन्ती वृषवाहनम् ॥ १२ ॥
ज्येष्ठस्य पूर्णिमारात्रौ सम्पूज्य वृषवाहनम् ।
वसनैर्बृहतीपुष्पैर्निराहारा निनाय ताम् ॥ १३ ॥
आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां कृत्तिवाससः ।
बृहतीकुसुमैः पूजा देवस्याकारि वै तया ॥ १४ ॥
श्रावणस्य सिताष्टम्यां चतुर्दश्याञ्च सा शिवम् ।
यज्ञोपवीतैर्वासोभिः पवित्रैरप्यपूजयत् ॥ १५ ॥
भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ।
संपूज्याथ चतुर्दश्यां चकार जलभोजनम् ॥ १६ ॥
इति व्रतं यदारब्धं पुरा सत्या तदैव तु ।
सावित्रीसहितो ब्रह्मा जगामाथ हरान्तिकम् ॥ १७ ॥
वासुदेवोऽपि भगवान् सह लक्ष्म्या तदन्तिकम् ।
प्रस्थं हिमवतः शम्भुः स्थितो यत्र गणैः सह ॥ १८ ॥
तौ तु दृष्ट्वा ब्रह्मकृष्णौ सस्त्रीकौ संगतौ हरः ।
यथोचितं समाभाष्य पप्रच्छागमनं तयोः ॥ १९ ॥
तथाविधांस्तु तान् दृष्ट्वा दाम्पत्यभावसंयुतान् ।
कांचिदीहाञ्च मनसा चक्रे दारपरिग्रहे ॥ २० ॥
अथागमनहेतुं नः कथयध्वञ्च तत्त्वतः ।
किमर्थमागता यूयं किं कार्यं वोऽत्र[59] विद्यते ॥ २१ ॥
इति पृष्टौऽन्यम्बकेण ब्रह्मा[60] लोकपितामहः ।
उवाच च महादेवं विष्णुना परिचोदितः[61] ॥ २२ ॥

ब्रह्मोवाच

यदर्थमागतावावां तच्छृणुस्व त्रिलोचन ।
विशेषतश्च देवार्थं विश्वार्थञ्चवृषध्वज ॥ २३ ॥

---

59 वेह । 60 सर्वलोक... । . 61 परिणोदितः ।

अहं सृष्टिरतः शम्भो स्थितिहेतुस्तथा हरिः।
अन्तहेतुर्भवानस्य जगतः प्रतिसर्गकम् ॥ २४ ॥
तत्कर्मणि[62] सदैवाहं भवद्भ्यां सहितो ह्यलम्।
हरिः स्थितावपि तथा मयालं भवता सह।
त्वमन्तकरणे शक्तो विना नावां भविष्यसि ॥ २५ ॥
तस्मादन्योन्यकृत्येषु सर्वेषां वृषभध्वज।
साहाय्यं नः सदा योग्यमन्यथा न जगद्भवेत् ॥ २६ ॥
केचिद्भविष्यन्त्यसुरा मम वध्या महेश्वर।
अपरे तु हरेर्वध्या भवतोऽपि[63] तथापरे ॥ २७ ॥
केचित्तद्वीर्यजातस्य केचिन्मेऽशंभवस्य वै।
मायायाः केचिदपरे वध्याः स्युर्देववैरिणः ॥ २८ ॥
योगयुक्ते त्वयि सदा रागद्वेषादिवर्जिते।
दयामात्रैकनिरते न वध्या असुरास्तव ॥ २९ ॥
अबाधितेषु तेष्वीश कथं सृष्टिस्तथा स्थितिः।
अन्तश्च भविता युक्तं नित्यं नित्यं वृषध्वज ॥ ३० ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि न कार्याणि यदा हर।
शरीरभेदमस्माकं मायायाश्च न युज्यते ॥ ३१ ॥
एकस्वरूपा हि वयं भिन्ना कार्यस्य भेदतः।
कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः ॥ ३२ ॥
एक एव त्रिधा भूत्वा वयं भिन्न स्वरूपिणः।
भूता महेश्वर इति तत्त्वं विद्धि सनातनम् ॥ ३३ ॥
मायापि भिन्नरूपेण कमलाख्या[64] सरस्वती।
सावित्री चाथ सन्ध्या च भूता कार्यस्य भेदतः ॥ ३४ ॥
प्रवृत्तेरनुरागस्य नारी मूलं महेश्वर।
रामापरिग्रहात् पश्चात् कामक्रोधादिकोद्भवः ॥ ३५ ॥

---

62 मत्कर्मणि। 63 तववध्यास्तथापरे। 64 कमला च।

अनुरागे तु सञ्जाते कामक्रोधादिकारणे।
विरागहेतुं यत्नेन सान्त्वयन्तीह[65] जन्तवः॥ ३६॥
संगः प्रथम एव स्याद्रागवृक्षात् फलं महत्।
तस्मात् संजायते कामः कामात् क्रोधस्ततो भवेत्॥ ३७॥
वैराग्यश्च निवृत्तिश्च शोकात् स्वाभाविकादपि।
संसारविमुखे हेतुरसंगश्च सदातनः॥ ३८॥
दया तत्र भवेन्नित्यं शान्तिश्चापि महेश्वर।
अहिंसा च तपः शान्तिर्ज्ञानमार्गानुसाधनम्॥ ३९॥
त्वयि तावत्तपोनिष्ठे विसंगिनि दयायुते।
अहिंसा च तथा शान्तिः सदा तव भविष्यति॥ ४०॥
ततो सुखविधौ[66] यत्नस्तव कस्माद्भविष्यति।
अकृते दूषणं यद्यत्तत् सर्वं कथितं तव॥ ४१॥
तस्माद्विश्वहिताय त्वं देवानाञ्च जगत्पते।
परिगृह्णीष्व भार्यार्थे वामामेकां सुशोभनाम्॥ ४२॥
यथा पद्मालया विष्णोः सावित्री च यथा मम।
तथा सहचरी शम्भोर्या स्यात्त्वं गृह्ण सम्प्रति॥ ४३॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः पुरतो हरेः।
तदा जगाद लोकेशं स्मितार्द्दितमुखो[67] हरः॥ ४४॥

ईश्वर उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं ब्रह्मन् विश्वनिमित्ततः।
न स्वार्थतः प्रवृत्तिर्मे सम्यग् ब्रह्मविचिन्तनात्॥ ४५॥
तथापि यत्करिष्यामि तत्ते वक्ष्ये जगद्धितम्।
तच्छृणुष्व महाभाग युक्तमेव वचो मम॥ ४५॥

---

65 शातयन्तीह। 66 ततोऽसुखवधे। 67 स्मितभद्रमुखो हरः।

या मे तेजः समर्था स्याद्ग्रहीतुमिह भागशः।
तां निदेशय भार्यार्थे योगिनीं कामरूपिणीम्॥ ४७॥
योगयुक्ते मयि तथा[68] योगिन्येव भविष्यति।
कामासक्ते मयि पुनर्मोहिन्येव भविष्यति।
तां मे निदेशय ब्रह्मन् भार्यार्थे वरवर्णिनीम्॥ ४८॥
यदक्षरं वेदविदो निगदन्ति मनीषिणः।
ज्योतिःस्वरूपं परमं चिन्तयिष्ये सनातनम्॥ ४९॥
तच्चिन्तायां सदा[69] शक्तो ब्रह्मन् गच्छामि भावनाम्।
तत्र या विघ्नजननी न भवित्रीह सास्तु मे॥ ५०॥
त्वं वा विष्णुरहं वापि परब्रह्मस्वरूपिणः।
अंगभूता महाभाग योग्यं तदनुचिन्तनम्॥ ५१॥
तच्चिन्तया विना नाहं स्थास्यामि कमलासन।
तस्माज्जायां प्रादिशस्व मत्कर्मानुगतां सदा। ५२॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा सर्वजगत्पतिः।
सस्मितं मोदितमना इदं वचनमब्रवीत्॥ ५३॥

ब्रह्मोवाच

अस्तीदृशी महादेव मार्गिता यादृशी त्वया॥ ५४॥
दक्षस्य तनया याभूत् सतीनाम्नी सुशोभना।
सैवेदृशी भवद्भार्या भविष्यति सुधीमती॥ ५५॥
तां त्वदर्थे तपस्यन्तीं तत्प्राप्तिं प्रतिकामिनीम्।
विद्धि त्वं देवदेवेश[70] सर्वेष्वात्मसु वर्तसे। ५६॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्मवचः शेषे भगवान् मधुसूदनः।
यदुक्तं ब्रह्मणा सर्वं तत् कुरुष्वेत्युवाच सः[71]॥ ५७॥

---

68 च या। 69 यदा। 70 सर्वेष्वंगेष वर्तने। 71 ह।

करिष्य इति तेनोक्ते स्वेष्टं देशं प्रजग्मतुः ।
हरिर्ब्रह्मा च मुदितौ सावित्रीकमला-युतौ ॥ ५८ ॥

कामोऽपि वाक्यानि हरस्य[72] श्रुत्वा
चामोदयुक्तो रतिना समित्रः ।
शम्भुं समासाद्य विविक्तरूपी
तस्थौ वसन्तं विनियोज्य शश्वत् ॥ ५९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे हरानुनयने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ सत्या पुनः शुक्लपक्षेऽष्टम्यामुपोषितम् ।
आश्विने मासि देवेशं पूजयामास भक्तितः ॥ १ ॥
इति नन्दाव्रते पूर्णे नवम्यां दिनभागतः ।
तस्यास्तु भक्तिनम्रायाः प्रत्यक्षमभवद्धरः ॥ २ ॥
प्रत्यक्षतो हरं वीक्ष्य सामोदहृदया सती ।
ववन्दे चरणौ तस्य लज्जयावनता नता ॥ ३ ॥
अथ प्राह महादेवः सतीं तद्[73]व्रतधारिणीम् ।
तामिच्छन्नपि भार्यार्थे तस्याश्चर्यफलप्रदः ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच

अनेन त्वद्व्रतेनाहं प्रीतोऽस्मि दक्षनन्दिनि ।
वरं वरय दास्यामि यस्तवाभिमतो भवेत् ॥ ५ ॥

---

72 शृण्वन्नामोदयुक्तः । 73 व्रतचारिणीम् ।

मार्कण्डेय उवाच

जानन्नपीह तद्भावं महादेवो जगत्पतिः।
ऊचेऽथ वरयस्वेति तद्वाक्यश्रवणेच्छया ॥ ६ ॥
सापि त्रपासमाविष्टा नो वक्तुं हृदये स्थितम्।
शशाक बालाभीष्टं यल्लज्जयाच्छादितं यतः ॥ ७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे कामः साभिप्रयं हरं तदा।
वामापरिग्रहे नेत्र-वक्त्रव्यापारलिंगितम् ॥ ८ ॥
सम्प्राप्य विवरश्चापं सन्दधे पुष्पहेतिना।
हर्षणेनाथ बाणेन विव्याध हृदये हरम् ॥ ९ ॥
ततोऽसौ हर्षितः शम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे सतीं मुहुः।
विस्मृत्य च परं ब्रह्मचिन्तनं परमेश्वरः ॥ १० ॥
ततः पुनर्मोहनेन बाणेनैनं मनोभवः।
विव्याध हर्षितः शम्भुर्मोहितश्च तदा भृशम् ॥ ११ ॥
ततो यदासौ मोहस्य हर्षस्य च द्विजोत्तमाः
भावं व्यक्तीचकारैष माययापि विमोहितः ॥ १२ ॥
अथ त्रपां स्वां संस्तभ्य यदा प्राह हरं सती।
ममेष्टं देहि वरद वरमित्यर्थकारकम् ॥ १३ ॥
तदा वाक्यस्यावसानमनपेक्ष्य वृषध्वजः।
भवस्व मम भार्येति प्राह दाक्षायणीं मुहुः ॥ १४ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य साभीष्टफलभावनम्।
तूष्णीं तस्थौ प्रमुदिता वरं प्राप्य मनोगतम् ॥ १५ ॥
सकामस्य हरस्याग्रे तत्र सा चारुहासिनी।
अकरोन्निजभावांश्च हावानपि द्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥
स्वस्य भावान् समादाय श्रृंगाराख्यो रसस्तदा।
तयोर्विवेश विप्रेन्द्राः कलहो वा यथोचितम् ॥ १७ ॥

---

74 यत् तवाभिमतं। 75 विसृज्य।

हरस्य पुरतो रेजे स्निग्धभिन्नाञ्जनप्रभा।
चन्द्राभ्यासेऽङ्कलेखेव[76] स्फटिकोज्ज्वलवर्ष्मणः ॥१८॥
अथ सा तमुवाचेदं हरं दाक्षायणी मुहुः।
पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृह्णीष्व जगत्पते ॥ १९ ॥
एवं स्मितं वचो देवी यदोवाच सती तदा।
मम भार्या भवेत्यूचे पुनः कामेन मोहितः ॥ २० ॥
अथैतद्वीक्ष्य मदनः सरतिः ससखो मुदा।
युक्तो बभूव शश्वच्च आत्मानञ्चाभ्यनन्दयन् ॥ २१ ॥
अथ दाक्षायणी शम्भुं समाश्वास्य द्विजोत्तमाः।
जगाम मातुरभ्यासं हर्षमोहसमन्विता ॥ २२ ॥
हरोऽपि हिमवत्प्रस्थं प्रविश्य च निजाश्रमम्।
दाक्षायणी[77]विप्रलम्भदुःखाद् ध्यानपरोऽभवत् ॥ २३ ॥
विप्रलब्धोऽपि भूतेशो ब्रह्मवाक्यमथास्मरत्।
जायापरिग्रहस्यार्थे यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ २४ ॥
स्मृत्यैव ब्रह्मवाक्यस्य पुरा विश्वासतः परम्।
चिन्तयामास मनसा ब्रह्माणं वृषभध्वजः ॥ २५ ॥
अथ संचिन्त्यमानोऽसौ परमेष्ठी त्रिशूलिनः।
पुरस्तात् प्राविशत्तूर्णमिष्टसिद्धिप्रचोदितः ॥ २६ ॥
यत्रायं हिमवत्प्रस्थे विप्रलब्धो हरः स्थितः।
सावित्री सहितो ब्रह्मा तत्रैव समुपस्थितः ॥ २७ ॥
अथ तं वीक्ष्य धातारं सावित्रीसहितं हरः।
सोत्सुको विप्रलब्धश्च सत्यर्थे तमुवाच ह ॥ २८ ॥

ईश्वर उवाच

ब्रह्मन् विश्वार्थतो दारपरिग्रहकृतौ च यत्।
त्वमात्थ तत्सार्थमिव प्रतिभाति ममाधुना ॥ २९ ॥

---

76 चन्द्राभ्यासेन्द्रलेखेव। 77 ...विप्रलब्ध ..।

अहमाराधितो भक्त्या दाक्षायण्यातिभक्तितः।
तस्या वरमहं दातुं यदायातः प्रपूजितः॥ ३०॥
तत्सकाशे तदा कामो मां विव्याध महेषुभिः।
मायया मोहितश्चाहं तत्प्रतीकारमञ्जसा।
न शक्तः कर्तुमभीतः पुराहं कमलासन॥ ३१॥
तस्याश्च वाञ्छितं ब्रह्मन्नेतदेव मयेक्षितम्।
यदहं स्यां विभो[78] भर्ता व्रतभक्तिमुदायुतः॥ ३२॥
तस्मात्त्वं कुरु विश्वार्थे मदर्थे च प्रजापते।
दक्षो यथा मामामन्त्र्य[79] सुतां दाता तथा द्रुतम्॥ ३३॥
गच्छ त्वं दक्षभवनं कथयस्व वचो मम।
यथा सतीवियोगस्य भंगः स्यात् त्वं तथा कुरु॥ ३४॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युदीर्य महादेवः सकाशेऽस्य प्रजापतेः।
सावित्रीं वीक्ष्य सत्यास्तु विप्रयोगो व्यवर्द्धत॥ ३५॥
तं समाभाष्य लोकेशः कृतकृत्यो मुदान्वितः।
इदं जगाद जगतां हितं पथ्यं च धूर्ज्जटेः॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

यदात्थ भगवञ्छम्भो तद्विश्वार्थं सुनिश्चितम्।
नास्त्येव भवतः स्वार्थो ममापि वृषभध्वज॥ ३७॥
सुताञ्च तुभ्यं दक्षस्तु स्वयमेव प्रदास्यति।
अहञ्चापि वदिष्यामि त्वद्वाक्यं तत्समक्षतः[80]॥ ३८॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युदीर्य महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः।
जगाम दक्षनिलयं स्यन्दनेनातिवेगिना॥ ३९॥

---

78. निजो। 79 समामन्त्र्य। 80 ...समीपतः।

अथ दक्षोऽपि वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा सतीमुखात् ।
चिन्तयामास देयेयं मत्सुता शम्भवे कथम् ॥ ४० ॥
आगतोऽपि महादेवः प्रसन्नः सञ्जगाम ह ।
पुनरेव कथं सोऽपि सुतार्थेऽत्यर्थमीप्सितः ॥ ४१ ॥
प्रस्थाप्यो वा मया तस्य दूतो निकटमञ्जसा ।
नैतद्योग्यं न गृह्णीयाद् यद्येनां विभुरात्मने[81] ॥ ४२ ॥
अथवा पूजयिष्यामि तमेव वृषभध्वजम् ।
मदीयतनयाभर्ता स्वयमेव यथा भवेत् ॥ ४३ ॥
तथैव पूजितः सोऽपि वाञ्छन्त्यातिप्रयत्नतः ।
शम्भुर्भवतु मद्भर्तेत्येवं दत्तञ्च तेन तत् ॥ ४४ ॥
इति चिन्तयतस्तस्य दक्षस्य पुरतो विधिः ।
उपस्थितो हंसरथः सावित्रीसहितस्तदा ॥ ४५ ॥
तं दृष्ट्वा वेधसं दक्षः प्रणम्यावनतः स्थितः ।
आसनञ्च ददौ तस्मै समाभाष्य यथोचितम् ॥ ४६ ॥
ततस्तं सर्वलोकेशं तत्रागमनकारणम् ।
दक्षः पप्रच्छ विप्रेन्द्राश्चिन्ताविष्टोऽपि हर्षितः ॥ ४७ ॥

दक्ष उवाच

तवात्रागमने हेतुं कथयस्व जगद्गुरो ।
पुत्रस्नेहात् कार्यवशादथवाश्रमसमागतः । ४८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टः सुरश्रेष्ठो दक्षेण सुमहात्मना ।
प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं मोदयंस्तं प्रजापतिम् ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु दक्ष यदर्थं ते समीपमहमागतः ।
तल्लोकस्य हितं पथ्यं भवतोऽपि तदीप्सितम् ॥ ५० ॥

---

81 विफलार्थता ।

तव पुत्र्या समाराध्य महादेवं जगत्पतिम्।
यो वरः प्रार्थितः सोऽद्य स्वयमेवागतो गृहम्॥ ५१॥
शम्भुना तव पुत्र्यर्थे त्वत्सकाशमहं पुनः।
प्रस्थापितोऽस्मि यत् कृत्यं श्रेयस्तदवधारय॥ ५२॥
वरं दातुं यदायातस्तावत्प्रभृति शंकरः।
तत्सुताविप्रयोगेण न शर्म लभतेऽञ्जसा॥ ५३॥
लब्धच्छिद्रोऽपि मदनो निचखान तदा भृशम्।
सर्वैः पुष्पकरैर्बाणैरेकदैव जगत्प्रभुम्॥ ५४॥
स बाणविद्धः कामेन परित्यज्यात्मचिन्तनम्।
सतीं विचिन्तयन्नास्ते व्याकुलः प्राकृतो यथा॥ ५५॥
विस्मृत्य प्रस्तुतां वाणीं गणाग्रे विप्रयोगतः।
क्व सतीत्येव गिरिशो भाषतेऽन्यकृतावपि॥ ५६॥
मया यद्वाञ्छितं पूर्वं त्वया च मदनेन च।
मरीच्याद्यैर्मुनिवरैस्तत् सिद्धमधुना सुत॥ ५७॥
त्वत्पुत्र्याराधितः शम्भुः सोऽपि तस्या विचिन्तनात्।
अनुमोदयितुं प्रेप्सुर्वर्तते हिमवद्गिरौ॥ ५८॥
यथा नानाविधैर्भावैः सत्या नन्दाव्रतेन च।
शम्भुराराधितस्तेन तथैवाराध्यते सती॥ ५९॥
तस्मात्त्वं दक्ष तनयां शम्भवेऽर्थे परिकल्पिताम्।
तस्मै[82] देह्यविलम्बेन तेन ते कृतकृत्यता॥ ६०॥
अहं तमानयिष्यामि नारदेन त्वदालयम्।
तस्मै त्वमेनां संयच्छ तदर्थे परिकल्पिताम्॥ ६१॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमेवेति दक्षस्तमुवाच परमेष्ठिनम्।
विधिश्च गतवांस्तत्र गिरिशो यत्र संस्थितः॥ ६२॥

---

82 देहि विधानेन।

गते ब्रह्मणि दक्षोऽपि सदारतनयो मुदा।
अभवत् पूर्णदेहस्तु पीयूषैरिव पूरितः॥ ६३॥
अथ ब्रह्मापि मोदेन प्रसन्नः कमलासनः।
आससाद महादेवं हिमवद्गिरिसंस्थितम्॥ ६४॥
तं वीक्ष्य लोकस्रष्टारमायान्तं वृषभध्वजः।
मनसा संशयं चक्रे सतीप्राप्तौ मुहुर्मुहुः॥ ६५॥
अथ दूरान्महादेवो लोकेशं सामसंयुतम्।
उवाच मदनोन्माथः[83] विधिं स स्मरमानसः॥ ६६॥

ईश्वर उवाच

किमवोचत् सुरश्रेष्ठ सत्यर्थे त्वत्सुतः स्वयम्।
कथयस्व यथास्वान्तं मन्मथेन न दीर्यते॥ ६७॥
बाधमानो विप्रयोगो मामेव च सतीमृते।
अभिहन्ति सुरश्रेष्ठ त्यक्त्वान्यान् प्राणधारिणः॥ ६८॥
सतीति सततं वेद्मि ब्रह्मन् कार्यान्तरेऽप्यहम्।
सा यथा हि मया प्राप्या तद्विधत्स्व तथा द्रुतम्॥ ६९॥

ब्रह्मोवाच

सत्यर्थे यन्ममसुतो वदति स्म वृषध्वज।
तच्छृणुष्व निजं साध्यं सिद्धमित्यवधारय॥ ७०॥
देया तस्मै मया पुत्री तदर्थे परिकल्पिता।
ममापीष्टमिदं कर्म त्वद्वाक्यादधिकं पुनः॥ ७१॥
मत्पुत्त्र्याराधितः शम्भुरेतदर्थे स्वयं पुनः।
सोऽप्यन्विच्छति तां यस्मात्तस्माद्देया मया हरे॥ ७२॥
शुभे लग्ने मुहूर्ते च समागच्छतु मेऽन्तिकम्[84]।
तदा दास्यामि तनयां भिक्षार्थे शम्भवे विधे॥ ७३॥

---

83 विवशः स्मरशासनः। 84 मे गृहम्।

इत्यवोचन्मुदा दक्षस्तस्मात्त्वं वृषभध्वज ।
शुभे मुहूर्ते तद्वेश्म गच्छ तामनुयाचितुम् ॥ ७४ ॥

ईश्वर उवाच

गमिष्ये भवता सार्द्धं नारदेन महात्मना ।
द्रुतमेव जगत्पूज्य तस्मात्त्वन्नारदं स्मर ॥ ७५ ॥
मरीच्यादीन् दश तथा मानसानपि संस्मर ।
तैः सार्द्धं दक्षनिलयं गमिष्येऽहं गणैः सह ॥ ७६ ॥

ततः स्मृतास्ते कमलासनेन
सनारदा ब्रह्मसुता मनोजवाः ।
समागता यत्र हरो विधिश्च
तत्रागताः काममवेत्य चिन्ताम् ॥ ७७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सतीयाचने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततः समागताः सर्वे मानसाश्च सनारदाः ।
विधेः स्मरणमात्रेण वातेनेव विनोदिताः ॥ १ ॥
तैः सार्धं ब्रह्मणा शम्भुः सगणो दक्षमन्दिरम् ।
जगाम मोदयुक्तोऽथ काले तत्कर्मयोगिनि ॥ २ ॥
गणाः शंखांश्च पटहान् डिण्डिमांस्तूर्यवंशकान् ।
वादयन्तो मुदायुक्ता अनुगच्छन्ति शंकरम् ॥ ३ ॥
केचित्तालं करतलैः कुर्वन्तोऽघ्रितलस्वनम् ।
विमानैरतिवेगैः स्वैरनुयान्ति वृषध्वजम् ॥ ४ ॥

कोलाहलं प्रकुर्वन्तस्तथा नानाविधान् रवान् ।
गणा अनेकाकृतयः शब्दयोगेन निर्ययुः ॥ ५ ॥
ततो देवा मुदा युक्ता गन्धर्वाप्सरसो गणाः ।
वाद्यैर्मोदैस्तथा नृत्यैरन्वीयुर्वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥
तेषां शब्देन विप्रेन्द्रा गन्धर्वाणां गरीयसाम् ।
गणानाञ्च दिशः सर्वाः पूरिता च वसुन्धरा ॥ ७ ॥
कामोऽपि सगणः शम्भुं सशृंगाररसादिभिः ।
मोदयन् मोहयन् कायमन्वियात् स समक्षतः ॥ ८ ॥
हरे गच्छति भार्यार्थे तदानीं सकलाः सुराः ।
ब्रह्माद्याः स्वयमेवाशु वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् ॥ ९ ॥
दिशः सर्वाः सुप्रसन्ना बभूवुर्द्विजसत्तमाः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः पुष्पवृष्टिरजायत ॥ १० ॥
ववुर्वाताः सुरभयो वृक्षाश्चापि सुपुष्पिताः ।
बभूवुः प्राणिनः स्वस्था अस्वस्था येऽपि केचन ॥ ११ ॥
हंससारसकादम्बा नीलकम्बुश्च चातकाः ।
चुक्रुशुर्मधुरान् शब्दान् प्रेरयन्त इवेश्वरम् ॥ १२ ॥
भुजगो व्याघ्रकृत्तिश्च जटा चन्द्रकला तथा ।
जगाम भूषणत्वञ्च तेनापि परिदीपितः ॥ १३ ॥
ततः क्षणेन बलिना बलीवर्देन वेगिना ।
सब्रह्मनारदाद्यैश्च प्राप दक्षालयं हरः ॥ १४ ॥
ततो दक्षो महातेजा अभ्युत्थाय स्वयं हरम् ।
ब्रह्मदींश्चाददौ तेषामासनानि यथोचितम् ॥ १५ ॥
कृत्वा यथोचितां तेषां पूजां पाद्यादिभिस्तथा ।
चकार संविदं दक्षो मुनिभिर्मानसैः पुनः ॥ १६ ॥
ततः शुभे मुहूर्ते तु लग्ने च द्विजसत्तमाः ।
सतीं निजसुतां दक्षो ददौ हर्षेण शम्भवे ॥ १७ ॥
उद्वाहविधिना सोऽपि पाणिं जग्राह हर्षितः ।

दाक्षायण्या वरतनोस्तदानीं वृषभध्वजः ॥ १८ ॥
ब्रह्माद्य नारदाद्याश्च मुनयः सामगीतिभिः ।
ऋचा यजुर्भिः सुश्राव्यैस्तोषयामासुरीश्वरम् ॥ १९ ॥
वाद्यं चक्रुर्गणाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पुष्पवृष्टिश्च ससृजुर्मेघा गगनसंगताः ॥ २० ॥
अथ शम्भुमुपागत्य गरुडेनातिवेगिना ।
सार्धं कमलया चेदमुवाच गरुडध्वजः ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच

स्निग्धनीलाञ्जनश्याम-शोभया शोभसे हर ।
दाक्षायण्या यथा चाहं प्रातिलोम्येन[85] पद्मया ॥ २२ ॥
कुरु त्वमनया सार्धं रक्षां देवस्य वा नृणाम् ॥ २३ ॥
अनया सह संसारसारिणां मंगलं सदा ।
कुरु दस्यून् यथायोग्यं हनिष्यसि च शंकर ॥ २४ ॥
य एवैनां साभिलाषो दृष्ट्वा श्रुत्वाथवा भवेत् ।
तं हनिष्यसि भूतेश नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विति[86] सर्वज्ञः प्रोवाच परमेश्वरम् ।
प्रहृष्टमानसं प्रीत्या प्रसन्नवदनो द्विजाः ॥ २६ ॥
अथ ब्रह्मा तदा दृष्ट्वा दक्षजां चारुहासिनीम् ।
स्मराविष्टमना वक्त्रं वीक्षांचक्रे तदीयकम् ॥ २७ ॥
मुहुर्मुहुस्तदा ब्रह्मा पश्यति स्म सतीमुखम् ।
तदेन्द्रियविकारश्च प्राप्तवानवशः पुनः ॥ २८ ॥
अथ तस्य पपाताशु तेजो भूमौ द्विजोत्तमाः ।
तज्जलदहनाभासं[87] मुनीनां पुरतस्तदा ॥ २९ ॥

---

85 प्रतिलोमेन । 86 तं शर्वः । 87 ···उज्ज्वलं ।

ततस्तस्मात् समभवंस्तोयदाः शब्दसंयुताः ।
सम्बर्तश्च तथावर्तः पुष्करो द्रोण एव च ।
गर्जन्तश्चाथ मुञ्चन्तस्तोयानि द्विजसत्तमाः ॥ ३० ॥
तैस्तु सञ्छादिते व्योम्नि तेषु गर्ज्जत्सु शंकरः ।
पश्यन् दाक्षायणीं देवीं भृशं कामेन मोहितः ॥ ३१ ॥
मोहितोऽप्यथ कामेन तदा विष्णुवचः स्मरन् ।
इयेष हन्तुं ब्रह्माणं शूलमुद्यम्य शंकरः ॥ ३२ ॥
शम्भुनोद्यमिते शूले विधिं हन्तुं द्विजोत्तमाः ।
मरीचिनारदाद्यास्ते चक्रुर्हाहाकृतिं तदा ॥ ३३ ॥
दक्षो मैवं मैवमिति पाणिमुद्यम्य शंकितः ।
वारयामास भूतेशं क्षिप्रमेत्य पुरोगतः ॥ ३४ ॥
अथाग्रे मीलितं वीक्ष्य तदा दक्षं महेश्वरः ।
प्रत्युवाचाप्रियमिदं स्मारयन् वैष्णवीं गिरम् ॥ ३५ ॥

ईश्वर उवाच

नारायणेन विप्रेन्द्र यदिदानीमुदीरितम् ।
मयाप्यंगीकृतं कर्तुं तदिहैव प्रजापते ॥ ३६ ॥
एनां यः साभिलाषः सन् वीक्षते तं हनिष्यसि ।
इति वाचन्तु सफलमेनं हत्वा करोम्यहम् ॥ ३७ ॥
साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत् ।
अभवत्त्यक्ततेजास्तु ततो हन्मि कृतागसम् ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तमेवं वादिनं विष्णुः क्षिप्रं भूत्वा पुरःसरः ।
इदमूचे वारयंस्तं हन्तुं सर्वजगत्प्रभुः ॥ ३९ ॥

---

88. परम् ।

श्रीभगवानुवाच

न हनिष्यसि भूतेश स्रष्टारं जगतां वरम्[४४] ।
अनेनैव सती भार्या भवदर्थे प्रकल्पिता ॥ ४० ॥
प्रजाः स्रष्टुमयं शम्भो प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
अस्मिन् हते जगत्स्रष्टा नास्त्यन्यः प्राकृतोऽधुना ॥ ४१ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि करिष्यामः कथं पुनः ।
अनेनापि मया चैव भवता च समञ्जसम् ॥ ४२ ॥
एकस्मिन्निहतेऽमीषु कस्तत्कर्म करिष्यति ।
तस्मान्न वध्यो भवता विधाता वृषभध्वज ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच

प्रतिज्ञां पूरयिष्यामि हत्वैनं चतुराननम् ।
अहमेव प्रजाः स्रक्ष्ये स्थावराणि चराणि च ॥ ४४ ॥
अन्यं स्रक्ष्ये विधातारमथवाहं स्वतेजसा ।
स एव सृष्टिकर्ता स्यात् सर्वदा मदनुज्ञया ॥ ४५ ॥
हत्वैनं विधिमेवाहं प्रतिज्ञां पालयन् विभो ।
स्रष्टारमेकं स्रक्ष्यामि न वारय चतुर्भुज ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा गिरिशस्य चतुर्भुजः ।
स्मितप्रसन्नवदनः पुनर्मैवमितीरयन् ॥ ४७ ॥
प्रतिज्ञापूरणं कर्तुं योग्यमात्मनि नो भवेत् ।
इत्युवाचाभिवदनमीश्वरस्य द्विजोत्तमाः ॥ ४८ ॥
ततः पुनः शम्भुरूपे कथमात्मा विधिर्मम ।
लक्ष्यते भिन्न एवायं प्रत्यक्षेणाग्रतः स्थितः ॥ ४९ ॥
अथ प्रहस्य भगवान् मुनीनां पुरतस्तदा ।
इदमूचे महादेवं तोषयन् गरुडध्वजः ॥ ५० ॥

श्रीभगवानुवाच

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा।
न चाहं युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्वं सदातनम् ॥ ५१ ॥
प्रधानस्याप्रधानस्य भागाभागस्वरूपिणः।
ज्योतिर्मयस्य भागो मे युवामेकोऽहमंशकः ॥ ५२ ॥
कस्त्वं कोऽहञ्च को ब्रह्मा ममैव परमात्मनः।
अंशत्रयमिदं भिन्नं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥ ५३ ॥
चिन्तयस्वात्मनात्मानं संस्तवं कुरु चात्मनि।
एकत्रं ब्रह्मवैकुण्ठशम्भूनां हृद्गतं कुरु ॥ ५४ ॥
शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव धर्मिणः।
अंगानि मे तथैकस्य भागत्रयमिदं हर ॥ ५५ ॥

यज्ज्योतिरग्र्यं स्वपरप्रकाशं
कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम्।
नित्यञ्च दीर्घादिविशेषणाद्यै-
र्हीनं परं तच्च वयं न भिन्नाः ॥ ५६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महादेवो विमोहितः।
जानन् स चाप्यभिन्नत्वं[89] सद्विस्मृत्यान्यचिन्तनात् ॥ ५७ ॥
पुनः प्रपच्छ गोविन्दमनन्यत्वं त्रिभेदिनाम्।
ब्रह्मविष्णुत्र्यम्बकानामेकस्य च विशेषकम् ॥ ५८ ॥
ततो नारयणः पृष्टः कथयामास शम्भवे।
अनन्यत्वं त्रिदेवानामेकत्वञ्च व्यदर्शयत् ॥ ५९ ॥

श्रुत्वा ततो विष्णुमुखाब्जकोशा-
दनन्यतां विष्णुविधीशतत्त्वे।
दृष्ट्वा स्वरूपं च जघान नैनं
विधिं मृडः पुष्पमधुप्रकाशकम् ॥ ६० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिदेवानामेकत्वप्रतिपादकः एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

89 तद्विस्मृत्य।

द्वादशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

अनन्यत्वं त्रिदेवानां यज्जगाद जनार्दनः।
शम्भवे तद्वयं श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम॥ १॥
एकत्वं दर्शयामास कथं वा गरुडध्वजः।
तत् समाचक्ष्व विप्रेन्द्र परं कौतूहलं हि नः॥ २॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं मुनयो गुह्यं परमं प्रयतं परम्।
त्रिदेवानामनन्यत्वं तथैवैकत्वदर्शनम्॥ ३॥
हरेण पृष्टो गोविन्दस्तं समाभाष्य सादरम्।
इदमाह मुनिश्रेष्ठा अभिन्नप्रतिपादकम्॥ ४॥

श्रीभगवानुवाच

इदं तमोमयं सर्वमासीद्भुवनवर्जितम्।
अप्रज्ञातमलक्ष्यञ्च प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ ५॥
न दिवारात्रिभागोऽत्र नाकाशं न च काश्यपी।
न ज्योतिर्न जलं वायुर्नान्यत् किंचन संस्थितम्॥ ६॥
एकमासीत् परं ब्रह्म सूक्ष्मं नित्यमतीन्द्रियम्।
अव्यक्तं ज्ञानरूपेण द्वैतहीनविशेषणम्॥ ७॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ द्वौ सर्वसंहितौ।
स्थितः कालोऽपि भूतेश जगत्कारणमेककम्॥ ८॥
यदेकं परमं ब्रह्म तत्स्वरूपात् परं हर।
रूपत्रयमिदं नित्यं तस्यैव जगतः पतेः॥ ९॥
कालो नामापरं रूपमनाद्यं[10] तत्तु कारणम्।
सर्वेषामेव भूतानामवच्छेदेन संगतः॥ १०॥

---

10 रूपमनाद्यं तंतु।

ततस्तत् स्वप्रकाशेन भास्वद्रूपं प्रकाशते ।
पुरा सृष्ट्यर्थमतुलं क्षोभयन् प्रकृतिं स्वयम् ॥ ११ ॥
संक्षुब्धायान्तु प्रकृतौ महत्तत्त्वमजायत ।
महत्तत्त्वात्ततः पश्चादहंकारस्त्रिधाभवत् ॥ १२ ॥
अहंकारे तु संजाते शब्दतन्मात्रतस्ततः ।
आकाशमसृजद्विष्णुरनन्तं मूर्तिवर्जितम् ॥ १३ ॥
ततस्तु रसतन्मात्रादपः सृष्ट्वा महेश्वरः ।
निराधारः स्वयं दध्रे तास्तदा निजमायया ॥ १४ ॥
ततस्त्रिगुणसाम्येन संस्थितां प्रकृतिं प्रभुः ।
पुनः संक्षोभयामास सृष्ट्यर्थं परमेश्वरः ॥ १५ ॥
ततः सा प्रकृतिस्तासु वीजं त्रिगुणभागवत् ।
अप्सु संसर्जयामास जगद्वीजं निराकुलम्[91] ॥ १६ ॥
तद्धि[92] वृद्धं क्रमेणैव हैममण्डमभून्महत् ।
जग्राहापः समस्तास्ता गर्भ एव तदण्डकम् ॥ १७ ॥
अप्सु स्थितासु हैमाण्डगर्भे विष्णुस्तदण्डकम् ।
स्वयैव मायया दध्रे ब्रह्माण्डमतुलं पुनः ॥ १८ ॥
वारिणा वह्निभिश्चैव वायुभिर्नभसा तथा ।
बहिस्तदण्डकं छन्नं सर्वपार्श्वे समन्ततः ॥ १९ ॥
सप्तसागरमानेन तथा नद्यादि[93]मानतः ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं तदन्यत्तु बहिर्गतम् ॥ २० ॥
तदन्तः स्वयमेवासौ विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपधृक् ।
दैवं वर्षमुषित्वैव प्रविभेद तदण्डकम् ॥ २१ ॥
तस्मात् समभवन्मेरुरुत्पन्नोऽस्मिन् महेश्वर ।
जरायुः[94] पर्वता जाता समुद्राः सप्त तज्जलात् ॥ २२ ॥
तन्मध्ये गन्धतन्मात्रात् पृथिवी समजायत ।
ईश्वरेण प्रकृत्या च योजिता त्रिगुणात्मिका ॥ २३ ॥

---

91 निरर्गलम् । 92 तद्विवृद्धं । 93 नद्यादिना ततः । 94 सर्वतो भागे ।

प्रागेव पर्वतादिभ्यः समुत्पन्ना वसुन्धरा ।
ब्रह्माण्डखण्डसंयोगादृढा भूता तु सा भृशम् ॥ २४ ॥
तस्यामेव स्थितो ब्रह्मा सर्वलोकगुरुः स्वयम् ।
यदा ब्रह्माण्डमध्यस्थो ब्रह्मा व्यक्तो न चाभवत् ।
तदैव रूपतन्मत्रात्तेजः सम्यगजायत ॥ २५ ॥
वायुस्तु स्पर्शतन्मात्रात् प्रकृत्या विनियोजितात् ।
बभूव सर्वभूतानां प्राणभूतः समन्ततः ॥ २६ ॥
अद्भिस्तेजोभिरतुलैर्वायुभिर्नभसा तथा ।
अन्तर्वहिस्तदण्डस्य व्याप्तमन्यत्तु गर्भगम् ॥ २७ ॥
ततो ब्रह्मशरीरन्तु त्रिधा चक्रे महेश्वरः ।
प्रधानेच्छावशाच्छम्भो त्रिगुणत्रिगुणीकृतम् ॥ २८ ॥
तदूर्द्धभागः संजातश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः ।
पद्मकेशरगौरांग-कायो ब्राह्मो महेश्वरः ॥ २९ ॥
तन्मध्यभागो नीलांग एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।
शंखचक्रगदापद्मपाणिः कायः स वैष्णवः ॥ ३० ॥
अभवत्तदधोभागः पंचवक्त्रश्चतुर्भुजः ।
स्फटिकाभ्रसमः शुक्लः स कायश्चन्द्रशेखरः ॥ ३१ ॥
इतस्ततो ब्राह्मकाये सृष्टिशक्तिं न्ययोजयत् ।
स्वयमेवाभवत् स्रष्टा ब्रह्मरूपेण लोकभृत् ॥ ३२ ॥
स्थितिशक्तिं निजां मायां प्रकृत्याख्यां न्ययोजयत् ।
महेशो वैष्णवे काये ज्ञानशक्तिं निजां तथा । ३३ ॥
स्थितिकर्ताभवद्विष्णुरहमेव महेश्वर ॥ ३४ ॥
सर्वशक्तिनियोगेन सदा तद्रूपता मम ।
अन्तशक्तिं तथाकाये शाम्भवे च न्ययोजयत् ॥ ३५ ॥
अन्तकर्ताभवच्छम्भुः स एव परमेश्वरः ।
ततस्त्रिषु शरीरेषु स्वयमेव प्रकाशते ॥ ३६ ।
ज्ञानरूपं परं ज्योतिरनादिर्भगवान् प्रभुः ।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणादेक एव महेश्वरः ॥ ३७ ॥
ब्रह्मा विष्णुःशिवश्चेति संज्ञामाप पृथक् पृथक् ।
अतस्त्वञ्च विधाता च तथाहमपि न पृथक् ।
एवं शरीरं रूपञ्च ज्ञानमस्माकमन्तरम् ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य विष्णोरमिततेजसः ।
हर्षोत्फुल्लमुखः प्रोचे पुनरेव जनार्दनम् ॥ ३९ ॥

ईश्वर उवाच

एक एव महेशश्चेत् ज्योतीरूपो निरंजनः ।
का वा मायाथ कः कालः का वा प्रकृतिरुच्यते ॥ ४० ॥
के पुमांसस्ततोभिन्नाभिन्नाश्चेत् कथमेकता ।
तन्मे वदस्व गोविन्द[95] तत्प्रभावं यथागतम् ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पश्यसि सदा ध्यानस्थः परमेश्वरम् ।
आत्मन्यात्मस्वरूपं तज्ज्योतीरूपं सदक्षरम्[96] ॥ ४२ ॥
मायाञ्च प्रकृतिं कालं पुरुषञ्च स्वयं विभो ।
ज्ञाता त्वं ध्यानयोगेन यस्माद्ध्यानपरो भव ॥ ४३ ॥
मायया मोहितो यस्मादधुना त्वस्मदीयया ।
ततो विस्मृत्य परमं ज्योतिर्हि वनितारतः ॥ ४४ ॥
अधुना कोपयुक्तस्त्वं विस्मृत्यात्मानमात्मनि ।
यां पृच्छसि प्रकृत्यादिरूपाणि प्रमथाधिप ॥ ४५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तत्र महादेवः श्रुत्वा वाक्यं सुनिश्चितम् ।
मुनीनां पश्यतां योगयुक्तो ध्यानपरोऽभवत् ॥ ४६ ॥

---

95 तन्माहात्म्यं । 96 सनातनम् ।

आसाद्य बन्धं पर्यंकं निर्निमीलितलोचनः ।
आत्मानञ्चिन्तयामास तदात्मनि महेश्वरः ॥ ४७ ॥
परं चिन्तयतस्तस्य शरीरं विवभौ शुभम् ।
तेजोभिरुज्वलं द्रष्टुं नशेकुर्मुनयस्तदा ॥ ४८ ॥
तत्क्षणात् ध्यानयुक्तश्च शम्भुः स विष्णुमायया ।
परित्यक्तोऽति विवभौ तपस्तेजोभिरुज्ज्वलः ॥ ४६ ॥
ये ये गणास्तदा तस्थुः सेवया शंकरान्तिके ।
न तेऽपि वीक्षितुं शेकुः शंकरं वा दिवाकरम् ॥ ५० ॥
स्वयमेव तदा विष्णुः समाधिमनसो भृशम् ।
प्रविवेश शरीरान्तर्ज्योतीरूपेण धूर्जटेः ॥ ५१ ॥
प्रविश्य तस्य जठरे यथा सृष्टिक्रमः पुरा ।
तथैव दर्शयामास स्वयं नारायणोऽव्ययः ॥ ५२ ॥
न स्थूलं न च सूक्ष्मञ्च न विशेषणगोचरम् ।
नित्यानन्दं निरानन्दमेकं शुद्धमतीन्द्रियम् ॥ ५३ ॥
अदृश्यं सर्वद्रष्टारं निर्गुणं परमं पदम् ।
परमात्मगमानन्दं जगत्कारणकारणम् ॥ ५४ ॥
प्रथमं ददृशे शम्भुरात्मानं तत्स्वरूपिणम् ।
तत्र प्रविष्टमनसा बहिर्ज्ञानविवर्जितः ॥ ५५ ॥
तस्यैव रूपं प्रकृतिं सृष्ट्यर्थे भिन्नतां गताम् ।
ददर्श तस्यैवाभ्यासे पृथग्भूतामिवैकिकाम् ॥ ५६ ॥
पुरुषांश्च ददर्शासौ यथैव [97]वसतस्ततः ।
अग्नेरिव कणात् स्थूलादजस्रं द्विजसत्तमाः ॥ ५७ ॥
तदेव कालरूपेण भासते च मुहुर्मुहुः ।
सृष्टिस्थित्यन्तयोगानामवच्छेदेन[98] कारणम् ॥ ५८ ॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालोऽपि च मुहुर्मुहुः ।
अभिन्नान् भाषमानांश्च सर्गार्थे भिन्नतां गताम् ॥ ५६ ॥

---

97 रमतः । 98 भवच्छेदन-कारणम् ।

पृथग्भूतानभिन्नांश्च ददृशे चन्द्रशेखरः।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ६० ॥
सप्रधानस्वरूपेण कालरूपेण भासते।
तथापुरुषरूपेण संसारार्थं प्रवर्तते ॥ ६१ ॥
भोगार्थं प्राणिनां शश्वच्छरीरे च प्रवर्तते।
सैव माया या प्रकृतिः सा मोहयति शंकरम् ॥ ६२ ॥
हरिं तथा विरिञ्चिञ्च तथैवान्यजनुर्भवान्।
मायाख्या प्रकृतिर्जाता जन्तुं सन्मोहयत्यपि ॥ ६३ ॥
सा स्त्रीरूपेण च सदा लक्ष्मीभूता हरेः प्रिया।
सा सावित्री रतिः सन्ध्या सा सती सैव वीरिणी ॥ ६४ ॥
बुद्धिरूपा स्वयं देवी चण्डिकेति च गीयते।
इति स्वयं ददर्शाशु ध्यानमार्गगतो हरः ॥ ६५ ॥
महदादि प्रभेदेन तथा सृष्टिक्रमं स्वयम् ॥ ६६ ॥
दर्शयित्वा हरिः कालं प्रकृतिं पुरुषांस्तथा।
तथान्यदर्शयामास [99]तच्छरीरं द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिदेवानामनन्यत्व-प्रतिपादने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्माण्डसंस्थानं दर्शयामास शम्भवे।
ववृधे तोयराशिस्थं ब्रह्माण्डञ्च यथापुरा ॥ १ ॥
तन्मध्ये पद्मगर्भाभं ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम्।
ज्योती रूपं प्रकाशार्थं सृष्ट्यर्थंच पृथग्गतम्[100] ॥ २ ॥
शरीरिणञ्च ददृशे ब्रह्माण्डान्तर्गतं मुहुः।
चतुर्भुजं प्रकाशान्तं ज्योतिर्भिः कमलासनम् ॥ ३ ॥

99 तच्छणुध्वं। 100 पृथक् पृथक्।

तत्रैव च त्रिधाभूतं वपुर्ब्राह्मयं ददर्श सः।
ऊर्द्ध्वमध्यान्तभागैश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ ४ ॥
यथोर्ध्वभागो वपुषो ब्रह्मत्वमगमत्तदा।
मध्यं यथा विष्णुभूतं ददर्शान्तस्य शम्भुताम् ॥ ५ ॥
एकमेव शरीरन्तु त्रिधाभूतं मुहुर्मुहुः।
हरो ददर्श स्वे गर्भे तथा सर्वमिदं जगत् ॥ ६ ॥
कदाचिद्वैष्णवं कायं ब्राह्मे काये लयं व्रजेत्।
ब्राह्मं तथा वैष्णवे च शाम्भवे वैष्णवं तथा ॥ ७ ॥
शाम्भवं वैष्णवे काये ब्राह्मं वाप्यथ शाम्भवे।
गच्छन्तं लीनतां शम्भुरेकताञ्च मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
ददर्श वामदेवोऽपि भिन्नञ्चाप्यपृथग्गतम्।
परमात्मनि गच्छन्तं लीनतां तद्वपुः स्वयम् ॥ ९ ॥
तन्मध्ये पृथिवीं शम्भुर्ददर्श विततां जले।
महापर्वतसंघातैर्विरलं स्थगितन्ततः ॥ १० ॥
पुनर्ददर्श ब्रह्माणं कुर्वन्तं स्वर्गमादितः।
आत्मानञ्च पृथग्भूतं विष्णुञ्च गरुडासनम् ॥ ११ ॥
दक्षं प्रजापतिं तत्र तथैव च निजान् गणान्।
मरीच्यादीन् दश तथा वीरिणीञ्च तथा सतीम् ॥ १२ ॥
सन्ध्यां रतिं च कन्दर्पं श्रृंगारं सवसन्तकम्।
हावान् भावांस्तथा मारान् ऋषीन् देवान् मरुद्गणान् ॥ १३ ॥
मेघांश्च चन्द्रं सूर्यञ्च वृक्षान् वल्लीस्तृणानि च।
सिद्धान् विद्याधरान् यक्षान् राक्षसान् किन्नरांस्तथा ॥ १४ ॥
मानुषांश्च भुजंगांश्च ग्राहान्मत्स्यांश्च कच्छपान्।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च कृमिकीटपतंगकान् ॥ १५ ॥
काञ्चिद्ददर्श वनितां द्वन्द्वभावं प्रकुर्वतीम्।
उत्पन्नमुत्पद्यन्तंच विपद्यन्तञ्च कञ्चन ॥ १६ ॥

हसतो रमतः कांश्चित् कांश्चिद्विलपतस्तथा।
धावतश्चापराञ्छम्भोर्ददर्श परमेश्वरः॥ १७॥
दिव्यालंकारसंछन्ना माला चन्दनचर्च्चिताः।
वीक्षाञ्च चक्रिरे केचिच्छम्भुना क्रीडिता मुहुः॥ १८॥
स्तुवन्तः प्रस्तुवन्तश्च शम्भुं विष्णुं तथा विधिम्।
केचिद्ददृशिरे तेन मुनयश्च तपोधनाः॥ १९॥
तपांसि चरतः केचिन्नदीतीरे तपोवने।
स्वाध्यायवेदनिरताः पाठ्यन्तश्चैव केचन॥ २०॥
तथैव सागराः सप्त नद्यो देवसरांसि च।
तथैव पर्वतस्थोऽसौ ददृशे शम्भुना स्वयम्॥ २१॥
मायालक्ष्मीस्वरूपेण हरिं सन्मोहयत्यलम्।
सतीरूपा तथात्मानं मोहयन्तीति शंकरः॥ २२॥
सत्या सार्धं स्वयं रेमे कैलासे मेरुपर्वते।
मन्दरे देवविपिने शृंगाररससेविते॥ २३॥
सतीदेहं तथा त्यक्त्वा जाता हिमवतः सुता।
यथा प्राप पुनस्तान्तु यथा चैवान्धको हतः॥ २४॥
कार्तिकेयः समुत्पन्नो यथाहंस्तारकाह्वयम्।
तत्सर्वं विस्तरात् सम्यग् ददर्श वृषभध्वजः॥ २५॥
हिरण्यकशिपुर्जघ्ने नरसिंहस्वरूपिणा।
यथा हतः कालनेमिर्हिरण्याक्षो यथा हतः॥ २६॥
विष्णुना यादृशं युद्धं [1]दानवौघैः पुराकृतम्।
यथा ये ये च निहतास्तत्सर्वं दृष्टवान् हरः॥ २७॥
जगत्प्रपञ्चान् [2]ब्रह्मादीन्नक्षत्रग्रहमानुषान्।
सिद्धविद्याधरादींश्च दृष्ट्वा दृष्ट्वा पृथक् पृथक्॥ २८॥
आत्मानं तान् संहरन्तं ददृशे शम्भुरीश्वरः।
संहारान्ते ददर्शासौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्॥ २९॥

---

1 दानवेन्द्रैः। 2 दक्षादीन्।

शून्यं समभवत्सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ३० ॥
शून्ये जगति सर्वस्मिन् ब्रह्मा विष्णुशरीरगः ।
लीनः शम्भुश्च तस्यैव शरीरं प्रविवेश ह ॥ ३१ ॥
एकमेव ददर्शासौ विष्णुमव्यक्तरूपिणम् ।
नान्यत्किंचिद्ददर्शासौ तदा विष्णुमृते हरः ॥ ३२ ॥
अथ विष्णुश्च ददृशे लयं त्वं परमात्मनि ।
भासमानं परं तत्त्वे ज्योतीरूपे सनातने ॥ ३३ ॥
ततो ज्ञानमयं नित्यमानन्दं ब्रह्मणः परम् ।
केवलं ज्ञानगम्यञ्च ददर्शान्यन्न किंचन ॥ ३४ ॥
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च जगतः परमात्मनि ।
ददर्श स्वशरीरान्तः सर्गस्थित्यन्तसंयमान् ॥ ३५ ॥
प्रकाशं परमात्मानं शान्तं नित्यमतीन्द्रियम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म ददर्शान्यन्न किञ्चन ॥ ३६ ॥
को वा विष्णुर्हरः को वा को ब्रह्मा किमिदं जगत् ।
इति भेदो न जगृहे शम्भुना परमात्मनः ॥ ३७ ॥
एवं सम्पश्यतस्तस्य शरीराभ्यन्तराद्बहिः ।
निःससाराथ मायादि प्रविवेश वृषध्वजम् ॥ ३८ ॥
अनन्यत्वं पृथक्त्वञ्च दर्शयित्वा जनार्दनः ।
शम्भवे तच्छरीरात्तु बहिर्भूतस्ततो द्रुतम् ॥ ३९ ॥
अथ त्यक्तसमाधेस्तु हरस्य चलितात्मनः ।
सतीं मनो जगामाशु मोहितस्य च मायया ॥ ४० ॥
ततो मुहुर्हरो वक्त्रं दाक्षायण्या मनोहरम् ।
प्रबुद्धकमलाकारं वीक्षांचक्रे द्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥
ततो दक्षमरीच्यादीन् स्वगणान् कमलासनम् ।
विष्णुञ्च तत्र संवीक्ष्य शंकरो विस्मितोऽभवत् ॥ ४२ ॥
अथ तं विस्मयाविष्टं महादेवं वृषध्वजम् ।
स्मितप्रफुल्लवदनं हरमाह जनार्दनः ॥ ४३ ॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यत् पृष्टं त्वयैकत्वे भिन्नतायाञ्च शंकर ।
त्रयाणामथ देवानां तज्ज्ञातमधुना त्वया ॥ ४४ ॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालो माया निजान्तरे ।
त्वया ज्ञाता महादेव कीदृशास्ते च के पुनः ॥ ४५ ॥
एकं ब्रह्म सदा शान्तं नित्यञ्च परमं महत् ।
तत् कथं भिन्नतां जातं दृष्टं तत् कीदृशं त्वया ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टो भगवता भगवान् वृषभध्वजः ।
जगाद हरये तथ्यमेतद्वाक्यं द्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥

ईश्वर उवाच

एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं
ब्रह्मास्ति तस्मान्नहि किंचिदीदृशम् ।
तस्मादभिन्नं सकलं जगद्धरेः
कालादिरूपाणि च सृष्टिहेतुः ॥ ४८ ॥
समस्तभूतप्रभवं निरञ्जनं
वयञ्च तस्यैव [3]सदांशरूपिणः ।
सृष्टिस्थितिं संयमनं तदीरितं
रूपत्रयं तस्य विभाति भेदतः ॥ ४९ ॥
नाहं न च त्वं न हिरण्यगर्भो
न कालरूपं प्रकृतिं न चान्यत् ।
तत् प्रेरणां कर्तुमलं च किञ्चि-
द्विनापि रूपं सदपीह तस्य ॥ ५० ॥

---

3 सदात्मरूपिणः ।

श्रीभगवानुवाच

इतितत्त्वं त्वया प्रोक्तं ज्ञातञ्च वृषभध्वज।
तदंशभूतास्तु वयं ब्रह्मविष्णुपिनाकिनः ॥ ५१ ॥
तस्मात् त्वया न वध्योऽयं विरिञ्चिस्तव चेद्भवेत्।
एकता विदिता शम्भो ब्रह्मविष्णुपिनाकिनाम् ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः।
न जघान महादेवो विधिं दृष्ट्वाथ चैकताम् ॥ ५३ ॥
इति वः कथितं [4]विष्णुर्यथानन्यत्वमादिशत्।
शम्भवे प्रस्तुतं तद्वः कथयामि पुनर्द्विजाः ॥ ५४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे हरकोपोपशमने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

जलदेष्वथ गर्जत्सु महादेवः सतीपतिः।
विसृज्य[5] विष्णुप्रभृतिं जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ १ ॥
आरोप्य वृषभे तुंगे सतीमामोदशालिनीम्।
जगाम हिमवत्प्रस्थं रम्यं कुञ्जसमन्वितम् ॥ २ ॥
अथ सा शंकराभ्यासे सुदती चारुहासिनी।
विरेजे वृषभस्थाति चन्द्रान्ते कालिकोपमा ॥ ३ ॥
ब्रह्मादयश्च ते सर्वे मरीच्याद्याश्च मानसाः।
दक्षोऽपि सर्वे मुदिता अभवन् ससुरासुराः ॥ ४ ॥

---

4 विष्णोर्मायां नान्यत्वमादिशत्। 5 विष्णुप्रमुखान्।

केचिच्छंखान् वादयन्तः केचित्तालान् सुमंगलाः ।
केचिद्धास्यं प्रकुर्वन्तो अनुजग्मुर्वृषध्वजम् ॥ ५ ॥
विसृष्टा अपि ब्रह्माद्याः शम्भुना पुनरेव ते ।
अनुजग्मुः कियद्दूरं मुदा परमया युताः ॥ ६ ॥
ततः शम्भुं समाभाष्य ब्रह्माद्या मानसाश्च ते ।
स्वं स्वं स्थानं तदा जग्मुः स्यन्दनैराशुगामिभिः ॥ ७ ॥
देवाश्च सर्वे सिद्धाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।
यक्षविद्याधराद्याश्च ये ये तत्र समागताः ॥ ८ ॥
ते हरेण विसृष्टास्तु गतवन्तो निजास्पदम् ।
बभूवुरामोदयुताः कृतदारे वृषध्वजे ॥ ६ ॥
ततो हरः सस्वगणः संस्थानं प्राप्य मोदनम् ।
कैलासं तत्र वृषभादवतारयति प्रियाम् ॥ १० ॥
ततो विरूपाक्ष इमां प्राप्य दाक्षायणीं गणान् ।
स्वीयान् विसर्जयामास नन्द्यादीन् गिरिकन्दरात् ॥ ११ ॥
उवाच शम्भुस्तान् सर्वान् नन्द्यादीनतिसुनृतम् ।
यदाहं वः स्मराम्यत्र स्मरणाच्चलमानसाः ।
समागमिष्यथ तदा मत्पार्श्वं भोस्तदा तदा ॥ १२ ॥
इत्युक्ते वामदेवेन ते नन्दिभैरवादयः ।
महाकौषी-प्रपाताय जग्मुस्ते हिमवद्गिरौ ॥ १३ ॥
ईश्वरोऽपि तया सार्धं तेषु यातेषु मोहितः ।
दाक्षायण्या चिरं रेमे रहस्यनुदिनं भृशम् ॥ १४ ॥
कदाचिद् वन्यपुष्पाणि समाहृत्य मनोहराम् ।
मालां विधाय सत्यास्तु हारस्थाने न्ययोजयत् ॥ १५ ॥
कदाचिद्दर्पणे वक्त्रं वीक्षन्तीमात्मनः सतीम् ।
अनुगम्य हरो वक्त्रं स्वीयमप्यवलोकयत् ॥ १६ ॥
कदाचित् कुन्तलांस्तस्या उल्लास्योल्लासमागतः ।
बध्नाति मोचयत्येवं शश्वत्सन्मार्जयत्यपि ॥ १७ ॥

सरागौ चरणावस्या यावकेनोज्ज्वलेन च ।
निसर्गरक्तौ कुरुते सरागो वृषभध्वजः ॥ १८ ॥
उच्चैरपि यदाख्येयमन्येषां पुरतो मुहुः ।
तत् कर्णे कथयत्यस्या हरो स्प्रष्टुं तदाननम् ॥ १९ ॥
न दूरमपि गत्वासौ समागम्य प्रयत्नतः ।
अनुबध्नाति तामक्ष्णि पृष्ठदेशेऽन्यमानसाम् ॥ २० ॥
अन्तर्हितस्तु तत्रैव मायया वृषभध्वजः ।
तामालिलिंग भीत्या सा चकिता व्याकुलाभवत् ॥ २१ ॥
सौवर्णपद्मकलिकातुल्ये तस्याः कुचद्वये ।
चकार भ्रमराकारं मृगनाभिविशेषकम् ॥ २२ ॥
हारमस्याः कुचयुगाद्वियोज्य सहसा हरः ।
नियोजयति तत्रैव सकरस्पर्शनं मुहुः । २३ ॥
अङ्गदान् वलयान्[6] वर्मीं विश्लेष्य च पुनः पुनः ।
तत्स्थानात् पुनरेवासौ तत्स्थाने प्रयुयोज च ॥ २४ ॥
कालिकेयं समायाति सवर्णा ते सखीति ताम् ।
पश्येत् यस्यास्तथेच्छन्त्याः प्रोक्त्वा जग्राह तत्कुचौ ॥ २५ ॥
कदाचिन्मदनोन्मादचेतनः प्रमथाधिपः ।
चकार नर्मकर्माणि तया हृत्प्रियया मुदा ॥ २६ ॥
आहृत्य पद्मपुष्पाणि वन्यपुष्पाणि शंकरः ।
पुष्पाभरणसर्वांगीं कुरुते स्म कदाचन ॥ २७ ॥
गिरिकुंजेषु रम्येषु तया सह सतीपतिः ।
विजहार समस्तेषु वनेषु मुदितो हरः ॥ २८ ॥
न याने नोपवेशे च न स्थितौ नापि चेष्टिते ।
तया विना क्षणमपि शर्म लेभे वृषध्वजः ॥ २९ ॥
विहृत्य सुचिरं कालं कैलासगिरिकन्दरे ।
महाकौषीप्रपाताय जगाम हिमवद्गिरौ ॥ ३० ॥

---

6 वलयानुर्मां ।

तस्मिन् प्रविष्टे हिमवत्पर्वते वृषभध्वजे ।
कामोऽपि सह मित्रेण रत्या च प्रजगाम ह ॥ ३१ ॥
तस्मिन् प्रविष्टे कामे तु वसन्तः शंकरान्तिके ।
विततान निजाः श्रीश्च वृक्षे तोये तथा भुवि ॥ ३२ ॥
सर्वे सुपुष्पिता वृक्षा लताश्चान्याः सुपुष्पिताः ।
अम्भांसि फुल्लपद्मानि पद्मेषु भ्रमरास्तथा ॥ ३३ ॥
प्रविष्टे तत्र सुरतौ प्रववुर्मलयानिलाः ।
सुगन्धिपुष्पगन्धेन मोहितश्च पुरन्ध्रयः ॥ ३४ ॥
मुनीनामपि चेतांसि प्रमथ्य सुरभिस्तदा ।
स्मरः सारं समुद्दध्रे तक्रौघादाज्यवत्कृती ॥ ३५ ॥
सन्ध्यार्द्धचन्द्रसंकाशाः पलाशाश्च विरेजिरे ।
कामास्त्रवत्सुमनसः प्रमोदायाभवत् सदा ॥ ३६ ॥
वभुः पंकजपुष्पाणि सरःसु सकलं जनान् ।
[7]सम्मोहयितुमुद्युक्ता सुमुखीवाम्बुदेवता ॥ ३७ ॥
नागकेशरवृक्षाश्च स्वर्णवर्णप्रसूनकैः ।
वभुर्मदनकेत्वाभा मनोज्ञाः शंकरान्तिके ॥ ३८ ॥
चम्पकास्तरवो हैमपुष्पत्वं प्रकटं मुहुः ।
कुर्वन्तः प्रचुरैः पुष्पैः सम्यग्रेजुस्तथास्फुटैः ॥ ३९ ॥
प्रफुल्लपाटलापुष्पैर्दिशः स्युः पाटलांशवः ।
यथा तथा पुष्पितास्ते पाटलाख्या महीरुहाः ॥ ४० ॥
लवंगवल्लीसुरभिर्गन्धेनोद्वास्य मारुतम् ।
सन्मोहयति चेतांसि भृशं कामिजने पुरा ॥ ४१ ॥
वासन्तीवासितास्तत्र [8]वल्वजाः किल रेजिरे ।
तद्गन्धलुब्धभ्रमरा रतिमिश्रा मनोहराः ॥ ४२ ॥
चारु [9]पावकवर्च्चस्वि शिखराश्चूतशाखिनः ।
वभुर्मदनवाणौघ-पर्यंकवदनावृताः ॥ ४३ ॥

---

7 संमोहयितं । 8 वनान्ताः । 9 ज्वालक... ।

अम्भांसि मलहीनानि रेजुः फुल्लकुशेशयैः ।
मुनीनामिव चेतांसि प्रव्यक्तज्योतिरुद्गमात् ॥ ४४ ॥
तुषाराः सूर्यरश्मीनां संगमादगमन् क्षयम् ।
ममत्वानीव विज्ञानशालिनां हृदयात्तदा ॥ ४५ ॥
निःशंकाः कोकिलाः शब्दं तन्वते स्म तदान्वहम् ।
प्राणिव्यधनपुष्पेषु पुष्पज्याशब्दवत् भृशम् ॥ ४६ ॥
चुकूजुर्भ्रमरास्तत्र वनान्तर्गतपुष्पगाः ।
कान्तालीलावुभुक्षोस्तु स्मरव्याघ्रस्य शब्दवत् ॥ ४७ ॥
चन्द्रस्तुषारवद्भानुर्नचैताः सकलाः कलाः ।
क्रमाद्बभार मोहाय जनानां कुशलं भुवि ॥ ४८ ॥
प्रसन्नाः सह चन्द्रेण निस्तुषारास्तदाभवन् ।
विभावर्यः प्रियेणेव कामिन्यः सुमनोहराः ॥ ४६ ॥

तस्मिन् काले महादेवः सह सत्या धरोत्तमे ।
रेमे च सुचिरं छन्नो निकुञ्जेषु दरीषु च ॥ ५० ॥

सापि तेन समं रेमे तथा दाक्षायणी शुभा ।
यथा हरः क्षणमपि शान्तिं नाप तया विना ॥ ५१ ॥

संभोगविषये देवी सती तस्य मनःप्रिया ।
विशतीव हरस्यांगे पाययन्तीव तद्रसम् ॥ ५२ ॥

तस्याः कुसुममालाभिर्भूषयन् सकलां तनुम् ।
स्वहस्तरचिताभिश्च वरं नर्म चकार सः ॥ ५३ ॥

आलापैर्वीक्षणैर्हासैस्तथा सम्भाषणैर्हरः ।
तस्यां विवेश गिरिशः संयमीवात्मसंविदम् ॥ ५४ ॥

तद्वक्त्रचन्द्रपीयूषपानस्थिरतनुर्हरः ।
नावाप शैषिकीं तन्वीमवस्थां स कदाचन ॥ ५५ ॥

तद्वक्त्राम्बुजवासेन तत्सौन्दर्यस्य नर्मभिः ।
गुणैरिव महादन्ती बद्धो नान्यद्विचेष्टते ॥ ५६ ॥

इति हिमगिरिकुंजे प्रस्थभागे दरीषु
प्रतिदिनमधिरेमे दक्षपुत्र्या महेशः।
ऋतुभुज-परिमाणैः क्रीडतस्तस्य जाता
नव दश च मुनीन्द्रा वत्सराः पञ्च चान्ये ॥ ५७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे शिव-सती-विहार-वर्णने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे।
जगदाद्रेः शिखरिणः प्रस्थस्थं वृषभध्वजम् ॥ १ ॥

सत्युवाच

घनागमोऽयं सम्प्राप्तः कालः परमदुःसहः।
अनेकवर्णमेघौघस्थगिताम्बरदिक्चयः ॥ २ ॥
विवान्ति वाता हृदयं दारयन्तोऽतिवेगिनः।
कदम्बरजसाधौतपाथोलेशादिवर्षिणः ॥ ३ ॥
मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासारं विमुंचताम्।
विद्युत्पताकिनान्तीव्रैः क्षुब्धं कस्य न मानसम् ॥ ४ ॥
न सूर्यो दृश्यते नापि मेघाच्छन्नो निशापतिः।
दिवापि रात्रिवद्भाति [10]विरहिव्यत्ययाकरम् ॥ ५ ॥
मेघा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनन्तः पवनेरिताः।
पतन्त इव लोकानां दृश्यन्ते मूर्ध्नि शंकर ॥ ६ ॥
वाताहता महावृक्षा [11]नृत्यन्त इव चाम्बरे।
दृश्यन्ते हर भीरूणां त्रासकाः कामुकेप्सिताः ॥ ७ ॥
स्निग्धनीलाञ्जनश्याममुदिरौघस्य पृष्ठतः।
वलाकाराजि र्भात्युच्चैर्यमुनाघूष्टफेनवत् ॥ ८ ॥

---

10 विरहव्यत्ययाकुलम्। 11 नर्तन्त।

क्षणं क्षणं चंचलेयं दृश्यते कालिका गता।
अम्बुधाविव[12] सन्दीप्तः पावको वडवामुखः ॥ ९ ॥
प्ररोहन्ति हि शस्पानि[13] मन्दिरप्रांगणेष्वपि।
किमन्यत्र विरूपाक्ष शस्पोद्भूतिं वदाम्यहम् ॥ १० ॥
श्यामलै राजतैः वृक्षैर्विशदोऽयं हिमाचलः।
मन्दराश्रमवृक्षौघपत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा ॥ ११ ॥
कुसुमश्रीश्च कुटजं भेजे सास्याथ किंशुकान्।
उच्चावचां कलौ लक्ष्मीर्यथा सन्त्यज्य सज्जनान् ॥ १२ ॥
मयूराः स्तनयित्नूनां शब्देन हर्षिता मुहुः।
केकायन्ते प्रतिवनं सततं वृष्टिसूचकाः ॥ १३ ॥
मेघोन्मुखानां मधुरश्चातकानां[14] स्वनो[15] हर।
श्रूयतामतिमत्तानां वृष्टिसन्निधिसूचकः[16] ॥ १४ ॥
गगने शक्रचापेन कृतं साम्प्रतमास्पदम्।
धारासार-शरैस्तापं भेत्तुं प्रति यथोद्गतः ॥ १५ ॥
मेघानां पश्य भार्गेह दुर्नयं करकोत्करः।
यत्तारयन्त्यनुगतं मयूरं चातकं तथा ॥ १६ ॥
शिखिसारंगयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम्।
हंसा गच्छन्ति गिरिश विदूरमपि मानसम् ॥ १७ ॥
एतस्मिन् विषमे काले नीडं काकाश्च कोरकाः।
कुर्वन्ति त्वं विना गेहात् कथं शान्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥
महती बाधते भीतिर्मां मेघोत्था पिनाकधृक्।
यतस्व तस्माद्वासाय मा चिरं वचनान्मम ॥ १९ ॥
कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकौष्यामथ क्षितौ।
तवोपयोग्यं[17] त्वं वासं कुरुष्व वृषभध्वज ॥ २० ॥

---

12 अम्बुचारीव। 13 शस्यानि। 14 मधुरं। 15 मनोहरं।
16 सूचकं। 17 तत्रोपयोगं।

एवमुक्तस्तदा शम्भुर्दाक्षायण्या तया सकृत् ।
इषज्जहास शीर्षस्थचन्द्ररश्मिसिताननः ॥ २१ ॥
अथोवाच सतीं देवीं स्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः ।
महात्मा सर्वतत्त्वज्ञस्तोषयन् परमेश्वरीम् ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच

यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे ।
मेघास्तत्र न गन्तारः कदाचिदपि मत्प्रिये ॥ २३ ॥
मेघा नितम्बपर्यन्तं संचरन्ति महीभृतः ।
सदा प्रालेयधाम्नस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ॥ २४ ॥
कैलासस्य तथा देवी यावदामेखलं घनाः ।
संचरन्ति न गच्छन्ति तस्मादूर्ध्वं कदाचन ॥ २५ ॥
सुमेरोर्वारिधेरूर्ध्वं न गच्छन्ति वलाहकाः ।
जानुमूलं[18] समासाद्य पुष्करावर्तकादयः ॥ २६ ॥
एतेषु च गिरीन्द्रेषु यस्योपरि तवेहते ।
मनः प्रिये निवासाय तमाचक्ष्व द्रुतं मयि ॥ २७ ॥

स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि
सुवर्णपक्षानिलवृन्दवृन्दैः ।
शकुन्तवर्गैर्मधुरस्वनैस्ते
सदोपदेयानि गिरौ हिमोत्थे ॥ २८ ॥
सिद्धांगनास्ते सखितां सनातनी-
मिच्छन्त्य एवोपकृतिं सकौतुकाम् ।
स्वेच्छाविहारैर्मणिकुट्टिमे गिरौ
कुर्वन्त्य[19] एष्यन्ति फलादिदानकैः ॥ २९ ॥
या देवकन्या गिरिकन्यकाश्च
या नागकन्याश्च तुरंगमुख्यः ।

18 जम्बूमुलं । 19 कुर्वन्ति त्रस्यन्ति ।

सर्वास्तु तास्ते सततं सहायतां
समाचरिष्यन्त्यनुमोदविभ्रमैः ॥ ३० ॥
रूपं तवेदमतुलं वदनं सुचारु
दृष्ट्वांगना निजवपुर्निजकान्तिसंघम् ।
हेलां निजे वपुषि रूपगुणेषु नित्यं
कर्तार इत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः ॥ ३१ ॥
या मेनका पर्वतराजजाया
रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके ।
सा चापि ते तत्र मनोनुमोदं
नित्यं करिष्यत्यथ सूचनाद्यैः ॥ ३२ ॥
पुरन्ध्रिवर्गैर्गिरिराजवन्द्यैः
प्रीतिं वितन्वद्भिरुदाररूपाम् ।
शिक्षा सदा ते स्वकुलोचितापि
कार्यान्वहं प्रीतियुता गुणौघैः ॥ ३३ ॥
विचित्रकोकिलालापमोदकुञ्जगणावृतम् ।
सदा वसन्तप्रभवं गन्तुमिच्छसि किं प्रिये ॥ ३४ ॥
सर्वकाम[21]प्रदैर्वृक्षै शाद्वलैः कल्प[22]संज्ञकैः ।
सञ्छन्नं यस्य कुसुमान्युपयोक्ष्यसि तत्र वै ॥ ३५ ॥
प्रशान्तश्वापदगणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् ।
देवालयं महाभागे नानामृगगणैर्वृतम् ॥ ३६ ॥
स्फटिकस्वर्णवप्राद्यै[23] राजतैश्च विराजितम् ।
मानसादिसरोवर्गैरभितः परिशोभितम् ॥ ३७ ॥
हिरन्मयै रत्ननालैः पंकजैर्मुकुलैर्वृतम् ।
शिशुमारैस्तथा शंखैः कच्छपैर्मकरैर्झषैः ।
निषेवितैर्मंजुलैश्च तथानीलोत्पलादिभिः ॥ ३८ ॥

---

20 कर्ता वहत्यनिमिषे । 21 नाना स्वच्छजलापूर्णं सरःशतसमावृतम् । पद्मिनीशतसंयुक्तमचलेन्द्रं हिमालयम् ॥ इत्यधिकः पाठः ।
22 कल्पसंभवैः । 23 वप्राद्यैः

देवीशतस्नानसक्तसर्वगन्धैश्च कुंकुमैः ।
विचित्रस्नग्गन्धजलैरापूर्णैः स्वच्छकान्तिभिः ॥ ३९ ॥
शाद्वलैस्तरुभिस्तुंगैस्तीरस्थैरुपशोभितैः ।
नृत्यद्भिरिव शाखौघैर्व्यंजयन्तं स्वसम्भवम् ॥ ४० ॥
कादम्बैः सारसैर्मत्त[24]चक्रांगग्रामशोभितैः ।
मधु[25]राराविभिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः ॥ ४१ ॥
वासवस्य कुवेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
अग्नेः कौणपराजस्य मारुतस्य हरस्य च ॥ ४२ ॥
पुरीभिः शोभिशिखरं मेरुमुच्चैः सुरालयम् ।
रम्भाशचीमेनकादिरम्भोरुगगणसेवितम् ॥
किंत्वमिच्चसि सर्वेषां सारभूतं महागिरिम् ॥ ४३ ॥
तत्र देवीशतयुता साप्सरोगण[26]सेविता ।
नित्यं चरिष्यति शची तव योग्यां सहायताम् ॥ ४४ ॥
अथवा मम कैलासमचलेन्द्रं सदाश्रयम् ।
स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरीपरिविराजितम् ॥ ४५ ॥
गंगाजलौघप्रयतं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
दरीषु सानुषु सदा यक्षकन्याभिरीहितम् ॥ ४६ ॥
नानामृगगणैर्जुष्टं पद्माकरशतावृतम् ।
सर्वैर्गुणैश्च सदृशं सुमेरोरिव सुन्दरि ॥ ४७ ॥
स्थानेष्वेतेषु यत्रास्ति तवान्तःकरणस्पृहा ।
तद्द्रुतं[27] मे समाचक्ष्व वासं कर्तास्मि तत्र ते ॥ ४८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इतीरिते शंकरेण तदा दाक्षायणी शनैः ।
इदमाह महादेवं श्लक्ष्णं स्वेच्छाप्रकाशकम् ॥ ४९ ॥

---

24 मद्गुचक्रांकग्राम-शोभितैः । 25 मधुधारादिभिः ।
26 साप्सरोगणमण्डिता । 27 हृद्गतं ।

सत्युवाच

हिमाद्रावेव वसतिमहमिच्छे त्वया सह ।
न चिरात् कुरुवासं त्वं तस्मिन्नेव महागिरौ ॥ ५० ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोदितः ।
हिमाद्रिशिखरं तुङ्गं दाक्षायण्या समं ययौ ॥ ५१ ॥
सिद्धाङ्गनागणयुक्तमगम्यं मेघपक्षिभिः ।
जगाम शिखरं तुङ्गं मरीच[28]वनराजितम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे हिमाद्रिनिवास-गमनं पञ्चदशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षोडशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

विचित्रं कनकै रूप्यैः शिखरं रत्नकर्वुरम् ।
वालार्कसदृशं तुङ्ग[29]माससाद सतीसखः ॥ १ ॥
स्फटिकाश्मलये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते ।
विचित्रपुष्पवल्लीभिः सरसीभिश्च संयुते ।
प्रफुल्लतरुशाखाग्रगुञ्जद्भ्रमरभूषिते ॥ २ ॥
पंकेरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ।
शोभिते चक्रवाकौघैः कादम्बैर्हंसमद्गुभिः ॥ ३ ॥
प्रमत्तसारसैः क्रौञ्चैर्नीलकण्ठैश्च शब्दिते ।
पुंस्कोकिलकलस्वानैर्मधुरैर्मृगसेविते ॥ ४ ॥
तुरंगवदनैः सिद्धैरप्सरोभिः सगुह्यकैः ।
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विहारिते ।
पुरन्ध्रीभिः पार्वतीभिः कन्याभिश्च समन्विते ॥ ५ ॥

---

28 सरसीवन... । 29 शंभुराससाद ।

विपञ्चीतन्त्रिकामन्द्र[30]मृदंगपटहस्वनैः।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकोत्थैः सशोभिते ॥ ६ ॥
दैवीलताभिर्दिव्याभिर्गन्धिनीभिः समावृते।
ऊर्द्ध्वप्रफुल्लकुसुमैर्निकुञ्जैरुपशोभिते ॥ ७ ॥
शैलराजपुराभ्यासे शिखरे वृषभध्वजः।
सह सत्या चिरं रेमे एवम्भूते शुशोभने ॥ ८ ॥
तस्मिन् स्वर्गसमे स्थाने दिव्यमानेन शंकरः।
दश वर्षसहस्राणि रेमे सत्या समं मुदा ॥ ६ ॥
स कदाचित्तु तत्स्थानात् कैलासं याति शंकरः।
कदाचिन्मेरुशिखरं देवदेवीवृतं पुरा ॥ १० ॥
दिक्पालानां तथोद्यानं वनानि वसुधातलम्।
गत्वा गत्वा पुनस्तत्र रेमे तेभ्यः सतीसखः ॥ ११ ॥
न जज्ञे स दिवारात्रं न ब्रह्म न तपः शमम्।
सत्याहितमनाः शम्भुः प्रीतिमेव चकार ह ॥ १२ ॥
एकं महादेवमुखं सती पश्यति सर्वशः।
महादेवोऽपि सर्वत्र सदाद्राक्षीत् सतीमुखम् ॥ १३ ॥
एवमन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुहम्।
वर्धयामासतुः शम्भुसत्यौ भावाम्बुसेचनैः ॥ १४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दक्षो जगतां हितकारकः।
महायज्ञं समारेभे यष्टुं वै[31] सर्वजीवनम् ॥ १५ ॥
अष्टाशीति-सहस्राणि यत्र जुह्वति ऋत्विजः।
उद्गातारश्चतुःषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः।
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः ॥ १६ ॥
अधिस्थाता स्वयं विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः।
स्वयं तत्राभवद् ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ॥ १७ ॥

---

30 ......मञ्जुमृदंग। 31 सर्वजनान्वितं।

तथैव सर्वदिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः ।
उपतस्थे स्वयं यज्ञः स्वयं वेदी धराभवत् ॥ १८ ॥
तनूनपादपि निजं चक्रे रूपं सहस्रशः ।
हविषां ग्रहणायाशु[32] तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे ॥ १९ ॥
आमन्त्र्याशु मरीच्याद्याः पवित्रैकैकवारिणः ।
सर्वत्र सामिधेन्या ते ज्वालयामासुरर्च्चिषम् ॥ २० ॥
सप्तर्षयः सामगाथा कुर्वन्ति स्म पृथक् पृथक् ।
गान्दिशो विदिशः खञ्च पूरयन्तः श्रुतिस्वरैः ॥ २१ ॥
न वृतास्तत्र यागेषु दक्षेण सुमहात्मना ॥
न केचिदृषयो देवा न मनुष्या न पक्षिणः ।
नोद्भिदो न तृणं वापि पशवो न मृगास्तथा ॥ २२ ॥

गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघा-
नादित्यसाध्यर्षिगणान् सयक्षान् ।
सस्थावरान्नागवरान् समस्तान्
वव्रे स दक्षः सुमहाध्वरेषु ॥ २३ ॥

कल्प-मन्वन्तरयुग-वर्ष-मास-दिवा-निशाः ।
कला-काष्ठानिमेषाद्या वृताः सर्वे समागताः[33] ॥ २४ ॥

महर्षिराजर्षिसुरर्षिसङ्घा
नृपाः सपुत्राः सचिवैः ससैन्यैः ।
वसुप्रमुख्या गणदेवता याः
सर्वा वृतास्तेन गता मखं तम् ॥ २५ ॥

कीटाः पतंगा जलजाश्च सर्वे
सवानराः श्वापदविघ्नघोराः ।
मेघाः सशैलाः सनदीसमुद्राः
सरांसि वाप्यश्च गता वृतास्ते ॥ २७ ॥

---

32 ग्रहणार्थाय । 33 दिवौकसाः ।

सर्वे स्वभागं हविषां जिघृक्षवः
क्रतुं प्रजग्मुर्द्धयज्विनस्ते ।
पातालवासा असुराः[34] समागता
नागस्त्रियो देवसभाः[35] समस्ताः ॥ २८ ॥

जगद्वर्त्यस्ति यत्किञ्चिच्चेतनाचेतनं पुनः ।
सर्वं वृत्वा समारेभे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ॥ २९ ॥
तस्मिन् यज्ञे वृतः शम्भुर्नदक्षेण महात्मना ।
कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ॥ ३० ॥
कपालिभार्येति सती दयितापि सुता निजा ।
नाहूता यज्ञविषये दक्षेण दोषदर्शिना ॥ ३१ ॥
श्रुत्वा सती तथा यज्ञं तातेनारब्धमुत्तमम् ।
कपालिभार्येति वृता नाहमित्यपि तत्त्वतः ॥ ३२ ॥
उच्चैश्चुकोप दक्षाय रक्तनेत्रानना तदा ।
शापेन दक्षं दग्धुं च मनश्चक्रे तदा सती ॥ ३३ ॥
कोपाविष्टापि सा पूर्वसमयं[36] स्मृतवत्यसुम् ।
मनसेति विनिश्चित्य न शशाप तदा सती ॥ ३४ ॥
अलं शापेन मे पूर्वं सुदृढः समयः कृतः ।
अस्तीति मय्यवज्ञायां प्राणान् मोक्ष्ये ध्रुवं पुनः ॥ ३५ ॥
यदा स्तुताहं दक्षेण सुचिरं तनयार्थिना ।
तदैव समयो मेऽयं शापेनालंकरोमि तम् ॥ ३६ ॥
इति सञ्चिन्त्य सा देवी नित्यरूपमथात्मनः ।
सस्मारातुलमत्युग्रं निष्कलं तु जगन्मयम् ॥ ३७ ॥
पूर्वरूपं स्मरन्ती सा योगनिद्राह्वयं हरेः ।
एवं संचिन्तयामास मनसा दक्षजा तदा ॥ ३८ ॥
ब्रह्मणोदितदक्षेण यदर्थमहमीडिता ।
तत्किञ्चिदपि नोज्ञातं शंकरोऽपि न पुत्रवान् ॥ ३९ ॥

---

34 वसुधापदो नराः । 35 देवरामाः । 36 देवी ।

इदानीमेकमेवाभूत् कार्यं देवगणस्य च ।
यच्छंकरः सानुरागो मत्कृतेऽभूच्च योषिति ॥ ४० ॥
मत्तो नान्या पुनः शम्भो रागं वर्धयितुं पुनः ।
शक्ता न कापि भविता स नान्यां संग्रहीष्यति ॥ ४२ ॥
तथाप्यहं तनुं त्यक्षे समयात् पूर्वयोजितात् ।
हिताय जगतां कुर्यां प्रादुर्भावं पुनर्गिरौ ॥ ४२ ॥
पुरा हिमवतः प्रस्थे रम्ये देवगृहोपमे ।
शम्भुः सार्धं मया रन्तुं सुचिरं प्रीतिसंयुतः ॥ ४३ ॥
तत्र या मेनका देवी चार्वंगी चरितव्रता ।
सुशीला सा पुरस्त्रीणामुत्तमा[37] पार्वतीगणे ॥ ४४ ॥
सा मां मातृवदाचष्ट सर्वकर्मसु नर्मकम् ।
तस्यां मेऽप्यनुरागोऽभूत् सा मे माता भविष्यति ॥ ४५ ॥
कन्याभिश्च पार्वतीभिश्च बाल्यक्रीडामहं चिरम् ।
कृत्वा कृत्वा मेनकायाः करिस्ये मोदमुत्तमम् ॥ ४६ ॥
पुनश्चाहं भविष्यामि शम्भोर्जायातिवल्लभा ।
करिष्ये देवकार्याणि तदुपायादसंशयम् ॥ ४७ ॥
इति संचिन्तयन्ती सा पुनः कोपसमावृता ।
जज्वाल दक्षतनया दक्षदारुणकर्मणा ॥ ४८ ॥
क्रोधरक्तेक्षणा तत्र तनुयष्टिस्तदा सती ।
स्फोटश्चकार द्वाराणि सर्वाण्यावृत्य योगतः ॥ ४६ ॥
तेन स्फोटेन महता तस्यास्तु प्राणवायवः ।
निर्भिद्य दशमद्वारमात्मनस्ते वहिर्ययुः ॥ ५० ॥
त्यक्तप्राणान्तु तां दृष्ट्वा देवाः सर्वेऽन्तरिक्षगाः ।
हाहाकारं तदा चक्रुः शोकव्याकुलितेक्षणाः ॥ ५२ ॥
ततस्तु सत्या भगिनीसुता तां द्रष्टुमागता ।
चुक्रोश शोकाद्विजया मृतां दृष्ट्वा सतीं मुहुः ॥ ५२ ॥

37 पुरन्ध्रीणामुत्तमा ।

हा सती क्व गतासीति हा सती तव किन्विदम् ।
हा मातृष्वसरित्युच्चैस्तदा शब्दो महानभूत् ॥ ५३ ॥
विप्रियश्रवणादेव प्राणांस्त्यक्तास्त्वया सति ।
अहं कथन्तु जीवामि दृष्ट्वेद्विप्रियं दृढम् ॥ ५४ ॥
पाणिना वदनं सत्या मार्जयन्ती मुहुर्मुहुः ।
करुणं विलपन्ती स्म मुखं जिघ्रति सा तदा ॥ ५५ ॥
सिञ्चन्ती नेत्रजैस्तोयैः सत्याः सा हृदयं मुखम् ।
केशानुल्लास्य पाणिभ्यां वीक्षन्ती वदनं मुहुः ॥ ५६ ॥
ऊर्द्धाधःकम्पितशिराः शोकव्याकुलितेन्द्रिया ।
हृदयं पञ्चशाखाभ्यां विनिहन्ती तथा शिरः ॥ ५७ ॥
इदं च वचनं साश्रुकण्ठा सा विजयाब्रवीत् ।
श्रुत्वा ते मरणं माता वीरिणी शोककर्षिता ॥ ५८ ॥
धारयन्ती कथं प्राणान् सद्यस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।
स तथा निरनुक्रोशः क्रूरकमा पिता तव ॥ ५९ ॥
प्रमीतां भवतीं श्रुत्वा कथं धास्यति जीवितम् ।
विचिन्त्य नूनं कर्माणि स्वीयानि भवतीं प्रति ।
कृतानि स नृशंसानि दक्षः शोकाकुलस्तदा ॥ ६० ॥
यज्वा स च ज्ञानहीनः कथं यज्ञे प्रवर्तते ।
निःश्रद्धस्त्यक्तबुद्धिश्च कथं वा स भवेत् क्रतौ ॥ ६१ ॥
हा मातर्देहि वचनं रुदन्त्या बालवन्मम ।
भवत्या निर्दया शोकाद्ध्रिये शल्यसमानसून् ॥ ६२ ॥
त्वं किं स्मरसि मे शम्भोर्विहितस्य कदाचन ।
तेनामर्ष[38]वशं प्राप्ता मातर्मां किन्न भाषसे ॥ ६३ ॥
तदेव वचनं चक्षुर्मुखं सा नासिका तव ।
एतेषां क्व गताः सर्वे विभ्रमा हसितं क्व च ॥ ६४ ॥

38　तेनामर्षरसं ।

ननु ते विभ्रमैर्हीनं नेत्रयुग्मं सुनासिकम् ।
स्मितहीनं च वदनं दृष्ट्वा सोढा कथं हरः ॥ ६५ ॥
का सुधासम्मितं वाक्यं हराश्रमसमागतान् ।
सुनृतं त्वामृते मातर्वदिष्यति मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥
श्रद्धावती बान्धवेषु पत्युर्भावावशानुगा ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा तत्समा का भविष्यति ॥ ६७ ॥
त्वदृते देवि देवेशः शोकोपहतचेतनः ।
दुःखितात्मा निरुत्साहो निश्चेष्टश्च भविष्यति ॥ ६८ ॥

एवं लपन्ती भृशदुःखिता सतीं
मृतां समीक्ष्यातिशयं शुचाहता ।
पपात भूमौ विजया विरावं
वितन्वती चोर्ध्वभुजा प्रवेपती ॥ ६९ ॥

इति श्रीकालिका पुराणे सती-देह-त्यागो नाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शंभुः शोभने मानसे ह्रदे ।
समाप्य सन्ध्यामायातः स्वमाश्रमपदं प्रति ॥ १ ॥
आगच्छन्नेव संरावं विजयाया वृषध्वजः ।
शुश्राव दारुणं तीव्रं चकितश्च ततोऽभवत् ॥ २ ॥
तत उक्ष्न्वा बलवता मनोमारुतरंहसा ।
स्वमाश्रमपदं शर्व आससाद त्वरान्वितः ॥ ३ ॥
आसाद्य देवीं दयितां तदा दाक्षायणीं हरः ।
मृतां दृष्ट्वापि न जहौ मृतेऽतिप्रियभावतः ॥ ४ ॥

ततो निरीक्ष्य वदनमामृज्य च पुनः पुनः ।
पप्रच्छ कस्मात् सुप्तासीत्येवं द्राक्षायणीं मुहुः ।। ५ ।।
ततो भर्गवचः श्रुत्वा तदा तद्भगिनी सुता ।
विजया प्राह निधनं दाक्षायण्या यथा तथा ।। ३ ।।

विजयोवाच

दक्षः कर्तुं क्रतुं शम्भो देवान् सर्वान् सवासवान्[39] ।
आजुहाव तथा दैत्यान् राक्षसान् सिद्धगुह्यकान् ।। ७ ।।
ब्राह्मणानथ गोविन्दमिन्द्रादीनपि दिक्पतीन् ।
देवयोनींस्तथा सर्वान् साध्यविद्याधरादिकान् ।। ८ ।।
नाहूतानि क्रतौ तेन यानि सत्त्वानि शंकर ।
तानि दक्षेण नो सन्ति समस्तभुवनेष्वपि ।। ६ ।।
एवं प्रविततं[40] यज्ञं श्रुत्वैषा वचनान्मम ।
विमृष्यवत्यनाव्हाने हेतुं शम्भोरथात्मनः ।। १० ।।
चिन्तयानां[41] तथाहं तां सतीं ज्ञात्वा यथाश्रुतम् ।
उक्तवत्यस्मि भूतेश यज्ञानाह्वानकारणम् ।। ११ ।।
शम्भुः कपाली तद्जाया तत्संसर्गाद्विगर्हिता ।
अतः शम्भुः सती चापि नाध्वरे मे मिलिष्यतः ।। १२ ।।
इत्यनाह्वानहेतुर्मे श्रुतपूर्वः पुरा मुखात् ।
दक्षस्य वीरिणीं श्लक्ष्णां गदतस्तस्य मन्दिरे ।। २३ ।।
एतच्छ्रुत्वा मम वचः सा विवर्णमुखी क्षितौ ।
उपविष्टा न सां किंचिदुक्त्वा कोपपरायणा ।। १४ ।।
वभूव वदनं तस्यास्तत्क्षणात् सरुषं हर ।
भ्रुकुटीकुटिलं श्यामं यथा खं धूमकेतुना ।। १५ ।।
सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा स्फोटेन महता ततः ।
प्राणानुदसृजच्चैषा भित्त्वा मूर्द्धानमात्मनः ।। १६ ।।

---

39 सबान्धवान् । 40 प्रवृतं तं । 41 चिन्तयामासाहं तां ।

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या विजयाया वृषध्वजः ।
अतीव कोपादुत्तस्थौ दिधक्षुरिव पावकः ॥ १७ ॥
तस्य कोपपरीतस्य कर्णनासाक्षिवक्त्रतः ।
घोरा जलन्त्यः कणिकाः सृजन्त्योऽग्नेर्महारवम् ।
उल्का विनिःसृता वह्व्यः कल्पान्तादित्यवर्चसः ॥ १८ ॥
अथ तत्र जगामाशु दक्षो यत्र महातपाः ।
यज्ञञ्चक्रे हरो गत्वा यज्ञवाटाद्बहिःस्थितः ॥ १९ ॥
तं यज्ञं ददृशे भर्गः कोपेन महतावृतः ।
महाधनसमापन्नं पात्रयूपादिभिर्वृतम् ॥ २० ॥
हुताज्याहुतिसंवृद्धं दीप्तवह्निविराजितम् ।
यथास्थानस्थितान् सर्वान् दिक्पालान् सायुधध्वजान् ॥२१॥
विधातारं तथा विष्णुं यज्ञमध्ये व्यवस्थितम् ।
ददर्श कुपितः शम्भुस्तान् दृष्ट्वातीव कोपतः ॥ २२ ॥
भगं सूर्यं तथा सोमं भार्याभिः सह संवृतम् ।
सहस्राक्षं गौतमं च पूर्वे भागे व्यवस्थितम् ॥ २३ ॥
सनत्कुमारमात्रेयं भार्गवं विनतासुतम् ।
मरुद्गणांस्तथा साध्यानाग्नेयं जातवेदसम् ॥ २४ ॥
कालं च चित्रगुप्तञ्च कुम्भयोनिं सगालवम् ।
विश्वेदेवांस्तथा सर्वान् कव्यवाहादिकान् पितॄन् ॥ २५ ॥
अग्निष्वात्तादिकान् सर्वान् भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
भौमं प्रेतगणान् सिद्धान् दक्षिणाशां व्यवस्थितान् ॥ २६ ॥
रक्षांसि च पिशाचांश्च भूतानि मृगपक्षिणः ।
क्रव्यादान् क्षुद्रजन्तूंश्च तथा पुण्यजनेश्वरम् ॥ २७ ॥
महर्षिं मौद्गलं राहुं नैरृत्यां किन्नरांस्तथा ।
महोरगांस्तथा नक्रान् मत्स्यान् ग्राहांश्च कच्छपान् ।
समुद्रान्सप्तसिन्धंश्च नदींस्तीर्थानि गुह्यकान् ॥ २८ ॥

मानसादि ह्रदान् सर्वान् गंगाजम्बूनदीं तथा ।
कामं मधुं वसन्तं च वरुणञ्च सहानुगम् ॥ २९ ॥
शनैश्चरं गिरीन् सर्वान् पश्चिमाशाव्यवस्थितान् ।
प्राणादिपंचवायूंश्च सगणञ्च समीरणम् ।
कल्पद्रुमान् हिमाद्रिञ्च कश्यपञ्च महामुनिम् ॥ ३० ॥
वायव्यां कमलाव्रातं फलानि च कलानिधिम् ।
नानारत्नानि हैमानि मनुष्यान् पर्वतांस्तथा ॥ ३१ ॥
हिमाद्रिमुख्या यक्षाश्च स्थूणकर्णादयो बुधाः ।
नलकुवेरेण सहितो यक्षरान्नरवाहनः ॥ ३२ ॥
ध्रुवो धरश्च सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च कौवेरीं संस्थितानिमान् ॥ ३३ ॥
वृषध्वजं विना सर्वान् रुद्रान् जीवं मनूंस्तथा ।
विविधान् बाहुजान् वैश्यान्शूद्रानपि समन्ततः ॥ ३४ ॥
ऐशान्यां विविधान्नानि व्रीहिनपि तिलानपि ।
ऐशानीपूर्वयोर्मध्ये ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान् ॥ ३५ ॥
महर्षींश्चतुरो वेदान्वेदांगानि तथैव षट् ।
नैर्ऋत्यपश्चिमान्तस्थमनन्तं श्वेतपर्वतम् ॥ ३६ ॥
काद्रवेयसहस्रेण सहिता सप्तभोगिनः ।
केतुं तत्रैव कुष्माण्डं डाकिनीगणसंयुक्तम् ॥ ३७ ॥
तथा जलधरानन्यान्नानावर्णान् सविद्युतान् ।
दिग्गजानपि तत्रस्थानैरावतमुखान् हरः ॥ ३८ ॥
यथास्थानस्थितान् सर्वान्दिक्करिण्या च संयुतान् ।
तमेवं दूरतो दृष्ट्वा यज्ञवाटं महाधनम् ।
वीरभद्राह्वयं तूर्णं प्रेषयामास तं प्रति ॥ ३९ ॥
वीरभद्रोऽपि बहुभिः संवृतो विविधैर्गणैः ।
व्यध्वंसयत्ततो यज्ञं दक्षस्य सुमहात्मनः ॥ ४० ॥

विकुर्वन्तं महायज्ञं वीरभद्रं समीक्ष्य वै ।
वारयामास वैकुण्ठः सर्वदेवगणावृतः ॥ ४१ ॥
तं वार्यमाणं दृष्ट्वैव क्रोधसंरक्तलोचनः ।
स्वयं विवेश तं यज्ञं ध्वंसयामास चेश्वरः ॥ ४२ ॥
विशन्तमेव तं यज्ञे प्रथमं पुरतो भगः ।
बाहू वितत्य भूतेशमाससाद त्वरान्वितः ॥ ४३ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य भर्गोऽपि भृशरोषितः ।
अंगुल्यग्रप्रहारेण तस्य नेत्रे जघान ह ॥ ४४ ॥
हीननेत्रं भगं दृष्ट्वा विरूपाक्षं दिवाकरः ।
स्पर्द्धमानस्ततः सर्वमाससाद त्वरान्वितः ॥ ४४ ॥
ततः सूर्यं महादेवः पाणौ धृत्वा करेण च ।
दूरीकृत्यातिकुपितो यज्ञमेवाभ्यधावत ॥ ४६ ॥
मार्तण्डश्च हसन् वेगाद्वितत्य विपुलौ भुजौ ।
एहि योत्स्ये त्वयेत्युक्त्वा तमग्रे प्रत्यवारयत्[42] ॥ ४७ ॥
हसतस्तस्य सूर्यस्य क्रोधेन वृषभध्वजः ।
दन्तान् करप्रहारेण शातयामास[43] वक्त्रतः ॥ ४८ ॥
विदन्तं मिहिरं दृष्ट्वा हीननेत्रं भगं तथा ।
सर्वे देवाश्च ऋषयो ये चान्ये तत्र दुद्रुवुः ॥ ४९ ॥
विद्राव्य सर्वान् देवादीन् हरः परमकोपनः ।
मृगरूपेणापयान्तं यज्ञमेवान्वपद्यत ॥ ५० ॥
यज्ञोऽप्याकाशमार्गेण ब्रह्मस्थानं विवेश ह ।
वृषध्वजोऽपि कुपितो ब्रह्मस्थानं जगाम ह ॥ ५१ ॥
ब्रह्मणः सदनाद् यज्ञो भीतो भर्गादवातरत् ।
अवतीर्य सतीदेहं प्रविवेश स्वमायया ॥ ५२ ॥
भर्गोऽपि दक्षदुहितुर्मृताया निकटं गतः ।
अन्वगच्छत्तदा यज्ञं ददर्श च सतीशवम् ॥ ५३ ॥

---

42 प्रत्यधावत । 43 पातयामास ।

मृतां दृष्ट्वा तदा देवीं हरो दाक्षायणीं सतीम् ।
विस्मृत्य यज्ञं तत्प्रान्ते स्थितो वाढं शुशोच ताम् ॥ ५४ ॥
बहुविधगुणवृन्दं चिन्तयञ्छूलपाणि-
र्ललितदशनपंक्ति वक्त्रमब्जप्रकाशम् ।
अरुणदशनवस्त्रं भ्रूयुगं वीक्ष्य तस्याः
खरतरपृथुशोकव्याकुलोऽसौ रुरोद ॥ ५५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे दक्षयज्ञभङ्गे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

दाक्षायणीगुणगणान् गणयन् गोरङ्गस्तदा ।
विललापातिदुःखार्तो मनुजः प्राकृतो यथा ॥ १ ॥
विलपन्तं तदा भर्गं विज्ञाय मकरध्वजः ।
रतीवसन्तसहित आससाद महेश्वरम् ॥ २ ॥
तं शुचातिपरिभ्रष्टं युगपत् स रतिपतिः ।
जघान पंचभिर्बाणै रुदन्तं भ्रष्टचेतनम् ॥ ३ ॥
शोकाभिहतचित्तोऽपि स्मरबाण-समाकुलः ।
संकीर्णभावमापन्नः शुशोच च मुमोह च ॥ ४ ॥
क्षणं भूमौ निपतति क्षणमुत्थाय धावति ।
क्षणं भ्रमति तत्रैव निमीलति विभुः पुनः ॥ ५ ॥
ध्यायन् दाक्षायणीं देवीं हसमानः कदाचन ।
परिष्वजति भूमिष्ठां रसभावैरिव स्थिताम् ॥ ६ ॥
सती सतीति सततं नाम व्याहृत्य शंकरः ।
मानं त्यज वृथेत्येवमुक्त्वा स्पृशति पाणिना ॥ ७ ॥
पाणिनापरिमार्ज्यैनामलंकारान् यथास्थितान् ।
तस्या विश्लिष्य च पुनस्तत्रैवानुयुयोज च ॥ ८ ॥

एवं कुर्वति भूतेशे मृता नोवाच किञ्चन ।
यदा सती तदा भर्गः शोकाद्गाढं रुरोद ह ॥ ९ ॥
रुदतस्तस्य पततो वाष्पान् वीक्ष्य तदा सुराः ।
ब्रह्मादयः परां चिन्तां जग्मुश्चिन्तापरायणाः ॥ १० ॥
वाष्पाः पतन्तो भूमौ चेद्दहेयुः पृथिवीमिमाम् ।
उपायस्तत्र कः कार्य इति हाहेति चुक्रुशुः ॥ ११ ॥
ततो विमृष्यते देवा ब्रह्माद्यास्तु शनैश्चरम् ।
तुष्टुवुर्मूढभर्गस्य वाष्पधारणकारणात् ॥ १२ ॥

देवा ऊचुः

शनैश्चर महाभाग लोकानुग्रहकारक ।
मूलशक्तिसमुद्भूत नमस्ते सूर्यसम्भव ॥ १३ ॥
नमस्ते शूलहस्ताय पाशहस्ताय धन्विने ।
तथा वरदहस्ताय तमश्छायात्मजाय ते ॥ १४ ॥
नीलमेघ-प्रतीकाश भिन्नाञ्जनचयोपम ।
नमस्ते सर्व[44]लोकानां प्राणधारणहेतवे ॥ १५ ॥
गृध्रध्वज नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन् दृढम् ।
वाष्पेभ्यः शोकजेभ्यश्च पाहि भर्गस्य नः क्षितिम् ॥ १६ ॥
यथा पुरा शतं वर्षानवजग्राह वर्षणम् ।
भवानेव तु मेघेभ्यस्तथा कुरु हराम्बुनि ॥ १७ ॥
तव[45] चापां ग्रहं दृष्ट्वा मेघास्ते पुष्करादयः ।
मुमुचुः सततं वर्षं महेन्द्रस्य किलाज्ञया ॥ १८ ॥
आकाश एव वर्षाम्भस्तत्सर्वं भवता पुरा ।
विनाशितं यथा वाष्पं तथा नाशय शूलिनः ॥ १९ ॥
न त्वामृतेऽन्यः शक्तोऽस्ति हरवाष्पनिवारणे ।
दहेत् सदेवगन्धर्वब्रह्मलोकान् सपर्वतान् ।
पृथिवीं पतितो वाष्पस्तस्माद्धारय मायया ॥ २० ॥

---

44 सर्वभूतानां । 45 तवापो ग्रहणम् ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवम्भाषणमाणेषु देवेषु मिहिरात्मजः ।
प्रत्युवाच स तान् देवान्नातिहृष्टमना इव ।। २१ ।।

शनैश्चर उवाच

करिष्ये भवतां कर्म यथाशक्ति सुरोत्तमाः ।
तथा किन्तु विदग्धं हि न मां वेत्ति यथा हरः ।। २२ ।।
दुःखशोकाकुलस्यास्य समीपे वाष्पधारिणः ।
कोपान्नश्येच्छरीरं मे नियतं नात्र संशयः ।। २३ ।।
तस्माद् यथा मां भूतेशो न जानाति सतीपतिः ।
तथा कुरुध्वं नेत्रेभ्यो हरलोतकधारिणम् ।। २४ ।।

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्मादयो देवास्ते सर्वे शंकरान्तिकम् ।
गत्वा हरं सन्मुमुहुः सांसार्या योगमायया ।। २५ ।।
शनैश्चरोऽपि भूतेशमासाद्यान्तर्हितस्तदा ।
वाष्पवृष्टिं दुराधर्षामवजग्राह मायया ।। २६ ।।
यदा स नाशकद्वाष्पान् सन्धारयितुमर्कजः ।
तदा महागिरौ क्षिप्ता वाष्पास्ते जलधारके ।। २७ ।।
लोकालोकस्य निकटे जलधाराह्वयो गिरिः ।
पुष्करद्वीपपृष्ठस्थस्तोयसागर पश्चिमे ।। २८ ।।
स तु सर्वप्रमाणेन मेरुपर्वतसन्निभः ।
तस्मिन् विन्यस्तवान् वाष्पांस्तदाशक्तः शनैश्चरः ।। २९ ।।
स पर्वतोऽपि तान् वाष्पान्न धर्तुं क्षम ईशितुः ।
विदीर्णस्तैस्तु वाष्पौघैर्भग्नमध्योऽभवदद्भुतम् ।। ३० ।।
ते वाष्पाः पर्वतं भित्वा विविशुस्तोयसागरम् ।
सागरोऽपि ग्रहीतुं तन्न शशाक खरानति ।। ३१ ।।

ततस्तु सागरं मध्ये भित्वा वाष्पाः समागताः ।
तोयधेः प्रागभवां वेलां स्पर्शमात्राद्विभेद ताम् ॥ ३२ ॥
विभिद्य वेलां ते वाष्पाः पुष्करद्वीपमध्यगाः ।
नदी भूत्वा वैतरणी पूर्वसागरगाभवत् ॥ ३३ ॥
जलधारस्य भेदेन संसर्गात् सागरस्य च ।
अवाप्य सौम्यतां किंचिद्वाष्पास्ते नाभिन्दन् क्षितिम् ॥३४॥
वैवस्वतपुरद्वारे योजनद्वयविस्तृता ।
अद्यापि तिष्ठत्यपगा हरलोतकसम्भवा ॥ ३५ ॥
अथ शोकविमूढात्मा[47] विलपन् वृषभध्वजः ।
जगाम प्राच्यदेशांस्तु स्कन्धे कृत्वा सतीशवम् ॥ ३६ ॥
उन्मत्तवद्गच्छतोऽस्य दृष्ट्वा भावं दिवौकसः ।
ब्रह्माद्याश्चिन्तयामासुः शवभ्रंशनकर्मणि ॥ ३७ ॥
हरगात्रस्य संस्पर्शाच्छवो नायं विशीर्णताम् ।
गमिष्यति कथं तस्मादस्य भ्रंशो भविष्यति ॥ ३८ ॥
इति सञ्चिन्तयन्तस्ते ब्रह्मविष्णुशनैश्चराः ।
सतीशवान्तर्विविशुरदृश्या योगमायया ॥ ३९ ॥
प्रविश्याथ शवं देवाः खण्डशस्ते सतीशवम् ।
भूतले पातयामासुः स्थाने स्थाने विशेषतः ॥ ४० ॥
देवीकूटे पादयुग्मं प्रथमं न्यपतत् क्षितौ ।
उड्डीयाने चोरुयुग्मं हिताय जगतां ततः ॥ ४१ ॥
कामरूपे कामगिरौ न्यपतत्योनिमण्डलम् ।
तत्रैव न्यपतद्भूमौ पर्वते नाभिमण्डलम् ॥ ४२ ॥
जालन्धरे स्तनयुगं स्वर्णहारविभूषितम् ।
अंशग्रीवं पूर्णगिरौ कामरूपा[47] ततः शिरः ॥ ४३ ॥
यावद्भुवं गतो भर्गः समादाय सतीशवम् ।
प्राच्येषु याज्ञिको देशस्तावदेव प्रकीर्तितः ॥ ४४ ॥

46 शोकपरितात्मा । 47 कामरूपान्ततः । 48 यावद्दूरं ।

अन्ये शरीरावयवा लवशः खण्डिताः सुरैः ।
आकाशगंगामगमन् पवनेन समीरिताः ॥ ४५ ॥
यत्र यत्रापतन् सत्यास्तदापादादयो द्विजाः ।
तत्र तत्र महादेवः स्वयं लिंगस्वरूपधृक् ।
तस्थौ मोहसमायुक्तः सतीस्नेहवशानुगः ॥ ४६ ॥
ब्रह्मविष्णुशनिश्चापि सर्वे देवगणास्तथा ।
पूजयाञ्चक्रुरीशस्य प्रीत्या सत्याः पदादिकम् ॥ ४७ ॥
देवीकूटे महादेवी महाभागेति गीयते ।
सतीपादयुगे लीना योगनिद्रा जगत्प्रभुः[49] ॥ ४८ ॥
कात्यायनी चोड्डीयाने कामाख्या कामरूपिणी ।
पूर्णेश्वरी पूर्णगिरौ चण्डी जालन्धरे गिरौ[50] ॥ ४६ ॥
पूर्वान्ते कामरूपस्य देवी दिक्करवासिनी ।
तथा ललितकान्तेति योगनिद्रा प्रगीयते ॥ ५० ॥
यत्रैव पतितं सत्याः शिरस्तत्र वृषध्वजः ।
उपविष्टः शिरो वीक्ष्य श्वसञ्छोकपरायणः ॥ ५१ ॥
उपविष्टे हरे तत्र ब्रह्माद्यास्ते दिवौकसः ।
समीपमगमंस्तस्य दूरतः सान्त्वयन् हरम् ॥ ५२ ॥
देवानागच्छतो दृष्ट्वा शोक-लज्जासमन्वितः ।
गत्वा शिलात्वं तत्रैव लिंगत्वं गतवान् हरः ॥ ५३ ॥
हरे लिंगत्वमापन्ने ब्रह्माद्यास्तु दिवौकसः ।
तुष्टुवुस्त्र्यम्बकं तत्र लिंगरूपं जगद्गुरुम् ॥ ५४ ॥

देवा ऊचुः

महादेवं शिवं स्थाणुमुग्रं रुद्रं वृषध्वजम् ।
श्मशानवासिनं भर्गं सर्वान्तकरणं परम् ॥ ५५ ॥
त्वां नमामो वयं भक्त्या शंकरं नीललोहितम् ।
गिरीशं वरदं देवं भूतभावनमव्ययम् ॥ ५६ ॥

49 प्रभुः । 50 स्मृता ।

अनादिमध्यसंसारयोगविद्याय शम्भवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ५७ ॥
जटिलाय[51] गिरिशाय विद्याशक्तिधराय ते ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ५८ ॥
ज्ञानामृतान्तसम्पूर्णशुद्धदेहान्तराय च ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ५९ ॥
आदिमध्यान्तभूताय[52] स्वभावानलदीप्तये ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ६० ॥
प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयस्थितिहेतवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ६१ ॥
यः परेभ्यः परस्तस्मात् पराय परमात्मने ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ६२ ॥
ज्वालामालावृतांगाय नमस्ते विश्वरूपिणे[53] ।
नमः शिवाय शन्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ५३ ॥
ॐ नमः परमार्थाय ज्ञानदीपाय वेधसे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ६४ ॥
नमो दाक्षायणीकान्त मृड शर्व महेश्वर ।
नमस्ते सर्वभूतेश प्रसीद भगवञ्छिव ॥ ६५ ॥
सशोके त्वयि लोकेशे चेष्टमाने महेश्वर ।
सुराः समाकुलाः सर्वे तस्माच्छोकं परित्यज ॥ ६६ ॥
नमो नमस्ते भूतेश सर्वकारणकारण ।
प्रसीद[54] रक्ष नः सर्वांस्त्यज शोकं नमोऽस्तुते ॥ ६७ ॥

---

51 ॐ नमः परमात्मने ज्ञानरूपाय वेधसे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ नमो दाक्षायणीकान्त सूतसर्व महेश्वर । नमस्ते सर्वभूतेश प्रसीद भगवन् शिव ॥ सशोके त्वयि लोकेश चेष्टमाने महेश्वर । सुराः समाकुलाः सर्वे तस्मात् शोकं परित्यज ॥ 52 रूपाय । 53 शस्त्ररूपिणे । 54 परेभ्यश्च परस्मात् च पराय परमात्मने ।

मार्कण्डेय उवाच

इति संस्तूयमानस्तु महादेवो जगत्पतिः।
निजं रूपं समास्थाय प्रादुर्भूतः शुचाहतः॥ ६८॥
तं शुचा विह्वलं दृष्ट्वा प्रादुर्भूतं विचेतसम्।
शोकापहं विधिं साम्ना तुष्टाव वृषभध्वजम्॥ ६९॥

ब्रह्मोवाच

हिरण्यबाहो ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं जगतः पतिः।
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुस्त्वं केवलं हर॥ ७०॥
त्वमष्टमूर्तिभिः सर्वं जगद्व्याप्य चराचरम्।
उत्पादकः स्थापकश्च नाशकश्चापि विश्वकृत्॥ ७१॥
त्वा[55]माराध्य महादेव मुक्तिं याता मुमुक्षवः।
रागद्वेषादिभिस्त्यक्ताः संसारविमुखा बुधाः॥ ७२॥

विभिन्नवाय्वग्निजलौघवर्जितं
न दूरसंस्थं रविचन्द्रसंयुतम्।
त्रिमार्गमध्यस्थमनुप्रकाशकं
तत्त्वं परं शुद्धमयं महेश्वर॥ ७३॥

यदष्ट[56]शाखस्य तरोः प्रसूनं
चिदम्बुवृद्धस्य समीपजस्य।
तपश्छदःसंस्थगितस्य पीनं
सूक्ष्मोपगं ते वशगं सदैव॥ ७४॥

अधः समाधाय समीरण[57]स्वनं
निरुद्ध्य चोर्द्ध्वं निशि[58] हंसमध्यतः।
हृत्पद्ममध्ये सुमुखीकृतं रजः
परन्तु तेजस्तव सर्वदेक्ष्यताम्[59]॥ ७५॥

---

55 तृतीयं यद्भवेन्नेत्रं ललाटस्थं महेश्वर। सततं भ्राजमानं तत् चिन्त्यं तेजो मुमुक्षुभिः॥ 56 यद्ब्रह्मशाखस्य। 57 समीरणं बलात्। 58 विरुद्धमध्यतः। 59 सर्वदेश्यताम्।

प्राणायामैः पूरकैः स्तम्भकैर्वा
रिक्तै[60]श्चित्रैश्चोदनं यत्पराख्यम्।
दृश्यादृश्यं योगिभिस्ते प्रपञ्चाः
शुद्धं वृद्धं[61] तत्त्वतस्तेऽस्ति लब्धम् ॥ ७६ ॥
सूक्ष्मं जगद्व्यापि गुणौघपीनं[62]
मृग्यम्बुधैः साधनसाध्यरूपम्।
चौरैरक्षैर्नोज्झितं नैव नीतं
वित्तं तवास्त्यर्थहीनं महेश ॥ ७७ ॥
न कोपेन न शोकेन न मानेन न दम्भतः।
उपयोज्य तु तद्वित्तमन्यथैव विवर्धते ॥ ७८ ॥
मायया मोहितः शम्भो विस्मृतं ते हृदि स्थितम्।
मायां भिन्नं परिज्ञाय धारयात्मानमात्मना ॥ ७९ ॥
मायास्माभिः स्तुता पूर्वं जगदर्थे महेश्वर।
तया ध्यानगतं चित्तं बहुयत्नैः प्रसाधितम् ॥ ८० ॥
शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मोहः परात्मता[63]।
ईर्ष्यामानौ[64] विचिकित्सा कृपासूया जुगुप्सता ॥ ८१ ॥
द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मनसो मलाः।
न त्वादृशैर्निषेव्यन्ते शोकं त्यज ततो हर ॥ ८२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति शाम्ना स्तुतः शम्भुः संस्मृत्यापि स्ववाञ्छितिम्।
नावदध्रे तदात्मानं शोकात् सत्या विनाकृतः ८३ ॥
अधोमुखः स्थितं वीक्ष्य ब्रह्माणं स शनैरिदम्।
प्राह ब्रह्मन्नायतिगं वद किं करवाण्यहम् ॥ ८४ ॥

---

60 स्वल्पतस्तेऽस्ति। 62 जलौघहीनं 63 परीप्सया
64 विजीगिषा।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो वामेदेवेन बिधाता सर्वदैवतैः ।
इदमाह तदेशस्य शोकविध्वंसकं वचः ॥ ८५ ॥

ब्रह्मोवाच

त्यज शोकं महादेव संस्मृत्यात्मानमात्मना ।
न त्वं शोकस्य सदनं परं शोकात्तवान्तरम् ॥ ८६ ॥
सशोके त्वयि भूतेश देवा भूताः ससाध्वसाः ।
भ्रंशयेज्जगतीं कोपः शोकः सर्वांश्च शोषयेत् ॥ ८७ ॥
त्वद्बाष्पव्याकुला पृथ्वी विदीर्णा स्यान्नचेच्छनिः ।
अवजग्राह ते वाष्पं सोऽपि कृष्णोऽभवद् हठात् ॥ ८८ ॥
यत्र देवाः सगन्धर्वाः सदा क्रीडन्ति सोत्सुकाः ।
सुमेरुसदृशो योऽसौ मानतः पर्वतोत्तमः ॥ ८९ ॥
यस्मिन् प्रविश्य शिशिरे[65] पद्मनालनिभे घनाः ।
उत्पिवन्ति स्म तोयानि पुष्करावर्तकादयः ॥ ९० ॥
मन्दरात् सततं यत्र कुम्भयोनिर्महामुनिः ।
गत्वा गत्वा तपस्तेपे हिताय जगतो हरः ॥ ९१ ॥
यस्मिन् स्थित्वा गिरौ पूर्वमगस्त्यस्तोयसागरम् ।
पपौ तपोवलात् कृत्वा करमध्यगतं किल ॥ ९२ ॥
शनैश्चरेण ते वोढुमसमर्थेन लोतकैः ।
क्षिप्तैर्विदारितस्तेऽसौ जलधाराह्वयो गिरिः ॥ ९३ ॥
विभिद्य पर्वतं शम्भो वाष्पास्ते सागरं ययुः ।
भित्त्वा तु सागरं शीघ्रं[66] प्रभीताण्डजसंकुलम् ॥ ९४ ॥
जग्मुस्ते पूर्वपुलिनं तस्य तद्विभिदुश्च ते ।
भित्त्वा वेलां ततः पृथ्वीं यिभिद्याशु तरंगिणीम् ॥ ९५ ॥

---

65 सुगिरौ । 66 शीर्ण ।

चक्षुर्वैतरणीं नाम्ना पूर्वसागरगामिनीम् ।
न नावा न विमानेन द्रोण्या स्यन्दनेन च ॥ ९६ ॥

ततुं शक्या सा तु नदी तप्ततोयातिभीषणा ।
दुःखेन तान्तु पृथिवी विभर्त्ति महताधुना ॥ ९७ ॥

सदा चोर्द्धगतैर्वाष्पैर्विक्षिपन्ती नभश्चरान् ।
तस्यास्तूपरि नो यान्ति देवा अपि भयातुराः[67] ॥ ९८ ॥

यमद्वारं परावृत्य योजनद्वयविस्तृता ।
निम्ना वहति सम्पूर्णा भीषयन्ती जगत्त्रयम् ॥ ९९ ॥

त्वन्निःश्वासमरुज्जातैर्ग्यस्ता पर्वतकाननाः ।
समाकुलद्वीपिनागा नाद्यापि प्रतिशेरते ॥ १०० ॥

तव निःश्वासजो वायुः पीडयन् जगतः सुखम्[68] ।
नाद्यापि प्रशमं याति बाधाहीनः सनातनः ॥ १०१ ॥

सतीशवं ते वहतः शीर्यमाणा पदे पदे ।
नाद्यापि व्याकुला पृथ्वी व्याकुलत्वं विमुञ्चति ॥ १०२ ॥

न स्वर्गे न च पाताले तत्सत्त्वं विद्यतेऽधुना ।
यत्ते क्रोधेन शोकेन नाकुलं वृषभध्वज ॥ १०३ ॥

तस्माच्छोकममर्षंच त्यक्त्वा शान्तिं प्रयच्छ नः ।
आत्मानञ्चात्मना वेत्थ धारयात्मानमात्मना ॥ १०४ ॥

सती च दिव्यमानेन व्यतीते शरदां शते ।
सा च त्रेतायुगस्यादौ भार्या तव भविष्यति ॥ १०५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो वेधसा शम्भुस्तूष्णीं ध्यानपरायणः[69] ।
अधोमुखस्तदा प्राह ब्रह्माणममितौजसम् ॥ १०६ ॥

---

67 भयाद्धर । 68 त्रयम् । 69 ध्यानपरः क्षणम् ।

ईश्वर उवाच

यावद् ब्रह्मन्नहं शोकादुत्तरामि सतीकृतात् ।
तावन्मम सखा भूत्वा कुरु शोकापनोदनम् ॥ १०७ ॥
तस्मिन्नवसरे यत्र यत्र गच्छाम्यहं विधे ।
तत्र तत्र भवान् गत्वा शोकहानिं करोतु मे ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विति लोकेश प्रोक्त्वा वृषभवाहनम् ।
हरेण सार्धं कैलासं गन्तुं चक्रे मनस्ततः ॥ १०६ ॥
ब्रह्मणा सहितं शम्भुं कैलासगमनोत्सुकम् ।
समासेदुर्गणा दृष्ट्वा नन्दिभृंगिमुखाश्च ये ॥ ११० ॥
ततः पर्वतसंकाशो वृषभः पुरतो विधेः ।
उपतस्थे सिताभ्रस्य सदृशो गैरिको यथा ॥ १११ ॥
वासुक्याद्याश्च ये सर्पा यथास्थानञ्च ते हरम् ।
भूषयांचक्रुरुद्गम्य शिरोबाह्वादिषु द्रुतम् ॥ ११२ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च महादेवः सतीपतिः ।
सर्वैः सुरगणैः सार्धं जग्मुः प्रालेयपर्वतम् ॥ ११३ ॥
ततस्तानौषधिप्रस्थान् निःसृत्य नगराद्गिरिः ।
सर्वैरमात्यैः सहित उपतस्थे सुरोत्तमान् ॥ ११४ ॥
ततः सम्पूजितास्तेन सुरौघा गिरिणा सह ।
सचिवैः पौरवर्गैश्च मुमुदुस्ते सुरर्षभाः ॥ ११५ ॥
ततो ददर्श तत्रैव गिरीन्द्रस्य पुरे हरः ।
विजयामौषधिप्रस्थे सखीभिर्गौतमात्मजाम् ॥ ११६ ॥
सापि सर्वान् सुरवरान् प्रणम्य हरमुक्तवान् ।
चुक्रोश मातृभगिनीं पृच्छन्ती गिरिशं सतीम् ॥ ११७ ॥
क्व सती ते महादेव शोभसे न तया विना ।
विस्मृतापि त्वया तात मद्धृदो नापसर्पति ॥ ११८ ॥

ममाग्रे सा पुरा प्राणान् यदा त्यजति कोपतः ।
तदैवाहं शोकशल्यविद्धा नाप्नोमि वै सुखम् ॥ ११९ ॥
इत्युक्त्वा वदनं वस्त्रप्रान्तेनाच्छाद्य सा भृशम् ।
रुदन्ती प्रापतद्भूमौ[70] कश्मलञ्चाविशत्तदा ॥ १२० ॥

इति श्रीकालिका पुराणे विजयाशोके अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तां पतितां दृष्ट्वा तदा दाक्षायणीं स्मरन् ।
न शशाक ह सोढुं शोकमुद्वेगसम्भवम् ॥ १ ॥
भ्रष्टधैर्यस्ततः शम्भुर्बाष्पव्याकुललोचनः ।
पश्यतां सर्वदेवानां चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ॥ २ ॥
अथाश्वास्य तदा धाता विजयां शोककर्षिताम् ।
हरमाश्वासयन् सान्त्वपूर्वमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

पुराणयोगिन् भगवन्न शोकस्तव युज्यते ।
परधाम्नि तव ध्यानमासीत् कस्मात् स्त्रियामिह ॥ ४ ॥
प्रभविष्णुः परः शान्तः सूक्ष्मः स्थूलतरः सदा ।
तव स्वभावश्च कथं शोकेन बहुधाकृतः ॥ ५ ॥

निरञ्जनं ध्यानगम्यं यतीनां
परात्परं निर्मलं सर्वगामि ।
मलैर्हीनं रागलोमादिभिर्यत्
तत् ते रूपं त्वद्भूतं गृह्य बुद्ध्या ॥ ६ ॥

---

70 सापततद्भुमौ ।

शोको लोभः क्रोधमोहौ च हिंसा
मानो दम्भो मदमोहप्रमोदाः ।
ईर्ष्यासूयाक्षान्तिरसत्यता च
चतुर्दश ज्ञाननाशा हि दोषाः ॥ ७ ॥

ध्यानेन त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति
त्वं विष्णुरूपी[71] जगतां विधाता ।
या ते महामोहकरी सतीति
तवैव सा लोकमोहाय माया ॥ ८ ॥

या सर्वलोकाञ्जननेऽथ गर्भे
विमोहयन्ती पूर्वदेहस्य बुद्धिम् ।
विनाश्य बाल्यं कुरुते हि जन्तो-
र्विमोहयत्यद्य सा त्वं सशोकम् ॥ ९ ॥

सतीसहस्राणि पुरोज्झितानि
त्वया मृतानि प्रतिकल्पमेवम् ।
हिताय लोकस्य चराचरस्य
पुनर्गृहीता च तथा त्वयेयम् ॥ १० ॥

भवान्तरे ध्यानयोगेन पश्य
सतीसहस्राणि मृतानि यानि ।
यथा तथा त्वं परिवर्जितश्च
यथास्ति सा वा वृषराजकेतो ॥ ११ ॥

यतः समुत्पद्य मुहुर्भवन्तं
सा प्राप्स्यतीश त्रिदशैदुरापम् ।
पुनश्च जाया यादृशी ते भवित्री
तत्तत् सर्वं ध्यानयोगेन पश्य ॥ १२ ॥

---

71 विश्वरूपी ।

मार्कण्डेयउवाच

एवं बहुविधं ब्रह्मा व्याहरत् साम शंकरम् ।
गिरिराजपुरात्तस्माद्गमयामास निर्जनम् ॥ १३ ॥
ततो हिमवतः प्रस्थे प्रतीच्यां तत्पुरस्य च ।
शिप्रं नाम सरः पूर्णं ददृशुर्द्रुहिणादयः ॥ १४ ॥
तद्ब्रह्स्थानमासाद्य ब्रह्मशक्रादयः सुराः ।
उपविष्टा यथान्यायं पुरस्कृत्य महेश्वरम् ॥ १५ ॥
तं शिप्रसंज्ञं कासारं मनोज्ञं सर्वदेहिनाम् ।
शीतामलजलं सर्वैर्गुणैर्मानससम्मितम् ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा क्षणं हरस्तस्मिन् सोत्सुकोऽभूदवेक्षणे ।
शिप्रां नाम नदीं तस्मान्निःसृतां दक्षिणोदधिम् ।
गच्छन्तीश्च ददर्शासौ पावयन्तीं जगज्जनान् ॥ १७ ॥
तत्सरः पूर्णमासाद्य चरतः शकुनान् बहून् ।
नानादेशागताञ्छम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे मनोरमान् ॥ १८ ॥
गम्भीरपवनोद्धुतिसम्पन्नेषु[72] विराजितः ।
कोकद्वन्द्वांस्तरंगेषु ददर्श नृत्यतो यथा ॥ १९ ॥
मद्गुचञ्चुषु सम्पृक्तांस्तरंगान् स पृथक् पृथक् ।
वीक्षाञ्चक्रे यथा तोयादुत्पतत्पतगान् मुहुः ॥ २० ॥
कादम्बैः सारसैर्हंसैः श्रेणीभूतैस्तटेतटे ।
भंगीकृतैर्यथा शंखैः सागरस्तादृशं सरः ॥ २१ ॥
महामीनाहतिक्षुब्धैस्तोयशब्दोत्थसाध्वसैः[73] ।
पक्षिभिर्विहितैः शब्दस्तत्र तत्र मनोहरम् ॥ २२ ॥
प्रफुल्लैः पंकजैश्चैव क्वचिज्जालैर्मनोहरैः ।
सरोरेजे यथा स्वर्गो नक्षत्रैः स्थूलसूक्ष्मकैः ॥ २३ ॥
महोत्पलानां मध्येषु विरलं नीलमुत्पलम् ।
रेजे नक्षत्रमध्येषु नीलनीरदखण्डवत् ॥ २४ ॥

---

72 बृत्रिसम्पन्नेष । 73 महामीनैरतीक्ष्णैश्च तोय ।

पद्मसंघात-मध्यस्था हंसाः कैश्चिन्न संस्तुताः ।
प्रफुल्लपंकजभ्रान्त्या निश्चलाः स्वर्गवासिभिः ॥ २५ ॥
द्विधा दृष्ट्वा शोणशुक्ले पद्मे फुल्ले विधिः स्वके ।
कायेऽरुणत्वं फुल्लत्वं स्वासनाब्जे निनिन्द च ॥ २६ ॥
फुल्लं महोत्पलं वीक्ष्य सरसस्तस्य शंकरः ।
मौलीन्दुकान्तिमलिनं हस्तस्थं नोत्पलं ममे ॥ २७ ॥
हरेः स्वचक्रसूर्यांशुफुल्लं हस्तगताम्बुजम् ।
सरः पद्मञ्च सदृशं मेने वीक्ष्य समन्ततः ॥ २८ ॥
तत्सरो वीक्ष्य सम्पूर्णं नानापक्षिसमाकुलम् ।
पद्मिनीशतसञ्छन्नं नीलोत्पलचयैर्वृतम् ॥ २९ ॥
देवदारुतरूणाञ्च तटस्थानां प्रसूनजैः ।
परागैर्वासितजलं हृदयानन्दकारकम् ॥ ३० ॥
तीरे तीरे महावृक्षैः शाद्वलैः परिवारितम् ।
दृष्ट्वा शम्भुः क्षणं तत्र सोत्सुकः शोकवर्जितः ॥ ३१ ॥
शिप्रामालोकयामास निःसृतां सरसस्ततः ।
यथेन्दुमण्डलाद् गंगा मेरोर्जाम्बुनदी यथा ।
तथा दृष्ट्वा महेशेन शिप्रा शिप्राद्विनिःसृता ॥ ३२ ॥

ऋषय ऊचुः

शिप्राह्वयः कः कासारः कथं शिप्रा ततः सृता ।
कीदृशोऽस्य प्रभावश्च तत् समाचक्ष्व विस्तरात् ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रृण्वन्तु मुनयः सर्वे यथा शिप्रा नदी सृता ।
शिप्रस्य च महाभागाः प्रभावं गदतो मम ॥ ३४ ॥
वसिष्ठेन यदा देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
तदा वैवाहिकैस्तोयैः शिप्रासिन्धुरभूद्द्विजाः ॥ ३५ ॥

सा समागत्य पतिता शिप्रे सरसि शासनात् ।
यथा मन्दाकिनी विष्णुपादादब्धौ शिवोदका ॥ ३६ ॥
ब्रह्मविष्णुमहादेवैस्तोयं सिक्तं तयोः पुरा ।
विवाहे शान्तिविहितं गायत्रीद्रुपदादिभिः ॥ ३७ ॥
एकीभूतन्तु तत्तोयं मानसाचलकन्दरात् ।
तत् सर्वं पतितं शिप्रे कासारे सागरोपमे ॥ ३८ ॥
देवानामुपभोगार्थं पुरा धात्रा विनिर्मितम् ।
सरः शिप्राह्वयं सानौ प्रालेयस्य गिरेर्महत् ॥ ३९ ॥
तत्राद्यापि सुनासीरः सहितश्चाप्सरोगणैः ।
शचीसहायो रमते प्रसन्ने सलिले शुभे ॥ ४० ॥
तद्देवैः सर्वदा यत्नाद्रक्ष्यतेऽद्यापि रत्नवत् ।
न तत्र मानुषः कश्चिद् यातुं शक्नोति योऽमुनिः ॥ ४१ ॥
तपः प्रभावान्मुनयः प्रयान्ति सरसीं शुभाम् ।
शिप्राख्यान्तु महायत्नात् स्नातुं पातुञ्च तज्जलम् ॥ ४२ ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मनुष्याः दैवयोगतः ।
अवश्यममरत्वाय गच्छन्त्यविकलेन्द्रियाः ॥ ४३ ॥
वृद्धिं गच्छति वर्षासु सरो नैतद्द्विजोत्तमाः ।
न ग्रीष्मे शोषतां[74] याति सर्वदा तद्यथा तथा ॥ ४४ ॥
तत्र तत् पतितं तोयं वसिष्ठोद्वाहसम्भवम् ।
ब्रह्मविष्णुमहादेवकरपद्मै रुदीरितम् ॥ ४५ ॥
ववृधे शिप्रगर्भस्थमन्वहं द्विजसत्तमाः ।
तत्र वृद्धन्तु तत्तोयञ्चक्रेण च हरिः पुरा ॥ ४६ ॥
गिरेः शृंगं विनिर्भिद्य लोकानां हितकाम्यया ।
पृथिवीं प्रेरयामास कृत्वा पुण्यतमां नदीम् ॥ ४७ ॥
परिवृत्य महेन्द्रं सा पुनाना स्नानकारिणः ।
दक्षिणं सागरं याता फलदा जाह्नवी समा ॥ ४८ ॥

---

74 शोषमायाति ।

शिप्राख्यात् सरसो यस्मान्निःसृता सा महानदी ।
अतः शिप्रेति तन्नाम पुरैव ब्रह्मणा कृतम् ॥ ४६ ॥
कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तु तस्यां यः स्नाति मानवः ।
स याति विष्णुसदनं विमानेनातिदीप्यता ॥ ५० ॥
कार्तिकं सकलं मासं स्नात्वा शिप्राजले नरः ।
प्रयाति ब्रह्मसदनं पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥

ऋषय ऊचुः

वसिष्ठेन कथं देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
कस्य सा तनया ब्रह्मन्नुत्पन्ना वा वदस्व नः ॥ ५२ ॥
पतिव्रतासु प्रथिता त्रिषुलोकेषु या[75] वरा ।
भर्त्तृपादौ विनान्यत्र या न चक्षुः प्रदास्यति ॥ ५३ ॥
यस्याः स्मृत्वा कथामात्रं माहात्म्यसहितं स्त्रियः ।
प्रेत्येह च सतीत्वं वै प्राप्नुवन्त्यन्यजन्मनि ॥ ५४ ॥
आसन्नकालधर्मो यां न पश्यति तथा शुचिः ।
पुरुषः पापकारी च तस्या जन्म वदस्व नः ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं सा यथा जाता यस्य वा तनया शुभा ।
यथावाप वसिष्ठं सा यथाभूता पतिव्रता ॥ ५६ ॥
या सा सन्ध्या ब्रह्मसुता मनोजाता पुराभवत् ।
तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव भूता त्वरुन्धती ॥ ५७ ॥
मेधातिथेः सुता भूत्वा मुनिश्रेष्ठस्य सा सती ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां वचनाच्चरितव्रता ।
वव्रे पतिं महात्मानं वसिष्ठं संशितव्रतम् ॥ ५८ ॥

---

75 यावला ।

ऋषय ऊचुः

कथं तया तपस्तप्तं किमर्थं कुत्र सन्ध्यया ।
कथं शरीरं सा त्यक्त्वा भूता मेधातिथेः सुता ।। ५६ ।।
कथं वा गदितं देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवैः पतिम् ।
वसिष्ठं सुमहात्मानं सा वव्रे[76] संशितव्रतम् ।। ६० ।।
तन्नः सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तम ।
एतन्नः श्रोष्यमाणानां चरितं द्विजसत्तम ।
अरुन्धत्या महासत्याः परं कौतुहलं महत् ।। ६१ ।।

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मापि तनयां सन्ध्यां दृष्ट्वा पूर्वमथात्मनः ।
कामाय मानसञ्चक्रे[77] त्यक्ता सा च सुतेति वै ।। ६२ ।।
तस्यांच चलितं चित्तं कामवाणविलोडितम् ।
ऋषीणां प्रेक्षतां तेषां मानसानां महात्मनाम् ।। ६३ ।।
भर्गस्य वचनं श्रुत्वा सोपहासविधिं प्रति ।
आत्मनश्चलचित्तत्वममर्यादमृषीन् प्रति ।। ६४ ।।
कामस्य तादृशं भावं मुनिमोहकरं मुहुः ।
दृष्ट्वा सन्ध्या स्वयं तत्र त्रपामायाति दुःखिता ।। ६५ ।।
ततस्तु ब्रह्मणा शप्ते मदने तदनन्तरम् ।
अन्तर्भूते विधौ शम्भौ गते चापि निजास्पदम् ।। ६६ ।।
अमर्षवशमापन्ना सन्ध्या ध्यानपराभवत् ।
ध्यायन्ती क्षणमेवाशु पूर्ववृत्तं मनस्विनी ।। ६७ ।।
इदं विममृशे सन्ध्या तस्मिन् काले यथोचितम् ।
उत्पन्नमात्रां मां दृष्ट्वा युवतीं मदनेरितः ।। ६८ ।।
अकार्षीत् सानुरागोऽयमभिलाषं पितामहः ।
सर्वेषां मानसानाञ्च मुनीनां भावितात्मनाम् ।। ६९ ।।

76 चरित । 77 स्वमनश्चक्रे ।

दृष्ट्वैव माममर्यादं सकाममभवन् मनः ।
ममापि मथितं चित्तं मदनेन दुरात्मना ॥ ७० ॥
येन दृष्ट्वा मुनीन् सर्वान् चलितं मे मनोभृशम् ।
फलमेतस्य पापस्य मदनः स्वयमाप्नवान् ॥ ७१ ॥
स्वयं शशाप कुपितः शम्भोरग्रे पितामहः ।
ममोचितं फलं सर्वं प्राप्तुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ७२ ॥
यन्मां पिता भ्रातरश्च सकामामपरोक्षतः ।
दृष्ट्वा चक्रुः स्पृहां तस्मान्न मत्तः काऽपि पापकृत् ॥ ७३ ॥
ममापि कामभावोऽभूदमर्यादं समीक्ष्य तान् ।
पत्याविव स्वके ताते सर्वेषु सहजेष्वपि ॥ ७४ ॥
करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम ।
आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारतः ॥ ७५ ॥
किन्त्वेकां स्थापयिष्यामि मर्यादामिह भूतले ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ॥ ७६ ॥
एतदर्थमहं कृत्वा तपः परमदारुणम् ।
मर्यादां स्थापयित्वैव पश्चात्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ ७७ ॥
यस्मिञ्छरीरे पित्रा मे ह्यभिलाषः स्वयं कृतः ।
भ्रातृभिस्तेन कायेन किंचिन्नास्ति प्रयोजनम् ॥ ७८ ॥
येन स्वेन शरीरेण ताते च सहजे स्वके ।
उद्भावितः कामभावो न तत्सुकृतसाधकम् ॥ ७९ ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा सन्ध्या शैलवरं ततः ।
जगाम चन्द्रभागाख्यं चन्द्रभागा यतः स्रुता ॥ ८० ॥

तया स शैलः समधिष्ठितः तदा
सुवर्णगौर्या सुसमप्रभाभृता ।
सोमेन सन्ध्यासमयोदितेन
यथोदयाद्रिर्विरराज शश्वत् ॥ ८१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सन्ध्यातपश्चरणे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ तत्र गतां दृष्ट्वा सन्ध्यां गिरिवरं प्रति।
तपसे नियतात्मानं ब्रह्मा प्राह स्वकं सुतम्॥ १॥
वसिष्ठं संशितात्मानं[78] सर्वज्ञं ज्ञानियोगिनम्।
समीपे सुसमासीनं[79] वेदवेदांगपारगम्॥ २॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठ गच्छ यत्रैषा सन्ध्या याता मनस्विनी।
तपसे धृतकामा सा दीक्षस्वैनां यथाविधि॥ ३॥
मन्दाक्षमभवत् तस्याः पुरा दृष्ट्वेह कामुकान्।
युष्मान् माञ्च तथात्मानं सकामान् मुनिसत्तम॥ ४॥
अयुक्तरूपं तत्कर्म पूर्ववृत्तं विमृश्य[80] सा।
अस्माकमात्मनश्चापि प्राणान् सन्त्यक्तुमिच्छति॥ ५॥
अमर्यादेषु मर्यादां तपसा स्थापयिष्यति।
तपः कर्तुं गता साध्वी चन्द्रभागाय साम्प्रतम्॥ ६॥
न भावं तपसस्तात सा तु जानाति कञ्चन।
तस्माद्यथोपदेशं सा प्राप्नोति त्वं तथा कुरु॥ ७॥
इदं रूपं परित्यज्य रूपान्तरं परं भवान्।
परिगृह्यान्तिके तस्यास्तपश्चर्यान्निदेशतु[81]॥ ८॥
इदं स्वरूपं भवतो दृष्ट्वा पूर्वं यथा त्रपाम्।
तथा प्राप्य न किंचित् सा त्वदग्रे व्याहरिष्यति॥ ९॥
परित्यज्य स्वकं रूपं रूपान्तरधरो भवान्।
तस्मात् सन्ध्यां महाभागामुपदेष्टुं प्रगच्छतु॥ १०॥

---

78 संयतात्मानं। 79 स्वे समासीनं। 80 विचिन्त्य सा।
81 ... निदेशय।

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा वसिष्ठोऽपि वर्णी भूत्वा जटाधरः ।
तरुणश्चन्द्रभागाय ययौ सन्ध्यान्तिकं मुनिः ॥ ११ ॥
तत्र देवसरः पूर्णं गुणैर्मानससम्मितम् ।
ददर्श स वसिष्ठोऽथ सन्ध्यां तत्तीरगामिनीम्[82] ॥ १२ ॥
तीरस्थया तया रेजे तत्सरः कमलोज्ज्वलम् ।
उद्यदिन्दुसनक्षत्रं प्रदोषे गगनं यथा ॥ १३ ॥
तां तत्र दृष्ट्वाथ मुनिः समाभाष्य सकौतुकः ।
वीक्षाञ्चक्रे सरस्तत्र वृहल्लोहितसंज्ञकम् ॥ १४ ॥
चन्द्रभागा नदी तस्मात् कासाराद्दक्षिणाम्बुधिम् ।
यान्ती निर्भिद्य ददृशे तेन सानुगिरेर्महत् ॥ १५ ॥
निर्भिद्य पश्चिमं सानुं चन्द्रभागस्य सा नदी ।
यथा हिमवतो गंगा तथा गच्छति सागरम् ॥ १६ ॥

ऋषय ऊचुः

चन्द्रभागा कथं सिन्धुस्तत्रोत्पन्ना महागिरौ ।
कीदृक् सरस्तद्विप्रेन्द्र वृहल्लोहितसंज्ञकम् ॥ १७ ॥
कथं स पर्वतश्रेष्ठश्चन्द्रभागाह्वयोऽभवत् ।
चन्द्रभागाह्वया कस्मान्नदी जाता वृषोदका ॥ १८ ॥
एतन्नः श्रोष्यमाणानां जायते कौतुकं महत् ।
माहात्म्यं चन्द्रभागायाः कासारस्य गिरेस्तथा ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रूयताञ्चन्द्रभागाया उत्पत्तिर्मुनिसत्तमाः[83] ।
युष्माभिश्चन्द्रभागस्य माहात्म्यं नामकारणम् ॥ २० ॥
हिमवद्गिरिसंसक्तः शतयोजनविस्तृतः ।
योजनत्रिंशदायामः कुन्देन्दुधवलो गिरिः ॥ २१ ॥

---

82 तत्तीरगामपि । 83 द्विजसत्तमाः ।

तस्मिन् गिरौ पुरा वेधाश्चन्द्रं शुद्धं सुधानिधिम् ।
विभज्य कल्पयामास देवान्नं स पितामहः ॥ २२ ॥
पित्रर्थञ्च[84] तथा तस्य तिथिवृद्धिक्षयात्मकम् ।
कल्पयामास जगतां हिताय कमलासनः ॥ २३ ॥
विभक्तश्चन्द्रमास्तस्मिन्[85] जीमूते द्विजसत्तमाः ।
अतो देवाश्चन्द्रभागं नाम्ना चक्रुः पुरा गिरिम् ॥ २४ ॥

ऋषय ऊचुः

यज्ञभागेषु तिष्ठत्सु तथा क्षीरोदजेऽमृते ।
किमर्थमकरोच्चन्द्रं देवान्नं कमलासनः ॥ २५ ॥
तथा कव्ये स्थिते कस्मात् पित्रर्थं समकल्पयत् ।
तिथिक्षये तथा वृद्धौ कथमिन्दुरभूद्गुरो ॥ २६ ॥
एतन्नः संशयं ब्रह्मञ्छिन्धि सूर्यो यथा तमः ।
नान्योऽस्ति संशयस्यास्य छेत्ता त्वत्तो द्विजोत्तम ॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पुरा दक्षः स्वतनया अश्विन्याद्या मनोरमाः ।
षड्विंशतिं तथैकाञ्च सोमायादात् प्रजापतिः ॥ २८ ॥
समस्तास्तास्ततः सोम उपयेमे यथाविधि ।
निनाय च स्वकं स्थानं दक्षस्यानुमते तदा ॥ २९ ॥
अथ चन्द्रः समस्तासु तासु कन्यासु रागतः ।
रोहिण्या सार्धमवसद्रतोत्सवकलादिभिः ॥ ३० ॥
रोहिणीमेव भजते रोहिण्या सह मोदते ।
विनेन्दू[86] रोहिणीं शान्तिं न काञ्चिल्लभते पुरा ॥ ३१ ॥
रोहिणीतत्परं चन्द्रं वीक्ष्य ताः सर्वकन्यकाः ।
उपचारैर्बहुविधैर्भेजुश्चन्द्रमसं प्रति[87] ॥ ३२ ॥

---

84 पित्रन्नत्वं । 85 यस्मात् तस्मिन् जीमूतसत्तमे ।
86 विनेन्दुं रोहिणी । 87 पतिं ।

निषेव्यमाणोऽनुदिनं यदा नैवाकरोद्विधुः ।
तासु भावं तदा सर्वा अमर्षवशमागताः ॥ ३३ ॥
अथोत्तराफाल्गुनीति नाम्ना या भरणी तथा ।
कृत्तिकार्द्रा मघा चैव विशाखोत्तरभाद्रपत् ॥ ३४ ॥
तथा ज्येष्ठोत्तराषाढे नवैताः कुपिताः भृशम् ।
हिमांशुमुपसंगम्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ ३५ ॥
परिवार्य निशानाथं ददृशू रोहिणीं ततः ।
वामांकस्थां[88] तस्य तेन रममाणां[89] स्वमण्डले ॥ ३६ ॥
तां वीक्ष्य तादृशीं सर्वा रोहिणीं वरवर्णिनीम् ।
जज्वलुश्चातिकोपेन हविषेव हुताशनः ॥ ३७ ॥
ततो मघात्रिपूर्वाश्च भरणी कृत्तिका तथा ।
चन्द्रांकस्थां महाभागां रोहिणीं जगृहुर्हठात् ॥ ३८ ॥
ऊचुश्चातीव कुपिताः परुषं रोहिणीं प्रति ।
जीवन्त्यां त्वयि दुष्प्राज्ञे नास्मानिन्दुस्तु[90] भावभाक् ॥३९॥
समुपैष्यति कस्मिंश्चित्समये सुरतोत्सुकः ।
बह्वीनां क्षेमवृद्ध्यर्थं तां हनिष्याम दुर्मतिम् ॥ ४० ॥
न त्वां हत्वा भवेत् पापमस्माकमपि किंचन ।
प्रजनघ्नीं बहुस्त्रीणामनृतौ पापकारिणीम् ॥ ४१ ॥
यस्मिन्नर्थे पुरा ब्रह्मा व्याजहार सुतं[91] प्रति ।
नीतिशास्त्रोपदेशाय तन्नः संश्रुतमस्ति वै ॥ ४२ ॥
एकस्य यत्र निधने प्रवृत्ते दुष्टकारिणः ।
बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ ४३ ॥
रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
आत्मानं घातयेद्यस्तु तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ ४४ ॥

---

88 वामांगस्थां । 89 भुज्यमानां । 90 नास्मास्विन्द्वः सरागवान् ।
91 अधिकः पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच

तासां तादृगभिप्रायं बुद्धा दृष्ट्वा च कर्म च ।
भीतां च रोहिणीं दृष्ट्वा प्रियामतिमनोरमाम् ॥ ४५ ॥
आत्मानं चापराधं च तदसम्भोगजं मुहुः ।
विचिन्त्य रोहिणीं भीतां तासां हस्तादमोचयत् ॥ ४६ ॥
मोचयित्वा च बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य रोहिणीम् ।
वारयामास ताः सर्वाः कृत्तिकाद्याः स[93] भामिनीः ॥४७॥
तदेन्दुं वारयन्त्यस्ताः कृत्तिकाद्या मघान्तकाः ।
साम्यमूचुर्मनस्विन्यस्तां वीक्ष्यन्त्योऽथ रोहिणीम् ॥ ४८ ॥
न ते त्रपा वा भीतिर्वा पापतोऽस्मान्निरस्यतः ।
संजायते निशानाथ प्राकृतस्येव वर्ततः ॥ ४६ ॥
कथमस्मान्निराकृत्य चारित्रव्रतधारिणीः ।
सदा भक्तिमतीरेकां भूढवत्त्वं निषेवसे ॥ ५० ॥
किं ते नावगतो धर्मो वेदमूलः श्रुतः पुरा ।
यद्धर्महीनं कुरुषे कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ॥ ५१ ॥
धर्मशास्त्रार्थगं[94] कर्म चरन्तीनां यथोचितम् ।
कथमुद्वाहितानां त्वं मुखमात्रं न[95] वीक्षसे ॥ ५२ ॥
गदतो यच्छ्रुतं पूर्वं नारदाय पितुर्मुखात् ।
दक्षस्य धर्मशास्त्रार्थं तच्छृणुष्व निशापते ॥ ५३ ॥
बहुदारः पुमान् यस्तु रागादेकां भजेत् स्त्रियम् ।
स पापभाक्स्त्रीजितश्च तस्याशौचं सनातनम् ॥ ५४ ॥
यद्दुःखं जायते स्त्रीणां स्वाम्यसम्योगजं विधो ।
न तस्य सदृशं दुःखं किञ्चिदन्यत्र[96] विद्यते ॥ ५५ ॥
सतीमृतुमतीं जायां[97] यो नेयात्पुरुषाधमः[98] ।
ऋतुधस्नेषु शुद्धेषु भ्रूणहा स च जायते ॥ ५६ ॥

---

93 गुरुं प्रति । 93 समघान्तकाः । 94 धर्मशास्त्रानुगं धर्मं ।
95 निरीक्षसे । 96 किंचिदन्यद् विविच्यते । 97 योषां ।

भार्या स्याद्यावदात्रेयी तावत्कालं विबोधनम् ।
तस्यास्तु संगमे किंचिद्विहितञ्चापि नाचरेत् ॥ ५७ ॥
बहुभार्यस्य भार्याणामृतुमैथुननाशनम ।
न किंचिद्विद्यते कर्म शास्त्रेणापि यदीरितम् ॥ ५८ ॥
तोषयेत् सततं भार्याविधिवत्पाणिपीडिताः ।
तासां तुष्ट्या तु कल्याणम् कल्याणमतोऽन्यथा ॥ ५६ ॥
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भत्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेतत्कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ ६० ॥
यया विरुध्यते स्वामी सौभाग्यमदद्दप्तया ।
सपत्नीसंगमं कर्तुं सा स्याद्वेश्या भवान्तरे ॥ ६१ ॥
इहापि लोके वाच्यत्वमधर्मञ्चापि विन्दति ।
न पितुश्च कुलं स्वामिकुलं तस्याः प्रमोदते ॥ ६२ ॥
विरुध्यमाने पत्यौ यत्सपत्न्या वा प्रवर्तते ।
अतीव दुःखं भवति तदकल्याणकृत्तयोः ॥ ६३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं भाषभाणासु तासु चातीव निष्ठुरम् ।
चुकोप चन्द्रमा दृष्ट्वा मलिनं रोहिणीमुखम् ॥ ६४ ॥
रोहिणी च तदा तासामवलोक्योग्रतां मुहुः ।
न[99] किंचित् सापि प्रोवाच भयशोकत्रपाकुला ॥ ६५ ॥
अथापि कुपितश्चन्द्रस्ताः शशाप तदा स्त्रियः ।
यस्मान्मम पुरश्चोग्रास्तीक्ष्णा वाचः समीरिताः ॥ ६६ ॥
भवतीभिश्चतिसृभिर्लोकेऽस्मिन्[100] कृत्तिकादिभिः ।
ऊग्रास्तीक्ष्णा इति ख्यातिः प्राप्तव्या त्रिदशेष्वपि ॥ ६७ ॥
तस्मादेवंविधानेन नवैताः कृत्तिकादयः ।
यात्रायां नोपयुक्ता हि भविष्यध्वं दिने दिने ॥ ६८ ॥

---

98 नेच्छेत् । 99 न किंचनापि । 100 भवतीभिश्चतसृभिः ।

युष्मान् पश्यन्ति देवाद्या मनुष्याद्या च ये क्षितौ ।
यात्रायां तेन दोषेण तेषां यात्रा न चेष्टदा ॥ ६९ ॥
अथ सर्वास्तदा शापं तस्य श्रुत्वातिदारुणम् ।
चन्द्रस्य हृदयं ज्ञात्वा शापाच्चातीव निष्ठुरम् ॥ ७० ॥
जग्मुः सर्वास्तदा दक्षभवनं अत्यमर्षिताः ।
ऊचुश्च दक्षं पितरमश्विन्याद्याः सगद्गदम् ॥ ७१ ॥
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ।
सेवमाना न भजते सोऽस्मान् परवधूरिव ॥ ७२ ॥
नावस्थाने नावसाने[1] भोजने श्रवणे तथा ।
विनेन्दू[2] रोहिणीं शान्ति लभते नहि कांचन ॥ ७३ ॥
रोहिण्या वसतस्तस्य समीपं वीक्ष्य ते सुताः ।
यान्तीः सोऽन्यत्र नयनमाधाय नहि वीक्षते ॥ ७४ ॥
मास्त्वन्यः स्वामिसद्भावो मुखमात्रं न वीक्षते ।
अस्मिन् वस्तुनि यत्कार्यं तदस्माभिर्निगद्यताम् ॥ ७५ ॥
अस्माभिरेतत्समयेऽनुरुद्धश्च चन्द्रमाः ।
स तत्कृते ततश्चास्मच्छापं तीव्रं तदाकरोत् ॥ ७६ ॥
दारुणाश्चातितीक्ष्णाश्च लोके वाच्यत्वमाप्य च ।
अथात्रिका भविष्यध्वं यूयमित्युक्तवान् विधुः ७७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वा वाक्यं स पुत्रीणां ताभिः सार्धं प्रजापतिः ।
जगाम यत्र सोमोऽभूद्रोहिण्या सहितस्तदा ॥ ७८ ॥
दूरादेव विधुर्दृष्ट्वा दक्षमायान्तमासनात् ।
उत्तस्थावन्तिके प्राप्य ववन्दे च महामुनिम् ॥ ७९ ॥
अथ दक्षस्तदोवाच कृतासनपरिग्रहः ।
सामपूर्वं चन्द्रमसं कृत-संवन्दनं तथा ॥ ८० ॥

---

1 नावमाने । 2 विनेन्दुं रोहिणी ।

दक्ष उवाच

समं वर्तस्व भार्यासु वैषम्यं त्वं परित्यज ।
वैषम्ये बहवो दोषा ब्रह्मणा परिकीर्तिताः ।। ८१ ।।
रतिपुत्रफला दारास्तासु कामानुबन्धनात् ।
कामानुबन्धः संसर्गात् संसर्गः संगमाद्भवेत् ।। ८२ ।।
संगमश्चाप्यभिध्यानाद्वीक्षणादभिजायते ।
तस्माद् भार्यास्वभिध्यानं कुरु त्वं वीक्षणादिकम् ।। ८३ ।।
यद्येवं नैव कुरुषे मद्वचो धर्मयन्त्रितम् ।
तदा लोकवचोदुष्टः पापवांस्त्वं[3] भविष्यसि ।। ८४ ।।

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ।
एवमस्त्विति चन्द्रोऽपि न्यगदद्दक्षशंकया ।। ८५ ।।
अथानुमन्त्र्य तनयाश्चन्द्रं जामातारं तथा ।
ययो दक्षो निजं स्थानं कृतकृत्यस्तदा मुनिः ।। ८६ ।।
गते दक्षे ततश्चन्द्रस्तां समासाद्य रोहिणीम् ।
जग्राह पूर्ववद्भावं तासु तस्यां च रागतः ।। ८७ ।।
तत्रैव[4] रोहिणीं प्राप्य न काश्चिदपि वीक्षते ।
रोहिण्यामेव वसते[5] ततस्ताः कुपिताः पुनः ।। ८८ ।।
गत्वा ताः पितरं प्राहुर्दौर्भाग्योद्विग्नमानसाः ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ।। ८९ ।।
तवापि नाकरोद्वाक्यं तस्मान्नः शरणं भव ।। ९० ।।
उद्वेग[6]कोपसंयुक्त उत्तस्थौ तत्क्षणान्मुनिः ।
जगाम मनसा ध्यायन् कर्तव्यं निकटं विधोः ।। ९१ ।।
उपगम्य तदा प्राह बचश्चन्द्रं प्रजापतिः ।
समं वर्तस्व भार्यासु वैषम्यं त्वं परित्यज ।। ९२ ।।

---

3 पापभाक् । 4 तथैव । 5 रमते । 6 तत ईषत् कोपयुक्तः ।

न चेदिदं वचोऽस्माकं मौर्ख्यात् त्वं मावबुध्यसे[7] ।
धर्मशास्त्रातिगायाहं शप्स्ये तुभ्यं निशापते ॥ ६३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो दक्षभयाच्चन्द्रस्तत्कर्तुं प्रति तत्पुरः ।
अंगीचकारातिभयात् कार्यमेवं मुहुस्त्विति ॥ ६४ ॥
समं प्रवर्तनं कर्तुं भार्यास्वंगीकृते ततः ।
विधुना प्रययौ दक्षः स्वस्थानं चन्द्रसम्मतः ॥ ६५ ॥
गते दक्षे निशानाथो रोहिण्यासहितो भृशम् ।
रममाणो विसस्मार दक्षस्य वचनन्तु सः ॥ ६६ ॥
सेवमानाश्च ताः सर्वा अश्विनाद्या मनोरमाः ।
नाभजच्चन्द्रमास्तासु अवज्ञामेव चाकरोत् ॥ ६७ ॥
अवज्ञातास्तु ताः सर्वाश्चन्द्रेण पितुरन्तिकम् ।
गत्वैवार्तस्वराश्चार्ता रुदन्त्यश्चेदमब्रुवन् ॥ ६८ ॥
नाकरोद्वचनं सोमस्तवापि मुनिसत्तम ।
अवज्ञां कुरुतेऽस्मासु पूर्वतोऽप्यधिकं स च ॥ ६९ ॥
तस्मात् सोमेन नः कार्यं न किंचिदपि विद्यते ।
तपस्विन्यो भविष्यामस्तपश्चर्यां निदेशय ॥ १०० ॥
तपसा शोधितात्मानः परित्यक्ष्याम जीवितम् ।
किमस्माकं जीवितेन दुर्भगानां द्विजोत्तम ॥ १०१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा तास्ततः सर्वा दक्षजाः कृत्तिकादयः ।
कपोलमालम्व्य करैरुरुदुर्विविशुः[7A] क्षितौ ॥ १०२ ॥
तास्तु दृष्ट्वा तथाभूता दुःखव्याकुलितेन्द्रियाः ।
अतिदीनमुखो दक्षः कोपाज्जज्वाल वह्निवत् ॥ १०३ ॥

---

7 नावधार्यसे । 7A करैरुपोपविविशुः

अथ कोपपरीतस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ।
निश्चक्राम तदा यक्ष्मा नासिकाग्राद्विभीषणः ॥ १०४ ॥
दंष्ट्राकरालवदनः कृष्णांगारसमप्रभः ।
अतिदीर्घः स्वल्पकेशः कृशो घमनिसन्ततः ॥ १०५ ॥
अधोमुखो दण्डहस्तः कासं विश्रम्य सन्ततम्[8] ।
कुर्वाणो निम्ननेत्रश्च योषासम्भोगलोलुपः ॥ १०६ ॥
स चोवाच तदा दक्षं कस्मिंस्थास्याम्यहं मुने ।
किंवा चाहं करिष्यामि तन्मे वद महामते ॥ १०७ ॥
ततो दक्षस्तु तं प्राह सोमं यातु द्रुतं भवान् ।
सोममत्तु भवान्नित्यं सोमे त्वं तिष्ठ स्वेच्छया ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्याथ महामुनेः ।
शनैः शनैस्ततः सोममाससाद गदः स च ॥ १०९ ॥
आसाद्य स तदा सोमं वल्मीकं पन्नगो यथा ।
प्रविवेशेन्दुहृदयं छिद्रं प्राप्य महागदः ॥ ११० ॥
तस्मिन् प्रविष्टे हृदये दारुणे राजयक्ष्मणि ।
मुमोह चन्द्रस्तन्द्रांच विषमां प्राप्तवांश्च[9] सः ॥ १११ ॥
उत्पद्य प्रथमं यस्माल्लीनो राजन्यसौ गदः ।
राजयक्ष्मेति लोकेऽस्मिन्नस्य ख्यातिरभूद्द्विजाः ॥ ११२ ॥
ततस्तेनाभिभूतः स यक्ष्मणा रोहिणीपतिः ।
क्षयं जगामानुदिनं ग्रीष्मे क्षुद्रा नदी यथा ॥ ११३ ॥
अथ चन्द्रे क्षीयमाणे सर्वौषध्यो गताः क्षयम् ।
क्षयं यातास्वौषधिषु न यज्ञः समवर्तत ॥ ११४ ॥
यज्ञाभावात्तु देवानामन्नं सर्वं क्षयं गतम् ।
पर्जन्याश्च ततो नष्टास्ततो वृष्टिर्नचाभवत् ॥ ११५ ॥

---

8 सर्वतः । 9 प्राप्तवांस्ततः ।

वृष्ट्यभावे तु लोकानामाहाराः क्षीणतां गताः ।
दुर्भिक्षव्यसनोपेते सर्वलोके द्विजोत्तमाः ॥ ११६ ॥
दानधर्मादिकं किंचिन्न लोकस्य प्रवर्तते ॥
सत्त्वहीनाः प्रजाः सर्वा लोभेनोपहतेन्द्रियाः ।
पापमेव तदा चक्रुः कुकर्मरतयश्च[10] ताः ॥ ११७ ॥
एतान् दृष्ट्वा तदा भावान् दिक्पालाः सपुरन्दराः ।
जग्मुः क्षोभं परं देवाः सागराश्च ग्रहास्तथा ॥ ११८ ॥
ततो दृष्ट्वा जगत्सर्वं व्याकुलं दस्युपीडितम् ।
ब्रह्माणमगमन् देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ ११९ ॥
उपसंगम्य देवेशं स्रष्टारं जगतां पतिम् ।
प्रणम्याथ यथायोग्यमुपविष्टास्तदा सुराः ॥ १२० ॥
तान् म्लानवदनान् सर्वान् वीक्ष्य लोकपितामहः ।
अभिभूतान् परेणेव हृतस्वविषयानिव ।
पप्रच्छ सम्मुखीकृत्य[11] गुरुमिन्द्रं हुताशनम् ॥ १२१ ॥

ब्रह्मोवाच

स्वागतं भो सुरगणाः किमर्थं यूयमागताः ।
दुःखोपहतदेहांश्च युष्मान् म्लानांश्च लक्षये ॥ १२२ ॥
निराबाधान्निरातंकान् युष्मान्[12] सर्वांश्च कामगान् ।
कृत्वा स्वविषये न्यस्तान् कथं पश्यामि दुःखितान् ॥१२३॥
यद्वोऽभवद्दुःखबीजं युष्मान् वा यस्तु बाधते ।
तत्कथ्यतामशेषेण सिद्धञ्चाप्यवधार्यताम् ॥ १२४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो वृद्धश्रवा जीवः कृष्णवर्मा च लोकभृत् ।
उवाचात्मभुवे तस्मै सुराणां दुःखकारणम् ॥ १२५ ॥

---

10 न धर्मरुचयस्तदा । 11 प्रमुखीकृता । 12 सुरान् सर्वांस्तु कामदान् ।

देवा ऊचुः

श्रृणु सर्वं जगत्कर्तस्त्वां येन वयमागताः ।
यद्वास्माकं दुःखवीजं यतो म्लानश्रियो वयम् ॥ १२६ ॥
न क्वचित् सम्प्रवर्तन्ते यज्ञा लोके पितामह ।
निराधारा निरातंकाः प्रजाः सर्वा क्षयं गताः ॥ १२७ ॥
न च दानादिधर्मश्च न तपांसि क्षितौ क्वचित् ।
नैव वर्षति पर्जन्यः क्षीणतोयाभवत् क्षितिः ॥ १२८ ॥
क्षीणाः सर्वास्तथौषध्यः शस्या लोकाः समाकुलाः ।
दस्युभिः पीडिता विप्रा वेदवादं न कुर्वते ॥ १२६ ॥
अन्नवैकल्यमासाद्य म्रियन्ते वहवः प्रजाः ।
क्षीणेषु यज्ञभागेषु भोग्यहीनास्तथा वयम् ॥ १३० ॥
दुर्वलास्तु श्रियाहीना नैव शान्ति लभामहे ॥ १३१ ॥
रोहिण्या मन्दिरे चन्द्रो वक्रगत्या चिरं स्थितः ।
वृषराशौ स च क्षीणो ज्योत्स्नाहीनश्च वर्तते[13] ॥ १३२ ॥
यदैवान्विष्यते देवैश्चन्द्रो नैषां पुरःसरः ।
कदाचिदपि देवानां समाजे वा भवद्विधे ॥ १३३ ॥
कदाचिद्रोहिणीं त्यक्त्वा नैव क्वचन गच्छति ।
यद्यन्यः कोऽपि न भवेत्तदा चन्द्रो बहिर्भवेत् ॥ १३४ ॥
दृश्यते स कलाहीनः कलामात्रावशेषकः ।
इति सर्वत्र लोकेश वृत्तः कर्मविपर्ययः ॥ २३५ ॥
तं दृष्ट्वा कान्दिशीकास्तु वयं त्वां शरणं गताः ।
पातालाद्यावदुत्थाय कालकञ्जादयोऽसुराः ॥ १३६ ॥
नास्मान् लोकेश बाधन्ते तावन्नस्त्राहि साध्वसात् ।
अयं प्रवर्तते कस्माज्जगतां वा व्यतिक्रमः ।
न जानीमस्तु तत्सर्वं विप्लवे वापि कारणम् ॥ १३७ ॥

---

13 जायते ।

मार्कण्डेय उवाच

एतत् सुराणां वचनं दिव्यदर्शी पितामहः।
श्रुत्वा क्षणमभिध्यायन् निजगाद सुरोत्तमान् ॥ १३८ ॥

ब्रह्मोवाच

शृण्वन्तु देवताः सर्वा यदर्थं लोकविप्लवः।
प्रवर्ततेऽधुना येन शान्तिस्तस्य भविष्यति ॥ १३९ ॥
सोमो दाक्षायणीः कन्याः सप्तविंशतिसंख्यकाः।
अश्विन्याद्या वरवधूर्भार्यार्थे परिणीतवान् ॥ १४० ॥
परिणीय स ताः सर्वा रोहिण्यां सततं विधुः।
प्रावर्ततानुरागेण न समस्तासु वर्तते ॥ १४१ ॥
अश्विन्याद्यास्तु ताः सर्वा दौर्भाग्यज्वरपीडिताः।
षड्विंशतिर्वरारोहाः पितरं प्रस्थिताः स्वकम् ॥ १४२ ॥
प्रवर्तते निशानाथो रोहिण्यां रागतो यथा।
तथा न तासु भजते तद्दक्षाय न्यवेदयत् ॥ १४३ ॥
ततो दक्षो महाबुद्धिः साम्ना संस्तूय विट्पतिम्।
बहुसुनृतमाभाष्य पुत्र्यर्थे चान्वरोधत ॥ १४४ ॥
अनुरुद्धो यथाकामं दक्षेण सुमहात्मना।
समं प्रवर्तितुं तासु समयं कृतवान् विधुः ॥ १४५ ॥
सममंगीकृते भावं तासु कर्तुं हिमांशुना।
स्वं जगाम ततः स्थानं दक्षोऽपि मुनिसत्तमः ॥ १४६ ॥
गते दक्षे मुनिश्रेष्ठे वैषम्यं तासु चन्द्रमाः।
जहौ न भावं ताः शश्वत् कुपिताः पितरं गताः ॥ १४७ ॥
ततो दक्षः पुनश्चन्द्रमनुरुध्य सुतान्तरे।
समां वृत्तिं प्रतिश्राव्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १४८ ॥
न समं वर्तते चन्द्र सर्वास्वासु भवान् यदि।
तदा शप्स्ये त्वहं तुभ्यं तस्मात् कुरु समंजसम् ॥ १४९ ॥

ततो गते पुनर्दक्षे न समं वर्तते यदा ।
तासु चन्द्रस्तदा दक्षं पुनर्गत्वाब्रवन् रुषा ॥ १५० ॥
न ते वचः सत्कुरुते नैवास्मासु प्रवर्तते ।
वयं तपश्चरिष्यामः स्थास्यामश्च तवान्तिके ॥ १५१ ॥
तासामिति वचः श्रुत्वा कुपितः स महामुनिः ।
क्षयाय चन्द्रस्य पुनः शापायोत्सुकतां गतः ॥ १५२ ॥
शापायोद्युक्तमनसः कुपितस्य महामुने ।
क्षयो नाम महारोगो नासिकाग्राद्विनिर्गतः ॥ १५३ ॥
प्रेषितः स च चन्द्राय दक्षेण मुनिना ततः ।
प्रविष्टश्च ततो देहे क्षयितस्तेन चन्द्रमाः ॥ १५४ ॥
क्षीणे चन्द्रे क्षयं याता ज्योत्स्नास्तस्य महात्मनः ।
क्षीणासु सर्वज्योत्स्नासु सर्वौषध्यः क्षयं गताः ॥ १५५ ॥
औषध्यभावाल्लोकेऽस्मिन् न यज्ञः सम्प्रवर्तते ।
यज्ञाभावादनावृष्टिस्ततः सर्वप्रजाक्षयः ॥ १५६ ॥
यज्ञभागोपभोगेन हीनानां भवतां तथा ।
दुर्बलत्वं समुत्पन्नं विकारश्च स्वगोचरे ॥ १५७ ॥
इति वः कथितं सर्वं यथाभूल्लोकविप्लवः ।
येनोपायेन तच्छान्तिस्तच्छृण्वन्तु सुरोत्तमाः ॥ १५८ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रस्यशाप मोक्षे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गच्छन्तु भोः सुरगणा दक्षस्य सदनं प्रति ।
प्रसादयत चन्द्रार्थे स च पूर्णो भवेद्यथा ॥ १ ॥
पूर्णो चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ।
युष्माकंच भवेच्छान्तिरोषधीनाञ्चसम्भवः ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
प्रययुर्हृष्ट[14] मनसस्तदा दक्षनिवेशनम् ॥ ३ ॥
यथान्यायमुपस्थाय सर्वे मुनिवरं सुराः ।
प्रोचुः प्रजापतिं दक्षं प्रणम्य श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४ ॥

देवा ऊचु

प्रसीद सीदतां ब्रह्मन्नस्माकं बहुदुःखिनाम् ।
उद्धरस्व महाबुद्धे त्राहि नः शोकसागरात् ॥ ५ ॥
यद्रुपं ब्रह्मसंज्ञन्तु सृष्टिकृत् परमात्मनः ।
तदंशस्त्वं परं ज्योतिर्विप्ररूप[15] नमोऽस्तुते ॥ ६ ॥
रक्षणात् सर्वजगतां प्रजापालनकारणात् ।
दक्षः प्रजापतिश्चेति योगेशस्तं नुमो वयम् ॥ ७ ॥
दक्षाय सर्वजगतां दक्षाय कुशलात्मनाम् ।
दक्षायात्महितायाशु नमस्तुभ्यं महात्मने ॥ ८ ॥
सततं चिन्त्यमानस्य योगिभिर्नियतेन्द्रियैः[16] ।
सारस्य सारभूतस्त्वं दक्षाय[17] परमात्मने ॥ ९ ॥
योगिवृत्तिरनाधृष्य पारगाणां परायणः ।
आद्यन्तमुक्तः[18] सहसा तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ १० ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा दक्षो यज्ञभुजां तथा ।
प्राह प्रसन्नवदनः शक्रमाभाष्य मुख्यतः ॥ ११ ॥

दक्ष उवाच

कुतः शक्र महाबाहो भवतां दुःखमागतम् ।
दुःखहेतुं वद विभो श्रोतुमिच्छाम्यहन्तु[19] तम ॥ १२ ॥

---

14 प्रजग्मुर्हृष्टः । 15 विश्वरूप नतोऽस्मि ते । 16 नियतात्मभिः ।
17 दक्षोयत् पदमात्मनः । 18 अत्यन्तयुक्तः 19 ...अहं ततः ।

ममास्ति वा किं कर्त्तव्यं भवतां दुःखहानये ।
तदहं यदि शक्नोमि करिष्यामि हितं समम् ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मसूनोर्महात्मनः ।
जगाद वाक्पतिः[20] शक्रो वीतिहोत्रोऽथ तं मुनिम् ॥१४॥

त[21] ऊचुः

क्षयी[22] जातो निशानाथस्तस्मिन् क्षीणे क्षयं गताः ।
सर्वौषध्यो द्विजश्रेष्ठ तद्धानिर्यज्ञहानिकृत् ॥ १५ ॥
यज्ञे विनष्टे सकलाः प्रजाः क्षुद्भयकातराः ।
वृष्ट्यभवान्महद्दुःखं प्राप्य नष्टाश्च काश्चन ॥ १६ ॥
क्षयोऽयं रात्रिनाथस्य यस्ते कोपात् प्रवर्तते ।
स सर्वजगतो ब्रह्मन्नभावार्थमुपस्थितः ॥ १७ ॥
नाधुना तत् त्रिभुवने यन्न क्षुब्धं नु किंचन ।
विप्लुतं वास्ति विप्रेन्द्र स्थावराः[23] पतगाश्च वा ॥ १८ ॥
न यज्ञाः संप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः ।
आहारदुःखान्निश्रीकाः प्रजाः क्षीणा भयातुराः ॥ १९ ॥
एवं प्रवृत्ते विप्रेन्द्र विप्लवेऽस्मात् रसातलात् ।
दैत्या न यावदुत्थाय बाधन्ते तावदुद्धर ॥ २० ॥
प्रसीद दक्ष चन्द्रस्य तं पूरय तपोबलात् ।
पूर्णे चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ॥ २१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रजापतिसुतस्तदा ।
उवाच तान् सुरगणान् हृदयाच्छल्यमुद्धरन् ॥ २२ ॥

---

20 गीष्पतिः । 21 गीष्पति शक्र वीतिहोत्रा ऊचुः । 22 क्षयं जातो ।
23 सागराः पतगाश्चराः ।

दक्ष उवाच

यन्मे वचो निशानाथे प्रवृत्तं शापकारणम् ।
न केनापि निदानेन मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥ २३ ॥
किन्तु मद्वचनं यस्मान्नैकान्तेन मृषा भवेत् ।
चन्द्रोऽपि वर्धते यस्मात्तदुपायमुदेक्षत ॥ २४ ॥
तत्राप्ययमुपायोऽस्ति मासार्धं यातु चन्द्रमा ।
क्षयं वृद्धिञ्च मासार्धं समं भार्यासु वर्तताम् ॥ २५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तं प्रसाद्य प्रजापतिम् ।
सर्वे सुरगणास्तत्र गता यत्रास्ति चन्द्रमाः ॥ २६ ॥
एवमुक्ते तु वचने दक्षेण मुनिना द्विजाः ।
अथ चन्द्रं समादाय भार्याभिः सहितं तदा ।
जग्मुस्ते ब्रह्मभवनं[24] मुदिताः सुरसत्तमाः ॥ २७ ॥
तत्र गत्वा महाभागा यथा[25] दक्षेण भाषितम् ।
तत्सर्वं कथयामासुर्ब्रह्मणे परमात्मने ॥ २८ ॥
ब्रह्मा दक्षवचः श्रुत्वा देवानां वचनात्तदा ।
चन्द्रभागं महाशैलं जगाम सहितः सुरैः ॥ २९ ॥
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठः प्रजानां हितकाम्यया ।
स्नापयामास शुभ्रांशुं वृहल्लोहितपुष्करे ॥ ३० ॥
भूतभव्यभवज्ज्ञानः पूर्वमेव पितामहः ।
एतदर्थञ्चकारात्र सरःपूर्णं जगद्गुरुः[26] ॥ ३१ ॥
तत्र स्नातस्य जन्तोस्तु नीरोगत्वं प्रजायते ।
चिरायुश्चञ्च सततं वृहल्लोहितसंज्ञके ॥ ३२ ॥
तत्र स्नातस्य चन्द्रस्य शरीरात्तत्क्षणं गदः ।
राजयक्ष्मा निःससार पूर्वरूपो यथोदितः ॥ ३३ ॥
निःसृत्य राजयक्ष्मापि ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम् ।
प्रणम्याहं किं करिष्ये क्व गच्छामीत्युवाच तम्[27] ॥३४॥

---

24 ब्रह्मसदनं । 25 दक्षेण भाषितञ्च यत् । 26 जगत् प्रभुः । 27 ह ।

स्थानं पत्नीश्च लोकेश कृत्यं मम सनातनम् ।
निदेशयानुरूपं मे स्रष्टा त्वं जगतां यतः ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्मापि तं पुष्टं निरीक्ष्येन्दुं शरीरगैः ।
अमृतैस्तेनातियुक्तैः क्षीणञ्चापि निशापतिम् ॥ ३६ ॥
दोर्भिः स्वयं त्वं गृहीत्वा गिरौ निष्पीड्य वै मुहुः ।
अमृतं गालयामास[28] शरीराद्राजयक्ष्मणः ॥ ३७ ॥
अमृतानि च यान्याशु गालितानि तदा जले ।
क्षीरोदस्य स चिक्षेप मध्ये रहसि लोकभृत् ॥ ३८ ॥
तस्मादस्यामृतादिन्दोः कलाः क्षीणास्तु याः पुरा ।
तासां जग्राह लवशश्चूर्णान् क्षीरोदसागरात् ॥ ३९ ॥
कलामात्रावशेषष्य संसर्गाद्राजयक्ष्मणः ।
क्षीणाः कलाः पंचदश याः पूर्वममृतात्मिकाः ॥ ४० ॥
ता राजयक्ष्मगर्भस्थाश्चूर्णीभूतास्तु पीडया ।
तेजोज्योत्स्ना[29]सुधाभिस्तु निबद्धं यत् कलापतेः ॥ ४१ ॥
शरीरं तत् त्रिधा भूतं गर्भस्थं राजयक्ष्मणः ॥ ४२ ॥
ज्योतिश्चूर्णमभूत्[30] ज्योत्स्ना लीना राजादियक्ष्मणि ।
द्रवीभूताः सुधाः सर्वाः गर्भे रोगस्य च स्थिताः ॥ ४३ ॥
यदा निर्गालयामास सुधां ब्रह्मा यक्ष्मान्तरात् ।
तदा ज्योत्स्नासुधाज्योतिः सर्वं तस्माद्बहिर्गतम् ॥ ४४ ॥
क्षीरोदसागरे क्षिप्तं तत् सर्वं विधिना तदा ।
देवान् गिरौ परित्यज्य स्वयं गत्वा द्रुतं ततः ॥ ४५ ॥
ततोऽमृतानि प्रक्षाल्य कलाचूर्णानि वारिभिः ।
ज्योत्स्नाञ्चाप्याजगामाशु गृहीत्वा तत्त्रयं गिरिम् ॥ ४६ ॥
क्षीरोदाद्गिरिमासाद्य चन्द्रभागं तदा विधिः ।
देवमध्ये कलाचूर्णं सुधाज्योत्स्ना न्यवीविशत् ॥ ४७ ॥

---

28 कामयामास । 29 रजो ज्योत्स्ना । 30 क्षीणश्चूर्णमभूत् ।

संस्थाप्य तत्त्रयं ब्रह्मा देवानां मध्यतः स्थितः ।
जगाद राजयक्ष्माणं तत् स्थानादि निदेशयन् ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

सर्वदा यो दिवारात्रं सन्ध्यायां वनितारतः ।
सेवते सुरतं तस्मिन् राजयक्ष्मन् वसिष्यसि ॥ ४९ ॥
प्रतिश्याय-श्वासकास-संयुक्तो मैथुनं चरेत् ।
स ते प्रवेश्यः सततं श्लेष्मणश्च तथाविधः ॥ ५० ॥
कृष्णाख्या मृत्युपुत्री या भवतः सदृशी गुणैः ।
सा तेऽस्तु भार्या सततं भवन्तमनुयास्यति ॥ ५१ ॥
क्षीणत्वं भवतः कृत्यं ततस्त्वं विषयं[31] कुरु ।
द्रुतं गच्छ यथाकामं चन्द्रात् त्वं विमुखो भव ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं विसृष्टो विधिना राजयक्ष्मा महागदः ।
पश्यतां सर्वदेवानामन्तर्धानं जगाम ह ॥ ५३ ॥
अन्तर्हिते महारोगे ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चन्द्रं समग्रयामास कलापञ्चदशैर्धितम् ॥ ५४ ॥
तेन क्षीरोदधौतेन सुधापूतेन चात्मभूः ।
सज्योत्स्नैस्तु कलाचूर्णैः पूर्ववच्चाकरोद्विधुम् ॥ ५५ ॥
स षोडशकलापूर्णः पूर्ववद्विवभौ यदा ।
चन्द्रस्तदा सर्वदेवा मुमुदुस्तस्य दर्शनात् ॥ ५६ ॥
अथ चन्द्रस्तदा पूर्णः प्रणिपत्य पितामहम् ।
उवाचेदं सुरसदोमध्यगो नाति हर्षितः ॥ ५७ ॥

सोम उवाच

न श्याम[32] पूर्ववद् ब्रह्मञ्छरीरे मम वर्तते ।
न वीर्यं वा तथोत्साहो निषीदन्त्यंगसन्धयः ॥ ५८ ॥

---

31 विषये । 32 न सुखं

नोत्सहे पूर्ववच्चेष्टां विधातुं सुतरामहम् ।
चेष्टाहीनस्त्वनुदिनं वर्तेयं केन लोककृत् ॥ ५६ ॥

ब्रह्मोवाच

ग्रस्तस्य यक्ष्मणा सोम यदभूदंगसन्धयः ।
पूर्वं विशीर्णा भवतस्तत्पूर्णमभवन्नहि ॥ ६० ॥
अधुना भवतो देहचूर्णं निःसारितं मया ।
शरीरात् सामृतज्योत्स्नमञ्जसा राजयक्ष्मणः ॥ ६१ ॥
तेषां प्रक्षालनविधौ लवशो यत्स्थितं जले ।
ज्योत्स्नायाश्च सुधायाश्च तेन हीनो भवान् यतः ॥६२॥
ततोऽङ्गसन्धयो राजंस्तव सीदन्ति साम्प्रतम् ।
तस्योपायं विधास्यामि यथा नार्तिं लभेद्भवान् ॥ ६३ ॥
प्राजापत्यः पुरोडाशो हवनीयः पुरोऽध्वरे ।
ऐन्द्रस्ततोऽनु चाग्नेयः प्रदेयः सर्वतः क्रतौ ॥ ६४ ॥
ततो नु भवतो भागः पुरोडाशो मया कृतः ।
तेन भागेन भुक्तेन नित्यं यज्ञकृतेन हि ।
पूर्ववत् ते समुत्साहः श्याम वीर्यं भविष्यति ॥ ६५ ॥
ये[33] चामृतकणास्तोये क्षीरोदस्य स्थितास्तव ।
शरीरचूर्णं वा यत्ते[34] ज्योत्स्नाश्चापि ये लवाः ॥ ६६ ॥
तत् सर्वं भवतो ज्योत्स्नायोगादनुदिनं विधो ।
वृद्धिं यास्यति सततं क्षीरसागरगर्भगम्[35] ॥ ६७ ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे प्राप्ते द्वितीये शंकरांशजः ।
दुर्वासा भविता विप्रः प्रचण्डश्चण्ड[36]भानुवत् ॥ ६८ ॥
स देवेन्द्रस्याविनयाच्छापं दत्वा सुदारुणम् ।
करिष्यति त्रिभुवनं निःश्रीकंससुरासुरम् ॥ ६९ ॥
श्रिया हीने ततो लोके भविता लोकविप्लवः ।
यथा तव क्षयात् सोम प्रवृत्तः सर्वविप्लवः ॥ ७० ॥

---

33 साचामृतकलाः । 34 यावत्ते । 35 मध्य । 36 प्रचण्डचण्डभास्वरः ।

तन्मानुषप्रमाणेन तृतीये तु कृते युगे।
भविष्यति स्थास्यति च यावद् युगचतुष्टयम ॥ ७१ ॥
ततश्चतुर्थे सम्प्राप्ते सह देवैः कृते युगे।
क्षीरोदं निर्मथिष्यामः शम्भुर्विष्णुरहं तथा ॥ ७२ ॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकीम्[37]।
यज्ञभागेषु लीनेषु देवान्नार्थं वयं ततः।
मथिष्यामः समं देवैः क्षीरोदं सह दानवैः ॥ ७३ ॥
त्वच्छरीरामृतमिदं यत् स्थितं क्षीरसागरे।
तत् प्रमथ्य ग्रहीष्यामो राशीभूतं तथा क्षयम् ॥ ७४ ॥
सर्वौषध्यन्तरे कृत्वा त्वच्छरीरं तदा वयम्।
क्षेप्स्यामः सागरजले शरीरार्थं विधो तव ॥ ७५ ॥
निर्मथ्य सागरं पश्चात् समुद्धार्य[38] यदामृतम्।
तदा तव वपुस्तस्मिन् पूर्ववत् सम्भविष्यति ॥ ७६ ॥
ओजोवीर्याद्भुतं कान्तमक्षयंच सुधात्मकम्।
दृढांगसन्धिकं चारु भविष्यति वपुस्तव ॥ ७७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

सुधांशुमेवमाभाष्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
विधोः क्षयाय मासार्धं वृद्धये यत्नवानभूत् ॥ ७८ ॥
यथा दक्षेण गदितं मासार्धं यातु चन्द्रमाः।
क्षयं वृद्धिं च मासार्धं यत्नं तत्राकरोद्विधिः ॥ ७९ ॥
ततः षोडशधा चन्द्रं सुरज्येष्ठो विभक्तवान्।
विभज्य च सुरान् सर्वान् समुवाचेदमुत्तमम् ॥ ८० ॥
कलाः षोडश चन्द्रस्य तत्रैका शम्भुमूर्धनि।
तिष्ठत्वद्यावधि परा क्षयं यान्तु क्षयं विना ॥ ८१ ॥

---

37 सर्पराजं तथासुकम् 38 समुद्धार्यं।

क्षयेण यदि रोगेण मासार्धं दक्षवाक्यतः ।
क्षयाय पीड्यते चन्द्रो नोपशान्तिस्तदा भवेत् ॥ ८२ ॥
किंत्वस्य या कला शम्भौ ज्योत्स्ना गच्छतु तां प्रति ।
चतुर्दशकलासंस्थाः प्रतिमासं सुरोत्तमाः ॥ ८३ ॥
चतुर्दशकलासंस्थान्यमृतानि पिवन्तु वै ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य भवन्तस्तां चतुर्दशीम् ॥ ८४ ॥
तेजोभोगाः सूर्य्यविम्बं चतुर्दशतिथौ क्रमात् ।
प्रविशन्तु क्षयं त्वेवं कृष्णपक्षे विधोर्भवेत् ॥ ८५ ॥
यातु शेषा कला दर्शे हरित्पत्रे पलायिता ।
तिष्ठतु प्रथमे भागे तिथौ तस्यां निशापतेः ॥ ८६ ॥
द्वितीये दर्शभागे तु रोहिण्या यातु मन्दिरम् ।
तृतीये तु सरस्वत्यां स्नात्वा समुत्थितो विधुः ॥ ८७।
चतुर्थे बलसम्पूर्णस्तिथिभागे विभावसोः ।
मण्डलं यातु चन्द्रोऽयं सविम्बस्थघोटकः ॥ ८८ ॥
यावत् कालेन हि कला प्रथमा क्षयमाप्नुयात् ।
एवमेवं कृष्णपक्षे तावत् सा प्रतिपद् भवेत् ॥ ८९ ॥
द्वितीयादौ कृष्णपक्षे वृद्धि-ह्रासस्तथाविधः ।
तिथीनां वृद्धिहेतुश्च शुक्ले कृष्णे तथा भवेत् ॥ ९० ॥
ततः पुनः शुक्लपक्षे यावत् पूर्वकलोदिता ।
वृद्धिं नैति भवेत्तावत् प्रतिपत्तितिथिरादितः ॥ ९१ ॥
ततो द्वितीयभागस्य या ज्योत्स्ना हरमूर्धनि ।
स्थिता[39] या वै कला यातु गता सापुनरेष्यति ।
युष्माभिस्तु भवेत् पेयममृतं यद्दिने दिने ॥ ९२ ॥
तद्द्वितीयादितिथिभिः पूर्णान्ताभिः सदैव हि ।
स्वयमुत्पत्स्यते चन्द्रो ज्योत्स्नायोगात् सुरोत्तमाः ॥९३॥

39 स्थितायां वै कलायां तु ।

यथा दिने दिने भागाः क्षयं यान्ति तथा विधोः ।
वृद्धिं गच्छन्त्यनुदिनं शुक्लपक्षेऽन्वहं सुराः ॥ ९४ ॥
तेजोभागः सूर्यविम्बात् पुनरेव समेष्यति ।
प्रयास्यति कृष्णपक्षे यथा भागक्रमं तथा ॥ ९५ ॥
ज्योत्स्ना हरशिरश्चन्द्रात् प्रत्यहं पुनरेष्यति ।
तेजोभागः सूर्यविम्बादमृतं वर्षति[40] स्वयम् ॥ ९६ ॥
एवं वृद्धिः शुक्लपक्षे सुधांशोः सम्भविष्यति ।
पक्षयोः शुक्लकृष्णत्वं चन्द्रवृद्धिक्षयाद्भवेत् ॥ ९७ ॥
यावत् कालेन यो भागः क्षयं वृद्धिंच यास्यति ।
तावत् कालमभिव्याप्य तिथिः स्थास्यति सा पुनः ॥ ९८ ॥

चिरेण वृद्धिर्यदि वा क्षयो वा
द्रुतेन[41] वृद्धिर्यदिवा क्षयो वा ।
द्रुतात्तिथीनान्तु सदा क्षयः स्या-
च्चिरातु वृद्धिस्तिथिषु प्रवेशे ॥ ९९ ॥

हव्यं कव्यञ्च चन्द्रेण विना न सम्भविष्यति ।
तस्मात्तयोः प्रवृद्धयर्थं चन्द्रं रक्षन्तु देवताः ॥ १०० ॥
आस्वादनीयः शुभ्रांशुः कलाशेषोऽनुमासतः ।
अभावास्यापराधे[42] तु पितृभी रोहिणीगृहे ॥ १०१ ॥
तस्यैवास्वादनात् कव्यं वृद्धिं यास्यति चान्वहम् ।
तेन कव्येन पितरस्तृप्तिं यास्यान्ति वै पराम् ॥ १०२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सुरगणाः सर्वे यथोक्तं विधिना तथा ।
चक्रुर्लोकहितार्थाय चन्द्रस्य क्षय-वृद्धये ॥ १०३ ॥
महादेवोऽपि चन्द्रार्धं स्वरूपं परमात्मनः ।
जग्राह देवैर्विधिना शिरसा क्षुधितो भृशम् ॥ १०४ ॥

---

40 वर्तते । 41 श्रमेण । 42 अमावस्यापराह्णे ।

यत्तेजः परमं नित्यमजमव्ययमक्षयम् ।
तत्स्वरूपा चन्द्रकला शापतस्तु क्षयं गता ॥ १०५ ॥
प्रविशति यदा ज्योतिरानन्दमजरं परम् ।
योगिनस्तु तदा तेषां चिन्तनं लीनमेष्यति ॥ १०६ ॥
महादेवशिरःसंस्थे लीने चित्ते सुधानिधौ ।
चन्द्रद्वारा भवेन्मुक्तिरित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥ १०७ ॥
एतज् ज्ञात्वा महादेवः क्षयवृद्ध्यविनाकृतम् ।
हिताय सर्वलोकानां जग्राह शिरसा विधुम् ॥ १०८ ॥
चन्द्रज्योत्स्नासमायोगादौषध्यो यान्ति वृद्धये ।
सर्वौषधिषु वृद्धासु प्रवर्तन्ते ततोऽध्वराः ॥ १०६ ॥
अध्वरेषु प्रवृत्तेषु स्वान् स्वान् भागांस्तु देवताः ।
परिगृह्णन्ति पितरस्तथा कव्यानि भूरिशः ॥ ११० ॥
अमृतं ब्रह्मणा सृष्टं यद् देवेभ्यः पुरातनम् ।
तेन तृप्यन्ति हीना ये हव्यभागेन देवताः ॥ १११ ॥
यज्ञेनाप्यायितं तच्च ज्योत्स्नाभिर्वृद्धिमेति वै ।
यज्ञज्योत्स्ना विनाभूतं तच्च स्यात् क्षीणमन्यथा ॥ ११२ ॥
अतोऽमृतस्य यज्ञस्य चन्द्रमाः कारणं स्वयम् ।
अतो दक्षस्य शापात्तु रक्षायै तच्चिकीर्षितम् ॥ ११३ ॥
अद्यापि कृष्णपक्षे तु सुधांशुः पीयते सुरैः ।
तेजः सूर्यं याति शम्भुं चन्द्रार्धं ज्योत्स्निका तथा ॥११४॥
पुनश्च शुक्लपक्षे तु शेषोदेति कला ततः ।
ज्योत्स्नाद्वितीयो भागस्तु तेजोभागो द्वितीयकः ॥ ११५ ॥
अन्येऽप्युग्रशिरश्चन्द्रात् सूर्यबिम्बाद् यथाक्रमम् ।
कलाः षोडश चन्द्रस्य तत्रैका शम्भुशेखरे ॥ ११६ ॥
सितासितावुभौ पक्षौ शेषाणामुदयक्षयौ ।
इति वः सर्वमाख्यातं विभक्तश्चन्द्रमा यथा ।
ब्रह्मणा पर्वतश्रेष्ठे यथा तच्चन्द्रभागतः ॥ ११७ ॥

यज्ञभागे स्थिते यस्माद्देवान्नमकरोद्विधुम् ।
कव्ये स्थितेऽपि पित्रन्नं तिथिवृद्धि-क्षयो यथा ॥ ११८ ॥
इदं पुण्यतमाख्यानं यः शृणोति सकृन्नरः ।
राजयक्ष्मा तस्य कुले न कदाचिद् भविष्यति ॥ ११९ ॥
यक्ष्मणा परिभूतो यः शृणोति वचनं विधेः।।१२० ॥
इदं स्वस्त्ययनं पुण्यं गुह्याद्गुह्यतमं[43] शुभम् ।
यः शृणोत्येकचित्तः सन् स महापुण्यभाग्भवेत् ॥ १२१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रशाप-मोक्षणे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

यत्र देवसभा भूता सानौ तस्य महागिरेः ।
तत्र जाता देवनदी सीताख्या वचनाद्विधेः ॥ १ ॥
स्नापयित्वा यदा चन्द्रं सीतातोयैर्मनोहरैः ।
चन्द्रं पपुर्ब्रह्मवाक्यात् सर्वे ते त्रिदिवौकसः ॥ २ ॥
तदा सीताजलं चन्द्रस्नानयोगाच्च सामृतम् ।
भूत्वा निपतितं तस्मिन् बृहल्लोहितसंज्ञके ॥ ३ ॥
तद्विवृद्धं तदा तोयं तस्मिन् सरसि नो ममौ[44] ।
तद्ददर्श स्वयं ब्रह्मा विवृद्धं सामृतं जलम् ॥ ४ ॥
तद्दर्शनाज्जलात् तस्मादुत्थिता कन्यकोत्तमा ।
चन्द्रभागेति तन्नाम विधिश्चक्रे स्वयं ततः ॥ ५ ॥
भार्यार्थे सागरस्तां तु जग्राह ब्रह्मसन्मते ॥ ६ ॥
तयैवाधिष्ठितं तोयं गदाग्रेण निशापतिः ।
निर्भिद्य पश्चिमे पार्श्वे गिरिं तं[45] समवाहयत् ॥ ७ ॥
तस्यामृतजलं भित्त्वा बृहल्लोहितनामकम् ।
कासारं सागरं याता चन्द्रभागा नदी तु सा ॥ ८ ॥

---

43 गुह्यतरं परम् । 44 चन्द्रस्तम् । 45 तोयं तु प्रवाहयत् ।

सागरोऽपि तदा भार्यां चन्द्रभागां महानदीम् ।
तेन तोयप्रवाहेण निनाय भवनं स्वकम् ॥ ६ ॥
एवं तस्मिन् समुत्पन्ना चन्द्रभागाह्वया नदी ।
चन्द्रभागे महाशैले गुणैर्गंगासमा सदा ॥ १० ॥
नद्यश्च पर्वताः सर्वे द्विरूपाश्च स्वभावतः ।
तोयं नदीनां रूपन्तु शरीरमपरं तथा ॥ ११ ॥
स्थावरः पर्वतानांतु रूपं कायः तथापरः ।
शुक्तीनामथ कम्बूनां यथैवान्तर्गता तनुः ॥ १२ ॥
बहिरस्ति स्वरूपन्तु सर्वदैव प्रवर्तते ।
एवं जलं स्थावरस्तु नदीपर्वतयोस्तदा ॥ १३ ॥
अन्तर्वसति कायस्तु सततं नोपपद्यते ॥ १४ ॥
आप्याय्यते स्थावरेण शरीरं पर्वतस्य तु ।
तथा नदीनां कायस्तु तोयेनाप्याय्यते सदा ॥ १५ ॥
नदीनां कामरूपित्वं पर्वतानां तथैव च ।
जगत्स्थित्यै पुरा विष्णुः कल्पयामास यत्नतः ॥ १६ ॥
तोयहानौ नदीदुःखं जायते सततं सुराः[46] ।
विशीर्णे स्थावरे दुःखं जायते गिरिकायजम् ॥ १७ ॥
तस्मिन् गिरौ चन्द्रभागे बृहल्लोहिततीरगाम् ।
सन्ध्यां दृष्ट्वाथ पप्रच्छ वसिष्ठः सादरं तदा ॥ १८ ॥

वसिष्ठ उवाच

किमर्थमागता भद्रे निर्जनं तु महीधरम् ।
कस्य वा तनया गौरि किं वा तव चिकीर्षितम् ॥ १६ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं यदि गुह्यं न ते भवेत् ।
वदनं पूर्णचन्द्राभं निःश्रीकं वा कथं तव ॥ २० ॥

---

46 द्विजाः ।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
दृष्ट्वा च तं महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २१ ॥
शरीरधृग्ब्रह्मचर्य-सदृशं तं जटाधरम् ।
सादरं प्रणिपत्याथ सन्ध्योवाच तपोधनम् ॥ २२ ॥

सन्ध्योवाच

यदर्थमागता शैलं सिद्धं तन्मे द्विजोत्तम ।
तव दर्शनमात्रेण तन्मे सेत्स्यति वा विभो ॥ २३ ॥
तपः कर्तुमहं ब्रह्मन्निर्जनं शैलमागता ।
ब्रह्मणोऽहं मनोजाता सन्ध्या नाम्नाच विश्रुता ॥ २४ ॥
नोपदेशमहं जाने तपसो मुनिसत्तम ।
यदि ते युज्यते गुह्यं मां त्वं समुपदेशय ॥
एतच्चिकीर्षितं गुह्यं नान्यत्किञ्चन विद्यते ॥ २५ ॥
अज्ञात्वा तपसो भावं तपोवनमुपाश्रिता[47] ।
चिन्तया परिशुष्येऽहं वेपते च मनः सदा ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आकर्ण्य तस्या वचनं वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ।
स्वयं स सर्वतत्त्वज्ञो नान्यत्किंचन पृष्टवान् ॥ २७ ॥
अथ तां नियतात्मानं तपसेऽतिधृतोद्यमाम् ।
वसिष्ठो मन्त्रयाञ्चक्रे गुरुवच्छिष्यवत्तदा ॥ २८ ॥

वसिष्ठ उवाच

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमो यः समाराध्यो[48] विष्णुर्मनसि धीयताम् ॥ २९ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां य एकस्त्वादिकारणम् ।
तमेकं जगतामाद्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् ॥ ३० ॥

---

47 स्थिता । 48 परमाराध्या ।

शंखचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं क्वचिन्नीलाम्बुदच्छविम् ।। ३१ ।।
गरुड़ोपरि शुक्लाब्जे पद्मासनगतं हरिम् ।
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं वनमालाधरं परम् ।। ३२ ।।
केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्वलम् ।
निराकारं ज्ञानगम्यं साकारं देहधारिणम् ।। ३३ ।।
नित्यानन्दं निरालम्बं सूर्यमण्डलमध्यगम् ।
मन्त्रेणानेन देवेशं विष्णुं भज शुभानने ।। ३४ ।।
ओं नमो वासुदेवाय ओमित्यन्तेन सन्ततम् ।
तपस्यामारभेन्मौनीं[49] तत्रैतान्नियमान् शृणु ।। ३५ ।।
स्नानं मौनेन कर्तव्यं मौनेनैव तु पूजनम् ।
द्वयोः पर्णजलाहारं प्रथमं षष्ठकालयोः ।
तृतीये षष्ठकाले तु ह्यपवास परो भवेत् ।। ३६ ।।
एवं तपः समाप्तौ तु षष्ठे काले क्रिया भवेत् ।
वृक्षवल्कलवासाश्च काले भूमिशयस्तथा ।
एवं मौनी तपस्याख्या व्रतचर्या फलप्रदा ।। ३७ ।।
एवं तपः समुद्दिश्य कामं चिन्तय माधवम् ।
स ते प्रसन्न इष्टार्थं न चिरादेव दास्याति ।। ३८ ।।

मार्कण्डेय उवाच

उपदिश्य वसिष्ठोऽथ सन्ध्ययायै तपसः क्रियाम् ।
तामाभाष्य यथान्यायं तत्रैवान्तर्दधे मुनिः ।। ३९ ।।
सन्ध्यापि तपसो भावं ज्ञात्वा मोदमवाप्य च ।
तपः कर्तुं समारेभे बृहल्लोहिततीरगा ।। ४० ।।
यथोक्तन्तु वसिष्ठेन मन्त्रं तपसि साधनम् ।
व्रतेन तेन गोविन्दं पूजयामास भक्तितः ।। ४१ ।।

---

49 मौनीं तपस्यामारभ्य तां मे निगदतः शृणु ।

एकान्तमनसस्तस्याः कुर्वन्त्याः सुमहत्तपः ।
विष्णौ विन्यस्तमनसो गतमेकं चतुर्युगम् ॥ ४२ ॥
न कोऽपि विस्मयं नाप तस्या दृष्ट्वा तपोऽद्भुतम् ।
न तादृशी तपश्चर्या भविष्यति च कस्यचित् ॥ ४३ ॥
मानुषेणाथ मानेन गते त्वेकचतुर्युगे ।
अन्तर्बहिस्तथाकाशे दर्शयित्वा निजं वपुः ॥ ४४ ॥
प्रसन्नस्तेन रूपेण यद्रूपं चिन्तितं तया ।
पुरः प्रत्यक्षतां यातस्तस्या विष्णुर्जगत्पतिः ॥ ४५ ॥
अथ सा पुरतो दृष्ट्वा मनसा चिन्तितं हरिम् ।
शंखचक्रगदापद्मधारिणं पद्मलोचनम् ॥ ४६ ॥
केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।
तार्क्ष्यस्थं पुण्डरीकाक्षं नीलोत्पलदलच्छविम् ॥ ४७ ॥
ससाध्वसमहं वक्ष्ये किं कथं स्तौमि वा हरिम् ।
इति चिन्तापरा भूत्वा न्यमीलयत चक्षुषी ॥ ४८ ॥
निमीलिताक्ष्यास्तस्यास्तु प्रविश्य हृदयं हरिः ।
दिव्यं ज्ञानं[50] ददौ तस्यै वाचं दिव्ये[51] च चक्षुषी ॥४९॥
दिव्यं ज्ञानं दिव्यचक्षुर्दिव्यां वाचमवाप सा ।
प्रत्यक्षं वीक्ष्य गोविन्दं तुष्टाव जगतां पतिम् ॥ ५० ॥

सन्ध्योवाच

निराकारं ज्ञानगम्यं परं य-
न्नैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चैः ।
अन्तश्चिन्त्यं योगिभिर्यस्य रूपं
तस्मै तुभ्यं हरये मे नमोऽस्तु ॥ ५१ ॥
शिवं शान्तं निर्मलं निर्विकारं
ज्ञानात्परं सुप्रकाशं[52] विसारि ।

---

50 दिव्यगतिं । 51 दिव्येन चक्षषा । 52 स्वप्रकाश ।

रविप्रख्यं ध्वान्तभागात् परस्ताद्
रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम् ॥ ५२ ॥
एकं शुद्धं दीप्यमानं विनोदं
चित्तानन्दं सत्वजं[53] पापहारि ।
नित्यानन्दं सत्य[54]भूरिप्रसन्नं
यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमोऽस्तु ॥ ५३ ॥
विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं
सत्वच्छन्नं ध्येयमात्मस्वरूपम् ।
सारं पारं पावनानां पवित्रं
तस्मै रूपं यस्य चेयं नमस्ते ॥ ५४ ॥
नित्यार्जवं व्ययहीनं गुणौघै-
रष्टांगैर्यश्चिन्त्यते योगयुक्तैः ।
तत्त्व[55]व्यापि प्राप्य यज्ज्ञानयोगे
परं याता योगिनस्तं नमस्ते ॥ ५५ ॥
यत्साकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं
गरुत्मस्थं नीलमेघप्रकाशम् ।
शंखं चक्रं पद्मगदे दधानं
तस्मै नमो योगयुक्ताय तुभ्यम् ॥ ५६ ॥

गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च ।
वायुः कालश्च रूपाणि यस्य तस्मै[56] नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥
प्रधानपुरुषौ यस्य कार्याङ्गत्वे निवत्स्यतः ।
तस्मादव्य[57]क्तरूपाय गोविन्दाय नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥
यः स्वयं यश्च[58] भूतानि यः स्वयं तद्गुणः परः ।
यः स्वयं जगदाधारस्तस्मै तुभ्यं नमोनमः ॥ ५९ ॥

---

53 सहजश्चाविकारि । 54 नित्यभूरिप्रसन्नं । 55 तत्तद्व्यापि ।
56 तुभ्यं । 57 तस्मादच्युतरूपाय । 58 पञ्च ।

परः[59] पुराणः पुरुषः परमात्मा जगन्मयः ।
अक्षयो योऽव्ययो देवस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥ ६० ॥
यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम् ।
संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥ ६१ ॥

नमो नमः कारणकारणाय
दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय ।
समस्त[60]लोकान्तर-मोहदाय
प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥ ६२ ॥
यस्य प्रपञ्चो जगदुच्यते महान्[61]
क्षितिर्दिशः सूर्य इन्दुर्मनोजवः ।
वह्निर्मुखान्नाभितश्चान्तरीक्षं
तस्मै तुभ्यं हरये ते[62] नमोऽस्तु ॥ ६३ ॥

त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरे ।
शव्दब्रह्म परंब्रह्म विचारणप रात्परः[63] ॥ ६४ ॥
यस्य नादिर्नमध्यश्च नान्तमस्ति जगत्पतेः ।
कथं स्तोष्यामि तं देवं वांमनोगोचराद्बहिः ॥ ६५ ॥
यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः ।
न विवृण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे ॥ ६६ ॥
स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभोः ।
नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥ ६७ ॥
नमस्तुभ्यं जगन्नाथ नमस्तुभ्यं तपोमय ।
प्रसीद भगवंस्तुभ्यं भूयोभूयो नमोनमः ॥ ६८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्याः शरीरन्तु वल्कलाजिनसंवृतम् ।
परिक्षीणं जटाव्रातैः पवित्रैर्मूर्ध्नि राजितम् ॥ ६९ ॥

---

59 यज्ञः । 63 नमोऽस्तु । 61 सदा । 62 मे । 63 विचारणपरंपरा ।

हिमाणी[64]तर्जिताम्भोजसदृशवदनं तथा ।
निरीक्ष्य कृपयाविष्टो हरिः प्रोवाच तामिदम् ॥ ७० ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा भद्रे भवत्याः परमेण वै ।
स्तवेन च शुभप्रज्ञे वरं वरय साम्प्रतम् ॥ ७१ ॥
येन ते विद्यते कार्यं वरेणास्ति मनोगतम् ।
तत् करिष्यामि भद्रन्ते प्रसन्नोऽहं तव व्रतैः ॥ ७२ ॥

सन्ध्योवाच

यदि देव प्रसन्नोऽसि तपसा मम साम्प्रतम् ।
वृतस्तदायं प्रथमो वरो मम विधीयताम् ॥ ७३ ॥
उत्पन्नमात्रा देवेश प्राणिनोऽस्मिन्नभस्तले ।
न भवन्तु क्रमेणैव सकामाः सम्भवन्तु वै ॥ ७४ ॥
पतिव्रताहं लोकेषु त्रिष्वपि प्रथिता यथा ।
भविष्यामि तथा नान्या[65] वर एको वृतो मम ॥ ७५ ॥
सकामा मम दृष्टिस्तु कुत्रचिन्नपतिष्यति ।
ऋते पतिं जगन्नाथ सोऽपि मेऽति सुहृत्तरः ॥ ७६ ॥
यो द्रक्ष्यति सकामो मां पुरुषस्तस्य पौरुषम् ।
नाशं गमिष्यति तदा स तु क्लीवी भविष्यति ॥ ७७ ॥

श्री भगवानुवाच

प्रथमः शैशवो भावः कौमाराख्यो द्वितीयकः ।
तृतीयो यौवनो भावश्चतुर्थो वार्द्धकस्तथा ॥ ७८ ॥
तृतीये त्वथ सम्प्राप्ते वयोभागे शरीरिणः ।
सकामाः स्युर्द्वितीयान्ते भविष्यन्ति क्वचित् क्वचित् ॥ ७९ ॥
तपसा तव मर्यादा जगति स्थापिता मया ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ॥ ८० ॥

---

64 हिमाणीसर्जिताम्भोज। 65 चान्यो।

त्वञ्च लोके सतीभावं तादृशं समवाप्स्यसि[66] ।
त्रिषु लोकेषु नान्यस्या यादृशं सम्भविष्यति । ८१ ॥
यः पश्यति सकामस्त्वां पाणिग्रहमृते तव ।
स सद्यः क्लीवतां प्राप्य दुर्बलत्वं गमिष्यति ॥ ८२ ॥
पतिस्तव महाभागस्तपोरूपसमन्वितः ।
सप्तकल्पान्तजीवी च भविष्यति सह त्वया ॥ ८३ ॥
इति ये ते वरा मत्तः प्रार्थितास्ते कृता मया ।
अन्यच्च ते वदिष्यामि पूर्वं यन्मनसि स्थितम् ॥ ८४ ॥
अग्नौ शरीरत्यागस्ते पूर्वमेव प्रतिश्रुतः ।
स च मेधातिथेर्यज्ञे मुनेर्द्वादशवार्षिके ॥ ८५ ॥
हुत[67]प्रज्वलिते वह्नौ न चिरात् क्रियतां त्वया ।
एतच्छैलोपत्यकायां चन्द्रभागानदीतटे ॥ ८६ ॥
मेधातिथिर्महायज्ञं कुरुते तापसाश्रमे ॥ ८७ ॥
तत्र गत्वा स्वयं छन्ना मुनिभिर्नोपलक्षिता ।
मत्प्रसादाद्वह्निजाता तस्य पुत्री भविष्यसि ॥ ८८ ॥
यस्त्वया वाञ्छनीयोऽस्ति स्वामी मनसि कश्चन ।
तं निधाय निजस्वान्ते त्यज वह्नौ वपुः स्वकम् ॥ ८९ ॥
यदा त्वं दारुणे सन्ध्ये तपश्चरसि पर्वते ।
यावच्चतुर्युगं तस्य व्यतीते तु कृते युगे ॥ ९० ॥
त्रेतायाः प्रथमे भागे जाता दक्षस्य कन्यकाः ।
स ददौ कन्यका सप्तविंशतिञ्च सुधांशवे ॥ ९१ ॥
तासां हेतोर्यदा शप्तश्चन्द्रो दक्षेण कोपिना ।
तदा भवत्या निकटे[68] सर्वे देवाः समागताः ॥ ९२ ॥
न दृष्टाश्च तया सन्ध्ये देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
मयि विन्यस्तमनसा त्वञ्च दृष्टा न तैः पुनः ॥ ९३ ॥

---

66 समवाप्नुहि । 67 कृत । 68 निकटं ।

चन्द्रस्य शापमोक्षार्थं चन्द्रभागा नदी यथा ।
सृष्टा धात्रा तदैवात्र मेधातिथिरुपस्थितः ॥ ६४ ॥
तपसा तत्समो नास्ति न भूतो न भविष्यति ।
तेन यज्ञः समारब्धो ज्योतिष्टोमो महाविधिः ॥ ६५ ॥
तत्र प्रज्वलितो वह्निस्तस्मिंस्त्यज वपुः स्वकम् ॥ ६६ ॥
एतन्मया स्थापितं ते कार्यार्थं भोस्तपस्विनि ।
तत् कुरुष्व महाभागे याहि यज्ञं महामुनेः ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नारायणः स्वयं सन्ध्यां पस्पर्शाथाग्रपाणिना ।
ततः पुरोडाशमयं तच्छरीरमभूत् क्षणात् ॥ ६८ ॥
महामुनेर्महायज्ञे तस्मिन् विश्वोपकारिणि ।
नाग्निः कव्यादतां याति त्वेतदर्थं तथा कृतम् ॥ ६९ ॥
एवं कृत्वा जगन्नाथस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सन्ध्याप्यगच्छत्तत्सत्रे यत्र मेधातिथिर्मुनिः ॥ १०० ॥
अथ विष्णोः प्रसादेन केनाप्यनुपलक्षिता ।
प्रविवेश यदा यज्ञं सन्ध्या मेधातिथेर्मुनेः ॥ १०१ ॥
वसिष्ठेन पुरा सा तु वर्णीभूत्वा तपस्विनी ।
उपदिष्टा तपश्चर्तुं वचनात् परमेष्ठिनः ॥ १०२ ॥
तमेव कृत्वा मनसि तपश्चर्योपदेशकम् ।
पतित्वेन तदा सन्ध्या ब्राह्मणं ब्रह्मचारिणम् ॥ १०३ ॥
समिद्धेऽग्नौ महायज्ञे मुनिभिर्नोपलक्षिता ।
तदा विष्णोः प्रसादेन साविवेश विधेः सुता ॥ १०४ ॥
तस्याः पुरोडाशमयं शरीरं तत्क्षणात्ततः ।
दग्धं पुरोडाशगन्धं व्यस्तारयदलक्षितम् ॥ १०५ ॥
वह्निस्तस्याः शरीरन्तु दग्ध्वा सूर्यस्य मण्डले ।
शुद्धं प्रवेशयामास विष्णोरेवाज्ञया पुनः ॥ १०६ ॥

सूर्यो द्विधा विभज्याथ तच्छरीरं तदा रथे ।
स्वके संस्थापयामास प्रीतये पितृदेवयोः ॥ १०७ ॥
यदूर्ध्वभागस्तस्यास्तु शरीरस्य द्विजोत्तमाः ।
प्रातःसन्ध्याभवत् सा तु अहोरात्रादिमध्यगा ॥ १०८ ॥
यच्छेषभागस्तस्यास्तु अहोरात्रान्तमध्यगा ।
सा सायमभवत् सन्ध्या पितृप्रीतिप्रदा सदा ॥ १०९ ॥
सूर्योदयात्तु प्रथमं यदा स्यादरुणोदयः ।
प्रातःसन्ध्या तदोदेति देवानां प्रीतिकारिणी ॥ ११० ॥
अस्तं गते ततः सूर्ये शोणपद्मनिभा सदा ।
उदेति सायंसन्ध्यापि पितॄणां मोदकारिणी ॥ १११ ॥
तस्याः प्राणास्तु मनसा विष्णुना प्रभविष्णुना ।
दिव्येन तु शरीरेण चक्रिरेऽथ शरीरिणः ॥ ११२ ॥
मुनेर्यज्ञावसाने तु सम्प्राप्ते मुनिना तु सा[69] ।
प्राप्ता पुत्री वह्निमध्ये तप्तकाञ्चन[70]सप्रभा ॥ ११३ ॥
तां जग्राह तदा पुत्रीं मुनिरामोदसंयुतः ।
यज्ञार्थतोयैः संस्नाप्य निजक्रोडे कृपायुतः ॥ ११४ ॥
अरुन्धतीति तस्यास्तु नाम चक्रे महामुनिः ।
शिष्यैः परिवृतस्तत्र महामोदमवाप च ॥ ११५ ॥
न रुणद्धि यतो धर्मं सा केनापि च कारणात् ।
अतस्त्रिलोकविदितं नाम सा प्राप सान्वयम् ॥ ११६ ॥

यज्ञं समाप्य स मुनिः कृतकृत्यभाव-
मासाद्य सम्मदयुतस्तनयाप्रलम्भात् ।
तस्मिन् निजाश्रमपदे सहशिष्यवर्गै-
स्तामेव सन्ततमसौ दयते महर्षिः ॥ ११७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अरुन्धती-जन्मकथने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

69 मुनिसत्रमाः । 70 तप्रकाञ्चनसन्निभा ।

त्रयोविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ सा ववृधे देवी तस्मिन् मुनिवराश्रमे।
चन्द्रभागानदीतीरे तापसारण्यसंज्ञके॥ १॥
यथा चन्द्रकला शुक्लपक्षे नित्यं विवर्धते।
यथा ज्योत्स्ना तथा सापि प्राप वृद्धिमरुन्धती॥ २॥
संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे चन्द्रभागां तदा गुणैः।
तापसारण्यमपि सा पवित्रमकरोत् सती॥ ३॥
तत्र तीर्थं महापुण्यं मेधातिथिनिषेवितम्।
क्रीडास्थानमरुन्धत्याः पूतं बाल्योचितं कृतम्॥ ४॥
अद्यापि तापसारण्ये चन्द्रभागानदीजले।
अरुन्धतीतीर्थतोये स्नात्वा याति हरिं नरः॥ ५॥
कार्तिकं सकलं मासं चन्द्रभागानदीजले।
स्नात्वा विष्णुगृहं गत्वा ह्यन्ते मोक्षमवाप्नुयात्॥ ६॥
माघे मासि पौर्णमास्याममायां वा तथैव च।
चन्द्रभागाजले स्नानं यस्तु कुर्यात् सकृत् सकृत्॥ ७॥
तस्य वंशे राजयक्ष्मा न कदाचिद् भविष्यति।
देहान्ते चन्द्रभवनं गत्वा याति हरेर्गृहम्॥ ८॥
पुण्यक्षयादिहागत्य वेदज्ञो ब्राह्मणो भवेत्।
चन्द्रभागाजलं पीत्वा चन्द्रलोकमवाप्नुयात्॥ ९॥
सकृत् स्नात्वा तु विधिवद्वाजिमेधायुतं[71] लभेत्॥ १०॥
चन्द्रभागाजले स्नात्वा क्रीडन्तीं बाल्यलीलया।
पितुः समीपे तत्तीरे कदाचित्तामरुन्धतीम्।
गच्छन्नाकाशमार्गेण ददर्श कमलासनः॥ ११॥
अथावतीर्य भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
अरुन्धत्यास्तदा कालमुपदेशे ददर्श ह॥ १२॥

---

71 वाजिमेधफलं।

अथोवाच तदा ब्रह्मा मुनिभिः परिपूजितः ।
मेधातिथिप्रभृतिभिरुचितं तं महामुनिम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

उपदेशस्य कालोऽयमरुन्धत्या महामुने ।
तस्मादेनां सतीनान्तु स्त्रीणां त्वं कुरु सन्निधिम् ॥ १४ ॥
स्त्रिभिस्त्रियश्चोपदेश्याः काचिदन्यत्र[72] विद्यते ।
बहुलायाश्च सावित्र्याः पुत्रीं त्वं स्थापयान्तिके ॥ १५ ॥
तयोः संसर्गमासाद्य पुत्री तव महामुने ।
महागुणैश्वर्ययुता मा चिरात् तु भविष्यति ॥ १६ ॥
मेधातिथिर्वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमात्मनः ।
एवमेषेति प्रोवाच तं तदा मुनिसत्तमः ॥ १७ ॥
ततो गते सुरश्रेष्ठे पुत्रीं मेधातिथिर्मुनिः ।
समादाय ययौ सूर्यभवनं प्रति तत्क्षणात् ॥ १८ ॥
ददर्श तत्र सावित्रीं सूर्यमण्डलमध्यगाम् ।
पद्मासनगतां देवीमक्षमालाधरां सिताम् ॥ १९ ॥
दृष्टा सा तेन मुनिना निःसृत्य रविमण्डलात् ।
बहुला सा गता तूर्णं[73] प्रस्थं मानसभूभृतः ॥ २० ॥
प्रत्यहं तत्र सावित्री गायत्री बहुला तथा ।
सरस्वती च द्रुपदा पञ्चैता मानसाचले ॥ २१ ॥
धर्माख्यानैस्तथा साध्वीः कथाः कृत्वा परस्परम् ।
स्वं स्वं स्थानं पुनर्याति लोकानां हितकाम्यया ॥२२॥
मेधातिथिस्तु ताः सर्वा दृष्ट्वैकत्र तपोधनः ।
मातॄः सर्वस्य लोकस्य प्रणनाम पृथक् पृथक् ॥२३॥
उवाच च स ताः सर्वा ऋषिः श्लक्ष्णं तपोधनः ।
ससाध्वसो विस्मितश्च तासामेकत्र दर्शनात् ॥२४॥

---

72 कदाचिदत्र । 73 बहुलायां गतायां तु ।

मेधातिथिरुवाच

मातः सावित्रि बहुले मत्पुत्रीयं महायशाः ।[74]
कालोऽयमुपदेशेऽस्यास्तदर्थमहमागतः ॥२५॥
जगत्स्रष्ट्रा समादिष्टा प्रयातु[75] तव शिष्यताम् ।
एषा तेन भवत्पार्श्वमानीता पुत्रिका मम ॥ २६॥
सौचारित्र्यं[76] यथास्याः स्यात्तथैनां बालिकां मम ।
युवां विनयतं देव्यौ मातर्मातर्नमोऽस्तु वाम् ॥२७॥
अथोवाच तदा देवी सावित्री मुनिसत्तमम् ।
स्मितपूर्वं बहुलया सहिता ताञ्च बालिकाम् ॥२८॥

ते ऊचतुः

ब्रह्मन् विष्णोः प्रसादेन सुचरित्रा भवत्सुता ।
पूर्वमेव मुने भूता तदुद्देशेन किं पुनः ॥२९॥
किं त्वहं ब्रह्मवाक्येण बहुला च महासती ।
विनेष्यावस्तव सुतां धीरा स्यान्नचिराद् यथा ॥३०॥
ब्रह्मणः पूर्वदुहिता भवतस्तु तपोबलात् ।
तथा विष्णोः प्रसादेन सुता तेऽभूदरुन्धती ॥३१॥
कुलं पुनाति भवतः सत्यसौ[77] वर्धयिष्यति ।
लोकानामथ देवानां शिवमेषा करिष्यति ॥३२॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ ताभिर्विसृष्टः स मुनिर्मेधातिथिः सुताम् ।
आश्वास्यारुन्धतीं नत्वा ताः स्वस्थानं जगाम ह ॥३३॥
गते तस्मिन् मुनिवरे सह ताभ्यामरुन्धती ।
मातृभ्यामिव निर्भीता पालिता मोदमाप सा ॥३४॥

---

74 शुभाशया । 75 यात्वीयं । 76 सुचरित्रा यथा सा स्यात् तथैषा बालिका मम । 77 सद्यशः ।

कदाचित् सह सावित्र्या रात्रौ याति रवेर्गृहम् ।
तथा वहुलया याति शक्रगेहं कदाचन ॥३५॥
एवं ताभ्यां समं देवी विहरन्ती सुरालये ।
निनाय दिव्यमानेन सा सप्त परिवत्सरान् ॥३६॥
ताभ्यां तथोपविष्टा सा स्त्रीधर्ममचिरात् सती ।
सर्वं ज्ञातवती भूता सावित्री-वहुलाधिका ॥३७॥
अथ तस्यास्तदा काले सम्प्राप्ते उचितेऽभवत् ।
शोभनो यौवनोद्भेदः पद्मिनीनां रुचिर्यथा ॥३८॥
उद्भूतयौवना सा तु वसिष्ठं मानसाचले ।
विहरन्ती ददर्शैका चारुतेजस्विनं मुनिम् ॥३९॥
दृष्ट्वा तमिच्छयाश्चक्रे कामभावेन सा सती ।
वालसूर्यप्रभं चारुरूपं व्रह्मश्रिया युतम् ॥४०॥
अथ सोऽपि महातेजा वसिष्ठो वरवर्णिनीम् ।
दृष्ट्वैवोद्भूतमदनो वीक्षाञ्चक्रे त्वरुन्धतीम् ॥४१॥
तयोः परस्परं दृष्ट्वा ववृधे हृच्छयो महान् ।
अमर्यादं द्विजश्रेष्ठाः प्राकृते मदनो यथा ॥४२॥
अथ धैर्यं समालम्व्य तथा मेधातिथेः सुता ।
आत्मानं धारयामास मनश्च मदनेरितम् ॥४३॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा धैर्यमालम्व्य चात्मनः ।
मनः संस्तम्भयामास मदनोन्मथितं ततः ॥४४॥
अरुन्धती ततो देवी विहाय मुनिसन्निधिम् ।
जगाम यत्र सावित्री निन्दन्ती स्वं मनोथरम् ॥४५॥
वाध्यमानातिदुःखेन मानसेन महासती ।
सतीभावः परित्यक्तश्चिन्तयन्ती मयेति वै ॥४६॥
तस्या मनोजदुःखेन विवर्णमभवन्मुखम् ।
शरीरं सकलं म्लानं गतिश्च वलिताभवत्[78] ॥४७॥

---
78 मतिश्चस्खलिताभवत् ।

इदं विममृषे साच गर्हयन्ती स्वकं मनः ।
मृणालतन्तुवत् सूक्ष्मा छिन्ना च तत्क्षणादपि ॥४८॥
स्थितिः सतीनामल्पेन चापल्येनैव नश्यति ।
इति स्त्रीधर्ममध्याप्य मामाह चरितव्रता ॥४९॥
सावित्री सारमेतद् हि सतीधर्मस्य चोद्धृतम् ।
तदद्य नाशितं पुंसि परकीये मनोरथम् ॥ ५०॥
वर्द्धयन्त्या तदा[79] किं मे परत्रेह भविष्यति ।
इति सञ्चिन्तयन्ती सा पुत्री मेधातिथेस्तदा ॥५१॥
दुःखार्ता बहुलां देवीं सावित्रीं चाससाद ह ।
तथाविधान्तु तां दृष्ट्वा विवर्णवदनां सतीम् ॥५२॥
ध्यानचिन्तापरा भूत्वा[80] सावित्री विममर्ष ह ।
विमृष्य दिव्यज्ञानेन सर्वं ज्ञातवती सती ॥५३॥
वसिष्ठेन त्वरुन्धत्या यथाभूद्दर्शनं तथा ।
यथा तयोः सम्प्रवृद्धो मनोजश्चातिदुःसहः ।५४॥
मुखवैवर्ण्यहेतुश्च[81] सावित्री दिव्यदर्शिनी ।
अथ मेधातिथेः पुत्र्या मूर्ध्नि हस्तं निवेश्य सा ॥५५॥
इदमाह महादेवी सावित्री चरितव्रता ।
वत्से तव मुखं कस्माद्भिन्नवर्णमभूदिदम् ॥५६॥
छिन्ननालं यथापद्मं सूर्यांशुपरितापितम् ।
कथं शरीरमभवत् म्लानं ते गुणवत्तमे ॥५७॥
यथा निशापतेर्बिम्बं तनुकृष्णाभ्रसंवृतम् ।
अन्तर्मनश्च ते भद्रे सचिन्तमिव लक्ष्यते ।
तन्मे कथय ते गुह्यं नैतच्चेद्दुःस्वकारणम् ॥५८॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ साधोमुखी भूत्वा किंचिन्नोवाच लज्जया ।
सावित्रीं मातरं गुर्वीं तथा पृष्टाप्यरुन्धती ॥५९॥

---

79 मया। 80 परामन्तः। 81 अथ वैचित्र्यहेतुश्च।

यदा नोक्तवती किंचित्तदा मेधातिथेः सुता ।
स्वयं प्रकाश्य सावित्री तामुवाच तपस्विनी ॥६०॥
वत्से योऽसौ त्वया दृष्टो मुनिर्भास्करसन्निभः ।
स वसिष्ठो ब्रह्मसुतस्तव स्वामी भविष्यति ।
तव तस्य च दाम्पत्यं पुरा धात्रैव निर्मितम् ॥ ६१ ॥
अतस्तव सतीभावो न हीनस्तस्य दर्शनात् ।
यद्वा तवाभूद्धृदयं सकामं तस्य दर्शनात् ॥ ६२ ॥
न तद्दोषकरं पुत्रि मनोदुःखं ततस्त्यज ।
त्वया परं तपः कृत्वा पूर्वजन्मनि शोभने ॥ ६३ ॥
वृतः स एव दयितः सकामस्तेन स त्वयि ।
शृणु पूर्वं त्वया वत्से वसिष्ठोऽयं वृतः पतिः ।
यथा तपः कृतं तत्र येन भावेन सन्ततम् ॥ ६४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा सा च सावित्री यथा सन्ध्याभवत् पुरा ॥ ६५ ॥
कृतं तपो यदर्थन्तु चन्द्रभागाह्वये गिरौ ।
वसिष्ठेन यथा पूर्वं वर्णिरूपेण वेधसः ॥ ६६ ॥
वचनादुपदिष्टा सा तपश्चर्यां दुरत्ययाम् ।
यथा प्रसन्नो भगवान् विष्णुः प्रत्यक्षतां गतः ॥ ६७ ॥
वरं यथा ददौ तस्यै मर्यादा स्थापिता यथा ।
यथा वा वाञ्छितः स्वामी वसिष्ठः स तया मुनिः ॥ ६८ ॥
मेधातिथेर्यथा यज्ञे वह्नौ त्यक्तं त्वया वपुः ।
यथा तत्तनया जाता तस्यैतद्विस्तरात् तदा ॥ ६९ ॥
सावित्री कथयामास क्रमाद् बहुलया सह ॥ ७० ॥
अथ तस्याः वचः श्रुत्वा यदभूत् पूर्वजन्मनि ।
तच्छ्रुत्वा[82] वै तदा ज्ञातं मम सर्वं मनोगतम् ॥ ७१ ॥

---

82 चैतया ।

इत्यतीवत्रपां प्राप्य सातीवाभूदधोमुखी ।
सावित्रीवचनादूभूता पूर्वजन्मस्मरा च सा ॥ ७२ ॥
तथैवाधोमुखी भूत्वा यद्वृत्तं पूर्वजन्मनि ।
तस्य सर्वस्य सस्मार दिव्यज्ञारुन्धती तदा ॥ ७३ ॥
पूर्वं विष्णुप्रसादेन सा भूत्वा दिव्यदर्शिनी ।
अधुना बाल्यभावेन प्रच्छन्ना दिव्यदर्शना ॥ ७४ ॥
सावित्रीवचनाच्छ्रुत्वा वृत्तान्तं पूर्वजन्मनः ।
प्रत्यक्षमिव तत् सर्वं पूर्वज्ञानमवाप सा ॥ ७५ ॥
अवाप्य पूर्वं ज्ञानं तद्यद्दत्तं विष्णुना पुरा ।
वसिष्ठोऽयं वृतः स्वामी मया वै पूर्वजन्मनि ॥ ७६ ॥
इति ज्ञातवती देवी सामोदारुन्धती स्वयम् ।
वसिष्ठदर्शनद्भूते पूर्वं तस्यास्तु हृच्छये ॥ ७७ ॥
यथातंकः समुत्पन्नः सतीत्वस्य निवारणे ।
तच्च स्वयं सा तत्याज तदा मेधातिथेः सुता ॥ ७८ ॥
त्यक्तचिन्तां ततस्तान्तु विज्ञायारुंधतीं सतीम् ।
सावित्री सूर्यभवनं तया सार्धं जगाम ह ॥ ७९ ॥
अरुन्धतीं निवेश्याथ सावित्री सूर्यमन्दिरे ।
जगाम ब्रह्मभवनं सर्वज्ञा सा सतीवरा ॥ ८० ॥
अथ प्रणम्य ब्रह्माणं पृष्टा तेनैव तत्क्षणात् ।
इदं जगाद सावित्री ब्रह्माणममितौजसम् ॥ ८१ ॥
भगवन् जगतां नाथ वसिष्ठं भवतः सुतम् ।
मानसस्य गिरेः सानौ ददर्शारुन्धती सती ॥ ८२ ॥
तयोर्दर्शनमात्रेण ववृधे हृच्छयो महान् ।
परस्परं तौ स्पृहयाञ्चक्रतुश्च प्रजापते । ८३ ॥
ततो धैर्यात्तु संस्तभ्य मनोजं तौ सुदुःखितौ ।
विमनस्कौ गतौ स्थानं लज्जितौ तौ स्वकं स्वकम् ॥ ८४ ॥

एवम्प्रवृत्ते यद्‌योग्यं तदा त्वैतद्विधीयताम् ।
आयत्याञ्च सुरश्रेष्ठ लोकानां हितकाम्यया ॥ ८५ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या ब्रह्मा सर्वजगद्‌गुरुः ।
ददर्श दिव्यज्ञानेन प्रवृत्तिं भाविकर्मणः । ८६ ॥
इदञ्च स्वागतं प्रोचे तदा लोकपितामहः ।
तयोर्दाम्पत्यभावस्य कालोऽयं समुपस्थितः ॥ ८७ ॥
अतो लोकहितार्थाय यास्येऽहं तत्प्रवृत्तये ।
इति निश्चत्य मनसा सावित्रीसहितो विधिः ।
जगाम मानसप्रस्थं यत्राभूद्‌दर्शनं तयोः ॥ ८८ ॥
पितामहे तत्र याते शर्वः सुरगणैर्युतः ।
नन्दिभृंगिप्रभृतिभिः समायातो वृषध्वजः ॥ ८९ ॥
भगवान् वासुदेवोऽपि ब्रह्मणा परिचिन्तितः ।
भक्त्या सोऽपि जगन्नाथः शंखचक्रगदाधरः ।
स्थितौ ब्रह्महरौ यत्र तत्रैव स्वयमागतः ॥ ९० ॥
अथ ते जगतां नाथा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
नारदं प्रेषयामासुर्दूतं मेधातिथिं प्रति ॥ ९१ ॥
याहि द्रुतं नारद त्वं चन्द्रभागाह्वयं गिरिम् ।
मुनिस्तस्योपत्यकायामास्ते मेधातिथिः परः ॥ ९२ ॥
तमानय यथाकाममस्माकं[83] वचनात् स्वयम् ।
मेधातिथिं समादाय भवानागच्छतु द्रुतम् ॥ ९३ ॥
ब्रह्मादीनां वचः श्रुत्वा नारदोऽपि द्रुतं ययौ ।
मेधातिथिं समानेतुं महाकार्यस्य सिद्धये ॥ ९४ ॥
मेधातिथिं समाभाष्य देवानां वचनैस्ततः ।
मेधातिथिं समादाय ययौ मानसपर्वतम् ॥ ९५ ॥
सेन्द्रा देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ।
साध्या विद्याधरा यक्षा गन्धर्वाश्च समागताः ॥ ९६ ॥

---

83 यथाकालं ।

देवाश्च सर्वे देव्यश्च ये देवानुचरास्तथा ।
ते सर्वे मानसप्रस्थं याताश्चान्ये च जन्तवः ।। ९७ ।।
अथ भूते समाजे तु देवानां कमलासनः ।
मेधातिथिं मुनिं वाक्यमिदमाहातिदेशयन् ।। ९८ ।।

ब्रह्मोवाच

मेधातिथे वसिष्ठाय पुत्रीं ते चरितव्रताम् ।
देहि ब्राह्मेण विधिना समाजे त्रिदिवौकसाम् ।।९९।।
बधूवरत्वमनयोः पूर्वं सृष्टं मयैव हि ।
हरिणा चाप्यनुज्ञातं कर्म चैतत् समञ्जसम् ।।१००।।
एवं कृते तव कुले भविष्यति महद्यशः ।
हितं च सर्वभूतानां देहि त्वां मा चिरं कृथाः ।।१०१।।
ततो ब्रह्मवचः श्रुत्वा ह्यतिप्रमोदितो मुनिः ।
एवमस्त्विति चोवाच नत्वा तान् सुरपुंगवान् ।।१०२।।
एषां तु वचनात् पुत्रीमादायारुन्धतीं मुनिः ।
ध्यानस्थस्य वसिष्ठस्य देवैः सह जगाम ह ।।१०३।।
गत्वा वसिष्ठनिकटं देवैः परिवृतो मुनिः ।
ब्राह्मश्रिया दीप्यमानं ज्वलन्तमिव पावकम् ।।१०४।।
धर्मार्थकाममोक्षेषु धृतबुद्धिं पृथक् पृथक् ।
ददर्श मुनिमासीनं मानसाचलकन्दरे ।। १०५ ।।
वसिष्ठमोजस्विवरं बालसूर्यमिवोदितम् ।
अथ पुत्रीमग्रगतां कृत्वा मेधातिथिर्मुनिः ।
वसिष्ठं नियतात्मानमुवाचारुन्धतीपिता ।। १०६ ।।

ऋषिरुवाच

भगवन् ब्रह्मणः पुत्र पुत्रीं मे चरितव्रताम् ।
दत्तां प्रतिगृह्णाणैनां[84] मया ब्राह्मेण धर्मतः । १०७ ।।

84 प्रतिगृह्णाणेमां

यत्र यत्राश्रमे ब्रह्मन् स्वेच्छया निवसिष्यसि ।
त्वद्भक्त्येषा भवित्री च च्छायेवानुगता तव ॥ १०८ ॥
तत्र तत्रैव मे पुत्री समानव्रतधारिणी ।[85]
पतिव्रता वरारोहा शुश्रूषां ते करिष्यति ॥ १०६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तु मुनेर्मेधातिथेर्वचः ।
दृष्ट्वा समागतान् देवान् ब्रह्मविष्णुशिवादिकान् ॥ ११० ॥
अवश्यमेतद्भावीति निश्चित्य दिव्यचक्षुषा ।
ब्रह्मणः सम्मते पुत्रीं तदा मेधातिथेर्मुनेः ।
वसिष्ठः प्रतिजग्राह वाढमित्युक्तवांश्च ह ॥ १११ ॥
गृहीतपाणिः सा देवी वसिष्ठेन महात्मना ।
पत्युः पादयुगे चक्षुर्युगं न्यस्तवती सती ॥ ११२ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चान्ये तथामराः ।
विवाहविधिना तौ तु मोदयाञ्चक्रुरुत्सवैः ॥ ११३ ॥
सावित्री प्रमुखा देव्यो देवाश्चेन्द्रादयस्तथा ।
दक्षाद्याकश्यपाद्यास्तु मुनयोऽतितपोधनाः ॥ ११४ ॥
उन्मुच्य ब्रह्मवचनाद्वल्कलञ्चाजिनं जटाः ।
मन्दाकिनीजलेनाशु स्नापयित्वा सुतं विधेः ॥ ११५ ॥
जाम्बुनदैस्तथा दिव्यैर्भूषणैश्च मनोहरैः ।
वसिष्ठं भूषयांचक्रुस्तथैवारुन्धतीं सतीम् ॥ ११६ ॥
भूषयित्वाथ तौ तत्र समाप्य मुनिभिर्विधिम् ।
विवाहावभृथंचक्रुस्तयोर्विधि-हरीश्वराः ॥ ११७ ॥
निधाय सर्वतीर्थानां तोयं जाम्बुनदे घटे ।
आशीर्वादकरैर्मन्त्रैर्गायत्र्या द्रुपदादिभिः ॥ ११८ ॥

---

85 व्रतचारिणी ।

स्वयं तौ स्नापयाञ्चक्रुर्ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।
ततो महर्षयश्चान्ये तथा देवर्षयश्च ये ॥ ११९ ॥
ते सर्वे ऋग्यजुःसामवेदभागैर्महास्वरैः।
गंगादि सरितां तोयैश्चक्रुः शान्ति तयोर्मुहुः ॥ १२० ॥
भुवनत्रयसञ्चारि विमानं सूर्यवर्चसम्।
अव्याहतगतिं ब्रह्मा सतोयञ्च कमण्डलुम् ॥ १२१ ॥
ताभ्यां दायं ददौ विष्णुर्दुष्प्रापं स्थानमुत्तमम्।
यदूर्द्धं सर्वदेवानां मरीच्यादेः समीपतः ॥ १२२ ॥
सप्तकल्पान्तजीवित्वं रुद्रः प्रादात्तयोर्वरम्।
अदितिः कुण्डलयुगं ब्रह्मणा निर्मितं स्वकम्।
ददौ स्वकर्णादाकृष्य पुत्र्यै मेधातिथेस्तदा ॥ १२३ ॥
पतिव्रतात्वं सावित्री बहुला बहुपुत्रताम्।
देवेन्द्रो बहुरत्नानि धनेशेन समं ददौ ॥ १२४ ॥
एवं देवाश्च मुनयो देव्यश्चान्ये च ये स्थिताः।
ददुस्तत्र यथायोग्यं दायं ताभ्यां पृथक् पृथक् ॥ १२५ ॥
एवं विवाह्य विधिवत् सौवर्णे मानसाचले।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्तु मोदमाप तया सह ॥ १२६ ॥
तत्र यत् पतितं तोयं मानसाचलकन्दरे।
विवाहावभृथार्थाय शान्त्यै च सुराहृतम् ॥ १२७ ॥
ब्रह्मविष्णुमहादेवपाणिभिः समुदीरितम्।
तत्तोयं सप्तधा भूत्वा पतितं मानसाचलात् ॥ १२८ ॥
हिमाद्रेः कन्दरे सानौ सरस्याञ्च पृथक् पृथक्।
तत्तोयं पतितं शिप्रे देवभोग्ये सरोवरे ॥ १२९ ॥
तेन शिप्रानदीजाता विष्णुना प्रेरिता क्षितौ।
महाकौषी प्रपाते तु यद्वारि पतितं तु वै[86] ॥ १३० ॥

---

86 तैः।

कौषिकी नाम सा जाता विश्वामित्रावतारिता ।
उमा क्षेत्रे यत् पतितं तोयं तेन महानदी ॥ १३१ ॥
कावेरी नाम सा जाता महा[87]कालसरसः स्मृता ।
महाकाले सरःश्रेष्ठे पतितं तज्जलं गिरेः ॥ १३२ ॥
हिमाद्रेः पार्श्वभागे तु दक्षिणे शंभुसन्निधौ ।
गोमती नाम तैर्जाता नदी गोमदुदीरिता ॥ १३३ ॥
मैनाको नाम यः पुत्रः शैलराजस्य तत्समः ।
तस्मिन् सानौ समुत्पन्नो मेनकोदरतः पुरा ॥ १३४ ॥
यत्तत्र पतितं तोयं तेन जाता महानदी ।
देविकाख्या महादेवप्रेरिता सागरं प्रति ॥ १३५ ॥
यत्तोयं संगतं दर्यां हंसावतारसन्निधौ ।
तेनाभून् सरयूर्नाम्ना नदी पुण्यतमा स्मृता ॥ १३६ ॥
यान्यम्भांसि महापार्श्वे[87a] खाण्डवारण्यसन्निधौ ।
हिमवत्कन्दरे याम्ये इराया ह्रदमध्यतः ॥ १३७ ॥
इरावती नाम नदी तैर्जाता च सरिद्वरा ।
एताः सर्वाः स्नानपानसेवनैर्जाह्नवी यथा ॥ १३८ ॥
फलं ददति मर्त्यानां दक्षिणोदधिगाः सदा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां वीजभूताः सनातनाः ॥ १३९ ॥
महानद्यस्तु सप्तैताः सर्वदा देवभोगदाः ।
एवं नद्यः सप्तजाताः सदापुण्यतमोदकाः ॥ १४० ॥
अरुन्धत्या वसिष्ठस्य विवाहे देवसन्निधौ ॥ १४१ ॥
एवं विवाह्य स तदा वसिष्ठस्तामरुन्धतीम् ॥
देवैर्दत्तं तदा स्थानं विमानेन जगाम ह ॥ १४२ ॥
ब्रह्म-विष्णु-महेशानां वचनान्मुनिसत्तमः ॥ १४३ ॥
हिताय सर्वजगतां त्रिषु लोकुषु सर्वदा ।
यस्मिन् यस्मिन् युगे यादृक्[88] स्त्रीणां भवति तादृशम् ।१४४।

---

87 कावेरसरसः स्मृता । 87a महातोयखाण्डव... । 88 नृणां ।

वेशं भावं शरीरं च कृत्वा धर्मे नियोजनम् ।
विचरत्येष लोकांस्त्रीनप्रमत्तः प्रस नधीः ॥ १४५ ॥
एवं पुरा वसिष्ठेन परिणीतात्वरुन्धती ।
सा हितार्थाय जगतां देवानां वचनात् पुरा ॥ १४६ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यमाख्यानं धर्मसाधनम् ।
सर्वकल्याणसंयुक्तं चिरायुर्वित्तवान् भवेत् ॥ १४७ ॥
या स्त्री शृणोति सततमरुन्धत्याः कथा[89]मिमाम् ।
पतिव्रता सा भूत्वेह परत्र स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १४८ ॥
इदं परं स्वस्त्ययनमिदं धर्मप्रदं परम् ।
आख्यानं सर्वदा कीर्तिर्यशःपुण्यविवर्धनम् ॥ १४९ ॥
विवाहे पुंसि यात्रायां यः श्राद्धे श्रावयेत्तथा ।
स्थैर्यं पुंसवनं सिद्धिः पितृप्रीतिश्चजायते ॥ १५० ॥
इति वः कथितं सर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः ।
अरुन्धती यथाभूता भार्या वापि पतिव्रता ॥ १५१ ॥
यस्य वा तनया जाता यथोत्पन्ना च यत्र च ।
यथा ब्रह्महरीशानां वचनात् स वृतः पतिः ॥ १५२ ॥
एतत् वः सर्वमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
पुण्यदं पापहरणमायुरारोग्यवर्धनम् ॥ १५३ ॥

इति विपुलवृषौघक्षेमकारीतिहासं
सदसि सकृदपीह श्रावयेद्यो द्विजानाम् ।
स भवति कलुषौघैर्हीनदेहः समेतो
मुनिवरसहचर्या प्रेत्य गीर्वाण एव ॥ १५४ ॥

इति श्री कालिकापुराणे वसिष्ठारुन्धतीविवाहे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

89 कथां शुभां ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो[१०] हिमवतः प्रस्थे गिरेः शिप्रसर[११]स्तीरे ।
उपविष्टो महादेवस्तत्सरोऽपश्यदन्तिके ॥ १ ॥
पुनः पुनः प्रेष्यमाणो ब्रह्मणा हरिणा च सः ।
ध्यानं कर्तुं तत्र मनः स्थिरं कृत्वा दृढात्मवान् ॥ २ ॥
आत्मानमात्मना द्रष्टुमात्मन्येव विशेषतः ।
परमं यत्नमकरोद्ध्यानेन स्मरशासनः ॥ ३ ॥
ध्याने प्रविष्टचित्तन्तु तं दृष्ट्वा द्रुहिणादयः ।
हरे प्रविष्टां मायाख्यां तुष्टुवुर्यतमानसाः ॥ ४ ॥
मायया मोहितो भर्गः सतीशोकाकुलो भृशम् ।
विलपत्येव तां तस्मिन् मोहहेतुं जगत्प्रसूम् ॥ ५ ॥
स्तुत्वा शम्भुशरीरात्तु निःसार्यैनां निराकुलाम् ।
शम्भुचित्तं करिष्यामो ध्यानासक्तं निरञ्जनम् ॥ ६ ॥
यावत् सती पुनर्देहं गृहीत्वा हरभामिनी ।
भवित्री तावदेवैष विशोको ध्यातु निष्कलम् ॥ ७ ॥
इति संचिन्त्य मनसा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।
योगनिद्रां महामायां स्तोतुमेवं समारभन् ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

श्रीशक्तिं पावनीं तान्नु[१२] पुष्टिं परमनिष्कलाम् ।
वयं[१३] स्तुमो महाभक्त्या महदव्यक्तरूपिणीम् ॥ ९ ॥
शिवां शिवकरीं[१४] शुद्धां स्थूलां सूक्ष्मां परावराम् ।
अन्तर्विद्यामविद्याख्यां प्रीतिमेकाग्रयोगिणीम् ॥ १० ॥
त्वं मेधा त्वं धृतिस्त्वं ह्रीस्त्वमेका सर्वगोचरा ।
त्वं दीधितिः सूर्यगता सुप्रपंचप्रकाशिनी ॥ ११ ॥

---

१० मघवतः । ११ स्तटे । १२ शान्तिं । १३ ध्यामो महाभागां । १४ शुद्धां ।

या तु ब्रह्माण्डसंस्थानं जगद्वीजेषु या जगत्।
आप्यायति ब्रह्मादींस्तम्बान्तान् या त्वमापगा ॥ १२ ॥

य एकः सर्वजगतां प्राणभूतः सदागतिः ।
देवानाञ्च य आधारः स[95] नभस्वांस्तवांशकः॥ १३ ॥

एवं[96] त्रिसारि यत्तेजः सर्वत्रैव समिध्यते ।
तत्ते रूपं जगद्वीजं बहुधा यच्च दृश्यते ॥ १४ ॥

या ब्रह्मलोकपातालसान्तरालगता सदा ।
सा त्वं वियन्मध्यबहिर्ब्रह्माण्डस्य च सर्वतः ॥ १५ ॥

अचलाचलचक्रेण यन्त्रिता या प्रपञ्चसूः ।
जगद्धात्री लोकमाता सा च त्वं माधवी क्षितिः ॥ १६ ॥

त्वं बुद्धिस्त्वं तद्विषया त्वं माता च्छन्दसां गतिः ।
गायत्री त्वं वेदमाता त्वं सावित्री सरस्वती ॥ १७ ॥
त्वं[97] वार्ता सर्वजगतां त्वं त्रयी कामरूपिणी ।
त्वं हि निद्रास्वरूपेण प्राणिनो निर्जरादयः ।
ये स्वर्गाद्योकसः सर्वान् सुखयन्ती प्रमोहसि ॥ १८ ॥
त्वं लक्ष्मीः पुण्यकर्त्रीणां पापिनां त्वं हि यातना ।
तथा नीतिभृतां श्रीश्च सुखदा नैशिकी धृतिः ॥ १९ ॥
त्वं शान्तिः सर्वजगतां त्वं कान्तिश्चन्द्रगोचरा ।
त्वं धात्री सर्वभूतानां लक्ष्मीस्त्वं विष्णुमोहिनी ॥ २० ॥
त्वं तत्त्वरूपा भूतानां पंचानामपि सारकृत् ।
त्वं त्रिलोकी महामाया त्वं नीतिर्मोहकारिणी ॥ २१ ॥
संसारचक्रेष्वारोप्य सर्वभूतं महेश्वरः ।
भ्रामयन्नस्ति च यथा सा त्वं माया महेश्वरि ॥ २२ ॥
जयन्ती जययुक्तानां ह्रीर्विद्या नीतिरुत्तमा ।
गीतिस्त्वं सामवेदस्य ग्रन्थिस्त्वं यजुषां[98] हुतिः ॥ २३ ॥

---

95 नभस्वान् विभावसुः । 96 एकं । 97 माता । 98 कृतिः ।

समस्तगीर्वाणगणस्य शक्ति-
स्तमोमयी सत्त्वगुणैक दृश्या ।
रजः प्रपंचानुभवैककारिणी
या न स्तुता भव्यकरीह सास्तु ॥ २४ ॥
संसारसागरकरालतरंगदुःख-
निस्तारकारितरणिश्चितिरीतिहीना ।
याष्टांगरूपपरपावनकेलिगीत-
[99]विक्षेपकारिणी गिरौ प्रणनाम तां वै ॥ २५ ॥
नासाक्षिवक्त्रभुजवक्षसि मानसे च
धृत्वा सुखानि विदधाति सदैव जन्तोः ।
निद्रेति यातिसुभगा जगतीभवानां
सा नः प्रसीदतु धृतिस्मृतिवृत्तिरूपा ॥ २६ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
सृष्टिस्थित्यन्तशक्तिर्या सा माया नः प्रसीदतु ॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

योगनिद्रा महामाया संस्तुनेयं तदा सुरैः ।
हरस्य हृदयात् क्षिप्रं निःससार तदाञ्जसा ॥ २८ ॥
विनिःसृतायां तु तस्यां विवेश मधुसूदनः ।
शम्भोरन्तः स्वयं तस्य शान्त्यर्थं विश्वरूपधृक् ॥ २६ ॥
प्रविश्य हृदयं तस्य कल्पे कल्पे यथाभवत् ।
सृष्टिः स्थितिस्तथैवान्तस्तथादर्शयदच्युतः ॥ ३० ॥
यथा सती तस्य जाया भूता सा या च यत्सुता ।
तत् सर्वं दर्शयामास मुक्तदेहा च सा यथा ॥ ३१ ॥
वहिर्व्यक्तं तु निःसारं प्रपंचं राजसं बहु ।
दर्शयित्वा परं ज्योतिर्गतचित्तं तदाकरोत् ॥ ३२ ॥

---

99 विक्षेपवेगिनी ।

ततो हरोऽपि तान् सर्वान् प्रपञ्चान् वीक्ष्य चासकृत्।
निःसारांश्च तदा मत्वा सारे चित्तं न्यवेशयत् ॥ ३३ ॥
ब्रह्मादीनां तदा माया देवानां तैः परिष्टुता।
प्रतिश्रुत्य च कर्तव्यं तत्रैवान्तर्दधे द्रुतम् ॥ ३४ ॥
भगवानपि वैकुण्ठः शम्भोश्चित्तं पदे पदे।
संयम्य निःसृतः कायाद्राजेव रविमण्डलात् ॥ ३५ ॥
कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मनारायणादयः।
स्वं स्वं स्थानं ययुः प्रीतियुतास्त्यक्त्वा हरं गिरौ ॥ ३६ ॥
ध्यानासक्तं महादेवं प्रणम्येन्द्रादयः सुराः।
विज्ञाप्य मौनिनं देवं जग्मुः स्थानं स्वकं स्वकम् ॥ ३७ ॥
यातेषु तेषु देवेषु कपर्दी वृषवाहनः।
सहस्रं दिव्यमानेन दध्यौ ज्योतिः परं समाः ॥ ३८ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं मधुरिपुः शम्भोः प्रविश्य हृदयेऽञ्जसा।
कल्पे कल्पे स्थितिं सृष्टिं संयमञ्चाप्यदर्शयत् ॥ ३९ ॥
यथा जगत्प्रपंचाय रजसा जगतीं गताः।
निःसारता कथं तेषां दर्शिता कैटभारिणा ॥ ४० ॥
किन्तु सारतरं गुह्यं परं ज्योतिः सनातनम्।
दर्शितं तेन तत् सत्यमाचक्ष्व द्विजसत्तम ॥ ४१ ॥
श्रोतुमिच्छाम इति ते मुनीन्द्राद्भुतमुत्तमम्।
विस्तरादिदमाख्याहि धर्मं निःश्रेयसं परम् ॥ ४२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आदिसर्गमहं वक्ष्ये वाराहं द्विजसत्तमाः।
कल्पे कल्पे यथा सृष्टिर्वाराहे यादृशी भवेत् ॥ ४३ ॥
आदिसृष्टिं दर्शयित्वा प्रतिसर्गं तथा हरिः।
शम्भवे दर्शयामास प्रलयादीन् निबोधत ॥ ४४ ॥

प्रलयं प्रथमं वक्ष्ये सर्गमादिं ततः परम्।
प्रतिसर्गं ततो विप्रा वाराहं विनिबोधत ॥ ४५ ॥
निमेषो नाम कालांशो नेत्रोन्मेषविलक्षितः।
तैरष्टादशभिः काष्ठा काष्ठानां त्रिंशता कला ॥ ४६ ॥
कलाभिस्तावतीभिस्तु क्षणाख्यं परिकीर्तितः।
क्षणैर्द्वादशभिः प्रोक्तो मुहूर्तस्तैस्तु त्रिंशता ॥ ४७ ॥
मानुषः स्यादहोरात्रः पक्षस्ते दश पञ्च च।
पक्षाभ्यां मानुषो समाः पितॄणां तदहर्निशम् ॥ ४८ ॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षो देवानां तदहर्निशम्।
कृष्णपक्षः पितॄणां तु कर्मार्थं दिवसो मतः ॥ ४९ ॥
स्वप्नार्थं शुक्लपक्षस्तु रजनी परिकीर्तिता।
देवानां तु दिनं प्रोक्तं षण्मासा उत्तरायणम् ॥ ५० ॥
रात्रिः स्वप्नाय देवानां षण्मासा दक्षिणायनम्।
द्वाभ्यां द्वाभ्यान्तु मासाभ्यामर्कजाभ्यामृतुः स्मृतः ॥ ५१ ।
ऋतुभिश्चायनं प्रोक्तं त्रिभिस्तन्मानुषं मतम्।
ऋतुभिर्वत्सरः षड्भिस्तांश्च शृणु पृथक् पृथक् ॥ ५२ ॥
चैत्रादि-मासयुगलैः संज्ञाभेदाद् द्विजोत्तमाः।
वसन्तश्चैत्रवैशाखौ ग्रीष्मो ज्येष्ठः शुचिस्तथा ॥ ५३ ॥
प्रावृट् नभोनभस्यौ तु शरत् स्यादिष-कार्तिके।
सहः पौषौ च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ ५४ ॥
षड़िमे ऋतवः प्रोक्ता यज्ञादौ विहिताः पृथक्।
नृणां मानेन दशभिर्लक्षैः सप्तभिरुत्तरैः।
अष्टाविंशतिसाहस्रैर्मानं कृतयुगस्य तु ॥ ५५ ॥
सन्ध्या चतुःशतानीह वर्षाणामन्तरालतः।
सन्ध्यांशस्तावता प्रोक्तस्तदन्तर्गत ईप्सितः ॥ ५६ ॥
त्रेता द्वादशभिर्लक्षैर्मानुषैर्वत्सरैर्भवेत्।
षण्णवत्या सहस्रैश्च सन्ध्या चास्य शतत्रयम् ॥ ५७ ॥

शतत्रयं तु सन्ध्यांशस्तदन्तः परिकीर्तितः ।
चतुःषष्टिसहस्राणि लक्ष्याण्यष्टौ प्रमाणतः ॥ ५८ ॥
भवेद्युगं द्वापराख्यं तेषु सन्ध्या शतद्वयम् ।
शतद्वयं तु सन्ध्यांशस्तदन्तर्गत इष्यते ॥ ५९ ॥
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि चतुर्लक्षाणि वै कलेः ॥ ६० ॥
संवत्सरैर्भवेन्मानं सन्ध्यैकं प्रोच्यते शतम् ।
वत्सराणामेकशतं संध्यांशश्च तदन्तरे । ६१ ॥
एवं कृतश्च त्रेता च द्वापरश्च तथा कलिः ।
मानुषेण प्रमाणेन भवेद् युगचतुष्टयम् ॥ ६२ ॥
त्रिचत्वारिंशता लक्षैर्मानं चातुर्युगं भवेत् ।
सहस्रैरपि विंशत्या संध्या संध्यांशसंयुतम् ॥ ६३ ॥
दैवं दिनं वत्सरेण मानुषेण सरात्रकम् ।
एवं क्रमं गणित्वा तु मानुषैश्चतुर्युगैः ।
दैवं द्वादशसाहस्रं वत्सराणां प्रकीर्तिम् ॥ ६४ ॥
दैवैर्द्वादशसाहस्रैर्वत्सरैर्दैविकं युगम् ।
तद्वै चतुर्युगं नृणां संध्या संध्यांशसंयुतम् ॥ ६५ ॥
देवानां तु[100] कृते त्रेताद्वापरदिव्यवस्थया ।
न युगव्यवहारोऽस्ति न च धर्मादिभिन्नता ॥ ६६ ॥
किन्तु चातुर्युगं[1] नारं भवेद्दैवयुगं सदा ।
दैविकैरेकसप्तत्या युगैर्मन्वन्तरं भवेत् ॥ ६७ ॥
दैवयुगसहस्रे द्वे ब्रह्मणः स्यादहर्निशम् ।
चतुर्युगसहस्रे द्वे नृणां मानेन तद्भवेत् ॥ ६८ ॥
एकस्मिन् ब्राह्मदिवसे मनवः स्युश्चतुर्दश ।
एवं ब्राह्मेण मानेन दिवसैस्तु त्रिभिः शतैः ।
स-षष्टिभिर्वत्सरः स्याद् ब्राह्मो वर्षो नृणां यथा ॥ ६९ ॥
ब्राह्मैः पञ्चशता वर्षैः परार्धः परिकीर्तितः ।

---

100 कृत- । 1 मानं ।

तदीश्वरस्य दिवसस्तावती रात्रीरीड्यते ॥ ७० ॥
शतेन ब्रह्मणो वर्षो कालः स्याद्द्विपरार्धकः।
परार्धद्वितयेऽतीते ब्रह्मणः प्रलयोभवेत् ॥ ७१ ॥
प्रलीने ब्रह्मणि परे जगतां प्राकृतो लयः।
समस्तजगदाधारमव्ययं यत् परात्परम् ॥ ॥ ७२ ॥
तस्य ब्रह्मस्वरूपस्य दिवारात्रस्य यद् भवेत्।
तत्परं नाम तस्यार्धं परार्धमभिधीयते ॥ ७३ ॥
जगत्स्वरूपी भगवान् परमात्माक्षयोऽव्ययः।
स्थूलात् स्थूलतमः सूक्ष्माद् यस्तु सूक्ष्मतमो मतः।
न तस्यास्ति दिवारात्रिव्यवहारो न वत्सरः ॥ ७४ ॥
किन्तु पौराणिकैः पूर्वैरस्माभिरपि तादृशैः।
सृष्टिप्रलयबोधार्थं कल्प्यते तदहर्निशम् ॥ ७५ ॥

स एव रात्रिः स दिवा स वर्षः
स वै क्षितिः सृष्टिकरो हरश्च।
स विष्णुरूपी पुरुषः पुराण-
स्तस्मिन् समस्तञ्च विभाति तद्वत् ॥ ७६ ॥

ततो ब्रह्मणि लीने तु परमात्मनि शाश्वते।
जगत् सर्वं क्रमेणैव तद्रूपत्वाय गच्छति[2] ॥ ७७ ॥
ब्रह्मणः शतवर्षान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः।
जगदन्तं स्वयं कृत्वा परमे लीनमेति वै ॥ ७८ ॥
प्रथमं सविता सर्वं स्थावरं जंगमं तथा।
तीव्रैः करैः शोषयित्वा जलं सर्वं ग्रहीष्यति ॥ ७९ ॥
शुष्का वृक्षास्तृणगणाः प्राणिनः पर्वतास्तथा।
चूर्णीकृत्वा विशीर्णाः स्युर्दिव्यवर्षशतेन तु ॥ ८० ॥
ततो द्वादशसूर्यस्य रश्मयः प्रबला भृशम्।
अभवन् द्वादशादित्या जगद्भोग्योपबृंहिताः ॥ ८१ ॥

---

2 कल्पते।

रश्मिद्वारेण[3] सकलास्सूर्यास्ते भुवनानि च ।
अदहन् पृथिवी द्यौश्च मेदिनी चोष्णतां गता ॥ ८२ ॥
ततो विनष्टे सकले स्थावरे जंगमे तथा ।
आदित्यरश्मितो देवो रुद्ररूपी जनार्दनः ॥ ८३ ॥
निःसृत्य प्रथमं यातः पातालतलमुन्नतः ॥ ८४ ॥
सप्तपातालसंस्थांस्तु नागगन्धर्वराक्षसान् ।
देवानृषींश्च शेषश्च जघान वरशूलधृक् ॥ ८५ ॥
एवं स्वर्गे च पाताले पृथिव्यां सागरेषु च ।
ये प्राणिनस्तान् समस्तान् जघान स जनार्दनः ॥ ८६ ॥
ततो मुखान्महावायुं रुद्रश्च सृष्टवान् स्वयम् ।
सोऽव्याहतगतिर्गाढं ससार भुवनत्रये ॥ ८७ ॥
यावद्वर्षशतं वायुर्भ्रमन् भुवनगर्भगः ।
सर्वमुत्सारयामास यत् किंचित्तुलाराशिवत् ॥ ८८ ॥
समस्तं तत् समुत्सार्य जगद्वर्ति समन्ततः ।
विवेश द्वादशादित्यान् स वायुर्जवनाधिकः[4] ॥ ८९ ॥
प्रविश्य मण्डलं तेषां तेजोभिः सह मारुतः ।
महामेघान् समारेभे रुद्रेण प्रतियोजितः ॥ ९० ॥

ततस्ते प्रेरिता मेघास्तेन वातेन वेगिना ।
रुद्रेणाप्यतिरौद्रेण पर्यावव्रुर्नभस्तलम् ॥ ९१ ॥
संवर्ताख्या महामेघा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
[5]केचिद्धूम्राःशोणवर्णाःशुक्लाश्चित्राश्च भीषणाः॥९२॥
केचिच्च पर्वताकाराः केचिन्नागसमप्रभाः ।
प्रासादसदृशाः केचित् क्रौञ्चवर्णाविभीषणाः ॥ ९३ ॥
गर्जन्तस्ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम् ।
ववृषुस्तीनथो लोकान् प्लावयन्तो महास्वनाः ॥ ९४ ॥

---

3 सकलं । 4 ज्वलनाधिकः । 5 केचिदभ्राः ।

अथ[6] स्तम्भप्रमाणेन धारापातेन वै दृढ़म् ।
धारासारेण महता पूरितं भुवनत्रयम् ॥ ९५ ॥
आध्र वस्थानमासाद्य तोयराशौ स्थिते ततः ।
स मुखादसृजद्वायुं रुद्ररूपी जनार्दनः ॥ ९६ ॥
तेनौघवायुनाक्षिप्ता मेघाः संवत्सराञ्छतम् ।
अव्याहतगतेनाशु विध्वस्ता अभवंस्ततः ॥ ९७ ॥
नष्टेषु तेषु मेघेषु जनलोकादिकं पुनः ।
रुद्रस्त्वाब्रह्मभुवनं ध्वंसयामास निर्दयः ॥ ९८ ॥
विध्वस्तेषु समस्तेषु भुवनेषु विशेषतः ।
विनष्टे ब्रह्मलोके च रुद्रोऽगाद्द्वादशारुणान् ॥ ९९ ॥
स गत्वा द्वादशादित्यान् वेगेन महता हरिः ।
अग्रसच्चातिजज्वाल[7] तैर्गर्भस्थैर्दिवाकरैः ॥ १०० ॥
ततो ब्रह्माण्डमासाद्य रुद्रः कालान्तकोपमः ।
चूर्णीचकार सकलं मुष्टिपेषं महाबलः ॥ १०१ ॥
चूर्णीकुर्वन्तु ब्रह्माण्डं पृथिव्यपि विचूर्णिता ।
तोयानि च समस्तानि स दध्रे योगतो हरिः ॥ १०२ ॥
यद् ब्रह्माण्डाद्बहिस्तोयं स्थितं पूर्वं समन्ततः ।
यद्वाभ्यन्तर्गतं तोयं तत् सर्वञ्चैकतां गतम् ॥ १०३ ॥
एकीभूतेषु तोयेषु सर्वव्यापिषु सर्वतः ।
ब्रह्माण्डखण्डपूर्णौघः[8] प्लवन्नासीत् स नौरिव[9] ॥ १०४ ॥
ततः पृथिव्याः सारन्तु गन्धं तन्मात्रकं क्रमात् ।
अम्भो जग्राह सकलं विनष्टा पृथिवी ततः ॥ १०५ ॥
पुनः स रुद्रस्तेजांसि गर्भस्थानि स्वकायतः ।
निःसारयामास पुनः पुंजीभूतानि भीषणः ॥ १०६ ॥
तानि तेजांसि सकलं जगृहुः सर्वतः स्थितम् ।
अन्तर्बहिश्च ब्रह्माण्डात्तेजो यच्चान्यतो गतम् ॥ १०७ ॥

---

6 रथचक्रप्रमाणेन । 7 ज्वलितगर्भस्थैस्तैर्दिवाकरैः । 8 चूर्णौघः । 9 पार्थिवः ।

जगद्गतं सर्वतेजो गृहीत्वा चैकतो ज्वलन् ।
रौद्रब्रह्माण्डखण्डानि तेजोऽथ न्यदहज्जले ॥ १०८ ॥
दग्ध्वा ब्रह्माण्डचूर्णानि तेजांस्युज्ज्वलितानि च ।
जलेभ्यो रसतन्मात्रं सारभूतं ततोऽग्रहीत् ।
गृहीतसारास्ता आपः प्रनष्टास्तेजसा ततः ॥ १०९ ॥
अप्सु नष्टासु तत्तेजः प्रविश्याथ सदागतिः ।
एकीभूतो महाभागो रूपं तन्मात्रमग्रहीत् ॥ ११० ॥
गृहीते रूपतन्मात्रे तेजांसि सकलान्यथ ।
विनष्टानि ततो वायुः प्रबलोऽभूदवारितः ॥ १११ ॥
महास्वनं ततो वायुमासाद्याग्निरिवज्वलन् ।
रुद्रः संक्षोभयामास तदाकाशं स्वयं ततः ॥ ११२ ॥
तेन संक्षुब्धमाकाशमग्रहीन्मरुतस्ततः ।
तद्गतं स्पर्शतन्मात्रं ततो नष्टः प्रभञ्जनः ॥ ११३ ॥
नष्टे वायौ ततो रुद्र आकाशात् रासमग्रहीत् ।
शब्दतन्मात्रकं तस्मिन् गृहीते विगतं वियत् ॥ ११४ ॥
नष्टे नभसि रुद्रोऽसौ काये ब्राह्मे तदाविशत् ।
ब्राह्मं तदाकुलं कायं निराधारं निरा[10]कुलम् ।
विवेश वैष्णवे काये शंखचक्रगदाधरे ॥ ११५ ॥
ततः शौरिर्महातेजाः कायं तत् पांचभौतिकम् ।
शंखचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् ।
स्वशक्त्या संजाहाराशु सारमादाय सर्वतः ॥ ११६ ॥
निराधारं निराकारं निःसत्तं निरवग्रहम् ।
आनन्दमयमद्वैतं द्वैतहीनाविशेषणम् ॥ ११७ ॥
न स्थूलं न च सूक्ष्मं यज्ज्ञानं नित्यं निरंजनम् ।
एकमासीत् परं ब्रह्म स्वप्रकाशं समन्ततः ॥ ११८ ॥

---

10 निरर्गलम् ।

नाहो न रात्रिर्न[11] वियन्न पृथ्वी
नासीत्तमो ज्योतिरभून्नचान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्याद्युपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥ ११९ ॥
एवं यावत्स्थिता सृष्टिस्तावत् कालमसृष्टिकम्।
आसीदेकं परं तत्त्वं ततः सृष्टिः प्रवर्तते ॥ १२० ॥
प्रकृतौ संस्थितो यस्मात् सर्वतन्मात्रसंचयः।
अहंकारं महत्तत्वं गतो यत् प्राकृतो लयः ॥ १२१ ॥
प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलयन्तु तत्।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः ॥ १२२ ॥
अयं वः कथितो विप्राः प्राकृताख्यो महालयः।
आदिसृष्टिं शृणुष्वेमां कथ्यमानां मया पुनः ॥ १२३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे संहारकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

कालो नाम स्वयं देवः सृष्टिस्थित्यन्तकारकः।
अविच्छिन्नः स प्रलय[12]स्तेन भागेन केनचित् ॥ १ ॥
लयभागे व्यतीते तु सिसृक्षा समजायत।
ज्ञानरूपस्य च तदा परमब्रह्मणो विभोः ॥ २ ॥
ततोऽस्य प्रकृतिस्तेन सम्यक्संक्षोभिता धिया[13]।
संक्षुब्धा सर्वकार्यार्थमभूत् सा त्रिगुणात्मिका ॥ ३ ॥

---

11 नभो न भूमिः। 12 अविच्छिन्नः स्वप्रलयः। 13 भिया।

यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते ।
मनसो लोककर्तृत्वात्तथासौ परमेश्वरः ॥ ४ ॥
स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च परमेश्वरः ।
स संकोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥ ५ ॥
इच्छामात्रेण पुरुषः सृष्ट्यर्थं परमेश्वरः ।
ततः संक्षोभयामास पुनरेव जगत्पतिः ॥ ६ ॥
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितात् ततः ।
गुणव्यंजनसंभूतिः सर्गकाले बभूव ह । ७ ॥
प्रधानतत्त्वादुद्भूतमीश्वरेच्छासमीरितात् ।
महत्तत्वं प्रथमतस्तत् प्रधानं समावृणोत् । ८ ॥
प्रधानेनावृतात्तस्मादहंकारो व्यजायत ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥ ६ ॥
त्रिविधोऽयमहंकारो यो जातो महतोऽग्रतः ।
भूतानामिन्द्रियाणाञ्च स वै हेतुः सनातनः ॥ १० ॥
स महांस्तमहंकारं जातमात्रं समावृणोत् ।
तन्मात्राणि ततः पंच जज्ञिरेऽस्मात् समावृतात् ॥ ११ ॥
प्रथमं शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रमन्तरम् ।
तृतीयं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रमेव च ॥ १२ ॥
पञ्चमं गन्धतन्मात्रमेतानि क्रमशोऽभवन् ।
प्रत्येकं सर्वतन्मात्रमहंकारः समावृणोत् ॥ १३ ॥
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः स समावृणोत् ॥ १४ ॥
शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्रतस्ततः ।
वायुः समभवत् स्पर्शगुणः शब्दसमन्वितः ॥ १५ ॥
आकाशवायुसंयु[14]क्ताद्रूपतन्मात्रतस्ततः ।
तेजः समभवद्दीप्तं सर्वतस्तदवर्धत ॥ १६ ॥

---

14 आकाशवायु संसक्तात् ।

तच्छब्दवत् स्पर्शवच्च रूपवच्च व्यजायत ।
ततो वियद्वायुतेजोयुक्तात्तोयं ससर्ज ह ।
रसतन्मात्रतः सम्यक् तेन व्याप्तं समन्तः ॥ १७ ॥
तोयान्याधारशक्तिर्या विष्णोरमिततेजसः ।
सा दध्रेऽथ निराधाराण्यनिलान्दोलितानि वै ॥ १८ ॥
तेषु वीजं प्रथमतः ससर्ज परमेश्वरः ।
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ १९ ॥
महदादिविशेषान्तैरारब्धं सर्वतो वृतम् ।
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्तमोभूतादिना बहिः ।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ॥ २० ॥
वीजं यथा वाह्यदलैर्व्याप्तमण्डं तथा पुनः ।
तोयादिभिस्तथा व्याप्त[15] ब्रह्माण्डमतुलं द्विजाः ॥ २१ ॥
तदण्डमध्ये स्वयमेव विष्णु-
र्ब्रह्मस्वरूपं विनिधाय कायम् ।
दिव्येन मानेन स वर्षमेकं
स्थितोऽग्रहीद्वीजगणं स्वबुद्ध्या ॥ २२ ॥
ध्यानेन चाण्डं स्वयमेव कृत्वा
द्विधा स तस्थौ क्षणमात्रमस्मिन् ।
तदैव तन्मात्रगणैः समस्तै-
र्गन्धोत्तरैर्भूरमुनैव सृष्टा ॥ २३ ॥
स्पर्शस्य शब्दस्य समस्तरूप-
गुणस्य गन्धस्य रसस्य[16] चैषा ।
आधारभूता सकलैः कृता य-
त्तन्मात्रवर्गैरखिला धरित्री ॥ २४ ॥
जातस्तदुत्थैः कनकाचलोऽसौ
जरायुभिः पर्वतसंचयोऽभूत् ।

15 ब्रह्माण्डमण्डलं । 16 यैषा ।

[17]गर्भादिकैः सप्तपयोधयस्तु
स्कन्धद्वयेन त्रिदशालयोऽभूत् ॥ २५ ॥
स्क धद्वयेनापरदेशजेन
सप्ताभवन्नागगृहाणि तानि ।
पातालसंज्ञानि महासुखानि
यत्र स्वयं स्यात् परतो महेशः ॥ २६ ॥
तेजोगणात्तस्य वभूव लोको
योऽसौ महर्लोक इति श्रुतोऽभूत् ।
जनाह्वयोऽभून्मरुतोऽथ गर्भाद्
ध्यानात्तपोलोकवरो वभूव ॥ २७ ॥
अण्डोर्धगत्यामभवत्तु सत्यं
ब्रह्माण्डखण्डोपरि विष्णुरच्युतः ।
परं पदं यन्निगदन्ति धीरा
यज्ज्ञानगम्यं परिनिष्ठरूपम् ॥ २८ ॥
एवं विधाय प्रथमं वभूव
विष्णुस्वरूपी स्थितये स एव ।
स्वयं समुद्भूततनुर्यतोऽयं
स्वभूरिति ख्यातिरवाप विष्णुः ॥ २९ ॥
ततोऽभवत्[18] यज्ञवराहरूपी
विष्णुर्भुवः प्रोद्धरणाय पीनः ।
निमज्जमानां पृथिवीं स मध्ये
भित्वा गतो धर्तुमधोतिऽवेगात् ॥ ३० ॥
दंष्ट्राग्रदेशे विनिधाय पृथ्वीं
[19]स उद्गतः सर्वमतीत्य तोयम् ।
ततोऽभवत् सप्तफणाण्वितोऽय-
मनन्तमूर्तिः पृथिवीं विधर्तुम् ॥ ३१ ॥

17 गर्भोदकैः । 18 यज्ञवराहमूर्तिः । 19 समुद्गतः ।

प्रसार्य शेषोऽपि फणाः स वैष
मध्ये निधायैकफणां धरित्रीम् ।
दधार तोयोपरि तोयसंस्थित-
स्ततोऽत्यजद् यज्ञवराह उर्व्वीम् ॥ ३२ ॥

प्रसारिताः फणाः[13] स र्वास्तासामेका तु पूर्वतः ।
अपरा पश्चिमायां तु दक्षिणोत्तरयोः परे ॥ ३३ ॥
एका गता फणैशान्यामाग्नेय्यामपरा दिशि ।
पृथ्वीमध्ये स्थिता चैका नैऋत्यां तस्य वै तनुः ।
शून्या दिग्वायवी तत्र ततो नम्रा स्थिता क्षितिः ॥ ३४ ॥
स तु दीर्घतनुस्तोये यदानन्तो न चाशकत् ।
कूर्मरूपी तदा भूत्वानन्तं कायमधाद्धरिः ॥ ३५ ॥
अधो ब्रह्माण्डखण्डं स पद्भिराक्रम्य कच्छपः ।
ग्रीवान्वितस्य वायव्यां पृष्ठेऽनन्तमधारयत् ॥ ३६ ॥
अनन्तः कूर्मपृष्ठे तु नवभिर्वेष्टनैस्तनुम् ।
निधाय पृथ्वीं दध्रे सुखेनैव महातनुः ॥ ३७ ॥
ततः फणास्वनन्तस्य चलन्ती पृथिवी स्थिता ।
वराहः कर्तुमचलामचलामकरोद् दृढाम् ॥ ३८ ॥
मेरुं खुरप्रहारेण प्रहृत्य पृथिवीतलम् ।
न्यखनत् स विवेशाथ पृथ्वीं भित्वान्तरं ततः ॥ ३९ ॥
योजनानां सहस्राणि षोडशैव रसातलम् ।
प्रविवेश महाशैलो वराहांघ्रिप्रहारतः ॥ ४० ॥
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनानां तु विस्तृतम् ।
मेरोः शिरोऽभवत्तेन प्रहारेण दिजोत्तमाः ॥ ४१ ॥
मर्यादा पर्वतनाथस्य पार्श्वे पोत्री तदाकरोत् ।
यदा चलति नैवैष पर्वतः वृथिवीधरः ॥ ४२ ॥

13. सप्त ।

हिमवत्प्रभृतीनांच भागं भागं सपंचकम्।
पदा क्षित्यन्तरं चक्रे तदुच्छ्रायप्रमाणतः ॥ ४३ ॥
ततो ब्रह्मा वराहाय नमस्कृत्य महौजसे।
अर्धनारीश्वरं कयाद् देवदेवं व्यजायत ॥ ४४ ॥
प्रथमं जातमात्रः स प्ररुरोद महास्वनः।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ॥ ४५ ॥
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच महेश्वरः।
रुद्रनामा रोदनात्त्वं मा रोदीस्त्वं महाशय ॥ ४६ ॥
एवमुक्तः पुनः सोऽथ सप्तवारान् रुरोद सः।
ततोऽपराणि नामानि सप्त ब्रह्माकरोत् पुनः ॥ ४७ ॥
शर्वं भवं च भीमञ्च महादेवं चतुर्थकम्।
पञ्चमं चोग्रमीशानं षष्ठं पशुपतिं परम् ॥ ४८ ॥
मया यथा विभक्तस्त्वं तथात्मा स्वो विभज्यताम्।
त्वयापि भूरिसृष्ट्यर्थं भवांश्चापि प्रजापतिः ॥ ४९ ॥
ततो ब्रह्मा द्विधा भूत्वा पुरुषोऽर्धेन सोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां तु विराजमसृजत् प्रभुः ॥ ५० ॥
[14]तमाह भगवान् ब्रह्मा कुरु सृष्टिं प्रजापते।
तपस्तप्त्वा विराट् सोऽपि मनुं स्वायम्भुवं ततः ॥ ५१ ॥
ससर्ज सोऽपि[15] तपसा ब्रह्माणं पर्यतोषयत्।
तोषितस्तेन मनसा दक्षं सृष्ट्यै ससर्ज सः ॥ ५२ ॥
सृष्टे दक्षेऽथ दशधा प्रणतो मनुना विधिः।
पुनरेव सुतानन्यान् ससर्ज दश मानसान् ॥ ५३ ॥
मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुं नारदमेव च ॥ ५४ ॥
एतानुत्पाद्य मनसा मनुं स्वायम्भुवं पुनः।
यूयं सृजध्वमित्युक्त्वा लोकेशोऽन्तर्दधे पुनः ॥ ५५ ॥

---

14 तदाह। 15 मनसा।

वराहोऽप्यथ पोत्रेण खनित्वा सप्तसागरान् ।
पृथिव्यां वलयाकारान् ससर्ज परमेश्वरः ॥ ५६ ॥
सप्तधा भ्रमणेनासौ सृष्ट्वा सप्ताथ सागरान् ।
सप्तद्वीपानवच्छिद्य पृथिव्यन्तं ततो गतः ॥ ५७ ॥
लोकालोकाह्वयं शैलं कृत्वा पृथ्व्यास्तु वेष्टनम् ।
लक्षद्वयोच्छ्रितं मानाद् योजनानां समन्ततः ।
सुदृढं स्थापयामास भित्तिप्रान्ते यथा गृहम् ॥ ५८ ॥
आदिसृष्टिरियं विप्राः कथिता भवतां[16] मया ।
प्रतिसर्गमहं वक्ष्ये तच्छृण्वन्तु महर्षयः ॥ ५९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे[17] वाराह सर्गो नाम पंचविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

वाराहोयं श्रुतः सर्गो वराहाधिष्ठितो यतः ।
प्रतिसर्गः श्रुतः सर्वैर्दक्षाद्यैर्यः कृतः पृथक् ॥ १ ॥
रुद्रो विराण्मनुर्दक्षो मरीच्याद्यास्तु मानसाः ।
यं यं सर्गं पृथक् चक्रुः प्रतिसर्गश्च स स्मृतः ॥ २ ॥
विराट् सुतोऽसृजद्वंश्यान्मनून् यैर्विततं जगत् ।
मनुः सप्त मनून् सृष्ट्वा चकार बहुशः प्रजाः ॥ २ ॥
प्रजाः सिसृक्षुः स मनुर्योऽसौ स्वायम्भुवाह्वयः ।
असृजत् प्रथमं षड् वै मनून् सोऽथ परान् सुतान् ॥ ४ ॥
स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वानपरस्तथा ॥ ५ ॥

---

16 यथा । 17 सृष्टिकथनं नाम ।

यक्षरक्षःपिशाचांश्च नागगन्धर्वकिन्नरान् ।
विद्याधरानप्सरसः सिद्धान् भूतगणान्[18] बहून् ।। ६ ।।
मेघान् सविद्युतो वृक्षान् लतागुल्मतृणादिकान् ।
मत्स्यान् पशूंश्च कीटांश्च जलजान् स्थलजांस्तथा[19] ।। ७ ।।
एतादृशानि सर्वाणि मनुः स्वायम्भुवः सुतैः ।
सहितः ससृजे सोऽन्यः[20] प्रतिसर्गः प्रकीर्तितः ।। ८ ।।
अन्ये षण्मनवो ये वै तेऽपि स्वे स्वेऽन्तरेऽन्तरे ।
प्रतिसर्गं स्वयं कृत्वा प्राप्नुवन्ति चराचरम्[21] ।। ९ ।।
यज्ञस्य सम्भूतं यज्ञं यूपं प्राग्वंशमेव च ।
धर्माधर्मौ गुणान् सर्वान् वराह इव सृष्टवान् ।। १० ।।
सुतान् बहून् समुत्पाद्य दक्षो देवर्षिसत्तमान् ।
महर्षीन् सोमपादींश्च बहून् पितृगणांस्तथा ।। ११ ।।
सृष्टिं प्रवर्त्तयामास प्रतिसर्गोऽस्य स स्मृतः ।
अजायन्त मुखाद्विप्राः क्षत्रिया बाहुयुग्मतः ।। १२ ।।
ऊर्वोर्वैश्याः पदोः[22] शूद्राश्चतुर्वेदाश्चतुर्मुखात् ।
ब्रह्मणः प्रतिसर्गोऽयं ब्राह्मः सर्गः स्मृतस्ततः ।। १३ ।।
मरीचेः कश्यपो जातः कश्यपात् सकलं जगत् ।
देवा दैत्या दानवाश्च तस्य सर्गः प्रकीर्तितः ।। १४ ।।
अत्रेर्नेत्रादभूच्चन्द्रश्चन्द्रवंशस्ततोऽभवत् ।
तेन व्याप्तं जगत् सर्वं सोऽस्य[23] सर्गः प्रकीर्तितः ।। १५ ।।
अथर्वांगिरसाः पुत्राः पौत्राश्च बहुशोऽपरे[24] ।
मन्त्रयन्त्रादयो ये वै ते सर्वेऽङ्गिरसः स्मृताः ।। १६ ।।
आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य पुत्राश्चान्ये च राक्षसाः ।
प्रतिसर्गः पुलस्त्यस्य बलवेगसमन्विताः ।। १७ ।।
काद्रवेया गजा अश्वाः प्रजा बहुतरास्तथा ।
ससृजे पुलहेनैष सर्गस्तस्य प्रकीर्तितः ।। १८ ।।

---

18 तथा । 19 तदा । 20 सोऽथ । 21 यथायथम् । 22 पदात् । 23 सौम्यः । 24 यथा ।

क्रतोः पुत्राः बालखिल्याः सर्वज्ञा भूरितेजसः ।
अष्टाशीति-सहस्राणि ज्वलद्भास्करसन्निभाः ॥ १६ ॥
प्रचेतसः सुताः सर्वे[25] ये वै प्राचेतसाः स्मृताः ।
षड़शीतिसहस्राणि पावकोपमतेजसः ॥ २० ॥
सुकालिनो वसिष्ठस्य पुत्राश्चान्ये च योगिनः ।
आरुन्धतेयाः पंचाशद्वासिष्ठः सर्ग उच्यते ॥ २१ ॥
भृगोश्च भार्गवा जाता ये वै दैत्यपुरोधसः ।
कवयस्ते महाप्राज्ञास्तैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥ २२ ॥
नारदात्तारका जाता विमानानि तथैव च ।
प्रश्नोत्तरास्तथैवान्ये नृत्यगीतं च कौतुकम् ॥ २३ ॥
एते दक्षमरीच्याद्याः कृतदारान् बहून् सुतान् ।
उत्पाद्योत्पाद्य पृथिवीं दिवं च समपूरयन् ॥ २४ ॥
तेषां सुतेभ्यश्च सुतास्तत्पुत्रेभ्यः परे सुताः ।
समुत्पन्नाः प्रवर्तन्ते ह्यद्यापि भुवनेषु वै ॥ २५ ॥
विष्णोस्तु चक्षुषोः सूर्यो मनसश्चन्द्रमाः स्मृतः ।
श्रोत्राद्वायुः समुद्भूतो मुखादग्निरजायत ॥ २६ ॥
प्रतिसर्गोह्ययं विष्णुस्तथा चापि दिशो दश ।
सृष्ट्यर्थं चन्द्रमाः पश्चादत्रिनेत्रादवातरत् ।
भास्करः कश्यपाज्जातो भार्यया च समन्वितः ॥ २७ ॥
रुद्राश्च बहवो जाता भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च प्लवगोमायूगोमुखाः ॥ २८ ॥
ऋक्षमार्जारवदनाः सिंहव्याघ्रमुखाः परे ।
नाना शस्त्रधराः सर्वे नानारूपाः महाबलाः ॥ २६ ॥
एष वः प्रतिसर्गोऽपि कथितो द्विजसत्तमाः ।
दैनन्दिनं च प्रलयं शृणुध्वं कल्पशेषतः ॥ ३० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

25 ते ।

सप्तविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तरं मनोः कालो यावत् पालयते प्रजाः ।
एको मनुः स कालस्तु मन्वन्तरमितिश्रुतम् ।। १ ।।
तदेकसप्ततियुगैर्देवानामिह जायते ।
तैश्चतुर्दशभिः कल्पो दिनमेकं तु वेधसः ।। २ ।।
दिनान्ते ब्रह्मणो जाते सुषुप्सा तस्य जायते ।
योगनिद्रा महामाया समायाति पितामहम् ।। ३ ।।
नाभिपद्मं प्रविश्याथ विष्णोरमिततेजसः ।
सुखं शेते स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।। ४ ।।
ततो विष्णुः स्वयं भूत्वा रुद्ररूपी जनार्दनः ।
पूर्ववन्नाशयामास स सर्वं भुवनत्रयम् ।। ५ ।।
वायुना वह्निना सार्धं दाहयामास वै यथा ।
महाप्रलयकालेषु तथा सर्वं जगत् त्रयम् ।। ६ ।।
जनं यान्ति प्रतापार्ता महर्लोकनिवासिनः ।
त्रैलोक्यदाहसमये पीडिता दारुणाग्निना ।। ७ ।।
ततः कालान्तकैर्मेघैर्नानावर्णैर्महास्वनैः ।
समुत्पाद्य महावृष्टिमापूर्य भुवनत्रयम् ।। ८ ।।
चलत्तरंगैस्तोयौघैराध्रुवस्थानसंगतैः ।
निधाय जठरे लोकानिमांस्त्रीन् स जनार्दनः ।
नागपर्यंकशयने शेते स परमेश्वरः ।। ९ ।।
शायानं नाभिकमले ब्रह्माणं स जगद्गुरुः ।
संस्थाप्य त्रीनिमाँल्लोकान् दग्ध्वा जग्ध्वा श्रिया सह ।।१०।।
शेते स भोगिशय्यायां ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
योगनिद्रावशं जातस्त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ।। ११ ।।

त्रैलोक्यमखिलं दग्धं यदा कालाग्निना तदा ।
अनन्तः पृथिवीं त्यक्त्वा विष्णोरन्तिकमागतः ॥ १२ ॥
तेन त्यक्ता तु पृथिवी क्षणमात्रादधोगता ।
पतिता कूर्मपृष्ठे च विशीर्णेव तदाभवत् ॥ १३ ॥
कूर्मोऽपि महतो यत्नाच्चलन्तीं पृथिवीं जले[26] ।
ब्रह्माण्डं पद्भिराक्रम्य पृष्ठे दध्रे धरां तदा ॥ १४ ॥
ब्रह्माण्डखण्डसंयोगाच्चूर्णिता पृथिवी भवेत् ।
इति तां परिजग्राह कूर्मरूपी जनार्दनः ॥ १५ ॥
चलज्जलौघसंसर्गाच्चलन्त्या धरया तदा ।
कूर्मपृष्ठं बहुतरैर्वरण्डैर्विततीकृतम् ॥ १६ ॥
अनन्तस्तत्र गत्वा तु यत्र क्षीरोदसागरः ।
तत्र स्वयं श्रिया युक्तं सुषुप्सन्तं जनार्दनम् ॥ १७ ॥
फणया मध्यया दध्रे त्रैलोक्यग्रासबृंहितम् ।
पूर्वं फणाः वितत्योर्ध्वं पद्मं कृत्वा महाबलः ।
विष्णुमाच्छादयामास शेषाख्यः परमेश्वरम् ॥ १८ ॥
तस्योपधानमकरोदनन्तो दक्षिणां फणाम् ।
उत्तरां पादयोश्चक्रे उपधानं महाबलः ॥ १९ ॥
तालवृन्तं तदा चक्रे सशेषः पश्चिमां फणाम् ।
स्वपन्तं वीजयामास शेषरूपी जनार्दनम् ॥ २० ॥
शंखं चक्रं नन्दकासिमिषुधी द्वे महाबलः ।
ऐशान्ययाथ फणया स दध्रे गरुडं तथा ॥ २१ ॥
गदां पद्मं च शार्ङ्गं च तथैव विविधायुधम् ।
यानि चान्यानि तस्यासनाग्नेय्या फणया दधौ ॥ २२ ॥
एवं कृत्वा स्वकं कायं शयनीयं तदा हरेः ।
पृथ्वीमधरकायेन मग्नामाक्रम्य चाम्भसि ॥ २३ ॥

---

26 तले तदा ।

त्रैलोक्यं ब्रह्मसहितं सलक्ष्मीकं जनार्दनम् ।
सोपासंगं जगद्बीजं जगत्कारणकारणम्[27] ।। २४ ।।
नित्यानन्दं वेदमयं ब्रह्मण्यं परमेश्वरम् ।
जगत्कारणकर्तारं जगत्कारणकारणम् ।। २५ ।।
भूतभव्यभवन्नाथं परावरगतिं हरिम् ।
दधार शिरसा तन्तु[28] स्वयमेव स्वकां तनुम् ।। २६ ।।
एवं ब्रह्मदिनस्यैव प्रमाणेन निशां हरिः ।
सन्ध्यां च समभिव्याप्य शेते नारायणोऽव्ययः ।। २७ ।।
यस्मादयन्तु प्रलयो ब्रह्मणः स्याद् दिने दिने ।
तस्माद् दैनन्दिनमिति ख्यापयन्ति पुराविदः ।। २८ ।।
व्यतीतायां निशायां तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
त्यक्त्वा निद्रां समुत्तस्थौ स पुनः सृष्टये हितः ।। २६ ।।
त्रैलोक्यं तोयसम्पूर्णं शयानं पुरुषोत्तमम् ।
निरीक्ष्य वैष्णवीं मायां महामायां जगन्मयीम् ।
योगनिद्रां स तुष्टाव हरेरंगेच[29] संस्थिताम् ।। ३० ।।

ब्रह्मोवाच

चितिशक्तिं निर्विकारां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
प्रणमामि महामायां योगनिद्रां सनातनीम् ।। ३१ ।।
त्वं विद्या योगिनां देवि त्वं गतिस्त्वं मतिः स्तुतिः ।
त्वं सृष्टिस्त्वं स्थितिः स्वाहा स्वधा त्वमिह गीतिका ।। ३२ ।।
त्वं सामगीतिस्त्वं नीतिस्त्वं ह्रीः श्रीस्त्वं सरस्वती ।
योगनिद्रा महामाया मोहनिद्रा त्वमीश्वरी ।। ३३ ।।
त्वं कान्तिः सर्वशक्तिस्त्वं त्वं तनुर्वैष्णवी शिवा ।
त्वं धात्री[30] सर्वलोकानामविद्या त्वं शरीरिणाम् ।। ३४ ।।
आधारशक्तिस्त्वं देवी त्वं हि ब्रह्माण्डधारिणी ।
त्वमेव सर्वजगतां प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।। ३५ ।।

---

28 दधार शिरसानम्रः । 29 हरेरंगेषु । 30 सर्वविद्यानां ।

स्त्वं सावित्री च गायत्री सौम्यासौम्यातिशोभना ।
[31]त्वं सिसृक्षा हरेर्नित्या सुषुप्सा त्वं सुषुप्तिका ॥ ३६ ॥
पुष्टिर्लज्जा क्षमा शान्तिस्त्वं धृतिः परमेश्वरी ।
त्वमेव क्षितिरूपेण ध्रियसे सचराचरम् ॥ ३७ ॥
त्वमापस्त्वमपां माता सर्वान्तर्गतचारिणी ।
स्तुतिः स्तुत्या च स्तोत्री च स्तुतिशक्तिस्त्वमेव च ॥ ३८ ॥
त्वामहं किन्तु स्तोष्यामि प्रसीद परमेश्वरि ।
नमस्तुभ्यं जगन्मातः प्रबोधय जनार्दनम् ॥ ३९ ॥
एवं स्तुता महामाया ब्रह्मणा लोककारिणा ।
नेत्रास्यनासिका-बाहु-हृदयान्निर्गता हरेः ।
राजसीं [32]मूर्तिमाश्रित्य सा तस्थौ ब्रह्मदर्शने ॥ ४० ॥
ततो जनार्दनो भोगिशयनान्निद्राया क्षणात् ।
परित्यक्तः समुत्तस्थौ सृष्टये चाकरोन्मतिम् ॥ ४१ ॥
ततो वराहरूपेण निमग्नां पृथिवीं जले ।
मग्नां समुद्धाराशु न्यधाच्च सलिलोपरि ॥ ४२ ॥
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम् । ४३ ॥
ततो हरिः क्षितिं गत्वा तोयराशिं स्वमायया ।
संहृत्य जन्तुस्थितये प्रवृत्तः स्वयमेव हि ॥ ४४ ॥
अनन्तोऽपि यथापूर्वं तथा गत्वा क्षितेस्तलम् ।
पृथिवीं धारयामास कूर्मस्योपरि संस्थितः ॥ ४५ ॥
ततो ब्रह्मा समुत्पाद्य सर्वानेव प्रजापतीन् ।
जगदुत्पादयामास सर्वलोकपितामहः ॥ ४६ ॥
ब्रह्मा वा कुरुते सृष्टिं यदान्ये वापि कुर्वते ।
दक्षाद्यास्तु प्रजापालाः स्वयमेव तदिच्छया ॥ ४७ ॥

---

31 त्वं हि सूक्ष्मा हरेर्नित्या सुषम्ना त्वं सुगुप्तिका । 32 राजसीं वृत्तिमास्थाय ।

परब्रह्मस्वरूपी यः सोऽनुगृह्णाति सन्ततम् ।
प्रकृतिश्चानुगृह्णाति महाभूतानि पञ्च वै ॥ ४८ ॥
पुरुषश्चानुगृह्णाति तथैव महदादयः ।
ईश्वरेच्छान्वधिष्ठानात् पुरुषादष्टसंचयात् ॥ ४६ ॥
पुरुषाणामधिष्ठानान्महाभूतगणस्य च ।
तथैव महदादीनां कालस्य च महात्मनः ।
अधिष्ठानात् प्रधानस्य यच्च किंचन जायते ॥ ५० ॥
स्थावरं जङ्गमं वापि स्थिरं वाप्यथवाद्भूतम्[33] ।
सर्वमेतदधिष्ठानाज्जायते द्विजसत्तमाः ॥ ५१ ॥
इति वः कथितं सर्वं यथैवादर्शयत् पुरा ।
हराय सृष्टिसंहार-कल्पास्तान् भगवान् हरिः ॥ ५२ ॥
यथा जगत् प्रपञ्चस्यासारता दर्शिता परा ।
यच्च सारं दर्शितं तन्मत्तः शृण्वन्तु वै द्विजाः ॥ ५३ ॥
इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

जगत् सर्वं तु निःसारमनित्यं दुःखभाजनम्[34] ।
उत्पद्यते क्षणादेतत् क्षणादेतद्विपद्यते ॥ १ ॥
तथैवोत्पद्यते सारान्निःसारं जगदञ्जसा ।
पुनस्तस्मिन् विलीयन्ते महाप्रलयसङ्गमे ॥ २ ॥
उत्पत्तिप्रलयाभ्यां तु जगन्निःसारतां हरिः ।
शम्भवे दर्शयामास भावेन जगतां पतिः ॥ ३ ॥

---

33 द्रुतम् । 34 कारणम् ।

एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं
परात्परं ज्ञानमयं विशेषम् ।
अद्वैतमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
सारं त्वेकं नास्ति सारं तदन्यत् ॥ ४ ॥
यस्मादेतज्जायते विश्वमग्र्यं
यस्माल्लीनं स्यात्तु पश्चात् स्थितश्च ।
आकाशवन्मेधजालस्य वृत्त्या
यद्विश्वं वै ध्रियते तत्त्वसारम् ॥ ५ ॥
अष्टांगयोगैर्यदवाप्तुमिच्छन्
योगी पुनात्यात्मरूपं [35] सदैव ।
निवर्तते प्राप्य यं नेह लोके
तद्वै सारं सारमन्यन्न चास्ति ॥ ६ ॥
सारो द्वितीयो धर्मस्तु यो नित्यप्राप्तये भवेत् ।
यो वै निवर्तको नाम तत्रासारः प्रवर्तकः ॥ ७ ॥
धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीको मृत्तिकां यथा ।
सहायार्थं परे लोके पूर्वपापविमुक्तये ॥ ८ ॥
एको धर्मः परं श्रेयः सर्वसंसारकर्मसु ।
इतरे तु त्रयो धर्माज्जायन्तेऽर्थादयोऽपरे ॥ ९ ॥
वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाथ कर्तनम् ।
न तु धर्मपरित्यागो लोके वेदे च गर्हितः ॥ १० ॥
धर्मेण ध्रियते लोको धर्मेण ध्रियते जगत् ।
धर्मेणैव सुराः सर्वे सुरत्वमगमन् पुरा ॥ ११ ॥
धर्मश्चतुस्पाद्भगवान् जगत् पालयतेऽनिशम् ।
स एव मूलं पुरुषो धर्म इत्यभिधीयते ॥ १२ ॥
सर्वं क्षरति लोकेऽस्मिन् धर्मो नैव च्युतो भवेत् ।
धर्माद् यो न विचलति स एवाक्षर उच्यते ॥ २३ ॥

---

35 युनक्त्यात्मरूपं ।

एतद्वः कथितं सारं निःसारं सकलं जगत् ।
यथा स्वयं ददर्शासौ शम्भुर्ज्ञानेन स्वेऽन्तरे ॥ १४ ॥
एतद्वै दर्शयामास स विष्णुर्जगतां पतिः ।
स्वयं जग्राह मनसा ध्यानेनात्मनि शंकरः ॥ १५ ॥
सारं तत्त्वं परमं निष्कलं य—
न्मूर्त्या हीनं मूर्तिमान् धर्म एषः ।
सारोऽन्योऽसौ सारहीनं तदन्यज्-
ज्ञात्वैवेत्थं याति नित्यं महाधीः ॥ १६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सारासारनिरूपणं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

ऋषयः ऊचुः

ये सृष्टाः शम्भुना पूर्वं भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
किमर्थं ते समुत्पन्नाः कथं[36]वानेकरूपता ॥ १ ॥
शरीरमर्द्धं वाराहमर्द्धं दन्तावलं तथा ।
सिंहव्याघ्रशरीराच्च केचिद्केचिद्गणाधिपाः ॥ २ ॥
कथं ते वा [37]गणाः क्रूराः किं भोगास्ते महौजसः ।
एतत् सर्वं [38]वयं श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे यथा शम्भुगणाभवन् ।†
यदर्थं ते समुत्पन्ना यस्मात्ते नैकरूपिणः ॥ ४ ॥
[39]एतद्वः परमं गुह्यमिदं धर्मार्थकामदम् ।
[40]एतद्द् हि परमं तेजः सततं परमं तपः ॥ ५ ॥

---

36 वाकेनरूपता । 37 सदा । 38 स्वयं । 39 एतत्तु । 40 एतद्वै ।
† ...गणा जाताः ।

इदं श्रुत्वा महाख्यानं परत्रेह न सीदति ।
यशस्यं [41]धर्म्यमायुष्यं तुष्टिपुष्टिप्रदं परम् ॥ ६ ॥
आदिसर्गेऽथ वाराहे सम्पूर्णे मुनिसत्तमाः ।
शंकरः प्राह सर्वेशं वाराहं जगतां पतिम् ॥ ७ ॥

ईश्वर उवाच

यदर्थं भवता रूपं वाराहं कल्पितं विभो ।
तत्ते पूर्णं कृतं पृथ्वी यथावत् स्थापिता त्वया ॥ ८ ॥
सागराणां च संस्थानं [42]नदीनां च तथा क्षितेः ।
सृष्टिर्ब्रह्मकृता चापि संजाता त्वत्प्रसादतः ॥ ९ ॥
त्वं हि सर्वमयो यज्ञमयस्तेजोमयस्तथा ।
गुरूणामथ सर्वेषां त्वं गुरुस्त्वं परात्परः ॥ १० ॥
त्वां वोढुं न क्षमा पृथ्वी विशीर्णेव जगत्पते ।
यन्त्रिता शैलसंघातैर्भवता स्थापितैः पुरा ॥ ११ ॥
तस्मात्त्वं त्यज वाराहं शरीरं जगतां पतेः ।
जगन्मयं जगद्रूपं जगत्कारणकारणम् ॥ १२ ॥
कस्त्वां चान्यः क्षमो वोढुं वाराहं ते वपुर्विभो ।
विशेषतस्त्वया पृथ्वी सकामा धार्षिता जले ।
स्त्रीधर्मिणी त्वत्तोजोभिः साधाद्गर्भं च दारुणम् ॥ २३ ॥
रजस्वला क्षमा गर्भं यमाधत्त जगत्पते ।
तस्माद्यस्तनयो भावी [43]सोऽप्यादास्यति दुर्यशः ॥ २४ ॥
एष [44]प्राप्यासुरं भावं देवगन्धर्वहिंसकः ।
भविष्यतीति लोकेशः प्राह मां दक्षसन्निधौ ॥ २५ ॥
मलिनीरतिसंजातं दुष्टन्तेऽनिष्टकारकम् ।
कामुकं त्यज लोकेश वाराहं [45]कायमीदृशम् ॥ २६ ॥

---

41 धन्यम् । 42 आदानं । 43 ......यास्यति, दुर्जयः ।
44 चास्यासुरो भावो । 45 कायमिरीतम् ।

त्वमेव शृष्टिस्थित्यन्तकारको लोकभावनः ।
काले प्राप्ते स्थितिं सृष्टिं संहारं च करिष्यसि ॥ १७ ॥
तस्माल्लोकहितार्थाय त्यक्त्वा कायं महाबल ।
काले प्राप्ते [46]पुनस्त्वन्यं कायं पोत्रं करिष्यसि ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शंकरस्य महात्मनः ।
वाराहमूर्तिर्भगवान् महादेवमुवाच ह ॥ १९ ॥

श्रीभगवानुवाच

करिष्येऽहं तव वचस्त्वं यथातथमहेश्वर।
इमं तु यज्ञवाराहं कायं त्यक्ष्ये न संशयः ॥ २० ॥
काले प्राप्ते पुनस्त्वन्यं कायं वाराहमद्भुतम् ।
करिष्येऽहं दुराधर्षं लोकानां भावनाय वै ॥ २१ ॥
इत्युक्त्वा स महाकायस्तत्रैवान्तरधीयत ।
जगत्गुरुर्जगत्स्रष्टा जगद्धाता जगत्पतिः ॥ २२ ॥
तस्मिन्नन्तर्हिते [47]देवे देवदेवो महेश्वरः ।
निजं स्थानं देवगणैः [48]स्वगणैश्च जगाम ह ॥ २३ ॥
वाराहोऽपि स्वयं गत्वा लोकालोकाह्वयं गिरिम् ।
वाराह्या सह रेमे स पृथिव्या चारुरूपया ॥ २४ ॥
स [49]तया रममाणस्तु सुचिरं पर्वतोत्तमे ।
नावाप तोषं लोकेशः पोत्री परमकामुकः ॥ २५ ॥
पृथिव्याः पोत्रीरूपाया रमयन्त्यास्ततः सुताः ।
त्रयो जाता द्विजश्रेष्ठास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ २६ ॥
सुवृत्तः कनको घोरः सर्व एव महाबलाः ॥ २७ ॥
शिशवस्ते मेरुपृष्ठे कांचने [50]वप्रसंस्तरे ।
रेमिरेऽन्योन्यसंसक्ता गह्वरेषु सरस्सुः च ॥ २८ ॥

---

46 पुनः पोत्रं कायं त्वन्यं । 47 देवमहादेवोऽपि जातवान् । 48 जगाम स महेश्वरः । 49 तदा । 50 वप्रसंभवे ।

स तैः पुत्रैः परिवृतो वाराहो भार्यया स्वया ।
रममाणस्तदा कायत्यागं [51]नैवागणद्विजाः ॥ २९ ॥
कदाचिच्चिशुभिस्तैस्तु संश्लिष्टः कर्दमान्तरे ।
चकार कर्दमक्रीडां भार्यया च महाबलः ॥ ३० ॥
सपंकलेपः शुशुभे वराहो मधुपिंगलः ।
सन्ध्याघनो यथातोयं क्षरंस्तोयं तथाविधः ॥ ३१ ॥
स पुत्रैः परमप्रीतो भार्यया च पृथिव्यया ।
विरुजं धरणीं रेमे [52]मध्यनिम्नाथ साभवत् ॥ ३२ ॥
अनन्तोऽपि समाक्रम्य कूर्मं स पृथिवीतले ।
[53]हरिं वहन् [54]भुग्नशिराः सातंकोऽभूत्प्रपीडया ॥३३॥
सुवृत्तेन स्वर्णवप्रं घोरेण कनकेन च ।
विदारितं पोत्रघातैः [55]स्वर्ण-भग्नात्कृतं समम् ॥ ३४ ॥
मेरुपृष्ठे यानि यानि सौवर्णानि द्विजोत्तमाः ।
रचितानि सुरैर्यत्नात्तानि भग्नानि तत्सुतैः ॥ ३५ ॥
मानसादीनि देवानां सरांसि शिशवोऽथ ते ।
आविलानि तदा चक्रुः पोत्रघातैः समन्ततः ॥ ३६ ॥
पृथिवीवनितारूपा रमयामास पोत्रिणम् ।
स्थावरेण तु रूपेण दुःखमाप्नोति वै दृढम् ॥ ३७ ॥
सागराश्च सुवृत्ताद्यैरवगाह्य समन्ततः ।
[56]विकीर्णरत्नः पोत्रौघैः सर्व एवाकुलीकृताः ॥ ३८ ॥
इतस्ततश्च शिशुभिः क्रीडद्भिः पोत्रिभिस्तदा ।
जगन्ति तत्र भग्नानि नद्यः कल्पद्रुमास्तथा ॥ ३९ ॥
जानन्नपि जगद्धर्ता वराहः स्वयमेव[57] हि ।
जगत्पीड़ां सुतस्नेहाद्धारयामास नैव तान् ॥ ४० ॥

---

51 ......धिया । 52 मध्यनिम्ना यथाभवत् । 53 भारं । 54 भग्न...... । 55 तन्तुरपहृतं समम् । 56 शीर्णवत्सा: पोत्राघातैः । 57 च ।

सुवृत्तः कनको घोरो यदागच्छति वै दिवम् ।
तदा देवगणा भीताः प्राद्रवन्ति दिशो दश ॥ ४१ ॥

एवं सुतैर्भार्यया यज्ञपोत्री
क्रीडंस्तुष्टिं नाप काञ्चित् कदाचित् ।
नित्यं नित्यं वर्धते तस्य कामः
कायं त्यक्तुं नैच्छदेष[58] प्रदिष्टः ॥ ४२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वाराहशंकर संवादे ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो देवगणाः सर्वे सहिता देवयोनिभिः ।
शक्रेण सहिता मन्त्रं चक्रुः सम्यग्जगद्धितम् ॥ १ ॥
ततो निश्चित्य ते सर्वे शक्राद्या मुनिभिः सह ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमजं विभुम् ॥ २ ॥
तं समासाद्य गोविन्दं वासुदेवं जगत्पतिम् ।
प्रणम्य सर्वे त्रिदशास्तुस्टुवुर्गरुडध्वजम् ॥ ३ ॥

देवा ऊचुः

नमस्ते देव देवेश जगत्कारण[59]कारक ।
[60]कालस्वरूपिन् भगवन् प्रधानपुरुषात्मक ॥ ४ ॥
स्थूल सूक्ष्म जगद्व्यापिन् परेश पुरुषोत्तम ।
त्वं कर्ता सर्व[61]भूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ॥ ५ ॥
त्वं हि मायास्वरूपेण सम्मोहयसि वै जगत् ।
यद्भूतं यच्च वै भाव्यं यदिदानीं प्रवर्तते ॥ ६ ॥

---

58 प्रतीष्टः । 59 कारण । 60 कालस्वरूपिभगवान् प्रधान-पुरुषात्मकः ।
61 जगतां ।

तत् सर्वं परमेश त्वं स्थावरं जंगमं तथा ।
अर्थार्थिनां त्वमर्थस्तु कामः कामार्थिनां तथा ॥ ७ ॥

त्वं हि धर्मार्थिनां धर्मोमोक्षो निर्वाणमिच्छताम् ।
त्वं कामुकस्त्व[62]मेवार्थो धार्मिकस्त्वं सदागतिः ॥ ८ ॥

त्वद्वक्त्राद् ब्राह्मणा जाता बाहुजाः क्षत्रियास्तव ।
ऊर्वो वैश्यास्तथा शूद्राः [63]पादाभ्यां तव निर्गताः ॥ ९ ॥

सूर्यो नेत्रात्तव विभो मनोजश्चन्द्रमास्तव ।
श्रवणात् पवनो जातो दश प्राणास्तथापरे ॥ १० ॥

ऊर्ध्वं [64]स्वर्गादिभुवनं तव शीर्षादजायत ।
तव नाभेस्तथाकाशं क्षितिः पादतलादभूत् ॥ ११ ॥

[65]कर्णाभ्यां ते दिशो जाता जठरात् सकलं जगत् ।
त्वं हि मायास्वरूपेण सम्मोहयसि वै जगत् ॥ १२ ॥

निर्गुणो गुणवांस्त्वं हि शुद्ध एकः परात्परः ।
उत्पत्तिस्थितिहीनस्त्वं त्वमच्युतगुणाधिकः ॥ १३ ॥

आदित्यैर्वसुभिर्देवैः साध्यैर्यक्षैर्मरुद्गणैः ।
त्वं चिन्त्यसे जगन्नाथ मुनिभिश्चमुमुक्षुभिः ॥ १४ ॥

त्वां वै चिदानन्दमयं विदन्ति
विशेषविज्ञा मुनयो विभोगाः ।
त्वमेव संसार महीरुहस्य
वीजं [66]जलं स्थानमथो फलं च ॥ १५ ॥

त्वं पद्मया पद्माकरो विभासि
वरासिचक्राब्जधनुर्धरस्त्वम् ।
त्वमेव तार्क्ष्ये प्रतिभासि नित्यं
स्वर्णाचले तोययुतो [67]यथाऽब्दः ॥ १६ ॥

---

62 अर्थो । 63 पद्भ्यां । 64 कर्णाग्रात् । 65 भवनं । 66 दलं । 67 यत्राभ्रः ।

त्वमेव पीताम्बरशंकराब्जजा-
स्त्वं सर्वमेतन्न च किंचिदन्यत्।
न ते गुणा[68] नः परिचिन्तनीया
विधेर्हरस्यापि दिशां पतीनाम्।
भीतेन भक्त्या शरणं प्रपन्ना
गता वयं नः परिरक्ष विष्णो ॥ १७॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो देवदेवो भूतभावनभावनः।
सेन्द्रैर्देवगणैरूचे तान् सर्वान्मेघनिस्वनः। १८॥

श्रीभगवानुवाच

यदर्थमागता यूयं यद्वा भयमुपस्थितम्।
[69]तत्र यद्वा मया कार्यं तद् देवास्तूर्णमुच्यताम्॥ १६॥

देवा ऊचुः

शीर्यते वसुधा नित्यं क्रीडया यज्ञपोत्रिणः॥
लोकाश्च सर्वे संक्षुब्धा नाप्नुवन्त्युपशान्त्वनम्॥ २०॥
शुष्कं तुम्बीफलं घातैर्यथा जर्जरतां गतम्।
वराहक्षुरघातेन तथा जर्जरिता क्षितिः॥ २१॥
तस्य ये वा त्रयः पुत्राः कालाग्निसमतेजसः।
सुवृत्तः कनको घोरस्तैश्चाप्याधातितं जगत्॥ २२॥
तेषां कर्दमलीलाभिः सरांसि जगतां पते।
मानसादीनि भग्नानि प्रकृतिं यान्ति नाधुना॥ २३॥
भग्नास्तैर्देवतरवो मन्दाराद्या महाबलैः।
देव नाद्यापि रोहन्ति [70]फलं पुष्पं दलं च वा॥ २४॥
यदा त्रिकूटमारुह्य ते [71]सुवृत्तादयस्त्रयः।

---

68 नोपविचिन्तनीया। 69 यत्र। 70 पत्रं पुष्पं फलं च वा।
71 ···दयाः पराः।

प्लुतं कृत्वा महाबाहो पतन्ति लवणार्णवे ।
तदा तत्क्षुब्धतोयौघैः प्लाव्यते सकला मही ॥ २५ ॥
उत्प्लवन्ति जनाः सर्वे प्रयान्ति च दिशो दश ।
जीवितं रक्षमाणास्ते प्रयान्ति च दिशो दश ॥ २६ ॥
यदा त्रिविष्टपं यान्ति यज्ञवाराह-पुत्रकाः ।
इतस्ततस्तदा भग्ना देवाः शान्ति न लेभिरे ॥ २७ ॥
सर्वे तैः पर्वताः पुत्रैर्वराहस्य जगत्पते ।
क्रीडद्भिः शिखरे नीता भूरिभागमधोगतिम् ॥ २८ ॥
एवं विक्रीडतां तेषां क्रीडाभिः सकलं जगत् ।
नाशमायाति वैकुण्ठ तस्माद्रक्ष जगत्प्रभो ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषां निगदतां श्रुत्वा वाक्यं जनार्दनः ।
उवाच शंकरं देवं ब्रह्माणं च विशेषतः ॥ ३० ॥
यत्कृते देवताः सर्वाः प्रजाश्च सकला इमाः ।
प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं शीर्यते सकलं जगत् ॥ ३१ ॥
वाराहं तदहं कायं त्यक्तुमिच्छामि शंकर ।
निर्वेशशक्तं तं त्यक्तुं स्वेच्छया न हि शक्यते ।
त्वं त्याजयस्व तं कायं यत्नाद्धा शंकराधुना ॥ ३२ ॥
त्वमाप्यायस्व तेजोभिर्ब्रह्मन् स्मरहरं मुहुः ।
[72]आप्यायन्तु तथा देवाः शंकरो हन्तु पोत्रिणम् ॥ ३३ ॥
रजस्वलायाः संसर्गाद्विप्राणां मारणात्तथा ।
कायः पापकरो भूतस्तं त्यक्तुं युज्यतेऽधुना ॥ ३४ ॥
प्रायश्चित्तैरपैत्येनः प्रायश्चित्तमहं ततः ।
चरिष्यामि तदर्थं मे तनुर्यत्नेन शाम्यताम् ॥ ३५ ॥

---

72 यात्मान् मां । 73 आप्यायाय ।

प्रजा पाल्या मम सदा सा हि सीदति नित्यशः ।
मत्कृते प्रत्यहं तस्मात् त्यक्ष्ये कायं प्रजाकृते ।। ३६ ।।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तौ वासुदेवेन तदा तौ ब्रह्मशंकरौ ।
त्वया यथोक्तं तत्कार्यमिति गोविन्दमूचतुः ।। ३७ ।।
वासुदेवोऽपि तान् सर्वान् विसृज्य[74] त्रिदशांस्तथा ।
वाराहं तेज आहर्तुं स्वयं ध्यानपरोऽभवत् ।। ३८ ।।
शनैः शनैर्यदा तेज आहरत्येष माधवः ।
तदा देहं तु वाराहं सत्त्व[75]हीनमजायत ।। ३९ ।।
तेजोहीनं यदा देहं ज्ञातं सर्वै[76]स्तदामरैः ।
आससाद तदा देवो यज्ञवाराहमद्भुतम् ।। ४० ।।
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे महादेवमुमापतिम् ।
अनुजग्मुस्तदा तेज आधातुं स्मरशासने ।। ४१ ।।
ततः सर्वैर्देवगणैः स्वं स्वं तेजो वृषध्वजे ।
आदधे तेन बलवान् सोऽतीव समजायत ।। ४२ ।।
ततः शरभरूपी स तत्क्षणात् गिरिशोऽभवत् ।
ऊर्धाधोभागतश्चाष्टपादयुक्तः सु[77]भैरवः ।। ४३ ।।
द्विलक्षयोजनोच्छ्रायः सार्धलक्षैकविस्तृतः ।
ऊर्ध्वं वाराहकायस्तु लक्षयोजन विस्तृतः ।। ४४ ।।
लक्षार्धविस्तृतः पार्श्वे वर्धमानस्तदाभवत् ।
ततः शरभरूपं तं महादेवमुमापतिम् ।। ४५ ।।
ददर्श यज्ञपोत्री स स्पृशन्तं शिरसा विधुम् ।
सुदीर्घनासानखरं कृष्णांगारसमप्रभम् ।। ४६ ।।
दीर्घवक्त्रं महाकायमष्टदंष्ट्रासमन्वितम् ।
बिभ्रतं स-सटं पुच्छं दीर्घकर्णं भयानकम् ।। ४७ ।।

---

74 त्रिदिवंस्तथा, त्रिदशांस्तदा । 75 शक्तिहीनम् । 76 सर्वंस्तदामरैः ।
77 स भैरवः ।

चतुरः पृष्ठतः पादानधरे चतुरस्तथा ।
कुर्वन्तं घोरमारावमुत्पतन्तं पुनःपुनः ॥ ४८ ॥
तमायान्तं ततो दृष्ट्वा क्रोधाद्धावन्तमञ्जसा ।
सुवृत्तः कनको घोर आसेदुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ४९ ॥
तमासाद्य महाकायं शरभं भ्रातरस्त्रयः ।
उच्चिक्षिपुस्ते[78] युगपत् पोत्रघातैर्महाबलाः ॥ ५० ॥
यावत् प्रमाणः शरभस्तत्प्रमाणास्तदाभवन् ।
शरभोत्क्षेपसमये मायया पोत्रिणस्त्रयः ॥ ५१ ॥
तेषां पोत्रप्रहारेण प्रोत्क्षिप्तः शरभस्तदा ।
पपात पृथिवीप्रान्ते गम्भीरे तोयसागरे ॥ ५२ ॥
तस्मिन् निपतिते तत्र सागरे मकरालये ।
उत्पत्य ते त्रयः पेतुः क्रोधात्तस्मिन् महोदधौ ॥ ५३ ॥
सुवृत्ते कनके घोरे पतिते सागराम्भसि ।
वराहोऽपि सुतस्नेहात् क्रोधाच्च द्विजसत्तमाः ।
उत्पत्य सहसा तस्मिंस्तोयराशौ पपात ह ॥ ५४ ॥
उत्पतन्तस्तदा ते वै वाराहाः शरभस्तथा[79] ।
वभञ्जुर्दिवि देवांस्तु नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥ ५५ ॥
केचित्तु निहता देवा भूमौ पेतुश्च केचन ।
केचिच्च ज्ञानिनो देवा महर्लोकमुपाश्रिताः ॥ ५६ ॥
नक्षत्राणि विमानात्तु पतितानि महीतले ।
अदृश्यन्त द्विजश्रेष्ठा ज्वालामालाकुलाणि वै ॥ ५७ ॥
तेषामुत्पतने वेगो योऽभूत् परमदारुणः ।
तेनातिवेगो जनितो वायुः परमदारुणः ॥ ५८ ॥
वायुना तेन नुन्नास्तु पर्वताः पृथिवीतले ।
केचिच्छैलाः पर्वतेषु पतिताः पुनरेव[80] ते ॥ ५९ ॥

---

78 उच्चिक्षिपुर्वै । 79 शरभस्तदा । 80 हि ।

[81]विमृद्य वृक्षान् जन्तूंश्च निपेतुश्च पुनःपुनः ।
केचित्तु पर्वताघातैर्नृत्यमाना [82]महीतले ॥ ६० ॥
बभञ्जुरचलाश्चापि व्रजन्तो बहुशः प्रजाः ।
पर्वता समदृश्यन्त वातवेगेन भूतले ॥ ६१ ॥
संघट्टमानास्तेभ्योऽन्ये[83] व्रजन्त इव तेऽचलाः ।
अम्भोनिधौ पतद्भिस्तैर्वाराहैः शरभेण च ॥ ६२ ॥
पर्वतैश्च महातुंगैरुत्क्षिप्तास्तोयराशयः ।
तेषां प्रपातवेगेन क्षिप्तेषु जलराशिषु ॥ ६३ ॥
निस्तोया इव संजाताः [84]क्षणं वै सर्वसागराः ।
तैः सर्वैरुदकैः क्षिप्तैः पृथिवीतलमागतैः ॥ ६४ ॥
उत्प्लाविताः प्रजाः सर्वाः क्षणाज्जग्मुः क्षयं ततः ।
प्लवमानाः प्रजास्तोये म्रियमाणाः समन्ततः ॥ ६५ ॥
हा पितस्त्वथ हा तात[85] हा मातर्हा सुतेति च ।
विलपन्ति स्म करुणं भीताश्चार्तामुमूर्षवः ॥ ६६ ॥
यस्मिन् देशे निपतितो वराहैः शरभः सह ।
तत्रवाधोगता भूमिः पादवेगेन दारिता ॥ ६७ ॥
अपरः पृथिवीप्रान्त उत्थितः पर्वतैः सह ।
ससर्ज जनलोकेषु चलां तेषां प्रभञ्जनैः[86] ॥ ६८ ॥
जनलोकेषु[87] संयुक्तां पृथिवीं शरभस्तदा ।
निःश्रेणीमिव[88] सम्बद्धामचलामपि पोत्रिभिः ।
ददर्श विस्मयाविष्टः स भीतः श्रान्तपीडितः ॥ ६९ ॥
ततस्ते युयुधुः सर्वे पोत्राघातेन पोत्रिणः ।
खुरप्रहारैर्दंष्ट्राभिर्गात्रक्षेपैश्च दारुणैः ॥ ७० ॥

---

81 निपेतुश्च प्रपेतुश्च पेतर्भेजुस्तथापरे ।
सागरे पतिताः केचित् गिरयो द्विजसत्तमाः ॥

82 क्षितितले । 83 स्येऽन्येऽन्ये । 84 तदा । 85 भ्रातः ।
86 पराक्रमैः । 87 जलालोकेषु । 88 निष्प्राणामिवव ।

शरभोऽप्यथ [89] दंष्ट्राग्रैर्नखैस्तीक्ष्णैः खुरैस्तथा ।
लांगुलस्य प्रहारैस्तु तुण्डघातैर्महास्वनैः ॥ ७१ ॥
चतुर्भिः पोत्रिभिस्तैस्तु स एकः शरभो महान् ।
एकान्तं योधयामास सहस्रं परिवत्सरान् ॥ ७२ ॥
तेषां प्रहारैर्वेगैश्च भ्रमणैश्च [90] गतागतैः ।
[91] आस्फोटितैस्तथारावैर्देहपातैः पृथक् पृथक् ।
पाताले पन्नगाः सर्वे विनेशुः कद्रुजैः सह ॥ ७३ ॥
ततस्ते सागरं त्यक्त्वा पृथिवीमध्यमागताः ।
परस्परं युध्यमाना ततोऽभूत् पृथिवी समा ॥ ७४ ॥
शेषोऽपि महता यत्नाद्बलेनाष्टभ्यकच्छपम् ।
दधार पृथिवीं दुःखैर्भग्नशीर्षः प्रतापिताः ॥ ७५ ॥
अनन्ते वामनीभूते समत्वं पृथिवीतले ।
गतेऽम्भोभिश्चलद्भिश्च पर्वतैः सर्वजन्तुषु ॥ ७६ ॥
नष्टेषु युध्यमानेषु त्रिपोत्रिशरभेषु च ।
सागरैराप्लुते सर्वजगत्यापोमये हरिम् ॥ ७७ ॥
चिन्ताविष्टः सुरज्येष्ठः उवाचाथ पितामहः ।
भगवन् भुवनं सर्वं ससुरासुरमानुषम् ॥ ७८ ॥
विध्वस्तं पृथिवी शीर्णा नष्टाः स्थावरजंगमाः ।
देवदानवगन्धर्वा दैत्याश्चापि सरीसृपाः ।
विध्वस्ता जगतां नाथ मुनयश्च तपोधनाः ॥ ७९ ॥
त्वं पालकोऽसि सर्वेषां त्वमेव जगतः प्रभुः ।
तस्मात् पालय नः सर्वान् पृथिवीं च जगत्पते ॥ ८० ॥
त्वमेव कायं वाराहं स्वयमेवोपसंहर ।
संस्थापय महाबाहो पृथिवीं च चराचरैः ॥ ८१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणोऽथ जनार्दनः ।
यत्नं चक्रे तदा सर्वं संस्थापयितुमच्युतः ॥ ८२ ॥

89 शरभस्तदा । 90 दन्ताघातैः । 91 आस्फालनैः ।

ततो हरी रोहितमत्स्यरूपी
भूत्वा मुनीन् सप्त तदा सवेदान् ।
अधाच्छ्रुते रक्षणतत्परो जगद्-
हिताय सर्वश्रुतिकोविदांवरान् ॥ ८३ ॥

वसिष्ठमत्रिं त्वथ कश्यपं च
विश्वादिमित्रं च सगौतमं मुनिम् ।
महातपस्थं जमदग्निमुख्यं[92]
तथा भरद्वाजमुनिं तपोनिधिम् ॥ ८४ ॥

निधाय पृष्ठे स हि तोयमध्ये
स्थितो महानौप्रवरे मुनीन्द्रान् ।
ततः शिवं सान्त्वयितुं जनार्दनो
जगाम यस्मिन् युयुधे स पोत्रिभिः ॥ ८५ ॥

श्रान्तं वराहैरतिपौत्रघट्टनै-
र्निपिडीतं व्यात्तमुखं श्वशन्तम् ।
अथागतं वीक्ष्य हरिं वराहः
सस्मार पूर्वां नरसिंहमूर्तिम् ॥ ८६ ॥

स्मृतस्तदा तेन समाजगाम
सखा वराहस्य हिते नृसिंहः ।
तमागतं वीक्ष्य तदा नृसिंहं
तदीयकायान् निजतेज आदात् ॥ ८७ ॥

दृष्टं वराहैः शरभेण तेजो
यत् सूर्यतुल्यं प्रविवेश विष्णौ ।
विज्ञाय तेजोरहितं नृसिंहं
ससर्ज निश्वासचयं वराहः ॥ ८८ ॥

ततस्तु जाता वहवो वराहा
बहु प्रमाणाद्भुततीक्ष्णदंष्ट्राः ।

---

92 ...मुग्रम् ।

ते वै वराहाः शरभं[93] गिरिशं
मायाविनो वीतभयास्तुदन्तः ॥ ८९ ॥
समं नसिंहेन तदापि युद्धं[94]
चक्रुर्मर्मदुश्च भृशं गिरीशम्।
क्षणं महापक्षिसमानरूपाः
क्षणं तु गावस्तुरगा नराश्च ॥ ९० ॥
क्षणं नृसिंहाश्च वराहरूपा
गोमायवो वैकृतिकाः क्षणं ते ।
अनेकरूपाणि भयंकराणि
वितन्यमानाति रणे वराहैः ॥ ९१ ॥
निरीक्ष्य भर्गं च निपीडितं तै-
रथासदन्माधवस्तं गिरीशम् ।
पस्पर्श विष्णुर्गिरिशं करेण
तेजो न्यधात्तत्र निजं पुनः स ॥ ९२ ॥

अथ सस्पृष्टमात्रः स विष्णुना प्रभविष्णुना ।
अतीव मुदितो हृष्टो बलवान् समजायत ॥ ९३ ॥
अथोच्चैः शरभो नादं ननाद बलवद्दृढम् ।
आपूरितानि येनैतद्भुवनानि चतुर्दश ॥ ९४ ॥
नदतस्तस्य वदनाच्छीकरा ये विनिःसृताः ।
ततो गणाः समभवन् महाकाया महौजसः ॥ ९५ ॥
यथा वराहनिश्वासान्नानारूपधरा गणाः ।
वराहास्तादृशा एते ततोऽप्यतिबलाः पुनः ॥ ९६ ॥
श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च प्लवगोमायुगोमुखाः ।
ऋक्षमार्जारमातंगशिशुमारस्वरूपिणः ॥ ९७ ॥
सिंहव्याघ्रमुखाः केचित् केचित् सर्पाखुमूर्तयः ।
हयग्रीवा हयमुखा महिषाकृतयः परे ॥ ९८ ॥

93 सततं। 94 तदातियुक्तं।

अन्ये तु मनुजाकारा मृगमेषमुखाः पुनः[95] ।
कबन्धा हीनपादाश्च विहस्ता बहुपाणयः ॥ ९९ ॥
केचित्तु शरभाकाराः कृकलासमुखाः परे ।
मत्स्यवक्त्रा ग्राहवक्त्रा ह्रस्वा दीर्घाबलाः कृशाः ॥ १०० ॥
चतुःपादाष्टपादाश्च त्रिपादा द्विपदाः [96]परे ।
एकपादा भूरिहस्ता यक्षकिंपुरुषोपमाः ॥ १०१ ॥
पश्वाकाराः पक्षयुक्ताः लम्बोदरमहोदराः ।
दीर्घोदराः स्थूलकेशा बहुकर्णा विकर्णकाः ॥ १०२ ॥
स्थूलाधरा दीर्घदन्ता दीर्घश्मश्रुधराः परे ।
ये सन्ति प्राणिनो विप्रा भुवनेषु समन्ततः ॥ १०३ ॥
चतुर्दशसु [97]ते तेषां रूपेण समतां [98]गताः ।
नेहास्ति भुवने जन्तुः स्थावरो वा जगत् पुनः ॥ १०४ ॥
यत्तुल्यरूपेण गणो न जातः शंकरस्य च ।
ते भिन्दिपालैः खड्गैश्च परिघैस्तोमरैस्तथा ॥ १०५ ॥
शंकुलासिगदाभिश्च पाशैः शंकुभिरेव च ।
खट्वांगैश्च त्रिशूलैश्च कपालैः शक्तिभिस्तथा ॥ १०६ ॥
दात्रैः सृणिभिरीषाग्रैर्यष्टिभिश्चत्रिकण्टकैः ।
प्रासैः परशुभिर्बाणैः कोदण्डैरतिभीषणाः[99] ॥ १०७ ॥
जटाचन्द्रकलायुक्ताः सर्व एव महाबलाः ।
केचिद्भर्गस्य रूपेण वाहनेनाथ भूषणैः ॥ १०८ ॥
तुल्या जटार्धशुभ्रांशुशुभ्रशीर्षा महाबलाः ।
अर्धनारीश्वराः केचिद् यथारुद्रस्तथैव ते ॥ १०९ ॥
केचित्तु चारुरूपेण मोहनेन[100] मनोभुवः ।
तुल्येन वनितासंघैः समं जाता रतोत्सुकाः ॥ ११० ॥

---

95 मृगमेषमुखा परे । 96 तथा । 97 तत् । 98 गतं
99 भीषणैः । 100 शोभनेन ।

आकाशचारिणः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
नीलोत्पलदलश्यामाः शुक्लाः केचन लोहिताः ॥ १११ ॥
रक्ताः पीतास्तथा चित्रा हरिताः कपिलाः परे ।
अर्धपीता ह्यर्धरक्ता नीलार्धा धवलाः परे ॥ ११२ ॥
सकृष्णपीताः[1] शुक्लेन कृष्णेनार्धेन रञ्जिताः ।
एकवर्णा द्विवर्णाश्च त्रिवर्णाश्च तथापरे ॥ ११३ ॥
चतुःषट्पंचवर्णाश्च केचिद् दशगुणाः[2] द्विजाः ।
डिण्डिमान् पटहान् शंखान् भेर्यानकसकाहलान् ॥ ११४ ॥
मण्डूकान् झर्झरांश्चैव झर्झरीश्च समर्दलाः ।
वीणास्तन्त्रीः पंचतन्त्रीः शकटान् दर्दरांस्तथा ॥ ११५ ॥
गोमुखानानकान् कुण्डान् सतालकरतालिकान् ।
वादयन्तो गणाः सर्वे हसन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥ ११६ ॥
वराहाभिमुखा भूत्वा तस्थुस्ते हृष्टमानसाः ।
तान् सर्वानाह शरभो भगवान् वृषभध्वजः ॥ ११७ ॥
निघ्नतैतान् वराहस्य गणान् वै क्रूरकर्मभिः ।
क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धैः क्रूरा भूत्वा महाबलाः ॥ ११८ ॥
ततस्ते वै गणाः सर्वे नानाकार-वरायुधाः ।
सार्धं वराहस्य गणैर्युयुधुः क्रूरदर्शनाः ॥ ११९ ॥
आकाशचारिणः सर्वे जलपूर्णं जगत्त्रयम् ।
ते परित्यज्य युयुधुर्वियत्येवोभये गणाः ॥ १२० ॥
ततः क्षणाद् वराहस्य गणान् सर्वान् महाबलान् ।
हरस्य प्रमथा जघ्नुर्महावाता इवाम्बुदान् ॥ १२१ ॥
हतेषु तेषु वीरेषु[3] वाराहेषु गणेष्वथ ।
दध्यौ वराहः किमिति प्राक् पश्चाद्वृत्तमास्थितम् ॥ १२२ ॥
अथ चिन्तयतस्तस्य स्वान्तं गत्वा जनार्दनः ।
तत् सर्वं ज्ञापयामास वराहवपुषो हितम् ॥ १२३ ॥

---

1 सचित्रकृष्णः । 2 बहुगणा । 3 जन्तष ।

ततो देह-परित्यागं कर्तुं समयतस्तदा ।
ततो दंष्ट्राग्रघातेन नरसिंहं महाबलः ॥ १२४ ।
शरभो भगवान् भर्गो द्विधा मध्ये चकार ह ।
नरसिंहे द्विधाभूते नरभागेण तस्य च ॥ १२५ ॥
नर एव समुत्पन्नो दिव्यरूपी महानृषिः ।
तस्य पश्चास्यभागेन नारायण इतिश्रुतः ॥ १२६ ।
अभवत् सुमहातेजा मुनिरूपी जनार्दनः ।
नरो नारायणश्चोभौ सृष्टिहेतू महामती ॥ १२७ ॥
द्वयोः प्रभावो दुर्धर्षः शास्त्रे वेदे तपःसु च ।
तौ नावि विनिधायाथ मत्स्यमूर्त्यवितात्मनि ॥ १२८ ॥
आससाद पुनर्देवो वाराहः शरभं हरिः ।
वपुस्त्यागो मयावश्यं कर्तव्यो जगतां हिते[4] ॥ १२९ ॥
इति पूर्वं प्रतिज्ञातं तदर्थोऽयं समुद्यमः ।
क्रियते हरिणा सार्धं शम्भुना ब्रह्मणापि च ॥ १३० ॥
इति संचिन्त्य स तदा शूकरः परमेश्वरः ।
जगाद शरभं देवं महादेवं महाबलं ॥ १३१ ॥
जहि मां त्वं महादेव त्यक्ष्ये कायमसंशयम् ।
हिताय सर्वजगतां देवानामपि ऋत्विजाम् ॥ १३२ ॥
मम देहप्रतीकौधैर्यज्ञं यूपं प्रकल्प्य च[5] ।
पृथक् पृथक् महाभागा सशामित्रं श्रुवादिकम् ॥ १३३ ॥
ततस्ते तान् त्रिभिः पुत्रैर्विधध्वं जगतां हिते ।
कनकेन सुवृत्तेन घोरेण च जगन्मयीम् ॥ १३४ ॥
यज्ञाद् देवाः प्रजाश्चैव यज्ञादन्नान् नियोगिनः ।
सर्वं यज्ञात् सदा भावि सर्वं यज्ञमयं जगत् ॥ १३५ ॥
यमिमं पृथिवीगर्भमाधत्त मलिनी पुनः ।
तमुत्पन्नं स्वयं देवी चिरं संगोपयिष्यति ॥ १३६ ॥

---

4 मया कार्यं सर्व्वेषां जगतां हितः । 5 प्रतिकोषे यज्ञं यूपं प्रकल्पयत ।

प्राप्ते काले यदा देवी तदायुष्मान् सुभाषते।
वधस्तस्यातिमारार्ता तदैवैनं हनिष्यथ ॥ १३७ ॥
भारतीं पृथिवीं मग्नां यदाधः शतयोजनम्।
शृंगिवराहरूपेण प्रोद्धरिष्ये तदा त्विमाम् ॥ १३८ ॥
कृतकृत्यं तु तं कायं त्याजयिष्यति ते सुतः।
यो भावी देवसेनानी रुद्रात् षाण्मातुराह्वयः ॥ १३६ ॥
एवं यज्ञवराहे तु भाषमाणे महाबले।
निःसृत्य सुमहत्तेजो ज्वालामालातिदीपितम्[6] ॥ १४० ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं वराहवपुषस्तदा।
हरेर्भगवतो देहे विवेश महदद्भुतम् ॥ १४१ ॥
तस्मिन् विष्णौ प्रविष्टे तु वाराहे तेजसि द्विजाः।
सुवृत्तात् कनकाद्घोरात्तेज आदात् स्वयं हरिः ॥ १४२ ॥
तेषामपि शरीरेभ्यस्तेजोभागः पृथक् पृथक्।
विनिःसृत्य विनिःसृत्य ज्वालामालातिदीपितः। १४३ ॥
प्रविवेश हरेः काये यथा तेषां पितुस्तथा।
ततो हरिश्च ब्रह्मा च महादेवश्च तद्वचः ॥ १४४ ॥
वराहस्य प्रतिश्रुत्य ओमित्युक्त्वा पुनः पुनः।
तेषां कायपरित्यागे अकार्षुर्यत्नमुत्तमम् ॥ १४५ ॥
ततस्तुण्डप्रहारेण शरभः कण्ठमध्यतः।
भित्वा वपुर्वराहस्य पातयामास तज्जले ॥ १४६ ॥
तं पातयित्वा प्रथमं सुवृत्तं कनकं तथा।
घोरं च कण्ठदेशेषु भित्वा भित्वा जघान ह ॥ १४७ ॥
त्यक्तप्राणास्तु ते सर्वे पेतुस्तोये महार्णवे।
जले शब्दं वितन्वानाः कालानलसमत्विषः ॥ १४८ ॥
पतितेषु वराहेषु ब्रह्माविष्णुर्हरस्तथा।
सृष्ट्यर्थं चिन्तयामासुः पुनरेव समागताः ॥ १४६ ॥

6 ···विभीषणम्।

हरस्य तु गणाः सर्वे तदा भर्गं समागताः ।
उपतस्थुर्महाभागाश्चतुर्भागेन भाजिताः ॥ १५० ॥

षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि प्रमथा द्विजसत्तमाः ।
तत्रैकत्र सहस्राणि भागे षोडश संस्थिताः ॥ १५१ ॥

नानारूपधरा ये वै जटाचन्द्रार्धमण्डिताः ।
ते सर्वे सकलैश्वर्ययुक्ता ध्यानपरायणाः ॥ १५२ ॥

योगिनो मदमात्सर्यदम्भाहंकार-वर्जिताः ।
क्षीणपापा महाभागाः शम्भोः प्रीतिकराः पराः ॥ १५३ ॥

न ते परिग्रहं रागं कांक्षन्ति स्म कदाचन ।
संसार-विमुखाः सर्वे यतयो 'योगतत्पराः ॥ १५४ ॥

ध्यानावस्थं महादेवं परिवार्य धृतव्रताः ।
कृत्वा परिषदं रुच्या तिष्ठन्ति विगतक्लमाः ॥ १५५ ॥

यदैव[7] परमं ज्योतिश्चिन्तयत्यम्बिकापतिः ।
तदैव ते पारिषदाः सर्वे संवेष्टयन्ति तम् ॥ १५६ ॥

ते षोडश समाख्याताः कोटयो ये यतव्रताः[8] ।
सिंहव्याघ्रादि-सारूप्या अणिमादिसमायुताः ॥ १५७ ॥

अपरे कामिनः शम्भोः सुनर्मसचिवाः स्मृताः ।
विचित्ररूपाभरणा जटाचन्द्रार्धमण्डिताः ॥ १५८ ॥

हरस्य तुल्यरूपेण विशदा वृषभध्वजाः ।
उमासदृशरूपाभिः प्रमदाभिः समागताः ॥ १५९ ॥

विचित्रमाल्याभरणा दिव्यस्रग्गन्धभूषिताः ।
उमासहायं क्रीडन्तमनुगच्छन्ति भूषिताः ॥ १६० ॥

शृंगारवेषाभरणा अष्टौ ते कोटयो गणाः ।
अर्धनारीश्वराश्चान्ये ह्यर्धनारीश्वरं हरम् ॥ १६१ ॥

---

7 सदैव । 8 धृतव्रताः ।

ध्यानस्थं प्रविविशुस्ते तुल्यरूपा हरस्य ये ।
उमासहायो हि यदा रमते ससुखं हरः ॥ १६२ ॥
अर्धनारीशरीरास्तु द्वारपाला भवन्ति ते ।
आकाशमार्गे गच्छन्तमनुगच्छन्ति नित्यशः ॥ १६३ ॥
ध्यानस्थं परिचिर्यन्ति सलिलादिभिरीश्वरम् ।
नानाशस्त्रधराः शम्भोर्गणास्ते प्रमथाः स्मृताः ॥ १६४ ॥
प्रमथ्नन्ति च युद्धेषु युध्यमानान् महाबलान् ।
ते वै महाबलाः शूराः संख्यया नव कोटयः ॥ १६५ ॥
अपरे गायनास्तालमृदंगपणवादिभिः ।
नृत्यन्ति वाद्यं कुर्वन्ति गायन्ति मधुरस्वरम् ॥ १६६ ॥
नानारूपधरास्ते वै संख्यया कोटयस्त्रयः ।
सततं चानुगच्छन्ति विचरन्तं महेश्वरम् ॥ १६७ ॥
सर्वे मायाविनः सूराः सर्वे शास्त्रार्थपारगाः ।
सर्वे सर्वत्र सर्वज्ञाः सर्वे सर्वत्रगाः सदा ॥ १६८ ॥
मुहूर्तात् सर्वभुवनं गत्या यान्ति पुनर्भवम्[1] ।
अणिमाद्यष्टकैश्वर्ययुक्तास्ते वै महाबलाः ॥ १६९ ॥
अपरे रुद्रनामानो जटाचन्द्रार्घमण्डिताः ।
देवेन्द्रस्य नियोगेन वर्तन्ते त्रिदिवे सदा ॥ १७० ॥
तेषां संख्या चैककोटिस्ते सर्वे बलवत्तराः ।
कुर्वन्ति हि सदा सेवां हरस्य सततं गणाः ॥ १७१ ॥
विस्मयन्ति च पापिष्ठान् धर्मिष्ठान् पालयन्ति च ।
अनुगृह्णन्ति सततं धृतपाशुपतव्रतान् ॥ १७२ ॥
विघ्नांश्च सततं घ्नन्ति योगिनां प्रयतात्मनाम् ।
षट्त्रिंशत् कोटयश्चैते हरस्य सकला गणाः ॥ १७३ ॥
वराहगणनाशार्थं हिताय जगतां तथा ।
शंकरस्याथ सेवायै समुत्पन्ना इमे गणाः ॥ १७४ ॥

---

9 पुनःपुनः ।

वराहस्य गणान् दृष्ट्वा नरसिंहं तथा हरिम् ।
स्वयं शरभरूपः सन् ध्यायन्नादं तदाकरोत् ॥ १७५ ॥
तच्छीत्कराद्यतो जातास्तत्तेषां बहुरूपता ॥
क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धैः क्रूरकृत्यैरिमान् गणान् ।
वराहस्य घ्नतेत्येवं यतः प्रोक्तं कपर्दिना ॥ १७६ ॥
अतस्ते क्रूरकर्माणः प्रजाताश्च भयंकराः ।
न सदा क्रूरकर्माणि ते कुर्वन्ति महौजसः ॥ १७७ ॥
दृष्टिमात्रस्य ते क्रूराः क्रूरास्ते न तु कार्यतः ।
फलं जलं तथा पुष्पं पत्रं मूलं तथैव च ॥ १७८ ॥
निवेदितानि भुञ्जन्ति वनपर्वतसानुषु ।
आहृत्यापि च भुञ्जन्ति पत्रं पुष्पादिकं च यत् ॥ १७९ ॥
भवेद्भर्गस्य यद्भोग्यं तद्भोगास्ते महौजसः ।
आमिषाणि च नाश्नन्ति[10] हित्वा चैत्रचतुर्दशीम् । १८० ॥
तत्रामिषं हरो भुंक्ते चतुर्दश्यां मधौ सदा ।
ततः सर्वे गणास्तत्र भुंजते पललान्यपि ॥१८१ ॥
हते वराहस्य गणे भर्गमासाद्य ते गणाः ॥
चतुर्भागाः स्वयं भूत्वा भूतकर्मेति वै जगुः ।
भूतत्वमभवत्तेषां चतुर्भागवतां तदा ॥ १८२ ॥
वचनात् पद्मयोनेस्तु भूतग्रामस्ततो मतः ।
यो लोकोविदितः पूर्वं भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
यतस्तेभ्योऽधिको यत्तद्भूतग्रामः स उच्यते ॥ १८३ ॥
इति वः कथितं सर्वं भूताः शम्भुगणाः यथा ।
यदाहारा यदाकारा यत्कृत्यास्ते महौजसः ॥ १८४ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यमाख्यानं महदद्भुतम् ।
स दीर्घायुः सदोत्साही योगयुक्तश्च जायते ॥ १८५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे शरभवाराह युद्धो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

---

10 आमिषं कापि नाश्नन्ति ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
त्रेतात्वमगमन् पुत्रा वराहस्य कथं त्रयः ॥ १ ॥
आकालिकोऽयं प्रलयः कस्माद् भगवता कृतः ।
जनक्षयो महाघोरो वराहेण महात्मना ॥ २ ॥
कथं वा मत्स्यरूपेण वेदाम्नाताश्च शार्ङ्गिणा ।
कथं पुनरभूत् सृष्टिः केन चोर्वी समुद्धृता ॥ ३ ॥
ईश्वरः शारभं कायं त्यक्तवान् वा कथं गुरो ।
कीदृक् प्रवृत्तं तद् देहं तन्नो वद महामते ॥ ४ ॥
एतेषां द्विजशार्दूल भवान् प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
तन्नोऽद्य श्रोष्यमाणानां कथयस्व महामते ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं द्विजशार्दूला यत्पृष्टोऽहमिहाद्भुतम् ।
शृण्वन्त्ववहिताः सर्वे सर्ववेदफलप्रदम् ॥ ६ ॥
यज्ञेषु देवास्तुष्यन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजाः ॥ ७ ॥
अन्नेन भूता जीवन्ति पर्यन्यादन्नसम्भवः ।
पर्जन्यो जायते यज्ञात् सर्वं यज्ञमयं ततः ॥ ८ ॥
स यज्ञोऽभूद्वराहस्य कायाच्छम्भुविदारितात् ।
यथाहं कथये तद्वः शृण्वन्त्ववहिता द्विजाः ॥ ९ ॥
विदारिते वराहस्य काये भर्गेण तत्क्षणात् ।
ब्रह्मविष्णुशिवा देवाः सर्वैश्च प्रमथैः सह ॥ १० ॥

निर्युर्जलात् समुद्धृत्य तच्छरीरं नभः प्रति ।
तद्भिदुः शरीरं तत् विष्णोश्चक्रेण खण्डशः ॥ ११ ॥

तस्यांगसन्धयो यज्ञा जाताश्च वै पृथक् पृथक् ।
यस्मादंगाच्च ये जातास्तच्छृण्वन्तु महर्षयः ॥ १२ ॥

भ्रूनासासन्धितो जातो ज्योतिष्टोमो महाध्वरः ।
हनुश्रवणसन्ध्योस्तु वह्निष्टोमो व्यजायत ॥ १३ ॥

चक्षूर्भ्रुवोः सन्धिना तु व्रात्यष्टोमो[79] व्यजायत ।
जातः पौनर्भवष्टोमस्तस्य पोत्रौष्ठसन्धितः ॥ १४ ॥

वृद्धष्टोमवृहत्ष्टोमौ जिह्वामूलादजायताम् ।
अतिरात्रं सवैराजमधोजिह्वान्तरादभूत् ॥ १५ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ १६ ॥

स्नानं तर्पणपर्यतं नित्ययज्ञाश्च सर्वशः ।
कण्ठसन्धेः समुत्पन्नाः जिह्वातो विधयस्तथा ॥ १७ ॥

वाजिमेध-महामेधौ नरमेधस्तथैव च ।
प्राणिहिंसाकरा येऽन्ये ते जाताः पादसन्धितः ॥ १८ ॥

राजसूयोऽर्थकारी च वाजपेयस्तथैव च ।
पृष्ठसन्धौ समुत्पन्ना ग्रहयज्ञास्तथेव च ॥ १९ ॥

प्रतिष्ठोत्सर्गयज्ञाश्च दानश्राद्धादयस्तथा ।
हृत्सन्धितः समुत्पन्नाः सावित्रीयज्ञ एव च ॥ २० ॥

सर्वे सांस्कारिका यज्ञाः प्रायश्चित्तकराश्च ये ।
ते मेढ्रसन्धितो जाता यज्ञास्तस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

रक्षःसत्रं सर्पसत्रं[80] सर्वंचैवाभिचारिकम् ।
गोमेधो वृक्षयागश्च खुरेभ्यो ह्यभवन्निमे ॥ २२ ॥

---

79 त्वक्चक्षूर्भ्रूवेसन्धिर्व्रात्यस्तोमे । 80 रक्षामन्त्रं सर्पमन्त्रं ।

मायेष्टिः परमेष्टिश्च गीष्पतिर्भोगसम्भवः ।
लांगुलसन्धौ संजाता[81] अग्निष्टोमस्तथैव च ।। २३ ।।
नैमित्तिकाश्च ये यज्ञाः संक्रान्त्यादौ प्रकीर्तिताः ।
लांगुलसन्धौ ते जातास्तथा द्वादशवार्षिकम् ।। २४ ।।
तीर्थप्रयोगसामौजः यज्ञः संकर्षणस्तथा ।
आर्कमाथर्वणश्चैव नाडीसन्धेः समुद्गताः ।। २५ ।।
ऋचोत्कर्षः क्षेत्रयज्ञाः[82] पंचसर्गातियोजनः ।
लिंगसंस्थानहेरम्बयज्ञा जाताश्च जानूनि ।। २६ ।।
एवमष्टाधिकं जातं सहस्रं द्विजसत्तमाः ।
यज्ञानां सततं लोका यैर्भाव्यन्तेऽधुनापि च ।। २७ ।।
स्रुगस्य पोत्रात् संजाता नासिकायाः स्रुवोऽभवत् ।
अन्ये स्रुक्स्रुवभेदा ये ते जाता पोत्रनासयोः ।।२८।।
ग्रीवाभागेण तस्याभूत् प्राग्वंशो मुनिसत्तमाः ।
इष्टापूर्तिर्यजुर्धर्मो जाताः श्रवणरन्ध्रतः ।। २९ ।।
दंष्ट्राभ्यो ह्यभवन् यूपाः कुशा रोमाणि चाभवन् ।
उद्गाता च तथाध्वर्युर्होता शामित्रमेव च ।। ३० ।।
अग्रदक्षिणवामांग-पश्चात्-पादेषु संगताः ।
पुरोडाशाः सचरवो जाता मस्तिष्कसंचयात् ।। ३१ ।।
कर्पूर्नेत्रद्वयाज्जाता यज्ञकेतुस्तथा खुरात् ।
मध्यभागोऽभवद्वेदी मेढ्रात् कुण्डमजायत ।। ३२ ।।
रेतोभागात्तथैवाज्यं स्वधामन्त्राः[83] समुद्गताः ।
यज्ञालयः पृष्ठभागाद्धृत्पद्माद्यज्ञ एव च ।
तदात्मा यज्ञपुरुषो मुंजाः कक्षात्समुद्गताः ।। ३३ ।।
एवं यावन्ति यज्ञानां भाण्डानि च हवींषि च ।
तानि यज्ञवराहस्य शरीरादेव चाभवन् ।। ३४ ।।

---

81 अग्नीषोमः 82 पञ्चमार्गा... 83 स्वरान् मन्त्राः

एवं यज्ञवराहस्य शरीरं यज्ञतामगात् ।
यज्ञरूपेण सकलमाप्यायितुमिदं जगत् ॥ ३५ ॥
एवं विधाय यज्ञं तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
सुवृत्तं कनकं घोरमासेदुर्यत्नतत्पराः[84] ॥ ३६ ॥
ततस्तेषां शरीराणि पिण्डीकृत्य पृथक् पृथक् ।
त्रिदेवास्त्रिशरीराणि व्यधमन्मुखवायुभिः ॥ ३७ ॥
सुवृत्तस्य शरीरं तु[85] व्यधमन्मुखवायुना ।
स्वयमेव जगत् स्त्रष्टा दक्षिणाग्निस्ततोऽभवत् ॥ ३८ ॥
कनकस्य शरीरं तु ध्मापयामास केशवः ।
ततोऽभूद्गार्हपत्याग्निः पंचवैतानभोजनः ॥ ३६ ॥
घोरस्य तु वपुः शम्भुर्ध्मापयामास वै स्वयम् ।
तत आहवनीयोऽग्निस्तत्क्षणात् समजायत ॥ ४० ॥
एतैस्त्रिभिर्जगद्व्याप्तं त्रिमूलं सकलं जगत् ।
एतद् यत्र त्रयं नित्यं तिष्ठति द्विजसत्तमाः ॥ ४१ ॥
समस्ता देवतास्तत्र वसन्त्यनुचरैः[86] सह ।
एतद्ब्रह्मपदं नित्यमेतदेव त्रयात्मकम् ॥ ४२ ॥
एतत्त्रयीविधिस्थानमेतत् पुण्यकरं परम् ।
यस्मिन् जनपदे चैते हूयन्ते वह्नयस्त्रयः ॥ ४३ ॥
तस्मिन् जनपदे नित्यं चतुर्वर्गो विवर्धते ।
एतद्वः कथितं सर्वं यत् पृष्टोऽहं द्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥
यथा यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
यथा च तस्य पुत्राणां[87] देहतो वह्नयोऽभवन् ॥ ४५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वराहतनौ यज्ञोत्पत्तिर्नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।

---

84 यज्ञतत्पराः । 85 ध्मापयामास वै तदा । 86 रमन्त्यनुचरैः ।
87 देहास्त्रेतात्वमगमन् ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

आकालिकोऽयं प्रलयो यतो भगवता कृतः ।
तच्छृण्वन्तु महाभागा वाराहं लोकसंक्षयम् ॥ १ ॥
यथा वा मत्स्यरूपेण वेदास्त्रातश्च शार्ङ्गिणा ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्वपाप[88] प्रणाशनम् ॥ २ ॥
पुरा महामुनिः सिद्धः कपिलो विष्णुरीश्वरः[89] ।
साक्षात् स्वयं हरिर्योऽसौ सिद्धानामुत्तमो मुनिः ॥ ३ ॥
ध्यायतः सिद्धमित्येवं सर्वं जगदिदं स्वतः[90] ।
[91]यतो जातो हरेः कायात् कपिलस्तेन[92] स स्मृतः ॥ ४ ॥
स एकदा पुरा भूत्वा मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
स्वायम्भुवं मनुं वाक्यं मुनिवर्योऽब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥

कपिल उवाच

स्वायम्भुव मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मरूप महामते ।
[93]ममैवमीप्सितार्थं त्वं देहि प्रार्थयतोऽधुना ॥ ६ ॥
जगत्सर्वं तवैवेदं त्वया च परिपालितम् ।
त्वया सर्वं [94]जगत् सृष्टं त्वमेव जगतां पतिः ॥ ७ ॥
स्वर्गे पृथिव्यां पाताले देवमानुषजन्तुषु ।
त्वं प्रभुर्वरदो गोप्ता त्वमेवैकः सनातनः ॥ ८ ॥
त्वं वै धाता विधाता च त्वं हि सर्वेश्वरेश्वरः ।
त्वयि प्रतिष्ठितं सर्वं सततं भुवनत्रयम् ॥ ९ ॥
तपस्यतो[95] तवसमं प्रतिभास्यति[96] सोऽनुगम् ।
कार्यकारणतत्त्वौध-सहितानि जगन्ति वै ॥ १० ॥

---

88 हरं शुभम् 89 विष्णुरूपिणः । 90 जगदि्‌त श्रुतम् । 91 ततो। 92 सन्मतः । 93 ममैकमीप्सितार्थं । 94 जगद्व्याप्तं । 95 तव समः । 96 प्रतियास्यन्ति ।

तन्मे देहि रहः स्थानं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
पुण्यं पापहरं रम्यं ज्ञानप्रभवमुत्तमम् ॥ ११ ॥
अहं हि सर्वभूतानां भूत्वा प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
उद्धरिष्ये जगज्जातं निर्माय ज्ञानदीपिकाम् ॥ १२ ॥
अज्ञानसागरे मग्नमधुना सकलं जगत् ।
[97]ज्ञानप्लवं प्रदायाहं तारयिष्ये जगत्त्रयम् ॥ १३ ॥
एतस्मिन्मां भवान् सम्यगुपपन्नमिहेच्छति[98] ।
त्वन्नो नाथश्च पूज्यश्च[99] पालकश्च[100] जगत्प्रभो ॥ १४ ॥
त्येवमुक्तः स मनुः कपिलेन महात्मना ।
प्रत्युवाच[1] महात्मानं कपिलं संशितव्रतम् ॥ १५ ॥

मनुरुवाच

यदि त्वयाखिलजगद्धितार्थं ज्ञानदीपिकाम् ।
चिकीर्षूणा [2]यतः कार्यं किं स्थानार्थनया [3]तव ॥ १६ ॥
हिरण्यगर्भः सुमहत् तपस्तेपे पुराद्भुतम् ।
स मे ययाचे तपसे स्थानं कस्मै न च द्विज[4] ॥ १७ ॥
शम्भुः सम्भोगरहितो देवमानेन वत्सरान् ।
[5]अयुतानि तपस्तेपे सोऽपि स्थानं न चैक्षत ॥ १८ ॥
देवेन्द्रो वीतिहोत्रश्च शमनो रक्षसां पतिः ।
यादःपतिर्मातरिश्वा धनाध्यक्षस्तथैव च ॥ १९ ॥
[6]एते तेपुस्तपस्तीव्रं दिक्पालत्वमभीप्सवः[7] ।
स्थानं न मार्गयामासुः किंचनापि महामुने[8] ॥ २० ॥
देवागाराणि तीर्थानि क्षेत्राणि सरितस्तथा ।
बहूनि पुण्यभाञ्ज्यत्र तिष्ठन्ति कपिल क्षितौ ॥ २१ ॥

---

97 ज्ञानदीप्तं । 98 एतस्मिन् स भवान् मय्यभ्युषत्तुमिहार्हसि।
99 पृथुश्च । 100 पालयच । 1 यतात्मानं । 2 तपः 3 मम ।
4 समाययाच तपसे स्थानं कस्मैचनं द्विज । 5 अक्षतानि ।
6 एतत् । 7 दिकपालत्वमभीप्सया । 8 स्थाने समादयामासुः गुरून् चापि महात्मने ।

तेषामेकतमं त्वं चेदासाद्य कुरुषे तपः[9] ।
स्थानं ब्रह्मंस्तपःसिद्धिर्न भविष्यति तत्र किम् ॥ २२ ॥
मत्तः स्थानार्थना[10] तावत् केवलं[11] ते विकत्थनम् ।
अयं विकत्थनो धर्मो युज्यते न तपस्विनाम् ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मनोः स्वायम्भुवस्य तु ।
चुकोप कपिलः सिद्धः प्रोवाच च तदा मनुम ॥ २४ ॥

कपिल उवाच

त्वयि विश्रम्भमाधाय तपसः सिद्धयेऽचिरात्[12] ।
स्थानं मया प्रार्थितं ते तन्मां क्षिपसि हेतुभिः ॥ २५ ॥
अनेनात्युग्रवचसा तवैवाहं न चक्षमे ।
स्वयं[13] त्रिभुवनाध्यक्ष इति ते गर्व ईदृशः ॥ २६ ॥
अक्षम्यं ते वचो मेऽद्य प्रार्थनायां विकत्थनम् ।
यत् त्वं वदसि तस्य त्वं फलमेतदवाप्नुहि ॥ २७ ॥
इदं त्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
हतप्रहतविध्वस्तमचिरेण भविष्यति ॥ २८ ॥
येनेयमुद्धृता पृथ्वी येन वा स्थापिता पुनः ।
यो वास्या अन्नकर्ता स्याद्यो वास्याः परिरक्षकः ॥ २९ ॥
त एव सर्वे हिंसन्तु सकलं सचराचरम् ।
नचिराद्द्रक्ष्यसि मनोजलपूर्णं जगत्त्रयम् ।
हतप्रहतविध्वस्तं तव गर्वविशातनम् ॥ ३० ॥
एवमुक्त्वा मुनीन्द्रऽसौ कपिलस्तपसां निधिः ।
अन्तर्दधे जगामापि तदा ब्रह्मसदो मुनिः ॥ ३१ ॥

---

9 तेषामेकतमं तस्मात् आसाद्य कुरुतां तपः । 10 स्थानार्थिनः ।
11 करणं । 12 त्वं सिद्धस्तम्भयामास तपसः··· । 13 अयं ।

कपिलस्य वचः श्रुत्वा विषण्णवदनोमनुः ।
भावीति प्रतिपद्याशु मनुर्नोवाच किंचन ।। ३२ ।।
ततः स्वायम्भुवो धीमांस्तपसे धृतमानसः ।
हिताय सर्वजगतां दिदृक्षुर्गरुडध्वजम् ।। ३३ ।।
विशालां बदरीं यातो गंगाद्वारान्तिकं खलु ।
तत्र गत्वा जगद्धर्ता मनुः स्वायम्भुवः स्वयम् ।
ददर्श बदरीं तत्र पुण्यां पापप्रणाशिनीम् ।। ३४ ।।
सदा फलवतीं नित्यं मृदुशाद्वलमंजरीम् ।
सुच्छायां[14] मसृणां शीर्णशुष्कपत्रविवर्जिताम् ।। ३५ ।।
गंगातोयौधसंसिक्त-शिखामूलान्तराखिलाम् ।
उपास्यमानां सततं नानामुनितपोधनैः ।। ३६ ।।
तत्स्थानं सर्वतो भद्रं नानाभृंगगणान्वितम्[15] ।
फुल्लारविन्दसलिलं रमणीयं वृषप्रदम् ।। ३७ ।।
प्रविश्य तपसे यत्नमकरोल्लोकभावनः ।
स भूत्वा नियताहारः परमेण समाधिना ।। ३८ ।।
आराधयामास हरिं जगत्कारणकारणम् ।
सर्वेषां जगतां नाथं नीलमेघांजनप्रभम् ।। ३९ ।।
शंखचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम् ।
पीताम्वरधरं देवं गरुडोपरिसंस्थितम् ।। ४० ।।
जगन्मयं लोकनाथं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ।
जगद्बीजं सहस्राक्षं सहस्रशिरसं प्रभुम्[16] ।। ४१ ।।
सर्वव्यापिनमाधारं[17] नारायणमजं विभुम् ।
जपन्नेतत्परं मन्त्रं सर्ववेदमयं मनुः ।। ४२ ।।
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे ।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे[18] ।। ४३ ।।

---

14 अभयां । 15 नानामुनिगणार्चितम् । 16 परम् । 17 समाधारं ।
18 ...भगवते...ज्ञानस्वभाविने ।

इति जप्यं प्रजपतो मनोः स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रससाद जगन्नाथः केशवो[19] नचिरादथ ॥ ४४ ॥
ततः क्षुद्रझषो भूत्वा दुर्वादलसमप्रभः ।
कर्पूरकलिकायुग्म-तुल्यनेत्रयुगोज्ज्वलः ॥ ४५ ॥
तपस्यन्तं महात्मानं मनुं स्वायम्भुवं मुनिम् ।
आससाद तदा क्षुद्रमत्स्यरूपी जनार्दनः ॥ ४६ ॥
उवाच तं महात्मानं मनुं स्वायम्भुवं तदा[20] ।
सुसन्त्रस्तं[21] स कारुण्ययुक्तं भीतिसगद्गदम् ॥ ४७ ॥
तपोनिधे महाभाग भीतं मां त्रातुमर्हसि ।
नित्यमुद्वेजितं मत्स्यैर्विशालैर्भक्षितुं प्रति ॥ ४८ ॥
प्रत्यहं मां महाभाग मीना धावन्ति भक्षितुम् ।
समन्ततोऽधिकाहन्तु त्वं नाथ गोपितुं क्षमः ॥ ४९ ॥
अद्य प्रभूतैर्विपुलैर्दारितः पृथुरोमभिः ।
विश्रान्तोऽहं क्षुद्रतरो न च शक्तः पलायने[22] ॥ ५० ॥
प्राणाकांक्षी महात्मानं भवन्तं शरणं मुनिम् ।
प्राप्तोऽहश्चेदनुक्रोशस्तेऽस्ति मां प्रतिपालय ॥ ५१ ॥
[23]भयोद्भ्रान्तमनाश्चाहं वृक्षच्छायां च चञ्चलाम् ।
दृष्ट्वा चलतरंगांश्च मत्स्यादिव विभेम्यहम् ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा मनुः स्वायम्भुवस्ततः ।
कृपया परया युक्तः प्रोचेऽहं रक्षिता तव ॥ ५३ ॥
ततः करोदरे तोयमादायाधाय तत्र तम् ।
समक्षं क्षुद्रमत्स्यस्य विहारं समलोकयत् ॥ ५४ ॥
ततो दयालुः स मनुस्तं[24] मत्स्यं चारुरूपिणम् ।
अलिञ्जरे तोयपूर्णे न्यधाद्विपुलभोगिनि ॥ ५५ ॥

---

19 प्रसन्नो । 20 तथा । 21 सन्त्रस्तं तच्च . 22 परायणे ।
23 ततो । 24 मुनिस्तं

स तस्मिन् मणिके मत्स्यो वर्धमानो दिने दिने ।
सामान्यरोहितप्राय-देहोऽभून्नचिरादथ ॥ ५६ ॥

दशघटजलपूर्णं प्रत्यहं स महात्मा
मणिकमतिकुर्वन् वर्धयामासमत्स्यम् ।
स च सुविशदनेत्रो मत्स्यबालोऽचिरेण
मणिकसलिलमध्ये लोमशः पीनदेहः ॥ ५७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे मत्स्यरूप-कथने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

[25]तं तथा पीवरतनुं दृष्ट्वा मत्स्यं मनुः स्वयम् ।
गृहीत्वा पाणिना फुल्लनलिनीं सरसीं ययौ ॥ १ ॥
तत्सरस्तत्र विपुलं पुण्ये नारायणाश्रमे ।
एकयोजनविस्तीर्णं सार्धयोजनमायतम् ॥ २ ॥
नानामीनगणोपेतं शीतामलजलोत्करम् ।
तदासाद्य सरो मत्स्यं विनिधाय मनुस्तदा ॥ ३ ॥
पालयामास सुतवत् कृपया परया युतः ।
सोऽचिरेणैव कालेन पीनो वैसारिणोऽभवत् ॥ ४ ॥
न ममौ तत्र सरसि वृहत्त्वात् द्विजसत्तमाः ।
स एकदा महामत्स्यः पूर्वापरतरद्वये ॥ ५ ॥
शिरः पुच्छे निधायाशु तुंगदेहः समुच्छ्रितः ।
स्वायम्भुवं महात्मानं चुक्रोश त्राहि मामिति ॥ ६ ॥
तं तथा च मनुर्ज्ञात्वा क्रोशन्तं स्थूलपुच्छकम् ।
आससाद तदा मत्स्यं जग्राह च करेण तम् ॥ ७ ॥

---

25 ततस्तथा पीनतनुं...

न शक्नोम्यहमुद्धर्तुं पृथुरोमाणमद्भुतम् ।
इति संचिन्तयन्नेव प्रोद्दधार करेण तम् ॥ ८ ॥

भगवानपि विश्वात्मा मत्स्यरूपी जनार्दनः
स्वायम्भुवकरं प्राप्य लघिमानमुपाश्रयत् ॥ ९ ॥

ततः कराभ्यामुद्धृत्य स्कन्धे[26] कृत्वा द्रुतं मनुः ।
निनाय सागरं तत्र तोये च निदधे ततः ॥ १० ॥

यथेच्छमत्र वर्धस्व न कोऽपि त्वां वधिष्यति ।
अचिरेणैव सम्पूर्णदेहं त्वं समवाप्नुहि ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा स महाभागः सर्वप्राणभृतां वरः ।
लघुत्वं चिन्तयंस्तस्य विस्मयं परमं गतः ॥ १२ ॥

मत्स्योऽपि नचिरादेव पूर्णकायस्तदा महान् ।
सर्वतः पूरयामास देहाभोगेन सागरम् ॥ १३ ॥

तं पूर्णकायमालोक्य व्यतीत्याम्भः समुच्छ्रितम् ।
[27]शिलाभिर्निचितं स्फीतं मानसाचलसंनिभम् ॥ १४ ॥

रुन्धन्तं सागरं सर्वं देहाभोगाचलीकृतम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्धीमान् मेने मत्स्यं न तं तदा ॥ १५ ॥

ततः पप्रच्छ तं साम्ना मत्स्यं स्वायम्भुवो मनुः ।
विचिन्त्य लघिमानं च पश्यन् मूर्तिं तदाद्भुतम् ॥ १६ ॥

मनुरुवाच

न त्वां मत्स्यमहं मन्ये कस्त्वं मे वद सत्तम ।
महत्त्वं लघिमानं ते चिन्तयन् सुमहत्तर ॥ १७ ॥

त्वं ब्रह्माह्यथवा विष्णुः शम्भुर्वा मीनरूपधृक् ।
न चेद्गुह्यं महाभाग तन्मे वद महामते ॥ १८ ॥

---

26 कृत्वाण्डजं मनुः । 27 शल्कैःशिलाभिः रचितं ।...

मत्स्य उवाच

आराध्योऽहं त्वयानित्यं यो हरिः स सनातनः।
तवेष्टकामसिद्ध्यर्थं प्रादुर्भूतः समाहितः ॥ १९ ॥
यत् त्वमिच्छसि भूतेश मत्तस्त्वं[28]मीनमूर्तितः।
तत् करिष्येऽद्य तां मूर्तिमिमां विद्धि मनो मम ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः।
ज्ञात्वा प्रत्यक्षतो विष्णुं मनुस्तुष्टाव केशवम् ॥ २१ ॥

मनुरुवाच

नमस्ते जगदव्यक्तपरापरपते हरे।
पावकादित्यशीतांशु-नेत्रत्रयधराव्यय ॥ २२ ॥
जगत्कारण सर्वज्ञ जगद्धाम हरे पर।
परापरात्मरूपात्मन् पारिणां पारकारण ॥ २३ ॥
आत्मानमात्मना धृत्वा धरारूपधरो हरे।
विभर्षि सकलान् लोकानाधारात्मंस्त्रिविक्रम ॥ २४ ॥
सर्ववेदमयश्रेष्ठ धामधारणकारण।
सुरौघपरमेशान नारायण सुरेश्वर ॥ २५ ॥
अयोनिस्त्वं जगद्योनिरपादस्त्वं सदागतिः।
त्वं तेजः स्पर्शहीनश्च सर्वेशस्त्वमनीश्वर ॥ २६ ॥
त्वमनादिः समस्तादिस्त्वं नित्यानन्तरोऽन्तरः।
यद्धैममण्डं जगतां वीजं व्रह्माण्डसंज्ञितम् ॥ २७ ॥
तद्वीजं[29] भवतस्तेजस्त्वयोक्तं सलिलेषु च।
सर्वाधारो निराधारो निर्हेतुः सर्वकारणम् ॥ २८ ॥
नमो नमस्ते विश्वेश लोकानां प्रभव प्रभो।
सृष्टिस्थित्यन्तहेतूस्त्वं विधिविष्णुहरात्मधृक् ॥ २९ ॥

---

28 ...मत्तः शान्तेन मूर्त्तिना। 29. ...तव तत् तेजस्थ प्राणिनां तरु।

यस्य ते दशधा मूर्तिरूर्मिषट्कादिवर्जिता ।
ज्योतिः पतिस्त्वमम्भोधिस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥ ३० ॥

कस्ते भावं वक्तुमीशः परेश
स्थूलात्स्थूलो योऽणुरूपोऽर्थवर्गात् ।
तस्मै नित्यं मे नमोऽस्त्वद्य योऽभू-
दादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ३१ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रपात्
सहस्रचक्षुः पृथिवीं समन्ततः ।
दशांगुलं यो हि समत्यतिष्ठत्
स मे प्रसीदत्विह विष्णुरुग्रः ॥ ३२ ॥

नमस्ते मीनमूर्ते हे नमस्ते भगवन् हरे ।
नमस्ते जगदानन्द नमस्ते भक्तवत्सल ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

स्वायम्भुवेन मनुना संस्तुतो मत्स्यरूपधृक् ।
वासुदेवस्तदा प्राह मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य भक्त्या चापि स्तुतो मुहुः ।
सपर्यया च दानेन वरं वरय सुव्रत ॥ ३५ ॥
इष्टार्थं सम्प्रदास्यामि तुभ्यं नात्र विचारणा ।
वरयस्वेप्सितान् कामान् लोकानां वा हितं च यत् ॥ ३६ ॥

मनुरुवाच

यदि देयो वरोमेऽद्य लोकानां यो हितो भवेत् ।
तन्मे देहि वरं विष्णो तं वक्ष्यामि शृणुष्व मे ॥ ३७ ॥
शशाप कपिलः पूर्वं मदर्थे भुवनत्रयम् ।
हतप्रहतविध्वस्तं सकलं ते भवेदिति ॥ ३८ ॥

येनेयमुद्धृता पृथ्वी येनेयं प्रतिपालिता ।
संहरिष्यति यस्त्वेनां तेऽधुना प्लावयन्त्विमाम् ॥ ३६ ॥
ततोऽहं दीनहृदय[30]स्त्वामेव शरणं गतः ।
न यथेदं त्रिभुवनं भविष्यति जलप्लुतम् ।
हतप्रहतविध्वस्ते तथा त्वं देहि मे वरम् ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच

न मत्तः कपिलो भिन्नस्तथा न कपिलादहम् ।
यदुक्तं तेन मुनिना मयोक्तं विद्धि तन्मनो ॥ ४१ ॥
तस्माद् यदुदितं तेन तत्सत्यं नान्यथा भवेत् ।
करिष्ये तत्र साहाय्यं स्वायम्भुव निबोध तत् ॥ ४२ ॥
हतप्रहतविध्वस्ते तोयमग्ने जगत्त्रये ।
श्यामलेनाथ शृंगेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ॥ ५० ॥
यावज्जलप्लवस्तावद्यथा कार्यं त्वया मनो ।
तन्मे निगदतः पथ्यं शृणुष्वावहितोऽधुना ॥ ४४ ॥
सर्वयज्ञियकाष्ठौघैरेका नौका विधीयताम् ।
तामहं द्रढयिष्यामि यथा नो भिद्यते जलैः ॥ ४५ ॥
दशयोजनविस्तीर्णां त्रिंशद्योजनमायताम् ।
धारिणीं सर्ववीजानां भुवनत्रयवर्धिनीम् ॥ ४६ ।
सर्वयज्ञियवृक्षाणां भूरिवल्वलतन्तुभिः ।
नवयोजनदीर्घां तु व्यामत्रयसुविस्तृताम् ॥ ४७ ॥
कुरुष्व त्वं मनो तूर्णं बृहतीमीरिकां वटीम् ।
जगद्धात्री जगन्माया लोकमाता जगन्मयी ।
द्रढयिष्यति तां रज्जुं न त्रुत्यति यथातथा ॥ ४८ ॥
सर्वाणि वीजान्यादाय सवेदान् सप्त वै ऋषीन् ।
तस्यां नावि निषण्णस्त्वं वर्तमाने जलप्लवे ॥ ४६ ॥
दक्षेण सह संगम्य स्मरिष्यसि मनो मम ।

---

30 दीनवदन......

स्मृतोऽहं तूर्णमायास्ये भवतो निकटं प्रति ।
श्यामलेनाथ शृंगेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ॥ ५० ॥
यावत् प्रहतविध्वस्त-हतं स्याद्भुवनत्रयम् ।
तावत् पृष्ठेन तां नावं वोढाहं नात्र संशयः ॥ ५१ ॥
जहप्लुते तु सम्पूर्णे शृंगे मम च तां तरीम् ।
त्वं तदा वटीरिकया सन्धानिष्यसि वै दृढम् ॥ ५२ ॥
वद्धायां नावि मे शृंगे देवमानेन वत्सरान् ।
सहस्रं प्रेरयिष्यामि तां नावं शोषयन् जलम् ॥ ५३ ॥
ततः शुष्केषु तोयेषु प्रोत्तुंगे शिखरे गिरेः ।
हिमाचलस्य बद्ध्वाहं तस्मिन्नावमहं मनो ॥ ५४ ॥
अहमाराधितो येन जप्येन भवता मनो ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य यस्तोषयति तेन माम् । ५५॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्वा वरं तस्मै मत्स्यस्तेन नमस्कृतः ।
अन्तर्दधे जगन्नाथो लोकानुग्रहकारकः ॥ ५६ ॥
स्वायम्भुवोऽपि भगवानन्तर्धानं गते हरौ ।
यथोक्तं हरिणा पूर्वं नावं रज्जुं तथाकरोत् ॥ ५७ ॥
सर्वयज्ञियवृक्षौघा छित्वा स्वायम्भुवस्तदा ।
उद्धृत्य कारयामास [32]वास्यादिभिरसौ तरिम् ॥ ५८ ॥
तेषां [33]वल्कसमुद्धूतसूत्रसंघैर्वटीरिकाम् ।
पूर्वोक्तेन प्रमाणेन कारयामास वै मनुः ॥ ५९ ॥

---

31 तां वै गोपयिता नित्यां यावद्भूः शोषयेज्जलम् ।
चिन्तितोऽहं त्वया प्राप्स्ये यदाहि निकटं तव ।
शृंगेण श्यामलेनैव त्वं मां ज्ञास्यसि पुष्करे ॥
पुनः सृष्टिं ततः कृत्वा मत्प्रसादान्महामते ।
त्रैलोक्यदुर्लभामृद्धिमवाप्स्यसि सनातनीम् ॥

32 ......नावं दृढतरां ततः । 33 शल्कसमुद्धृत......वटीमणिम् ।

ततः कालेन महता वृत्तं युद्धं महाद्भुतम् ।
विष्णोर्यज्ञवराहस्य शरभस्य हरस्य च ॥ ६० ॥

ततो जलप्लवे जाते विध्वस्ते भुवनत्रये ।
तथा रज्ज्वा तरिं बध्वा वीजान्यादाय सर्वशः ॥ ६१ ॥

वेदानृषींस्तदा[34] सप्तदशश्चादाय वै मनुः ।
तस्यां नावि समाधाय तोयमग्रे चराचरे ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुवस्तदा मत्स्यं हरिं सस्मार नौगतः ।
ततो जलानामुपरि सशृंग इव पर्वतः ॥ ६३ ॥

[35]उदितश्चैकशृंगेण विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् ।
आगतस्तत्र नचिराद्यत्रास्ते तरिणा मनुः ॥ ६४ ॥

तरिमारुह्य विपुले तोयराशौ भयंकरे ।
यावच्चलाचलं तोयं तावत् पृष्ठे तरिं न्यधात् ॥ ६५ ॥

जले प्रकृतिमापन्ने शृंगे बध्वा वटीरिकाम् ।
तां नावं नोदयामास सहस्रं दैववत्सरान् ॥ ६६ ॥

[36]स्वं नावमवष्टभ्य दधार परमेश्वरः ।
योगनिद्रा जगद्धात्री समासीद्वटीरिकाम् ॥ ६७ ॥

ततः शनैः शनैस्तोये शोषं गच्छति वै चिरात् ।
पश्चिमं हिमवच्छृंगं सुमग्नं तोयमध्यतः ॥ ६८ ॥

द्वे सहस्रे योजनानामुच्छ्रितस्य हिमप्रभोः ।
पञ्चाशत्तु सहस्राणि शृंगं तत्तस्य चोच्छ्रितम् ॥ ६९ ॥

तस्मिन् शृंगे ततो नावं बध्वा मत्स्यात्मधृग् हरिः ।
जगाम शोषणायाशु जलानां जगतां पतिः ।
एवं हि मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ॥ ७० ॥

---

34 सप्तदक्षं । 35 उद्दीप्त । 36 स्वयं ।

मार्कण्डेय उवाच

कपिलस्य तु शापेन कृत आकालिको लयः ।
अकालिकोऽयं प्रलयो यत्तो भगवता कृतः ।
इति वः कथितं सर्वं यथावद्द्विजसत्तमाः ॥ ७३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अकालप्रलयकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

यथा पुनरभूत् सृष्टिरकालप्रलये गते ।
येन चैवोद्धृता पृथ्वी तच्छृणन्तु द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥
व्यतीते प्रलये विष्णुः कूर्मरूपी महाबलः ।
पृष्ठे निधाय पृथ्वीमुद्धृत्याथ सपर्वताम् ।
समांचकार सकलां पूर्ववत्परमेश्वरः ॥ २ ॥
शरभस्य वराहस्य तत्पुत्राणां पदक्रमैः ।
यत्र भूमिर्विशीर्णाभूत्तां तां समां कमठोऽकरोत् ॥ ३ ॥
कृत्वां समां ततो भूमिं पूर्ववत् परमेश्वरः ।
अनन्तं धारयामास पृथिवीतलसंश्रितम् ॥ ४ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च हरश्च परमेश्वरः ।
नावोदरस्थान् सप्तमुनीन्मनुं स्वायम्भुवं तदा ।
नरनारायणौ चोभौ दक्षश्चोचुः समागताः ॥ ५ ॥
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे नरनारायणौ तथा ।
दक्षस्वायम्भुवमनो वयं ब्रूमोऽधुना च यत्[37] ॥ ६ ॥
सृष्टिर्नष्टा वराहस्य शरभस्य च संगरात् ।
अतोऽस्माकं यथाकार्या सृष्टिराकर्णयन्तु तत् ॥ ७ ॥

37 तु यत् ।

नरनारायणवेतौ सृष्ट्यर्थं समुपस्थितौ ।
संस्थापनाय देवानां परमं तप्यतां तपः ॥ ८ ॥
अप्याय्य तपसा चोभौ जनलोकगतान् सुरान् ।
आनयन्त्वपराङ्छश्वत् संसृजन्तु गणान् बहून् ॥ ६ ॥
नक्षत्राणि ग्रहांश्चैव तेषां स्थानानि वै मुने ।
एतयोस्तपसा यान्तु स्थिरतां पूर्ववन्मनो ॥ १० ॥
सूर्यस्य रथसंस्थानं तथा चन्द्ररथस्थितिम् ।
करोत्वयं महाभागः स्वयमेव जनार्दनः ॥ ११ ॥
पृथिव्यां सर्ववीजानि स्वायम्भुवमनो त्वया ।
उप्यन्तां सर्वतः शस्यपूर्णा भवतु मेदिनी ॥ १२ ॥
प्ररोहयौषधीर्वृक्षान् लतावल्लीश्च सर्वतः[38] ।
स्वायम्भुव महान्त्येतत् प्राप्तान्यृतुफलानि च ॥ १३ ॥
दक्षः सप्तमुनीन्द्रैस्तु यज्ञेन यजतां हरिम् ।
वराहपुत्रदेहोत्थमग्नित्रयमिदं यजन् ॥ १४ ॥
असौ यज्ञो वराहस्य देहाज्जातस्तु सृष्टये ।
अनेनैव तु यज्ञेन दक्षः सृष्टिं तनोत्विमाम् ॥ १५ ॥
नरनारायणाभ्यांतु मुनिभिः सप्तभिस्तथा ।
दक्षेण भवता चापि यज्ञैनैभिस्तथाग्निभिः ॥
सम्पूर्यतामियं सृष्टिः स्वर्गे भुवि रसातले ॥ १६ ॥
वयं च सृष्टिमाप्याय्य यथा सम्पद्यते त्वियम् ।
यतिष्यामस्तथा नित्यं यूयं कुरुत सर्जनम् ॥ १७ ॥
ततः सम्पद्यतां सृष्टिर्यथा पूर्वं तथैव च ।
प्रथमं त्वन्तु वीजानि प्ररोहय मनोऽधुना ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्यादिश्य महाभागा विधिविष्णुवृषध्वजाः ।
यथास्थानं स्थापयितुं पर्वतान् प्रययुस्ततः ॥ १६ ॥

---

38 सर्वशः ।

मेरुमन्दरकैलासहिमवत्प्रभृतिष्वथ[39] ।
पुराणि सर्वदेवानां ते वै चक्रुः पृथक् पृथक् ॥ २० ॥
[40]परित्यज्य ततो नावमवधृत्य वसुन्धराम् ।
स्वायम्भुवः क्षितौ वीजान्यवपत् सर्वसम्पदे[41] ॥ २१ ॥
ततो वृक्षलतावल्लीगुल्मानि च वनानि च ।
वालशस्यानि धान्यानि तथैवौषधयः समाः ॥ २२ ॥
वीजकाण्डप्ररोहाश्च प्रताना जलजानि च ।
प्रफुल्लानि [42]विकोशानि फलकन्ददलानि च ॥ २३ ॥
बभुवुः शाद्वलान्येव सर्वेषां प्राणवृद्धये ।
पृथिवी शस्यसम्पन्ना[43] वृक्षास्ते शाद्वलाः शुभाः ।
दृष्टाः पूर्वं यथा तस्मान्मनुनाचित्तहर्षिणा ॥ २४ ॥
ततो नरो महायोगी तपस्तेपे महत्तमम्[44] ।
नारायणश्च देवानां भावनाय महामतिः ॥ २५ ॥
नारायणो नरश्चोभौ परमावृषिसत्तमौ ।
तपसाराध्य परमं तेजोमयमनामयम् ॥ २६ ॥
आनिन्याते जनगणान् देवान् देवर्षिसत्तमान् ।
ये मृता अमराः पूर्वं गणशस्तान् पृथक् पृथक् ।
तपोबलेन महता सर्जयामासतुर्मुनी[45] ॥ २७ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ देवौ दिक्पालांश्च तथा दश ।
जनार्दनः स्वयं चक्रे पातालतलवासिनः ॥ २८ ॥
सूर्याचन्द्रमसोश्चक्रे [46]यथासंस्थानमच्युतः ।
पूर्ववद् योजयामास दिवारात्रस्थितौ च तौ ॥ २९ ॥
ओषधिषु च जातासु[47] यज्ञवृक्षेषु सत्तमाः ।
शस्यवीजेषु जातेषु देवेषु च पृथक् पृथक् ॥ ३० ॥

---

39 प्रभृतीनथ। 40 परिमृज्य। 41 सर्वसम्पदम्। 42 विशोकानि दल स्कन्द वनानि च। 43 सम्पूर्णा। 44 महत्तरम्। 45 सर्जयामास तान् मुनीन्। 46 रथसंस्थाना। 47 सर्वासु।

दक्षः कर्तुं समारेभे ज्योतिष्टोमं महाध्वरम्।
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्भरद्वाज एते सप्तर्षयोऽमलाः ॥ ३१ ॥
एतैः सप्तमुनीन्द्रैस्तु दक्षो ब्रह्मसुतः स्वयम्।
महायज्ञं ततश्चक्रे यावद्द्वादशवत्सरान् ॥ ३२ ॥
हूयमानेषु तत्रैव त्रिष्वग्निषु पुनः पुनः।
इज्यमाने वराहे तु यज्ञरूपे तदा द्विजैः।
चतुर्विधाः प्रजा जाता यज्ञादेव द्विजोत्तमाः ॥ ३३ ॥
ततो दक्षस्य संजाताः पुत्र्यः पुण्यास्त्रयोदश[48]।
स्वरूपगुणसम्पन्नाः सृष्ट्यर्थसमितप्रजाः ॥ ३४ ॥
ताः पूत्रीः प्रददौ दक्षः कश्यपाय महात्मने।
ताभ्यो जाताश्च बहवस्तैर्व्याप्तं सकलं जगत् ॥ ३५ ॥
स सर्वासां प्रजानां तु कश्यपो जनको ह्यभूत्।
निश्चितं द्विजशार्दूलाः कश्यपात् सकलं जगत् ॥ ३६ ॥
तासां नामानि तज्जाताःप्रजाः सर्वाः पृथक् पृथक्।
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सम्यक् कथयतो मम ॥ ३७ ॥
अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायूः सिंहिका मुनिः।
क्रोधा प्रधा वरिष्ठा च विनता कपिला तथा ॥
कद्रूस्त्रयोदशसुता एता दक्षस्य कीर्तिताः ॥ ३८ ॥
संजातो दक्षिणांगुष्ठान्मनसा ध्यायतो विधेः।
तेन देवमनुष्येषु दक्ष इत्येव कथ्यते ॥ ३९ ॥
ब्रह्मणो मानसाःपुत्रा दश पूर्वं प्रकीर्तिताः।
तेषां षट्सृष्टिकर्तारो व्यतीतेऽस्मिन् जनक्षये[49] ॥ ४० ॥
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचेस्तनयो जातः कश्यपो लोकभावनः ॥ ४१ ॥

---

48 चतुर्दश। 49 जगत्त्रये।

अस्यैव दक्षकन्याभ्यः प्रजा जज्ञेऽथ भूरिशः ।
अस्य जायाप्रजातानां नामतो विनिबोधत ॥ ४२ ॥
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणः सोम एव च ।
भर्गो विवस्वान् पूषा च सवितृत्वष्टृविष्णवः ॥ ४३ ॥
अदितेर्द्वादशसुता आदित्यास्ते प्रकीर्तिताः ।
एषां कनीयान् गुणवान् सदा यस्तपति प्रजाः ॥ ४४ ॥
स वै वंशकरो मुख्यो गद्यते वो दिवाकरः ।
एक एवं दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥ ४५ ॥
चत्वारस्तस्य तनया हृष्टा मदबलान्विताः ।
प्रल्हादो ह्यथ संल्हादो वाष्कलः शिविरेव च ॥ ४६ ॥
प्रल्हादस्य त्रयः पुत्रास्तेषामाद्यो विरोचनः ।
कुम्भो निकुम्भो बलवांस्त्रयः प्राह्लादयः[50] स्मृताः ॥ ४७ ॥
विरोचनसुतो जातो दानशौण्डो बलिर्महान् ।
बलेश्च पुत्रो विदितो बाणो नाम महाबली ॥ ४८ ॥
शम्भोरनुचरः श्रीमान् महाकालाह्वयश्च सः ।
बाणस्य च शतं पुत्राः कुसुम्भमकरादयः ॥ ४६ ॥
चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा विप्रचित्तिपुरःसराः ।
शम्बरो नमुचिश्चैव पुलोमा च तथैव च ॥ ५० ॥
असिलोमा तथा केशी दुर्जयोऽयःशिरास्तथा ।
अश्वशीर्षो क्षयः शंकुर्वियन्मूर्धा महाबलः ॥ ५१ ॥
वेगवान् केतुमांश्चैव स्वयं स्वर्भानुरेव च ।
अश्वो ह्यश्वपतिः कुण्डो वृषपर्वाजकस्तथा ॥ ५२ ॥
अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च [51]तुरुण्डुर्माण्डलस्तथा ।
[52]ऊर्ध्वबाहुश्चैकचक्रो विरूपाक्षो हराहरौ ॥ ५३ ॥
नियन्त्रश्च निकुम्भश्च कूपटश्चपटुस्तथा ।
सरभः सुलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौतथा ॥ ५४ ॥

50 प्रह्लादजाः । 51 भुजङ्गतुभेणस्तथा । 52 ईश्वराद्यश्चैक... ।

अन्यावेतौ दनोः पुत्रौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा।
दिवाकर-निशानाथौ तावन्यौ देवपुंगवौ ॥ ५५ ॥
एषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च तत्पुत्रैश्चैव भूरिभिः।
जगद्व्याप्तमिदं सर्वं बलवीर्यसमन्वितैः ॥ ५६ ॥
दनायूषोऽभवन् पुत्राश्चत्वारो बलवत्तराः।
वीरभद्रो विक्षरश्च वत्सो वृत्तस्तथैव च ॥ ५७ ॥
एषां चतुर्णां बहवः पुत्रा जाता द्विजोत्तमाः।
रूपसत्वबलोपेता एकैकस्य शतंशतम् ॥ ५८ ॥
कालायास्तनया जाताः कालेया इति विश्रुताः।
विख्यातास्ते महावीर्याश्चत्वारो दानवाधिपाः ॥ ५९ ॥
विनाशनश्च क्रोधश्च क्रोधहन्ता तथैव च।
क्रोधशक्रस्तथा चैते कालापुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ ६० ॥
सिंहिकायाः सुतो जातो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः।
सुचन्द्रश्चन्द्रहन्ता च तथा चन्द्रविमर्दनः ॥ ६१ ॥
* वेगवान् केतुमान् चैव अयःसुर्भानुरेव च।
अश्वोद्यपतिः कृष्टुरष्टपर्वाजुरुस्तथा ॥ ६२ ॥
क्रोधायास्तनया जाताः क्रूरकर्मकरास्तथा।
सिंहिकाचैव क्रोधा च द्वे सुते क्रूरिके सदा॥
ताभ्यां च प्रभवो वंशो ह्यतः क्रूरतरः स्मृतः ॥ ६३ ॥
एक एव मुनेः पुत्रो जातः शुक्रः कविर्महान्।
दैत्यदानवकालेयप्रभृतीनां सदा गुरुः ॥ ६४ ॥
चत्वारस्तस्य तनया जाता असुरयाजकाः।
त्वष्टावरस्तथात्रिश्च सौकलश्चेति वाग्मिनः ॥ ६५ ॥
तेजसा सूर्यसदृशा ब्रह्मलोक-प्रभावनाः।
[53]असुराणां सदैत्यानां कालेयानां तथैव च ॥ ६६ ॥

---

* अधिकः पाठः। 53 शम्बराणां।

क्रोधात्मजानाञ्च तथा सिंहिकातनयस्य च ।
सूतिप्रसूतिभिः सर्वं जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥ ६७ ॥
तेषां तु यान्यपत्यानि वर्धितानि क्रमाद्द्विजाः ।
तेषां वहुत्वात् संख्यातुं चिरेणापि न शक्यते ॥ ६८ ॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च अनूरुर्गारुडस्तथा ।
आरुणिर्वारुणिश्चैव विनतातनयाः स्मृताः ॥ ६९ ॥
शेषो वासुकिराजश्च तक्षकः कुलिकस्तथा ।
कूर्मश्च सुमनाश्चेति काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ॥ ७० ॥
भीमसेनोग्रसेनश्च सुपर्णो गरुडस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च वीर्यवान् ॥ ७१ ॥
अर्कदृष्टः प्रयुक्तश्च विश्रुतः सुश्रुतस्तथा ।
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वविद्वली ॥ ७२ ॥
शालिशीर्षश्च पर्जन्यः कलिर्नारद एव च ।
इत्येते देव गन्धर्वा मुनिपुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ ७३ ॥
अनवद्यां सानुरागां सं वरां मार्गणां प्रियाम् ।
असूयां सुभगां भीमामिति कन्यामसूयत ॥ ७४ ॥
प्राधा सर्वगुणोत्थानात् कश्यपात्तु तपोधनात् ।
विश्वावसुः सुचन्द्रश्च सुपर्णः सिद्ध एव च ॥ ७५ ॥
बर्हिः पूर्णश्च पूर्णांगो ब्रह्मचारी रतिप्रियः ।
भानुश्च दशमश्चैते प्राधापुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ ७६ ॥
इत्येते देवगन्धर्वाः सन्ततं पुण्यलक्षणाः ।
प्राधासूत महाभागा देवीं देवर्षिसत्तमात् ॥ ७७ ॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी गामिनी च मनोरमा ।
विद्युत्पन्नानधारम्भा ह्यरुणा रक्षितातुला ॥ ७८ ॥
[54]सुबाहुः सुरता चैव मरजा सुप्रिया तथा ।

54 सुराद्धेः ।

वपुस्तिलोत्तमा चेति मुख्या अप्सरसः स्मृताः ॥ ७९ ॥
अतिबाहुस्तुम्बुरुश्च हाहा हूहूस्तथैव च ।
गन्धर्वाणामिमे मुख्या देवतुल्याः प्रकीतिताः ॥ ८० ॥
अमृतं ब्राह्मणा गावो मुनयोऽप्सरसस्तथा ।
कपिलातनयाः[55] प्रोक्ता महाभागा महोत्सवाः ॥ ८१ ॥
इति दक्षसुतानां ये कश्यपात्तनयाः स्मृताः ।
तैरिदं सकलं व्याप्तं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ८२ ॥
एवं यज्ञवराहस्य यज्ञरूपस्य पातनात् ।
त्रिभ्योऽग्निभ्यो मनोस्तस्मात् स्वायम्भुव महात्मनः ॥८३॥
मुनिभ्यश्चैव सप्तभ्यः कश्यपादिभ्य एव च ।
नरनारायणाभ्यांतु व्यतीतेऽकालिके लये ।
पुनः प्रजाः पुरा सृष्टा हरिणानेकरूपिणा ॥ ८४ ॥
एवं पुनरभूत् सृष्टिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः ।
हरेस्तस्य प्रसादेन नरनारायणात्मनः ॥ ८५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेयउवाच

ईश्वरः शारभं कायं यथा तत्याज यत्नतः ।
तन्मे निगदतो भूयः शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ १ ॥
हते यज्ञवराहे तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच शरभं गत्वा सामयुक्तं जगद्धितम् ॥ २ ॥
देहाभोगेन भवतः पूरितं भूरियोजनम् ।
उपसंहर तस्मात् त्वं कायं लोकभयंकरम् ॥ ३ ॥
तव युद्धेन सकलं प्रणष्टं भुवनत्रयम् ।

55 कपिला च तथा .. ।

आकाशं गन्तुं त्वां दृष्ट्वा विभेत्यद्य जनार्दनः ।
तस्मात् त्वमूर्ध्वलोकानां हिताय त्यज वै तनुम् ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा सुरज्येष्ठस्य शंकरः ।
तत्याज शारभं कायं तोयोपर्येव तत्क्षणात् ॥ ५ ॥
त्यक्तस्य तस्य देहस्य शंकरेण महात्मना ।
अष्टौ पादा अष्टमूर्तेस्तेषु चाष्टसु भेजिरे ॥ ६ ॥
आद्यन्तु दक्षिणं पादमाकाशमगमद्द्रुतम् ।
तद्वामं मिहिरं भेजे पश्चाद् दक्षिणजं विधौ ॥ ७ ॥
वामन्तु ज्वलनं भेजे पृष्ठाग्रं पद्गतं क्षितिम् ।
पृष्ठाग्रवामं सलिलं तत्पश्चाद् दक्षिणं तथा ॥ ८ ॥
ययौ वामपदं भेजे होतारं सर्वतोमुखम् ।
एवं तस्याष्टमूर्तेस्तु अष्टमूर्तिषु तत्क्षणात् ।
अष्टौ पादास्तथा भेजुः स्वं स्वं तेजो ययुः पदम् ॥ ९ ॥
मध्यं तु शारभं कायं शंकरस्य महात्मनः ।
कपाली भैरवो भूतश्चण्डरूपी दुरासदः ॥ १० ॥
मस्तिष्कमेदसा युक्तं मांसं जुह्वति ते शुचौ ।
ब्रह्मकपालपात्रस्थं सुराभिर्देवपूजनम् ॥ ११ ॥
बलिर्मनुष्यमांसेन पानं तु रुधिरं सदा ।
सुरया पारणं यज्ञे कपालोद्भटधारणम् ॥ १२ ॥
व्याघ्रचर्मपरिधानं समलं त्रिवलीवृतम् ।
एवं कुर्वन्ति सततं कपालव्रतधारिणः ॥ १३ ॥
कपाली भैरवस्तेषां देवः पूज्यस्तु नित्यशः ।
श्मशानभैरवो योऽसौ यो महाभैरवाह्वयः ॥ १४ ॥
बालसूर्यसमोद्योतः सदाष्टादशबाहुभिः ।
विभ्राजमानो रक्ताक्षः सर्वदा नायिकाव्रजैः ॥ १५ ॥

कालीप्रचण्डाप्रमुखैः क्रीडमानस्तु नित्यशः ।
सद्योदग्धनृमांसाशी गलल्लोललसद्भुजः ॥ १६ ॥
लोहिताहारविघसः प्रेताशनगतः सदा ।
स्थूलवक्त्रोऽथ सम्बोष्ठो ह्रस्वस्थलपदालयः ।
विनोदी वादनो लोके साट्टहासस्तु भैरवः ॥ १७ ॥
एवं स च महादेवो महाभैरवरूपधृक् ।
मध्यशारभकायेन कायं दध्रे महाभुजः ॥ १८ ॥

स जगाम ततो देवा हरस्य प्रमथान् प्रति ।
गणैः सार्धं तथाकाशे विक्रीड़ति स भैरवः ॥ १६ ॥

स महाभैरवो देवः पूज्यमानो जगज्जनैः ।
अद्यापि कूरुते नित्यमिष्टकामस्य साधनम् । २० ॥

चैत्र-शुक्लचतुर्दश्यां मध्वासवपयःफलैः ।
भांसैर्मत्स्यैः सरुधिरैः सकृद्यो भैरवं यजेत् ॥ २१ ॥

स सर्वकामान् संसाध्य भोगान् भुक्त्वा यथेष्टतः ।
प्रयाति शम्भुभवनमारुह्य वृषभं वरम् ॥ २२ ॥

एतद्वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं द्विजोत्तमैः ।
भवद्भिर्यच्च वोऽन्यद् वा रोचते पृच्छ मां तु तत् ॥ २३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे शरभकायत्यागे पंचत्रिंशोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं वराहपुत्रोऽसौ नरको नाम वीर्यवान् ।
संजातो असुरसत्त्वः स देवदेवीसुतोऽपि सन् ॥ १ ॥
चिरजीवी कथं सोऽभूत् किमर्थमुदरे चिरम् ।
पृथिव्यां न्यवसज्जातः कुत्र वा स महाबलः ॥ २ ॥

सोऽसुराणां कथं राजा पुरं तस्य किमाह्वयम् ।
मलिनीरतिसंजातः स क्षितौ पोत्रिणस्तथा ॥ ३ ॥
श्रूयते मुनिशार्दूल कथं भूतस्तथाविधः ।
एतत्सर्वमशेषेण पृच्छतां त्वं वदस्व नः ॥ ४ ॥
त्वं नो गुरुश्च शास्ता च सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ।
कथं लब्धवरो भूतो ब्रह्मणा प्रभविष्णुणा ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे यत् पृष्टोऽहं द्विजोत्तमाः ।
यथा स नरको जातो [56]धरासुतो महासुरः ॥ ६ ॥
रजस्वलाया गोत्राया गर्भे वीर्येण पोत्रिणः ।
यतो यातस्ततोभूतो देवपुत्रोऽपि सोऽसुरः ॥ ७ ॥
गर्भसंस्थं महावीरं ज्ञात्वा ब्रह्मादयः सुराः ।
वराहपुत्रं दुर्धर्षं महाबलपराक्रमम् ॥ ८ ॥
गर्भ एव तदा देवाः शक्त्या दध्रुश्चिरं दृढम् ।
यथा कालेऽपि संप्राप्ते नो गर्भाज्जायते स च ॥ ९ ॥
ततस्त्यक्तशरीरस्तु वराहस्तनयैः सह ।
अतीव शोकसन्तप्ता जगद्धात्र्यभवत् क्षितिः ॥ १० ॥
शोकाकुला सा व्यलपच्चिरकालं मुहुर्मुहुः ।
प्रकृतिस्था क्षितिर्भूता माधवेन प्रबोधिता ॥ ११ ॥
ततः कालेऽपि संप्राप्ते दैवशक्त्या यदा धृतः ।
न गर्भः प्रसवं याति तदाभूत् पीडिता क्षितिः ॥ १२ ॥
कठोरगर्भा सा देवी गर्भभारं न चाशकत् ।
यदा वोढुं तदा देवं माधवं शरणं गता[57] ॥ १३ ॥
शरण्यं शरणं गत्वा माधवं जगतां पतिम् ।
प्रणम्य सिरसा देवी वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १४ ॥

---

56 धरागर्भो । 57 ययौ ।

पृथिव्युवाच

नमस्ते जगदव्यक्तरूप कारणकारण ।
प्रधान पुरुषातीत स्थित्युत्पत्तिलयात्मक ॥ १५ ॥

जगन्नियोजनपर स्वाहाभोगधरोत्तम ।
जगदानन्दनन्दात्मन् भगवन् जगदीश्वर ॥ १६ ॥

नियोजको नियोज्यश्च विभ्राजन् विष्णुरव्यय ।
नमस्तुभ्यं जगद्धातस्त्रिलोकालय विश्वकृत् ॥ १७ ॥

यः पालयति नित्यानि स्थापयत्येव तत्परः ।
त्वं त्वां नियमरूपेण नमामि जगदीश्वर[58] ॥ १८ ॥

त्वं माधवः प्रवेकश्च कामः कामालयो लयः ।
प्रसूतिच्युतिहेत्वर्थ-त्राणकारणमीश्वर ॥ १९ ॥

न यस्य ते क्लेदाय स्युरापो नोष्मा तथोष्मणे ।
नशीताय भवेच्छीतं तस्मै तुभ्यं नमोनमः ॥ २० ॥

न समुद्रः प्लवकरो न शोषाय दहात्मकः ।
न मृत्यवे यस्य यमस्तस्मै तुभ्यं नमोनमः ॥ २१ ॥

यच्चिद्धार्यं योगिभिः शान्तहेहै-
रुन्मार्गाणां यात्यरिध्येयकृत्यम् ।
नित्यं यद्रूपमार्गावसक्तं
स त्वं त्राहि त्राणमिच्छन् धरित्रीम् ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो हृषीकेशो जगद्धात्र्या तदा हरिः ।
प्रादुर्भूतस्तदा प्राह धरित्रीं दीनमानसाम्[59] ॥ २३ ॥

---

58 परमेश्वरम् । 59 दुःखकातराम् ।

श्रीभगवानुवाच

कथं दीनमना[60] देवि धरित्रि परिदेवसे ।
तव वा किं कृता पीडा वेत्तुमिच्छामि तामहम् ॥ २४ ॥
मुखं ते परिशुष्कं तु शरीरं कान्तिवर्जितम् ।
आकुलं नयनद्वन्द्वं भ्रूविभ्रमविवर्जितम् ॥ २५ ॥
ईदृशं तव रूपं तु दृष्टपूर्वं कदापि न ।
रूपस्य तु विपर्यासे दुःखवीजं च भाषये ॥ २६ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य माधवस्य जगत्पतेः ।
विनयावनता देवी पृथ्वी प्राह सगद्गदम् ॥ २७ ॥

पृथिव्युवाच

न गर्भभारं संवोढुं माधवाहं क्षमाधुना ।
भृशं नित्यं विषीदामि तस्मात् त्वं त्रातुमर्हसि ॥ २८ ॥
त्वया वराहरूपेण मलिनी कामिता पुरा ।
तेन कामेन कुक्षौ मे यो गर्भोऽयं त्वयाहितः ॥ २६ ॥
काले प्राप्तेऽपि गर्भोऽयं न प्रच्यवति माधव ।
कठोरगर्भा तेनाहं पीडितास्मि दिने दिने ॥ ३० ॥
यदि न त्राहि मां देव गर्भदुःखाज्जगत्पते ।
न चिरादेव यास्यामि मृत्योर्वशमसंशयम् ॥ ३१ ।
कयापि नेदृशो गर्भः पूर्वं माधव वै धृतः ।
योऽचलां चालयति मां सरसीमिव कुंजरः ॥ ३२ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः पृथिव्याः पृथिवीपतिः[61] ।
आह्लादयन् प्रत्युवाच हरिस्तप्तां लतामिव ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच

न धरे ते महद्दुःखं चिरस्थायि भविष्यति ।
शृणु येन प्रकारेण चानुभूतमिदं त्वया ॥ ३४ ॥

---

60 दुःखमना । 61 पृथिवीधरः ।

मलिन्या सहसंगेन यो गर्भः सन्धृतस्त्वया ।
सोऽभूदसुरसत्वस्तु घृष्टेः पुत्रोऽपि दारुणः ॥ ३५ ॥
ज्ञात्वा तस्य च वृत्तान्तं गर्भस्य द्रुहिणादयः ।
दैवीभिः शक्तिभिर्वद्धस्तव कुक्षौ तु तत् पुरः ॥ ३६ ॥
सर्गादौ यदि जायेत भवत्यास्तादृशः सुतः ।
भ्रंशयेत् सकलान् लोकांस्त्रीनिमान् ससुरासुरान् ॥ ३७ ॥
अतस्तस्य बलं वीर्यं ज्ञात्वा ब्रह्मादयः सुराः ।
प्राक्सृष्टिकाले ते गर्भं तथा धूर्जगतां कृते ॥ ३८ ॥
अष्टाविंशतितमे प्राप्ते आदिसर्गाच्चतुर्युगे ।
त्रेतायुगस्य मध्ये तु सुतं त्वं जनयिष्यति ॥ ३६ ॥
यावत् सत्ययुगं याति त्रेतार्धं च वरानने ।
तावद् वह महागर्भं दत्तः कालो मया तव ॥ ४० ॥
न यावज्जायते धात्रि गर्भस्ते ह्यतिदारुणः ।
तावद् गर्भवती दुःखं न त्वं प्रप्स्यसि भामिनी ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः पृथिवीं गर्भिणीं तदा ।
नाभौ पस्पर्श दयितां शंखाग्रेणातिपीडिताम् ॥ ४२ ॥
सा स्पृष्टा विष्णुना पृथ्वी शरीरं लघु चासदत् ।
गर्भेऽपि लघिमानं सा प्रापातीव सुखप्रदम् ॥ ४३ ॥
अगर्भा यादृशी नारी तादृशी साप्यजायत ।
धृतगर्भापि मुदिता सा वभूव जगत्प्रसूः ॥ ४४ ॥
ततः पुनरिदं वाक्यमुक्त्वा स भगवान् क्षितिम् ।
पुनः प्रसादयामास सामभिर्बहुभिश्च ताम् ॥ ४५ ॥
जगद्धात्रि महासत्वे त्वं धृतिर्धारणात्मिका ।
सर्वेषां धारणाद्देवि त्वं धात्रीति प्रगीयसे ॥ ४६ ॥
क्षमा यस्माज्जगद्धर्तुं शक्ता क्षान्तियुतात्र यत् ।
सर्वं वसु त्वयि न्यस्तं यस्माद्वसुमती ततः ॥ ४७ ॥

तद्दुःखं त्यज पुत्रस्ते यदा संजायते तदा ।
मां स्मरिष्यसि देवि त्वं पुत्रं ते पालयाम्यहम् ॥ ४८ ॥
इदं रहस्यं कुत्रापि न प्रकाश्यं त्वया धरे ।
यन्मया कथितं देवि रहस्यं परमं परम् ॥ ४६ ॥
गर्भस्तव महाभागे त्रेतायामध्यभागतः ।
उत्पत्स्यते हते वीरे रावणे रामसंज्ञिना ॥ ५० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ।
आज्ञाप्य पृथिवीं देवीं गर्भभारप्रपीडिताम् ॥ ५१ ॥
धरापि कुशला क्षामा लघुकाया बलैर्युता ।
अगर्भेव ययौ देवी मुदा परमया युता ॥ ५२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे धरादुःखविमोचने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ काले वहुतिथे व्यतीते द्विजसत्तमाः ।
विदेहविषये राजा जनको नाम वीर्यवान् ॥ १ ॥
सर्वराजगुणैर्युक्तो राजनीतिविवर्धितः ।
सत्यवाक् शीलवान् दक्षो व्रह्मण्यः प्रयतः शुचिः ॥ २ ॥
देवद्विजगुरूणां च पूजासु निरतः सदा ।
वभूव सर्वलोकानां पितेव परिपालकः ॥ ३ ॥
तस्य राज्ञः सुतो नाभूत् प्राप्ते कालेऽपि वै सदा ।
तदा स विमना भूत्वा चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ॥ ४ ॥
एकदा सोऽथ शुश्राव नारदस्य मुखान्नृपः ।
अपुत्रो नृपतिर्वृद्धो नाम्ना दशरथो महान् ॥ ५ ॥

पुत्रान् लेभे महासत्वानध्वरेण महामतिः ।
अयोध्यायां नगर्यां तु ऋष्यशृंगपुरोगमैः ।। ६ ।।
मुनिभिर्विहितैर्यज्ञैर्लब्धवान् सभूपः सुतान् ।
रामं च भरतं चैव शत्रुघ्नं लक्ष्मणं तथा ।। ७ ।।
महासत्वान् महावीरान् देवगर्भोपमाञ्छुभान् ।
तच्छ्रुत्वा जनको राजा प्रविश्यान्तःपुरं स्वकम् ।
भार्याभिर्मन्त्रयामास यज्ञार्थं पुत्रजन्मने ।। ८ ।।
मन्त्रयित्वा तदा राजा महिषीप्रमुखैः स्वयम् ।
चतसृभिस्तु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत् ।। ९ ।।
ततः पुरोधसं राजा गौतमं मुनिसत्तमम् ।
तत्पुत्रं च शतानन्दं पुरोधायोकरोन्मखम् ।। १० ।।
द्वौ पुत्रौ तस्य संजातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ ।
एका च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा ।। ११ ।।
नारदस्योपदेशेन यज्ञभूमिं ततो नृपः ।
हलेन दारयामास यज्ञबाटावधिस्वयम् ।। १२ ।।
तद्भूमिजातसीतायां शुभां कन्यां समुत्थिताम् ।
लेभे राजा मुदा युक्तः सर्वलक्षणसंयुताम् ।। १३ ।।
तस्यां तु जातमात्रायां पृथिव्यन्तर्हिता स्वयम् ।
जगाद वचनं चेदं गौतमं नारदं नृपम् ।। १४ ।।

पृथिव्युवाच

एषा सुता मया दत्ता तव राजन् मनोहरा ।
एनां गृहाण सुभगां कुलद्वयशुभावहाम् ।। १५ ।।
अनया मे महाभारस्तत्त्वतो हेतुभूतया ।
क्षयं यास्यति भारार्तिं मोचयिष्यामि दारुणाम् ।। १६ ।।
रावणाद्या महावीराः कुम्भकर्णादयोऽपरे ।
नाशं यास्यति दुर्घर्षाः कृतेऽस्या राक्षसाः परे ।। १७ ।।

त्वंच मोदं दुराधर्षं दुहितृकृतिजं नृपः ।
अवाप्स्यसि सुराणां च पितॄणामृणशोधनम् ॥ १८ ॥
किन्त्वेकः समयः कार्यस्त्वया मम नरोत्तम ।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि पुरो नारदगौतमौ ॥ १६ ॥
निहते रावणे वीरे भारार्ति-रहिता सुखम् ।
सुपुत्रं जनयिष्यामि यज्ञभूमावहं तव ॥ २० ॥
तं पुत्रवत् पालयिता भवान् नृपतिसत्तम ।
यावद्व्यतीतबाल्यः सन् भविता तनयो मम ॥ २१ ॥
व्यतीतबाल्यं तमहं पालयिष्ये स्वयं नृप ।
तस्य स्यान्मानुषो भावो यथा त्वं तत्करिष्यसि ॥ २२ ॥

मार्कण्डेयउवाच

इति पृथिव्या वचनं श्रुत्वा राजा तदा मुदा ।
प्रणम्य पृथिवीं प्राह साम्ना स जनकाह्वयः ॥ २३ ॥

राजोवाच

यत् त्वं ब्रूषे जगद्धात्रि करिष्ये तद्वचस्तव ।
ममापीष्टं प्रयच्छस्व प्रसीद परमेश्वरि ॥ २४ ॥
देवि प्रत्यक्षतो रूपं द्रष्टुमिच्छाम्यहं तव ।
शक्तिस्त्वं लोकजननी त्वां नमामि प्रसीद मे ॥ २५ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा जनकस्य तदा क्षितिः ।
मुनीनां सन्निधौ रूपं दर्शयामास भूभृते ॥ २६ ॥
नीलोत्पलदलश्यामामक्षमालाब्जधारिणीम् ।
बाहुयुग्मेन शुभ्रेण मृणालायतशोभिना ।
सुन्दरीं लोकधात्रीं तां दृष्ट्वा शश्वत् नृपोऽनमत् ॥ २७ ॥
ततः सा पृथिवी देवी सीतां जातां नृपात्मजाम् ।
करेण शश्वत् संस्पृश्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २८ ॥
इयं ते मानुषं भावमवाप्स्यति जगत्प्रसूः ।
तव पुत्री नृपश्रेष्ठ समयं प्रतिपालय ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

युक्त्वा पृथिवी देवी राजानं जनकाह्वयम् ।
सम्भाष्य नारदादींस्तांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३० ॥
जनकोऽपि सुतां लब्धा सर्वलक्षणशालिनीम् ।
सुतद्वयं तथा प्राप्य मुदितः स्वगृहं ययौ ॥ ३१ ॥
ततः काले तु सम्प्राप्ते रावणे राक्षसे हते ।
मानुषेण स्वरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३२ ॥
गत्वा विदेहराजस्य यज्ञभूमिं तदा क्षितिः ।
सुषुवे तनयं वीरं यत्र सीता पुराभवत् ॥ ३३ ॥
जाते पुत्रे तदा देवी जगद्धात्री जगत्प्रभुम् ।
सस्मार समये विष्णुं स्मरन्ती समयं पुरा ॥ ३४ ॥
स्मृतमात्रस्तदा देवः समयं प्रत्यपालयत् ।
क्षितेर्यत्र सुतो जातस्तत्र प्रादुर्बभूव ह ॥ ३५ ॥
प्रादुर्भूतं तदा देवी प्रणम्य परमेश्वरम् ।
संस्तूय सुनृतं शश्वदिदमाह जगत्प्रभुम् ॥ ३६ ॥

पृथिव्युवाच

एष ते तनयोजातः सुकुमारो महाप्रभः ।
संस्मरन् समयं पूर्वं त्वमेनं प्रतिपालय ॥ ३७ ॥

श्रीभगवानुवाच

अयं ते तनयो देवी महाबलपराक्रमः ।
भविता मानुषं भावं तन्वानः सुचिरं बुधः ॥ ३८ ॥
यावन्मानुषभावं ते तनयो भावयिष्यति ।
तावत् कल्याणभाग्भूत्वा चिरं राज्यं करिष्यति ॥ ३९ ॥
त्यक्तमानुषभावस्तु यदा चायं विचेष्टते ।
तदा तु नास्य सुचिरं जीवितं सम्भविष्यति ॥ ४० ॥

सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे राज्यमासादयिष्यति ।
धनरत्नगजैश्वर्ययुक्तोऽयं रथसंचयैः ।
आसाद्य महतीं नित्यं श्रियं भोक्ष्यति वीर्यवान् ॥ ४१ ॥
यस्मिन् यस्मिन् युगे भावो यो वा भवति वै नृणाम् ।
तं भावं तथैवार्य करिष्यति तथा कुरु ॥ ४२ ॥
एतस्य निभृतं राज्यं यत् प्राग्ज्योतिषसंज्ञकम् ।
पुरं तत्र चिरं शास्ता राज्यमेष सुतस्तव ॥ ४३ ॥
इत्युक्त्वा पृथिवीं विष्णुः समाभाष्य जगत्पतिः ।
दृश्यमानस्तया क्षिप्रं तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ॥ ४४ ॥
प्रसूय पृथिवी पुत्रं मध्यरात्रे महाद्युतिम् ।
जनकं ज्ञापयामास रहस्यं पूर्वमीरितम् ॥ ४५ ॥
विदेहराजो ज्ञात्वैव पृथिवीजनितं सुतम् ।
तत्रैव यज्ञवाटं स रात्रावागात् कृतक्रियः ॥ ४६ ॥
गच्छन्तं यज्ञवाटं तं दृष्ट्वा सर्वंसहा तदा ।
नोक्त्वा किंचन तं शश्वदन्तर्धानं गता नृपम्[62] ॥ ४७ ॥
अथ गत्वा तदा तत्र विदेहाधिपतिः सुतम् ।
धरायां ददृशे कान्त्या चन्द्रार्कज्वलनोपमम् ॥ ४८ ॥
रुदन्तं बहुशः स्निग्धं चलद्हस्तपदद्वयम् ।
वपुष्मन्तं श्रियादीप्तं कार्तिकेयमिवापरम् ॥ ४९ ॥
उद्गच्छन् स रुदन् बालो यज्ञभूमिं व्यतीत्य च ।
कियद्दूरं जगामाशूत्तानशायी महाद्युतिः ॥ ५० ॥
मनुष्यस्य शिरस्तत्र मृतस्य प्राप्य बालकः ।
स्वशिरस्तत्र विन्यस्य रुदंस्तस्थौ क्षणं तदा ॥ ५१ ॥
ततो विदेहराजोऽपि मार्गमाणः क्षितेःसुतम् ।
व्यतीत्य यज्ञभूमिं तमाससादाञ्जसा बहिः ॥ ५२ ॥

---

62 द्रुतम् ।

आसाद्य बालकं दीप्तं प्रदीप्तमिव पावकम् ।
[63]कान्त्या चन्द्रमसस्तुल्यं तेजोभिर्भास्करोपमम् ।। ५३ ।।
शरमध्यगतं पूर्वं पावकिं पावको यथा ।
स्वयं जग्राह तं राजा पृथिव्याः समयं स्मरन् ।। ५४ ।।
उद्गृह्णन् तच्छिरोदेशे ददृशे मानुषं शिरः ।
शशंसचाचिरं शीर्षं मानुषं गौतमाय सः ।। ५५ ।।
अथ बालं समादाय प्रविश्यान्तःपुरं स्वकम् ।
महिष्यै कथयामास प्राप्तं पुत्रं गुहोपमम् ।। ५६ ।।
सा तं दृष्ट्वा विशालाक्षं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ।
विस्तीर्णहृदयं कान्तं नीलोत्पलदलच्छविम् ।
मुमोद पालनीयोऽयं मयेति न्यवदत् नृपम् ।। ५७ ।।
तां राजापि ततः प्राह पुत्रोऽयं मम सुन्दरि ।
यज्ञभूमौ समुत्पन्नः स्वच्छन्दं पाल्यतामयम् ।। ५८ ।।
यत् पृथिव्या रहः प्रोक्तं न तद्देव्यै न्यवेदयत् ।
सत्यसन्धो नृपश्रेष्ठः प्रियाया अपि भाषितम् ।। ५९ ।।

मम सुतसुतवंशान् पालयित्री धरेय-
मिति नरपतिवर्यो मोदवांस्तद्दिने च ।
सुरतनयसमानं पुत्रमासाद्य देवी ।
जितरिपुरतिधीमान् स्यादयञ्चेत्यमोदत् ।। ६० ।।

इति श्रीकालिकापुराणे नरकजन्म-कथने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।। ३७ ।।

63 कान्त्या चन्द्रं विनिन्दन्तं ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्य नृपश्रेष्ठो गौतमेन महर्षिणा ।
संस्कारं कारयामास विधिना मानुषेण तु ॥ १ ॥
नरस्य शीर्षे स्वशिरो निधाय स्थितवान् यतः ।
तस्मात्तस्य मुनिश्रेष्ठो नरकं नाम वै व्यधात् ॥ २ ॥
अपरान् बालसंस्कारान् क्षात्रेण विधिना मुनिः ।
केशान्तावधि संचक्रे ऋग्यजुः-साममन्त्रकैः ॥ ३ ॥
ववृधे तस्य सदने नरको नाम भूसुतः ।
दिनंदिनं धृतान्यश्रीः शरदीव निशाकरः ॥ ४ ॥
स राजा तं सदा भावैर्मानुषैर्योजयन् स्वयम् ।
गौतमस्य सुतेनाथ शतानन्देन धीमता ।
ग्राहयामास तन्नित्यं क्षात्रं भावं च मानुषम् ॥ ५ ॥
तथैव पृथिवी देवी धात्रीवेषेण तं सुतम् ।
नियतं ग्राहयामास मानुषं चरितं शुभम् ॥ ६ ॥
यदैव पुत्र उत्पन्नस्तदैव पृथिवीस्वयम् ।
मायामानुषरूपेण नृपान्तःपुरमाविशत् ॥ ७ ॥
प्रविश्य तत्र सा देवी नृपस्यानुमतेऽभवत् ।
धात्री तस्य द्विजश्रेष्ठाः कात्यायन्या ह्यवस्थया ॥ ८ ॥
यावत् षोडशवर्षाणि तस्य बालस्य भावीनि ।
तावत् स्वयं पालयन्ती ग्राहयामास संनयम्[64] ॥ ९ ॥
स वर्धमानोऽनुदिनं नरकः पृथिवीसुतः ।
अत्यक्रामत् सुतान् सर्वान् जनकस्य महात्मनः ॥ १० ॥
शरीरेणाथ वीर्येण रूपेण बलवत्तया ।
धनुषा गदया वीरो ह्यत्यक्रामन् नृपात्मजान् ॥ ११ ॥

---

64 विनयम् ।

स शास्त्रवादकुशलो धनुर्वेदे च कोविदः ।
वर्षैः षोडशभिर्भूतो वीरैरन्यैर्दुरासदः ॥ १२ ॥
विदेहाधिपतिर्दृष्ट्वा महाबलपराक्रमम् ।
ततो न्यूनान् स्वपुत्रांश्च नातिहृष्टमनाभवत् ॥ १३ ॥
निरस्यासौ च मत्पुत्रान् मम राज्यं ग्रहीष्यति ।
काले प्राप्ते महावीरो मतिस्तस्याभवत् पुरा ॥ १४ ॥
अन्तःपुरे यदा पुत्रान् सर्वान् रमयते नृपः ।
तदा तु नरकं वीक्ष्य हर्षं प्राप्नोति[65] नाधिकम् ॥ १५ ॥
तस्य तद्बुबुधे देवी नृपस्याथ वसुन्धरा ।
महिषी विस्मयं चक्रे तस्मिन् भावे तु भूभृतः ॥ १६ ॥
अथैकदा महादेवी जनकस्य महात्मनः ।
पप्रच्छ नृपतिश्रेष्ठं विदेहाधिपतिं पतिम् ॥ १७ ॥
नाथ पृच्छामि ते किंचिद्रहस्यं यदि नो तव ।
तदा मां तद्वदस्व त्वं कृपा चेद्विद्यते मयि ॥ ८ ॥
यदैव तनयाः सर्वे विहरन्ति पुरस्तव ।
तदैव नरकं दृष्ट्वा विशीर्ण[12] इव लक्ष्यसे ॥ १९ ॥
तन्मे रात्रिन्दिवं वाढं विस्मयः प्रतिवर्धते ।
संशयश्च भयं चैव न जहाति च मां सदा ॥ २० ॥
रूपवान् वीर्यवानेष नये च विनये तथा ।
कुशलः प्रतिबुद्धश्च पुत्रस्तव महाबलः ॥ २१ ॥
न सभाजयसे कस्मात् पुत्रमन्यैर्दुरासदम् ।
तदहं ज्ञातुमिच्छामि यदि तथ्यं वदस्व मे ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रियायाः पृथिवीपतिः ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं देवीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

---

65 नाप्नोति चाधिकम् । 12 विमना ।

राजोवाच

कथयिष्ये प्रिये तत्त्वं यत् पृष्टोऽहं त्वयाधुना ।
मासत्रये व्यतीते तु समयं प्रतिपालय ॥ २४ ॥
निगूढः कश्चिदत्रास्ति देवस्य समयो मम ।
तेनाधुना न किंचित्ते कथयिष्यामि तद्रहः ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

राज्ञो ह्ययं सभार्यस्य संवादोऽभवदन्तिके ।
मानुषी पृथिवी धात्री तं शुश्राव यदा तदा ॥ २६ ॥
श्रुत्वा तयोस्तु संवादं महिषीभूपयोः क्षितिः ।
मासत्रयेण समयं दत्तं देव्यै धराभृता ॥ २७ ॥
तत्काले विमनस्कं च भूपं नरकसंज्ञया ।
त्रिभिर्मासैर्व्यतीतैः स्यादस्य षोड़शवत्सरः ॥ २८ ॥
ततो नृपो महिष्यास्तु कथयिष्यति तद्रहः ।
ततो मम रहस्यं तु विदितं सम्भविष्यति ॥ २९ ॥
चिन्तयित्वेति सा देवी जगद्धात्री सुतं प्रति ।
निश्चित्येदं तदा कृत्यं प्राप्तकालमचेष्टत ॥ ३० ॥
ततो रहसि भूपं तं समासाद्य सगौतमम् ।
इदमाह जगद्धात्री स्वपुत्रार्थे यशस्विनी ॥ ३१ ॥
यो मया समयो दत्तः पालितः स त्वयानघ ।
पुत्रश्च पालितो मेऽयं नरको विनयैर्युतः ॥ ३२ ॥
सम्प्राप्तयौवनः पुत्रो योजितश्च त्वया नयैः ।
तव प्रसादात् पुत्रो मे सुखी वृद्धो गृहे तव ॥ ३३ ॥
तमहं पूर्वसमयान्नयिष्यामि स्वमात्मजम् ।
अनुजानीहि भद्रं ते नरकस्य गतिं प्रति ॥ ३४ ॥
रक्षितव्यश्च भवता समयः सपुरोधसा ।
छन्नमेव[66] नयिष्यामि भूपते मा कृथा व्यथाम्[67] ॥३५॥

66 गुप्तमेव । 67 कथाम् ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जगतां धात्री विदेहाधिपतिं नृपम् ।
तत्रैव पश्यतां तेषामन्तर्धानमुपागमत्[68] ।। ३६ ।।
नृपोऽपि तस्यास्तद्वाक्यमगींकृत्य क्षितिं प्रति ।
तस्याः प्रत्यक्षतः स्थानं जगाम सपुरोहितः ।। ३७ ।।
अथैकदा धरा देवी मायामानुषरूपिणी ।
उपांशु नरकं प्राह धात्री तस्य महात्मनः ।। ३८ ।।
त्वया समं महाबाहो गंगां यातुं मनो मम ।
यदि त्वं यासि यास्यामि रथेनाद्यैव पुत्रक ।। ३९ ।।

नरक उवाच

न पितुर्वचनं यास्ये विना मातस्त्वया समम् ।
अनुज्ञाप्य रथेनाहं यास्ये गंगां त्वया समम् ।। ४१ ।।

धात्र्युवाच

न ते पितायं जनको यः सर्वजगतां प्रभुः ।
स ते पिता तं गंगायां पश्य गत्वा मया सह ।। ४२ ।।
अयं पिता पालकस्ते न राज्यं सम्प्रदास्यति ।
यस्ते वर्धयिता तात तमासादय पुत्रक ।। ४३ ।।
अत्र यद्मद्रहस्यं तद् गंगायामेव पुत्रक ।
कथयिष्याम्यहं सर्वं रहोभंगस्ततोऽन्यथा ।। ४४ ।।

मार्कण्डेय उवाच

जातसम्प्रत्ययो धात्र्या वचसा नरकस्तथा ।
विहाय यानं छन्देन पद्भ्यां गंगां ययौ तदा ।। ४५ ।।
अथ गंगां समासाद्य संस्नाप्य विधिवत् सुतम् ।
आत्मानं दर्शयामास पृथिवी स्वसुताय व ।। ४६ ।।

---

68 पागतम् ।

मायामानुषमूर्तिं तां विहाय जगतां प्रसूः।
नीलोत्पलदलश्यामं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४७ ॥
सर्वांगसुन्दरं चारु नानालंकारभूषितम्।
पुत्राय दर्शयामास नरकाय[69] वसुन्धरा ॥ ४८ ॥
कथामेताञ्च पूर्वस्मिन्नुद्भूतां पृथिवी तदा।
कथयामास पुत्राय प्रतीतिर्जायते यथा ॥ ४६ ॥

पृथिव्युवाच

मम गर्भे यथा पुत्र वर्धसे त्वं दिने दिने।
ब्रह्मादयस्तदा देवा आलोक्य स्वयमेव ते ॥ ५० ॥
मलिनीक्षितिसंजातः पुत्रो विष्णोर्महात्मनः।
आसुरं भावमास्थाय सर्वानस्मान् हनिष्यति ॥ ५१ ॥
इति चिन्तापरा देवाः कुमन्त्रं चक्रिरे तदा।
अयं नोत्पद्यतां गर्भाद्गर्भे तिष्ठत्वयं सदा ॥ ५२ ॥
ततो मम भवान् गर्भे सुबहूनि युगान्यथ।
अवसद्दुःखवान् पुत्र देवानां च कुमन्त्रतः ॥ ५३ ॥
मृतकल्पाभवमहं भवतो धारणात् सुत।
ततोऽहं शरणं याता भगवन्तं सनातनम् ॥ ५४ ॥
नारायणस्य वाक्यात् तु भवानुत्पन्नवांस्ततः।
इति सत्यं मम वचः पुत्र जानीहि निश्चितम् ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ यावन्नपुत्रस्य विस्मयः समपद्यत।
तावदेव स्वयं देवी प्रोचे पुत्रमिदं वचः ॥ ५६ ॥
यथा विदेहराजस्य यज्ञभूमावसूयत।
विदेहराजेन समं यादृशः समयोऽभवत् ॥ ५७ ॥
यथा मानुषरूपेण धात्री सा समपद्यत।
तत् सर्वं कथयामास नरकाय महात्मने ॥ ५८ ॥

---

69 वपुस्तदा।

अथ तां पृथिवीं प्राह नरकः पुनरेव हि ।
पृथिव्याः वचनं श्रुत्वा स्वल्पसंशयसंयुतः ॥ २६ ॥

नरक उवाच

यद्येवं मे पिता विष्णुर्माता त्वं पृथिवी शुभे ।
आगच्छतु जगन्नाथो ममैवाभ्युपपत्तये ॥ ६० ॥
स एव सर्व लोकेशो यदि मां भाषतेऽच्युतः ।
पिताहं ते त्वियं माता श्रद्धघे तदहं शुभे ॥ ६१ ॥
त्वया मानुषरूपेण धात्र्याहं प्रतिपालितः ।
तद्र पं द्रष्टुमिच्छामि यदि तेरू पमीदृशम् ॥ ६२ ॥

पृथिव्युवाच

अहं ते जननी तात मया ज्ञातोऽसि पुत्रक ।
पृथिव्यहं जगद्धात्री मद्र ू पं मृन्मयन्त्विदम् ॥ ६३ ॥
पिता तव महाबाहो प्रभुर्णारायणोऽव्ययः ।
अच्युतो जगतां धाता महात्मा शूकरात्मधृक् ॥ ६४ ॥
तेनाहितस्त्वं मद्गर्भे सुचिरं त्वं पुरावसः ।।
सम्प्राप्ते समये जातः पालितश्चेह भूभृता ६५ ॥

मार्कण्डय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा हर्षशोकाकुलस्तदा ।
नरकः पृथिवीं देवीमिदमाह धनुर्धरः ॥ ६६ ॥

नरक उवाच

न माता विदिता पूर्वं माताहमिति भाससे ।
विष्णुः पितेति च वचो न पिता विदितो मम ॥ ६७ ॥
जानामि पितरं चाहं विदेहाधिपतिं नृपम् ।
तस्य भार्य्यां सुमत्याख्यामहं जानामि मातरम् ॥ ६८ ॥
भ्रातरस्तत्सुताः सर्वे सीता मे भगिनी शुभा ।
सुमतिर्मम मातेति लोको जानाति सन्ततम् ॥ ६९ ॥

कात्यायनी च धात्री मे याधुनैव कृता त्वया ।
एतत् सर्वं त्वया मिथ्या शंशितं मम साम्प्रतम् ।
यथा तत्वाहं तनयः सत्यमाख्याहि तन्मम ॥ ७० ॥

मार्कण्डेय उवाच

पुत्रस्य वचनं चेति श्रुत्वा सर्वंसहा तदा ।
सर्वं तत् पूर्ववृत्तान्तं तनयाय न्यवेदयत् ॥ ७१ ॥
यथा मलिन्या सम्भोगो वराहस्याभवत् पुरा ।
यथा गर्भे धृतो देवैर्येन वा कारणेन सः ॥ ७२ ॥
यथा च गर्भदुःखार्ता माधवं शरणं गता ।
यथा तेन प्रदत्तश्च समयो जनकं प्रति ॥ ७३ ॥

ऋषयः ऊचुः

किमर्थं समयो दत्तो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
निहते रावणे वीरे रामेण सुमहात्मना ॥ ७४ ॥
भविष्यति सुतस्ते वै तत्र नः संशयो महान् ।
एतान् त्वं संशयान् छिन्धि गुरो शास्तासि नः सदा ॥७५

मार्कण्डेय उवाच

भारार्ता रावणादीनां पृथिवी मांसभोगिनाम् ।
अधोगता योजनानि पंच वै द्विजसत्तमाः ॥ ७६ ॥
अयं वराहवीर्येण जातो गर्भे क्षितेः पुनः ।
असावपि महाराजो दशग्रीवो यथाभवत् ॥ ७७ ॥
अधो यास्यति भारार्ता सातीव पृथिवी त्विति ।
समयो दत्तवात् विष्णू रावणे निहते सति ।
धरायै भारविहतिव्याजेन द्विजसत्तमाः ॥ ७८ ॥
त्वत्पूर्वरूपं दृष्ट्वा वै वचनाच्च जगद्गुरोः ।
जातश्रद्धो महाभागे स्थास्यामि समये तव ॥ ७९ ॥

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा पृथिवी प्रथमं तदा ।
मायामानुषरूपं तत् प्रतिजग्राह तत्पुरः ॥ ८० ॥

यथा कात्यायनीरूपं येन रूपेण पालितः ।
नरकः सा तु तद्गृह्य तत्याज पृथिवी तनुम् ॥ ८१ ॥

अथ दृष्टैव नरको धात्रीं कात्यायनीं तदा ।
पप्रच्छ पूर्वं वृत्तान्तं यद्वृत्तं नृपमन्दिरे ॥ ८२ ॥

सा तथा कथयामास यथा सम्प्रति पालितः ।
यद्वृत्तं पूर्वतो गेहे नृपस्य जनकस्य तु ॥ ८३ ॥

जातसम्प्रत्ययस्तत्र नरकः समपद्यत ।
पृथिवी च पुनर्देवीरूपं स्वं जगृहे तदा ॥ ८४ ॥

अथ सस्मार पृथिवी जगन्नाथं हरिं प्रभुम् ।
समये पूर्वविहिते प्रणम्य शिरसा मुहुः ॥ ८५ ॥

स्मृतमात्रस्तदा क्षित्या माधवो गरुड़ध्वजः ।
प्रसन्नो जगतां नाथः प्रत्यक्षत्वं गतस्तदा ॥ ८६ ॥

तं दृष्ट्वा पृथिवी देवी देवं गरुड़वाहनम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ८७ ॥

पीताम्बरं जगन्नाथं श्रीवत्सोरस्कमव्ययम् ।
प्रणनाम महाभक्त्या पस्पर्श शिरसा महीम् ॥ ८८ ॥

परमेश जगन्नाथ जगत्कारणकारण ।
प्रसीदेति वचश्चापि तदा प्रोचे जगतप्रसूः ॥ ८९ ॥

नरकस्तु हरिं दृष्ट्वा निमील्य नयनद्वयम् ।
तत्तेजसा चाभिभूतस्तदा भूमावुपाविशत् ॥ ९० ॥

उपविष्टे तदा देवी तनये नरकाह्वये ।
प्रसादयामास तदा पुत्रार्थे वरवर्णिनी ॥ ९१ ॥

प्रसाद्यमानो धरया हरिर्नारायणोऽव्ययः ।
शंखाग्रेण तदा पुत्रं पस्पर्श नरकाह्वयम् ॥ ९२ ॥

स्पृष्टमात्रोऽथ हरिणा नरकोऽभूत् सुदर्शनः ।
हृष्टश्चोत्साहवांश्चैव बलवान् समपद्यत ॥ ९३ ॥
तत उत्थाय नरको हरिं नारायणं प्रभुम् ।
भक्त्या प्रणम्य गोविन्दं साष्टांगं च मुहुर्मुहुः ॥ ९४ ॥
ननाम पृथिवीं वीरो जातसम्प्रत्ययस्तदा ।
प्रणम्य च महाभागां भक्त्या परमया युतः ॥ ९५ ॥
प्राञ्जलिः पुरतस्तस्थौ नोक्त्वा किंचन वै भिया ।
ततस्तदर्थे पृथिवी माधवं समयाचत ॥
प्रसीद देवदेवेश समयं प्रतिपालय ।
त्वयाहं तनयो दत्तो मम सर्वं जगत्पते ।
एतदर्थे प्रतिज्ञातं यद्दत्तं प्रतिपालय ॥ ९७ ॥

भगवानुवाच

भवती यत्सुपुत्रार्थे मामयाचत पुरा मया ।
तत् सर्वं तव दत्तं वै राज्यं दत्तं च त्वत्सुते ॥ ९८ ॥
इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुरादाय नरकाह्वयम् ।
सार्द्धं पृथिव्या गंगायां ममज्ज जगतां प्रभुः ॥ ९९ ॥
निमज्य क्षणमात्रेण प्राग्ज्योतिषपुरं गतः ।
मध्यगं कामारूपस्य कामाख्या यत्र नायिका ॥ १०० ॥
स च देशः स्वराज्यार्थे पूर्वं गुप्तश्च शम्भुना ।
किरातैर्बलिभिः क्रूरैरज्ञैरपि च वासितः ॥ १०१ ॥
रुक्मस्तम्भनिभांस्तत्र किरातान् ज्ञानवर्जितान् ।
अनर्थमुण्डितान् मद्यमांसाशनैकतत्परान् ॥ १०२ ॥
ददर्श विष्णुः कुपितान् [70]विष्णुं दृष्ट्वा द्विजर्षभाः
तेषामधिपतिस्तत्र[71] घटको नाम वीर्यवान् ।
रुक्मस्तम्भनिभस्तत्रः प्रदीप्त इव पावकः ॥ १०३ ॥

---

70 दृष्ट्वा विष्णुं तदा तत्र । 71......स्तूर्णं ।

स क्रोधाच्चतुरंगेन वलेन महता युतः ।
आससाद जगन्नाथं नरकं च महाबलम्[72] ॥ १०४ ॥
आसाद्य शरवर्षेण ववर्ष प्रभुमव्ययम् ।
किरातैः सहितो राजा घटकाख्यः किरातराट् ॥ १०५ ॥
माधवोपि तदा पुत्रं नरकं वीर्यवत्तरम् ।
प्रेसयामास युद्धाय किरातनृपतेस्तदा ॥ १०६ ॥
नरको धनुरादाय सह तैर्बलवत्तरैः ।
युयुधे सुचिरं तत्र शस्त्रास्त्रैर्बहुधेरितैः ॥ १०७ ॥
ततोऽसौ भल्लमादाय योजयित्वा धनुर्गुणैः ।
शिरः किरातराजस्य चिच्छेद नरको बली ॥ १०८ ॥
मुख्यान् मुख्यान् किरातांश्च बहून् सेनाधिपांस्तथा ।
जघान कुपितो बीरः केशरीव मतंगजान् ॥ १०९ ॥
हतेऽथ नृपतौ केचित् पलायनपरायणाः ।
किराताः केचन पुनर्नरकं शरणं गताः ॥ ११० ॥
निहत्य युध्यमानांस्तु संरक्ष्य शरणं गतान् ।
नरकः पितरं गत्वा प्रणम्याथ न्यवेदयत् ॥ १११ ॥

नरक उवाच

हतस्तात किरातानामधिपो घटको मया ।
सेनाधिपाश्च तस्यान्ये किमन्यत् करवाण्यहम् ॥ ११२ ॥

भगवानुवाच

किरातान् जहि यावत्त्वं देवीं दिक्करवासिनीम् ।
पलायमानान् विद्राव्य पालय शरणं गतान् ॥ ११३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नरको वीरः समारुह्य सितं गजम् ।
चतुर्दन्तं महाकायं किराताधिपवाहनम् ॥ ११४ ॥

---

72 महाबलः ।

ऐरावतसमं वीर्ये वेगेन गरुडोपमम् ।
किरातान् द्रावयामास यावद्दिक्करवासिनीम् ॥ ११५ ॥
पितरं पुनरागत्य वचनं चेदमब्रवीत् ।

नरक उवाच

विद्राविताः किरातास्ते सागरान्तं समाश्रिताः ।। ११६ ॥
हतश्च घटकाख्यो हि किराताधिपतिर्महान्
वेगितं गजमारुह्य ऐरावतसमं गुणैः ।
यदन्यत् करणीयं मे तदाज्ञापय सम्प्रति ॥ ११७ ॥

भगवानुवाच

करतोया सदा गंगा पूर्वभागावधिश्रया ।
यावल्ललितकान्तास्ति तावदेव पुरं तव ॥ ११८ ॥
अत्र देवी महाभागा योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
कामाख्यारूपमास्थाय सदा तिष्ठति शोभना ॥ ११९ ॥
अत्रास्ति नदराजोऽयं लौहित्यो ब्रह्मणः सुतः ।
अत्रैव दशदिकपालाः स्वे स्वे पीठे व्यवस्थिताः ॥ १२० ।
अत्र स्वयं महादेवो ब्रह्मा चाहं व्यवस्थितः ।
चन्द्रः सूर्यश्च सततं वसतोऽत्र च पुत्रक ॥ १२१ ॥
सर्वे क्रीडार्थमायाता रहस्यं देशमुत्तमम् ।
अत्र श्रीर्वसते भद्रा भोग्यमत्र तथा बहु ॥ १२२ ॥
अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राङ्नक्षत्रं ससर्ज ह ।
ततः प्राग्ज्योतिषाख्येयं पुरी शक्रपुरीसमा ॥ १२३ ॥
अत्र त्वं वस भद्रं ते ह्यभिषिक्तो मया स्वयम् ।
कृतदारः सहामात्यै राजा भूत्वा महाबलः ॥ १२४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा स्वयं विष्णुः शम्भोरनुमते तदा ।
सर्वान् किरातान् पूर्वस्यां सागरान्ते न्यवेशयत् ॥ १२५ ॥

पूर्वं ललितकान्तायाः समादायावधिं पुनः ।
यावत् सागरपर्यन्तं किरातास्तावदावसन् ॥ १२६ ॥
पश्चाल्ललितकान्तायाः देशं कृत्वावधिं पुनः ।
करतोया नदीं यावत् कामाख्यानिलयं तु तत् ॥ १२७ ॥
तस्मात् किरातानुत्सार्यवेदशास्त्रातिगान् बहून् ।
द्विजातीन् वासयामास तत्र वर्णान् सनातनान् ॥ १२८ ॥
वेदाध्ययनदानानि सततं वर्तते यथा ।
तथा चकार भगवान् मुनिभिर्वासयन् विभुः ॥ १२६ ॥
वेदवादरताः सर्वे दानधर्मपरायणाः ।
नचिरादभवद्देशः कामरूपाह्वयस्तदा ॥ १३० ॥
ततो विदर्भराजस्य पुत्रीं मायाह्वयां हरिः ।
पुत्रार्थे वरयामास [73] नरकस्य समां गुणैः ॥ १३१ ॥
तामुद्वाह्य हृषीकेशस्तस्मिन् पुरवरे स्वयम् ।
तया समं स्वतनयं राजत्वेनाभ्यषेचयत् ॥ १३२ ॥
सुगुप्तां च पुरीं चक्रे गिरिदुर्गेण माधवः ।
जलदुर्गं सर्वतो भद्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ १३३ ॥
ततः किरातराजस्य चतुर्दन्ताः सुदन्तिनः ।
पंचविंशतिसाहस्रा महामात्रकुथैर्युताः ॥ १३४ ॥
यानि रत्नान्यनेकानि सैन्यानि विविधानि च ।
अश्वाश्चाभरणाश्चैव तत्सर्वं नरकोऽग्रहीत् ॥ १३५ ॥
यद्यत् सुभूषणं राज्ञो ध्वजाश्चाभरणानि च ।
तानि तानि स्वयं विष्णुस्तनयस्य ददौ तदा ॥ १३६ ॥
रथं च प्रददौ तस्मै त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
लोहाष्टचक्रसञ्छन्नमर्धयोजनविस्तृतम् ॥ १३७ ॥
युक्तमश्वसहस्रैश्च तथाष्टाभिर्मनोजवैः
रत्नकाञ्चनचित्राढ्यं वेदिकाभागविस्तरम् ॥ १३८ ॥

---

73 रूप-गुणान्वितां तदा ।

वज्रध्वजेन महता कांचनेन विराजितम् ।
हेमदण्डपताकाढ्यं वैदूर्यमणिकूवरम् ।। १३९ ।।
सिंहव्याघ्रसमुद्भूतैश्चर्मभिश्छादितं सदा ।
लोहजालैश्च सञ्छन्नं किंकिणीजालमालिनम् ।
सर्वप्रहरणैर्युक्तं बहुमायासमन्वितम् ।। १४० ।।
शक्तिं च प्रददौ तस्मै सर्वशत्रुविशातनीम् ।
ज्वालामालाभिदीप्तांगीं रिपुकक्षाग्निरूपिणीम् ।। १४१ ।।
इमं च समयं प्रोचे नरकाय महात्मने ।
नरकस्य हितायेशो वसुधायाः समक्षतः ।। १४२ ।।

भगवानुवाच

इमां शक्तिं न हि भवान् प्राणस्य[21] संशयं विना ।
प्रयोद्यति कदाचित्तु मानुषेषु विशेषतः ।। १४३ ।।
एषा भार्या च वैदर्भी भवतः सदृशी गुणैः ।
भवतो जीवनं यावत्तावत् स्थास्यति शोभना ।। १४४ ।।
त्वं तु प्रजायै त्रेतायां यत्नवान् वै भविष्यसि ।
द्वापरान्ते तु सम्प्राप्ते प्रजा तत्र भविष्यति ।। १४५ ।।
विरोधो मुनिभिः सार्धं ब्राह्मणैरपि पुत्रक ।
न कदाचित्त्वया कार्यश्चिरञ्जीवितुमिच्छता ।। १४६ ।।
न राजभिर्न देवैश्च विरोधो युज्यते तव ।
महादुर्गस्य वै मध्ये वसतो ह्यपराजिते ।। १४७ ।।
दिव्ययोषिद्गणैः सार्धं वसमानोऽतिभोगवान् ।
स्वपर्वते कामरूपे चिरं त्वं तिष्ठ पुत्रक ।। १४८ ।।
महादेवीं महामायां जगन्मातरमम्बिकाम् ।
कामाख्यां त्वं विना पुत्र नान्यदेवं यजिष्यसि ।। १४९ ।।
इतोऽन्यथा त्वं विहरन् गतप्राणो भविष्यसि ।
तस्मान्नरक यत्नेन समयं प्रतिपालय ।। १५० ।।

---

21. प्राणानां ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुर्नरकं तनयं स्वकम्।
तमपास्य रहस्येनां पृथिवीं वाक्यमब्रवीत् ॥ १५१ ॥
यद् यत् पूर्वं मया प्रोक्तं कर्तव्यं तव सुन्दरि।
तत् सर्वं नरकायाशु भूत्यै समुपदेशय ॥ १५२ ॥
यदैनं त्वं स्वयं हन्तुं मां जगद्धात्रि भाषसे।
तदा तु मानुषः कश्चिन्नरकं निहनिष्यति ॥ १५३ ॥

पृथिव्युवाच

प्रजार्थमेष यत्नो मे निन्द्यः स्यात् सन्ततिं विना।
तस्मान्नाथ प्रयत्नान्मे सन्ततिं पालयिष्यसि ॥ १५४ ॥
एवमस्त्विति तां विष्णुः पृथिवीं प्रति पावनः।
नरकं च समाभाष्य तत्रान्तर्धिमगात् क्षणात् ॥ १५५ ॥
गते हरौ निजस्थानं पृथिवी तनयं स्वकम्।
यत् पूर्वं हरिणा प्रोक्तं तत्र तं व्यनयत् स्वयम् ॥ १५६ ॥
नरकोऽपि तदा धीमान् वेदशास्त्रार्थपारगः[22]।
ब्रह्मण्यनीतिकुशलो वदान्यो दानतत्परः ॥ १५७ ॥
कामाख्यापूजनरतो नीलकूटे महागिरौ।
[23]महाभोगी महाश्रीमान् हीनबाधश्च शत्रुभिः।
सुचिरं राज्यमकरोच्छक्रवत्त्रिदशालये ॥ १५८ ॥
ततो विदेहराजोऽपि श्रुत्वैव नरकश्रियम्[24]।
सपुत्रभार्यः सगणो[25] नरकं द्रष्टुमभ्यगात् ॥ १५९ ॥
प्राग्ज्योतिषं पुरं गत्वा कामरूपान्तरस्थितम्।
ददर्श नरकं राजा शरच्चन्द्रसमं श्रिया ॥ १६० ॥
प्राग्ज्योतिषं पुरं मेने स राजा त्वमरावतीम्।
देवेन्द्रं नरकं मेने सत्परिच्छदभूषणम्[26] ॥ १६१ ॥
ततो महिष्यै तत् सर्वं जनको वाक्यमब्रवीत्।

---

22. तत्परः। 23. महायोगि। 24. नरकप्रियम्।
25. शरणो। 26. सपरिषद्भूषितम्।

जनक उवाच

एष ते पालितसुतः श्रीमान् नरकसंज्ञकः ॥ १६२ ॥
पृथिव्या दयितः पुत्रः संजातो घृष्टिरूपिणा ।
विष्णुना जगदीशेन त्वमेनं पश्य संगतम्[27] ॥ १६३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जनको राजा यथा वृत्तं तथा पुरा ।
वृत्तान्तं कथयामास नरको जातवान् यथा ॥ १६४ ॥
ततस्तत्र चिरं स्थित्वा प्राग्ज्योतिषपुरे मुदा ।
विदेहाधिपती राजा नरकेण प्रपूजितः ॥ १६५ ॥
स्वस्थानं गतवांस्तस्मात्[28] स्वगणैः परिवारितः ॥ १६६ ॥
एवं स नरको जातः पृथिव्यास्तनयस्तदा ।
हीनासुरस्वभावः संविजहार चिरं क्षितौ ॥ १६७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नरकाभिषेचनेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

---

27. संगता । 28. गतवांस्तत्र ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच ।

स राजा नरकः श्रीमांश्चिरञ्जीवी महाभुजः ।
मानुषेणैव भावेन चिरं राज्यमथाकरोत्[२९] ॥ १ ॥
त्रेतायां च व्यतीतायां द्वापरस्य तु शेषतः ।
अभवच्छोणितपुरे बाणो नाम महासुरः ॥ २ ॥
तस्याग्निदुर्गं नगरं स च शम्भुसखो बली ।
सहस्रबाहुर्दुर्धर्षः प्रियः पुत्रः स वै बलेः ॥ ३ ॥
नरकेण समं तस्य महामैत्री व्यजायत ।
[३०]गमनागमनान्नित्यमन्योन्यानुग्रहैस्तथा ।
तयोरभूद् महाप्रीतिः पवनानलयोर्यथा ॥ ४ ॥
स च बाणः समाराध्य महादेवं जगत्प्रभुम् ।
आसुरेणाथ भावेन व्यचरच्चाकुतोभयः ॥ ५ ॥
तत्संसर्गात् स नरको दृष्ट्वा तस्याद्भुतां कृतिम् ।
तेनैव सह भावेन विहर्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥
न ब्राह्मणान् पूजयति यथा पूर्वं तथा द्विजाः ।
न च यज्ञेषु दानेषु पूर्ववन्मुदितः स च ॥ ७ ॥
न तथा विष्णुमभ्येति पृथिवीं वापि नार्चति ।
कामाख्यायां तथा भक्तिस्तदा तस्याथ नाभवत् ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे धातुस्तनयो मुनिसत्तमः ।
वसिष्ठो नाम कामाख्यां द्रष्टुं प्राग्ज्योतिषं गतः ॥ ९ ॥
तां दुर्गाभ्यन्तरे नीलकूटदेवीं व्यवस्थिताम् ।
द्रष्टुं गन्तुं वसिष्ठस्य न द्वारं नरको ह्यदात् ॥ १० ॥
ततो वसिष्ठः कुपितो वचनं परुषं मुनिः ।
जगाद नरकं वीरं गर्हयन्मुनिसत्तमः ॥ ११ ॥

वसिष्ठ उवाच

कथं पृथिव्यास्तनयो वराहस्य सुतोऽञ्जसा[३१] ।

---

२९. राज्यं तदाकरोत् ।

३०. गमनागमनादारभ्य 'विहर्तुमुपचक्रमे' पर्यन्तम् मुद्रितपुस्तके अधिको दृश्यते ।

३१. वराहस्य सतेजसा ।

देवीं द्रष्टुं ब्राह्मणस्य न ददासि तथागतः ॥ १२ ॥
किं ते कुलोचितं कर्म त्वं करोषि धरात्मज ।
देवीं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पूजयिष्ये जगन्मयीम् ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नरको राजा प्राप्तकालः क्षितेः सुतः ।
परुषेणाथ वाक्येन तमाक्षिप्य निरस्तवान् ॥ १४ ॥
ततो मुनिः स कुपितः शशाप नरकं नृपम् ।

वसिष्ठ उवाच

नचिराद् येन जातोऽसि तेन मानुषरूपिणा ।
मरणं भविता पाप वराहकुलपांसन[32] ॥ १५ ॥
मृते त्वयि महादेवीं कामाख्यां जगतां प्रभुम् ।
पूजयिष्याम्यहं पाप तिष्ठ यास्ये स्वमालयम् ॥ १६ ॥
त्वं यावज्जीविता पाप कामाख्यापि जगत्प्रभुः[33] ।
सर्वैः परिकरैः सार्धमन्तर्धानाय गच्छतु[34] ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा ब्रह्मपुत्रः स स्वस्थानं गतवान् मुनिः ।
वसिष्ठस्तेन भौमेन निरस्तः कुपितो भृशम् ॥ १८ ॥
गते वसिष्ठे नरकः शीघ्रं विस्मयसंयुतः ।
जगाम देवीभवनं नीलकूटं महागिरिम् ॥ १९ ॥
तत्र गत्वा न चापश्यत्[35] कामाख्यां कामरूपिणीम् ।
न योनिमण्डलं तस्याः[36] सर्वान् परिकरांस्तथा ॥ २० ॥
ततः स विमना[37] भूत्वा क्षितिं सस्मार मातरम् ।
पितरं च जगन्नाथं नरकः प्रभुमव्ययम् ॥ २१ ॥
न तावपि तदा यातौ तस्य प्रत्यक्षतां द्विजाः ।
व्युत्क्रान्तसमयस्येति नीतिहीनस्य शम्भवे ॥ २२ ॥
चिरं प्रतीक्ष्य तौ तत्र भौमो वज्रध्वजस्तदा ।
अप्राप्तक्षितिविष्णुः स सशोकः स्वं निवेशनम् ॥ २३ ॥
स गच्छन् स्वगृहं भौमः पुरीं स्वां दृष्टवांस्तु सः ।
पूर्वश्रिया परित्यक्तां मलिनां वनितामिव ॥ २४ ॥

---

३२. वराहसुतपांशुल । ३३. जगत्प्रसूः ।
३४. परिसरैः सार्धं अन्तर्धानं सागच्छतु ।
३५. वापश्यत् । ३६. चास्याः । ३७. विनयो ।

देव्यामन्तर्हितायां तु वेदवादविवर्जितम् ।
पुण्यस्वल्पदारजनं[38] तत् पुरं समपद्यत ।। २५ ।।
न देवास्तत्र गच्छन्ति न विप्रा न महर्षयः ।
बभूव नगरं तस्य स्वल्पयज्ञक्रियोत्सवम् ।। २६ ।।
ईतयो बह्वो जाता मृताश्च बह्वो जनाः ।
लौहित्यनदराजोऽपि हीनतोयस्तदाऽभवत् ।। २७ ।।
बहूनि विपरीतानि दृष्ट्वा स नरकस्तदा ।
मेने मरणमासन्नमात्मनो ब्रह्मशापतः ।। २८ ।।
ततः प्राग्ज्योतिषाध्यक्षः शोकविह्वलचेतनः[39] ।
चिन्तयन् मनसा मित्रं बाणं बलिसुतं ययौ ।। २९ ।।
सखा प्राणसमः सोऽस्य सततान्योन्यरक्षणे ।
तत्परौ बाणनरकौ स्ववैद्यावश्विनाविव ।। ३० ।।
एतस्मिन्नन्तरे बाणो मित्रं शम्भुसखो बली[40] ।
अनुकूलयिता मन्त्रप्रदानेन महाबुधः ।। ३१ ।।
इति चासीन्मतिस्तस्य वज्रकेतोस्तदाचला ।
दूतं च प्राहिणोद् दीप्तं बाणस्य नगरं प्रति ।। ३२ ।।
स शोणितपुरं गत्वा स्यन्दनेनाशुगामिना ।
ततो[41] भौमस्य वृत्तान्तं बाणायाशु न्यवेदयत् ।। ३३ ।।
यथा शप्तो वसिष्ठेन यथा चान्तर्हिताम्बिका ।
यथा विघ्नः पुरवरे जातः प्राग्ज्योतिषाह्वये ।। ३४ ।।
समयस्य व्यतिक्रान्तिर्भूमिमाधवयोर्यथा ।
तथा स दूतो भौमस्य शशंस बलिसूनवे ।। ३५ ।।
स समाकारमित्रस्य[42] सम्यग् दैवपराभवम् ।
स्वयं जगाम नरकं सभाजयितुमीश्वरः ।। ३६ ।।
स कांचनविचित्रांगं युक्तमश्वशतैस्त्रिभिः ।
लोहचक्रं च वैयाघ्रं मयूरध्वजभूषितम् ।। ३७ ।।
हेमदण्डसितच्छत्रच्छादितं किंकिणीगणैः ।
नानारत्नौघरचितमारुरोह महारथम् ।। ३८ ।।
स सहस्रभुजः श्रीमांश्चतुरंगबलैर्युतः ।
प्राग्ज्योतिषं भौमपुरमचिरादाजगाम[43] ह ।। ३९ ।।

---

३८. पुण्ये स्वल्पदेवजनम् । ३९. मानसः ।
४०. मित्रः बाणो शम्भुसखो मम । ४१. दूतो । ४२. तदाकर्ण्य······ ।
४३. प्राग्ज्योतिषाख्यं स पुरीं नचिरादाससाद ।

तमासाद्य महाबाहुर्वाणः प्राग्ज्योतिषेश्वरम् ।
हीनं पूर्वश्रिया मित्रमपश्यन्नगरं च तत् ॥ ४० ॥
स तेच पूजितो वाणो यथायोग्यं सुतेन कोः ।
पप्रच्छ किं निमित्तं ते हीनश्रीकमभूत् पुरम् ॥ ४१ ॥

बाण उवाच

शरीरं च यथापूर्वं तथा न तव राजते ।
मनश्च ते नाति हृष्टं तत्र हेतुं वदस्व मे ॥ ४२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमादीनि पृष्टः स नरकः क्षितिनन्दनः ।
यथा वसिष्ठशापोऽभूत् तत् सर्वं तस्य चाब्रवीत् ॥ ४३ ॥
यच्छ्रुतं भौमवदनात्तद्दूतावेदितं पुरा ।
ज्ञात्वां तथा तं प्रोवाच बाणो वज्रध्वजं पुनः ॥ ४४ ॥

बाण उवाच

नहि मन्युस्त्वया कार्यः सुखे दुःखे शरीरिणाम् ।
चक्रवत् परिवर्तेते नैताभ्यां कोऽपि हीयते ॥ ४५ ॥
परं तत्र प्रतीकारः कार्यो धीरैर्विभूतये ।
भवानपि प्रतीकारं कर्तुमर्हति सम्प्रति ॥ ४६ ॥
य एष मानुषः पृथ्व्यामसाधारणभूतिभिः ।
वर्धते दानवो वापि दैत्यो वाप्यथवासुरः ॥ ४७ ॥
राक्षसः किन्नरो वापि शक्रस्तान् सहते नहि ।
स कौटिल्यं देवगणैः सार्धं कुर्वन्नितस्ततः ।
यथा तथा प्रकारेण भ्रंशयत्येव तं श्रियः ॥ ४८ ॥
तस्य चेष्टतमो देवो विष्णुर्नित्यं सनातनः ।
स न शक्तस्य[४४] कुरुते मनोऽनिष्टं मनागपि ॥ ४९ ॥
यः समाराधयेद् विष्णुं शक्रस्यानिष्टकारकः ।
तस्मै वरं तु सच्छिद्रं दत्त्वा तं शातयत्वितः ॥ ५० ॥
चिरमाराधितो विष्णुरिष्टान् कामान् प्रयच्छति ।
महता कायदुःखेन पूजितः सम्प्रसीदति[४५] ॥ ५१ ॥
विनेष्टदेवतापूजां विभूतिमतुलां पुमान् ।
कः प्राप्नोति[४६] श्रुतः पूर्वं न वा पूर्वतरैः[४७] क्वचित् ॥ ५२ ॥

---

४४. शक्रस्य । ४५. स प्रसीदति । ४६. कोऽप्याप्नोति ।
४७. पूर्वतरं ।

त्वया नाराधितः पूर्वं ब्रह्मा वा विष्णुरीश्वरः ।
तेन तेऽद्य महाविघ्ना उत्पन्ना विषये तव ॥ ५३ ॥
यो वा विष्णुः पालकस्ते न निसर्गानुकम्पकः ।
किन्तु ते स क्षितेर्वाक्यात्तया चाराधितो मुहुः ॥ ५४ ॥
दत्तं छिद्रं च ते विष्णुर्नापराध्यास्त्वया द्विजाः ।
इतोऽन्यथा त्वं भविता हतश्रीरिति नः श्रुतम् ॥ ५५ ॥
अपराध्यस्त्वया भूप वसिष्ठः परमो मुनिः ।
तेन स्मरणमात्रेण[४८] नायातौ क्षितिमाधवौ ॥ ५६ ॥
तस्मात्त्वं मित्र बुध्यस्व कौटिल्यं हरिमेधसः ।
नाधुना युज्यते भौम तवोदासीनताकृतिः ॥ ५७ ॥
यत्ते मनसि तातोऽयमिति सम्प्रत्ययः स ते ।
वराह एव ते तातः स च लोकान्तरं गतः ॥ ५८ ॥
वराहोऽपि हरेरंश इति यच्छ्रूयते त्वया ।
तस्यांश इत्यनुक्रोशः केन वा क्रियते वद ॥ ५९ ॥
तस्मात्त्वं कुरु शम्भोर्वा ब्रह्मणो वाधुनार्च्चनम् ।
स ते प्रसन्नः परममिष्टकामं प्रदास्यति ॥ ६० ॥
विघ्नो वा मुनिशापो वा महेतिर्वातिपीडकः[४९] ।
विधौ प्रसन्ने शम्भौ वा नचिरात्क्षयमेष्यति ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

जातसम्प्रत्ययो भौमो बाणस्य वचनात् तदा ।
सुप्रीतः समुवाचेदं धीरघर्घरनिःस्वनः ॥ ६२ ॥

भौम उवाच

यत् त्वया गदितं बाण हितं मे मित्रवत्सल ।
तत् कार्यमचिरादेव तपश्चरणमुत्तमम् ॥ ६३ ॥
विष्णुर्नाराधनीयो मे तत्र हेतुस्त्वयोदितः ।
नैवाराध्यस्तथा शम्भुरन्तर्गुप्तः स मे पुरे ॥ ६४ ॥
तस्माद् ब्रह्मा समाराध्यो वचनात् तव मित्रक ।
तत्पुत्रस्य महाबाहो लौहित्यस्याम्बुसन्निधौ ॥ ६५ ॥
भवताध्यापितश्चाहं शिष्योऽथ गुरुणा यथा ।
मित्रं मित्रं यथा धीर साम्ना परमवल्गुना ॥ ६६ ॥

---

४८. मात्रात्ते । ४९. पातकः ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स महाबाहुर्वाणं वज्रध्वजस्तदा ।
यथावत् पूजयामास तन्मित्रं मित्रवत्सलः ॥ ६७ ॥
अर्चयित्वा यथायोग्यं प्रस्थाप्य च बलेः सुतम् ।
ब्रह्माराधनमत्युग्रं कर्तुमिच्छन् क्षितेः सुतः ॥ ६८ ॥
स तीरे नदराजस्य लौहित्यस्य महात्मनः ।
ब्रह्माचलं समारुह्य तपस्तप्तुमुपस्थितः ॥ ६९ ॥
स मानुषेण मानेन क्षितिपुत्रः शतं समाः ।
जलाहारव्रतेनैव समानर्च पितामहम् ॥ ७० ॥
सन्तुष्टः शतवर्षान्ते ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रत्यक्षीभूय नरकस्याग्रतः समुपस्थितः ॥ ७१ ॥
प्रीतोऽस्मि ते वरं दास्ये वरं वरय सुव्रत ।
इति चोवाच नरकं स तदा[50] कमलासनः ॥ ७२ ॥
स दृष्ट्वा सर्वलोकेशं प्रत्यक्षं कमलासनम् ।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्रोचे विनयानतकन्धरः ॥ ७३ ॥
देवासुरेभ्यो रक्षोभ्यः सर्वेभ्यो देवयोनितः ।
अवध्यत्वं सुरश्रेष्ठ वरमेकं प्रयच्छ मे ॥ ७४ ॥
अविच्छिन्ना सन्ततिर्मे यावच्चन्द्रो रविस्तपेत् ।
तावद्भवतु लोकेश द्वितीयोऽयं वरो मम ॥ ७५ ॥
तिलोत्तमाद्या या देव्यः सद्रूपगुणसंयुताः ।
तास्ता मे दयिताः सन्तु सहस्राणि तु षोडश ॥ ७६ ॥
अजेयत्वं सदा श्रीर्मां न जहातु कदाचन[51] ।
इति पंच वरा मेऽद्य वृतास्त्वत्तः पितामह ॥ ७७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मायया मोहितो भौमो मुनिशापं विस्मृत्य च ।
अन्यद्वरान्तरं वव्रे मुनिशापस्तथा स्थितः ॥ ७८ ॥
एवमस्त्विवति तान् सर्वान् वरान् दत्त्वा पितामहः ।
उवाचेदं द्वापरान्ते सन्ध्यायां सुरकन्यकाः ॥ ७९ ॥
तिलोत्तमाद्यास्ते जायाः सम्भविष्यन्ति भूतले ।
न यावन्नारदो याति वज्रध्वज पुरं तव ।
तावन्न मैथुने योज्या भवता ताः क्षितेः सुत ॥ ८० ॥

---

५०. तदा स । ५१. कदा श्रीर्मां न जहातु विभूतिभिः ।

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।
मुद्मासाद्य परमां स्वस्थानं नरकोऽभ्यगात्[५२] ॥ ८१ ॥
ततो मुदितलोकं तं नगरं श्रीनिषेवितम् ।
सदा सोत्साहसम्पूर्णमीतिविघ्नविवर्जितम्[५३] ॥ ८२ ॥
अभवत् पशुसंघैश्च वाजिवारणकुम्भकैः ।
सम्पूर्णं देवराजस्य दयितेवामरावती ॥ ८३ ॥
उत्तीर्णतपसं श्रुत्वा बाणो दत्तवरं[५४] तथा ।
स्वयं पुनरुपातिष्ठद् भौमं वज्रध्वजं तदा ॥ ८४ ॥
स गत्वा भौमनगरं बाणः प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।
पप्रच्छ नरकं मित्रं तपसः सन्निवेशनम् ॥ ८५ ॥
कुत्र त्वया तपस्तप्तं किं वा चीर्णं त्वया व्रतम् ।
कीदृशो वा वरो लब्धस्त्वं ममाख्यातुमर्हसि ॥ ८६ ॥
दृष्टं[५५] तव पुरं सर्वं प्रहृष्टजनसंकुलम् ।
वाजिवारणरत्नौघैः पूरितं मंगलस्वनैः[५६] ॥ ८७ ॥
दृश्यतेऽद्य त्वया पाल्यं शस्यपूर्णमनामयम् ।
कथ्यतां वा कथं ब्रह्मा वरं तुभ्यं प्रदत्तवान् ॥ ८८ ॥

भौम उवाच

ब्रह्मा स्वयं पर्वतरूपधारी
कामेश्वरीं धर्तुमिहावतीर्णः ।
तत्र स्वयं सम्प्रति घस्रमेति
पुरा न यावच्छपते वसिष्ठः ॥ ८९ ॥
सोऽयं पुरे मे बलिपुत्र राजते
देवौघसेव्योऽप्यमरोत्तमांशः[५७] ।
तत्राहमेको वरतोयभोजनो
वर्षाण्यकार्षं च तपः शतानि वै ॥ ९० ॥
लौहित्यतीरे घनवायुसेविते
मनोहरे प्राणभृतां सुखप्रदे ।
तपःप्रवृत्तस्य सुखं समागम-
च्छरद् यथैका शरदां शतानि मे ॥ ९१ ॥

---

५२. ग्यगात् । ५३. सोत्साहपतनं नीति ।
५४. दृतवरं । ५५. कृत्स्नं ।
५६. ......ध्वनिम् । ५७. अवराधरोत्तमः ।

ततः स तुष्टश्चतुराननोऽभवत्
प्रत्यक्षतो मां न्यगदच्च मद्धितम् ।
तव प्रसन्नोऽस्मि वरं यथेप्सितं
दास्ये गृहाणेति पुरोऽथ भूत्वा[५८] ॥ ९२ ॥
अवध्यता मे सुरयोनितः सुरा-
दच्छिन्नसन्तानमजेयता तथा ।
सदा विभूतिर्न जहातु मामिति
वराश्च नार्यो नवयौवनान्विताः ॥ ९३ ॥
एते वराः पंच मया ततो वृताः
सोऽपि प्रतिश्रुत्य गतो निजास्पदम्[५९] ।
ततोऽहमभ्येत्य पुरं निजं मुदा
मन्त्रिप्रवीरैः सहितः पुनस्तान्[६०] ॥ ९४ ॥
पौरान् सबन्धून् सगणानमोदयम्
दानेन मानेन च भोजनेन ॥ ९५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इतीरितं तस्य बलेः सुतस्तदा
भौमस्य श्रुत्वा मुमुदे न तत्क्षणात् ।
इदं तदोचे वचनं क्षितेः सुतं
तत्कालयुक्तं न च सूनृतोद्भवम् ॥ ९६ ॥

बाण उवाच

न ते मुनेः शापमतीत्य गन्तुं
भूता मतिर्मित्र तदा विधेः पुरः ।
कथं तु[६१] भद्रं भविता तवेह
भावीत्यवश्यं क्षितिपुत्र नित्यम् ॥ ९७ ॥
कृतस्य करणं नास्ति दैवाधिष्ठितकर्मणः ।
भावीत्यवश्यं यद्भाव्यं तत्र ब्रह्माप्यबाधकः ॥ ९८ ॥
तस्मात् त्वं सुमहावीरानसुरान् पावकोपमान् ।
सन्ध्याय च पुरस्कृत्य साचिव्ये विनियोजय ॥ ९९ ॥
द्वारि संस्थाप्य वै वीरान् देवैरपि दुरासदान् ।
अतिक्रमस्व देवेशं यदि लब्धवरो भवान् ॥ १०० ॥

---

५८. पुरोवदाह । ५९. ......निजं पदम् । ६०. समन्तात् ।
६१. न ।

विधिना यो वरो दत्तो भवते तत्-परीक्षणम् ।
कर्तुमर्हसि जायायामपुत्रो जनयात्मजम् ॥ १०१ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ बाणो यथावत् तेन पूजितः ।
नरको मित्रवचनं कर्तुं समुपचक्रमे ॥ १०२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे भौमतपस्यायां
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ऋतुमत्यां तु जायायां काले स नरकः क्रमात् ।
भगदत्तं महाशीर्षं मदवन्तं सुमालिनम् ॥ १ ॥
चतुरो जनयामास पुत्रानेतान् क्षितेः सुतः ।
महासत्त्वान् महावीर्यान् वीरैरन्यैर्दुरासदान् ॥ २ ॥
ततो बाणस्य वचनाद् हयग्रीवं तथा मुरुम् ।
सन्धायाथ समानीय सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ॥ ३ ॥
मुरुं सन्निहितं श्रुत्वा हयग्रीवं च भौमिना ।
ये ये क्षितौ तदा ह्यासन्नसुरास्तेऽपि संगताः ॥ ४ ॥
हयग्रीवं मुरुं श्रुत्वा नरकेण समागतम् ।
निसुन्दसुन्दनामानावसुरौ सैनिकैः सह ॥ ५ ॥
विरूपाक्षस्तदा दैत्यः सर्वे तेन समागमन् ।
ततः स पश्चिमद्वारि नरकः सेनया सह ॥ ६ ॥
मुरुं द्वाराधिपं चक्रे हयग्रीवं तथोत्तरे ।
पूर्वद्वारि निसुन्दन्तु विरूपाक्षं तु दक्षिणे ॥ ७ ॥
मध्ये पंचजनं सुन्दं सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ।
मुरुं क्षुरान्तान् पाशांश्च षट्सहस्राण्ययोजयत् ॥ ८ ॥
द्वारि तत् पुररक्षार्थं सत्कृतः क्षितिसूनुना ।
एवं पूर्वान् पूर्वतरानवमत्य सुमन्त्रिणः ॥ ९ ॥
असुरैरेव सततं सोऽसुरो मुदितोऽभवत् ।
पूर्वं गृहीतं भावं स परित्यज्य क्षितेः सुतः ॥ १० ॥
आसुरं भावमासाद्य बाधते त्रिदिवौकसः ।
न देवान् न मुनीन् सर्वान्[६२] न च जानाति कांश्चन ॥ ११ ॥
सुरेश्वरं जिगायाशु हयग्रीवसहायवान् ।
एवं स चासुरं भावं तन्वानो विचरन् क्षितौ ॥ १२ ॥
बाणस्य वचनाच्छक्रं बाधयत्येव वै मुनीन् ।
देवेश्वरं त्रिधा जित्वा हयग्रीवसहायवान् ॥ १३ ॥
अदित्याः कुण्डलयुगं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्[६३] ।

---

६२. विप्रान् नावजानाति । ६३. दुर्लभम् ।

सर्वरत्नामृतस्रावि दुःखविघ्नहरं परम् ॥ १४ ॥
जहार नरको भौमो निर्भीतो मुनिशापतः[६४] ।
एवं देवान् बाधमानो मुनीन् विप्रान् क्षितेः सुतः ।
पंचवर्षसहस्राणि राज्यं प्राग्ज्योतिषेऽकरोत् ॥ १५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी महाभारार्दिता क्षितिः ।
ब्रह्मविष्णुमुखान् देवान् रक्षार्थं शरणं गता ।
इदं चोवाच धातारं प्रणम्योर्वी समाधवम् ॥ १६ ॥

पृथिव्युवाच

दानवा राक्षसा[६५] दैत्या हरिणा ये च सूदिताः ।
ते राज्ञां मन्दिरे जाता अधुना बलगर्विताः ॥ १७ ॥
तेषां भारमहं सोढुं न शक्नोमि महत्तरम् ।
असंख्याताश्च ते सर्वे तान् संख्यातुं न चोत्सहे ॥ १८ ॥
अष्टौ शतसहस्राणि तेषां मुख्यां महाबलाः ।
तेष्वप्यतिबलान् वोढुं[६६] न ताञ्छक्नोमि चाधुना ॥ १९ ॥
बाणं बलेः सुतं वीरं कंसं धेनुकमेव च ।
अरिष्टं च प्रलम्बं च सुनामानं मुरुं शलम् ॥ २० ॥
चारणमुष्टिकौ मल्लौ जरासन्धं महाबलम् ।
नरकं च हयग्रीवं निसुन्दं सुन्दमेव च ॥ २१ ॥
विरूपाक्षं पंचजनं हिडिम्बं च बकं बलम् ।
जटासुरं च किर्मीरमनायुधमलम्बुषम् ॥ २२ ॥
सौभाख्यं च जरासन्धं द्विविदं चापि वानरम् ।
श्रुतायुधं महादैत्यं शतायुधमथापरम् ॥ २३ ॥
ऋष्यश्रृंगसुतं चैव सुबाहुमतिबाहुकम् ।
कालकंजांस्तथा दैत्यान् हिरण्यपुरवासिनः ॥ २४ ॥
एतेषां तु पदक्षोभैर्विशीर्णाहं दिने दिने ।
लोकान् वोढुं न शक्नोमि तान्निघ्नन्तु सुरोत्तमाः ॥ २५ ॥
नचेद्रक्षां प्रकुर्वन्ति भवन्तः सुरसत्तमाः ।
तदा विशीर्णा यास्यामि पातालमवशाऽधुना ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्या वचः श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
इत्यूचुस्ते करिष्यामः क्षिते भारविमोक्षणम् ॥ २७ ॥
विसृज्य पृथिवीं देवीं सर्वे देवाः सनातनम् ।

---

६४. देवशापतः । ६५. असुरा । ६६. ह्येतान् ।

माधवं तोषयामासुर्भारावतरणं प्रति ॥ २८ ॥
स तु तुष्टः सुरान् सर्वान् स्वांशैरवतरन्तु वै ।
क्षितौ भारावतारायेत्युक्त्वा स्वयमिह प्रभुः ॥ २९ ॥
अवतीर्णोऽथ[६७] देवक्या गर्भे भारावतारणे ।
विष्णुं चावतरिष्यन्तं ज्ञात्वा देवाः सनातनम् ॥ ३० ॥
रम्भातिलोत्तमाद्याश्च देव्यो रूपगुणान्विताः ।
क्षितावुत्पादयामासुः सहस्राणि तु षोडश ॥ ३१ ॥
ताः सर्वा हिमवत्पृष्ठे क्रीडमाना वरस्त्रियः ।
अपश्यन्नरको भौमस्ता जहार तदा हठात् ॥ ३२ ॥
तेन ता धर्षिता देव्यो नीताः प्राग्ज्योतिषं प्रति ।
नरकं प्रार्थयामासुः समयं मैथुनं प्रति ॥ ३३ ॥
नारदो यावदायाति नगरं प्रति भौम ते ।
अस्माकं कुरु रक्षां च तावन्नो मुंच मैथुने ॥ ३४ ॥
स समेष्यति वीर त्वां न चिरान्नो ह्यनुग्रहात् ।
तेन दृष्टा वयं सार्धमेष्यामः संगमं त्वया ॥ ३५ ॥
इति सम्प्रार्थितस्ताभिर्नरको भूमिनन्दनः ।
ब्रह्मवाक्यं तदा स्मृत्वा एवमस्तूचिवान्[६८] मुहुः ॥ ३६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवो भगवान् लोकभावनः[६९] ।
देवक्या जठराज्जातो वृद्धो नन्दगृहेऽभवत् ॥ ३७ ॥
कंसकेशिप्रलंबादीन् हत्वा दैत्याननेकशः ।
अकरोद् द्वारकावासं सागरे सलिलान्तरे[७०] ॥ ३८ ॥
तत्राष्टौ कन्यकास्तेन स्वधर्मेण च स्वीकृताः ।
कालिन्दी मानुषीरूपा रुक्मिणी रमणी ततः ॥ ३९ ॥
नग्नजित्तनया सत्या लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
सुशीला शीलसम्पन्ना तथा जाम्बवती सती ॥ ४० ॥
एतासु स्त्रीषु च ततो ह्यनुरक्तस्य तस्य वै ।
षट्त्रिंशद्वत्सरा जाता बलदेवसहायिनः ॥ ४१ ॥
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः पुत्रास्तस्य महाबलाः ।
जातास्तत्र द्विजश्रेष्ठाः शास्त्रे शस्त्रे च कोविदाः[७१] ॥ ४२ ॥
अनेके निहता दैत्या भारभूतास्तदा क्षितेः ।
प्रहृष्टः क्रीडमानश्च द्वारकायामुवास सः ॥ ४३ ॥

---

६७. अवतीर्याथ । ६८. बाढमित्यूचिवान् ।
६९. विष्णुरवतीर्णो धरातले । ७०. अम्बुप्रस्थानिनान्तरे ।
७१. निश्चिताः ।

अथ शक्रस्तदायातो नरकेणार्दितो भृशम् ।
द्वारकां प्रति कृष्णस्य दर्शनाय गणैः सह ॥ ४४ ॥
तत्र गत्वा परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम् ।
पूजितस्तेन बहुश आसने कांचने स्थितः ॥ ४५ ॥
कथयामास हरये नरकस्य विचेष्टितम् ।
शक्रो यथा पूर्ववृत्तं यथा वा वर्ततेऽधुना ॥ ४६ ॥

शक्र उवाच

शृणु कृष्ण महाबाहो यदर्थमहमागतः ।
कथयिष्यामि तत् सर्वं तत्र शंकां न संकुरु ॥ ४७ ॥
भूमिपुत्रोऽसुरो नाम्ना नरकः सुरमर्दनः ।
चिरंजीवी पुरा विष्णुक्षितिभ्यां परिपालितः ॥ ४८ ॥
अधुना स क्षितिं विष्णुमवज्ञाय दुरासदः ।
बाणस्य वचनाद् भौमो ब्रह्माणं पर्यतोषयत् ॥ ४९ ॥
ब्रह्मतः[७२] स वरान् लब्ध्वा ह्यतीवाभूत् प्रदर्पितः ।
माधवं पृथिवीं वापि सस्मार न कदाचन ॥ ५० ॥
पूर्वमासीत् स धर्मात्मा ह्याराधितसुरो व्रती ।
अधुना बाधते सर्वानासुरं भावमाश्रितः ॥ ५१ ॥
अदितेः कुण्डले मोहाज्जहारामृतसम्भवे ।
देवानृषीन् बाधमानो[७३] विप्राणामप्रिये रतः ॥ ५२ ॥
मां चापि बाधते नित्यं कामगामी दुरासदः ।
जेता तु सुरदैत्यानामवध्यः सर्वदेहिनाम्[७४] ॥ ५३ ॥
तव चाप्यन्तरप्रेक्षी तं पापं जहि भूतये ।
त्वदर्थं सर्वदेवैर्या देवगन्धर्वकन्यकाः ॥ ५४ ॥
पुरा पर्वतमुख्ये तु हिमवत्यवतारिताः ।
चतुर्दश सहस्राणि सहस्रे द्वे शताधिके ॥ ५५ ॥
ताः सर्वाः कन्यकाः पापः प्रसह्य वरदर्पितः ।
जहार स दुराधर्षो हयग्रीवसहायवान् ॥ ५६ ॥
सागरे यानि रत्नानि पृथिव्यां च त्रिविष्टपे[७५] ।
तानि सर्वाणि संहृत्य प्रमथ्य सुरमानुषान् ॥ ५७ ॥
तीरे लौहित्यतीर्थस्य[७६] सोऽकरोन्मणिपर्वतम् ।

---

७२. ब्रह्मणः···लब्धो बभूवातीव दर्पितः ।
७३. मानवानां । ७४. जैत्रस्तु सुरदेवानां माधवः सर्वदेहिनाम् ।
७५. त्रिपिष्टपे । ७६. ···गङ्गस्य ।

तस्मिन् गिरौ पुरीं रम्यां कारयित्वाऽलकाह्वयाम् ॥ ५८ ॥
ताः सर्वा वासयामास देवगन्धर्वयोषितः ।
एकवेणीधराः सर्वाः सम्भोगपरिवर्जिताः ॥ ५९ ॥
त्वामेव ताः प्रतीक्षन्ते सनाथाः कुरु कृष्ण ताः ।
यावदागच्छति पुरं भवतो नारदो मुनिः ॥ ६० ॥
तावन्न मैथुने यत्नं भौम त्वं संकरिष्यसि ।
इति ताः समयं चक्रुर्नरकस्य दुरात्मनः ॥ ६१ ॥
नारदश्च तदायातः प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति ।
यदा त्वं नरकं हन्तुं गन्ता तत्पुरमुत्तमम् ॥ ६२ ॥
तस्मात् त्वं पापकर्माणं नरकं नरकोपमम् ।
जहि देवमनुष्याणां कण्टकं तं दुरासदम् ॥ ६३ ॥
वधात् तस्य क्षितिर्देवी पुत्रशोकं न चाप्स्यति ।
स्वयमेव वधं तस्य देवेभ्यो यदयाचत ॥ ६४ ॥
तस्मात् तं जहि पापिष्ठं नरकं पापपूरुषम् ।
स्त्रीरत्नान्यपि रत्नानि तं निहत्य समुद्धर ॥ ६५ ॥
इत्युक्तो जगतां नाथः शक्रेण सुमहात्मना ।
प्रतिजज्ञे क्षितिसुतं हन्तुं प्रति तदैव हि ॥ ६६ ॥
प्रतिज्ञाय वधं तस्य शक्रेण सह केशवः ।
तदैव यात्रामकरोत् प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति ॥ ६७ ॥
आरुह्य गरुडं कृष्णः सत्यभामाद्वितीयकः ।
प्राग्ज्योतिषमुखोऽगच्छद्वासवस्त्रिदिवं ययौ ॥ ६८ ॥
दिवमाक्रम्य गच्छन्तौ कृष्णशक्रौ महाद्युती ।
यादवा ददृशुस्तत्र सूर्याचन्द्रमसौ यथा ॥ ६९ ॥
संस्तूयमानौ गन्धर्वैर्देवैरप्सरसां गणैः ।
कृष्णः शक्रः क्षणादेव गतौ खे तावदृश्यताम् ॥ ७० ॥
ततः क्षणेन गरुडेनाससाद जगत्पतिः ।
पुरं प्राग्ज्योतिषं रम्यं नरकेण वशीकृतम् ॥ ७१ ॥
स दुर्गं मौरवैः पाशैः षट्सहस्रैर्भयंकरैः ।
क्षुरान्तैर्वेष्टितं पार्श्वे मृत्युपाशैरिवोच्छ्रितम् ॥ ७२ ॥
निर्गच्छन्तं पुरात् तस्मात् नारदं च ददर्श सः ।
स तु देवमुनिः श्रीमान् यदागान्नरकं प्रति ॥ ७३ ॥
तदा प्राग्ज्योतिषं गत्वा सत्कृतस्तेन नारदः ।
संगमे समयं प्रोचे नरकाय स योषिताम् ॥ ७४ ॥
प्रवर्ततेऽद्य चैत्रस्य शुक्लपक्षस्य पंचमी ।

नवम्यां तु धरापुत्र प्राप्नोति[७७] महदापदम् ॥ ७५ ॥
तदा यदि चतुर्दश्यां सुस्नाता योषितस्त्विमाः ।
सुरतेषु त्वया तत्र प्रयोक्तव्या यथासुखम् ॥ ७६ ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा नरको भयमोहितः[७८] ।
आसारं च प्रसारं च नगरे सन्न्यवेदयत्[७९] ॥ ७७ ॥
रक्षिभी रक्षितं राज्यं रक्षितं च समन्ततः ।
भयहर्षयुतो भौमः समयं समवैक्षत ॥ ७८ ॥
तस्मिन्नवसरे प्राप कृष्णः प्राग्ज्योतिषं पुरम् ।
प्रथमं पश्चिमं द्वारमासाद्य गरुडध्वजः ॥ ७९ ॥
पाशानां षट्सहस्राणि क्षुरान् सञ्छिद्य नैकधा ।
जघान स मुरुं दैत्यं सानुगं च सबान्धवम् ॥ ८० ॥
षट्सहस्रा महावीरा दानवा द्वारि संस्थिताः ।
हताश्चक्रेण हरिणा तदैव गुरुणा सह ॥ ८१ ॥
मुरुं हत्वा[८०] सहस्राणि पुत्रांस्तस्यापरांश्च षट् ।
जघान चक्रेण तदा खण्डशोऽन्यांश्च दानवान् ॥ ८२ ॥
ततोऽनेकशिलासंघानतिक्रम्य जनार्दनः ।
सगणं सानुगं चैव निसुन्दं समपोथयत् ॥ ८३ ॥
एको यो योधयेद्देवान् सहस्रं वत्सरान् पुरा ।
शक्रं च समतिक्रम्य महावीरपराक्रमः ॥ ८४ ॥
तं जघान हयग्रीवं समतिक्रम्य केशवः ।
मध्ये लौहित्यसंज्ञस्य[८१] भगवान् देवकीसुतः ॥ ८५ ॥
औदकायां विरूपाक्षं सुन्दं हत्वा महाबलः ।
ततः पंचजनं वीरं जघान परमेश्वरः ॥ ८६ ॥
एतान् हत्वा महाकायान् महावीर्यान्[८२] दुरासदान् ।
आससाद जगन्नाथः पुरं प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ॥ ८७ ॥
वियत्स्थैर्दैवतैः सर्वैर्नारदेन महात्मना ।
जयशब्दैः स्तूयमानः प्रविवेश यथेश्वरः ॥ ८८ ॥
श्रिया युक्तां दीप्यमानां प्राकाशाट्टालभूषिताम् ।
स मेने नगरीं विष्णुः किमिन्द्रस्यामरावती ॥ ८९ ॥
तत्र युद्धं महद्भूतं नानाप्रहरणोद्यतम् ।
भीरूणां त्रासजननं[८३] शूराणां हर्षवर्धनम् ।
यथा देवासुरं युद्धं तथैव समपद्यत ॥ ९० ॥

---

७७. प्राप्नोषि । ७८. मायामोहितः । ७९. ......न्यवेशयत् ।
८०. महासुरं । ८१. ......गङ्गस्य । ८२. महावीरान् ।
८३. भीतिजननं ।

ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्बाणैस्तान् दानवान् बहून् ।
निजघान महाबाहुर्गरुडस्थो जनार्दनः ॥ ९१ ॥
अष्टौ शतसहस्राणि अष्टौ शतशतानि च ।
हत्वासुरान् महाबाहुर्नरकं तं[८४] समासदत् ॥ ९२ ॥
ततः श्रुत्वा स नरकः पतितानसुरान् बहून् ।
दृष्ट्वा कृष्णं महाबाहुं गरुडस्थं महाबलम् ॥ ९३ ॥
वसिष्ठशापं सस्मार समयं माधवस्य च ।
नारदस्य वचश्चापि वरच्छिद्रं तथा विधेः ॥ ९४ ॥
स प्राप्तकालश्च तदा केशवेन समागतः ।
युद्धमेव परं मेने स्मरन् बाणवचस्तदा ॥ ९५ ॥
स कांचनं समारुह्य रथं वज्रध्वजं वरम् ।
लोहचक्राष्टसंयुक्तं त्रिनल्वप्रमितं[८५] रथम् ॥ ९६ ॥
युक्तमश्वसहस्रैस्तु वज्रध्वजविराजितम् ।
नानाप्रहरणोपेतं बहुतूणीरसंयुतम् ।
अगच्छत् समारायाशु नरकः पृथिवीसुतः ॥ ९७ ॥
स गच्छन् समरायाशु मानुषं भावमर्चितम् ।
निन्द्यं तथासुरं मेने स्मरन् पूर्ववचो हरेः ॥ ९८ ॥
क्षणात् कृष्णं स ददर्श गरुडोपरि संस्थितम् ।
शंखचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् ॥ ९९ ॥
किरीटकुण्डलयुतं श्रीवत्सवक्षसं हरिम् ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं पीताम्बरधरं परम् ॥ १०० ॥
स तेन युयुधे वीरो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
प्राग्ज्योतिषाधिपो भौमो[८६] नरकः पृथिवीसुतः ॥ १०१ ॥
स युध्यत् कृष्णनिकटे कालिकां कालिकोपमाम् ।
रक्तास्यनयनां दीर्घां खड्गशक्तिधरां[८७] तदा ॥ १०२ ॥
अपश्यज्जगतां धात्रीं कामाख्यामपि मोहिनीम्[८८] ॥ १०३ ॥
स विस्मितस्तदा भीतस्तां दृष्ट्वा जगतां प्रसूम् ।
योद्धव्यमित्येव तदा युयुधे नरकोऽसुरः ॥ १०४ ॥
तेन सार्धं तदा कृष्णः कृत्वा सुमहदद्भुतम् ।
युद्धं यादृक् पुरा भूतं न देवे न च मानुषे ॥ १०५ ॥
ततस्तेनाथ भौमेन युद्धकेलिं स माधवः ।

---

८४. च । ८५. त्रिपुरप्रतिमं । ८६. वीरो । ८७. ···पाशकरां तथा ।
८८. कामाख्यां कामरूपिणीम् ।

चिरं कृत्वा जघानाथ देवेन्द्रं प्रतिहर्षयन् ।। १०६ ।।
सुदर्शनेन चक्रेण मध्यदेशे तदा हरिः ।
द्विधा चिच्छेद नरकं खण्डितोऽभ्यपतद् भुवि ।। १०७ ।।
विभक्ततच्छरीरं तु भूमौ निपतितं तदा ।
विराजन्ते वज्रभिन्नो यथा गैरिकपर्वतः ।। १०८ ।।
पतिते तनये देवी पृथ्वी दृष्ट्वा शरीरकम् ।
शोकवेगं तदा सेहे ज्ञात्वा कालं तदागतम् ।। १०९ ।।
अदितेः कुण्डलयुगं स्वयमादाय काश्यपी ।
उपातिष्ठत गोविन्दं वचनं चेदमब्रवीत् ।। ११० ।।

पृथिव्युवाच

त्वया वराहरूपेण यदाहं चोद्धृता पुरा ।
तदा त्वद्‌गात्रसंस्पर्शात् पुत्रो मे नरकः स्थितः ।
सोऽयं त्वया पालितश्च पातितश्चाधुना सुतः ।। १११ ।।
गृहाण कुण्डले चेमे अदितेः सर्वकामदे ।
सन्ततिं चास्य गोविन्द प्रतिपालय नित्यदा ।। ११२ ।।

श्रीभगवानुवाच

भारावतरणे देवि नरकस्य वधः पुरा ।
त्वयैव प्रार्थितो यस्मात् तेनासौ निहतो मया ।। ११३ ।।
पालयिष्येऽस्य सन्तानं देवि त्वद्वचनादहम् ।
प्राग्ज्योतिषेऽभिषेक्ष्यामि नप्तारं भगदत्तकम् ।। ११४ ।।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भगवान् मधुसूदनः ।
अन्तःपुरं विवेशाथ नरकस्य धनालयम् ।। ११५ ।।
स तत्र ददृशे वीरो रत्नानि विविधानि च ।
राशीभूतानि[89] शुद्धानि पर्वतानिव राजतः ।। ११६ ।।
मुक्तामणिप्रवालानां वैदूर्यस्य च पर्वतम् ।
तथा रजतकूटानि वज्रकूटानि माधवः ।। ११७ ।।
सुवर्णसंचयान् रुक्मदंडान् रत्नमयध्वजान् ।
वाहनानि विचित्राणि यानानि शयनानि च ।। ११८ ।।
खचितानि स्वर्णरत्नैर्महार्हाणि महान्ति च ।
यद् यद् दृष्टं च यावच्च धनं रत्नं मणिस्तथा ।। ११९ ।।
भुवि[90] तादृक् च नो दृष्टमन्यत्र नरकालयात् ।

---

८९. राशीकृतानि । ९०. तावत् ।

न कुबेरस्य नेन्द्रस्य न यमस्याप्यपां पतेः ॥ १२० ॥
तावन्ति धनरत्नानि यावन्ति नरकालये ।
केशवोऽप्यथ तत्रैव नारदेन च संगतः ॥ १२१ ॥
अवेक्ष्यान्तःपुरधनं सारं सारतरं ततः ।
तेषां समाददे ग्राह्यं प्रभूतं परवीरहा ॥ १२२ ॥
या दत्ता वैष्णवीशक्तिर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
हत्वा भौमं तु तां शक्तिं जगृहे देवकीसुतः ॥ १२३ ॥
पृथिव्या नारदेनैव सहितः केशवस्तदा ।
भगदत्तं भौमसुतं प्राग्ज्योतिषपुरोत्तमे ॥ १२४ ॥
अभिषिच्य तदा भूतं पुरमध्ये न्यवेशयत् ।
अभिषिक्तं तु तं दृष्ट्वा भगदत्तं तदा क्षितिः ॥ १२५ ॥
नप्तुरर्थेऽथ तां शक्तिं केशवं समयाचत ।
केशवोऽपि क्षितेर्वाक्यान्नारदानुमतेन च ।
तां शक्तिं भगदत्ताय सुप्रीतमनसा ददौ ॥ १२६ ॥
यच्छत्रं वरुणं जित्वा कांचनस्राविसंज्ञकम् ।
समानयत् पुरा भौमस्तच्छत्रं हरिराददे ॥ १२७ ॥
अष्टभारसुवर्णानि यत्संस्रवति चान्वहम् ।
यत् क्रोशमात्रविस्तीर्णमर्धयोजनमुच्छ्रितम्[९१] ॥ १२८ ॥
रत्नोत्तमानि सर्वाणि चतुर्दन्तांस्तथा गजान् ।
चतुर्दशसहस्राणि पूजिताः प्रमदास्तथा ॥ १२९ ॥
द्वारकां प्रति दैत्यौघैर्वाहयामास केशवः ॥ १३० ॥
या देवकन्यकाः पूर्वं नरकेण हृता बलात् ।
तासां कृत्वा हृषीकेशो वेणीबन्धविमोक्षणम् ॥ १३१ ॥
वासोभिर्भूषणैर्दिव्यैस्ताः सत्कृत्य मुहुर्मुहुः ।
आरोप्य च विमाने तु रक्षिभिर्बलिभिर्दृढैः ॥ १३२ ॥
नारदाधिष्ठिताः सर्वा द्वारकां प्रत्यवाहयत् ।
यः कृतः सुरकन्यार्थे भौमेन मणिपर्वतः ॥ १३३ ॥
मणिरत्नौघसम्पूर्णो दिवाकरसमप्रभः ।
उत्पाट्य तं जगन्नाथस्तार्क्ष्यपृष्ठे न्यधापयत् ॥ १३४ ॥
तथैव वारुणं छत्रं गरुडोपरि माधवः ।
आरोप्य सत्यया सार्धमासीनः सुमना हरिः ॥ १३५ ॥
भगदत्तं समाभाष्य पृथिवीं च जगत्पतिः ।

---

९१. ......मायतम् ।

प्रतस्थे द्वारकां वीरो वियन्मार्गेण वै द्रुतम् ॥ १३६ ॥
सुपर्णः[९२] कांचनस्राविच्छत्रं समणिपर्वतम् ।
केशवं सत्यया सार्धं हेलया खे वहन् ययौ ॥ १३७ ॥
क्षणेन द्वारकां प्राप्य केशवः परवीरहा ।
मुदं च लेभे सकलैर्बान्धवैश्च तथा गणैः ॥ १३८ ॥
एवं काली महामाया कालिकाख्या जगन्मयी ।
विष्णुं च जगतां नाथं परापरपतिं हरिम् ॥ १३९ ॥
जगत्कारणकर्तारं ज्ञानगम्यं जगन्मयम् ।
सन्मोहयत्येव तथा ह्यनुरागविरागवान् ॥ १४० ॥
अनुगृह्णाति मित्राणि ह्यमित्राणि निहन्ति च ।
नारीषु मूढो रमते द्वन्द्वेनापि च मुह्यते ॥ १४१ ॥
इति वः कथितं विप्रा यथाभून्नरकोऽसुरः ।
यथा च वरलाभोऽभूद् यथा चास्य विचेष्टितम् ॥ १४२ ॥
आराधितो यथा ब्रह्मा बाणबुद्ध्याथ भौमिना ।
किमन्यदुचितं वास्ति तद्ब्रुवन्तु[९३] द्विजोत्तमाः ॥ १४३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नरकोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

---

९२. सुवर्णं । ९३. वोऽस्ति तत्पृच्छन्तु ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं गिरिसुता काली बभूव जगतां प्रसूः।
दाक्षायणी त्यक्ततनुः कथमाप हरं पतिम्[94] ॥ १ ॥
कथमर्धशरीरं सा जहार च पिनाकिनः।
एतन्नः पृच्छतां सम्यक् कथयस्व महामते ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला यथा दाक्षायणी सती।
भूता गिरिसुता पूर्वं यथार्धमहरत्तनुम् ॥ ३ ॥
यदाऽत्यजत्तनुं देवी पूर्वं दाक्षायणी सती।
तदैव मनसागच्छन् मेनकां हिमवद्गिरिम् ॥ ४ ॥
यदा हरेण सहिता दक्षकन्या हिमाचले।
चिक्रीड च तदा तस्या मेनकाऽभूद् हितैषिणी ॥ ५ ॥
[95]तस्याः सुता स्यामिति च आधाय मनसि द्विजाः।
त्यक्तप्राणा तदा देवी भूता हिमवतः सुता ॥ ६ ॥
यदा दाक्षायणी प्राणान् दक्षकोपाज्जहौ पुरा।
तदैव मेनका देवी आरिराधयिषुः[96] शिवाम् ॥ ७ ॥
महामायां जगद्धात्रीं योगनिद्रां सनातनीम्।
मोहिनीं सर्वभूतानां शरणं सर्वनाकिनाम् ॥ ८ ॥
अष्टम्यामुपवासं तु कृत्वा सा नवमीतिथौ।
मोदकैर्वलिभिः पिष्टैः पायसैर्गन्धपुष्पकैः ॥ ९ ॥
चैत्रे मासि समारभ्य सप्तविंशतिवासरान्।
यावत् सम्पूजयामास पुत्रार्थिन्यन्वहं शुचिः[97] ॥ १० ॥
गंगायामोषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्।
कदाचित् सा निराहारा कदाचित् सा धृतव्रता ॥ ११ ॥
शिवाविन्यस्तमनसा सप्तविंशतिवत्सरान्।
निनाय मेनका देवी परमां भूतिमिच्छती ॥ १२ ॥
सप्तविंशतिवर्षान्ते[98] जगन्माता जगन्मयी।
सुप्रीताऽभवदत्यर्थं प्राह प्रत्यक्षतां गता ॥ १३ ॥

---

९४. कथमपि हरं प्रति। ९५. तस्याहं सुतास्यामित्याधाय। ९६. प्राविराधयिषुः ९७. शुभा। ९८. वर्षान्तैः।

देव्युवाच

यत् प्रार्थितं त्वया देवि मत्तस्तत्प्रार्थयाधुना।
दास्ये तवाहं तत्सर्वं वाञ्छितं यद् हृदा भवेत् ॥ १४ ॥
ततः सा मेनका देवी प्रत्यक्षं कालिकां गताम्[९९]।
दृष्ट्वैव प्रणनामाथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
देवी प्रत्यक्षतो रूपं तव दृष्टं मयाऽधुना।
त्वामहं स्तोतुमिच्छामि प्रसन्ना यदि मे शिवे ॥ १६ ॥
ततः सा मातरित्युक्त्वा कालिका सर्वमोहिनी।
बाहुभ्यां चारुवृत्ताभ्यां मेनकां परिषस्वजे ॥ १७ ॥
ततः सा मेनका देवी कालिकां परमेश्वरीम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शिवां प्रत्यक्षतः स्थिताम् ॥ १८ ॥

मेनकोवाच

प्रेरयन्तीं जगद्धाम चण्डिकां लोकधारिणीम्।
प्रणमामि जगद्धात्रीं सर्वकामार्थसाधिनीम्[१००] ॥ १९ ॥
[१]नित्यानन्दां ज्ञानमयीं योगनिद्रां जगत्प्रसूम्।
प्रणमामि शिवां शुद्धां विधिशौरिशिवात्मिकाम्[२] ॥ २० ॥
मायामयीं महामायां भक्तशोकविनाशिनीम्।
कामस्य वनितां भद्रां नमामि त्वां चितिं शिवाम् ॥ २१ ॥

सत्त्वोद्रेकाद् या भवित्रीह नित्या
नित्या चापि[३] प्राणिनां बुद्धिरूपा।
सा त्वं बन्धच्छेदहेतुर्यतीनां
कस्ते गद्यो मादृशीभिः प्रभावः ॥ २२ ॥
या त्वं साम्नां सिद्धिरुक्तिस्तथार्चा
या वृत्तिर्या यजुषां दीर्घरूपा।
हिंसा या वाऽथवेदस्य सा त्वं
नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि ॥ २३ ॥
नित्यानित्यैर्भोगहीनैः पुरस्थैः[४]–
स्तन्मात्रैर्यैर्यत्यते भूतवर्गः।
तेषां शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा
का ते योषा योग्यं वक्तुं समर्था ॥ २४ ॥

---

९९. तदा। १००. ...दायिनीम्।
१. कुलद्वयानन्दकरीं भुवनत्रयदुर्लभाम्। इत्यधिकः।
२. विधिगौरीश्वराम्बिकाम्। ३. वाणी।
४. परस्थैस्तन्मन्त्रैर्यैर्याति भूभृद्वर्गः।

क्षितिर्धरित्री जगतां त्वमेव
त्वमेव नित्या प्रकृतिस्वरूपा[६]।
यया वशः क्रियते ब्रह्मरूपः
सा त्वं नित्या मे प्रसीदास्तु[७] मातः ॥ २५ ॥
त्वं जातवेदोगतशक्तिरूपा[८]
त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः।
आह्लादिका त्वं बहु चन्द्रिकाया-
स्तां[।]तामहं स्तौमि नमामि चाम्बिकाम् ॥ २६ ॥
योषा योषित्प्रियाणां त्वं विद्या त्वं चोर्ध्वरेतसाम्।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं तथा हरेः ॥ २७ ॥
याऽनेकरूपाणि विधाय नित्यं
सृष्टिं स्थितिं हानिमपीह कर्त्री।
ब्रह्माच्युतस्थाणुशरीरहेतुः
सा त्वं प्रसीदाद्य पुनर्नमस्ते ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सा जगतां माता कालिका पुनरेव हि।
उवाच मेनकां देवीं वाञ्छितं वरयेत्युत ॥ २९ ॥
ततः सा प्रथमं पुत्रशतं वव्रे यशस्विनी।
वीर्यवच्चायुषा युक्तमृद्धिसिद्धिसमन्वितम् ॥ ३० ॥
पश्चात् तथैकां तनयां सुरूपां गुणशालिनीम्।
कुलद्वयानन्दकरीं भुवनत्रयदुर्लभाम् ॥ ३१ ॥
ततो भगवती प्राह मेनकां मुनिसन्निभाम्।
स्मितपूर्वं तदा तस्याः पूरयन्ती मनोरथम् ॥ ३२ ॥

देव्युवाच

शतं पुत्राः सम्भवन्तु भवत्या वीर्यसंयुताः।
तत्रैको बलवान्मुख्यः प्रथमं सम्भविष्यति ॥ ३३ ॥
सुता च तव देवानां मानुषाणां च रक्षसाम्।
हिताय सर्वजगतां भविष्याम्यहमेव ते ॥ ३४ ॥
त्वं[९] सुखप्रसवा नित्यं तथा नित्यं पतिव्रता।
अम्लाना रूपसम्पन्ना सुभगा च भविष्यसि ॥ ३५ ॥
एवमुक्त्वा जगद्धात्री तत्रैवान्तरधीयत।

---

६. परस्ताव्। ७. प्रसीदाद्य। ८. रुग्रा।
९. त्वमसुरे देवी देवेन्द्रस्पर्द्धयागतं मम। इत्यधिकः।

मेनका च मुदं लब्धा स्वस्थानं प्रविवेश ह ॥ ३६ ॥
ततः काले तु सम्प्राप्ते मैनाकमचलोत्तमम् ।
पक्षेण[१०] सह योऽद्यापि सिन्धुमध्ये प्रवर्तते ॥ ३७ ॥
मेनका सुषुवे देवी देवेन्द्रं स्पर्धयागतम् ।
अन्यानूनशतं पुत्रान् क्रमात् सा सुषुवे सती ॥ ३८ ॥
महावीर्यान् महासत्त्वान् सम्पन्नान् सर्वतो गुणैः ।
ततः सा कालिका देवी योगनिद्रा जगन्मयी ॥ ३९ ॥
पूर्वत्यक्तसतीरूपा जन्मार्थं मेनकां ययौ ।
समयस्यानुरूपेण मेनका जठरे शिवा ॥ ४० ॥
समुद्भूय समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात् ।
वसन्तसमये देवी नवम्यामृक्षयोगतः ॥ ४१ ॥
अर्धरात्रे समुत्पन्ना गंगेव शशिमण्डलात् ।
ततस्तस्यां तु जातायां प्रसन्ना अभवन् दिशः ॥ ४२ ॥
अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गन्धवाञ्छुभः ।
बभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिस्तथापरा ॥ ४३ ॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जगर्जुश्च[११] घनाघनम् ।
तस्यां तु जातमात्रायां सर्वं स्वास्थ्यमपद्यत ॥ ४४ ॥
तां तु दृष्ट्वा तथा जातां नीलोत्पलदलानुगाम् ।
श्यामां सा मेनका देवी मुदमापातिहर्षिता ॥ ४५ ॥
देवाश्च हर्षमतुलं प्रापुस्तत्र मुहुर्मुहुः ।
तुष्टुवुश्चान्तरिक्षस्था गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ४६ ॥
तां तु नीलोत्पलदलश्यामां हिमवतः सुताम् ।
कालीति नाम्ना हिमवानाजुहाव कृतोदने[१२] ॥ ४७ ॥
बान्धवैस्तु समस्तैस्तन्नाम्ना सा पार्वतीति च[१३] ।
कालीति च तथा नाम्ना कीर्तिता[१४] गिरिनन्दिनी ॥ ४८ ॥
ततः सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शुभा ।
गंगेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका ॥ ४९ ॥
[१५]एधमानानुदिवसं चार्वंगी चारुतां मुहुः ।
[१६]दध्रे सानुदिनं काली चन्द्रबिम्बं कलामिव ॥ ५० ॥
सा बालभावमापन्ना क्रीडन्ती कालिका मुदम् ।

---

१०. यक्षेण । ११. जगर्ज खे । १२. कृते दिने ।
१३. बान्धवास्तु सुसन्तानां सुजातां पार्वतीति च ।
१४. केचित्तां गिरिनन्दिनीम् ।
१५. एवं नाम्नाऽनुदिवसं । १६. प्राप मेनागृहे ।

सखीभिः प्राप विपुलां कालिन्दीव सरिद्व्रजैः ॥ ५१ ॥
षड्गुणास्तां स्वयं देवीं पूर्वजन्मवशीकृताः[१७] ।
स्वयमीयुर्द्विजश्रेष्ठाः प्रावृषं कालिका यथा ॥ ५२ ॥
अतिचक्राम स्वगुणैः सा देवी देवकन्यकाः ।
रूपैरप्सरसः सर्वा गीतैर्गन्धर्वकन्यकाः ॥ ५३ ॥
सा बाल्य एव सततं बन्धुवर्गप्रिया शुभा ।
गुणैः स्वबन्धून् पितरं मातरं चाप्यतोषयत् ॥ ५४ ॥
मातुः स्तुतिकरी[१८] नित्यं पितृपूजनतत्परा ।
सर्वदा भ्रातृसहिता जगन्माताऽभवत्तदा ॥ ५५ ॥
सर्वदा सा जगन्माता कन्या सा समुपस्थिता[१९] ।
पितुः समीपे वसति कालिन्दीव विभावसोः ॥ ५६ ॥
अथैकदा तां निकटे निधाय हिमवद्गिरिः ।
तनयैः सह संगम्य स्थितः परमकौतुकात् ॥ ५७ ॥
अथागतस्तत्र मुनिर्नारदो देवलोकतः ।
हिमवन्तं सुखासीनं[२०] सुतैः सार्धं ददर्श सः ॥ ५८ ॥
अपश्यन्निकटे कालीं [२१]कालिकामिव सूर्यतः ।
ज्योत्स्नामिव सुधांशोस्तु सम्यग्वृद्धां शरन्निशि ॥ ५९ ॥
पूजितस्तेन गिरिणा कृतासन-परिग्रहः ।
नारदः प्रथमं शैलं वृत्तान्तं पर्यपृच्छत ॥ ६० ॥
ततो विदितवृत्तान्तो नारदो मेनकां प्रति[२२] ।
उवाच हर्षयन् वाक्यं मुनिर्वाक्यविशारदः ॥ ६१ ॥
एषा ते तनया रुच्या शुद्धांशोरिव वर्धिता ।
आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी ॥ ६२ ॥
शम्भोर्भवित्री दयिता सानुकूला सदा हरे[२३] ।
तस्य चित्तं वशे चैषा करिष्यति तपस्विनी ॥ ६३ ॥
स चाप्येनामृते जायां नान्यामुद्वाहयिष्यति ।
एतयोर्यादृशः प्रेमा कयोश्चिन्नैव तादृशः ॥ ६४ ॥
भूतो वा भविता वापि नाधुना च प्रवर्तते ।
अनया सुरकार्याणि कर्तव्यानि बहूनि च ॥ ६५ ॥
अनयैव गिरिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो हरः ।

---

१७. षड्गुणांस्तान् स्वयं देवी...वशीकृतान् ।
१८. प्रियकरी । देवकन्या उपस्थिताः ।
२०. समासीनं । २१. नारदो मुनिसत्तमः ।
२२. मेनकापतिम् । २३. हरेः ।

भविष्यति च सौहार्दाज्ज्योत्स्नयैवामृतात्मनः ॥ ६६ ॥
शरीरार्धं हरस्यैषा करिष्यति निजास्पदे ।
स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोषिते हरे ॥ ६७ ॥
विद्युद्गौरी त्वियं काली तव पुत्री भविष्यति ।
गौरीति नाम्ना पश्चात्तु ख्यातिमेषा गमिष्यति ॥ ६८ ॥
नान्यस्मै त्वमिमां दातुं मनः कर्तुमिहार्हसि ।
इदं चोपांशु देवानां न प्रकाशं करिष्यसि ॥ ६९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवर्षेर्नारदस्य च ।
उवाच हिमवान् वाक्यं मुनिं प्रति विशारदः ॥ ७० ॥
श्रूयते त्यक्तसंगः स महादेवो यतात्मवान् ।
तपश्चोपांशु तपति देवानामप्यगोचरः ॥ ७१ ॥
स कथं ध्यानमार्गस्थः परब्रह्मार्पितं मनः ।
भ्रंशयिष्यति देवर्षे तत्र मे संशयो महान् ॥ ७२ ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् ।
सोऽन्तः पश्यति सर्वत्र न तु बाह्यं निरीक्षते ॥ ७३ ॥
इति स्म[२४] श्रूयते नित्यं किन्नराणां मुखाद् द्विज ।
स कथं तादृशं स्वान्तं शक्तो भ्रंशयितुं हरः ॥ ७४ ॥
विशेषतः श्रूयते स्म दाक्षायण्या समं हरः ।
समयं ज्ञातवान् पूर्वं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ७५ ॥
त्वामृतेऽन्यां न वनितां[२५] दाक्षायणि सति प्रिये ।
भार्यार्थे संग्रहीष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७६ ॥
इति सत्या समं तेन पुरैव समयः कृतः ।
तस्यां मृतायां स कथं स्त्रियमन्यां ग्रहीष्यति ॥ ७७ ॥

नारद उवाच

नात्र कार्या[२६] त्वया चिन्ता गिरिराज भवत्सुता ।
एषा सती समुत्पन्ना हरायैव न संशयः ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदस्तु यथा सती ।
मेनकायां समुत्पन्ना सर्वं तत् प्रोक्तवान् गिरौ ॥ ७९ ॥

२४. संश्रयते । २५. न त्वामृतेऽन्यां दयितां ।
२६. एकैवैषा ।

तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्तं नारदस्य मुखाद् गिरिः ।
श्रुत्वा सपुत्रदारः स तदा निःसंशयोऽभवत् ॥ ८० ॥
ततः काली कथां श्रुत्वा नारदस्य मुखात् तदा ।
लज्जयाऽधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारितानना ॥ ८१ ॥
करेण तां तु संगृह्य प्रोन्नमय्य मुखं गिरिः ।
मूर्ध्नि सम्यगुपाघ्राय स्वासने संन्यवेशयत् ॥ ८२ ॥
ततस्तां पुनरेवाह नारदः शैलपुत्रिकाम् ।
हर्षयन् गिरिराजं तु मेनकां तनयैः सह ॥ ८३ ॥
सिंहासनेन किं स्वस्याः शैलराज भवेत् तव ।
शम्भोरूरुः सदैवास्या आसनं तु भविष्यति ॥ ८४ ॥
हरोरुमासनं प्राप्य तनया तव संततम् ।
नान्यत्र कुत्रचित्तुष्टिमासने प्राप्यते गिरे ॥ ८५ ॥

इति वचनमुदारं नारदः शैलराजं
त्रिदिवमगमदुक्त्वा तत्क्षणाद् देवयानैः ।
गिरिपतिरपि चिन्ताहर्षसन्मोहयुक्तः
प्रविशदचलयासौ स्वान्तरं पद्मगर्भम् ॥ ८६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नारदागमने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः क्षिप्रं त्यक्त्वा तदा सरः ।
गंगावतारमगमद् हिमवत्-प्रस्थमुत्तमम् ॥ १ ॥
यत्र गंगा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात् सृता ।
औषधीप्रस्थनगरस्यादूरे सानुरुत्तमः ॥ २ ॥
तत्र भर्गः स्वमात्मानमक्षरं परमात्परम् ।
चेतो ज्ञानमयं नित्यं ज्योतीरूपं निराकुलम् ॥ ३ ॥
जगन्मयं प्रदीपाभं द्वैतहीनाविशेषकम् ।
एकाग्रं चिन्तयामास भगवान् वृषभध्वजः ॥ ४ ॥
हरे ध्यानपरे तस्मिन् प्रमथा ध्यानतत्पराः ।
अभवन् केचिदपरे नन्दिभृंग्यादयो गणाः ॥ ५ ॥
द्वाःस्था भूता महाभागा ये पूर्वद्वारि योजिताः ।
तावन्तोऽपि गणास्तत्र नैव किंचन कूजितम् ॥ ६ ॥
तेषां संश्रूयते सर्वे निःशब्दाः संस्थितास्ततः ।
अन्ये तु तत्र क्रीडन्ति गणा दूरान्तरस्थिताः[२७] ॥ ७ ॥
कुसुमैश्च दलैर्भक्तैर्गिरिप्रस्रवणोदकैः ।
रत्नानि च विचिन्वन्तो भूषिता गैरिकैस्तथा ॥ ८ ॥
सगणं तु तथा दृष्ट्वा गिरिराजो[२८] गतं हरम् ।
स्वस्थानमोषधिप्रस्थान्निःसृत्य सहितो गणैः ॥ ९ ॥
पूजार्थमुपतस्थे स यथायोग्यं तथार्चयत् ।
स चापि शम्भुस्तस्यार्चां परया श्रद्धया युतः ।
प्रतिजग्राह कूटस्थो गंगाशीर्षे यथा पुरा ॥ १० ॥
पूजितस्तेन सहसा गिरिराजं वृषध्वजः ।
उवाच ध्यानयोगस्थः स्मयन्निव जगत्पतिः ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

तव प्रस्थे तपस्तप्तुं रहस्यमहमागतः ।
न यथा कोऽपि निकटं समायाति तथा कुरु ॥ १२ ॥

---

२७. दूरादवांछिताः । २८. गिरिराजाद् गतम् ।

त्वं महात्मा जगद्धाम मुनीनां च सदाश्रयः।
देवानां राक्षसानां च यक्षाणां किन्नरस्य च॥ १३॥
सदावासो द्विजातीनां गंगापूतश्च नित्यदा।
त्वत्पुरस्यास्य निकटे प्रस्थं गंगावतारणम्॥ १४॥
आश्रितोऽहं गिरिश्रेष्ठ तद्योग्यं कुरु साम्प्रतम्॥ १५॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तूष्णीमास वृषध्वजः।
गिरिराजस्तदा शम्भुं प्रणयादिदमब्रवीत्॥ १६॥
पूतोऽस्मि जगतां नाथ त्वयाऽहं परमेश्वर।
आगतेनाद्य विषयमितः कृत्यं किमस्ति मे॥ १७॥
तपसा महता त्वं हि देवैर्यत्नपरस्थितैः[२९]।
न प्राप्यसे जगन्नाथ स त्वं स्वयमुपस्थितः॥ १८॥
मत्तो धन्यतरो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान्।
यद्भवान् हिमवत्-प्रस्थे तपसे समुपस्थितः॥ १९॥
देवेन्द्रादधिकं मन्ये आत्मानं परमेश्वर।
सगणेन त्वया प्राप्तो यदाऽहं कामचारतः॥ २०॥
इत्युक्त्वा गिरिराजोऽथ स्ववेश्म पुनरागमत्।
नियमाय परिवारान् गणानप्यवदत् स्वकान्[३०]॥ २१॥
अद्य प्रभृति नो गन्ता कोऽपि गंगावतारणम्।
मच्छासनं न हि विना यो गन्ता दण्डये ह्यहम्॥ २२॥
इति स्वान् स नियम्याशु तिलपुष्पकुशान् फलम्।
समादायाशु तनयासहितोऽगाद् हरान्तिकम्॥ २३॥
अथ गत्वा जगन्नाथं हरं ध्यानपरं तदा।
नमयामास तनयां कालीं सर्वगुणान्विताम्॥ २४॥
तिलपुष्पादिकं यद् यत्तत्तदग्रे निधाय सः।
अग्रे कृत्वा सुतां शम्भुमिदमाह स शैलराट्॥ २५॥
भगवंस्तनयेयं मे त्वमाराधयितुं प्रति।
समादिष्टा समानीता त्वदाराधनकांक्षिणी॥ २६॥
सखिभ्यां सह नित्यं त्वां सेवतामीश शंकर।
अनुजानीहि सेवायै मयि ते यद्यनुग्रहः॥ २७॥
अथ तां शंकरोऽपश्यत् प्रथमारूढयौवनाम्।
फुल्लेन्दीवरपत्राभां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्॥ २८॥

---

२९. महता तपसा त्वं हि देवयानपरस्थितैः।
३०. गणानपि तदा सुरान्।

समग्रनीचकेशौघ-प्राप्तवेश-विजृम्भिकाम् ।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम् ॥ २९ ॥
मृणालायतपर्यन्त-बाहुयुग्ममनोरमाम् ।
राजीवकुण्डलप्रख्य-घनपीनोन्नतस्तनौ ॥ ३० ॥
बिभ्रतीं क्षीणसन्मध्यां[31] रक्तपाणितलद्वयाम्[32] ।
स्थलपद्मप्रतीकाश-पादयुग्ममनोरमाम् ॥ ३१ ॥
मध्यक्षीणां महासत्त्वां वृत्तस्थूलघनोज्ज्वलाम् ।
सुजंघां नागनासोरुं[33] निम्ननाभिविभूषिताम् ॥ ३२ ॥
सुवृत्तचारुजंघाग्रां त्रिगम्भीरां षडुन्नताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥ ३३ ॥
ध्यानपंजरनिर्बन्ध-मुनिमानसमप्यरम् ।
दर्शनाद् भ्रंशितुं शक्तां योषिद्-गणशिरोमणिम् ॥ ३४ ॥
तां दृष्ट्वा तपसे नित्यं ध्यानिनां च मनोहराम् ।
विघ्नहेतुं चानुरागवर्धिनीं कामरूपिणीम् ॥ ३५ ॥
गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शंकरः ।
पर्येषणायै जगृहे गौरवादपि गोरथः ॥ ३६ ॥
उवाचेदं तव सुता सखिभ्यां सह शैलराट् ।
नित्यं मे सेवयाऽयत्ता[34] निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु ॥ ३७ ॥
एवमुक्त्वा तु तां देवीं सेवायै जगृहे हरः ।
इदमेव महद् धैर्यं यद् विघ्नो न हि विघ्नयेत् ।
निर्विघ्नं स्थानमासाद्य यत्तपः क्रियते द्विजैः ॥ ३८ ॥
सविघ्नो विघ्नहेतुं यः परिभूय प्रवर्तते ।
त्वन्महत्त्वं च तपसां धीरता च तपस्विनाम् ॥ ३९ ॥
ततः स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकैः ।
हरश्च ध्यानयोगेन परं चिन्तयितुं स्थितः ॥ ४० ॥
काली सखिभ्यां सहिता प्रत्यहं चन्द्रशेखरम् ।
सेवमाना महादेवं गमनागमनैः स्थिता ॥ ४१ ॥
कदाचित् सहिता काली सखिभ्यां शंकराग्रतः ।
वितन्वती शुभं गीतं पंचमञ्चातनोत्तदा[35] ॥ ४२ ॥
कदाचित् कुशपुष्पादिसमिद्वारि हराय सा ।
सखिभ्यां स्नानसत्कारं कुर्वन्ती न्यवसत्तदा ॥ ४३ ॥

---

३१. ......मध्यां तु । ३२. ......द्वयम् ।
३३. जघनान्नागनासास्कं । ३४. सेवतां यत्नाद् ।
३५. पंचपंचातनोत् तदा ।

कदाचिदग्रे नियता स्थिता चन्द्रभृतो मुखम् ।
वीक्षन्ती चिन्तयामास सकामा चन्द्रशेखरम् ॥ ४४ ॥
यदा कार्येषु सा व्यग्रा तदा तत्कर्म चेष्टते ।
कृत्यहीना यदा सा तु तदैवाचिन्तयद्धरम्॥* ॥ ४५ ॥
कदा मामेष भूतेशः कर्ता पाणिगृहीतिकाम् ।
कदा मया समं रन्ता नानासद्भावभावनैः* ॥ ४६ ॥
इति चिन्तापरा काली स्वप्नेऽपि परमेश्वरम् ।
अर्चयत्येव परमं सदाचिन्तनतत्परा* ॥ ४७ ॥
अग्रं गता यदा काली प्रध्यायति महेश्वरम्* ।
तदा तद् वेदभूतेशस्तां निसर्गपरिस्थिताम् ॥ ४८ ॥
किन्तु गर्भगतैर्बीजैर्धूतदेहेति तां तदा ।
नाग्रहीद्गिरिशः कालीं भार्यार्थे ह्यधृतव्रताम् ॥ ४९ ॥
महादेवोऽपि तां दृष्ट्वा तदैवेदमचिन्तयत् ।
कथमेषा तपश्चर्याव्रतं कुर्याद् गिरेः सुता ॥ ५० ॥
कृतव्रतां ग्रहीष्यामि गर्भबीजविवर्जिताम् ।
कालीं भार्यां स्वदयितां योनिजामतिदूषिताम् ॥ ५१ ॥
व्रतेन चाथ संस्कारैर्गर्भबीजं विमुच्यते ।
तस्माद् व्रतं यथा काली कुर्यात् तद् युज्यते कथम् ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति संचिन्त्य भूतेशस्तदा ध्यानमनाः स्थितः ।
ध्यानासक्तस्य तस्याथ नान्यचिन्ता व्यजायत ॥ ५३ ॥
काली त्वनुदिनं शम्भुं भक्त्या भृशमसेवत ।
विचिन्तयन्ती सततं तस्य रूपं महात्मनः ॥ ५४ ॥
हरो ध्यानपरः कालीं नित्यं प्रत्यक्षतः स्थिताम् ।
विस्मृत्य पूर्ववृत्तान्तं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ५५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवांस्तारको नाम दैत्यराट् ।
बबाधे सर्वलोकांश्च ब्रह्मणो वरदर्पितः ॥ ५६ ॥
वशीकृत्य स लोकांस्त्रीन् स्वयमिन्द्रो बभूव ह ।
विद्राव्य सकलान् देवान् दैत्यान् स्वांस्तत्-पदेषु च ।
स्वयं नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ ॥ ५७ ॥
न यमः स्वेच्छया लोकांस्तस्मिन् राज्ञि नियच्छति ।
न स्वेच्छया तथा सूर्यो लोकांस्तपति तद्भयात् ॥ ५८ ॥

---

* मुद्रितपुस्तके अधिकः ।

चन्द्रस्तु नर्मसाचिव्यं तस्य कुर्वन् स रश्मिभिः ।
वायुना सह संगम्य तत्-सेवां विदधेऽनिशम् ॥ ५६ ॥
सदा सौगन्ध्यगाम्भीर्य-शैत्यस्निग्धत्वसंयुतः ।
तं वीजयन् ववौ वायुः शासनात्तस्य भूभृतः ॥ ६० ॥
धनदोऽपि यथासारं धनमादाय यत्नतः ।
सावधानस्तस्य सेवामकरोत्तारकेच्छया ॥ ६१ ॥
अग्निस्तस्याभवत् सूदः शासनात्तारकस्य तु ।
व्यंजनान्यथ भोज्यानि चक्रे तस्येच्छया तदा[२७] ॥ ६२ ॥
निर्ऋतिस्तस्य सततं सहितः सर्वराक्षसैः ।
अश्वान् गजान् वाहनानि कारयामास साध्वसात् ॥ ६३ ॥
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च स्तुवद्भिः सूतमागधैः ।
गायमानैश्च गन्धर्वैः संचिक्रीड सुरान् द्विषन् ॥ ६४ ॥
एवं स सर्वलोकांस्तु त्रिष्वप्यथ विलोडयन् ।
लोकेषु सारान् सारांश्च देवानामप्यथाग्रहीत् ॥ ६५ ॥
तेनाभिबाधिताः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरनाथा नाथमुत्तमम् ॥ ६६ ॥
ते प्रणम्य सुराः सर्वे पुरुहूतपुरोगमाः ।
इदमूचुर्महात्मानं सर्वलोक-पितामहम् ॥ ६७ ॥

देवा ऊचुः

लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दर्पितः ।
निरस्यास्मान् हठादस्मद्विषयान् स्वयमग्रहीत् ॥ ६८ ॥
रात्रिंदिवं बाधतेऽस्मान् यत्र तत्र स्थिता वयम् ।
पलायिताश्च पश्यामः सर्वकाष्ठासु तारकम् ॥ ६६ ॥
अग्निर्यमोऽथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च ।
तथा मनुष्यधर्मा च सर्वैः परिकरैर्युतः ॥ ७० ॥
एते तेनार्दिता ब्रह्मन् देवास्तस्यैव शासनात् ।
अनिच्छाकार्यनिरताः सर्वे तस्यानुजीविनः ॥ ७१ ॥
या देववनिताः स्वर्गे ये चाप्यप्सरसां गणाः ।
तान् सर्वानग्रहीद् दैत्यः सारं लोकेषु यच्च यत् ॥ ७२ ॥
न यज्ञाः संप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः ।
दानधर्मादिकं किंचिद् न लोकेषु प्रवर्तते ॥ ७३ ॥
तस्य सेनापतिः पापः क्रौंचो नामास्ति दानवः ।

---

२७. पुरा ।

स पातालतलं गत्वा बाधतेऽहर्निशं प्रजाः ॥ ७४ ॥
तस्मात् तु तारकेणेदं सकलं भुवनत्रयम् ।
हृतं सर्वं जगत् त्राहि पापात्तस्मात् पितामह ॥ ७५ ॥
वयं च यत्र स्थास्यामस्तत्स्थानं विनिर्देशय ।
स्वस्थानाच्च्याविताstेन लोकनाथ जगद्गुरोः[37] ॥ ७६ ॥
त्वं नो गतिश्च शास्ता च त्वं नस्त्राता पिता प्रसूः ।
त्वमेव भुवनानां च स्थापकः पालकः कृती ॥ ७७ ॥
तस्माद् यावत्तारकाख्ये वह्नौ दग्धाः प्रजापते ।
न भवामस्तथा कर्तुं भवता युज्यतेऽधुना ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

सुराणां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मलोके पितामहः ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वांस्तत्कालसदृशं वचः ॥ ७९ ॥

ब्रह्मोवाच

ममैव वरदानेन तारकाख्यः समेधितः ।
न मत्तस्तस्य मरणं युज्यते त्रिदिवौकसः ॥ ८० ॥
युष्माकञ्च प्रतीकारः कर्तव्यः प्रतिकर्मणि ।
किन्तु सम्यक् न शक्नोमि प्रतिकर्तुं प्रचोदितः[38] ॥ ८१ ॥
तस्माद् यथा तारकाख्यः स्वयमेष्यति संक्षयम् ।
तथा यूयं संविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ॥ ८२ ॥
न मया तारको वध्यो न तथा वनमालिना ।
न हरेण तथा वध्यो नान्यैरपि सुरैर्नरैः ॥ ८३ ॥
एष एव वरो दत्तो मया तस्मै तपस्यते ।
उपायश्चिन्तितश्चास्ति तत्कुर्वन्तु सुरोत्तमाः ॥ ८४ ॥
सती दाक्षायणी पूर्वं त्यक्तदेहा स्वजन्मने ।
अगच्छन्मेनकां देवीं शैलराजस्य योषितम् ॥ ८५ ॥
तां समुत्पादयामास मेनकाजठरे गिरिः ।
लक्ष्मीमिव पुरा ख्यातां भृगुः स्वतनयो मम ॥ ८६ ॥
तामवश्यं महादेवः कुर्यात् पाणिगृहीतिकाम् ।
यथा स नचिरात्तस्यामनुरक्तो भवेत् सुराः ॥ ८७ ॥
तथा विदध्वं सुतरां तत्तेजः प्रतिकर्तृ वः[39] ।
तमूर्ध्वरेतसं शम्भुं सैव प्रच्युतरेतसम् ॥ ८८ ॥
कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यबलापरा ।

---

३७. गुरो । ३८. प्रवेजितः । ३९. प्रतिकर्तृकः ।

तस्य तेजश्च्युतं यत्र तस्माद् यो जायते सुतः ॥ ८६ ॥
स एव तारकाख्यस्य हन्ता नान्यस्तु विद्यते ।
सा सुता गिरिराजस्य साम्प्रतं रूढयौवना ॥ ९० ॥
तपस्यन्तं गिरिप्रस्थे नित्यं पर्येषते हरम् ।
वाक्याद् हिमवतः सा तु काली नाम्ना निषेवते ।
सखिभ्यां सह सर्वज्ञं ध्यानस्थं परमेश्वरम् ॥ ९१ ॥
तामग्रतो वर्तमानां त्रिलोकवरवर्णिनीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो मनसापि न चेच्छति[40] ॥ ९२ ॥
यथा समीहते भार्यां कालीं च चन्द्रशेखरः ।
तथा कुरुध्वं त्रिदशा नचिरादेव यत्नतः ॥ ९३ ॥
स्वस्थानं भवतां स्वर्गस्तस्मात् तारकमप्यहम् ।
निवर्तयिष्ये संगम्य गच्छध्वं विगतज्वराः ॥ ९४ ॥
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तारकाख्यमुपस्थितः ।
उपसंगम्य वचनं समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ ९५ ॥
भो भो तारक मा स्वर्गराज्यं त्वं परिशाधि भोः ।
तदर्थं न तपस्तप्तं समये भवता पुरा ॥ ९६ ॥
वरो नापि मया दत्तो[41] न मया स्वर्गराजता ।
तस्मात् स्वर्गं परित्यज्य क्षितौ राज्यं समाचर ॥ ९७ ॥
देवभोग्यानि तत्रैव सम्भविष्यन्ति तेऽसुर ।
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ९८ ॥
स तारकः परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्ययात् ।
तत्रैव संस्थितो देवान् बाधते स्म स नित्यशः ।
इन्द्रं करप्रदं चक्रे निदेशस्थं महाबलम्[42] ॥ ९९ ॥
तमिन्द्रः सततं देवभोग्यानि वितरन् मुहुः ।
सेवमानः क्षमो नाभूत् सन्तोषयितुमीश्वरम् ॥ १०० ॥
एवं तेनार्दिता देवा मन्युना परिपीडिताः ।
विधातुरुपदेशेन यत्नं चक्रुर्हरान्वये ॥ १०१ ॥
तत इन्द्रोऽथ गुरुणा संगम्य कृतनिश्चयः ।
कुसुमेषुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १०२ ॥

इन्द्र उवाच

त्वयेदं पाल्यते विश्वं त्वया विश्वं प्रसूयते ।
त्वं ब्रह्मविष्णुरुद्राणां प्रीतिहेतुः पुरा भवः ॥ १०३ ॥

---

४०. चेहते । ४१. वृतो मत्तः । ४२. महाबलः ।

ब्रह्मा प्रीत्या यथा पूर्वमगृह्णाच्चरितव्रताम् ।
सावित्रीं माधवो लक्ष्मीं सतीं दाक्षायणीं हरः ॥ १०४ ॥
ताः प्रीतये पुरा तेषां देवेशानां यथा कृता ।
तथैव कुरु मे प्रीतिं काम प्राणभृतां सदा ॥ १०५ ॥
न त्वं न कस्यचित् स्वर्गे पाताले वाथ भूतले ।
प्रियः प्राणभृतां काम सततं जगतां मतः ॥ १०६ ॥
देवदानवयक्षाणां रक्षसां मानुषस्य च ।
त्वं पालकश्च कर्ता च हृदये च प्रवर्तसे ॥ १०७ ॥
तस्मात् त्वं सर्वजगतां हिताय कुरु चेष्टितम्[43] ।
देवदानवयक्षाणां मानुषाणां महात्मनाम् ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य मकरध्वजः ।
देवराजमुवाचेदं सुप्रीतस्तद्वचोऽमृतैः ॥ १०९ ॥
यत्राहमीशिता शक्र तत्कर्म विदितं त्वया ।
तस्मान्ममोचितं शक्यं करिष्ये तन्निदेशय ॥ १०० ॥
पंचैव बाणा मृदवस्ते च पुष्पमया मम ।
चापस्तथा पुष्पमयः शिञ्जिनी भ्रमरात्मिका[44] ॥ १११ ॥
रतिर्मे दयिता जाया वसन्तः सचिवो मम ।
यन्ता मलयजो वायुर्मित्रं मम सुधानिधिः ॥ ११२ ॥
सेनाधिपो मे श्रृंगारो हावा भावाश्च सैनिकाः ।
सर्वे मे मृदवोऽक्रूरा अहं चापि तथाविधः ॥ ११३ ॥
यद् येन युज्यते कार्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् ।
मम योग्यं तु यत् कर्म तस्मात्तस्मिन् नियोजय ॥ ११४ ॥

इन्द्र उवाच

यत् कारयितुमिच्छामि भवता तन्मनोभव ।
तत्ते समुचितं कर्म तस्मिन् परिवृतो भवान् ॥ ११५ ॥
कृतकर्मापि तत्र त्वं कृती चापि मनोभव ।
त्वदन्यैः किन्तु दुःसाध्यं तत्त्वां तत्र नियोजये ॥ ११६ ॥
श्रूयते हि तपस्यन्तं ध्यानस्थं वृषभध्वजम् ।
गिरेर्हिमवतः प्रस्थे निराकांक्षं वधूकृतौ ॥ ११६ ॥
तं पितुर्वचनात् काली तपस्यन्तं निषेवते ।
सखिभ्यां सहिता नित्यं हरस्यानुमतेऽधुना ॥ ११७ ॥

---

४३. चेष्टनं । ४४. वरा निजा ।

आरूढयौवनां तां तु स्त्रीरत्नमपि सुन्दरीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो नेहते मनसापि च ॥ ११८ ॥
सानुरागो यथा तस्यां जायते वृषभध्वजः ।
तथा विधत्स्व देवानां हिताय जगतामपि ॥ ११९ ॥❀
सह सत्या यथा रेमे सानुरागो वृषध्वजः ।❀
तथैतया गिरिजया रमतां तत्कृतेन वै ॥ १२० ॥
तस्याः कृते तु यत्तेजः प्रच्युतं यद् हरस्य वै ।
ततो यो जायते सोऽस्मांस्तारकादुद्धरिष्यति ॥ १२१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स देवराजस्य वचः श्रुत्वा मनोभवः ।
प्राप्तकालं च सस्मारं शापं ब्रह्मकृतं पुरा ॥ १२२ ॥
सन्ध्यां प्रतिविधातारं यदा शस्त्रं परीक्षितम् ।
कामोऽहनत् पुष्पबाणैस्तदा तमशपद्विधिः ॥ १२३ ॥
शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्वं भविष्यसि द्विजोत्तमाः ।
यदा कुर्याद् गिरिसुतां हरः पाणिगृहीतिकाम् ॥ १२४ ॥
तदा भवान् शरीरेणागमिष्यति समग्रताम् ।
इति स्मृत्वा विधेः शापं भीतोऽपि मकरध्वजः ॥ १२५ ॥
अंगीचक्रे शक्रवाक्यात् काल्या योजयितुं हरम् ।
इदं च वचनं प्रोचे तत्कालसदृशं पुनः ॥ १२६ ॥

मदन उवाच

करिष्ये तद्वचः शक्र हरं संगमयाम्यहम् ।
काल्या गिरिजया सार्धं दाक्षायण्या यथा पुरा ॥ १२७ ॥
किन्त्वेकं मम साहाय्यं कर्ता त्वं हरमोहने ।
यदा सन्मोहनेनाहं हरं सन्मोहयामि च ॥ १२८ ॥
तदा कुरु सहायं त्वं स्वःस्थमाप्याययस्व माम् ।
प्रविश्याहं सुरभिणा न चिराच्छंकराश्रमम् ॥ १२९ ॥
विधाय पूर्वं मनसो विकारं हर्षणेन तु ।
संमोहनेन सुदृढं मोहयिष्ये वृषध्वजम् ॥ १३० ॥
स्मरिष्यसि त्वं सम्प्राप्ते काले मां मम पालने ।
अहं गच्छामि सहितं तत्कर्तुं बलसूदन ॥ १३१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स जगामाथ मदनः शंकराश्रमम् ।

❀ मुद्रितपुस्तके अधिकः ।

शक्रोऽपि त्रिदशान् सर्वानिदमाह वचस्तदा ॥ १३२ ॥
यूयं कुरुध्वं साहाय्यं यत्र याति मनोभवः ।
तत्र तत्रानुगम्यैव समये मां च बोधत[45] ॥ १३३ ॥
यदा संमोहनेनायं संमोहयति शंकरम् ।
तदाहमपि यास्यामि तत्र बोधत[46] मां सुराः ॥ १३४ ॥
इत्युक्तास्तेन शक्रेण देवा जग्मुर्मनोभवम् ।
सोऽपि गत्वा यत्र हरो गंगावतरणे गिरेः ।
हिमभारभृतः[47] सानौ सुरभिं च न्ययोजयत् ॥ १३५ ॥
ततस्तत्र गते सम्यक्सुरभौ तस्य लक्षणम् ।
अभवन्नचिरादेव[48] तरुगुल्मलतासु च ॥ १३६ ॥
पुष्पिताः किंशुकास्तत्र मंजुलाः केतकास्तथा[49] ।
सरांसि च सपद्मानि सविकाराश्च जन्तवः ॥ १३७ ॥
ववौ वायुश्च गम्भीरो गंधिलः[50] पुष्परेणुभिः ।
शनैः शनैः सुखकरः कर्षयन् स हि मानसम्[51] ॥ १३८ ॥
पक्षिणश्च मृगाश्चैव ये चान्ये प्राणधारिणः ।
सिद्धाश्च किन्नराश्चैव द्वन्द्वभावं वितेनिरे ॥ १३९ ॥
चूताः कुसुमितास्तत्र नवस्तवकभूषिताः ।
अशोकाः पाटलाश्चैव नागकेशरकारुणाः ॥ १४० ॥
सविकारा गणाश्चासन् शंकरस्य तदा द्विजाः ।
प्रत्यक्षतो ययुस्तेऽपि[52] विकारं शम्भुसाध्वसात् ॥ १४१ ॥
भ्रमन्ति स्म तदा तत्र भ्रमराः कुसुमोद्भवम् ।
पिबन्तो बहुशश्च्युतं गुञ्जन्तः[53] सह जायया ॥ १४२ ॥
एवं प्रवृत्ते सुरभौ शृंगारोऽपि गणैः सह ।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम् ॥ १४३ ॥
मदनः सगणस्तत्र निवसंश्चिरमेव हि ।
न दृष्टवांस्तदा शम्भोश्छिद्रं येन प्रवेक्ष्यति ॥ १४४ ॥
यदा च प्राप्तविवरस्तदा[54] भयविमोहितः ।
नाग्रेसरोऽभवत् तस्य मदनो रतिवारितः ॥ १४५ ॥
एवं यातस्तस्य कालः प्रभूतो द्विजसत्तमाः ।
निरूपयन् न वा चाप[55] छिद्रं तस्य यतेस्तदा ॥ १४६ ॥

---

४५. बोधय । ४६. तदा प्रबोधय । ४७. हेमस्थानगते ।
४८. अवसन्नचिरादेव । ४९. केसरास्तथा । ५०. गंधिनः ।
५१. काननम् । ५२. नचेन्नस्ते । ५३. स्व स्व ।
५४. यदा नावाप्तविवरः ।

ज्वलत्कालाग्निसंकाशं भानुलक्षसमप्रभम् ।
ध्यानस्थं शंकरं को वा समासादयितुं क्षमः ॥ १४७ ॥
अथैकदा गिरिसुता काली तस्याभवत्पुरः ।
कृत्वा परीष्टिं कर्तव्यां सखिभ्यां प्रणता स्थिता ॥ १४८ ॥
शंकरोऽपि तदा ध्यानं त्यक्त्वा तत् क्षणमास्थितः ।
योजयन् स्वगणान् कृत्ये ज्योतिश्चिन्ताविवर्जितः ॥ १४९ ॥
तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमं हर्षणेन तु ।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ॥ १५० ॥
शृङ्गारश्च तदा भावैर्हावैश्च सहितो हरम्[५६] ।
जगाम कामसाहाय्यं कुर्वन् सुरभिणा सह[५७] ॥ १५१ ॥
हर्षणेनातिहृषितः शृङ्गाराद्यैर्निषेवितः ।
शंकरो वदनं काल्याः साकूतं[५८] संव्यलोकयत् ॥ १५२ ॥
तत् प्राप्य विवरं कामः पुष्पं चापे न्ययोजयत् ।
संमोहनं पुष्पवृतं पुष्पमालाविवर्धितम्[५९] ॥ १५३ ॥
तदाभूद् दक्षिणे[६०] पार्श्वे रतिः प्रीतिस्तु वामतः ।
पृष्ठे वसन्ततूणीरं [६१]पौष्पमादाय सुन्दरः[६२] ॥ १५४ ॥
आकर्णपूरितं[६३] पुष्पं चापमाकृष्य संयतः ।
यदा मनोभवो वायुस्तदा तं समुपेयिवान् ॥ १५५ ॥
संहिते पुष्पबाणे तु गिरिजां चन्द्रशेखरः ।
जातेन्द्रियविकारः सन् जिघृक्षुः संगमेऽभवत् ॥ १५६ ॥
अमराः शक्रसहितास्तदा सर्वे वियद्गताः ।
सभ्यं मनोभवं मेने सुरकृत्ये निवेशितम् ॥ १५७ ॥
अथ संस्मृत्य संयम्य निगृह्य विकृतिं तदा ।
इन्द्रियस्य महादेवः सहसेदं व्यचिन्तयत् ॥ १५८ ॥
योनिजां गिरिजां कालीं तपोव्रतविवर्जिताम् ।
कथं संगमकामोऽहं[६४] धर्तुमिच्छामि वै हठात् ॥ १५९ ॥
तपोव्रतपवित्रांगीं तपश्चरणसत्कृताम् ।
स्वयमेव ग्रहीष्यामि सतीं दाक्षायणीमिव ॥ १६० ॥
कथं विकृतकामोऽहमनिच्छन्निव साम्प्रतम् ।

---

५५. निरूपणं तदावाप ।

५६. रणम् । ५७. पुष्पमालाविभूषितम् । ५८. साकूटः ।

५९. पुष्पमालाविभूषितम् । ६०. तस्याभूद् ।

६१. पुष्पमादाय । ६२. सुन्दरं ।

६३. पूर्णं तत् । ६४. कर्तुम् ।

केनापि चाकृष्ट इव चिकीर्षुः संगमोद्भवम्[६५] ॥ १६१ ॥
एवं विकारहेतुं स निश्चिन्वन्निन्द्रियस्य तु ।
पुरोवलोकयामास संहितेषुं मनोभवम् ॥ १६२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विज्ञातसमयः सुरान् ।
दृष्ट्वा स्थानादाजगाम तत्समाजमनुग्रहात् ॥ १६३ ॥
ततः स कुपितो दृष्ट्वा[६६] सन्धितेषुं मनोभवम् ।
जज्वाल ज्वलनप्रख्यस्तं दिधक्षुः प्रसह्य तु ॥ १६४ ॥
कामोऽयं समयं ज्ञात्वा मां मोहयितुमिच्छति ।
मनो मे स्ववशं कर्तुं तन्नयामि यमक्षयम् ॥ १६५ ॥
एवं विचिन्तमानस्य नेत्रोद्भावितितेजसा[६७] ।
वर्धतो ज्वलनो भूत्वा क्रोधं नेत्रात् ससर्ज[६८] ह ॥ १६६ ॥
तं क्रोधाग्निःसरिष्यन्तं जातवेदःस्वरूपिणम् ।
ज्ञात्वा कामस्य तान् बाणान् पौष्पचापनिषण्णकान्[६९] ॥१६७॥
शक्तिं प्राणांस्तथात्मानमाकृष्यापालयद्विधिः ।
उत्सारयामास तदा वसन्तं स पितामहः ॥ १६८ ॥
निजशक्त्या तदा शम्भुक्रोधाद्रक्षन्मनोभवम् ।
अथाकाशगता देवाः क्रुद्धं दृष्ट्वा महेश्वरम् ॥ १६९ ॥
प्रसीद जगतां नाथ कामे क्रोधं परित्यज ।
त्वया यथा पुरा सृष्टः शम्भुरूपेण कर्मणा ॥ १७० ॥
येन चायोजितं कर्म तत्करोति मनोभवः ।
तस्मात् त्वं मदने शम्भो क्रोधाग्निमुपसंहर ॥ १७१ ॥
प्रसीद सर्वभूतेश भक्त्या त्वां प्रणता वयम् ।
इति स्म वदतां तेषाममराणां तदानलः ॥ १७२ ॥
ललाटचक्षुःसम्भूतो भस्माकार्षीन्मनोभवम् ।
दग्ध्वा कामं तदा वह्निर्ज्वालामालातिदीपितः ॥ १७३ ॥
संस्तम्भितोऽथ विधिना हरं गन्तुं शशाक न ।
महादेवोऽपि तद्भस्म मनोभवशरीरजम् ॥ १७४ ॥
आदाय सर्वगात्रेषु भूतिलेपं तदाकरोत् ।
लेपशेषाणि भस्मानि समादाय तदा हरः ॥ १७५ ॥
सगणोऽन्तर्दधे कालीं विहाय विधिसम्मते ।
ब्रह्मा क्रोधानलं शम्भोर्दहन्तं सकलान् सुरान् ॥ १७६ ॥
वडवारूपिणं चक्रे देवानां[७०] पुरतस्तदा ।

---

६५. संगमेऽभवत् । ६६. भूत्वा । ६७. ...नेत्रोल्लासित ।
६८. समाहरत् । ६९. ...निसंगकान् । ७०. प्रभवः ।

वडवां तां तदा देवाः सौम्यां ज्वालामुखीं शुभाम् ॥ १७७ ॥
दृष्ट्वा निर्विघ्नमनसो बभूवुः पूर्वपीडिताः ।
वडवां तां समादाय तदा ज्वालामुखीं विधिः ॥ १७८ ॥
सागरं प्रययौ लोक-हिताय जगतांपतिः ।[७१]
गत्वाथ सागरं ब्रह्मा प्रोवाच परिपूजितः ॥ १७९ ॥
यथावत्तेन विप्रेन्द्राः समयं च निवेदयन् ।
अयं क्रोधो महेशस्य वडवारूपधृक् त्वया ॥ १८० ॥
ज्वालामुखः सदा धार्यो यावन्न विनयाम्यहम् ।
यदा त्वामहमागम्य वदामि सरितां पते ॥ १८१ ॥
तदा त्वया परित्याज्यः क्रोधोऽयं वडवामुखः ।
भोजनं भवतस्तोयमेतस्य तु भविष्यति ॥ १८२ ॥
यत्नादेवं विधार्योऽयं यथा नो याति चान्तरम् ।
इत्युक्तो ब्रह्मणा सिन्धुरङ्गीचक्रे तदा क्रुधम् ॥ १८३ ॥
ग्रहीतुं वडवावक्त्रे शम्भोश्चाशक्यमप्यरम् ।
ततः प्रविष्टो जलधौ पावको वडवामुखः ॥ १८४ ॥
वार्योघान्निदहन् सम्यग् ज्वालामालातिदीपितः ।
[७२]यदाभवच्छम्भुनेत्राद् ददाह मदनं तदा ॥ १८५ ॥
अभवत् सुमहाशब्दो येनाकाशः प्रपूरितः ।
तेन शब्देन महता कामदाहे क्षणेन च ॥ १८६ ॥
सखीभ्यां सह भीताभूत् काली शोकयुता तदा ।
तेन शब्देन हिमवांश्चकितो विस्मितस्तदा ॥ १८७ ॥
सुतामेव जगामाशु गतां कालीं हराश्रमम् ।
तां तत्र कालीं तनयां भयशोकाकुलां शुभाम् ।
रुदन्तीं शम्भुविरहादाससादाचलेश्वरः ॥ १८८ ॥
आसाद्य पाणिना तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् ।
या भैषीः कालि मा रोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत् ॥ १८९ ॥
क्रोडीकृत्य सुतां तां तु हिमवानचलेश्वरः ।
स्वमालयमथानिन्ये सान्त्वयामास चार्दिताम् ॥ १९० ॥
अन्तर्हिते हरे काली विरहात् तस्य संततम् ।
निवसन्ती पितुर्गेहे शुशोच च मुमोह च ॥ १९१ ॥
शैलाधिराजोऽप्य मेनकापि मैनाकमुख्योऽपि सखीद्वयं च ।
तां सान्त्वयांचक्रुरदीनसत्त्वां हरं विसस्मार तथापि नोमा ॥१९२॥

इति श्रीकालिकापुराणे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

७१. प्रभुः । ७२. ददाह दहनो नेत्रदहनः ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ देवमुनिर्यातो हिमवन्मन्दिरं तदा।
नियोजितो बलभिदा नारदः कामगः परम् ॥ १ ॥
स गतः पूजितस्तेन धरेशेन महात्मना।
तं समुत्सृज्य रहसि कालीं तामाससाद ह ॥ २ ॥
आसाद्य कालीं स मुनिः सम्बोध्य ज्ञानशालिनीम्।
उवाचेदं वचस्तथ्यं सर्वेषां जगतां हितम् ॥ ३ ॥

नारद उवाच

शृणु कालि वचो मह्यं सत्यं तदवधारय।
सेवितः स महादेवस्त्वयेह तपसा विना ॥ ४ ॥
अनुरक्तोऽपि तेन त्वां महादेवो विसृष्टवान्।
त्वामृते शंकरो नान्यां द्वितीयां संग्रहीष्यति ॥ ५ ॥
त्वं चापि नान्यं दयितं ग्रहीष्यसि विनेश्वरम्।
तस्मात् त्वं तपसा युक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ॥ ६ ॥
तपसा संस्कृतां त्वां तु स द्वितीयां करिष्यति।
मन्त्रोऽयं तस्य सुभगे शृणु त्वं येन सोऽचिरात् ॥ ७ ॥
आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति महेश्वरः।
ॐ नमः शिवायेति च सर्वदा शंकरप्रियः ॥ ८ ॥
चिन्तयन्ती तु तद्रूपं नियमस्था षडक्षरम्।
मन्त्रं जप त्वं गिरिजे तेन तुष्टो भवेद्धरः ॥ ९ ॥
एवमुक्ता तदा काली नारदेन महात्मना।
कर्तव्यमनुमेने सा हितं तथ्यञ्च तद्वचः ॥ १० ॥
अनुमान्य तपस्तप्तुं तदा कालीञ्च नारदः।
स्वर्गं जगाम तस्याश्च निश्चिताभून्मतिर्व्रते ॥ ११ ॥
अथ याते देवमुनौ काली सासाद्य मेनकाम्।
तपःश्रद्धां समाचख्ये चात्मनो हरसंगमे ॥ १२ ॥

काल्युवाच

तपस्तप्तुं गमिष्यामि मातः प्राप्तुं महेश्वरम्।
अनुजानीहि मां गन्तुं तपसेऽद्य तपोवनम् ॥ १३ ॥

तपःकरणयत्नं मे पितुरावेदय द्रुतम् ।
यावन्न दह्ये जननि भूतेशविरहाग्निना ॥ १४ ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा मेनका शोककर्शिता ।
आलिंग्य स्वसुतामूचे मा तपः कुरु वल्लभे ॥ १५ ॥
मृदुदेहासि पुत्रि त्वं मा तपो याहि कर्कशम् ।
तपः सोढुं मुनेर्गात्रं शक्तं ते न कलेवरम् ॥ १६ ॥
वनवासश्च ते पुत्रि नेष्टः शत्रुगणैरपि ।
तस्मात् त्वं सम्परित्यज्य वनवासोद्भवं तपः ।
आत्मनो ह्यनुरूपेण तपस्तत् कुरु यद्धितम् ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मातुः सा वचनं श्रुत्वा गिरिजा दीनमानसा ।
इत्यूचे च तदा वाक्यं तपोयत्नपरा प्रसूम् ॥ १८ ॥
मा निषेधय मां यास्ये तपसेऽद्य तपोवनम् ।
प्रच्छन्नमपि यास्यामि नानुज्ञाताप्यहं त्वया ॥ १९ ॥

मेनकोवाच

गृहेषु देवाः सततं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
तस्माद् गृहे पुत्रि देवानर्चय त्वं यथेप्सितान् ॥ २० ॥
स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता स्वामिना विना ।
तस्मान्न युज्यते पुत्रि तपोयात्रा वनं प्रति ॥ २१ ॥
यतो निरस्ता तपसे वनं गन्तुं च मेनया ।
उमेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती ॥ २२ ॥
अवज्ञाय तदा मातुर्वचनं हिमवत्सुता ।
सखीभ्यां ज्ञापयासास पितरं तपसोद्यमम् ॥ २३ ॥
स तु ज्ञात्वा गिरिपतिस्तपसे चरितोद्यमम् ।
दुहितुश्चानुमेने च नातिहृष्टमना इव ॥ २४ ॥
सानुज्ञाप्य तदा तातं यत्र दग्धो मनोभवः ।
शम्भुना प्रययौ तत्र गंगावतरणं प्रति ॥ २५ ॥
गंगावतरणं नाम प्रस्थो हिमवतः स च ।
हरशून्योऽथ ददृशे काल्या तच्चिन्तया तदा ॥ २६ ॥
यत्र स्थित्वा पुरा शम्भुर्ध्यानवानभवद् भृशम् ।
तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ॥ २७ ॥
हा हरेति क्षणं तत्र रोदमाना गिरेः सुता ।
विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकसमन्विता ॥ २८ ॥

क्षणं विलप्य सा काली स्मृत्वा पूर्वोद्भवं तदा।
हार्दं हरस्य सा मोहमवाप कमलेक्षणा ॥ २९ ॥
ततश्चिरेण सा मोहं धैर्यात् संस्तभ्य भामिनी।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्-सुता ॥ ३० ॥
प्रथमं नियमस्तस्या बभूव फलभोजनम्।
चर्या पंचातपा चिन्ता शाम्भवी शाम्भवो जपः ॥ ३१ ॥
यज्ञियैर्दारुभिः शुष्कैश्चतुर्दिक्षु चतुष्कृतम्।
वह्निसंस्थापनं ग्रीष्मे तीव्रांशुस्तत्र पंचमः ॥ ३२ ॥
हस्तान्तरे चतुर्वह्नीन् कृत्वा वैश्वानरेष्टिना।
तन्मध्यस्था सूर्यविम्बं वीक्षन्ती वल्कलांशुका ॥ ३३ ॥
ग्रीष्मं निन्ये वह्निमध्ये शिशिरे तोयवासिनी।
प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं तोयभोजनम् ॥ ३४ ॥
तृतीयं तु स्वयम्पाति-वृक्षपल्लव-भोजनम्।
क्रमेण तु तदा पर्णं निरस्य हिमवत् सुता ॥ ३५ ॥
निराहारव्रता भूत्वा तपश्चरणखिन्निका।
आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिमवतः सुता ॥ ३६ ॥
तेन देवैरपर्णेति कथिता पृथिवीतले।
पंचातपव्रतेनैव तोयानाञ्च प्रवेशनैः ॥ ३७ ॥
एकपादस्थिता सा तु वसन्ते हिमवत्सुता।
षडक्षरं जपन्ती सा चिरं तेपे तपो महत् ॥ ३८ ॥
चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधारिणी।
कृशांगी चिन्तने शक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥ ३९ ॥
तां तपश्चरणे शक्तां ररक्ष शंकरः स्वयम्।
आप्यायति स्म स तदा भयाद्रक्षति हर्षितः ॥ ४० ॥
एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिन्तयन्त्या महेश्वरम्।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने ॥ ४१ ॥
षट्त्रिवर्षसहस्राणि संस्कृता वीक्षणात् स्वयम्।
दैवेन विधिना देवी हरयोग्या तथाभवत् ॥ ४२ ॥
षट्त्रिवर्षसहस्रान्ते यत्र तेपे तपो हरः।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिन्तयामास भामिनी ॥ ४३ ॥
नियमस्थां महादेवः किं मां जानाति नाधुना।
येनाहं सुचिरं तेन नानुज्ञाता तपोरता ॥ ४४ ॥
लोके नास्त्यत्र गिरिशः किं तत्र मुनिभिः स्तुतः।

सर्वज्ञः सर्वगो देवो हरो देवैर्निगद्यते ॥ ४५ ॥
स सर्वगस्तु सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वहृद्गतः ।
सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावनभावनः ॥ ४६ ॥
सती च मेनका माता यदि चाहं वृषध्वजे ।
सानुरक्ता नचान्यस्मिन् स प्रसीदतु शंकरः ॥ ४७ ॥
यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्रोऽयं स्यात्षडक्षरः ।
यदि भक्त्या मया जप्तं हरस्तेन प्रसीदतु ॥ ४८ ॥
सत्यं यदि तपस्तप्तं सत्यं चाराधितो हरः ।
सत्यं भवेद् यदि तपो हरस्तेन प्रसीदतु ॥ ४९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं विचिन्तयन्ती सा यदातिष्ठद्धराश्रमे ।
अधोमुखी दीनवेशा जटावल्कलमण्डिता ॥ ५० ॥
तदैव ब्राह्मणः कश्चिद् ब्रह्मचारी धृतव्रतः ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेण धृतदण्डकमण्डलुः ॥ ५१ ॥
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमानः स्वगौश्च सुशोभनः ।
जटाभिः परिवीताभिरुद्रिक्तस्तनुदेहभृत् ॥ ५२ ॥
उपस्थितस्तदा कालीं शम्भुर्ब्राह्मणरूपधृक् ।
आसाद्य प्रथमं कालीं समाभाष्य तदा द्विजः ॥ ५३ ॥
ज्ञातुं प्रत्यक्षतो रागं श्रोतुमिच्छंश्च तद्वचः ।
वाग्मी विचित्रवाक्येन पप्रच्छ गिरिजां तदा ॥ ५४ ॥

ब्राह्मण उवाच

का त्वं कस्यासि कल्याणि किमर्थं विजने वने ।
तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ॥ ५५ ॥
न बाला त्वं नापि वृद्धा तरुणी चातिशोभना ।
कथं पतिं विनाभीक्ष्णं तपश्चरसि साम्प्रतम् ॥ ५६ ॥
किंवा तपस्विनी भद्रे कस्यचित् सहचारिणी ।
तपस्विनः स पुष्पादि समाहर्तुं गतोऽन्यतः ॥ ५७ ॥
एतन्मम समाचक्ष्व यदि गुह्यं भवेन्न ते ।
यदि ते हृदये मन्युः कश्चिद्वसति सम्प्रति ।
तदाचक्ष्व समर्थोऽस्मि तमहं चापि वारितुम् ॥ ५८ ॥
इत्युक्ता तेन विप्रेण गिरिजाथ निजां सखीम् ।
तस्योत्तरप्रदानाय कटाक्षेण न्ययोजयत् ॥ ५९ ॥
सा सखी विजया तस्या वचनाद् ब्राह्मणं तदा ।

प्रोवाचेदं यथातथ्यं वीक्षन्ती गिरिजामुखम् ॥ ६० ॥
एतस्य गिरिराजस्य तनयेयं द्विजोत्तम ।
ख्याता च पार्वतीनाम्ना कालीति च सुशोभना ॥ ६१ ॥
ऊचे यन्न च केनापि शंकरं वृषभध्वजम् ।
वाञ्छन्ती दयितं तीव्रं तपश्चरति वै पतिम् ॥ ६२ ॥
त्रीणि वर्षसहस्राणि तपस्तपति भामिनी ।
न शंकरो गिरिसुतामद्याप्यभ्युपपद्यते ॥ ६३ ॥
शंकरो गिरिशो देवः सर्वगः परमेश्वरः ।
इति स्म गद्यते देवैर्मुनिभिश्च तपोधनैः ॥ ६४ ॥
किमेनां स न जानाति किं सानौ नास्ति वा गिरेः ।
इति चिन्ताविषण्णेयमद्य नो लभते सुखम् ॥ ६५ ॥
अप्रार्थितस्त्वमनया दयसे यदि वा सुखम् ।
तदैनां शंकरेणाद्य त्वं संगमय सुव्रत ॥ ६६ ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्रह्मचारी तदा द्विजः ।
स्मयमान इदं वाक्यं हेलयोवाच पार्वतीम् ॥ ६७ ॥

ब्राह्मण उवाच

अमोघदर्शनश्चास्मि हरं चानयितुं क्षमः ।
किन्त्वेकं निगदाम्यद्य निश्चितं मन्मतं शृणु ॥ ६८ ॥
जानाम्यहं महादेवं तं वदामि शृणुष्व मे ।
वृषध्वजो महादेवो भूतिलेपी जटाधरः ॥ ६९ ॥
व्याघ्रचर्मांशुकश्चैकः संवीतो गजकृत्तिना ।
कपालधारी सर्पौघैः सर्वगात्रेषु वेष्टितः ॥ ७० ॥
विषदग्धगलस्त्र्यक्षो विरूपाक्षो विभीषणः ।
अव्यक्तजन्मा सततं गृहभोग्यविवर्जितः ॥ ७१ ॥
ज्ञातिभिर्बान्धवैर्हीनो भक्ष्यभोज्यविवर्जितः ।
श्मशानवासी सततं तत्संगपरिवर्जितः ॥ ७२ ॥
गर्जद्भिर्विकटैस्तीक्ष्णैर्भूतौघैः परिवारितः ।
शृंगाररसहीनश्च भार्यापुत्रविवर्जितः ॥ ७३ ॥
केन वा कारणेन त्वं भर्तारं तं समीहसे ।
पूर्वं श्रुतं मया चैव तस्यापरमिदं कृतम् ॥ ७४ ॥
शृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते गृह्य रोचते ।
दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् ॥ ७५ ॥
वव्रे पतिं पुरा दैवात् सम्भोगपरिवर्जितम् ।

कपालिजायेति सती दक्षेण परिवर्जिता ॥ ७६ ॥
यज्ञभागप्रदानाय शम्भुश्चापि विवर्जितः ।
साथ तेनापमानेन भृशं शोकाकुला सती ॥ ७७ ॥
तत्याज स्वां प्रियां प्राणांस्तया त्यक्तश्च शंकरः ।
त्वं स्त्रीरत्नं तव पिता राजा निखिलभूभृताम् ॥ ७८ ॥
तथाविधं पतिं कस्मादुग्रेण तपसेहसे ।
देवेन्द्रो वा धनेशो वा पवनो वाप्यपांपतिः ॥ ७९ ॥
अग्निर्वाऽन्यः सुरो वापि स्ववैंद्यावश्विनावपि ।
विद्याधरो वा गन्धर्वो नागो वा मानुषोऽथ वा ॥ ८० ॥
रूपयौवनसम्पन्नः समस्तगुणसंयुतः ।
स ते योग्यः पतिः श्रीमानुदारकुलसम्भवः ॥ ८१ ॥
येन त्वं बहुरत्नौघ-पूरितेऽनर्घविस्तृते ।
माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपचूर्णैः सुवासिते ॥ ८२ ॥
मृद्वास्तरणसंयुक्ते विस्तृते सुमनोहरे ।
चारुप्रासादगर्भस्थे जाम्बूनदविचित्रिते ॥ ८३ ॥
शय्यातले समासाद्य स योग्यस्ते भवेत् पतिः ।
एवं ज्ञात्वाऽद्य सुभगे यदि वाञ्छसि शंकरम् ।
किं ते तपोभिः सुतरामहं तं योजये त्वया ॥ ८४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा तदा काली ब्राह्मणस्योत्तरं तदा ।
मितं तथ्यं जगादैनं ब्राह्मणं कोपसंयुक्ता ॥ ८५ ॥

काल्युवाच

न जानासि हरं देवं त्वं जानामीति भाषसे ।
बहिर्यद् दृश्यते तत्ते कथितं द्विजनन्दन ॥ ८७ ॥
यस्य भावं न जानन्ति सेन्द्रा ब्रह्मादयः सुराः ।
तस्य त्वं विप्रतनय शिशुर्ज्ञास्यसि किं भवम् ॥ ८७ ॥
यच्छ्रुतं भवता नीचवदनाद् भाषितं लघु ।
इतस्ततस्तु श्रुत्वैव भाषसे त्वं न दृष्टवान् ॥ ८८ ॥
तस्मात् त्वत्तो वरं नाहं वाञ्छये नापि वा पतिम् ।
अन्यद् वद न च त्वत्तो वाञ्छये हरसंगमम् ॥ ८९ ॥
इत्युक्त्वा गिरिजा विप्रमवलोक्य सखीमुखम् ।
इदमाह तदा काली संशयारूढचेतना ॥ ९० ॥
महता चिन्तनेनेह तपसाराधितो हरः ।

तन्ममाग्रे विप्रसुतो निन्दितुं वाक्यमुक्तवान् ॥ ६१ ॥
तदहं चापनेष्यामि स्तुतिवाक्येन साम्प्रतम् ।
महात्मनां च यो निन्दां शृणोति कुरुतेऽथवा ॥ ६२ ॥
तयोरागःसमं पूर्वं मया तातमुखाच्छ्रुतम् ।
तस्मात्तदपनेष्येऽहं तन्निषेधय विप्रकम् ॥ ६३ ॥
इत्युक्त्वा सा सखीं काली शम्भुसंगतमानसा ।
आगःसंमार्जनायाशु हरं स्तोतुमुपाक्रमत् ॥ ६४ ॥

काल्युवाच

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥ ६४ ॥
विज्ञानसौभाग्यसुहृद्गताय ते
प्रपञ्चहीनाय हिरण्यबाहवे ।
नमोऽस्तु नारायणपद्मसम्भव
प्रधानबीजाय जगद्धिताय ते ॥ ६६ ॥
इति स्तुवन्तीं पुनरेव स द्विज-
स्तदा वचः किंचिदुदीरितुं पुनः ।
समीक्ष्य कालीमकरोत् सयत्नकं
बुद्ध्वा समाचष्ट सखीं गिरेः सुता ॥ ६७ ॥
अयं द्विजः किंचन वक्तुमिच्छ-
त्युग्रं हरं चापि न संविदानः ।
निन्दन्नहि प्राणहरीं हरस्य
निन्दामहं श्रोतुमिह क्षमामि ॥ ६८ ॥
यावद् भूरिवचोऽस्याहं न शृणोम्यधुना सखि ।
गच्छामि तावद् दूराय समुत्तिष्ठामि मत्प्रिये ॥ ६९ ॥
इत्युक्त्वा सा तया सख्या सहिता हिमवत्सुता ।
प्रतस्थेऽथ समुत्थाय तमुत्सृज्य द्विजं हठात् ॥ १०० ॥
अथ शम्भुर्निजं रूपमास्थाय हिमवत्सुताम् ।
तं समुत्सृज्य गच्छन्तीं हरः स्मेरमुखोऽन्वयात् ॥ १०१ ॥
अहं हरो महादेवो मां संस्तौषि न चाधुना ।
सम्मुखीभव हे कालि समाश्वासय शांकरि ॥ १०२ ॥
इत्युक्त्वा स महादेवो गच्छन्त्याः पुरतो गतः ।
प्रसार्य हस्तौ काल्यास्तु गतिं तस्या विरोधयन् ॥ १०३ ॥
सा वीक्ष्य शम्भुवदनं तत्क्षणादभवद्धठात् ।

अधोमुखी तडिद्वातचकितेव गिरेः सुता ॥ १०४ ॥
मन्दाक्षं प्रीतिलज्जाभिः सा जडेव तदाभवत् ।
वक्तुं च नाशकत् किंचिद्विवक्षुरपि भामिनी ॥ १०५ ॥
मनोरथानां सिद्ध्या तु सुधाभिरिव पूरितम् ।
शरीरमभवत्तस्या मुदा पूर्णं द्विजोत्तमाः ॥ १०६ ॥
षट्त्रिवर्षसहस्रैस्तु तपःक्लेशमविन्दत ।
यत्तं क्षणात् समुत्सृज्य सम्मोदमुदिताभवत् ॥ १०७ ॥
तां च वीक्ष्य तथाभूतां प्रणयाद् वृषभध्वजः ।
कामेन भस्मरूपेण गात्रस्थेन च मोहितः ॥ १०८ ॥
अथ तां विरहोद्रिक्तः समेत्य वृषभध्वजः ।
सम्बोधयन्निदं चाटुवचनं प्रोक्तवान् मुदा ॥ १०९ ॥
न तु सुन्दरि मां वक्तुं किंचनापि त्वमीहसे ।
तपःक्लेशं स्मरयन्ती किं मह्यं कुप्यसि साम्प्रतम् ॥ ११० ॥
अहं च परितप्यामि त्वामृते सुभगे मम ।
समयाद् यत् समारब्धं तपस्तप्तुं त्वया समम् ॥ १११ ॥
सानुरक्तोऽथ संस्कृत्य भविष्यामि त्वया प्रिये ।
अधुना समतीतो मे यः कृतः समयो मया ॥ ११२ ॥
तपसे भवती चापि तपसैव सुसंस्कृता ।
संचिन्तनेन जप्येन तीव्रेण तपसा तदा ।
मूल्येन महता क्रीतो दासोऽहं मां नियोजय ॥ ११३ ॥
त्वदंगानां संस्करणे जटानां च प्रसाधने ।
प्रमुच्य वल्कलं गात्राच्चार्वंशुकनिवेशने ॥ ११४ ॥
हारनूपुरकेयूरकाञ्च्यादिपरिधापने ।
द्रुतं नियोजय शुभे यदि स्नेहोऽस्ति मादृशि ॥ ११५ ॥
निर्दग्धो यो मया कामो भस्मरूपेण मत्तनौ ।
स्थितो मां प्रतिकृत्येव त्वदग्रे दग्धुमिच्छति ॥ ११६ ॥
तस्मादुद्धर मां कामादग्नेरिव मनोहरे ।
त्वदङ्गामृतदानेन प्रसीद दयिते मम ॥ ११७ ॥

इति कालिकापुराणे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ श्रुत्वा वचः शम्भोर्गिरिजातीव हर्षिता ।
मेने प्राप्तं तदा शम्भुं सुन्दरं दयितं पतिम् ॥ १ ॥
अथ प्राह तदा काली सखीवक्त्रेण शंकरम् ।
यथा स शृणुते वाक्यं श्रोतुमिच्छंश्च शंकरः ॥ २ ॥
न सन्धावतिभेदेन प्रवर्तन्तेऽत्र सज्जनाः ।
मर्यादया हरस्तं मे पाणिं गृह्णातु शंकरः ॥ ३ ॥
पितृदत्ता भवेत् कन्या तपोदत्ता भवेन्नहि ।
तपसा चेत् प्रदत्ताहं मां तातश्च प्रदास्यति ॥ ४ ॥
तस्मात् सम्प्राथ्र्य पितरं हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
वैवाहिकेन विधिना पाणिं गृह्णातु मे हरः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा विररामाथ काली लज्जासमन्विता ।
हरोऽपि तद्वचः सत्यं तथ्यं योग्यं तदाग्रहीत् ॥ ६ ॥
ततः स सगणः शम्भुस्तत्र वासं तदाकरोत् ।
गङ्गावतरणे सानौ यथापूर्वं तथाधुना ॥ ७ ॥
काली पितुर्गृहं याता सखीभिः परिवारिता ।
नालोकयन्ती सा दीना गुरूणां वदनं सती ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सप्त मरीचिप्रमुखान् मुनीन् ।
चिन्तयामास शशिभृत् कालीं प्रार्थयितुं तदा ॥ ९ ॥
चिन्तिताः सप्त मुनयस्तत्क्षणान्मदनारिणा ।
आकृष्टा इव केनापि तत्सकाशमुपागताः ॥ १० ॥
तान् मुनीन् ददृशे शम्भुः सप्ताग्नीनिव दीपितान् ।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्य सकाशे ददृशे सतीम् ॥ ११ ॥
अरुन्धतीं ततो दृष्ट्वा वसिष्ठस्य समीपतः ।
मेने योषिद्ग्रहं धर्मं मुनिभिश्चाप्यवर्जितम् ॥ १२ ॥
ततस्ते मुनयः सर्वे सम्पूज्य वृषभध्वजम् ।
इदमूचुः प्रहर्षेण स्मरणाकर्षिताः प्रियम् ॥ १३ ॥

ऋषय ऊचुः

यत् प्रत्यक्षं दृश्यते शुद्धरूपं
चन्द्रप्रख्यं चन्द्रखण्डोपशोभि ।
अन्तःप्रज्ञं भावितं तन्मुनीनां
भाग्यं दृष्टं भागधेयेन मुक्तैः ॥ १४ ॥
प्रज्ञातन्त्रं ध्यानतन्त्रं पुरस्ता-
न्नित्यं ध्येयं ध्यायिनां स्वप्रकाशम् ।
पुञ्जीभूतं बाह्यतत्त्वेन शश्वद्
योग्यप्राप्यं धाम शम्भोरुदारम् ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा यस्यैवाग्रभागं स नेत्रं
त्राणाय स्याद् दर्शनं सूर्यतुल्यम् ।
तद्धामेदं स्थानसर्वस्य नित्यं
भक्त्या स्तुत्यं तं नमः शम्भुदेहम् ॥ १६ ॥
प्रकाशते यः प्रथमादिभागतः
स्थितः स वामे य इहैव नेता ।
सोऽस्माकमस्तु प्रथमं स्वसिद्धयै
हरस्य शक्त्या विधृतो ललाटे ॥ १७ ॥
यः प्रधानात्मकः सत्त्वरजोभ्यां तमसान्वितः ।
पुरुषः सर्वजगतां स हरो नः प्रसीदतु ॥ १८ ॥
इति संस्तुत्य देवेशं मुनयो विनयानताः ।
ऊचुः किमर्थं भवता स्मृतास्तन्नो निगद्यताम् ॥ १९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा शंकरः प्रहसन्निव ।
जगाद तान्मुनीन् सर्वानाभाष्य च पृथक् पृथक् ॥ २० ॥

ईश्वर उवाच

हिताय सर्वजगतां सम्भोगायात्मनस्तथा ।
दारान् ग्रहीतुमिच्छामि तथा सन्तानवृद्धये ॥ २१ ॥
सहायं तत्र कुर्वन्तु भवन्तो मम साम्प्रतम् ।
मदर्थे च ततः कालीं याचन्तां तुहिनाचलम् ॥ २२ ॥
महता तपसा काली मां पतिं लघु विन्दताम् ।
किन्तु ग्रहीष्ये विधिना तस्माद् याचन्तु तं गिरिम् ॥ २३ ॥
यथा यथा स्वयं कालीं शैलो दातुं समुत्सहेत् ।
तथा तथा विदध्वं हि यूयं वाग्विभवान्विताः ॥ २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

हरं सम्बोध्य मुनयो ह्यगच्छन् गिरिराड्गृहम्।
तेन प्रपूजितास्ते तु प्रोचुस्तं मुनयो गिरिम्॥ २५॥
यश्चन्द्रशेखरो देवो देवदेवश्च यो मतः।
शापानुग्रहणे शक्तो य एको जगतां पतिः॥ २६॥
यः संहरति सर्वाणि जगन्ति प्रलयोद्भवे।
यो विभूतिप्रदो भक्ते नानारूपो मनोहरः॥ २७॥
स ते दुहितरं कालीं भार्यामादातुमिच्छति।
यदि पश्यसि त्वं योग्यं वरं तं दुहितुः समम्॥ २८॥
तदा प्रयच्छ तनयां कालीं शशिभृते गिरे।
इत्युक्तस्तैर्गिरिपतिश्चिरं स्वहृदयस्थितम्॥ २६॥
दुहितुश्च प्रियं ज्ञात्वा प्राप्य सद्वचनान्मुदम्।
आह चेदं प्रकाशेन युष्माभिस्त्वहमागतैः॥ ३०॥
पावितो मुनिशार्दूलैः पूरितश्च मनोरथः।
दास्यामि शम्भवे पुत्रीं युष्माभिः प्रार्थितस्त्वहम्॥ ३१॥
पूर्वमेव तपस्तप्त्वा तयेशः पतिरीहितः।
धातुर्नियोजनमिदं कोऽन्यथा कर्तुमुत्सहेत्॥ ३२॥
कोऽन्यः प्रार्थयितुं शक्तः सुतां मम विना हरात्।
हरेणावगृहीता या तामन्यः कः समुत्सहेत्॥ ३३॥
हरं गृहीत्वा मनसा नान्यं सापीह वाञ्छति।
इत्युक्त्वा मेनया सार्धं सुतां दातुं च शम्भवे॥ ३४॥
अंगीकृत्य विसृष्टास्ते ह्यनुप्रापुर्महेश्वरम्।
ते गत्वा मुनयः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः॥ ३५॥
शैलराजो यदाचष्ट तदूचुर्मदनारये।
हिमवांस्तनयां दातुं तुभ्यमुत्सहते हरः॥ ३६॥
यदिदानीं त्वया कर्तुं युज्यते क्रियतां तु तत्।
अस्मांश्चाप्यनुजानीहि हर गन्तुं निजास्पदम्॥ ३७॥
सिद्धं ज्ञात्वा हरः साध्यं मुदितस्तान् विसृष्टवान्।
यथायोग्यं समाभाष्य क्रमादेकैकशो मुनीन्॥ ३८॥
कालीविवाहावसरे यूयमायात मां प्रति।
इति ते वै हरेणोक्तं प्रतिश्रुत्यर्षयो ययुः॥ ३६॥
अथान्योन्यप्रियतया कृत्वा कृत्वा गतागतम्।
समयं कारयामास विवाहाय हरो गिरिम्॥ ४०॥

माधवे मासि पंचम्यां सिते पक्षे गुरोर्दिने ।
चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्यां भरण्यादौ स्थिते रवौ ॥ ४१ ॥
आगता मुनयस्तत्र मरीचिप्रमुखा मुहुः ।
हरेण चिन्तिताः सर्वे तथा ब्रह्मादयः सुराः ॥ ४२ ॥
तथा च सर्वे दिक्पाला मुनयश्च तपोधनाः ।
शच्या सह तथा शक्रो ब्रह्माण्याद्यास्तु मातरः ॥ ४३ ॥
नारदश्च गतस्तत्र देवर्षिर्ब्रह्मणः सुतः
एतैः परिचरैः सार्धं गणैराप्यायितः स्वकैः ॥ ४४ ॥
वैवाहिकेन विधिना गिरिपुत्रीं हरोऽग्रहीत् ।
विवाहे गिरिजा शम्भोः सर्पा येऽष्टौ तनौ स्थिताः ॥ ४५ ॥
ते जाम्बुनदसंनद्धा अलंकारास्तदाभवन् ।
द्विभुजोऽभून्महादेवो जटाः केशत्वमागताः ॥ ४६ ॥
शिरस्थितश्चन्द्रखण्डः सोऽर्चिषा ज्वलितोऽभवत् ॥ ४७ ॥
विचित्रवसनं व्याघ्रकृत्तिरासीत्तदा द्विजाः ।
विभूतिलेपो ह्यस्याभूत् सुगन्धिमलयोद्भवः ॥ ४८ ॥
गौररूपो हरस्तत्र बभूवाद्भुतदर्शनः ।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगाः ॥ ४९ ॥
विस्मयं परमं जग्मुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
हिमवान् मुदितश्चासीत् सहपुत्रैश्च मेनया ॥ ५० ॥
ज्ञातयश्चास्य मुमुहुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
इदं ब्रह्मा तत्र जगौ हरं दृष्ट्वा मनोहरम् ॥ ५१ ॥
सर्वं शिवकरं यस्मात् सुवेशमभवत्सुराः ।
तस्माच्छिवोऽयं लोकेषु नाम्नाख्यातोऽधिकः शिवः ॥ ५२ ॥
महेश्वरमुमायुक्तमीदृशं यः स्मरेद्धृदा ।
सततं तस्य कल्याणं वाञ्छितं च भविष्यति ॥ ५३ ॥
एवं काली महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
पूर्वं दाक्षायणी भूत्वा पश्चाद् गिरिसुताभवत् ॥ ५४ ॥
स्वयं समर्थापि सती काली सम्मोहितुं हरम् ।
तथाप्युग्रं तपस्तेपे हिताय जगतां शिवा ।
एवं सम्मोहयामास कालिका चन्द्रशेखरम् ॥ ५५ ॥
इत्येतत् कथितं सर्वं त्यक्तदेहा सती यथा ।
हिमवत्तनया भूत्वा पुनः प्राप महेश्वरम् ॥ ५६ ॥
इदं यः कीर्तयेत् पुण्यं कालिकाचरितं द्विजाः ।

नाधयो व्याधयस्तस्य दीर्घायुः स च जायते ॥ ५७ ॥
इदं पवित्रं परममिदं कल्याणवर्धनम् ।
श्रुत्वापि सकृदेवेदं शिवलोकाय गच्छति ॥ ५८ ॥
यः श्राद्धे श्रावयेद्विप्रान् कालिकाचरितं महत् ।
पितरस्तस्य कैवल्यमाप्नुवन्ति न संशयः ॥ ५९ ॥
यः श्रावयेद् ब्राह्मणानां सन्निधौ वा समागतः ।
तत्र स्वयं हरो गत्वा शृणोति सह मायया ॥ ६० ॥
इति वः कथितं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
युष्मभ्यं रोचते चान्यद्यत्तत् पृच्छन्तु सत्तमाः ॥ ६१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कालीहरसमागमो नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

विचित्रमिदमाख्यातं ब्रह्मन् कालीहरागमम्।
पुण्यं पापहरं नित्यं श्रुतिसौख्यप्रदं वरम्॥ १॥
भूयः कथय शर्वस्य कालीतन्वर्थमुत्तमम्।
कथं जहार गौरी वा कथम्भूताथ कालिका॥ २॥
केन वा कारणेनाशु कृष्णा गौरीत्वमागता।
तन्नः कथय तत्त्वेन मुनिश्रेष्ठ द्विजोत्तम॥ ३॥

मार्कण्डेय उवाच

इदं तु महदाख्यानं कथयिष्यामि वोऽधुना।
महर्षयस्तच्छृण्वन्तु तत्त्वेन शुभदं परम्॥ ४॥
एतदौर्वं पुरा राजा सगरः पृष्टवान्मुनिम्।
स तं यथा समाचष्ट तद्वोऽथ निगदाम्यहम्॥ ५॥
पुराभूत् सोमवंशे च सगरो नाम पार्थिवः।
स श्रीमान् बलवान् दक्षः सर्वशास्त्रार्थपारगः॥ ६॥
सोऽभूदेकरथेनैव जित्वा सर्वान् महीभुजः।
सार्वभौमो नरपतिः सर्वराजगुणैर्युतः॥ ७॥
तं प्राप्तराज्यं राजानं सगरं पार्थिवोत्तमम्।
सभाजयितुमत्यर्थं मुनयः समुपागताः॥ ८॥
प्राच्योदीच्या महात्मानो दाक्षिणात्यास्तथोत्तराः।
मुनयो ब्राह्मणाश्चैव नृपं द्रष्टुं समागमन्॥ ९॥
आगतेष्वथ सर्वेषु महात्मा ज्वलनोपमः।
और्वो नाम मुनिः श्रीमानागतो नन्दितुं नृपम्॥ १०॥
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम्।
सपर्यया महत्या तु सगरस्तमपूजयत्॥ ११॥
पाद्यमाचमनीयं च दत्त्वैवार्घपुरोगमम्।
निवेशयामास च तं मुनिश्रेष्ठं वरासने॥ १२॥
उवाच च महात्मानमौर्वं स सगरो नृपः।
प्रणम्य च यथायोग्यं कुशलं त इति द्विजम्॥ १३॥
स च प्राह मुनिश्रेष्ठो नरराज सदा मम।

सर्वत्र कुशलं त्वां तु द्रष्टुं कुशलमुत्सहे ॥ १४ ॥
त्वत्तः कोऽन्योऽस्ति कुशली पृथिव्यां सर्वराजसु ।
य एकः सञ्जिगायाशु भवान् सकलपार्थिवान् ॥ १५ ॥
कुशलं वर्धतां नित्यं तव राजवरोत्तम ।
यथा नीत्या सदाचारैः पृथिवीं शाधि भूपते ॥ १६ ॥
तव वृद्धौ जगद्वृद्धिर्वृद्धौ चेष्टां ततः कुरु ।
शुभ्रांशुवृद्धौ सततं सागरस्येव वर्धनम् ॥ १७ ॥
प्रथमं सद्गुणैरात्मा क्रियतां नृप योजनम् ।
ततः स्वभार्या महिषी क्रियतां तद्गुणैर्युता ॥ १८ ॥
नित्या संयोजिता चेत् स्याद्वनिता स्वयमेव हि ।
स्वगुणेषु प्रवेक्ष्यन्ती महत्यपि धृतव्रता ॥ १९ ॥
श्रूयते हिमवत्पुत्री शम्भुसंगतमानसा ।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिः शम्भुना सा प्रयोजिता ॥ २० ॥
ततोऽतिमहता प्रेम्णा शंकरस्याथ पार्वती ।
शरीरमर्धमहरत्तस्यैवानुमते सती ॥ २१ ॥
अर्धनारीश्वरस्तेन तदा प्रभृति शंकरः ।
अभवन् नृपशार्दूल नान्यां भार्यां गृहीतवान् ॥ २२ ॥
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र स्वजायामात्मनोत्तरे ।
गुणैः संयोजय लघुं संयोजय ततः सुतम् ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्यौर्वभाषितं श्रुत्वा सगरोऽपि मुदान्वितः ।
इद मुनिमपृच्छत् स नृपतिः स्मितसन्ततः ॥ २४ ॥

सगर उवाच

कथं सा गिरिजा देवी कायार्धमहरत् सती ।
शंकरस्य द्विजश्रेष्ठ तदहं श्रोतुमुत्सहे ॥ २५ ॥
नीत्या यया वा योक्तव्या स्वात्मा भार्या सुतोऽथवा ।
तां नीतिं च सदाचारसंहितां श्रोतुमुत्सहे ॥ २६ ॥
राजनीतिं सतां नीतिमन्येषां च कृतात्मनाम् ।
पृथक् पृथक् श्रोतुमिच्छुरहं त्वां नाथये द्विज ॥ २७ ॥
यदि गुह्यमिदं ब्रह्मन्न तदा श्रोतुमुत्सहे ।
तथा नाज्ञापयामि त्वां श्रोतुमिच्छुश्च तत्समम् ॥
कृपया कथनीयं चेत्तदा कथय तन्मुने ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं सगरेणोक्तमौर्वोऽपि द्विजसत्तम।
प्रत्युवाच महात्मानं कृपालुस्तत्र भूपतौ ॥ २९ ॥

और्व उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यद् यत् पृष्टमिह त्वया।
यथा हरस्य तन्वर्धं भूभृत्पुत्री पुराहरत् ॥ ३० ॥
यथा नीतिस्त्वया कार्या यत्र यत्र नृपोत्तम।
सर्वेषां च सदाचारं क्रमाद् वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ३१ ॥
यदोढा हिमवत्पुत्री शंकरेण महात्मना।
कियन्तं स तदा कालं तत्र निन्ये सहोमया ॥ ३२ ॥
रममाणस्तया सार्धं सानौ कुञ्जे दरीषु च।
विजहार चिरं तत्र पार्वतीं मोदयन् हरः ॥ ३३ ॥
अथ काले तु सम्प्राप्ते शम्भुः कैलासपर्वतम्।
सगणो भार्यया सार्धमगच्छत्त्रिदिवोपमम् ॥ ३४ ॥
स त्वया क्रीडमानश्च त्यक्तध्यानात्मचिन्तनः।
तद्वक्त्रचन्द्रे नेत्राणि चकोरानिव चाकरोत् ॥ ३५ ॥
पुष्पाणि क्वचिदाहृत्य गिरिजां प्रति शंकरः।
सर्वाङ्गसङ्गिनीं मालां विदधेऽतिमनोहराम् ॥ ३६ ॥
कदाचिदादर्शतले युगपच्चात्मनो मुखम्।
मुखं तथैवापर्णाया वीक्षाञ्चक्रे वृषध्वजः ॥ ३७ ॥
कदाचिन्मृगनाभीनां विलेपैर्गन्धपत्रकम्।
तस्या घनस्तनयुगे विलिलेख स्मरान्तकः ॥ ३८ ॥
गन्धसारविलेपेन तिलकान्यम्बिकातनौ।
ललाटे चाकरोच्चारु चन्द्रवद् घनसन्धिषु ॥ ३९ ॥
उमानिर्यासससंसक्तकेशपाशेषु चित्रकम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमस्य विलेपनैः ॥ ४० ॥
चकार येन तस्यास्तु केशपाशो व्यराजत।
नर्तनायावतीर्णस्य शिखितुच्छस्य साम्यधृक् ॥ ४१ ॥
जाम्बूनदमयान् शुद्धान् कुण्डलाद्यान् मनोहरान्।
अलंकारानुमा देहे समाकार्षीद् वृषध्वजः ॥ ४२ ॥
तैर्जाम्बूनदसम्भूतैर्योजितैर्गिरिजातनुः।
विभाति जलदापूर्णे कालिकेव तडिद्गणैः ॥ ४३ ॥

सर्वैर्दिव्यैरलंकारैर्नानारत्नैः सदंशुकैः ।
संपूर्णमण्डिता काली सादृश्यं प्रकृतेर्दधौ ॥ ४४ ॥
एवं सदा सानुरागस्तस्यां शम्भुर्जगत्पतिः ।
जगद्धिताय चिक्रीड कालया दयितया सह ॥ ४५ ॥
काली च जगतां माता महामाया जगन्मयी ।
योगनिद्रा जगद्बुद्धिर्विद्याविद्यात्मिकाखिला ॥ ४६ ॥
प्रकृतिः परमा मूर्तिः सर्गान्तस्थितिकारिणी ।
सम्मोह्य शंकरं यत्नाज्जगतां च हितैषिणी ।
रेमे तेन समं देवी चन्द्रिकेव सुधांशुना ॥ ४७ ॥
अथैकदा स्मरहरः कैलासाग्रे सहोमया ।
रममाणो मुदा युक्तो ददृशेऽप्सरसः शुभाः ॥ ४८ ॥
रूपयौवनसम्पन्नाः सर्वलक्षणसंयुताः ।
तासां मध्यगता वेश्या उर्वशी च मनोहरा ॥ ४९ ॥
ताः सर्वा रक्तगौराङ्ग्यः सर्वालङ्कारभूषिताः ।
मुनीनां च मनोऽत्यर्थं शक्ता मोहयितुं हठात् ॥ ५० ॥
ताः प्रणम्य हरं दृष्ट्वा गिरिजां च मनोरमाम् ।
अग्रे प्राञ्जलयस्तस्थुस्तद्भीतिनतमस्तकाः ॥ ५१ ॥
अथ प्राह तदा भर्गः पार्वतीमिदमद्भुतम् ।
तासां समक्षं तस्यां तु भाषितुं स्याद् यदप्रियम् ॥ ५२ ॥
कालि भिन्नाञ्जनश्यामे उर्वश्याद्यप्सरोगणैः ।
त्वयेह स्त्रीस्वभावेन संलापः क्रियतामिति ॥ ५३ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यथायोग्यं च सोर्वशी ।
अप्सरसः समाभाष्य विसृष्टा गिरिजा तया ॥ ५४ ॥
अथ सा क्रोधवशगा पार्वती भर्गभावितात् ।
काली भिन्नाञ्जनश्यामेत्युदिता ह्यभवत् क्षणात् ॥ ५५ ॥
सा चाप्सरसां पुरतो वर्णोद्देशविकत्थनम् ।
न सेहे मन्युना युक्ता गिरिजेन्दुकलाभृतः ॥ ५६ ॥
अथ सा रोषसंयुक्ता त्यक्त्वा वृषभवाहनम् ।
अपह्नुते शैलसानौ रोषापह्नुतिमागता ॥ ५७ ॥
मार्गमाणोऽथ विरहव्याकुलो वृषवाहनः ।
नाससाद कियत्कालं पार्वतीं पर्वतोत्तमे ॥ ५८ ॥
विरहव्याकुलं ज्ञात्वा स्वयं सा पार्वती हरम् ।
आत्मानं दर्शयामास गिरिसानावपह्नुते ॥ ५९ ॥

तामासाद्य ततः शम्भुः किमर्थमभजः प्रिये।
मानं मनोनुदं देवि विशीर्ण इव चाब्रवीत् ॥ ६० ॥
भर्तुरागः पुरन्ध्रीणां मानग्रहणकारणम्।
तद्विना ग्रहणात्तस्य भीरु प्राप्नोति वाच्यताम् ॥ ६१ ॥
तस्मात् किमर्थमकरो रोषं त्वं जलजानने।
तदाचक्ष्व द्रुतं कान्ते मनो मे न प्रसीदति ॥ ६२ ॥
इत्युक्त्वा शंकरो देवीं तामालिङ्गितुमुद्यतः।
काली तं वारयामास वचनं चाब्रवीदिदम् ॥ ६३ ॥
न दृष्टपूर्वा किमहं येन भिन्नाञ्जनोपमा।
क्रियते मयि भूतेश भवताप्सरसां पुरः ॥ ६४ ॥
जातिहीनं वृत्तिहीनं रूपहीनमदक्षिणम्।
हीनांगमतिरिक्तांगं तेन दोषेण नाक्षिपेत् ॥ ६५ ॥
इति ब्रह्मा पुरा प्राह वेदौघार्थविनिश्चयम्।
तं चावमन्य भवता परिहासोऽभ्यभाष्यत ॥ ६६ ॥
यावन्न मे शरीरस्य भवित्री स्वर्णगौरता।
न समेष्ये त्वया तावदिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६७ ॥
शरीरगौरतां शम्भो न समेष्ये त्वया विना।
तत्र मे शृणु सन्धाय आत्मनः शिरसा शपे ॥ ६८ ॥
इत्युक्त्वा सा तदा देवी तस्यैव पुरतो ययौ।
महाकोषीप्रपाताख्यं हिमवत्सानुमुत्तमम् ॥ ६९ ॥
महादेवोऽपि तं भाव्यं ज्ञानेन कृतनिश्चयम्।
अर्थं ज्ञात्वा तदापर्णां सर्वज्ञो नाप्यवारयत् ॥ ७० ॥
सा गत्वा पूर्ववत्तत्र शम्भुसंगतमानसा।
शतमाराधयामास वर्षाणि वृषभध्वजम् ॥ ७१ ॥
एकं पादं समुत्क्षिप्य वामेनाक्रम्य सा क्षितिम्।
उत्तराभिमुखी भूत्वा निराहारा निरन्तरम् ॥ ७२ ॥
वैयाघ्रचर्मवसना सोर्ध्वमूर्द्धानना सती।
ज्योतिर्मयं परं शान्तं शिवं शिवकरं वरम् ॥ ७३ ॥
आत्मस्वरूपतत्त्वज्ञा तत्त्वेनाराधयद्धरम्।
तां चिन्तयन्तीं परमनिश्चलां तत्त्वमानसाम् ॥ ७४ ॥
मेने मुनिगणः स्थाणुर्यो न जानाति तत्त्वतः।
एवं तस्यास्तपस्यन्त्या जग्मुर्वर्षाणि वै शताम् ॥ ७५ ॥
अन्येषां च यथा शश्वदेकं नृपतिसत्तम।
ततस्तां शतवर्षान्ते शंकरो योगतत्परः ॥ ७६ ॥

आत्मानं दर्शयामास क्रमादेकं स सत्रपम्।
प्रथमं दर्शयामास ब्रह्माणं च हरिं ततः॥ ७७॥
ततस्तु शाम्भवं देहं ततस्तेषामथैकताम्।
ज्योतिर्मयत्वं शुद्धत्वं सर्वेषां हेतुतां तथा॥ ७८॥
ततस्तु शम्भुरूपं स दर्शयामास शंकरः।
योगनिद्रां महामायां योगिनीं कालिकाम्बिकाम्॥ ७९॥
प्रथमं दर्शयित्वा तु तस्याः प्रकृतिरूपताम्।
पश्चात् सा पार्वतीत्येव क्रमात्तस्या अदर्शयत्॥ ८०॥
तपसा सम्भृतेनाशु ज्ञानमासाद्य पार्वती।
अन्तर्दृष्ट्या बहिर्दृष्ट्या तत्त्वं ज्ञात्वा यथातथम्॥ ८१॥
शम्भुं जगन्मयं मेने तथात्मानं जगन्मयीम्।
ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चापि ततः सर्वमिदं जगत्॥ ८२॥
अहं समस्तप्रकृतिर्योगनिद्रा तथा सती।
इति ध्यानेन सा देवी प्राप्य ध्यानं तदात्यजत्।
उन्मील्य नयनद्वन्द्वं बहिः शम्भुं ददर्श च॥ ८३॥
सा दृष्ट्वा शंकरं देवं देवदेवमुमापतिम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्यमिनं योगतत्परम्॥ ८४॥

पार्वत्युवाच

नमस्ते जगतां नाथ नमस्ते केशवाव्यय।
प्रधानपुरुषातीत कारणत्रयकारण॥ ८५॥
योगमोहमनोराग-धर्माधर्ममयस्तथा।
विद्याविद्यास्वरूपश्च शाम्भवः काय एष ते॥ ८६॥

त्वं निःश्रेयः श्रेयसा युज्यमानो
दृश्योऽदृश्यो योगमूर्तिर्मनीषी।
सम्यक् श्रद्धा पौरुषे तत्त्वरूपं
त्वं वै ज्योतिःशान्तिरूपं पुरस्तात्॥ ८७॥

ब्रह्मा विष्णुस्त्वं हरस्त्वं महेन्द्रः
सूर्यः सोमो वायुरग्निर्धनेशः।
त्वं तोयेशः शमनो राक्षसश्च
शेषस्त्वत्तो भिद्यते कोऽपि नास्मिन्॥ ८८॥

त्वं भूमिर्द्यौर्द्युसदां चापि पन्था-
स्त्वं स्थावरो जङ्गमो भूर्वलस्थः।

ज्ञानं ज्ञेयं ध्यानगम्यं च तत्त्वं
परात्परं व्यक्तरूपं परेषाम् ॥ ८९ ॥
त्वं पुरुषः परमात्मा प्रधानं
त्वं हि ज्यायानागमो ज्ञानगम्यः ।
भावः कृत्यं पंचरूपी समस्तै-
रासाद्यस्ते गोचरास्तद्भवाय ॥ ९० ॥
कीर्तिः कीर्त्यः स्तुत्यरूपी स्तुतिश्च
द्रष्टा दृश्यः स्थैर्यधृक् स्थावरश्च ।
नित्योऽनित्यो मुक्तयोगो वियोगो
दानादाने भेदसामप्रयोगः ॥ ९१ ॥
नीतिर्नेयो दीक्षितो दक्षिणाश्च
सारात् सारः संविधाता विधेयः ।
आर्योऽनार्यो रूपधृग्रूपहीनो
दिव्यो देवो मानुषोऽमानुषश्च ॥ ९२ ॥
सृज्यः स्रष्टा पालकः पाल्यरूप-
श्चेता चेयो नोर्मियुक्तस्तथोर्मिः ।
विद्याविद्यावेदवादैकरूपो
रूपारूपस्तीक्ष्णसौम्यैकरूपः ॥ ९३ ॥
भावाभावः शोभनः शुद्धरूपी
शश्वद्दान्तः शान्तिरुग्रा मुनीनाम् ।
द्वन्द्वोऽद्वन्द्वः सर्वगोऽसर्वगश्च
भ्रान्तोऽभ्रान्तः सिद्धसिद्धिप्रदश्च ॥ ९४ ॥
एकस्थस्त्वं सर्वगोप्ता सुदेहो
निर्देहस्त्वं देह एकः सुराणाम् ।
स्थूलः सूक्ष्मो निर्विकारः शरीरी
विश्वात्मा त्वं नास्ति भिन्नो भवत्तः ॥ ९५ ॥
कार्याकार्ये यस्य रूपे समस्ते
व्याप्याव्याप्ये भागहीनोऽतिपूर्णः ।
योगज्ञानस्थात्मकं यस्य नित्यं
रूपं यस्य श्रीद तस्मै नमस्ते ॥ ९६ ॥
प्रधानपुंसोरपि यो विधाता
यः कालरूपी पुरुषः परेशः ।
तमीशमुग्रं वरदं वरेण्यं
नमामि चिन्नीतिवितानकं त्वाम् ॥ ९७ ॥

अक्षयो योऽव्ययः साक्षी चेत्रज्ञः क्षेत्रधृग्वरः।
तस्मै नमस्ते विश्वात्मन् वृषध्वज महेश्वर ॥ ९८ ॥
ज्ञानामृतविनिस्यन्दि यस्य चिच्चन्द्रमाः सदा।
तद्रूपमेकं यं ज्ञेयं भक्तिमात्रं नमोऽस्तु ते ॥ ९९ ॥

और्व उवाच

इति स्तुतो महादेवः सर्वभूतानुकम्पकः।
प्रसन्नवदनः प्राह पार्वतीं प्रतिहर्षयन् ॥ १०० ॥

ईश्वर उवाच

प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते वरं वरय वाञ्छितम्।
तपसाप्यायितश्चाहं त्वया ब्रह्मा तथा हरिः ॥ १०१ ॥
तपसा त्वत्समो नास्ति शीलेन च गुणेन च।
त्वां विना न हि तृप्यामि प्रिये कुरु यथेप्सितम् ॥ १०२ ॥
ततः सा मोहिता प्राह मायया हिमवत्सुता।
जाम्बुनदाभगौरो मे देहो भवतु साम्प्रतम्।
अनन्यकान्तस्त्वं चापि भूया मत्तो विना हर ॥ १०३ ॥
एवमुक्तो महादेवः पार्वत्या पार्वतीं ततः।
आकाशगंगातोयौघे मज्जयामास भामिनीम् ॥ १०४ ॥
सा निमज्ज्य समुत्तीर्णा विद्युद्गौरी व्यजायत।
सिताम्भोमध्यगा देवी शारदाभ्रे तडिद्यथा ॥ १०५ ॥
शम्भुश्चांगीचकाराशु नाहं त्वत्तो विना प्रिये।
मनसापि ग्रहीष्यामि नान्यां सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १०६ ॥

और्व उवाच

अथ तोयात् समुत्तीर्णा पार्वती मोदसंयुता।
तपःक्लेशपरित्यक्ता चन्द्रिकेव विधोर्यथा ॥ १०७ ॥
अथ तां पार्वतीं देवीमादाय वृषभध्वजः।
जगाम शैलं कैलासं स्वमाश्रमपदं लघु ॥ १०८ ॥
तदा गत्वा हरो देवीमधिवास्य विभूष्य च।
पूर्ववन्मोदयामास नर्महासकथादिभिः ॥ १०९ ॥
सापि सौवर्णगौराङ्गी वीक्ष्य रूपं मनोहरम्।
गृहीतसमयं शम्भुं प्राप्यातीव मुमोद ह ॥ ११० ॥
एवं तयोस्तु शिवयोरन्योन्यरममाणयोः।
जगाम सुचिरं कालं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ १११ ॥

अथैकदा महादेवसमीपे हिमवत्सुता ।
आसीना ददृशे तस्य स्वां छायामुरसि स्थिताम् ॥ ११२ ॥
स्फटिकाभ्रसमे स्वच्छे हृदि शम्भोर्मनोहरे ।
योगिज्ञानादर्शतले चार्वङ्गीं प्रतिबिम्बिताम् ॥ ११३ ॥
आत्मच्छायां गिरिसुता वामभागे मनोहरे ।
ददृश वनितारूपां स्मितवक्त्रां मनोहराम् ॥ ११४ ॥
भ्रान्त्या दृष्ट्याथ पार्वत्यास्तदा ज्ञानमजायत ।
कृतसत्योऽपि गिरिशः किमन्यां वनितां दधौ ॥ ११५ ॥
मायया स्थापितां गात्रे वीक्षन्तीं कुटिलं च माम् ।
इति तस्यास्तदा वक्त्रं मलिनं भ्रुकुटीयुतम् ।
बभूव वृषकेतुश्च श्याम उत्पातको यथा ॥ ११६ ॥
सा दृष्ट्वाथ तदा छायां विष्णुमाया-विमोहिता ।
अपह्नुतं गिरेः श्रृङ्गं मानाद्रोषाद्विवेश ह ॥ ११७ ॥
अथ तां मार्गमाणस्तु शंकरो विरहाकुलः ।
चिरादपह्नुतां देवीमाससाद ततो हरः ॥ ११८ ॥
तामासाद्य महादेवो विवर्णवदनां प्रियाम् ।
उवाच रोषणे हेतुं ज्ञातुमिच्छुर्यथातथम् ॥ ११९ ॥

ईश्वर उवाच

किमर्थस्त्वं वरारोहे मह्यं कुप्यसि कोपने ।
रोषहेतुमहं वक्तुं तवेच्छामीह वल्लभे ॥ १२० ॥
न तुभ्यमपराध्यामि वाचा वा मानसाथवा ।
कायेन वा कथं कोपं कर्तुमर्हसि भामनि ॥ १२१ ॥

देव्युवाच

समयेन मया पूर्वं तथा सम्प्रार्थितो भवान् ।
कथं तं परिहाय त्वमन्यां भार्यां समीहसे ॥ १२२ ॥
प्रत्यक्षेण मया दृष्टा तव हृद्यन्तरे हर ।
चार्वंगी वनिता काचित्तोयनिर्यातभस्मनि ॥ १२३ ॥
भवान् सर्वज्ञानमयः सर्वगः परमेश्वरः ।
तोषितो मे तपोव्रातैर्न तुष्टस्त्वं महेश्वर ॥ १२४ ॥
तस्मादहं तपस्तप्तुं शश्वद्गन्तुं समुत्सहे ।
अनुजानीहि मां शम्भो मा विलम्बं वृथा कृथाः ॥ १२५ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्याः स्मितविस्तारिताननः ।
शंकरः पार्वतीं प्राह सन्दिग्धामिव भामिनीम् ॥ १२६ ॥

नाहमन्यां स्त्रियं वोढा नाहं समयभेदकः ।
तव मिथ्यामतिर्जाता मूग्धे मूढतयाधुना ॥ १२७ ॥
त्वमिच्छसि यदि श्रोतुं तत्र हेतुं च पार्वति ।
तदहं कथये तत्त्वं मानं मानिनि मा कृथाः ॥ १२८ ॥
मम वक्षसि विस्तीर्णे दर्पणस्वच्छभासिनि ।
तवैव वपुषश्छायाबिम्बिता लोकिता त्वया ॥ १२९ ॥
इदानीमेव बुध्यस्व त्वामृते नास्ति सा मयि ।
नात्र मानस्त्वया कार्यो हृदयान्तरसंस्थिते ॥ १३० ॥

देव्युवाच

मयि स्थितायां छायास्ति मामृते नास्ति सा पुनः ।
कथमेतन्मया ज्ञेयं तन्मे वद वृषध्वज ॥ १३१ ॥

ईश्वर उवाच

गवाक्षाभ्यन्तरे स्थित्वा तज्जालेन मनोहरे ।
पश्य तोयौघनिर्यातभूतिलेपमुरो मम ॥ १३२ ॥
तथा त्वं मण्डितं देहं वीदयादर्शतले पुनः ।
मद्धृदासन्नमासाद्य तादृक्छायां विलोकय ॥ १३३ ॥
यथा द्रक्ष्यसि देहे स्वं तत् कुरु त्वं तथा मम ।
आलोकय निजां छायां त्वां विना नास्ति तत् पुनः ॥ १३४ ॥
त्वमेव ज्ञास्यसि च्छायां मद्वक्षसि मनोहरे ।
ज्ञात्वा विसृज्यमानं मां त्वं चाप्युपपत्स्यसि ॥ १३५ ॥

और्व्य उवाच

एवमुक्ता हरेणाथ पार्वतीन्दुकलाभृतः ।
तोयैर्निर्धाव्य हृदयं स्वां छायां पुनरैक्षत ॥ १३६ ॥
दृष्ट्वादर्शतले वक्त्रं निजं देहं च पार्वती ।
आलोकयामास तदा शम्भच्छंकरवक्षसि ॥ १३७ ॥
यथा सा कुरुते देवी कापट्यं नेत्रविभ्रमम् ।
तथा सा कुरुते च्छाया करकम्पादिकं तथा ॥ १३८ ॥
ततः पुनर्गवाक्षस्य जाले स्थित्वा हिमाद्रिजा ।
तथा व्यलोकयच्छम्भोर्हृदयं वीतभूतिकम् ॥ १३९ ॥
तया तत्र तु पार्वत्या वृषभध्वजवक्षसि ।
न कापि दृष्टा वनिता दृष्टं जालस्य मण्डलम् ॥ १४० ॥

एवं बहुविधैर्देवी तदोपायैस्तथेतरैः ।
निर्यातसंशया भूत्वा लज्जां प्राप वरांगना ॥ १४१ ॥
तां लज्जितां गिरिसुतामीषद्भीतामधोमुखीम् ।
शम्भुरालिंग्य पाणिभ्यां मुखं चास्याश्चुचुम्ब च ॥ १४२ ॥
स तामाह महादेवो देवीमाश्वासयन् मुहुः ।
मा व्रीडस्व महाभागे भ्रान्तिः कस्य न जायते ॥ १४३ ॥
मानस्त्वयि वरस्त्रीभिः कार्यः प्रेमकरो यतः ।
त्वयापि विरलः कार्यो मानो देवि न सर्वदा ॥ १४४ ॥
इत्युक्ता देवदेवेन मैनाकसहजाम्बिका ।
शङ्करं प्रणयात् प्राह सूनृतं मधुरं वचः ॥ १४५ ॥

देव्युवाच

यथा तवाहं सततं छायेवानुगता हर ।
भवेयं साहचर्येण तथा मां कर्तुमर्हसि ॥ १४६ ॥
सर्वगात्रेण संस्पर्शं नित्यालिंगनविभ्रमम् ।
अहमिच्छामि भवतस्तत्त्वं चेत् कर्तुमर्हसि ॥ १४७ ॥

भगवानुवाच

रोचते तन्ममह्यमपि यस्त्वमिच्छसि भामिनि ।
तत्रोपायमहं वक्ष्ये यदि शक्नोषि तं कुरु ॥ १४८ ॥
अर्धं मम गृहाण त्वं शरीरस्य मनोहरे ।
अर्धं भवतु मे नारी अथैवार्धं पुमानिति ॥ १४९ ॥
यदि त्वमपि शक्नोषि कर्तुं तदर्धमीदृशम् ।
तदाहं ते हरिष्यामि शरीरार्धं वरानने ॥ १५० ॥
तवैवार्धं तथा नारी ह्यर्धं भवतु पूरुषः ।
विद्यते तत्र शक्तिर्मे त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ १५१ ॥

देव्युवाच

तवैवाहं हरिष्यामि शरीरार्धं वृषध्वज ।
किं त्वहं त्वेकमिच्छामि तच्चेत्त्वं कर्तुमिच्छसि ॥ १५२ ॥
यदाहमर्धं भवतो भूत्वा तिष्ठामि तावता ।
त्यजाम्यहं यदा तेऽर्धं सम्पूर्णं स्यात्तदा द्वयम् ॥ १५३ ॥
इत्यर्धभागहरणं भवेद्यदि यथेप्सितम् ।
तवैवाहं तदा शम्भो शरीरार्धं हराम्यहम् ॥ १५४ ॥

ईश्वर उवाच

एवमस्तु भवेन्नित्यं यथार्धं हर्तुमर्हसि।
शरीरस्यार्धहरणं भूयस्तव यथेप्सितम्॥ १५५॥

और्व्य उवाच

अथ गौरी तदा पूर्वमनुभूतं तपःस्थितौ।
योगनिद्रास्वरूपं तदात्मनोऽचिन्तयद्धिया॥ १५६॥
हरं प्रणम्य प्रथमं ब्रह्माणं च ततः परम्।
ततस्त्रिजगतामीशं हरिं नारायणं प्रभुम्॥ १५७॥
चिन्तयित्वा यदा तेषामेकतां सा जगन्मयी।
आत्मानं योगनिद्रां च चिन्तयित्वा तपस्विनी॥ १५८॥
दक्षिणे स्वशरीरस्य भागार्धं शशभृद्भृतः।
शरीरस्य तदा वाममतिप्रेम्णा निजं हरे॥ १५९॥
हरोऽपि स्वशरीरार्धं गौरीकाये तदा स्वयम्।
प्रेम्णा न्यवेशयत्तस्याश्चिकीर्षुः प्रियमद्भुतम्॥ १६०॥
अथ स्थित्वा तदा भर्गः काल्या सह चिरं तदा।
परित्यज्य शरीरार्धं पृथगेव बभौ रुचा॥ १६१॥
काली भूत्वा स्वर्णगौरी शरीरार्द्धं च शंकरम्।
प्राप्तमोदा तदात्मानं सन्तुष्टा च जगन्मयी॥ १६२॥
एवं यदा शरीरार्धमादाय परमेश्वरी।
रहस्ये तिष्ठति तदा राजतेऽतीव शोभना॥ १६३॥
अर्द्धं धम्मिल्लसंयुक्तं जटाजूटार्द्धयोजितम्।
एकस्मिन् श्रवणे भोगी भागे जाम्बूनदार्चितम्॥ १६४॥
कुण्डलं श्रवणेऽन्यस्मिन् शीर्षे तस्या व्यराजत।
अर्द्धं मृगाक्षि चान्यार्द्धं वृषभाक्षि व्यजायत॥ १६५॥
अर्द्धं स्थूलनसं चारु तिलपुष्पनसं परम्।
दीर्घश्मश्रु तथैवार्द्धमर्द्धं श्मश्रुविवर्जितम्॥ १६६॥
आरक्तचारुदशनं रक्तौष्ठमेकतस्तथा।
अपरं शुक्लविपुलं दीर्घाकृतिरदं परम्॥ १६७॥
अर्द्धनीलगलं चार्द्धमपरं हारसंयुतम्।
अर्द्धं कंकणकेयूरयुक्तबाहु तथापरम्॥ १६८॥
नागकेयूरसंयुक्तं स्थूलबाहुनिरूर्मिकम्।
अर्धं विलोलसुभुजं करिहस्तभुजं परम्॥ १६९॥

एकत्र सोर्मिकाशाखा करस्यान्यत्र तां विना।
एकस्तनं तु हृदयं रोमावल्यर्धसंयुतम् ॥ १७० ॥
रम्भास्तम्भसमानोरु सुपार्ष्णि मृदुपादकम्।
एकं तथापरं स्थूलं संहतोरुपदाम्बुजम् ॥ १७१ ॥
एकं चारुमृदुस्थूलजघनं सुमनोहरम्।
तथापरं दृढकटि संहतोर्द्धपदान्वयम् ॥ १७२ ॥
एकं वैयाघ्रचर्मौघयुक्तं भूतिविलेपनम्।
अपरं मृदु कौशेयवसनं चन्दनोक्षितम् ॥ १७३ ॥
एवमर्द्धं तथा जातं योषिल्लक्षणसंयुतम्।
अपरं बलवद् भूरि सुगूढं पुरुषाकृति ॥ १७४ ॥
एवमर्द्धं स्मररिपोर्जहार गिरिजा सती।
हिताय सर्वजगतां कालिका कालिकोपमा ॥ १७५ ॥
तस्याः शरीरं राजेन्द्र हरतन्वर्द्धसंयुतम्।
येनोपमेयं तत्रास्ति मार्गितं भुवनत्रये ॥ १७६ ॥
सन्तानः पारिजातो वा एकान्तविशदस्तरुः।
अमोघया यथा वल्ल्या तौ चापि ययतुर्नहि ॥ १७७ ॥
बहुधा च पृथक् तेन तौ रेमाते नरेश्वर।
अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा स तु रेमे कदाचन ॥ १७८ ॥
इति यद्यपि भूतेशः स्वयं शक्नोति कालिकाम्।
गौरीं कर्तुं तदा सर्वभूतकारणकारणः ॥ १७९ ॥
तथापि तां गिरिसुतां संयोज्य विविधैः पुरा।
तपस्ययोजयद् देवः क्रियोपायैरनेकशः ॥ १८० ॥
तपोनिर्धूतसर्वांगीं पश्चाद् गौरीमथाकरोत्।
अर्द्धं च प्रददौ तस्यै शरीरस्य महेश्वरः ॥ १८१ ॥
नैवास्य तत्त्वं जानन्ति शक्राद्याः सकलाः सुराः।
शरीरार्द्धप्रदानस्य तपसे योजनस्य च ॥ १८२ ॥
एतस्य तत्त्वं जानन्ति महात्मानो महाबलाः।
नन्दी भृङ्गी महाकालो वेतालौ भैरवस्तथा ॥ १८३ ॥
अङ्गभूता महेशस्य वीतभीतास्तपोधनाः।
ये मानुषशरीरेण प्रापिरे तपसो बलात् ॥ १८४ ॥
गणानामाधिपत्यं तु ते जानन्ति हरं परम्।
एवं सदा त्वया योज्याः सानुगा नृपसत्तम ॥ १८५ ॥
वनिता सत्क्रियोपायैस्ततो भद्रमवाप्स्यसि।

य इदं शृणुयान्नित्यमद्भुतं पुण्यदायकम् ॥ १८६ ॥
शिवयोः प्रीतिकरणं शरीरार्द्धग्रहं तथा ।
गौरीत्वसाधनञ्चैव कालिकायाः शुभावहम् ॥ १८७ ॥
न तस्य विघ्ना जायन्ते स च पुण्यतमो मतः ।
दीर्घायुः स सुखी भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ १८८ ॥
सततं परिशृण्वानः शिवयोश्चरितं महत् ।
शिवलोकमवाप्नोति सुचिरं शिववल्लभः ॥ १८९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणेऽर्द्धनारीश्वरचरिते
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सगर उवाच

कोऽसौ भैरवनामाभूत् को वा वेतालसंज्ञकः ।
कथं वा तौ शरीरेण मानुषेण गणाधिपौ ॥ १ ॥
अभूतां द्विजशार्दूल तन्मे वद महामुने ।
जानामि नन्दिनं विप्र सहायं शशभृद्भृतः ॥ २ ॥
यथाभवद् गणाध्यक्षस्तन्नारदमुखाच्छ्रुतम् ।
यथा भृङ्गिमहाकालौ विश्रुतौ हि हरात्मजौ ॥ ३ ॥
कथं वा तौ समुत्पन्नौ त्वत्तः श्रोतुं समुत्सहे ।
योऽसौ शरभरूपस्य महादेवस्य वै पुरा ॥ ४ ॥
कायभागः श्रुतः पूर्वं स महाभैरवाह्वयः ।
स एव किं भैरवाख्यः किं वान्यो द्विजसत्तम ॥ ५ ॥
वेत्तुं तत्त्वेन तत् सर्वमिच्छामि द्विजसत्तम ।
कस्य वा तनयौ भूत्वा गणाध्यक्षत्वमागतौ ।
तच्चापि कथयस्वाद्य यथा तौ वानराननौ ॥ ६ ॥

और्व उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि महाकालस्य भृङ्गिणः ।
भैरवस्यापि चरितं वेतालस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
योऽसौ भृङ्गी हरसुतो महाकालोऽपि भर्गजः ।
तावेव गौरीशापेन सम्भूय नरयोनिजौ ॥ ८ ॥
वेतालभैरवौ जातौ पृथिव्यां नृपवेश्मनि ।
यथा भृङ्गिमहाकालाव्युत्पन्नौ प्राक् तथा शृणु ॥ ९ ॥
योऽसौ महाभैरवाख्यः सकायः शरभो हरः ।
भैरवः पृथगेवायं गणाध्यक्षो हरात्मजः ॥ १० ॥
ऊढायां हिमवत्पुत्र्यां भर्गेण सुमहात्मना ।
तारकस्य वधार्थाय देवैः शक्रपुरोगमैः ।
स्तुतिभिर्नतिभिः शम्भुं सन्ततिर्याचिता पुरा ॥ ११ ॥
स याचितो देवगणैर्भगवान् वृषभध्वजः ।
महामैथुनमारेभे सन्तानायोमया सह ॥ १२ ॥
आरब्धे मैथुने तेन नरवर्य्येण वै ययुः ।
द्वात्रिंशद् वत्सरा राजन् क्षणवच्चन्द्रधारिणः ॥ १३ ॥

स महामैथुनं कुर्वंस्तृप्तिं नाप महेश्वरः ।
नाप्यस्य प्रच्युतं तेजो न तृप्तिं प्राप पार्वती ॥ १४ ॥
तन्महासङ्गसमये चकम्पे वसुधा स्फुटम् ।
आकुलाः सकला देवाः स्युः स्वर्गस्थाश्च येऽपरे ॥ १५ ॥
सर्वं जगत्तदा भूतमाकुलं शिवयोस्तयोः ।
ततो निवृत्तिजातेन महामैथुनकर्मणा ॥ १६ ॥
अथ सेन्द्राः सुराः सर्वं ब्रह्माणं जगतांपतिम् ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्भीताः शंकरकेलिभिः ॥ १७ ॥
ते सम्भूयाथ धातारं प्रणम्य च सुरोत्तमाः ।
आकुलं सर्वमाचक्षुर्हरमैथुनकर्मणा ॥ १८ ॥
ततः सर्वान् देवगणान् पश्चात् कृत्वैव वृत्रहा ।
स्वयमाह विधातारं तत्कालभयभाषितम् ॥ १९ ॥

इन्द्र उवाच

आकुलाः सकला लोका हरमैथुनकर्मणा ।
अहं महद्भयं प्राप्य शरणं त्वामिहागतः ॥ २० ॥
एवम्भूते संगमे च शंकरस्योमया सह ।
यः पुत्रो जायते ब्रह्मन् स मामभिभविष्यति ॥ २१ ॥
तत्क्रियादर्शनादेव सूत्पन्नादपि तत्सुतात् ।
ब्रह्मन् जातं भयं मेऽद्य तारकादपि चाधिकम् ॥ २२ ॥
तस्मादेवं त्वं विधेहि तत्सुतो मां सुरान्यथा ।
न बाधेत तथा यत्नात्तारयास्मान्महाभयात् ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच

उमायां जायते पुत्रो यदि शंकरतेजसा ।
अशक्यः सर्वलोकेशैः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ २४ ॥
तस्माद्धरो यथोमायां न प्रसूतो भविष्यति ।
तथाहं संविधास्यामि गत्वा देवैर्हरान्तिकम् ॥ २५ ॥
तारकस्य विघातश्च यथा स्याद्धरतेजसा ।
तच्चाप्यहं करिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा सह देवौघैः कैलासाद्रिं प्रजापतिः ।
जगाम रेमे गिरिशो गिरिपुत्र्या समं भृशम् ॥ २७ ॥
तत्र गत्वा महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वैः सुरगणैः सार्धं तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ २८ ॥

देवा ऊचुः

प्रीतये यस्य न रतिर्न कामो यन्मनोभवः ।
न यस्य जन्मनो हेतुस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥ २६ ॥
यस्य लोकहितायैव जातो जायापरिग्रहः ।
त्र्यम्बकाय नमस्तस्मै स शिवो नः प्रसीदतु ॥ ३० ॥
यन्मन्मथं विना देवं शृङ्गाराद्या विशन्ति च ।
स्वबलेनैव तं देवं त्वां वयं प्रणता हरम् ॥ ३१ ॥
हिरण्यरेताः स्वर्णाभो यो हिरण्यभुजाह्वयः ।
स त्वं सर्गहरो देवो नित्यं नोऽभिप्रसीदतु ॥ ३२ ॥
जगन्मयी योगनिद्रा विष्णुमाया बलीयसी ।
तस्याभवत् स्वयं जाया तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥ ३३ ॥
पंचभूतमयं यस्य पञ्चशीर्षं विराजते ।
तं पञ्चवदनं देवं भक्त्या त्वां प्रणमामहे ॥ ३४ ॥
सद्योजातमघोरं च वामदेवमुमापतिम् ।
ईशानं प्रणमामोऽद्य यं तत्पुरुषमाह वै ॥ ३५ ॥
योऽसतामशिवो नित्यं यो वा भक्तिमतां शिवः ।
शिवाशिवस्वरूपाय नमस्तस्मै शिवाय ते ॥ ३६ ॥

रूपैस्त्रिभिर्यः स्थितिसृष्टिनाशं
विष्ण्वात्मभिः शम्भुरिति प्रसिद्धैः ।
करोति शश्वज्जगतां नुमस्तं
शिवं विरूपाक्षममुं शिवेशम् ॥ ३७ ॥

यः शूलखट्वाङ्गमृगाङ्कधारी
यो गोध्वजः शक्तिमान् पञ्चरूपी ।
तस्मै तुभ्यं जातवेदःप्रभाय
भूयो भूयो नो नमः शंकराय ॥ ३८ ॥

ब्रह्मार्चिष्मान् भोगभृद्दैत्यहन्ता
यन्ता योद्धा वीतगर्भो जगत्याः ।
स त्वं स्तुतो नः प्रसीदत्वनन्तो
नित्योद्रेकी मुक्तरूपः प्रधानः ॥ ३६ ॥

परब्रह्मरूपी नियतैकमुक्तः
परज्योतिरूपी नियतस्त्वनन्तः ।
परः पाररूपी नियतात्मभागी
स नो भर्गरूपी गिरिशोऽस्तु भूत्यै ॥ ४० ॥

उमापतिं महामायं महादेवं जगत्पतिम् ।
शिवं शिवकरं शान्तं नमामः स प्रसीदतु ॥ ४१ ॥
इति स्तुतो महादेवः शक्राद्यैस्त्रिदशैः स्वयम् ।
उमासङ्गं परित्यज्य भर्गोऽगात्त्रिदिवौकसः ॥ ४२ ॥
येन भावेन स तदा महामैथुनतत्परः ।
आसीत् तेनैव भावेन ब्रह्मादीनां ससाद ह ॥ ४३ ॥
अथ तान् स सुरान् प्राह महादेवस्त्वरन्निव ।
किमर्थमागता यूयं तन्मे वदत निर्जराः ॥ ४४ ॥
तमूचुस्त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मशक्रपुरोगमाः ।
त्वन्महामैथुनाद्भर्ग व्याकुलं सकलं जगत् ॥ ४५ ॥
पृथिवी कम्पतेऽतीव सशैलवनकानना ।
सागराः क्षुभिताः सर्वे नदा नद्यश्च शंकर ॥ ४६ ॥
देवाश्च सर्वे दिक्पाला न शान्तिं प्राप्नुवन्ति वै ।
तस्मात् त्वं सर्वलोकेश सकलाननुकम्पय ॥ ४७ ॥
त्यक्त्वा महामैथुनं तु रतिमात्रं नियोजय ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
उवाच शंकरो देव नातिहृष्टमना इव ॥ ४८ ॥

ईश्वर उवाच

इयं प्रवृत्तिर्भवतां शिवायामरसत्तमाः ।
त्यक्ते महामैथुने तु रतिमात्रं प्रयोजिते ।
नोमायां भविता पुत्रस्तदर्थमयमुद्यमः ॥ ४९ ॥
उमाशरीरजः पुत्रो यो भवेन्मम तेजसा ।
स एव तु रिपून् हत्वा त्रिदशान् वर्धयिष्यति ॥ ५० ॥
तस्मान्महामैथुने मेऽतीव भीताः सुरोत्तमाः ।
स्वं स्वं स्थानं प्रगच्छन्तु अहं तदनुचिन्तये ॥ ५१ ॥

देवा ऊचुः

उमाशरीरजः पुत्रो यथा न भविता हर ।
तथा कुरु जगन्नाथ तन्महामैथुनं त्यज ॥ ५२ ॥

ईश्वर उवाच

रतिमात्रेण नोमायां मत्पुत्रः सम्भविष्यति ।
महामैथुनसन्त्यागात् स्यादपुत्री तु पार्वती ॥ ५३ ॥
तस्मादहं तु देवानां वचनाद् ब्रह्मणस्तथा ।
त्यक्ष्ये महामैथुनं तु किं त्वेकं कुरुतामराः ॥ ५४ ॥

येन मे प्रसृतं तेजो महामैथुनकारणात्।
धार्य्यं तेजस्विनं देवमानयन्त्वमरास्तु तम् ॥ ५५ ॥
यो निष्कम्पो निर्विकारो भूत्वा तेजो ग्रहीष्यति।
तन्मे वदन्तु त्रिदशास्त्यद्ये तेजः शरीरजम् ॥ ५६ ॥

और्व्य उवाच

वृषध्वजवचः श्रुत्वा देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
हरतेजोग्रहायाथ वीतिहोत्रं ययुर्द्धिया ॥ ५७ ॥
अथ ब्रह्माणमामन्त्र्य तथानुज्ञाप्य पावकम्।
सेन्द्रा देवगणाः सर्वे हरमूचुरिदं वचः ॥ ५८ ॥

देवा ऊचुः

एष वैश्वानरः श्रीमान् भूरितेजमयो बली।
महामैथुनबीजं तु त्वत्तेजः संग्रहीष्यति ॥ ५९ ॥
इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे वीतिहोत्रं पुरःस्थितम्।
तस्मै निदेशयामासुः शम्भवे सर्वहेतवे ॥ ६० ॥
ततः षडङ्गं स्वं रेतो व्यादिते दहनानने।
उत्ससर्ज महाबाहुर्महामैथुनकारणम् ॥ ६१ ॥
अग्नावुत्सृज्यमानस्य तेजसः शशभृद्भृतः।
अणुद्वयमतिस्वल्पं गिरिप्रस्थे पपात ह ॥ ६२ ॥
तयोस्तु कणयोः सद्यः सम्भूतौ शंकरात्मजौ।
एको भृङ्गसमः कृष्णो भिन्नाञ्जननिभोऽपरः ॥ ६३ ॥
भृङ्गाभस्य तदा ब्रह्मा नाम भृङ्गीति चाकरोत्।
महाकृष्णैकरूपस्य महाकालेति लोकभृत् ॥ ६४ ॥
ततस्तौ पालयामास शंकरः प्रमथोत्करैः।
अपर्णया चापि तथा क्रमात् तावतिवर्द्धितौ ॥ ६५ ॥
प्रवृद्धौ तौ महात्मानौ हरोमाप्रतिपालितौ।
क्रमाद् गणेशौ कृत्वा तौ हरो द्वारि न्ययोजयत् ॥ ६६ ॥

सगर उवाच

उत्सृष्टमग्नौ यत्तेजस्तत् किं वृत्तं द्विजोत्तम।
तदप्यहं श्रोतुमिच्छुः संक्षेपात् तद्वदस्व मे ॥ ६७ ॥

और्व्य उवाच

अग्नावुत्सृज्य तेजांसि तावत्कालं वृषध्वजः।
आकाशगङ्गामुद्दिश्य देवानिदमुवाच ह ॥ ६८ ॥

एतत् तेजो दुराधर्षं स्त्रीभिरन्यैः सुरोत्तमाः।
योगनिद्रामृते देवीं शैलपुत्रीमृतेऽथ वा॥ ६९॥
तस्मादहं प्रवक्ष्यामि यथेदं तेजसा सुतः।
यत्र वा भविता देवो या च वा तद्ग्रहीष्यति॥ ७०॥
इयं त्वाकाशगा गंगा शैलराजसुतापरा।
उमाया भगिनी ज्येष्ठा ततोऽपत्यं हुताशनात्॥ ७१॥
जनिष्यत्यात्मवीर्येण तेजसानुपमद्युतिः।
भविष्यति स वः श्रीमान् सेनापतिररिन्दमः॥ ७२॥
स तारकं वः पुरतो विजेष्यति शिखिध्वजः।
अमोघया महाशक्त्या मयैव प्रतिवर्द्धितः॥ ७३॥
इत्युक्त्वा स महादेवो विसृज्य सकलान् सुरान्।
पार्वतीमभिसंमन्त्र्य शौचार्थं गतवांस्तदा॥ ७४॥
पार्वती वचनं श्रुत्वा देवानामप्रियं सती।
चुकोप त्रिदशौघाय पुत्राशापरिवर्जिता॥ ७५॥
मन्युना दह्यमानेव स्फुरदोष्ठाधरा तदा।
इदमाह सुरान् दृष्ट्वा हरं च त्यक्तमैथुनम्॥ ७६॥

देव्युवाच

यस्माद्वियोजितः शम्भुर्युष्माभिर्मम मैथुने।
अजातपुत्रा च कृता वारस्त्रीवाहमर्दिता॥ ७७॥
तस्मात् सर्वे सुरगणा अद्यावधि निरन्तरम्।
महामैथुनविभ्रष्टा भवन्तु निजयोषिति॥ ७८॥
तेषामपि तथा पुत्रा न जनिष्यन्ति मे यथा।
भार्याश्च सन्त्वपत्येन हीना देव्यो वराङ्गनाः॥ ७९॥
यथाहं परितप्यामि पुत्राशापरिवर्जिता।
तथा सन्तु समस्तास्ता देव्यः पुत्राशया च्युताः॥ ८०॥

और्व्य उवाच

एवं सुरान् गिरिसुता शशाप कुपिता भृशम्।
तत्कालावधि न स्वर्गे जायन्ते देवपुत्रकाः॥ ८१॥
नाद्यापि सम्प्रजायन्ते पुत्रास्तासु सुधाशिनाम्।
दहनोऽपि तथा काले प्राप्ते गंगोदरे स्वयम्।
रेतः संक्रामयामास शाम्भवं स्वर्णसन्निभम्॥ ८२॥
सा तेन रेतसा देवी सर्वलक्षणसंयुतम्।

एकः स्कन्दो विशाखाख्यो द्वितीयश्चारुरूपधृक् ।
शक्तिद्वयधरौ द्वौ तौ तेजःकान्तिविवर्द्धितौ ॥ ८३ ॥
तावेकत्वं जगामाशु विशाखः स्कन्द एव च ।
शिशुश्चाप्यभवद् यातो यथान्यस्य सुतस्तथा ॥ ८४ ॥
ततस्तं तनयं जातं तथा दृष्ट्वातिविस्मिता ।
मध्ये शरवणस्याशु गंगा तं व्यसृजद्धठात् ॥ ८५ ॥
विसृज्य गर्भं तं गंगा बहुलायै स्वयं तदा ।
गर्भवृत्तान्तमाचख्यौ जातं च व्यसृजद् यथा ॥ ८६ ॥
तच्छ्रुत्वा बहुला ज्ञात्वा महादेवतनूद्भवम् ।
परिगृह्य सुतं तं तु पालयामास कृत्तिका ॥ ८७ ॥
उमायाः शंकरस्यापि विज्ञाप्यानुमते तयोः ।
ततो नीत्वा ददौ देव्यै तं पुत्रमरिमर्दनम् ॥ ८८ ॥
सोऽतिवृद्धः शक्तिधरो महाबलपराक्रमः ।
वर्द्धितः शंकरेणाशु देवसेनाधिपोऽभवत् ॥ ८९ ॥
ततः सुरारिं सगणं तारकं लोकतारकम् ।
शक्तिहस्तो हरसुतः प्रममाथ महाबलम् ॥ ९० ॥
एवमग्नौ समुत्सृष्टं तेजो भर्गेण सङ्गतम् ।
यथा वृत्तं तथा तेऽद्य कथितं नृपसत्तम ॥ ९१ ॥
साम्प्रतं प्रस्तुतं श्राव्यं महाकालस्य भृङ्गिणः ।
वृत्तान्तं शृणु राजेन्द्र तौ भूतौ मनुजौ यथा ॥ ९२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

और्व्य उवाच

हरो यावद् जगत्यर्थे देववर्गैः प्रसादितः ।
तावन्महामैथुनेन[1] हीनोऽभूदुमया सह ॥ १ ॥
वर्तते रतिमात्रेण स्वेच्छां सम्पूरयन् सदा ।
यथा[2] मनोरथं देव्याः सततं पूरयन्मृडः ॥ २ ॥
अथैकदोमया सार्धं निगूढे रतिमन्दिरे ।
नर्माकरोन्महादेवो मोदयुक्तो रतिप्रियः ॥ ३ ॥
यदा सा नर्मणे याता गौरी स्मरहरान्तिकम् ।
तदा भृङ्गिमहाकालौ द्वाःस्थौ द्वारि प्रतिष्ठितौ ॥ ४ ॥
नर्मावसाने सा देवी मुक्तधम्मिल्लबन्धना ।
बन्धहीनं[3] गलद्गात्राद्वस्त्रमालम्ब्य पाणिना ॥ ५ ॥
व्यस्तहारा [4]गन्धपुष्पैराकुलैर्नातिशोभना ।
विलुप्तकुंकुमा दष्टदशनच्छदविभ्रमा ॥ ६ ॥
निःसृता [5]रतिसंकेलिनिलयाज्जलजानना ।
ईषदाघूर्णनयना निचिता[6] स्वेदबिन्दुभिः ॥ ७ ॥
तां निःसरन्तीं सदनात् तथाभूतामनिन्दिताम् ।
अयोग्यां वीक्षितुन्त्वान्यैर्वृषध्वजमृते पतिम्[7] ॥ ८ ॥
ददर्शतुर्महात्मानौ नातिहृष्टात्ममानसौ ।
भृङ्गी चापि महाकालः प्राप्तकालं चुकोपतुः ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तां मातरं दीनौ तथाभूतावधोमुखौ ।
चिन्तां च जग्मतुस्तीव्रां निशश्वसतुरुत्तमौ ॥ १० ॥
तौ पश्यन्तौ तदा देवी ददर्श हिमवत्सुता ।
चुकोप च तदापर्णा वाक्यं चैतदुवाच ह ॥ ११ ॥
एवं भूतां च मां कस्मादसम्बद्धावपश्यताम् ।
भवन्तौ तनयौ शुद्धौ ह्रीमर्यादाविवर्जितौ ॥ १२ ॥
यस्मादिमाममर्यादां भवन्तौ निरपत्रपौ ।

---

१. मैथुनेषु । २. तथा । ३. अथ··· ।
४. कामपत्रै··· । ५. केलिमायाज··· । ६. विचित्रा ।
७. प्रियम् ।

अकुर्वतां ततो भूयाद् भवतोर्जन्म मानुषे ॥ १३ ॥
मानुषीं योनिमासाद्य मद्वेक्षणदोषतः'।
भविष्यन्तौ भवन्तौ तु शाखामृगमुखौ भुवि ॥ १४ ॥
इति तावुमया शप्तौ हरपुत्रौ महामती।
भृङ्गी चैव महाकालः स्वमातुरन्तिकं तदा ॥ १५ ॥
तौ प्राप्तदुःखौ तु तदा दुर्मनस्कौ हरात्मजौ।
शापं तस्या न सेहाते प्रोचतुश्चेदमद्रिजाम् ॥ १६ ॥
अनागसौ सदैवावां भवत्या हिमवत्सुते।
कथं शप्तौ त्वया मातर्हठादेवं प्रकोपया ॥ १७ ॥
नियोजितौ यथा द्वारि महेशेन त्वया सह।
तथा नियोगं कुर्वन्तौ तिष्ठावो द्वारि संयतौ ॥ १८ ॥
हठान्निःसरणं गेहात् तवैव न हि युज्यते।
आगच्छन्त्या भवत्या तु दृष्टावावां सुसंयतौ ॥ १९ ॥
तस्मान्निरर्थकः कोपः को दोषस्तत्र चावयोः।
तस्मात् तत्र प्रतीकारं शृणु मातरनिन्दिते ॥ २० ॥
त्वं मानुषी क्षितौ भूया हरो भवतु मानुषः।
मानुषस्य हरस्याथ जायायां हरतेजसा ॥ २१ ॥
भवत्याश्चापि मानुष्या भविष्यावस्तथोदरे।
यदि सत्यं हरसुतावावां यदि निरागसौ ॥ २२ ॥
तदावयोरिदं वाक्यं सत्यमस्तु गिरेः सुते।
इत्यन्योन्यमथो शापं दत्त्वा दत्त्वा सुदारुणम् ॥ २३ ॥
²विविशुर्नृपशार्दूल गौरी हरसुतौ च तौ।
अथ काले व्यतीते तु सर्वज्ञो वृषभध्वजः ॥ २४ ॥
तद्भावि कर्म ज्ञात्वैव मानुषो ह्यभवत् स्वयम्।
ब्रह्मणो दक्षिणांगुष्ठाद् दक्षो ब्रह्मसुतोऽभवत् ॥ २५ ॥
अदितिस्तत्सुता जाता ततः पुषाह्वयोऽभवत्।
पुषपुत्रोऽभवत् पौष्यः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ २६ ॥
यस्य तुल्यो नृपो भूमौ न भूतो न भविष्यति।
स पुत्रहीनो राजाभूत् पौष्यो नृपतिसत्तमः ॥ २७ ॥
शेषे वयसि संप्राप्ते भार्याभिस्तिसृभिः सह।
पौष्यः परमया भक्त्या ब्रह्माणं पर्यतोषयत् ॥ २८ ॥
तस्य प्रसन्नो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।

---

१. मात्रवेक्षण...। २. विनेशु...।

तमुवाच च राजानं किमिच्छसि वदस्व मे ॥ २९ ॥
प्रसन्नोऽस्मि नृपश्रेष्ठ प्रदास्यामि यथेप्सितम् ।
यदिष्टं तव जायानां तद्वदिष्यसि साम्प्रतम् ॥ ३० ॥

पौष्य उवाच

हिरण्यगर्भपुत्रोऽहं पुत्रार्थी त्वामुपास्महे ।
त्वयि प्रसन्ने पुत्रो मे भूयाल्लक्षणसंयुतः ॥ ३१ ॥
एतदर्थं सभार्योऽहं भक्त्या त्वां समुपस्थितः ।
यथा मे जायते पुत्रस्तथा कुरु जगत्पते ॥ ३२ ॥
पुन्नाम्नो नरकात् पुत्रस्त्रायते पितरं प्रसूम् ।
अतस्तस्माद् भयं ब्रह्मंस्त्वं नाशयितुमर्हसि ॥ ३३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु पौष्य यथा भावी पुत्रस्तव कुलोद्वहः ।
तदहं ते वदाम्यद्य भार्याभिस्तत् समाचार ॥ ३४ ॥
इदं फलं गृहाण त्वं मया दत्तं नृपोत्तम ।
अजीर्णं बहुले काले प्राप्तेऽपि सुरसं सदा[1] ॥ ३५ ॥
फलमेतत् समादाय तावत् संवत्सरत्रयम्[2] ।
आराधय महादेवं स प्रसन्नो भविष्यति ॥ ३६ ॥
यथा सम्भाषते भर्गः फलमेतत् तथा भवान् ।
करिष्यति फलं राजन् भार्याभिस्तिसृभिः सह ॥ ३७ ॥
ततस्ते लक्षणोपेतस्तनयः कुलवर्धनः ।
भविष्यति स्वयं शास्ता चक्रवर्ती वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ ब्रह्मा राजापि सह भीरुभिः ।
हरं यष्टुं समारेभे भक्त्या परमया युतः ॥ ३९ ॥
निराशीः संयताहारः कदाचित् फलभोजनः ।
दृषद्वतीनदीतीरे फलं संस्थाप्य चाग्रतः ॥ ४० ॥
पुष्पार्घदीपधूपैश्च[3] वृषभध्वजमतर्पयत् ।
स तु वर्षद्वयेऽतीते महादेवो जगत्पतिः ॥ ४१ ॥
पौष्यस्य नृपतेः सम्यक् प्रससादार्थसिद्धये ।
प्रसन्नः प्राह नृपतिं महादेवो हसन्निव ।
उपाससे किमर्थं मां तन्मे वद ददामि ते ॥ ४२ ॥

---

१. सुरसंसदि । २. ...द्वयम् ।
३. धूपदीपाद्यैः ।

पौष्य उवाच

अपुत्रोऽहं पुत्रकामस्तच्छृणुष्व[1] वृषध्वज।
यथाहं पुत्रवान् वै स्यां वृषध्वज तथा कुरु ॥ ४३ ॥❀
इति स न्यगदद्राजा भार्याभिः सह हर्षितः।❀
प्रणम्य स्तुतिपूर्वेण भक्तिनम्रात्ममानसः ॥ ४४ ॥
ततः पुत्रार्थिनं भूपं प्रसन्नो वृषभध्वजः।❀
ब्रह्मदत्तं फलं हस्ते कृत्वेदं तमुवाच ह ॥ ४५ ॥

ईश्वर उवाच

इदं फलं ब्रह्मदत्तं विभज्य नृपते त्रिधा।
भोजयेथाः[2] स्वजायास्त्वं प्रहृष्टः सुस्थमानसः ॥ ४६ ॥
ततः प्रवृत्ते भवत एतासु ऋतुसंगमे।
आधास्यन्ति तु गर्भांस्तु भार्यास्ते युगपन्नृप ॥ ४७ ॥
कालप्राप्ते च युगपत् प्रसवो योषितां तव।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ तत्रेत्थं त्वं करिष्यसि ॥ ४८ ॥
एकस्या जठरे शीर्षभागस्ते सम्भविष्यति।
अपरस्यास्तदा कुक्षेर्मध्यभागो भविष्यति ॥ ४९ ॥
अधो नाभ्यास्तु यो भागः सोऽपरस्यां भविष्यति।
तच्च खण्डत्रयं भूप यथास्थानं पृथक् पृथक् ॥ ५० ॥
योजयिष्यसि पश्चात् ते पुत्र एको भविष्यति।
तस्य शीर्षे चन्द्ररेखा सहजा सम्भविष्यति ॥ ५१ ॥
तेनैव नाम्ना स ख्यातिं गमिष्यति च भूतले।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तासां गर्भान् स्वयं तदा ॥ ५२ ॥
संस्कर्तुं जाह्नवीतोयमात्मवासाय वै न्यधात्[3]।
ततः फले स्वयं देवः प्रविवेश वृषध्वजः ॥ ५३ ॥
तत्क्षणात् तत्फलं भूतं त्रिभागं स्वयमेव हि।
पौष्यस्तत्फलमादाय मुदितः सह भार्यया ॥ ५४ ॥
प्रययौ मन्दिरं हृष्टो अनुज्ञाप्य वृषध्वजम्।
ततः समुचिते काले प्राप्ते ताभिस्तु भक्षितम् ॥ ५५ ॥

---

१. ...पूजयामि।

❀ मुद्रितपुस्तके अधिकः।

२. भोजयेत्ताः।

३. ......आत्मनः शिरसो न्यधात्।

तत्फलं नृपशार्दूल गर्भाश्चाप्यायिताः शुभाः।
सम्पूर्णे गर्भकाले तु गर्भेभ्यः समजायत ॥ ५६ ॥
खण्डत्रयं पृथग्राजंस्तथा भर्गेण भाषितम्।
तच्च खण्डत्रयं पौष्यो यथास्थानं नियोज्य च ॥ ५७ ॥
एकपिण्डं चकाराशु तत्र पुत्रो व्यजायत।
तस्य शीर्षे तदा राजन् सहजेन्दुकला शुभा ॥ ५८ ॥
विरराज यथा स्वस्था शरत्काले कला विधोः।
तं सर्वलक्षणोपेतं पीनोरस्कं सुनासिकम् ॥ ५९ ॥
सिंहग्रीवं विशालाक्षं दीर्घायतभुजं तदा।
दृष्ट्वा पौष्योऽथ भार्याभिस्तिसृभिः सह सम्मुदम् ॥ ६० ॥
लेभे दरिद्रः सत्कोषं प्राप्येव विपुलं ततः।
तस्य नामाकरोद्राजा ब्राह्मणैः स्वैः पुरोहितैः ॥ ६१ ॥
चन्द्रशेखर इत्येव कान्त्या चन्द्रमसः समः।
ववृधे स महाभागः प्रत्यहं चन्द्रवत् सुतः ॥ ६२ ॥
कलाभिरिव तेजस्वी शरदीव निशाकरः।
एवं तिसृणामम्बानां गर्भे जातो यतो हरः ॥ ६३ ॥
अतस्त्र्यम्बक[१६]-नामाभूत् प्रथितो लोकवेदयोः।
स राजपुत्रः कौमारीमवस्थां प्रापयत् तदा ॥ ६४ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो विष्णोस्तुल्यो बभूव ह।
बले वीर्ये प्रहरणे शास्त्रे शीले च तत्समः ॥ ६५ ॥
नान्योऽभूद् नृपशार्दूल नो वा भूमौ भविष्यति।
अभिषिच्याथ तं राज्ये कुमारं बलवत्तरम् ॥ ६६ ॥
दशपंचैकवर्षीयं सर्वराजगुणैर्युतम्।
तिसृभिः सहभार्याभिर्वनं पौष्यो विवेश ह।
वृद्धोचितक्रियां कर्तुं राजा परमधार्मिकः ॥ ६७ ॥
गते पितरि राजा स वनवासं महाबलः ॥ ६८ ॥
सर्वां क्षितिं वशे चक्रे सामात्यश्चन्द्रशेखरः।
सार्वभौमो नृपो भूत्वा राजभिः परिसेवितः ॥ ६९ ॥
अमरैरिव देवेन्द्रो विजहार श्रिया युतः।
एवं पौष्यसुतो भूत्वा त्र्यम्बकः पुण्यनिर्वृतः ॥ ७० ॥
ब्रह्मावर्ताह्वये रम्ये करवीराह्वये पुरे।
दृषद्वतीनदीतीरे राजा भूत्वा मुमोद ह ॥ ७१ ॥

---

१६. सुतः।

अथैकदा स पितरं वनवासगतं स्वयम् ।
मातृश्चापि नृपश्रेष्ठ द्रष्टुकामोऽभवन्नृपः ॥ ७२ ॥
स एकस्यन्दनेनैव एकाकी चन्द्रशेखरः ।
विपुलं धनुरादाय समार्गणगणं तदा ॥ ७३ ॥
तपोवनं पुण्यमयं विषयान्ते व्यवस्थितम् ।
आससाद दिदृक्षुः स तातं वृद्धं समातृकम् ॥ ७४ ॥
स गच्छन् पितुरभ्याशं नृपतिं चन्द्रशेखरः ।
ददर्श नमुचं नाम तपस्यन्तं महामुनिम् ॥ ७५ ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयेण संवीतं सूर्यसन्निभम् ।
ऊर्ध्वगाभिर्जटाभिश्च संयुतं ध्यानिनं कृशम् ॥ ७६ ॥
तपसा द्योतिततनुं निश्चलं कुशजासनम् ।
तं दृष्ट्वा दूरतो वीरो रथोपस्थादवातरत् ॥ ७७ ॥
उपतस्थे च विप्रेन्द्रं विनयानतकन्धरः ।
प्रणनाम मुनिं तं च वाक्यमेतदुदीरयन्[१७] ॥ ७८ ॥
पौष्यस्य तनयो ब्रह्मन् नाम्नाहं चन्द्रशेखरः ।
प्रणमामि महाभक्त्या भवन्तं मुनिसत्तमम् ॥ ७९ ॥
इत्युक्त्वा प्राञ्जलिस्तस्थौ मुनेस्तस्याग्रतो नृपः ।
नमुचस्य मुखं वीक्ष्य भक्तिनम्रात्ममानसः[१८] ॥ ८० ॥
पूर्वमेव यदा राजा प्राविशत् तपसे वनम् ।
तदैव सह भार्याभिस्तं मुनिं प्रत्यपूजयत् ॥ ८१ ॥
चिरमाराध्य नमुचं पौष्यः परमपण्डितः ।
प्रसादयामास मुनिं पुत्रार्थे सूनृताक्षरैः ॥ ८२ ॥
विषयान्ते तपः कुर्वन् मुनिश्रेष्ठेह तिष्ठसि ।
एकन्तु प्रार्थये त्वत्तो यदि मां दयसे मुने ॥ ८३ ॥
शिशुर्मे तनयो राजा चन्द्रशेखरसंज्ञकः ।
सहजेन्दुकलायुक्तो बालभावाच्च चञ्चलः ॥ ८४ ॥
स चेद् भवन्तमासाद्य कदाचिदपराध्यति ।
तदा क्षमिष्यसि मुने मयैतत् प्रार्थितं त्वयि ॥ ८५ ॥
पौष्यस्य वचनं श्रुत्वा मुनिश्चाङ्गीचकार ह ।
दृष्ट्वा तत्तनयं विप्रः पौष्यवाक्यमथास्मरत् ॥ ८६ ॥
स्मृत्वाग्रतः स्थितं नम्रं सुचिरं चन्द्रशेखरम् ।
इदं प्रोवाच स मुनिर्दयावान्नमुचाह्वयः ॥ ८७ ॥

---

१७. उदाहरन् ।   १८. ...कन्धरः ।

विनयेनाद्य तुष्टोऽस्मि भवतः चन्द्रशेखर ।
वरं वरय दास्यामि वाञ्छितं मे सहत्तरम् ॥ ८८ ॥
तस्य श्रुत्वा ततो वाक्यं नृपतिश्चन्द्रशेखरः ।
पुनः प्रणम्य नमुचमिदमाहातिसूनृतम् ॥ ८९ ॥
कायेन मनसा वाचा यदत्यर्थं द्विजोत्तम[18] ।
तत्सर्वं विषये मेऽस्ति त्वादृशा यस्य दक्षिणाः ॥ ९० ॥
मनोगतं मे दुष्प्रापं वाञ्छनीयं न विद्यते ।
तदेव वरणीयं मे यद् ददाति स्वयं भवान् ॥ ९१ ॥

नमुच उवाच

त्वं सप्तदशवर्षाणां[19] प्राप्ते संवत्सरे परे ।
भविष्यसि नृपश्रेष्ठ वररामापतिः स्वयम्[20] ॥ ९२ ॥
यथा गिरिसुता शम्भोर्यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः ।
यथा सुरेशस्य शची तथा तेऽपि भविष्यति ॥ ९३ ॥
इत्युक्त्वा स मुनिर्भूपं नमुचस्तपसां निधिः ।
विसर्जयामास तदा स चापि मुदितो ययौ ॥ ९४ ॥
स गत्वा पितरं प्राप्य मातृश्च चन्द्रशेखरः ।
अपूजयद् यथार्हन्तु तैरप्याश्वासितः सुतः ॥ ९५ ॥
अथागतो नृपः स्वीयां करवीरपुरीं प्रति ।
मुदितः सचिवैः सार्द्धं रेमे देवेन्द्रसन्निभः ॥ ९६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

---

१८. यदर्थं द्विजसत्तम । १९. ''वर्षीयान् । २०. सुखी ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

और्व्य उवाच

अवतीर्णे महादेवे पौष्यजायासुखेच्छया ।
मानुषेण प्रमाणेन गते संवत्सरत्रये ॥ १ ॥
गिरिजापि ककुत्स्थस्य राज्ञो भार्यास्वजायत ।
मेनकायां यथापूर्वं स्वेच्छया परमेश्वरी ॥ २ ॥
अथार्यावर्तविषये ब्रह्मण्यः शूरसत्तमः ।
इक्ष्वाकुवंशजो राजा ककुत्स्थो नाम धार्मिकः ॥ ३ ॥
भोगवत्याह्वयायां तु पुर्यां रिपुनिषूदनः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नो भूपालगुणसंयुतः ॥ ४ ॥
तस्य भार्या महाभागा भर्गदेवस्य पुत्रिका ।
सा मनोन्मथिनी नाम्ना पूजिता पतिवल्लभा ॥ ५ ॥
तस्याः पुत्रशतं यज्ञे देवगर्भाभमच्युतम् ।
बलवीर्यसमायुक्तं ककुत्स्थनृपसत्तमात् ॥ ६ ॥
पुत्री न विद्यते तस्यास्तदर्थं सा गृहान्तरे ।
निभृतं स्थण्डिलं कृत्वा चण्डिकां समपूजयत् ॥ ७ ॥
पूज्यमाना महादेवी चण्डिका राजभार्यया ।
प्रसन्ना सा त्रिभिर्वर्षैस्तां स्वप्ने चाब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥
योषिल्लक्षणसम्पन्ना[21] सार्वभौमस्य भामिनी ।
नक्षत्रमालया युक्ता पुत्री तव भविष्यति ॥ ९ ॥
सापि स्वप्ने वरं प्राप्य मुदिताभून्नृपाङ्गना ॥ १० ॥
पार्वत्यपि स्वयं तस्या गर्भे काले विवेश ह ।
सा मनोन्मथिनी देवी प्रवृत्ते ऋतुसंगमे ।
गर्भं दधौ महासत्त्वं चन्द्रिकेवामृतोत्करम् ॥ ११ ॥
सम्पूर्णे तु ततः काले प्राप्ते नक्षत्रमालिनीम् ।
सा मनोन्मथिनी देवी सुषुवे तनयां शुभाम् ॥ १२ ॥
तां दृष्ट्वा हारसंयुक्तां शरज्ज्योत्स्नोपमां शुभाम् ।
ककुत्स्थो भार्यया सार्द्धमत्यर्थमुदितोऽभवत् ॥ १३ ॥
सहजेनाथ हारेण भूषिता तु[22] ककुत्स्थजा ।

---

२१. ...संयुक्ता । २२. वै ।

चवृधे मन्दिरे तस्य वर्षास्विव सुरापगा ॥ १४ ॥
तेनैव हारचिह्नेन तस्यास्तारावतीति वै ।
नामाकरोत् पिता काले यथोक्ते नृपसत्तम ॥ १५ ॥
कालक्रमेण सा बाल्यं व्यतीता वरवर्णिनी ।
मञ्जुलं यौवनोद्भेदं प्राप श्रीरिव माधवे ॥ १६ ॥
सा श्रिया श्रियमन्वेति शौचेनाथ सती शुभा ।
सुशीलां शीलचरितैः स्वरूपेण च पार्वतीम् ॥ १७ ॥
तस्यास्तु यौवनोद्भेदं दृष्ट्वा राजा सुतैः सह ।
ककुत्स्थः कारयामास समयेऽथ स्वयंवरम् ॥ १८ ॥
माधवे मासि सम्प्राप्ते चन्द्रवृद्धौ शुभे दिने ।
स्वयंवरसभां चक्रे तारावत्याः पिता सुतैः ॥ १९ ॥
वार्तिकांस्तु बहून् राजा वडवाभिः क्रमेलकैः[२३] ।
तूर्णं प्रस्थापयामास नानादेशनृपान् प्रति ॥ २० ॥
ते राजानस्तदा श्रुत्वा वार्तां वै वार्तिकाननात् ।
तूर्णमेव समाजग्मुस्तारावत्याः स्वयंवरम् ॥ २१ ॥
तं श्रुत्वा पौष्यतनयश्चतुरङ्गबलैर्युतः ।
स्वयंवरं जगामाशु दिव्यालंकारसंयुतः[२४] ॥ २२ ॥
तत्र गत्वा नृपश्रेष्ठाः ककुत्स्थेन विनिर्मिते ।
स्वयंवरसभामध्ये यथायोग्यमुपस्थिताः ॥ २३ ॥
आसीनेष्वथ भूपेषु ककुत्स्थस्तनयां स्वकाम् ।
शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सभां नेतुं मनोऽकरोत् ॥ २४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञः कुमारी वरवर्णिनी ।
वृद्धां धात्रीं निजां सम्यक्सम्पूर्णज्ञानशालिनीम् ॥ २५ ॥
स्वयंवरसभां द्रष्टुं प्राहिणोत् सदसं प्रति ।
उवाच च तदा धात्रीं राजपुत्री सुमंगलाम्[२५] ॥ २६ ॥
स्वयंवरसभां गत्वा चारुरूपं सुलक्षणम् ।
नृपं निरूप्य भो धात्रि समक्षं मे निवेदय ॥ २७ ॥
त्वं मातर्मम कल्याणं सौभाग्यमपि वाञ्छसि ।
यथा सौभाग्यदः स्वामी मम स्यात् त्वं तथा कुरु ॥ २८ ॥
एवं तां प्रेषयित्वाथ धात्रीं तां नृपपुत्रिका ।
सा मनोन्मथिनी यत्र प्राराधयत चण्डिकाम् ॥ २९ ॥
तत्र प्रायान्-महाभागा शुभा तारावती तदा ।

---

२३. वडवाभिक्रमेण वै । २४. ···मण्डितः । २५. सुमंगला ।

तत्र गत्वा महादेवीं प्रणम्य कालिकाह्वयाम् ॥ ३० ॥
मानुषेणाथ भावेन तां ज्ञात्वात्मानमात्मना ।
प्रणनाम महाशक्त्या वाक्यं चैतदुवाच ह ॥ ३१ ॥
प्रणमामि महामायां योगनिद्रां जगन्मयीम् ।
सा मे प्रसीदतां गौरी चण्डिका भक्तवत्सला ॥ ३२ ॥
यदि सत्यं जनन्या मे मदर्थे त्वं प्रपूजिता ।
तेन सत्येन सुभगः पतिर्मम नृपोत्तमः ॥ ३३ ॥
स्वयंवरेऽद्य भवतु प्रसीद हरवल्लभे ।
इति तस्या वचः श्रुत्वा चण्डिका हरमोहिनी ॥ ३४ ॥
मोहयन्ती नृपसुतां यथात्मानं न वेत्ति च ।
तथा प्राहादृश्यमूर्तिरिदं सा सूनृतं वचः ॥ ३५ ॥

देव्युवाच

पौष्यस्य तनयो योऽसौ नाम्नाभूच्चन्द्रशेखरः ।
स मनोहररूपस्ते प्रियः स्वामी भविष्यति ॥ ३६ ॥
तमिन्दुकलया शीर्षे चिह्नितं नृपसत्तमम् ।
वरयस्व वरारोहे पार्वतीव वृषध्वजम् ॥ ३७ ॥
इत्युक्त्वा विररामाशु पार्वती नृपपुत्रिकाम् ।
सापि नत्वा तथादृश्यां हर्षोत्फुल्लविलोचना ॥ ३८ ॥
जगाम मङ्गलगृहं जनन्या यत्र वासिता ।
अथाजगाम सा धात्री निरूप्य सदृशं पतिम् ॥ ३९ ॥
तारावत्यास्तदाचष्ट रहस्यं नृपसत्तम ।
दृष्ट्वा तामग्रतो धात्रीं प्रहृष्टां नृपतेः सुता ॥ ४० ॥
पप्रच्छ निभृतं कीदृक् को वा दृष्टस्त्वया नृपः ।
सा प्राह धात्री वचनात् तव भूपा विलोकिताः ॥ ४१ ॥
चारुरूपाः कुलीनाश्च शास्त्रे शस्त्रे च पारगाः ।
तेषामहं न शक्नोमि प्रवक्तुं सुबहून् गुणान् ॥ ४२ ॥
येषु मे रोचते तांस्तु कथयामि शुभप्रभे ।
चारुरूपा मया तेषु चत्वारः पुरुषाः शुभे ॥ ४३ ॥
दृष्टास्तत्रापि नासत्यौ देवौ द्वावपरौ नरौ ।
देवयोः कथने कृत्यं किंचिन्नापि न विद्यते ॥ ४४ ॥
यौ पुनः पृथिवीपालौ तयोरेकः सदारकः[२६] ।
नाम्ना सर्वांगकल्याणोऽथापरश्चन्द्रशेखरः ॥ ४५ ॥

---

२६. सुलक्षणः ।

नासत्ययोरेतयोस्तु विशेषो नास्ति कश्चन ।
रूपे शरीरसौभाग्ये सर्वे चातिमनोहराः ॥ ४६ ॥
नृपौ पुनर्महासत्त्वौ सिंहस्कन्धौ महाभुजौ ।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भवौ[२७] ॥ ४७ ॥
पीनोरस्कौ विशालाक्षौ लग्नभ्रूयुगलावुभौ ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णौ देवालङ्कारमण्डितौ ॥ ४८ ॥
तयोरपि वयःस्थत्वात् प्रशस्तश्चन्द्रशेखरः ।
सुशीलः सूनृतवचाः शास्त्रे शस्त्रे च सम्मतः ॥ ४९ ॥
ईषदुद्भिन्नरोम्णा तु नीलेन चारु निर्मलम् ।
राजते वदनं तस्य लक्ष्मणेव निशाकरः ॥ ५० ॥
दीप्तिमत्यापि कलया राजते स निशापतेः ।
सहजेन शिरस्थेन साक्षात् स चन्द्रशेखरः ॥ ५१ ॥
स एव ते पतिर्योग्यश्चिह्नेनानेन सुन्दरि ।
तं त्वं वरय राजानं तव योग्यं शुभोदयम् ॥ ५२ ॥
धात्र्याश्चैवं वचः श्रुत्वा राजपुत्री जगाद ताम् ।
मत्पार्श्वचारिणी भूत्वा निदेशय नृपोत्तमम् ॥ ५३ ॥
धात्रि स्वयंवरसभाप्रवेशसमये मम ।
तयोरायात्तदा राजा त्वन्योन्यं भाषमाणयोः ॥ ५४ ॥
सुतां स्वयंवरसभां नेतुं काले शुभोदये ।
स्वयं तदा ककुत्स्थस्तु सुताया मङ्गलालये ॥ ५५ ॥
आसाद्य पुत्रीं दयितां योषिद्भिः कृतमङ्गलाम् ।
माल्यं सुगन्धिपुष्पाणां करेणादाय तत्करे ॥ ५६ ॥
दत्त्वा चेदमुवाचाशु प्रापयन् मंगलालयात् ।
प्रविश्य समितौ मातुर्माल्येनान्येन सत्तमम् ॥ ५७ ॥
यं त्वमिच्छसि राजानं द्विजं वा त्वं वरिष्यसि ।
एवमुक्त्वा शिविकया स्वाप्तैर्वृद्धैश्च पूरुषैः ॥ ५८ ॥
प्रवेशयामास सुतां ककुत्स्थः समितिं मुदा ।
तामागतां सभां दृष्ट्वा शक्राद्यास्त्रिदशास्तदा ॥ ५९ ॥
अन्ये दिक्पतयश्चापि सभां तत्क्षणमागताः ।
सावतीर्य तदावाप्य यानात् तारावती मुदा[२८] ॥ ६० ॥
धात्र्या चानुगया युक्ता व्यचरत् सदसोऽन्तरे ।
सभामध्ये चिरं सा तु विहृत्य वरवर्णिनी ॥ ६१ ॥
भावित्वान्नियतेर्योगाच्चण्डिकायाः प्रसादतः ।

---

२७. रागकरौ भुजौ । २८. तदा ।

तयोः समत्वादेकत्वात्तया धात्र्या विबोधिता ॥ ६२ ॥
गतिस्वेदजघर्माम्भःकणिकानिचितानना ।
पतिं पूर्वतरं पुत्री राज्ञस्तारावती सती ॥ ६३ ॥
स्वयं सा पार्वती देवी वव्रे च चन्द्रशेखरम् ।
वृतं दृष्ट्वा तदा तन्तु ब्राह्मणाः सामगीतिभिः ॥ ६४ ॥
तयोर्वैवाहिकक्रकुर्मङ्गलं यतमानसाः ।
वैतालिका[२९] गायकाश्च तथा तौर्यत्रिका नृप ॥ ६५ ॥
प्रशंसन्ति स्म गायन्ति वादयन्ति च कौतुकात् ।
सर्वे च त्रिदशा मोदमवापुश्चन्द्रशेखरे ॥ ६६ ॥
तारावत्या वृते चाथ ककुत्स्थोऽप्यतिहर्षितः ।
वृत्तान्तं वीक्ष्य ये भूपाः सुबाहुप्रमुखाः परे ॥ ६७ ॥
रुष्टास्तान् वारयामास समितौ चन्द्रशेखरः ।
ततो'यातेषु देवेषु त्रिदिवं प्रति स्वेच्छया ॥ ६८ ॥
भूपेषु च प्रयातेषु ककुत्स्थेनार्चितेषु च ।
वैवाहिकेन विधिना स राजा चन्द्रशेखरः ॥ ६९ ॥
तारावतीं तदा भार्यां ककुत्स्थानुमते पुनः ।
संस्कृत्य ज्ञापयामास देवेभ्यो वैदिकैर्मखैः ॥ ७० ॥
पाणिग्रहणसंस्कारान्[३०] कृत्वा तां सहचारिणीम् ।
करवीरपुरायाशु प्रययौ चन्द्रशेखरः ॥ ७१ ॥
द्वाविंशत् तु सहस्राणि दासीना प्रददौ पुनः ।
ककुत्स्थाख्यो विट्पतये तस्मिन्नुद्वाहकर्मणि ॥ ७२ ॥
गवां षष्टिसहस्राणि सौरभीणां तथैव च ।
दुहित्रे प्रददौ दायं दासान् दासीः प्रमाणतः ॥ ७३ ॥
अपरा या निजा[३१] पुत्री ककुत्स्थाख्यस्य भूपतेः ।
नाम्ना चित्राङ्गदा ख्याता रूपैस्तारावती समा ॥ ७४ ॥
दासीनामधिपा भूत्वा स्वयं चानुययौ तदा ।
तारावतीं भूपसुतां ज्येष्ठां स्वां भगिनीं शुभाम् ॥ ७५ ॥
तान् दासान् सुसमादाय ककुत्स्थतनयो महान् ।
ज्येष्ठो विश्वावसुर्नाम गच्छन्तं चन्द्रशेखरम् ॥ ७६ ॥
तारावत्या च सहितं स्यन्दनेनाशुगामिना ।
धीमाननुययौ पश्चात् करवीरपुरं प्रति ॥ ७७ ॥

---

२९. विज्ञानिका ।
३०. ...'सम्भार' । ३१. योनिजा ।

तारावत्या समं राजा पौष्यजश्चन्द्रशेखरः ।
करवीरपुरे रम्ये रेमे नृपतिशेखरः ॥ ७८ ॥
इति स्वयं महादेवो मानुषीं योनिमाश्रितः[३२] ।
पार्वती च स्वयं जाता नरयोनिमनिन्दिता ॥ ७९ ॥
तथा भृङ्गी महाकाल एतयोरभवत् सुतः ।
तथा त्वं शृणु राजेन्द्र कथयामि समुद्भवम् ॥ ८० ॥

इति श्रीकालिकापुराणेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

३२. योनिमितवान् ।

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ काले व्यतीते तु ककुत्स्थतनया सती।
विधातुमार्तवं स्नानं योषिद्भिः परिवारिता ॥ १ ॥
शीतामलजलां हृद्यां नदीं प्राप्ता दृषद्वतीम्।
प्रभिन्नाञ्जनसङ्काशां कलुषध्वंसकोविदाम् ॥ २ ॥
कृतस्नानामनुत्तीर्णामर्धमग्नां महासतीम्।
ददृशे स्वर्णगौराङ्गीं कपोतो मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥
कापोतं वपुरास्थाय प्राणिनां वधशङ्कया।
विचचार यतः पूर्वं कपोतस्तेन स स्मृतः ॥ ४ ॥
तां दृष्ट्वा हेमगर्भाभां चन्द्रिकां शारदीमिव।
कपोतः कामयामास कामबाणार्दितो भृशम् ॥ ५ ॥
कामाग्निपरितप्तः स ककुत्स्थतनयां मुनिः।
अभिगम्याथ कल्याणीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
का त्वं कस्यासि वनिता पुत्री वा कस्य सुन्दरि।
कस्मात् समागता वा त्वमुपांशु तटिनीजलम् ॥ ७ ॥
रूपं ते सौम्यमाह्लादि पूर्णचन्द्रनिभं मुखम्।
तिलपुष्पप्रतीकाशं नासिकायुगलं तव ॥ ८ ॥
वातकम्पितनीलाब्जसदृशे लोचने तव।
बाहू मनोहरौ वृत्तौ मृणालमृदुलायतौ।
ऊरू गजकरप्रख्यौ मध्यं वेदिविलग्नकम् ॥ ९ ॥
ईदृशेन तु रूपेण न त्वं मानुषभामिनी[३३]।
देवी वा दानवी वा त्वमप्सरोगुणशालिनी[३४] ॥ १० ॥
अथवा भोग्यभोगाय श्रीस्त्वं नारीत्वमागता।
अपर्णा वा शची वा त्वं तन्मे वद मनोहरे ॥ ११ ॥

और्व्य उवाच

इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा जलादुत्तीर्य भामिनी।
प्रणम्य तं मुनिं नम्रा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १२ ॥
अहं तारावती नाम्ना ककुत्स्थस्य सुता सती।

---

३३. कामिनी।   ३४. त्वमप्सरोगणकामिनी।

चन्द्रशेखरभूपस्य भार्यां जानीहि मां मुने ॥ १३ ॥
नाहं देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च राक्षसी ।
मानुष्यहं नृपसुता चारित्रव्रतधारिणी ॥ १४ ॥

कपोत उवाच

त्वां दृष्ट्वा मां स्वयं कामः सङ्गतः संगमाय ते ।
पीडितश्चाति तेनाहं त्वया शक्त्या समक्षया ॥ १५ ॥
स्मरसागरकल्लोलपतितं मां निराकुलम् ।
त्वदूरुतरिणा त्राहि तूर्णं त्वं मृदुभाषिणी[35] ॥ १६ ॥
मत्तः पुत्रद्वयं चारु रूपलक्षणसंयुतम् ।
भविष्यति महाभागे बलवीर्ययुतं महत् ॥ १७ ॥
कपोतस्य वचः श्रुत्वा भयदुःखसमाकुला ।
जगाद गद्गदं वाक्यं वाग्मिन्यथ ककुत्स्थजा ॥ १८ ॥

तारावत्युवाच

वाक्यमन्यन्मया[36] कार्यं न कार्यमतिनिन्दितम् ।
तस्मान्मा वद मामित्थं प्रणम्य त्वां प्रसादये ॥ १९ ॥
तवापि नैतद् योग्यं स्यान्मुनेरिह तपोधन ।
तपःक्षयकरं गर्ह्यं सतीत्वभ्रंशकं मम ॥ २० ॥

कपोत उवाच

तपोव्ययो वा चान्यद्वा दूषणं तन्ममास्त्विह ।
तथापि त्वामहं त्यक्तुं नेच्छामि सुरतौ शुभे ॥ २१ ॥
अवश्यं मम कामेभ्यस्त्राणं कर्तुमिहार्हसि ।
अन्यथा कामदग्धोऽहं त्वया त्यक्तो मनोहरे ॥ २२ ॥
भवतीं च करिष्यामि शापदग्धां सबान्धवाम् ।
ततस्तद्वचनं[37] श्रुत्वा देवी तारावती तदा ।
ऋषिशापभयात् साध्वी न किंचिच्चोत्तरं ददौ ॥ २३ ॥
सम्भाषयेऽहं स्वसखीरिह तिष्ठ महामुने ॥ २४ ॥
एवमुक्त्वा तदा देवी दासीनां मध्यमागता ।
चित्राङ्गदां समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २५ ॥
चित्रांगदे मुनिरसौ मां वै कामयते भृशम् ।
किं करिष्ये सतीभावान्न भ्रष्टा स्यामहं कथम् ॥ २६ ॥

---

३५. भाषिणि । ३६. साधुपरत्वा मया ।
३७. तत्तस्य ।

पतिं बन्धूंश्च कपोतः सद्यः शापाग्निना दहेत् ।
नाहं मुनिं कामये चेत् संशये पतिता त्वहम् ॥ २७ ॥
ततश्चित्रांगदा प्राह मा भैस्त्वं सत्यभाषिणि ।
तत्रोपायमहं वक्ष्ये यत्कृत्वा त्वं प्रमोक्ष्यसे ॥ २८ ॥
न जहाति मुनिश्चेत्त्वां दासीमेकां मनोहराम् ।
सुभूषणैर्भूषयित्वा मुनये त्वं नियोजय ॥ २९ ॥
कामातुरो मुनिर्मोहात् कृपणो ज्ञास्यते न हि ।
दासीं त्वद्भूषणाच्छन्नां ज्योत्स्नाच्छन्नां मृगीमिव ॥ ३० ॥
एवं कुरु महाभागे मा त्वं चिन्तां गमः शुभे ।
त्वं चेत् सतीति नियतं न ज्ञास्यति तदा मुनिः ॥ ३१ ॥
ततस्तारावती प्राह तां रूपगुणशालिनीम् ।
चित्राङ्गदां भूपपुत्रीं शश्वद्विनयसूनृताम् ॥ ३२ ॥
त्वमेव गच्छ भगिनी कपोताख्यमनिन्दिते ।
मद्भूषणैर्भूषयित्वा स्वशरीरं मनस्विनि ॥ ३३ ॥
अन्यां प्रस्थापितां विप्रः सम्बध्य क्रोधवह्निना ।
धक्ष्यत्यवश्यं सकुलां मां तस्माद् गच्छ सुन्दरि ॥ ३४ ॥
त्वं मत्समा सर्वगुणैः सर्वभूषणभूषिता ।
मुनिं संगमयस्वाद्य रक्ष मां सकुलां शुभे ॥ ३५ ॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा विनयं च सकातरम् ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं तस्थौ नातिहृष्टमना इव ॥ ३६ ॥
जगाद च महाभागां चित्रांगदा ककुत्स्थजाम् ।
करिष्ये वचनं तेऽद्य समये मां स्मरिष्यसि ॥ ३७ ॥
यदर्थे पितरं चेमं भूपं च चन्द्रशेखरम् ।
आश्वासयिष्यति तथा समस्तां च सखीगणान् ॥ ३८ ॥
एवमुक्त्वा भूषणानि तारावत्याः पिधाय सा ।
चित्राङ्गदा जगामाशु मुनेः कामोत्सवाय च ॥ ३९ ॥
तारावती तदा दीना वस्त्रालंकारवर्जिता ।
दासीमध्यगता भूत्वा तामेवानुययौ प्रियाम् ॥ ४० ॥
तामायान्तीं ततो दृष्ट्वा कपोतः काममोहितः ।
मुनीनां परजायासु सस्मार संगमं तदा ॥ ४१ ॥
प्रम्लोचा कामिता पूर्वं वतण्डस्य सुतेन वै ।
यथा वा कामिता पद्मा भरद्वाजेन धीमता ॥ ४२ ॥
तथाहं कामयिष्यामि साम्प्रतं वरवर्णिनीम् ।
पश्चात् तपोबलात् तद्वज्जायापापाद् विमोक्ष्ये ॥ ४३ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य तदा चित्रांगदा शुभा।
समेत्य तं मुनिं लज्जायुक्ता[३८] चैषाह किंचन[३९] ॥ ४४ ॥
तामासाद्य महाभागः कपोतो मुनिसत्तमः।
श्रृंगारवेषभावाय मदनं मनसास्मरत् ॥ ४५ ॥
स्मृतमात्रोऽथ मदनः स्वयमेत्य महामुनिम्।
गन्धमाल्यैः सुवासोभिरध्युवासातिहर्षितः ॥ ४६ ॥
तेनाधिवासितो विप्रः कपोतश्चारुरूपधृक्।
जज्वाल तेजसा चापि द्वितीय इव भास्करः ॥ ४७ ॥
मनोहरं तथा दृष्ट्वा कपोतं मदनोपमम्।
तारावतीमृते सर्वाः सकामाश्चाभवन् स्त्रियः ॥ ४८ ॥
तारावती मुनिं दृष्ट्वा सुन्दरं मदनोपमम्।
विस्मय परमं प्राप्ता[४०] मुनिं कामममन्यत ॥ ४९ ॥
अथ चित्रांगदां विप्रः कामुकः कामसंगमे।
तदा नियोजयामास सुप्रीतश्चाभवत् क्षणात् ॥ ५० ॥
ततस्तस्यां समुत्पन्नं सद्योजातं सुतद्वयम्।
देवगर्भोपमं दीप्तज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ ५१ ॥
जाते सुतद्वये तां तु मुनिः संस्पृश्य पाणिना।
निनाय पूर्ववद्भाव वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५२ ॥
मत्संगमे कियत्कालं प्रिये तिष्ठ शुभानने।
ममेच्छया यास्यसि त्वं भयं ते नास्ति राजतः ॥ ५३ ॥
एवमस्त्विति सा प्राह ऋषिं शापभयात्[४१] सती।
ततो विसर्जयामास मुनिरन्याश्च योषितः ॥ ५४ ॥
ततस्तारावती देवी दासीभिः परिवारिता।
भगिनीमनुशोचन्ती जगाम भवनं निजम् ॥ ५५ ॥
गत्वा तं सर्ववृत्तान्तं कपोतकृतमद्भुतम्।
ब्रह्मावर्ताधिपायाशु शशंसाथ ककुत्स्थजा ॥ ५६ ॥
स श्रुत्वा नृपशार्दूलः क्षणमात्रं विचिन्त्य च।
चित्रांगदायाः साहाय्यं कपोतानुमतेऽकरोत् ॥ ५७ ॥
कपोतोऽपि तदा तस्यां जातयोः सुतयोस्तयोः।
यथोक्तेनाथ विधिना संस्कारमकरोत्तदा ॥ ५८ ॥

---

३८. लज्जामुक्ता। ३९. चैषाभवत् तदा।

४०. जाता।

४१. ऋषिशापभयात्।

सगर उवाच

चित्रांगदा कथं पुत्री ककुत्स्थस्याभवत् तदा।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व द्विजोत्तम ॥ ५९ ॥

और्व्व उवाच

एकदा तु ककुत्स्थोऽसौ हिमवन्तं महागिरिम्।
मृगयायै जगामाथ मृगाश्चापि निपातिताः ॥ ६० ॥
लम्बन्तीं सुरलोकात् तु भूमिं प्रति तदोर्वशीम्।
विश्रामायोपविष्टस्तु सानौ वेश्यां ददर्श ह ॥ ६१ ॥
तामासाद्य महाराजः कामबाणप्रपीडितः।
अवतीर्णां गिरौ शश्वदङ्गसंगमयाचत ॥ ६२ ॥
सा ज्ञात्वा नृपशार्दूलं ककुत्स्थं शक्रसन्निभम्।
उर्वशी रमयामास गिरिकुंजे यथेप्सितम् ॥ ६३ ॥
ततो राज्ञः ककुत्स्थस्य स्ववेंश्यायां तदा सुता।
अभवन् नृपशार्दूलात् सद्योजाता मनोहरा ॥ ६४ ॥
अथ कामेन सन्तुष्टं ककुत्स्थं सा तदोर्वशी।
अथेष्टदेशं विज्ञाप्य गन्तुमैच्छदनिन्दिता ॥ ६५ ॥
तामाह राजा तनयां परित्यज्य कथं शुभे।
गन्तुमिच्छसि चार्वंगि सुतामेनां तु पालय[४२] ॥ ६६ ॥
सा प्राहाहं स्वर्गणिका मयि कस्य न चाभवत्।
तनयस्तनया वापि सद्योजाता नृपात्मजा[४३] ॥ ६७ ॥
स्वतेजसा शरीरस्य विकारो मे न विद्यते।
सुताश्चापि न पाल्यन्ते वेश्याभावात् स्वभावतः ॥ ६८ ॥
दयास्ति यदि ते पुत्र्यां नीत्वैनां वर्धय स्वयम्।
गन्तुं मामनुजानीहि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६९ ॥
इत्युक्त्वा सा जगामाशु यथेष्टं सोर्वशी नृपः।
पुत्रीं तां समुपादाय नगरं स्वं विवेश ह ॥ ७० ॥
तस्याश्चित्रांगदा नाम स चकार नृपः स्वयम्।
मनोन्मथिन्यै चादात् तां भार्यायै पुत्रिकां शुभाम् ॥ ७१ ॥
इदं च वचनं देवीं तदा प्राह नृपोत्तमः।
देवि पुत्री ममेयं त्वमेनां पालय सद्गुणाम् ॥ ७५ ॥
मयानीतां शैलजातां मा हेलां कर्तुमर्हसि।
इत्युक्ता राजपुत्री सा पालने चाकरोन्मतिम् ॥ ७३ ॥

---

४२. यथेष्टं भासि मत्पुत्रीमेनां त्वं प्रतिपालय। ४३. नृपोत्तम।

भर्तुराज्ञां पुरस्कृत्य नान्यत् किंचिदुवाच ह।
सा चैकदा बाल्यभावादष्टावक्रं महामुनिम् ॥ ७४ ॥
व्रजन्तं जिह्ममेवाशु जहासोपजहास च।
स चुकोप मुनिस्तस्यै शापं परमदारुणम् ॥ ७५ ॥
ददौ दासी स्ववंशस्य भवितेति ककुत्स्थजे।
दासी भूत्वा स्ववंशस्य ह्यनूढैव सुतद्वयम् ॥ ७६ ॥
जनयिष्यसि पापिष्ठे ततो भद्रमवाप्स्यसि।
एवं ककुत्स्थतनया जाता चित्रांगदा नृप ॥ ७७ ॥
दासी च भूता सा ते तारावत्या निवासिता।
अनूढाप्यलभत् पुत्रयुग्मं मुनिवराच्छुभात् ॥ ७८ ॥
तौ च पुत्रौ महाभागौ महाकार्यं करिष्यतः।
इति ते कथितं राजन् यथाचित्रांगदाऽभवत्।
ककुत्स्थस्य सुता साध्वी प्रस्तुतं शृणु साम्प्रतम् ॥ ७९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनपंचाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशोऽध्यायः

और्व उवाच

अथ काले व्यतीते तु पुनस्तारावती शुभा ।
आर्तवं विहितं स्नानं नदीं प्राप्ता दृषद्वतीम् ॥ १ ॥
दासीसहस्रैः संयुक्ता नानालङ्कारमण्डिता ।
रम्भादिभिर्यथेन्द्राणी तथा सा प्रत्यदृश्यत ॥ २ ॥
सावतीर्णा जले देवी गौराङ्गी तडिदुज्ज्वला ।
नदीमुज्ज्वलयामास भिन्नाञ्जनसमाम्भसम् ॥ ३ ॥
स्थलीं काचमयीं स्वच्छां कांचनीप्रतिमा यथा ।
स्वभासा ज्वलयामास प्रतिबिम्बेन सा तथा ॥ ४ ॥
अथ तां पुनरेवाथ कपोतो मुनिसत्तमः ।
आनाभिमग्नां तोयौघैर्ददर्श सुमनोहरम् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तामथ पप्रच्छ तदा चित्रांगदां मुनिः ।
केयं जले दृषद्वत्यामवतीर्णा[४४] सखीशतैः ॥ ६ ॥
श्रिया ज्वलन्ती श्रीतुल्या किमपर्णा गिरेः सुता ।
अतीव भ्राजते रूपैर्न संस्तौषि च तां किमु ॥ ७ ॥
अथ तस्य वचः श्रुत्वा मुनेश्चित्रांगदा तदा ।
ऋषिशापभयात् साध्वी संस्तौमीति तदाऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
इयं तारावती नाम ककुत्स्थस्य सुता[४५] सती ।
चन्द्रशेखरभूपाल भार्याऽतिदयिता शुभा ॥ ९ ॥
एषा त्वया कामिता तु कामार्थं पूर्वतो मुने ।
स्वालंकारैरलंकृत्य मां दत्त्वा ते गृहं गता ॥ १० ॥
सेयं पुनर्नदीं स्नातुं भगिनी मे समागता ।
ज्येष्ठां तां तु मुने वक्तुं न ते किंचिच्च युज्यते ॥ ११ ॥
त्वमत्र तिष्ठ विप्रेन्द्र ज्येष्ठां तां भगिनीं प्रियाम्[४६] ।
समाभाष्य समेष्ये त्वामनुजानासि चेद् गतौ ॥ १२ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या मुनिः स्नेहेन वञ्चनाम् ।
तारावत्या कृतां पूर्वं मुनिस्तस्मै चुकोप ह[४७] ॥ १३ ॥

---

४४. दृषद्वत्या अवतीर्णा । ४५. ककुत्स्थतनया ।
४६. ज्येष्ठा मे भगिनी प्रिया । ४७. चुकोपास्यै मुनिस्तु सः ।

इयं पापीयसी रामा वंचनामकरोन्मयि ।
तस्याः संकालनञ्चाहं करिष्याम्यद्य निश्चितम् ॥ १४ ॥
इत्युक्त्वा स तया सार्धं मुनिश्चित्रांगदाख्यया ।
जगाम यत्र सा देवी स्थिता तारावती शुभा ॥ १५ ॥
गत्वा तां तु समासाद्य कपोतो मुनिसत्तमः ।
इदं तारावतीं प्राह कुपितः प्रहसन्निव ॥ १६ ॥
कामार्थं प्रार्थिता पूर्वं त्वं मया च्छद्मना त्वया ।
वञ्चितोऽस्मि दुराधर्षे फलं तस्य समाप्नुहि ॥ १७ ॥
ममापि पुरतः पापे त्वं सतीति विकत्थसे ।
सतीत्वभ्रंशकं मां[४८] त्वं नैव कामितवत्यसि ॥ १८ ॥
तस्माद् बीभत्सवेषस्त्वां कपाली पलितो रहः ।[४९]
विरूपो धनहीनश्च कामयिष्यति वै हठात् ॥ १६ ॥
सद्योजातं पुत्रयुगं सश्रीकं वानराननम् ।
भविष्यति च ते पापे त्वेकाब्दाभ्यन्तरेऽधुना ॥ २० ॥
एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्राह तारावती मुनिम् ।
कोपाद् भयाच्च सा देवी स्फुरदोष्ठपुटा तदा ॥ २१ ॥
यदि सा पूजयित्वा तु चण्डिकां प्राप मा प्रसूः ।
यद्यहं व्रतिनी नित्यं भूपतौ चन्द्रशेखरे ॥ २२ ॥
ककुत्स्थस्य सुता सत्यं यद्यहं द्विजसत्तम ।
तेन सत्येन मे देवान्नान्यो मां कामयिष्यति ॥ २३ ॥
यदि सत्यं महादेवो नित्यमाराध्यते मया ।
तेन सत्येन मे देवादाराध्याच्चन्द्रशेखरात् ॥ २४ ॥
स्वप्नेऽपि मुनिशार्दूल नान्यो मां कामयिष्यति ।
इत्युक्त्वा सा मुनिं नत्वा स्वामिविन्यस्तमानसा ॥ २५ ॥
ययौ तारावती देवी स्वस्थानमिति भामिनी ।
तस्यां गतायां देव्यां तु चिन्तयामास तां मुनिः ॥ २६ ॥
ममैव पुरतश्चैषा निर्भीताति प्रवल्गते[५०] ।
अत्रान्तर्विनिगूढं तु बीजं शुद्धं भविष्यति ॥ २७ ॥
एवं विचिन्त्य स मुनिर्ध्यानसंयुक्तमानसः ।
दिव्यज्ञानपरो भूत्वा सर्ववृत्तान्तमाददे ॥ २८ ॥
यथा भृङ्गिमहाकालौ देव्या शप्तौ सुतावुभौ ।

---

४८. सोऽहं न करोमि भवत्यपि । ४९. ...ज्वरः ।
५०. प्रगल्भते ।

प्रतिशापं यथा तौ तु ददतुः पार्वतीं हरम् ॥ २९ ॥
यथावतीर्णौ मानुष्ययोनौ तौ तु यदर्थतः ।
चित्रांगदा यथा जाता यदर्थं देवकन्यका ॥ ३० ॥
दिव्यज्ञानेन तज्ज्ञात्वा मुनिः किंचन नाकरोत् ।
चित्रांगदामादरेण समादाय मुनिस्ततः ॥ ३१ ॥
स्वस्थानं गतवान् विप्रः पूजयामास तां मुनिः ।
तारावती च तत्सर्वं चन्द्रशेखरभूपतेः ॥ ३२ ॥
वृत्तान्तं मुनिशापस्य कथयामास भामिनी ।
तत्सर्वं[51] पौष्यजो राजा स्वगतं चिन्तया युतः ॥ ३३ ॥
आश्वास्य दयितां भार्यां माभैर्देवीति सोऽचिरात्[52] ।
सततं सेवया पत्युर्धर्मार्थपरिसेवनैः ॥ ३४ ॥
वर्जनादप्रशस्तानां मुनिशापोऽपनीयते ।
तस्मात् त्वं देवि सुभगे चारित्रव्रतधारिणी ॥ ३५ ॥
कल्याणभागिनी नित्यं नापदं समवाप्स्यसि ।
एवमुक्त्वा स राजा तु करवीरपुराधिपः ॥ ३६ ॥
प्रासादं कारयामास उच्चैरभ्रंकषं वहु ।
उच्चैश्चतुःशतं व्यामं त्रिंशद्योजनविस्तृतम् ॥ ३७ ॥
रत्नस्फटिकभूम्यन्तःखचितं रत्नकर्बुरैः ।
वैदूर्यपटलैः शुभ्रैश्छादितं सुमनोहरम् ॥ ३८ ॥
स्वर्णं रत्नतुलास्तम्भं विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
रक्षार्थं कारयामास तारावत्याः प्रियङ्करम् ॥ ३९ ॥
रत्नसोपानसंयुक्तं वैदूर्यवलभीयुतम् ।
सौवर्णनीपसम्बद्धसुधर्मा[53]-सदृशं गुणैः ॥ ४० ॥
तस्यां समस्तभोग्यानि स्वादूनि च मृदूनि च ।
आप्तैरासादयामास पुरुषैश्चन्द्रशेखरः ॥ ४१ ॥
ततस्तारावतीं देवीमादाय चन्द्रशेखरः ।
नित्यं प्रासादपृष्ठं तमारुह्य रमते नृपः ॥ ४२ ॥
एवं संवत्सरं यावदन्यैरप्राप्यवेश्मनि ।
आप्तैरधिष्ठितद्वारि तां देवीं समरक्षत ॥ ४३ ॥
एकदा तु विना तेन करवीराधिपेन तु ।
उच्चैः प्रासादमारुह्य स्थिता तारावती सदा ॥ ४४ ॥
चिन्तयन्ती नृपं तं तु दयितं चन्द्रशेखरम् ।

---

५१. तत् श्रुत्वा । ५२. ···चोचिवान् ५३. नाड ।

तत्पदे न्यस्तमनसा सावित्रीव पतिव्रता ॥ ४५ ॥
आराध्य च महादेवं पार्वत्या सहितं तदा ।
इष्टां देवीं च सा देवी चिन्तयन्ती स्म च स्थिता[५४] ॥ ४६ ॥
तत्र सा चिन्तयन्ती तु त्र्यम्बकं चन्द्रशेखरम् ।
विवेद भेदं न तयोश्चन्द्रशेखरयोर्द्वयोः ॥ ४७ ॥
एवं प्रासादपृष्ठे तु स्थिता तारावती सती ।
सुधर्मामध्यगा देवी शक्रश्रीरिव भूषिता ॥ ४८ ॥
अथोमया समं देवो वियता चन्द्रशेखरः ।
आजगाम तदा गच्छन् प्रासादं प्रति तं नृप ॥ ४९ ॥
ददृशे सूत्तरन्ती सा उमायाः[५५] सदृशी गुणैः ।
सर्वलक्षण-सम्पूर्णा[५६] माधवस्येव माधवी[५७] ॥ ५० ॥
तां दृष्ट्वा न्यगदद् देवीं गौरीं वृषभकेतनः ।
स्मितप्रसन्नवदनः प्रहसन्निव भामिनीम् ॥ ५१ ॥

ईश्वर उवाच

इयं ते मानुषी मूर्तिः प्रिये तारावतीति या ।
भृंगिमहाकालयोस्ते जन्मनो विहिता स्वयम् ॥ ५२ ॥
त्वत्तो ह्यनन्यकान्तोऽहं नान्यं गन्तुमिहोत्सहे ।
त्वमिदानीं स्वयं चास्यां मूर्त्या प्रविश भामिनि ।
तत उत्पादयिष्यामि महाकालं च भृङ्गिणम् ॥ ५३ ॥

देव्युवाच

ममैव मानुषी मूर्तिरस्यां वृषभकेतन ।
विशामि तेऽत्र वचनादुत्पादय सुतद्वयम् ॥ ५४ ॥
मम भृङ्गिमहाकाल कपोतानां च शापतः ।
एवं मोक्षो भवेद् भर्ग तस्मात् त्वं कुरुमत्प्रियम् ॥ ५५ ॥

और्व उवाच

प्रविवेश ततो देवी स्वयं तारावतीतनौ ।
महादेवोऽपि तस्यां तु कामार्थं समुपस्थितः ॥ ५६ ॥
ततः सापर्णयाविष्टा देवी तारावती सती ।
कामयानं महादेवं स्वयमेवाभजन्मुदा ॥ ५७ ॥
तस्मिन्कालेऽभवद्भर्गः कपाली चास्थिमाल्यधृक् ।
बीभत्सवेशो दुर्गन्धः पलितोऽतिविरूपधृक् ॥ ५८ ॥

---

५४. चिंतयन् समवस्थिता ।
५५. च चरन्तीं तामुमायाः । ५६. सम्पूर्णा । ५७ माधवीं

कामावसाने तस्यां तु सद्योजातं सुतद्वयम् ।
अभवन्नृपशार्दूल तथाशाखामृगाननम् ॥ ५९ ॥
तद्देहान्निःसृतापर्णा जातयोः सुतयोस्तयोः ।
मोहयित्वा यथात्मानं न जानाति ककुत्स्थजा ॥
अहं गौरी तथा भर्गभावेन[58] मानुषेण तु ॥ ६० ॥
अथ तारावती देवी सुतौ दृष्ट्वा क्षितिस्थितौ ।
पातिव्रत्यात्[59] परिभ्रष्टा आत्मानं वीक्ष्य भामिनी ॥ ६१ ॥
तथा बीभत्सवेशं तु हरं दृष्ट्वाग्रतः स्थितम् ।
मुनिशापं तदा मेने प्राप्तं कालान्तकोपमम् ॥ ६२ ॥
इति शोकविमूढा च निनिन्द च सतीव्रतम् ।
इदं चोवाच तं वीक्ष्य महादेवं त्रिशूलिनम् ॥ ६३ ॥
मुनिव्रतादपि वरं नारीणां च सतीव्रतम् ।
इति स्म सततं धीरा व्याहरन्ति पुराविदः ॥ ६४ ॥
न तत्सत्यमहं मन्ये यत्प्रवृत्तं ममेदृशम् ।
इत्युक्त्वा सा तदा देवी शुशोच च मुमोह च ॥ ६५ ॥
तामाहाथ महादेवो मा कार्षीस्त्वं वरानने ।
शोकं सतीव्रतं चापि मा निन्द त्वं सुचेतने ॥ ६६ ॥
कपोतेन यदा शप्ता त्वं तदैव तदग्रतः ।
उक्तवत्यसि दीर्घाक्षि यत् तद्भूतं[60] तवाधुना ॥ ६७ ॥
यदि सत्यं महादेवो नित्यमाराध्यते मया ।
तेन सत्येन मे देवादाराध्याच्चन्द्रशेखरात् ॥ ६८ ॥
स्वप्नेऽपि मुनिशार्दूल नान्यो मां कामयिष्यति ।
सोऽहमेव महादेव आराध्यश्चन्द्रशेखरः ॥ ६९ ॥
त्वं मया कामिता चापि मा कार्षीः शोकमङ्गने ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७० ॥
मायया मोहिता देवी तत्र तारावती सती ।
भूमौ मलिनवेशेन मन्युना समुपाविशत् ॥ ७१ ॥
सुतौ च पतितौ भूमौ सा देवी नासभाजयत् ।
भर्तुरागमनं शश्वत् कांक्षन्ती भर्गभाषितम् ॥ ७२ ॥
न रराज गृहे चापि मुक्तकेशी तथास्थिता ।
अथ क्षणान्महाभागः स राजा चन्द्रशेखरः ॥ ७३ ॥
प्रासादपृष्ठमागच्छद् द्रष्टुं तारावतीं तदा ।

---

५८. गौरीतिच तथा भावेन । ५९. सतीव्रताद् । ६०. तद्वृत्तं ।

स तं प्रासादमारुह्य जायां तारावतीं तदा ॥ ७४ ॥
ददर्श पतितां भूमौ मुक्तकेशीं निरुत्सवाम् ।
श्यामाननां श्वसन्तीं[61] च सत्यगर्हण[62] तत्पराम् ॥ ७५ ॥
सुतौ च पतितौ भूमौ सूर्याचन्द्रमसौ तदा[63] ।
वानरास्यौ स ददृशे पदक्षोभं वृषस्य च ॥ ७६ ॥
इति सर्वमवेद्याथ सा राजा चन्द्रशेखरः ।
भीतश्च विस्मितश्चैव भार्यां पप्रच्छ सम्भ्रमात् ॥ ७७ ॥
किं किं तारावति तव[64] प्रवृत्तं निर्जनेगृ हे ।
को वा धर्षितवांस्त्वां हि शिवः[65] सिंहवधूमिव ॥ ७८ ॥
कस्य वा पृथुकावेतौ प्रोद्दीप्तौ वानराननौ ।
तन्मे द्रुतं समाचक्ष्व को वा त्वां कामितोऽपरः[66] ॥ ७९ ॥

और्व उवाच

एवमुक्ता तु भूपेन तदा तारावती सती ।
वृत्तान्तं कथयामास सकलं चन्द्रशेखरे ॥ ८० ॥
यथा समागतो भर्ग उत्तरं च यथोक्तवान् ।
तत्सर्वं कथयामास बाष्पकण्ठा सगद्गदा ॥ ८१ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा चिन्तयंश्चन्द्रशेखरः ।
किं वृत्तमिति विज्ञातुं भूतले समुपाविशत् ॥ ८२ ॥
स्वगतं चिन्तयन् राजा चकारेमां विचारणाम् ।
अनन्यकान्तो गिरिशः स नान्यां पार्वतीमृते ॥ ८३ ॥
कामयिष्यति तस्मात् स न भर्गः परमेश्वरः ।
ऋषिशापो हि बलवांस्तच्छापादेव[67] राक्षसः ॥ ८४ ॥
कोऽपि मायाबलोपेतः शंकरच्छद्मनागतः ।
एषा सती प्रिया भार्या राक्षसेनापि[68] दूषिता ॥ ८५ ॥
कथं चेयं[69] मया ग्राह्या पूर्ववत् सर्वकर्मसु ।
एतौ च तनयौ तस्य सद्योजातौ च राक्षसौ ॥ ८६ ॥
अन्यथा वा कथंभूतौ शाखामृगमुखौ सुतौ[70] ।
एवं चिन्तयतस्तस्य देवौघविनियोजिता ॥ ८७ ॥
सरस्वती वियत्स्था तु राजानमिति चाब्रवीत् ।
न त्वया संशयः कार्यस्तारावत्यां[71] नृपोत्तम ॥ ८८ ॥

---

६१. कुणतीं । ६२. सती । ६३. मसप्रभौ ।
६४. तत्र । ६५ शिवा । ६६. को वा त्वां मिलितोऽपरः ।
६७. स राक्षसः । ६८. नाभिदूषिता । ६९. कथंकारं ।
७०. मुखाननौ । ७१. वत्याः ।

सत्यमेव महादेवो भार्यां तव समेयिवान् ।
एतौ च तनयौ तस्य राजंस्त्वं[७२] परिपालय ॥ ८९ ॥
योऽन्यस्ते संशयोऽत्रास्ति नारदस्तं विनेष्यति ।
इत्युक्त्वा विररामाशु वाग्देवी प्रियवादिनी ॥ ९० ॥
जातसंप्रत्ययो राजा भार्यामाश्वासयत्तदा ।
सुतौ तु देवदेवस्य संस्कृत्य विधिना तदा ॥ ९१ ॥
पालयामास नृपतिराकांक्षन्नारदागमम् ।
अथाजगाम देवर्षिर्नारदस्तस्य मन्दिरम् ॥ ९२ ॥
पूजाभिर्बहुभिस्तं तु प्रत्यगृह्णात् स भूपतिः ।
पूजयित्वा यथान्यायं तारावत्या समं नृपः ॥ ९३ ॥
उच्चैः प्रासादमतुलं सुरेशभवनोपसम् ।
आरोहयामास तदा तं मुनिं चन्द्रशेखरः ॥ ९४ ॥
तत्रोपांशु तदा राजा सभार्यश्चन्द्रशेखरः ।
पूर्वप्रवृत्तवृत्तान्तमपृच्छच्चचन्द्रशेखरः ॥ ९५ ॥
पूतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि[७३] भवता ब्रह्मसूनुना ।
अन्तर्बहिश्च विप्रेन्द्र तुङ्गप्रासादगामिना ॥ ९६ ॥
एकं मे संशयं ब्रह्मंश्छेत्तुमर्हसि हृद्गतम् ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता नैवास्ति कुत्रचित् ॥ ९७ ॥
ऋषिशापेन भार्येयं मम तारावती सती ।
बीभत्सवेशाकृतिना धर्षिता कृत्तिवाससा ॥ ९८ ॥
तस्यात्मजौ समुत्पन्नौ सद्योजाताविमौ पुनः ।
तत्र[७४] मे संशयं शश्वन्नित्यं चित्ते प्रवर्तते ॥ ९९ ॥
अनन्यकान्तो गिरिशो गिरिजां पार्वतीमृते ।
कथं सङ्गमयामास मानुषीं हीनजन्मजाम् ॥ १०० ॥
कथमुत्पादयामास मनुष्यौ[७५] तनयौ स्वकौ ।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यदि गुह्यं न ते भवेत् ॥ १०१ ॥

और्व उवाच

इति पृष्टः स तु मुनिश्चन्द्रशेखरभूभृता ।
कथयामास तत्सर्वं नारदो मुनिसत्तमः ॥ १०२ ॥
यथा भृंगिमहाकालौ समुत्पन्नौ पुरातनौ ।
यथा शप्तौ च पार्वत्या तौ चोदाहरतां[७६] यथा ॥ १०३ ॥

---

७२. संप्रतिपालय । ७३. प्रीतोऽस्मि । ७४. एतन्मे ।
७५. मानुष्याः । ७६. तौ पश्चादाहतुर्यथा ।

यथा पौष्यसुतो जातो भर्गः स चन्द्रशेखरः।
तारावती ककुत्स्थस्य गृहे गौरी यथाभवत् ॥ १०४ ॥
तत्सर्वं कथयामास नारदश्चन्द्रशेखरे।
इदं च परमाख्यानं कथयामास नारदः ॥ १०५ ॥

नारद उवाच

व्याजहार यदापर्णां कालीति वृषभध्वजः।
तदोमा तपसे याता वपुर्गौरत्वकांक्षया ॥ १०६ ॥
अमर्षयुक्ता वचनाच्छंकरस्य गिरेः सुता।
विनीयमाना भर्गेण सानुं हिमवतो गिरेः ॥ १०७ ॥
तस्यां गतायां पार्वत्यां शंकरो विरहार्दितः।
कैलासाद्रिं परित्यज्य मेरुपृष्ठं तदा ययौ ॥ १०८ ॥
तत्रापि शर्म नो लेभे पार्वत्या च विनाकृतः।
मोहितः कामदेवेन तथा वै योगनिद्रया ॥ १०९ ॥
अथैकदा मेरुपृष्ठे चरन्तीं सुमनोहराम्।
सावित्रीं ददृशे शम्भुः पार्वत्याः सदृशीं गुणैः ॥ ११० ॥
तां दृष्ट्वा मदनाविष्टः पार्वत्या विरहार्दितः।
अविद्यया समाविष्टो बभूव प्राकृतो यथा ॥ १११ ॥

अथ तां पार्वतीभ्रान्त्या चरन्तीमन्वधावत।
एहि मां पार्वति शुभे भवद्विरहपीडितम् ॥ ११२ ॥
प्रहरत्येष मां कामः पूर्ववैरमनुस्मरन्।
मम तत्र प्रतीकारं कुरु सम्प्रति वल्लभे[७७] ॥ ११३ ॥
इत्युक्त्वा विमुखीं यान्तीं सावित्रीं वृषभध्वजः।
स्कन्धे हस्तेन पस्पर्श सा चुकोप ततो भृशम् ॥ ११४ ॥
अथ सा सम्मुखी भूत्वा सावित्र्यतिपतिव्रता।
इदमाह महादेवं गर्हयन्ती वृषध्वजम् ॥ ११५ ॥
किं त्वं पशुपते मूर्ख मानुषः प्राकृतो यथा।
निरस्य कलहैर्भार्यामनुनेतुमिहार्हसि ॥ ११६ ॥
विमूढचेतनः कामैर्न संस्तौषि परस्त्रियम्।
असंस्तुत्वापि सम्प्रष्टुं मादृशीं युज्यते तव ॥ ११७ ॥
किमहं पार्वती मूढ येन मत्स्कन्धदेशतः।
हस्तं ददास्यविज्ञाय सावित्रीं विद्धि मां सतीम् ॥ ११८ ॥

---

७७. कुरुष्व पतिवल्लभे।

यस्मान्मानुषवन्मां त्वमनुजानासि वर्बर[७८]।
तस्मात् त्वं मानुषीयोन्यां सुरतं संविधास्यसि ॥ ११९ ॥
गौरीमृते नान्यकान्तस्त्वमन्यां तु[७९] समीहसे।
तस्यैतत्फलितं भर्ग गच्छ मां त्वं परित्यज ॥ १२० ॥
इत्युक्त्वा सा गता देवी स्वमाश्रमपदं सती।
लज्जाविस्मयसंयुक्तो हरोऽप्यायात् निजास्पदम् ॥ १२१ ॥
अतोऽयं मानुषीयोनौ सुरतं शंकरोऽकरोत्।
तस्मान्निःसंशयं राजन्निमां तारावतीं सतीम्।
दयस्व तनयावेतौ भर्गस्य प्रतिपालय ॥ १२२ ॥

और्व्व उवाच

ततः स राजा श्रुत्वैव नारदस्य मुखात् तदा।
आत्मनः शम्भुरूपत्वं गौरी तारावतीति च।
मनुष्ययोनावुत्पन्नावुमावृषभकेतनौ ॥ १२३ ॥
श्रुत्वातिहर्षितो राजा विस्मितो नारदं पुनः।
पप्रच्छ मुनिशार्दूल विज्ञातुमिति चात्मनः ॥ १२४ ॥
शंकरत्वं च गौरीत्वं तारावत्याः समक्षतः।
यथाहं तत्तु पश्यामि तं मां ज्ञापय निश्चितम् ॥ १२५ ॥

नारद उवाच

अंके तारावतीं कृत्वा अक्षिणी[८०] त्वं निमीलय।
क्षणं तारावती चापि निमीलयतु चक्षुषी ॥ १२६ ॥
निमील्य पश्चाद्राजेन्द्र उन्मीलय[८१] ततो द्रुतम्।
ततस्ते शाम्भवं ज्ञानं रूपं चापि भविष्यति ॥ १२७ ॥
इत्युक्तो नारदेनाथ स राजा चन्द्रशेखरः।
वामेन पाणिना धृत्वा देवीं तारावतीं सतीम्[८२] ॥ १२८ ॥
चक्षुषी च तया सार्धं निमील्योन्मील्य तत्क्षणात्।
तन्निमीलनकाले[८३] तु तस्याभूच्छम्भुरूपता ॥ १२९ ॥
गौरीरूपाऽभवद् देवी ततस्तारावती[८४] सती।
अहं शम्भुरहं गौरीति विज्ञानं तयोरभूत् ॥ १३० ॥
ततः प्रोवाच तं शम्भुं नारदः प्रहसन्निव।

---

७८. यस्माद् मानुषधर्मान् मामनुजानीतवान् हर।
७९. गौरीमनन्यकान्तस्त्वमन्यामद्य।
८०. हग्युगं। ८१. प्रोन्मीलय।
८२. स्वयम्। ८३, उन्मीलनावकाले। ८४. तदा।

शम्भुः साक्षाद् भवान् गौरी देवी तारावती स्वयम् ॥ १३१ ॥
प्रत्यक्षं ते महाभाग संपश्यात्मानमात्मना।
ततो राजा भवत्वेवमित्युक्त्वाथ स्वकां तनुम् ॥ १३२ ॥
व्याघ्रचर्मपरीधानां[85] दशभिर्बाहुभिर्युताम्[86]।
त्रिशूलखट्वांगधरां[87] शक्त्यादिधृतहस्तकाम्[88] ॥ १३३ ॥
वृषभोपरि संस्था[89] तु जटाजूटविभूषिताम्[90]।
तारां च विद्युद्गौराङ्गीं पद्महस्तां शुभाननाम् ॥ १३४ ॥
वीक्ष्य संप्रत्ययं प्राप ज्ञानेनापि तदात्मनि।
ततस्तु नारदः प्राह श्रृणु राजन् वचो मम ॥ १३५ ॥
नृयोनौ वैष्णवी माया युवां पूर्वममोहयत्।
तेन तेन शरीरेण शम्भुत्वं नेक्षितं त्वया ॥ १३६ ॥
अधुना दर्शिता तेऽद्य शम्भुना शम्भुरूपता।
निमील्य नयनद्वन्द्वं पुनस्त्वं याहि मर्त्यताम् ॥ १३७ ॥
आसाद्य मानुषं भावमादेहान्तं स्थिरो भव।
तथा तारावती देवी तूर्णं भवतु मानुषी ॥ १३८ ॥

और्व्व उवाच

आत्मनो देवरूपत्वं ज्ञात्वा दृष्ट्वाऽथ चक्षुषा।
जातसंप्रत्ययो राजा न्यमीलयत लोचने ॥ १३९ ॥
ततस्तारावती देवी न्यमीलयत चक्षुषी।
पुनस्तौ . मानवौ जातौ महिषी नृपतिस्तथा ॥ १४० ॥
उन्मील्य तौ तु नेत्राणि मानुषत्वं तदात्मनोः।
दृष्ट्वा आवां तथा मर्त्याविति ज्ञानमभूत् तयोः ॥ १४१ ॥
ततो विमोहितौ तौ तु दम्पती विष्णुमायया।
अहं राजा च महिषी अहमित्यभवन्मतिः ॥ १४२ ॥
तस्यां सुतौ तु जायायां देवांशाविति तन्मती[91]।
आवां स्थिता कला मूर्ध्नि अभूतां जातचिह्नितौ ॥ १४३ ॥
ततः स राजा न्यगदत् तं मुनिं नारदं मुदा।
सत्यमेतत् त्वया प्रोक्तं करिष्ये वचनं तव ॥ १४४ ॥
पालयिष्ये शम्भुपुत्रौ सत्यलभ्ये सदैव हि।
किन्त्वेतौ मुनिशार्दूल त्वं संस्कुरु यथाविधि ॥ १४५ ॥

---

८५. ...धान। ८६. युतम्।
८७. ...धरं। ८८. हस्तकं। ८९. संस्थं।
९०. ...भूषितम्। ९१. तव् सती।

और्व्व उवाच

ततस्तयोर्न्नाम चक्रे नारदो वचनान्नृप।
ज्येष्ठो भैरवनामाऽभूद् गौरीपुत्रो भयंकरः ॥ १४६ ॥
वेतालसदृशः कृष्णो वेतालोऽभूत् तथापरः।
इति चक्रे तयोर्नाम देवर्षिर्ब्रह्मणः सुतः ॥ १४७ ॥
अन्यांश्च सर्वान् संस्कारान्नारदो मुनिसत्तमः।
चकार क्रमशो वाक्याच्चन्द्रशेखरभूभृतः ॥ १४८ ॥
एवं सर्वान् संशयांस्तु सञ्छिद्य मुनिसत्तमः।
संस्कृत्य भर्गतनयौ विसृष्टस्तेन भूभृता ॥ १४९ ॥
ययावाकाशमार्गेण नाकपृष्ठं स नारदः।
नारदे तु गते राजा मुदितश्चन्द्रशेखरः ॥ १५० ॥
तारावत्या समं रेमे करवीराह्वये पुरे।
शम्भोरंशोऽहमित्येवं गौर्यास्तारावतीति च ॥ १५१ ॥
जातश्रद्धस्तदा राजा शशास सुचिरं क्षितिम्।
तनयौ च हरस्याथ तदा वेतालभैरवौ ॥ १५२ ॥
ववृधाते महात्मानौ शरच्चन्द्राविवोद्यतौ।
चन्द्रशेखरभूपस्य तारावत्यां नृपोत्तमः ॥ १५३ ॥
त्रयः पुत्रा महावीर्या रूपसम्पत्-समन्विताः।
ज्येष्ठस्तत्रोपरिचरो दमनोऽलर्क एव च ॥ १५४ ॥
वेतालभैरवाभ्यां तु ज्यायांसस्तेऽभवंस्त्रयः।
एवमेते त्रयः पुत्राश्चन्द्रशेखरभूभृतः ॥ १५५ ॥
वेतालभैरवौ चापि सद्योजातौ हरात्मजौ।
समानभोगा ववृधुश्चन्द्रशेखरभूभृतः।
पालितास्तु सभार्येण समानासनवाहनाः ॥ १५६ ॥

इति पंचसुता महाबलाः
पंचभूतसदृशाः कृता विधेः।
ववृधिरे प्रथमं सकलं जगत्
समतीत्य मुदा[१२] बलदर्पिताः ॥ १५७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

---

१२. समतीतमुदार।
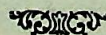
एकपञ्चाशोऽध्यायः

और्व्व उवाच

अथ कालक्रमेणैव प्रवृद्धास्ते महाबलाः ।
शस्त्रास्त्रज्ञानकुशलाः शास्त्रार्थपरिनिष्ठिताः ॥ १ ॥
सम्प्राप्तयौवना दीप्ता दुर्धर्षाः परिपन्थिभिः ।
धर्मार्थज्ञानकुशला ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ २ ॥
सदा सहचरौ तत्र प्रीत्या वेतालभैरवौ ।
अलर्क्को दमनश्चैव तथोपरिचरस्त्रयः ।
सदा सहचरा नित्यं भ्रातरश्चान्द्रशेखराः ॥ ३ ॥
त्रिष्वात्मजेषु[१३] नृपतेः सदोपरिचरादिषु ।
ममत्वमधिकं नित्यं प्रीतिस्नेहौ तथाधिकौ ॥ ४ ॥
वेताले भैरवे चापि चन्द्रशेखरभूभृतः ।
नास्त्येव तादृशी प्रीतिर्यादृशी तेषु जायते ॥ ५ ॥
न तौ दृष्ट्वा स नृपतिः कदाचिच्चन्द्रशेखरः ।
अत्याल्हादयतेऽजस्रं[१४] पुत्रबुद्ध्येष्यतेऽथवा[१५] ॥ ६ ॥
तौ वीरौ धर्मकुशलौ महाबलपराक्रमौ ।
त्रैलोक्यविजये दक्षौ शस्त्रास्त्रग्रामपारगौ ॥ ७ ॥
ताभ्यां बिभेति च नृपः कदा किंवा करिष्यतः ।
वेतालभैरवावेतौ मां सुतान् राज्यमेव वा ॥ ८ ॥
इति चिन्तापरो राजा नित्यमेव निरीक्षते ।
प्रणतावपि तत्पुत्रौ सम्यग् वेतालभैरवौ ॥ ९ ॥
अथोपरिचरं राजा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।
ज्यायांसमौरसं पुत्रं सर्वराजगुणैर्युतम् ॥ १० ॥
यः पश्चात् सर्वभूपालान्[१६] योजयिष्यति नीतिभिः ।
राजोपरिचरो नाम सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ११ ॥
दमनाय ददौ दायं तथालर्काय भूमिभृत् ।
प्रभूतधनरत्नानि तथासनरथान् बहून् ॥ १२ ॥
तावन्ति न[१७] ददौ ताभ्यां दायवित्तानि भागशः ।

---

१३. दृष्ट्वात्मजेषु । १४. आह्लादयतेऽजस्रं ।
१५. पुत्रबुध्याथ ते वा । १६. यः पालात् सर्वभूतानि ।
१७. सः ।

वेतालभैरवाभ्यां तु ततस्तौ मन्युराविशत् ॥ १३ ॥
मन्युनाभिपरीतौ[98] तौ विचरन्तावितस्ततः ।
न भोगमीप्सतां वीरौ तपसे च कृतोद्यमौ ।
अनूढभार्यौ सततं निर्जने वसतः सदा ॥ १४ ॥
तथाभूतौ तदा पुत्रौ देवौ वेतालभैरवौ ।
बुबुधे चिन्तयाक्रान्ता देवी तारावती तदा ॥ १५ ॥
राजोपरिचराद् भीता पत्युश्च चन्द्रशेखरात् ।
नोवाच किंचित् सुदतीच्छन्नं तौ बोधयत्यपि ॥ १६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विद्वान् कपोतो मुनिसत्तमः ।
चित्रांगदासंगभोगी सन्तुष्टः सुरतोत्सवैः ॥ १७ ॥
चित्रांगदां परित्यज्य सपुत्रां सहचारिणीम् ।
इयेष गन्तुं स[99] प्रोचे तदा चित्रांगदां वचः ॥ १८ ॥

मुनिरुवाच

चित्रांगदे तपस्तप्तुं गमिष्यामि तपोवनम् ।
किं ते प्रियं करोमीह तं मे वद मनोहरे ॥ १९ ॥

चित्रांगदोवाच

तुम्बुरुश्च सुवर्चाश्च तनयौ तव सुव्रत ।
एतयोस्त्वं मुनिश्रेष्ठ प्रियं कुरु यथोचितम् ॥ २० ॥
मां चापि भगिनीगेहे संस्थाप्य द्विजसत्तम ।
तदा तपोवनं गच्छ यदि ते रोचतेऽनघ ॥ २१ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्याः कपोतो मुनिसत्तमः ।
हिरण्यार्थं [1]समालोच्य कुबेरसदनं ययौ ॥ २२ ॥
प्रार्थयित्वा कुबेरं तु सुवर्णानां शतानि षट् ।
निष्काणां तु सहस्राणि स लेभे मुनिसत्तमः ॥ २३ ॥
शतं भारांश्च रत्नानामानीय च सवीवधैः ।
पुत्राभ्यां प्रददौ विप्रो भार्यायै च विशेषतः ॥ २४ ॥
ततस्तां सहपुत्राभ्यां तैर्धनैरपि भूरिभिः ।
चित्रांगदामतेनाथ पुत्रयोरपि सम्मते ॥ २५ ॥
सुवर्चसं तुम्बुरुं च तथा चित्रांगदामपि ।
आमन्त्र्य मुनिशार्दूलः करवीर-पुरं ययौ ॥ २६ ॥

---

९८. मन्युनातिपरीतौ ।

९९. तपसे प्रोचे चित्रांगदां च सः । १. तदालोच्य ।

तत्र गत्वा स कपोतो राजानं चन्द्रशेखरम्।
राजोपरिचरं चैव वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २७ ॥
इयं ककुत्स्थजा भूप तवैव विदिता[2] पुरा।
सद्योजातौ तथैवास्यामेतौ मे तनयौ शुची ॥ २८ ॥
एभिर्वित्तैः समं पुत्रौ मम त्वं प्रतिपालय।
राजोपरिचरश्चापि पालयत्विह मे सुतौ ॥ २९ ॥
अपुत्रस्य नृपः पुत्रो निर्धनस्य धनं नृपः।
अमातुर्जननी राजा ह्यतातस्य पिता नृपः ॥ ३० ॥
अनाथस्य नृपो नाथो ह्यभर्तुः पार्थिवः पतिः।
अभृत्यस्य नृपो भृत्यो नृप एव नृणां सखा।
सर्वदेवमयो राजा तस्मात् त्वामर्थये नृप ॥ ३१ ॥

और्व उवाच

ततः स राजा तं प्राह मुनिमेवं द्विजोत्तमम्।
करिष्ये त्वद्वचश्चाहं राजोपरिचरश्च सः ॥ ३२ ॥
अथ चित्रांगदां राजा जग्राह मुनिसम्मते।
सुतौ च तस्य सधनौ ज्यायसे सूनवे ददौ ॥ ३३ ॥
स चोपरिचरः प्रादाद्राज्यमर्धं सुवर्चसे।
तथैव सचिवाध्यक्षमकरोत्तुम्बुरुं तदा ॥ ३४ ॥
कपोतश्चापि सुप्रीतः पुत्रार्धं समवेक्ष्य च।
जगामामन्त्र्य नृपतिं तपसे च तपोवनम् ॥ ३५ ॥
पथि गच्छन् स कपोतः शम्भुपुत्रौ मनोहरौ।
एकाकिनौ चरन्तौ तु सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३६ ॥
तयोर्ददर्श च तदा वदने वानराकृती।
स्मृत्वा पूर्वकथां दृष्ट्वा तावपृच्छत् तपोधनः ॥ ३७ ॥
कौ युवां देवगर्भाभौ चरन्तौ विजने पथि।
एकाकिनौ नरश्रेष्ठौ तन्मे वदतमीरितम् ॥ ३८ ॥
अथ तौ प्रणिपत्यैनं सम्भाष्य च समञ्जसम्।
कपोताख्यं मुनिश्रेष्ठमूचतुः शंकरात्मजौ ॥ ३९ ॥
चन्द्रशेखरपुत्रौ नौ तारावत्यां समुद्गतौ।
विद्धि त्वं मुनिशार्दूल प्रणमावः पदं तव ॥ ४० ॥
अवज्ञां वीक्ष्य नृपतेरावयोः सततं मुने।
एकाकिनौ निर्जनेषु भ्रमावो मन्युना सदा ॥ ४१ ॥

---

२. विषये।

किमर्थमात्मजौ पुत्रौ प्रणतौ सततं नृपः ।
अवज्ञाय महाभाग दायमात्रं न दित्सति[3] ॥ ४२ ॥
तस्मादावां तपस्तप्तुमिच्छावो द्विजसत्तम ।
उपदेशप्रदानेन चानुगृह्णाति चेद्भवान् ॥ ४३ ॥
ततस्तयोर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानस्ताविदं मुनिरब्रवीत् ॥ ४४ ॥

मुनिरुवाच

न युवां तनयौ तस्य चन्द्रशेखरभूपतेः ।
तारावत्यां समुत्पन्नौ भवन्तौ शंकरात्मजौ ॥ ४५ ॥
सद्यो जातौ महावीर्यौ वेतालत्वे च सम्मतौ[4] ।
भृङ्गिमहाकालसंज्ञौ शापाद् धरणिमागतौ[5] ॥ ४६ ॥
युवयोरत्र तेनैव न दायं [6]दित्सति प्रियम् ।
गच्छतं शरणं तातं शंकरं वृषभध्वजम् ॥ ४७ ॥
स एव युवयोः सर्वं करिष्यति महेश्वरः ।
किं वात्युग्रेण तपसा चिरकालफलेन वै ॥ ४८ ॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कपोतः परमात्मधृक् ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानन्ताभ्यां सर्वमथोचिवान् ॥ ४९ ॥
यथा भृंगिमहाकालौ शप्ताववनिमागतौ ।
यथा हरश्च गौरी च पृथिवीमागतौ नृप ॥ ५० ॥
तारावती यथा शप्ता तेनैव मुनिना पुरा ।
यथा तौ च समुत्पन्नौ तारावत्युदरे पुरा ॥ ५१ ॥
यथा वा नारदेनैव संशयच्छेदनं नृपे ।
तत्सर्वं कथयामास पुत्राभ्यां गिरिशस्य तु ॥ ५२ ॥
तच्छ्रुत्वा तौ महात्मानौ तदा वेतालभैरवौ ।
मुदा परमया युक्तौ बभूवतुरनिन्दितौ[7] ॥ ५३ ॥
मोदपूर्णौ तदा भूत्वा सिक्ताविव सुधारसैः ।
पुनः पप्रच्छ कपोतं वेतालो भैरवोऽपि च ॥ ५४ ॥
पितावयोर्महादेवस्त्वया सत्यमितीरितम् ।
सोऽर्चनीयो यथावाभ्यां सिद्धये मुनिसत्तम ॥ ५५ ॥
आवाभ्यां च यथाराध्यो यत्र वाराधितो हरः ।
प्रसादमेष्यत्यचिरात् तन्नो वद महामते ॥ ५६ ॥

---

३. यच्छति । ४. सर्वतत्त्वे सुसम्मतौ । ५. अवनि··· ।
६. दास्यति । ७. बभवतुररिन्दमौ ।

धन्यावनुगृहीतौ नौ यत् त्वया मुनिसत्तम।
विज्ञापितमिदं सर्वं हृच्छल्यं चोद्धृतं च नौ ॥ ५७ ॥
पुनरावां दयस्व त्वं कृपामय मुनीश्वर।
प्राप्स्यावो न चिराद् भर्ग[8] यथा वद तथैव नौ ॥ ५८ ॥

मुनिरुवाच

शृणु त्वं कथयाम्यद्य यत्र चाराधितो हरः।
नचिरादेव भवतोरायास्यति समक्षताम् ॥ ५९ ॥
नित्यं यत्र महादेवो वसन् भवति तुष्टये।
युवां[8] तत् संप्रवक्ष्यामि स्थानं गुह्यं प्रकाशितम् ॥ ६० ॥
वाराणसी नाम पुरी गंगातीरे मनोहरे।
वरणायास्तथा [9]चासेर्मध्ये चापाकृतिः सदा ॥ ६१ ॥
स्वयं वृषध्वजस्तत्र नित्यं वसति योगिनाम्।
सदा प्रीतिकरो योगी स्वयं चाप्यात्मचिन्तकः ॥ ६२ ॥
वियत्स्था सा पुरी नित्यं भर्गयोगबलाद् धृता।
दिव्यज्ञानं ददात्येषा तत्र यो म्रियते नरः ॥ ६३ ॥
तस्मै स्वयं महादेवः संसार-ग्रन्थिमुक्तये।
स भूत्वा परमो योगी मृतस्तत्र भवान्तरे ॥ ६४ ॥
सुलभेनैव निर्वाणमाप्नोति हरसम्मतः।
योगयुक्तो महादेवः पार्वत्या सहितः[10] सदा ॥ ६५ ॥
देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषाणां च नित्यशः।
ज्ञेयो हरः प्रकाशश्च क्षेत्रं तच्च प्रकाशितम् ॥ ६६ ॥
न तत्र कामदो देवो नचिराच्च प्रसीदति।
आराधितश्चिरं प्रीत्या निर्वाणाय प्रसीदति ॥ ६७ ॥
गौर्या विवर्जिता[11] सा तु पुरी तत्र न गच्छति।
योगस्थानं महाक्षेत्रं कदाचिदपि शांकरी ॥ ६८ ॥
आसन्नं युवयोः क्षेत्रमिदं वाराणसी तु यत्।
कथितं नातिदूरे च वर्तते नरसत्तमौ ॥ ६९ ॥
अपरं तु प्रवक्ष्यामि गुह्यं पीठं सदार्चितम्।
हरगौरीसमायुक्तं परं धर्मार्थकामदम् ॥ ७० ॥
तपसा चाति तीव्रेण चिराद् भवति मोक्षदम्।

---

८. तन्नौ। ९. वरुणायास्तथैवाग्रे...।
१०. ...सहितः। ११. गौर्यादिवर्जिता।

नचिरात् कामदं पुण्यं क्षेत्रं पीठं निगद्यते ॥ ७१ ॥
चिरात् तु कामदो देवो न चिराद् यत्र ज्ञानदः ।
तत्क्षेत्रमिति लोकेषु गद्यते पूर्ववन्दिभिः[१२] ॥ ७२ ॥
कामरूपं महापीठं गुह्याद् गुह्यतमं परम् ।
सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शंकरः ॥ ७३ ॥
न चिरात् पूजितो देवस्तस्मिन् पीठे प्रसीदति ।
पार्वती चानुगृह्णाति भर्गभक्तं तु तत्र वै ॥ ७४ ॥
ददाति नचिरात् कामं भक्ताय परमेश्वरः ।
तत् तु पीठं प्रवक्ष्यामि श्रृणुत साम्प्रतं युवाम् ॥ ७५ ॥
करतोया नदी पूर्वं यावद् दिक्करवासिनीम् ।
त्रिंशद् योजनविस्तीर्णं योजनैकशतायतम् ॥ ७६ ॥
त्रिकोणं कृष्णवर्णं च प्रभूताचलपूरितम् ।
नदीशतसमायुक्तं कालरूपं प्रकीर्तितम् ॥ ७७ ॥
शम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्रहात् ।
तत्र रूपं यतः प्राप कामरूपं ततोऽभवत्[१३] ॥ ७८ ॥
तस्य पीठस्य वायव्यां नैर्ऋत्यां मध्यभागतः ।
ऐशान्यां च तथाग्नेय्यां मध्ये पार्श्वे च शंकरः ॥ ७९ ॥
स्वमाश्रमपदं कृत्वा षट्सु स्थानेषु शोभनम् ।
नित्यं वसति तत्रापि पार्वत्या सह नर्मभिः ॥ ८० ॥
मध्ये देवीगृहं तत्र तदधीनं तु शंकरः ।
नीलाख्ये पर्वतश्रेष्ठे पार्वती तत्र तिष्ठति ॥ ८१ ॥
ऐशान्यां नाटके शैले शंकरस्य महाश्रमः ।
नित्यं वसति तत्रेशस्तदधीना च पार्वती ॥ ८२ ॥
अपरे चाश्रमाः सन्ति हरगौर्योः सदातनाः[१४] ।
नैतयोः सदृशः कोऽपि विद्यते शंकराश्रमः ॥ ८३ ॥
[१५]यत्राराध्यो महादेवो भवद्भ्यां नरसत्तमौ ।
तत्स्थानं मनसादाय प्रसादय वृषध्वजम् ॥ ८४ ॥

वेतालभैरवावूचतुः[१६]

कामरूपं गमिष्यावो रहस्यं नाटकाचलम् ।
गौरीहरौ स्थितौ यत्र नित्यं सन्निहितौ मुने ॥ ८५ ॥

---

१२. ...सूरिभिः । १३. ततो मतः । १४. सनातनाः ।
१५. तत्राराध्यो... । १६. तावूचतुः ।

आराधनीयो भूतेशो ह्यवश्यमिह चावयोः ।
यथैवाराधयिष्यावस्तथाचक्ष्व द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥
येन मन्त्रेण वा देवो नचिरात् तु प्रसीदति ।
तत् त्वं वद महाभागानुग्रहोऽस्त्यावयोर्यदि ॥ ८७ ॥

ऋषिरुवाच

नाटकं पर्वतश्रेष्ठ गच्छतं नरसत्तमौ ।
तत्र नित्यं महादेवौ रमतेऽपर्णया[17] सह ॥ ८८ ॥
सन्ध्याचले तत्र मुनिराराधयति शंकरम् ।
वशिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रस्तं युवामनुगच्छतम् ॥ ८९ ॥
स च मन्त्रं सतन्त्रं च हराराधनकर्मणि ।
ज्ञापयिष्यति वां पृष्टः किल वेतालभैरवौ ॥ ९० ॥
तपसे गन्तुमिच्छामि नेदानीं कालयापना ।
युज्यते मम तस्मान्मां त्यजतं वीरसत्तमौ ॥ ९१ ॥
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठः कपोतः प्रययौ वनम् ।
तौ तं मुनिं नमस्कृत्य जग्मतुर्भवनं निजम् ॥ ९२ ॥
अथ तौ समयं कृत्वा दीक्षितौ तपसे तदा ।
पितरावप्यनुज्ञाप्य भ्रातॄनन्यांश्च बान्धवान् ।
प्रस्थानं कामरूपाय चक्रतुस्तौ महामती ॥ ९३ ॥
तौ गच्छन्तौ परिज्ञाय शंकरोऽपि सहोमया ।
देवान् सर्वानुवाचेदं सान्त्वयन्निव[18] सेन्द्रकान् ॥ ९४ ॥

ईश्वर उवाच

पुत्रौ मे तपसे यातः साम्प्रतं सुरसत्तमाः ।
ममाराधनचित्तौ तु तौ दयध्वं सुरेश्वराः ॥ ९५ ॥
संस्कृत्य तपसा चैतौ पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
गाणपत्ये नियोक्ष्यामि तौ संस्कुर्वन्तु निर्जराः ॥ ९६ ॥
अनेनैव शरीरेण तौ गणेशत्वमाप्स्यतः ।
तपसा तु तयोः कायौ भावं त्यक्त्वा तु मानुषम् ॥ ९७ ॥
यथाप्नुतः सौरभावं विधास्यामि ह्यहं तथा ।
इत्युक्त्वा वामदेवोऽपि पार्वत्या सह पुत्रकौ ॥
गच्छन्तौ वियता स्नेहात् पश्चादनुययौ शिवः ॥ ९८ ॥
शक्राद्यास्त्रिदशाः सर्वे दिक्पालाश्च तथापरे ॥ ९९ ॥
सर्वे हरं चानुजग्मुरनुगच्छन्तमात्मजौ ।

---

१७. वसते । १८. सान्त्वयन्दिवि ।

अथ तौ तु नदीं प्राप्य कृष्णाजिनधरौ तदा ॥ १०० ॥
आदाय तापसं भावं[१९] गंगातुल्यां दृषद्वतीम् ।
तपस्विनौ तु देवेन त्र्यम्बकेणाथ पालितौ ॥ १०१ ॥
देवैः सह तदायातौ कामरूपाह्वयाश्रमम् ।
आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ॥ १०२ ॥
उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्डं नृपोत्तम ।
तत्र स्नात्वाप्युपस्पृश्य नदीं गत्वा जटोद्भवाम् ॥ १०३ ॥
उपस्पृश्य च तौ तत्र[२०] नन्दिनं तपसा धृतम् ।
प्रणम्य जल्पिशं देवं जग्मतुर्नाटकाचलम् ॥ १०४ ॥
नाटकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
आराधनोपदेशाय कपोतकवचःस्मरौ[२१] ॥ १०५ ॥
जग्मतुर्दक्षिणां काष्ठां यत्र सन्ध्याचलः स्थितः ।
कान्ता नाम नदी तत्र वशिष्ठेनावतारिता ॥ १०६ ॥
तस्यास्तीरे महाशैलः स्निग्धच्छायलतातरुः ।
सन्ध्यां वशिष्ठः कृतवांस्तत्र यस्माद् विधेः सुतः ॥ १०७ ॥
अतः सन्ध्याचलं नाम तस्य गायन्ति देवताः ।
तत्रासाद्य वशिष्ठं तु साक्षादिव हुताशनम् ॥ १०८ ॥
आराधयन्तं गिरिशं ध्यानसंयुक्तमानसम् ।
तपःश्रिया दीप्यमानं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ १०९ ॥
प्रणम्य पुरतस्तस्य तदा वेतालभैरवौ ।
प्रांजली तस्थतुर्भूप विनयानतकन्धरौ ॥ ११० ॥
इदं चाप्यूचतुस्तौ तु प्रणमन्तौ विधेः सुतम् ।
तारावत्यां समुत्पन्नौ चन्द्रशेखरभूभृतः ॥ १११ ॥
क्षेत्रे भर्गस्य तनयावावां जानीहि मानुषौ ।
आराधयितुमिच्छावो हरं कार्यस्य सिद्धये ॥ ११२ ॥
वाञ्छितस्य यदि त्वं नावनुगृह्णासि सुव्रत ।
तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा वशिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ११३ ॥
उवाचेति युवां ज्ञातौ मया सत्यं हरात्मजौ ।
हरस्याराधनं कार्यं[२२] युवयोर्नरसत्तमौ ॥ ११४ ॥
तत्रास्ति मम कृत्यं किं तद्भाषतमनिन्दितौ[२३] ।

---

१९. आददे तापसं वेषं । २०. तत्राप्युपस्पृश्य च तौ ।
२१. कपोतस्य वचः स्मरन् । २२. योग्यं ।
२३. भाषतमरिन्दमौ ।

वृषध्वजाराधनाय युवयोस्तु प्रयोजनम् ।
विद्यते तन्निमित्तं यत् तत् सिद्धमिति चिन्त्यताम्[२४] ॥ ११५ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

येन मन्त्रेण नचिरात् सम्यगाराधितो हरः ।
प्रसादमेष्यत्यवनौ तन्नो वद महामुने ॥ ११६ ॥
यथा चाराधयिष्यावस्तन्त्रं यद् यादृशः क्रमः ।
तत्सर्वं मुनिशार्दूल वक्तुमर्हसि चोत्तरम् ॥ ११७ ॥
यथा त्वदुपदेशेन प्राप्स्यावो नचिराद् हरम् ।
यथा वाचां मुनिश्रेष्ठ ह्यनुशाधि न तौ त्वयि ॥ ११८ ॥

वसिष्ठ उवाच

प्रसन्न एव भवतोर्वृषकेतुः सहोमया ।
नचिरात् स्वयमेवात्र प्रसादं च समेष्यति ॥ ११९ ॥
सर्वैर्देवगणैः सार्धं सभार्यो वृषभध्वजः ।
आकाशमार्गेणायातः पालयन् स्वसुतौ गृहात्[२५] ॥ १२० ॥
किन्तु मानुषदेहो वामधिवास्य तपोव्रतैः ।
स्वयन्नेष्यति कैलासं गाणपत्ये नियोज्य वाम् ॥ १२१ ॥
अहं चाप्युपदेक्ष्यामि यथा भर्गं युवां द्रुतम् ।
प्राप्स्यथः पार्वतीपुत्रावेकाग्रं शृणुतं तु तत् ॥ १२२ ॥
चिरात् प्रसीदति ध्यानान्नचिराद् ध्यानपूजनात्[२६] ।
तस्माद् ध्यानं पूजनं च कथयाम्यद्य तत्त्वतः ॥ १२३ ॥
तेजोमयः सदा शुद्धो ज्ञानामृतविवर्धितः[२७] ।
जगन्मयश्चिदानन्दः शौरिब्रह्मस्वरूपधृक् ॥ १२४ ॥
महादेवो महामूर्तिर्महायोगयुतः सदा ।
जगन्ति तस्य रूपाणि तानि को गदितुं क्षमः ॥ १२५ ॥
किन्तु यैरिह रूपैस्तु विचरत्येष[२८] शंकरः ।
तेषां यन्मे ज्ञानगम्यं तत्रेष्टं निगदामि वाम् ॥ १२६ ॥
प्रथमं शृणुतं मन्त्रं ततोऽनुध्यानगोचरम् ।
ततः क्रमं तु पूजायाः क्रमाद् वृत्तं नरर्षभौ ॥ १२७ ॥
समस्तानां स्वराणां तु दीर्घाः शेषाः सबिन्दुकाः ।
ऋलृशून्याः सार्धचन्द्रा उपान्तेनाभिसंहिताः ॥ १२८ ॥
एभिः पंचाक्षरैर्मन्त्रं पंचवक्त्रस्य कीर्तितम् ।

---

२४. यत् तस्मात् त्वमवधारय । २५. वाञ्छितौ गुहाम् ।
२६. ध्यानतत्परात् । २७. विवर्जितः । २८. विहरत्येष ।

क्रमात् सम्मदसन्दोह-नादगौरव-संज्ञकाः ॥ १२९ ॥
प्रासादस्तु भवेच्छेषः पंचमन्त्राः प्रकीर्तिताः ।
एकैकेन तथैकैकं वक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ॥ १३० ॥
एकं समुदितं कृत्वा पंचभिर्वा प्रपूजयेत् ।
प्रसादेनाथ वा पंचवक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ॥ १३१ ॥
सम्मदादिषु मन्त्रेषु प्रासादस्तु प्रशस्यते ।
शम्भोः प्रसादनेनैष यस्माद् वृत्तस्तु मन्त्रकः ॥ १३२ ॥
तेन प्रासादसंज्ञोऽयं कथ्यते मुनिसत्तमैः[२९] ।
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु प्रासादः प्रीतिदः परः[३०] ॥ १३३ ॥
आमोदकारकः शम्भोर्मन्त्रः सम्मद उच्यते ।
मनःप्रपूरणाच्चापि सन्दोहः परिकीर्तितः ॥ १३४ ॥
आकर्षको भवेन्नादो गुरुत्वाद् गौरवाह्वयः ।
एतद्व्यस्तं समस्तं च मन्त्रं शम्भोः प्रकीर्तितम् ॥ १३५ ॥
पंचाक्षरं तु यन्मन्त्रं पंचवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
युवां तेनैव मन्त्रेण आराधयतमीश्वरम् ॥ १३६ ॥
ध्यानं वक्ष्यामि शृणुतं[३१] सम्यग् वेतालभैरवौ ।
पंचवक्त्रं महाकायं जटाजूटविभूषितम् ॥ १३७ ॥
चारुचन्द्रकलायुक्तं मूर्ध्नि वालौघभूषितम्[३२] ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्मामराम्बरम् ॥ १३८ ॥
कालकूटधरं कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
किरीटबन्धनं[३३] बाहुभूषणं च भुजंगमान् ॥ १३९ ॥
बिभ्रतं सर्वगात्रेषु ज्योत्स्नार्पितसुरोचिषम् ।
भूतिसंलिप्तसर्वांगमेकैकत्र त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १४० ॥
नेत्रैस्तु पंचदशभिर्ज्योतिष्मद्भिर्विराजितम् ।
वृषभोपरि संस्थं तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ॥ १४१ ॥
सद्योजातं वामदेवमघोरं च ततः परम् ।
तत् पुरुषं तथेशानं पंचवक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ १४२ ॥
सद्योजातं भवेच्छुक्लं शुद्धस्फटिकसंनिभम् ।
पीतवर्णं तथा सौम्यं वामदेवं मनोहरम् ॥ १४३ ॥
नीलवर्णमघोरं तु दंष्ट्रा भीतिविवर्धनम् ।
रक्तं तत्पुरुषं देवं दिव्यमूर्तिं मनोहरम् ॥ १४४ ॥

---

२९. मुनिपुंगवैः । ३०. प्रभो । ३१. ध्यानञ्च शृणु वक्ष्यामि ।
३२. बालौघसंगतम् । ३३. कोटीरबन्धनं ।

श्यामलं च तथेशानं सर्वदैव शिवात्मकम्।
चिन्तयेत् पश्चिमे त्वाद्यं द्वितीयं तु तथोत्तरे ॥ १४५ ॥
अघोरं दक्षिणे देवं पूर्वे तत्पुरुषं तथा।
ईशानं मध्यतो ज्ञेयं चिन्तयेद् भक्तितत्परः ॥ १४६ ॥
शक्तित्रिशूलखट्वांगवरदाभयदं शिवम्।
दक्षिणेष्वथ हस्तेषु वामेष्वपि ततः शुभम्[३४] ॥ १४७ ॥
अक्षसूत्रं बीजपूरं भुजगं डमरूत्पलम्।
अष्टैश्वर्यसमायुक्तं ध्यायेत् तु हृद्‌गतं शिवम् ॥ १४८ ॥
एवं विचिन्तयेद् ध्याने महादेवं जगत्पतिम्।
चिन्तयित्वा द्वारपालान् गणेशादीन् प्रपूजयेत् ॥ १४९ ॥
विशुद्धिं पंचभूतानां चिन्तयित्वा ततो मुहुः।
अष्टमूर्तीस्ततः पश्चात् पूजयेदष्टनामभिः ॥ १५० ॥
आसनानि च तस्याथ पूजयेत् सकलानि तु[३५]।
भावादीन्यष्टपुष्पाणि हृदैव विनियोजयेत् ॥ १५१ ॥
नाराचमुद्रया तस्य ताडनं परिकीर्तितम्।
विसर्जनं धेनुमुद्रां दर्शयित्वा विधानतः ॥ १५२ ॥
निर्माल्यधारणं कुर्यात् सदा चण्डेश्वरं धिया।
प्रत्येकं पंचभिर्मन्त्रैरङ्गादीनि प्रमार्जयेत् ॥ १५३ ॥
सम्मदादिभिरेतस्य पूर्वोक्तैर्नरसत्तमौ।
बालां[३६] ज्येष्ठां तथा रौद्रीं कालीं च तदनन्तरम् ॥ १५४ ॥
कलविकरिणीं देवीं[३७] वलप्रमथिनीं तथा।
दमनीं सर्वभूतानां मनोन्मथिनीं तथैव च ॥ १५५ ॥
अष्टौ ताः पूजयेद् देवीः क्रमाच्छम्भोश्च प्रीतये।
एवं शिवं पूजयित्वा ध्यानतत्परमानसः ॥ १५६ ॥
जपेन्मालां समादाय मन्त्रं ध्यात्वा तथा गुरुम्।
एकं पंचाक्षरं मन्त्रमेकं[३८] प्रासादमेव वा ॥ १५७ ॥
तत्सक्तमनसौ जप्त्वा शीघ्रं सिद्धिमवाप्स्यथ[३९]।
इति वां[४०] कथितं मन्त्रं ध्यानपूजाक्रमं तथा।
गच्छतं नाटकं शैलं तत्राराधयतं हरम् ॥ १५८ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

पंचाक्षरस्तु मन्त्रोऽयं धृतस्त्वत्सम्मते मुने।
अनेनैव हरं देवं पूजयिष्यावहे मुदा ॥ १५९ ॥

---

३४. शृणु। ३५. पूजयित्वा कलानि तु। ३६. रामां। ३७. चैव।
३८. मेरुं। ३९. मवाप्स्यतः। ४०. नौ।

इत्युक्त्वा तन्नमस्कृत्य तदा वेतालभैरवौ ।
जग्मुतुर्नाटकं शैलं वशिष्ठानुमते नृप ॥ १६० ॥
तत्रास्ति सरसी रम्या सुसम्पूर्णमनोहरा[41] ।
सर्वदा स्वच्छसलिला प्रफुल्लकमलोत्पला ॥ १६१ ॥
तस्यास्तीरे तु विपुलः सुमनोज्ञो हराश्रमः ।
सर्वदा दानवैर्देवैः किन्नरैः प्रमथैस्तथा ॥ १६२ ॥
रक्ष्यते नृपशार्दूल नृत्यवादनतत्परैः ।
यस्मान्नटति तत्रेशो नित्यं कौतुकतत्परः ॥ १६३ ॥
तस्मान्नाटकनाम्नासौ[42] शैलराजः प्रगीयते ।
छत्राकारं तु तं शैलं मनोज्ञं शंकरप्रियम् ॥ १६४ ॥
आसाद्य यत्र सरसी तत्र गत्वा तु तौ तदा ।
न चैवापश्यतां तत्र हराश्रममनुत्तमम् ॥ १६५ ॥
गन्तुं चैवाश्रमस्थानं तौ नैवाशकतां नृप ।
ततो हरं प्रणम्याशु तस्यैव सरसस्तटे ॥ १६६ ॥
निर्माय स्थण्डिलं चारु वशिष्ठोक्तक्रमेण तु ।
हरमाराद्धुमारेभे वेतालो भैरवोऽपि च ॥ १६७ ॥
आराधयन्तौ भूतेशं तौ तदा शंकरात्मजौ ।
दृष्ट्वा हरो देवगणैः सार्धं तस्मिंस्तु पर्वते ।
अधित्यकायां न्यवसत् स्वाश्रमेऽपर्णया सह ॥ १६८ ॥
अधोभागे सरस्तीरे तपस्यन्तौ हरात्मजौ ।
स्थितौ दृष्ट्वा देवगणैः सहितः शंकरः स्थितः ॥ १६९ ॥
नृत्यमर्दलशब्दो यो हरस्य सततं भवेत् ।
शृणुतस्तौ[43] तदा शब्दं गन्तुं द्रष्टुं न लभ्यते ॥ १७० ॥
हरेणाधिष्ठितः शैलः सर्वदेवगणैः सह ।
राजते स्म तदा भूप सुधर्मा वासवी यथा[44] ॥ १७१ ॥
ध्यायतोस्तु तदा तत्र भगवान् वृषभध्वजः ।
नचिरादेव तस्याभूद् ध्यानमार्गेषु निश्चलः ॥ १७२ ॥
तौ पूजयन्तौ गच्छन्तौ स्थितौ वा चन्द्रशेखरम् ।
नैव [45]तत्यजतुश्चित्तैः कदाचिदपि भूमिप ॥ १७३ ॥
पंचाक्षरेण मन्त्रेण पूजयन्तौ वृषध्वजम् ।

४१. पूर्णा मम मनोहरा । ४२. तस्मात्तु नाटकं नाम्ना ।
४३. शृण्वतस्तु ४४. सुधर्म्मेवामरावती ।
४५. तं जहतुः ।

व्यतिचक्रमतुस्तौ तु सहस्रं परिवत्सरान् ॥ १७४ ॥
निराहारौ यताहारौ हरसंसक्तमानसौ ।
तपसा निन्यतुर्वर्षान् सहस्रं चैकवर्षवत् ॥ १७५ ॥
गते वर्षसहस्रे तु स्वयमेव वृषध्वजः ।
प्रसङ्गस्तु तयोर्भूत्वा प्रत्यक्षत्वमुपागतः ॥ १७६ ॥
तं तु प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा तदा वेतालभैरवौ ।
वृषध्वजं तुष्टुवतुर्ध्यानगम्यं पुरःस्थितम् ॥ १७७ ॥
हररूपं यथाध्यातं हृद्गतं तेजसोज्ज्वलम् ।
तथा दृष्ट्वा ततस्ताभ्यां[४६]वशिष्ठस्यानुमानतः ॥ १७८ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

पंचवक्त्रं महाकायं सर्वज्ञानमयं परम् ।
संसारसागरत्राणं प्रणमावो वृषध्वजम् ॥ १७९ ॥
त्वं परः परमात्मा च परेशः पुरुषोत्तमः ।
त्वं कूटस्थो जगद्व्यापी प्रधानः परमेश्वरः ॥ १८० ॥
रूपात्मा त्वं महातत्त्वं तत्त्वज्ञानालयं[४७] प्रभुः ।
सांख्ययोगालयः शुद्धो गुणत्रयविभागवित् ॥ १८१ ॥
त्वं नित्यस्त्वमनित्यश्च जगत्कर्ता लयः स्मृतः ।
एकोऽनेकस्वरूपश्च शान्तचेष्टो जगन्मयः ॥ १८२ ॥
निर्विकारो निराधारो नित्यानन्दः सनातनः ।
त्वं विष्णुस्त्वं महेन्द्रस्त्वं[४८] ब्रह्मा त्वं जगतां पतिः ॥ १८३ ॥

यो रूपरूपेश्वररत्नमालः
सम्भूतिभूतो निरवग्रहश्च ।
कांद्यावतीर्णविगतप्रमाथी
योगेश्वरो ज्ञानगतिस्त्वगम्यः ॥ १८४ ॥
प्रमेयरूपात्मधराधराभो
भोगीन्द्रबद्धामृतभोगतन्त्रः ।
सूक्ष्माक्षरस्तत्त्वविदप्रमाथी
त्वं देवदेवः शरणं सुराणाम् ॥ १८५ ॥
विकल्पमानापरिहीनदेहः
शुद्धान्तधामानुगतैकविद्यः ।
वर्धिष्णुरुग्रः पुरुषः परात्मा
त्वमिन्द्रियौघस्य विचारबुद्धिः ॥ १८६ ॥

---

४६. वशिष्ठो मनसा नुतः । ४७. मयः । ४८ महेशश्च ।

त्वं नाथनाथ प्रभवः परेषां
गतिर्मुनीनां परयोगिगम्यः ।
त्वं भूधरो भागधरो ह्यनन्तो
विश्वात्मनस्ते बहवः प्रपञ्चाः ॥ १८७ ॥
ज्ञानामृतस्यन्दकपूर्णचन्द्रो
मोहान्धकारस्य परः प्रदीपः[४९] ।
भक्तात्मजानां परमः पिता त्वं
कामे च पंचाननरूपधारी[५०] ॥ १८८ ॥
शास्ताखिलानां प्रथमो विवस्वां-
स्तनूनपात् त्वं तनुषे गुणौघान् ।
त्वं ब्रह्मरूपेण करोषि सृष्टिं
विष्णुस्वरूपैः सततं स्थितिं च ॥ १८९ ॥
त्वं रुद्ररूपी कुरुषे तथान्तं
त्वत्तो न चान्यज्जगतीह वस्तु ।
त्वं रात्रिनाथो दिवसेश्वरश्च
त्वमग्निरापः पवनो धरित्री ॥ १९० ॥
नभस्तथा त्वं क्रतुतन्त्रहोता
त्वमष्टमूर्तिर्भवतो न चान्यत् ।
अनन्तमूर्तिस्त्विह मुख्यभावा-
न्निगद्यते चाष्टमयी त्रिमूर्तिः ॥ १९१ ॥
अनन्तमूर्ते कथमन्यथा ते
संख्यास्ति रूपस्य यदष्टमूर्तिः ।
त्वं त्र्यम्बकस्त्वं त्रिपुरान्तकश्च
त्वं शम्भुरीशः शमनो विधाता ॥ १९२ ॥
सहस्रबाहुश्च हिरण्यबाहुः
सहस्रमूर्तिस्त्विह पंचवक्त्रः ।
प्रभूतनेत्रस्तु षडर्धनेत्रः
प्रभूतबाहुर्दशबाहुरीशः ॥ १९३ ॥
प्रभूतभोगी मितभोगयुक्तो
भोग्यानुसारो निरवग्रहश्च ॥ १९४ ॥
नित्यानित्यस्वरूपाय नित्यधामस्वरूपिणे ।
परतत्त्वस्वरूपाय नमस्तुभ्यं शिवात्मने ॥ १९५ ॥

---

४९. प्रदीप्तः । ५०. रूपरूपी ।

नान्तं लिंगस्य यस्याप्तं विष्णुना ब्रह्मणा तव ।
तस्यावां किं विधास्यावः स्तुतिवाक्यं वृषध्वज ॥ १६६ ॥
स्वरूपं यस्य जानन्ति न देवा नापि दानवाः ।
बालावावां[५२] कथन्तु त्वां स्तोष्यावः परमेश्वर ॥ १६७ ॥
भक्तिमात्रेण देवेश तवावां[५३] वृषभध्वज ।
कुर्वः प्रणामं गौरीश भूयस्तुभ्यं नमो नमः ॥ १६८ ॥

और्व उवाच

इति स्तुतो महादेवो वेतालेन महात्मना ।
भैरवेणापि राजेन्द्र प्रसन्नः प्राह तौ तदा ॥ १६६ ॥

भगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि युवयोः पुत्रौ वृणुतं वाञ्छितं वरम् ।
दास्यामि युवयोरिष्टं प्रसन्नोऽहं तपोव्रतैः ॥ २०० ॥
स्तुतिभिस्तु दमैश्चापि तथैकान्तानुचिन्तनैः ।
मुहुर्मुहुः सुप्रसन्न इष्टं दास्यामि वां सुतौ ॥ २०१ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

तुष्टोऽसि यदि सत्यं नौ सत्यमावां सुतौ यदि ।
वृषध्वज तवैवेह तदेष्टं देहि नौ वरम् ॥ २०२ ॥
सुतभावेन पितरं भवन्तं जगतां पतिम् ।
नित्यं यथावगच्छावस्तथा देहि वरं तु नौ ॥ २०३ ॥
न राज्यमभिकांक्षावो न धनं नान्यदेव वा ।
त्वद्भक्त्या सेवनं कर्तुं तवेच्छावो वृषध्वज ॥ २०४ ॥
त्वत्पादपंकजद्वन्द्वे नित्यं मधुकरात्मताम् ।
त्वयि प्रसन्ने नेत्राणां युगले प्राप्नुतां सदा ॥ २०५ ॥
इतोऽन्यथा त्वच्चिन्ताभिस्त्वद्ध्यानैस्त्वत्प्रपूजनैः ।
कल्पकोटिसहस्राणि यान्तु सम्यक्तथावयोः ॥ २०६ ॥
ततस्तद्[५४] वचनं श्रुत्वा महादेवो हसन्निव ।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं देवत्वमकरोत्तयोः ॥ २०७ ॥
देवेन्द्रसम्मतेनैव सुधामानीय नाकतः ।
वेतालभैरवौ तान्तु पाययामास शंकरः ॥ २०८ ॥
पीतेऽमृते ततस्तौ तु मर्त्यतां नरसत्तमौ ।
अमर्त्यतां परित्यज्य प्रापतुः शिवशक्तितः ॥ २०६ ॥

---

५२. नरावावां० । ५३. भवावां । ५४. तयोः ।

तस्मिन्काले स्वपन्तौ तु दिव्यज्ञानबलान्वितौ ।
दिव्यरूपोपसम्पन्नौ बभूवतुररिन्दमौ ॥ २१० ॥
अभिन्नेनैव देहेन देवत्वं गतयोस्तयोः ।
प्राह शम्भुस्तदा तौ तु सुतौ परमहर्षितौ ॥ २११ ॥

भगवानुवाच

अहं तुष्टस्तु युवयोः पार्वतीं दयितां मम ।
मद्दत्तं काममिच्छन्तावाराधयतमीश्वरीम्[५५] ॥ २१२ ॥
तामृते तु न शक्नोमि दातुमिष्टं सनातनम् ।
सेवितुं च सुतौ नित्यं शरणं व्रजतं शिवाम्[५७] ॥ २१३ ॥
अचिराद् येन भावेन प्रीतिं देवी गमिष्यति ।
अत्र वा तत्र[५८] वा गत्वा तेन भावेन चार्य्यताम् ॥ २१४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वेताल-भैरवोत्पत्तिकथने
एकपंचाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

---

५५. मद्गतकाममाकांचां । ५७. तस्मात्तां शरणं व्रज ।
५८. यत्र वा तत्र ।
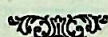
द्विपञ्चाशोऽध्यायः

और्व उवाच

एवं वदति भूतेशे तदा वेतालभैरवौ ।
प्राहतुर्व्योमकेशं तौ हर्षोत्फुल्लविलोचनौ ॥ १ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

पार्वत्या न हि जानीवो ध्यानं मन्त्रं विधिं तथा ।
कथमाराधयिष्यावो भगवन् सम्यगुच्यताम् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच

महामायाविधिं मन्त्रं कल्पं च भवतोः सुतौ ।
उपदेक्ष्यामि तत्त्वेन येन सर्वं भविष्यति ॥ ३ ॥

और्व उवाच

इत्युक्त्वा स महामायाध्यानं मन्त्रं विधिं तथा ।
कथयामास गिरिशस्तयोः सम्यङ् नृपोत्तम ॥ ४ ॥
यदष्टादशभिः पश्चात्पटलैश्च स भैरवः ।
स निर्णयविधिं कल्पं निबबन्ध शिवामृते ॥ ५ ॥

सगर उवाच

कीदृङ् मन्त्रं पुरा शम्भुरवोचदुभयोस्तयोः ।
येनाराध्य महामायां तौ गणेशत्वमापतुः ॥ ६ ॥
सकल्पं सरहस्यं च साङ्गं तच्छ्रोतुमुत्सहे ।
दशाष्टपटलैर्यत् तु निबबन्ध सभैरवः ॥ ७ ॥

और्व उवाच

बहुत्वाद् वदितुं तस्य चिरेणैव तु शक्यते ।
तस्मात् सद्यः समुद्धृत्य यन्महादेवभाषितम् ।
संक्षेपात् कथये तत्त्वं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ ७ ॥
पृच्छन्तौ पार्वती मन्त्रं तदा वेतालभैरवौ ।
जगाद स महादेवः शृणुतं मन्त्रकल्पकौ ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतमं परम् ।
अष्टाक्षरं तु वैष्णव्या महामायामहोत्सवम् ॥ १० ॥

अस्य श्रीवैष्णवीमन्त्रस्य नारदऋषिः शम्भुर्देवता ।
अनुष्टुप् छन्दः सर्वार्थसाधने विनियोगः ॥ ११ ॥
हान्तान्तपूर्वो रान्तश्च[५९] नान्तो णान्तस्तथैव च ।
कैकादशाष्टादिषष्ठः खान्तो विष्णुपुरःसरः ॥ १२ ॥
एभिरष्टाक्षरैर्मन्त्रं शोणपत्रसमप्रभम् ।
ॐकारं पूर्वतः कृत्वा जप्यं सर्वैस्तु साधकैः ॥ १३ ॥
महामन्त्रमिदं गुह्यं वैष्णवीमन्त्रसंज्ञकम् ।
मन्त्रं कलेवरगतं तस्मादङ्गं प्रकीर्तितम् ॥ १४ ॥
महादेवस्योर्ध्वमुखं बीजमेतत् प्रकीर्तितम् ।
ॐकाराक्षरबीजं च यकारः शक्तिरुच्यते ॥ १५ ॥
सबीजं कथितं मन्त्रं कल्पं च शृणु भैरव ।
तीर्थे नद्यां देवखाते गर्तप्रस्रवणादिके ॥ १६ ॥
परकीयेतरे तोये स्नानं पूर्वं समाचरेत् ।
आचान्तः शुचितां प्राप्तः कृतासनपरिग्रहः ॥ १७ ॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थण्डिलं मार्जयेत् ततः ।
करेणानेन मन्त्रेण यूं सः क्षित्या इति स्वयम् ॥ १८ ॥
ॐ ह्रीं[६०] स इति मन्त्रेण आशापूरणकेन च ।
तोयैरभ्युक्षयेत् स्थानं भूतानामपसारणे ॥ १९ ॥
ततः सव्येन हस्तेन गृहीत्वा स्थण्डिलं शुचिः ।
मन्त्रं लिखेत् सुवर्णेन याज्ञिकेन कुशेन वा ॥ २० ॥
ॐ वैष्णव्यै नम इति मन्त्रराजमथापि वा ।
ततस्त्रिमण्डलं कुर्यात् तेनैव समरेखया ॥ २१ ॥
नित्यासु न हि पूजासु रजोभिर्मण्डलं लिखेत् ।
पुरश्चरणकार्येषु तत्काम्येषु प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥
रेखामुदीच्यां[६१] प्रथमं पश्चिमे तदनन्तरम् ।
दक्षिणे तु ततः पश्चात् पूर्वभागे तु शेषतः ॥ २३ ॥
वर्णानां च सहद्वारैरेवमेव[६२] क्रमो भवेत् ।
ॐ ह्रीं श्रीं स इति मन्त्रेण मण्डलं पूजयेत् ततः ॥ २४ ॥
हस्तेन मण्डलं कृत्वा कुर्याद् दिग्बन्धनं ततः ।
आशाबन्धनमन्त्रेण पूर्वोक्तेन यथाक्रमम् ॥ २५ ॥
फडन्तेनात्मनाप्यत्र करेणैव निबन्धयेत् ।

---

५९. मान्त । ६०. श्रू । ६१. रेखामुदीचीं प्रथमां ।
६२. क्रमत्वाद् वा ।

यवानां मण्डलैरेकमङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत् ॥ २६ ॥
अदीर्घयोजितैर्हस्तैश्चतुर्विंशतिरङ्गुलैः ।
तत्प्रमाणेन हस्तेन हस्तैकं तस्य मण्डलम् ॥ २७ ॥
पद्मं वितस्तिमात्रं स्यात् कर्णिकारं तदर्धकम् ।
दलान्यन्योन्यसक्तानि ह्यायतानि नियोजयेत् ॥ २८ ॥
न न्यूनाधिकभागानि सवहिर्वेष्टितानि च ।
मध्यभागे न्यसेद् द्वारन्न न्यूने नाधिके तथा ।
सुबद्धं मण्डलं तच्च रक्तवण विचिन्तयेत् ॥ २९ ॥

इतोऽन्यथा मण्डलमुग्रमस्याः
करोति यो लक्षणभागहीनम् ।
फलं न चाप्नोति न काममिष्टं
तस्मादिदं मण्डलमत्र लेख्यम् ॥ ३० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पेऽष्टादशपटले
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ततो लमिति[1] मन्त्रेण अर्घपात्रस्य मण्डलम् ।
चतुष्कोणं विधायाशु द्वारपद्मविवर्जितम् ॥ १ ॥
ओं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रेण अर्घपात्रं तु मण्डले ।
विन्यसेत् प्रथमं तत्र पूजयित्वा समिध्यति' ॥ २ ॥
ओं ह्रीं ह्रौमितिमन्त्रेण गन्धपुष्पे तथा जलम् ।
अर्घपात्रे क्षिपेत् तत्र मण्डलं विन्यसेत् ततः ॥ ३ ॥
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा अर्घपात्रे ततो जलैः ।
त्रिभागैः[2] पूरयेत् पात्रं पुष्पं तत्र विनिःक्षिपेत्[3] ॥ ४ ॥
ततो ह्रीमिति मन्त्रेण आसनं पूजयेत् स्वकम् ।
ततः क्षौमितिमन्त्रेण आत्मानं[4] पूजयेद् बुधः ॥ ५ ॥
गन्धैः पुष्पैः शिरोदेशे ततः पूजां समाचरेत्[5] ।
ओं ह्रीं स इति मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम् ॥ ६ ॥
संमृज्य सव्यहस्तेन घ्रात्वा वामकरेण तु ।
ऐशान्यां निक्षिपेदेतत् पूर्वमन्त्रेण कोविदः ॥ ७ ॥
रक्तं पुष्पं गृहीत्वा तु कराभ्यां पाणिकच्छपम् ।
बद्ध्वा कुर्यात् ततः पश्चाद् दहनप्लवनादिकम् ॥ ८ ॥
वामहस्तस्य तर्जन्यां[6] दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम्[7] ।
तथा दक्षिणतर्जन्यां[8] वामाङ्गुष्ठं[9] नियोजयेत् ॥ ९ ॥
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥ १० ॥
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ॥ ११ ॥
कूर्मपृष्ठसमं पृष्ठं कुर्याद् दक्षिणहस्ततः[10] ।
एवं बद्धः सर्वसिद्धिं ददाति पाणिकच्छपः ॥ १२ ॥

---

१. नमित्यपि । २. त्रिभागं । ३. पुनः क्षिपेत् ।
४. आसनं । ५. समारभेत् । ६. तर्जन्या ।
७. कनिष्ठया । ८. तर्जन्या । ९. वामांगुष्ठेन योजयेत् ।
१० कूर्मपृष्ठसमं कुर्याद् दक्षिणस्य च हस्ततः ।

कुर्यात् तद्धृदयासन्नं[11] निमील्य नयनद्वयम् ।
समं कायशिरोग्रीवं कृत्वा स्थिरमना बुधः ॥ १३ ॥
ध्यानं समारभेद् देव्या दाहप्लवनपूर्वकम् ।
अग्निं वायौ विनिक्षिप्य वायुं तोये जलं हृदि ॥ १४ ॥
हृदयं निश्चले दत्त्वा[12] आकाशे निक्षिपेत्स्वनम् ।
ॐ हूँ फडिति मन्त्रेण भित्त्वा रन्ध्रं तु मस्तके ॥ १५ ॥
शब्देन सहितं जीवमाकाशे स्थापयेत् ततः ।
वाय्वग्नियमशक्राणां बीजेन वरुणस्य च ॥ १६ ॥
परास्थानपराश्चैतैः सार्धचन्द्रैः सबिन्दुकैः ।
शोषं दाहं तथोच्छादं पीयूपासेवनं परम् ॥ १७ ॥
यथाक्रमेण कर्तव्यं चिंतामात्रं विशुद्धये ।
ततस्तु देवीबीजेन अणुं जांबूनदाकृतिम् ॥ १८ ॥
तत्रासाद्य द्विधा कुर्यात् ॐम् ह्रीं श्रीमिति मन्त्रकाः ।
तदूर्ध्वभागेषु हृद्लोकं स्वर्गं च खं तथा ॥ १९ ॥
निष्पाद्य शेषभागेन भुवं पातालवारिणि ।
चिन्तयेत्तत्र सर्वाणि सप्तद्वीपां च मेदिनीम् ॥ २० ॥
तत्तेषु सागरांस्तांस्तु स्वर्णद्वीपं विचिन्तयेत् ।
तन्मध्ये रत्नपर्यंकं रत्नमण्डपसंस्थितम् ॥ २१ ॥
आकाशगङ्गातोयोघैः सदैव सेवितं शुभम् ।
तत्पर्यंके रक्तपद्मं प्रसन्नं सर्वदाशिवम् ॥ २२ ॥
चिन्तयेत् स्वर्णमानांकं सप्तपातालनालकम् ।
आब्रह्मभुवनस्पर्शि सुवर्णाचलकर्णिकम् ॥ २३ ॥
तत्रस्थितां महामायां ध्यायेदेकाग्रमानसः ।
शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलम्बिनीं ॥ २४ ॥
चलत्काञ्चनमारुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ।
सुवर्णरत्नसम्पन्न - किरीटद्वयधारिणीम् ॥ २५ ॥
शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् ।
सन्ध्याचन्द्रसमप्रख्य-कपोलां लोललोचनाम् ॥ २६ ॥
विपक्कदाडिमीबीजदन्तान् सुभ्रूयोगोज्ज्वलाम् ।
बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम् ॥ २७ ॥
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ २८ ॥

---

११. सन्ने । १२. कृत्वा । स्वकं ।

दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशत्परेण सिद्धसूत्रकम्।
बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभीतिं वरदायिनीम् ॥ २९ ॥
निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम्।
आनमन्नागपाशोरूं गुप्तगुल्फां सुपार्ष्णिकाम् ॥ ३० ॥
बद्धपर्यङ्कसंकल्पां निवीरासनराजिताम्।
गात्रेण रत्नसंस्तम्भं सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥ ३१ ॥
किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः।
पञ्चाननां पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं सुवाहनाम् ॥ ३२ ॥
मुक्तावली - स्वर्णरत्नहारकङ्कणादिभिः।
सर्वैरलङ्कारगणैरुज्ज्वलां सस्मिताननाम् ॥ ३३ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशां सर्वलक्षणसंयुताम्।
नवयौवनसम्पन्नां तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ ३४ ॥
ईदृशीमम्बिकां ध्यात्वा नमः फडिति मस्तके।
स्वकीये प्रथमं दद्यात् सोऽहमेव विचिन्त्य च ॥ ३५ ॥
अङ्गन्यासकरन्यासौ ततः कुर्यात् क्रमेण च।
एभिर्मन्त्रैः स्वरैः सह सुमीसूमैः क्रमान्वितैः ॥ ३६ ॥
ओम् क्षौम् चैते सप्रणवां रक्तवर्णां मनोहराम्।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमन्त्रसंवेष्टनं फट् ॥ ३७ ॥
प्रान्तेन कुर्याद् विन्यासं पूर्वं करतलद्वये।
हृच्छिरःशिखाकवचनेत्रेषु क्रमतो न्यसेत् ॥ ३८ ॥
ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे।
बाह्वोर्गुह्ये पादयोश्च जङ्घयोर्जघने क्रमात् ॥ ३९ ॥
विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओंकारं च तथा स्मरन्।
एभिः प्रकारैरतिशुद्धदेहः पूजां सदैवार्हति नान्यथा हि।
शरीरशुद्धिं मनसो निवेशं भूतप्रसारं कुरुते नृणां तत् ॥ ४० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

भगवानुवाच

ततोऽर्घपात्रे तन्मंत्रमष्टधाकृत्य संजपेत् ।
तेन तोयानि पुष्पाणि स्वं मंडलमथासनम् ॥ १ ॥
आशोधयेत् ततः पश्चात् पूजोपकरणं समम् ।
ॐ ऐं ह्रीं ह्रौमिति मन्त्रेण शब्दप्रांशुविवर्जितम् ॥ २ ॥
द्वारपालं ततो देव्या आसनानि च पूजयेत् ॥
नन्दिभृङ्गिमहाकालगणेशा द्वारपालकाः ।
उत्तरादिक्रमात् पूज्या आसनानि च[13] मध्यतः ॥ ३ ॥
आधारशक्तिप्रभृति हेमाद्यन्तान्[14] प्रपूजयेत् ।
प्रसिद्धान् सर्वतन्त्रेषु पूजाकल्पेषु भैरव ॥ ४ ॥
दशदिक्पालसहितान् धर्माधर्मादिकांस्तथा ।
मण्डलाग्न्यादिकोणेषु पूजयेत् पार्श्वदेशतः ॥ ५ ॥
सूर्याग्निसोममरुतां मण्डलानि च पञ्चकम् ।
रजस्तथा तमः सत्त्वं योगपीठं गुरोः पदम् ॥ ६ ॥
सारादीन् भद्रपीठान्तान् सांगोपांगान् प्रपूजयेत् ।
ब्रह्माण्डं स्वर्णडिम्बं[15] च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ७ ॥
ससागरान् सप्तद्वीपान्[16] स्वर्णद्वीपं समण्डपम् ।
रत्नपद्मं सपर्यङ्कं रत्नस्तम्भं तथैव च ॥ ८ ॥
पंचाननं मण्डलस्य मध्येऽवश्यं प्रपूजयेत् ।
ह्रीं मन्त्रेण ततः कूर्मपृष्ठं पाण्योर्निबध्य च ॥ ९ ॥
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीमासाद्यासनमुत्तमम् ।
हृन्मध्ये चिन्तयेत् स्वर्णद्वीपं पर्यङ्कसंभृतम्[17] ॥ १० ॥
पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा स्मरेत् ।
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये मानसैरुपचारकैः ॥ ११ ॥
षोडशानां[18] प्रकारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम् ।
ततस्तु वायुबीजेन दक्षिणे च पुटेन च ॥ १२ ॥
नासिकाया विनिःसार्य क्रीं मन्त्रेण च भैरव ।

---

१३. तु । १४. हेमाद्यन्तां । १५. द्वीपं च । १६. सागरान् सप्तद्वीपांस्तु ।
१७. संहितम् । १८. अयंशानां ।

स्थापयेत् पद्ममध्ये तु तद्धस्तं न वियोजयेत् ॥ १३ ॥
कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्माच्च भैरव ।
गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकैर्नाप्यते फलम् ॥ १४ ॥
आवाहनं ततः कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह[19] ।
महामायायै विद्महे त्वां चण्डिकाख्यां धीमहि[20] ॥ १५ ॥
एतदुक्त्वा[21] ततः पश्चाद् धियो यो नः प्रचोदयात् ।
स्नानीयं देवि ते तुभ्यं ॐ ह्रीं श्रीं नम इत्यतः[22] ॥ १६ ॥
स्नानीयं च ततो देव्यै दद्याल्लक्षणलक्षितम् ।
ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पं सदीपकम् ॥ १७ ॥
धूपादिकं प्रदद्यात् तु[23] मोदकं पायसं तथा ।
सितां गुडं दधि-क्षीरं सर्पिर्नानाविधैः फलैः ॥ १८ ॥
रक्तपुष्पं पुष्पमालां सुवर्णरजतादिकम् ।
नैवेद्यमुत्तमं देव्या लाङ्गलं मोदकं सिताम् ॥ १९ ॥
शाण्डिल्यकरताम्राख्य-कूष्माण्डानां फलानि च ।
हरीतकीफलं चापि नागरङ्गकमेलकाम्[24] ॥ २० ॥
बालप्रियं च यद् द्रव्यं कसेरुकबिसादिकम् ।
तोयं च नारिकेलस्य देव्यै देयं[25] प्रयत्नतः ॥ २१ ॥
रक्तं कौशेयवस्त्रं च देयं नीलं कदापि न ।
देव्याः प्रियाणि पुष्पाणि बकुलं केशरं तथा ॥ २२ ॥
माध्यं कह्लारवज्राणि[26] करवीरकुरुण्टकान् ।
अर्कपुष्पं शाल्मलकं दूर्वाङ्कुरं सुकोमलम्[27] ॥ २३ ॥
कुशमञ्जरिका दर्भा[28] बन्धूककमले तथा ।
मालूरपत्रं पुष्पं च त्रिसन्ध्यारक्तपर्णके ॥ २४ ॥
सुमनांसि प्रियाण्येतान्यम्बिकायाश्च भैरव ।
बन्धूकं बकुलं माध्यं बिल्वपत्राणि सन्ध्यकम् ॥ २५ ॥
उत्तमं सर्वपुष्पेषु द्रव्ये पायसमोदकौ ।
माल्यं बन्धूकपुष्पस्य शिवायै बकुलस्य वा ॥ २६ ॥
करवीरस्य माध्यस्य सहस्राणां ददाति यः ।
स कामान् प्राप्य चाभीष्टान् मम लोके प्रमोदते ॥ २७ ॥

---

१९. शिवया शिवम् । २०. महामाये विद्महे त्वां चण्डिकायै स्वधीमहि ।
२१. एवमुक्त्वा । २२. इत्युत । २३. धूपादिकं च दद्यात्तु ।
२४. नागरंगकहैमनाः । २५. दद्यात् । २६. ···मन्दारवज्राणि ।
२७. पूर्वांकुरसुकोमलां । २८. ···गर्भा ।

चन्दनं शीतलं[२९] चैव कालीयकसमन्वितम्।
अनुलेपनमुख्यं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः॥ २८॥
कर्पूरं कुङ्कुमं कूर्चं मृगनाभिं सुगन्धिकम्[३०]।
कालीयकं सुगन्धेषु देव्याः प्रीतिकरं परम्॥ २९॥
यक्षधूपः प्रतीवाहः पिण्डधूपः सगोलकः[३१]।
अगुरुः सिन्धुवारश्च धूपाः प्रीतिकरा मताः॥ ३०॥
अंगरागेषु सिन्दूरं देव्याः प्रीतिकरं परम्।
सुगन्धि शालिजं चान्नं मधुमांससमन्वितम्॥ ३१॥
अपूपं पायसं क्षीरमन्नं देव्याः प्रशस्यते।
रत्नोदकं सकर्पूरं पिण्डीतककुमारकौ[३२]॥ ३२॥
रोचनं पुष्पकं देव्याः स्नानीयं परिकीर्तितम्।
घृतप्रदीपो दीपेषु प्रशस्तः परिकीर्तितः॥ ३३॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्याद् मूलमन्त्रेण शोभनम्।
दत्त्वोपचारानखिलान्मध्ये चैताः प्रपूजयेत्॥ ३४॥
कामेश्वरीं गुप्तदुर्गां विन्ध्यकन्दरवासिनीम्।
कोटेश्वरीं दीर्घिकाख्यां प्रकटीं भुवनेश्वरीम्[३३]॥ ३५॥
आकाशगंगां कामाख्यां यदा दिक्करवासिनीम्[३४]।
मातङ्गीं ललितां दुर्गां भैरवीं सिद्धिदां तथा॥ ३६॥
बलप्रमथिनीं चण्डीं चण्डोग्रां चण्डनायिकाम्।
उग्रां[३५] भीमां शिवां शान्तां जयन्तीं कालिकां तथा॥ ३७॥
मङ्गलां भद्रकालीं च शिवां धात्रीं कपालिनीम्[३६]।
स्वाहां स्वधामपर्णां च पंचपुष्करिणीं तथा॥ ३८॥
दमनीं[३७] सर्वभूतानां मनःप्रोत्साहकारिणीम्[३८]।
दमनीं सर्वभूतानां चतुःषष्टिं च योगिनीः॥ ३९॥
एताः सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणांगानि पूजयेत्।
हृच्छिरस्तु [३९]शिखावर्मनेत्रबाहुपदानि च॥ ४०॥
मूलमन्त्राद्यक्षरैस्तु त्रिभिराद्यङ्गपूजनम्।
एकैकं वर्द्धयेत् पश्चान्मन्त्राण्यंगौघपूजने॥ ४१॥

---

२९. कुचंदनं श्रितं चैव। ३०. मृगनाभिसमन्वितं।
३१. सुगोलकः। ३२. पिण्डीलककुमारकौ।
३३. कोटीश्वरीं दीर्घिकाख्यां तथा दिक्करवासिनीम्।
३४. मुद्रितपुस्तके अधिकम्। ३५. उमां।
३६. कपालिकाम्। ३७. मदनीं।
३८. प्रोन्मादकारिणीम्। ३९. शिखाकवच।

सिद्धसूत्रं च खड्गं च खड्गमन्त्रेण पूजयेत् ।
ततोऽष्टपत्रमध्ये[40] तु पूजयेदष्टयोगिनीः ॥ ४२ ॥
शैलपुत्रीं चण्डघण्टां स्कन्दमातरमेव च ।
कालरात्रिं च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ॥ ४३ ॥
चण्डिकामथ कूष्माण्डीं तथा कात्यायनीं शुभाम् ।
महागौरीं चाग्निकोणे नैऋत्यादिषु पूजयेत् ॥ ४४ ॥
महामायां क्षमस्वेति[41] मूलमन्त्रेण चाष्टधा ।
पूजयेत् पद्ममध्ये तु बलिदानं ततः परम् ॥ ४५ ॥

एवं यदा कल्पविधानमानैः
सम्पूज्यते भैरव कामदेवी ।
तदा स्वयं मण्डलमेत्य देवं
गृह्णाति कामं च ददाति सम्यक् ॥ ४६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टादशपटलोद्धारे महामायाकल्पश्चतुःपंचाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

---

४०. पत्रैरब्जस्य । ४१. नमामीति ।

पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

बलिदानं ततः पश्चात् कुर्याद् देव्याः प्रमोदकम्[४०] ।
मोदकैर्गजवक्त्रं च हविषा तोषयेद्रविम्[४१] ॥ १ ॥
तौर्यत्रिकैश्च नियमैः शंकरं तोषयेद्धरिम्[४२] ।
चण्डिकां बलिदानेन तोषयेत् साधकः सदा ॥ २ ॥
पक्षिणः कच्छपा ग्राहाश्छागलाश्च[४३] वराहकाः ।
महिषो गोधिकाशोषा तथा[४४] नवविधा मृगाः ॥ ३ ॥
चामरः कृष्णसारश्च शशः पंचाननस्तथा ।
मत्स्याः स्वगात्ररुधिरैश्चाष्टधा बलयो मताः[४५] ॥ ४ ॥
अभावे च तथैवैषां कदाचिद्धयहस्तिनौ ।
छागलाः शरभाश्चैव नरश्चैव[४६] यथाक्रमात् ॥ ५ ॥
बलिर्महाबलिरिति बलयः परिकीर्तिताः ।
स्नापयित्वा बलिं तत्र पुष्पचन्दनधूपकैः[४७] ॥ ६ ॥
पूजयेत् साधको देवीं बलिमन्त्रैर्मुहुर्मुहुः ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ॥ ७ ॥
निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
वरस्त्वं[४८] बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ॥ ८ ॥
प्रणमामि ततः[४९] सर्वरूपिणं[५०] बलरूपिणम् ।
चण्डिका प्रीतिदानेन[५१] दातुरापद्विनाशनः[५२] ॥ ९ ॥
वैष्णवीबलिरूपाय बले तुभ्यं नमो नमः[५३] ।
यज्ञार्थे पशवः[५४] सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १० ॥
अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ।
ओं ऐं ह्रीं श्रीं इतिमन्त्रेण तं बलिं कामरूपिणम्[५५] ॥ ११ ॥
चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्ध्नि तस्य च भैरव ।

---

४०. प्रमोदनम् । ४१. तोषयेद्धरिम् । ४२. हरम् ।
४३. वराहैश्च गणैस्तथा । ४४. गोधिका चासस्तथा ।
४५. गात्ररुधिरं चाष्टका बलयो मताः । ४६. नव चैव । ४७. वन्दनैः ।
४८. नरस्त्वं । ४९. सदा । ५०. भक्त्या ।
५१. प्रीतिरूपेण । ५२. विनाशिने । ५३. नमोऽस्तु ते ।
५४. बलयः । ५५. मम रूपिणम् ।

ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ॥ १२ ॥
अभिषिच्य बलिं पश्चात्[५६] करवालं प्रपूजयेत् ।
रसना त्वं चण्डिकायां[५७] सुरलोकप्रसाधक[५८] ॥ १३ ॥
ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं प्रपूजयेत् ।
कृष्णं पिनाकपाणिं च कालरात्रिस्वरूपिणम् ॥ १४ ॥
उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
रक्ताम्बरधरं चैकं पाशहस्तं कुटुम्बिनम् ॥ १५ ॥
पीयमानं च रुधिरं भुञ्जानं[५९] क्रव्यसंहतिम्[६०] ।
असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥ १६ ॥
श्रीगर्वो[६१] विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ।
पूजयित्वा ततः खड्गं ॐ आं ह्रीं फडितिमन्त्रकैः ॥ १७ ॥
गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद् बलिमुत्तमम् ।
ततो बलीनां रुधिरं तोयसैन्धवसत्फलैः ॥ १८ ॥
मधुभिर्गन्धपुष्पैश्च अधिवास्य प्रयत्नतः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकीति रुधिरं दापयामि ते[६२] ॥ १९ ॥
स्थाने नियोजयेद्रक्तं[६३] शिरश्च सप्रदीपकम् ।
एवं दत्त्वा बलिं पूर्णं फलं प्राप्नोति साधकः ॥ २० ॥
हीनं स्याद्धीनतामूलं निष्फलं स्याद् विपर्ययात् ।
बलिदाने तु दुर्गाया अन्यत्रापि विधिः सदा ॥ २१ ॥
अयमेव प्रयोक्तव्यः सद्भिर्वेतालभैरवौ ।
जपं समारभेत् पश्चात् पूर्ववद्ध्यानमास्थितः[६४] ॥ २२ ॥
हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।
चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णादिकं भवेत् ॥ २३ ॥
मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा [६५]सितवर्णं हिरण्मयम् ।
महामायां च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः ॥ २४ ॥
आचक्षेत[६६] ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ।
देव्याश्चाप्येकतां ध्यात्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः ॥ २५ ॥
तत्त्वस्वरूपमेकं तु षट्चक्रं प्रति लम्बयेत् ।
षट्चक्रेऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ॥ २६ ॥
लम्बयेन्मूलमात्रेण वादिषोडशचक्रकम् ।

---

५६. दद्यात् । ५७. चण्डिकायाः । ५८. सुरभोगप्रसाधकः ।
५९. भुञ्जन्तं । ६०. क्रव्यसंहतिम् । ६१. श्रीगर्भो विजयः ।
६२. रुधिराध्यायितामिते । ६३. स्वस्थाने भोजयेद्रक्तं ।
६४. ध्यानतत्परः । ६५. पीत । ६६. आज्ञाचक्रे ।

आदिषोडशचक्रस्थां साधकानन्दकारिणीम् ॥ २७ ॥
चिन्तयन्[६७] साधको देवीं जपकर्म समारभेत् ।
भ्रुवोरुपरि नाडीनां त्रयाणां प्रान्त उच्यते ॥ २८ ॥
तत्प्रान्तं त्रिपथस्थानं षट्कोणं चतुरङ्गुलम् ।
रक्तवर्णं[६८] तु योगज्ञैराज्ञाचक्रमितीर्यते ॥ २९ ॥
कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम् ।
सुषुम्नेडापिङ्गलानां षट्कोणं तत्षडङ्गुलम् ॥ ३० ॥
तत् षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम्[६९] ।
त्रयाणामथ नाडीनां हृदये चैकता भवेत् ॥ ३१ ॥
तत्स्थानं षोडशारं[७०] स्यात् सप्ताङ्गुलप्रमाणतः ।
तत्प्रयुक्तं[७१] तु योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम् ॥ ३२ ॥
ध्यानानामथ मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च ।
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादीति गद्यते ॥ ३३ ॥
जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युदय यत्नतः ।
निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा ॥ ३४ ॥
ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ ३५ ॥
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद्[७२] दक्षिणे करे ।
मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वाथ तर्जनीम् ॥ ३६ ॥
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युताया नम्रभागतः ।
स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ॥ ३७ ॥
प्रत्येकं बीजमादाय जप्यादर्धेन[७३] भैरव ।
प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठं च चालयेत्[७४] ॥ ३८ ॥
मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्नहि परस्परम् ।
पूर्वजापप्रयुक्तेन नैवांगुष्ठेन[७५] भैरव ॥ ३९ ॥
पूर्वबीजं जपन् यस्तु परबीजं च संस्पृशेत् ।
अंगुष्ठेन भवेत् तस्य निष्फलस्तस्य[७६] तज्जपः ॥ ४० ॥
मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ।
देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद् वामेन न स्पृशेत् ॥ ४१ ॥

---

६७. चिन्तयेत् । ६८. रक्तचन्दनं । ६९. मध्यतः ।
७०. षोडशास्रं । ७१. तत् पीतयुक्तं । ७२. गृहीत्वा ।
७३. जप्यं कुर्यात्तु । ७४. न चालयेत् ।
७५. पूर्वजापप्रयुक्तेनैवांगुष्ठाग्रेण । ७६. निष्फलं तस्य ।

स्फटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रञ्जीवसमुद्भवैः ।
सुवर्णमणिभिः सम्यक् प्रवालैरथवाब्जजैः[७७] ॥ ४२ ॥
अक्षमाला तु कर्तव्या देवीप्रीतिकरी परा ।
जपेदुपांशु सततं कुशग्रन्थ्याथ पाणिना ॥ ४३ ॥
मालाबीजेषु सर्वेषु रुद्राक्षो मत्प्रियाप्रियः[७८] ।
रुद्रप्रीतिकरी यस्मात् तेन रुद्राक्षरोचनी ॥ ४४ ॥
प्रवालैरथवा कुर्यादष्टाविंशतिबीजकैः ।
पंचपंचाशता वापि न न्यूनैरधिकैश्च[७९] वा ॥ ४५ ॥
रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षैः स्फटिकैस्तथा ।
नान्यं मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रञ्जीवादिकं च यत् ॥ ४६ ॥
यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालायां जपकर्मणि ।
तस्य कामं च मोक्षं च ददाति न प्रियंकरी ॥ ४७ ॥
मिश्रीभावं ततो याति चाण्डालैः पापकर्मभिः ।
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ४८ ॥
एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थूलसम्भवः ।
आद्यं स्थूलं ततस्तस्माद् न्यूनं न्यूनतरं तथा ॥ ४९ ॥
विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा हि सा यतः ।
ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् प्रतिबीजं यथास्थितम् ॥ ५० ॥
अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्जुसमन्वितम् ।
द्विरावृत्याथ[८०] मध्येन चार्धवृत्यान्तदेशतः[८१] ॥ ५१ ॥
ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्तः स ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञकः ।
आत्मना[८२] योजयेन्मालां नामन्त्रो योजयेन्नरः[८३] ॥ ५२ ॥
दृढं सूत्रं नियुञ्जीत जपे त्रुट्यति नो यथा ।
यथा हस्तान्न च्यवेत जपतः स्रक् तमाचरेत् ॥ ५३ ॥
हस्तच्युतायां विघ्नं स्याच्छिन्नायां मरणं भवेत् ।
एवं यः कुरुते मालां जपं च जपकोविदः[८४] ॥ ५४ ॥
स प्राप्नोतीप्सितं कामं हीने स्यात् तु विपर्ययः ।
अन्यत्रापि जपेन्मालां जप्यं देवमनोहरम् ॥ ५५ ॥
तादृशः साधकः कुर्यान्नान्यथा तु कदाचन ।
यथाशक्ति जपं कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नतः ॥ ५६ ॥

---

७७ ···बजकैः । ७८. सप्रियाप्रियं । ७९. न न्यूनैर्नाधिकैः ।
८०. त्रिरावर्त्य । ८१. सार्द्धवर्त्यान्तदेशतः । ८२. नामेना ।
८३. ···बुधः । ८४. मयकोदितं ।

असंख्यातं च यज्जप्तं तस्य तन्निष्फलं भवेत् ।
जप्त्वा मालां शिरोदेशे प्रांशुस्थानेऽथ वा न्यसेत् ॥ ५७ ॥
स्तुतिपाठं ततः कुर्यादिष्टं कामं निवेद्य च ।
स्तुतिश्चापि महामन्त्रं[८५] साधनं सर्वकर्मणाम् ॥ ५८ ॥
वक्ष्ये युवां महाभागौ सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥ ५९ ॥
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि[८६] नारायणि नमोऽस्तु ते ।
सप्तधावर्तनं कृत्वा स्तुतिमेनां च साधकः ॥ ६० ॥
पञ्चप्रणामान् कृत्वाथ ऐं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रकैः ।
अन्येषां पुरतश्चैव अधिकं वा यथेच्छया ॥ ६१ ॥
योनिमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।
द्वौ पाणी प्रसृतीकृत्य कृत्वा चोत्तानमञ्जलिम् ॥ ६२ ॥
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वयोस्ततः ।
अनामिकायां वामस्य तत्कनिष्ठां पुरो न्यसेत्[८७] ॥ ६३ ॥
दक्षिणस्यानामिकायां कनिष्ठां दक्षिणस्य च ।
अनामिकायाः पृष्ठे तु मध्यमे द्वे निवेशयेत् ॥ ६४ ॥
द्वे तर्जन्यौ कनिष्ठाग्रे तदग्रेणैव योजयेत् ।
योनिमुद्रा समाख्याता देव्याः प्रीतिकरी मता ॥ ६५ ॥
त्रिवारं दर्शयेत् तां तु[८८] मूलमन्त्रेण साधकः ।
तां मुद्रां शिरसि न्यस्य मण्डलं विन्यसेत् ततः ॥ ६६ ॥
ऐशान्यामग्रहस्तेन द्वारपद्मविवर्जितम् ।
तत्र नत्वा रक्तचण्डां ह्रीं श्रीं मन्त्रेण साधकः ॥ ६७ ॥
रक्तचण्डायै नम इति निर्माल्यं तत्र निक्षिपेत्[८९] ।
उदके तरुमूले वा निर्माल्यं तत्र संत्यजेत् ॥ ६८ ॥
एवं यः पूजयेद् देवीं विधानेन शिवां नरः ।
सोऽचिरेण लभेत्कामान् सर्वानेव मनोगतान् ॥ ६९ ॥
अर्धलक्षजपं जप्त्वा प्रथमं चैव साधकः[९०] ।
पुरश्चरेद् विशेषेण नानानैवेद्यवेदनैः ॥ ७० ॥
कुण्डं मण्डलवत् कृत्वा[९१] चाष्टम्यां समुपोषितः ।
नवम्यां शुक्लपक्षस्य रजोभिः पञ्चभिर्नरः[९२] ॥ ७१ ॥

---

८५. मन्त्रः । ८६. देवि । ८७. प्रयोजयेत् ।
८८. अग्रे । ८९. विन्यसेत् । ९०. चिरसाधकः ।
९१. कुर्यात् । ९२. पञ्चवर्णकैः ।

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा गुरुपित्रोश्च सन्निधौ।
अनेनैव विधानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ॥ ७२ ॥
सहितैर्बिल्वपत्रैश्च अष्टोत्तरशतत्रयम्।
तिलैर्होमं चरेत् तस्यां सहस्रत्रितयं जपेत् ॥ ७३ ॥
नैवेद्यं गन्धपुष्पे च वस्त्रं दद्याच्च यत्प्रियम्[93]।
पूर्वोक्तं चान्यदप्यस्यै प्रदद्यात् पायसं तथा ॥ ७४ ॥
पूजावसाने देयं स्यात् तज्जातीयं बलित्रयम्।
सिन्दूरं स्वर्णरत्नानि[94] यद्‌यत्[95] स्त्रीणां विभूषणम् ॥ ७७ ॥
निवेदयेद् यथाशक्त्या पुष्पमाल्यं च भूरिशः।
महाशक्तुं सशाल्यन्नं गव्यव्यञ्जनसंयुतम्[93] ॥ ७६ ॥
देव्यै नवम्यां सम्पूर्णं बलिं दद्याद् घृतादिभिः।
दक्षिणां गुरवे दद्यात् सुवर्णं गां तथा तिलम् ॥ ७७ ॥
अभिशप्तमपुत्रं च सावद्यं कितवं तथा।
क्रियाहीनमकल्पज्ञं वामनं गुरुनिन्दकम् ॥ ७८ ॥
सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं मन्त्रेषु वर्जयेत्।
गुरुर्मन्त्रस्य मूलं स्यान्मूलशुद्धौ तदुद्गतम् ॥ ७६ ॥
सफलं जायते यस्मान्मन्त्रं यत्नात्परीक्षयेत्।
शाठ्यात् क्रोधात्तु मोहाद्वा नासन्मत्या[96] गुरोर्मुखात् ॥ ८० ॥
कल्पेषु दृष्ट्वा वा मन्त्रं गृह्णीयाच्छद्मनाऽथ वा।
स मन्त्रस्तेय[97] पापेन तामिस्रे नरके नरः ॥ ८१ ॥
मन्वन्तरत्रयं स्थित्वा पापयोनिषु जायते।
शठे क्रूरे च मूर्खे च छद्मकारिण्यभक्तिके ॥ ८२ ॥
मन्त्रं न दूषिते दद्यात्[98] सुबीजं विपिने[99] तथा[100]।
लक्षेण साधयेत् कामं पुरश्चरणपूर्वकम् ॥ ८३ ॥
पापक्षयो भवेद् यस्मात् पुरश्चरणकर्मणा।
लक्षद्वयेन मन्त्रस्य जपेन नरसत्तमौ ॥ ८४ ॥
त्रिसन्ध्यासु प्रतिदिनं बीजसंघातकेन च।
कविर्वाग्मी पण्डितश्च यशस्वी च प्रजायते ॥ ८५ ॥
साधकः साधकश्रेष्ठ पूजास्थानं ततः शृणु।
यत्र यत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते च यः[1] ॥ ८६ ॥

---

९३. मत्प्रियम्। ९४. रत्नादि। ९५. यतः। ९६. न संप्राप्तो।
९७. ब्रह्मस्तेय। ९८. देयं। ९९ इरिणे।
१००. यथा। १. यत्।

तस्याद्त्ते स्वयं देवी पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शिला प्रशस्ता पूजायां स्थण्डिलं निर्जनं तथा ॥ ८७ ॥
जपश्चोपांशु सर्वेषामुत्तमः परिकीर्तितः ।
अशुचिर्न महामायां पूजयेत् तु कदाचन ॥ ८८ ॥
अवश्यं तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो नरः ।
दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणं च न विद्यते ॥ ८९ ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं व्रजेत् ।
जानूर्ध्वे क्षतजे जाते नित्यं कर्म न चाचरेत् ॥ ९० ॥
नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ।
सूतके च समुत्पन्ने क्षुरकर्मणि मैथुने ॥ ९१ ॥
धूमोद्‌गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि संत्यजेत् ।
द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च न वै भुक्त्वा च किञ्चन ॥ ९२ ॥
कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ।
पत्रं पुष्पं च ताम्बूलं भेषजत्वेन कल्पितम् ॥ ९२ ॥
कणादिपिप्पल्यन्तं च फलं भुक्त्वा न चाचरेत् ।
जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद् भेषजादृते ॥ ९४ ॥
नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकैः सदा ।
जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम् ॥ ९४ ॥
कामाद्धस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत् ।
विशेषतः शिवापूजां प्रमीतपितृको नरः[2] ॥ ९६ ॥
यावद् वत्सरपर्यन्तं मनसापि न [3]चाचरेत् ।
महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् ॥ ९७ ॥
आर्त्विज्यं ब्रह्मयज्ञं[4] च श्राद्धं देवयजं च यत् ।
गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना ॥ ९८ ॥
न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरव ।
आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्नतु[5] ॥ ९९ ॥
ऊषरे कृमिसंयुक्ते स्थाने मृष्टेऽपि नार्चयेत् ।
नीचैरासनमासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ॥ १०० ॥
अर्चयेच्चण्डिकां देवीं देवमन्यं च भैरव ।
दिग्विभागे तु कौवेरीदिक्छिवा प्रीतिदायिनी[6] ॥ १०१ ॥

---

२. द्विजः । ३. संस्मरेत् । ४. ब्रह्मचर्यः ।
५. भग्नशांखं न चादयेत् । ६. दिक् शिवाप्रीतिकारिणी ।

तस्मात् तन्मुख आसीनः पूजयेच्चण्डिकां सदा ।
पुष्पं च कृमिसंमिश्रं विशीर्णं भग्नमृद्गते ॥ १०२ ॥
सकेशं मूषिकोद्धूतं यत्नेन परिवर्जयेत् ।
याचितं परकीयं च तथा पर्युषितं च यत् ।
अन्त्यसृष्टं पदा स्पृष्टं यत्नेन परिवर्जयेत् ॥ १०३ ॥
इदं शिवायाः परमं मनोहरं
करोति योऽनेन तदीयपूजनम् ।
स वाञ्छितार्थं समवाप्य चण्डिका-
गृहं प्रयाता नचिरेण भैरव ॥ १०४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे औरर्वसगरसंवादे महामायाकल्पः पंचपंचाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अस्य[7] मन्त्रस्य कवचं शृणु वेतालभैरव।
वैष्णवीतन्त्रसंज्ञस्य वैष्णव्याश्च विशेषतः ॥ १ ॥
तत्र मन्त्राद्यक्षरं तु वासुदेवस्वरूपधृक्।
वर्णो द्वितीयो ब्रह्मैव तृतीयश्चन्द्रशेखरः ॥ २ ॥
चतुर्थो गजवक्त्रश्च पञ्चमस्तु दिवाकरः।
शक्तिः स्वयं पकारश्च महामाया जगन्मयी ॥ ३ ॥
यकारस्तु महालक्ष्मीः शेषवर्णः सरस्वती।
योगिनीपूर्ववर्णस्य शैलपुत्री प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
द्वितीयस्य तु वर्णस्य चण्डिका योगिनी मता।
चन्द्रघण्टा तृतीयस्य कुष्माण्डी तत् परस्य च ॥ ५ ॥
स्कन्दमाता तकारस्य पश्य कात्यायनी स्वयम्।
कालरात्रिः सप्तमस्य महादेवीति संस्थिता ॥ ६ ॥
प्रथमं वर्णकवचं योगिनीकवचं तथा[8]।
देवौघकवचं पश्चाद् देवीदिक्कवचं तथा ॥ ७ ॥
ततस्तु पार्श्वकवचं द्वितीयान्ताव्ययस्य[9] च।
कवचं तु ततः पश्चात् षड्वर्णं कवचं तथा ॥ ८ ॥
अभेद्यकवचं चेति सर्वत्राणपरायणम्।
इमानि कवचान्यष्टौ यो जानाति नरोत्तमः ॥ ९ ॥
सोऽहमेव महादेवी[10] देवीरूपश्च शक्तिमान्।
अस्य वैष्णवीतन्त्रकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः[11] ॥ १० ॥
कात्यायनी देवता[12] सर्वकामार्थसाधने विनियोगः।
अः पातु पूर्वकाष्ठायामाग्नेय्यां पातु कः सदा ॥ ११ ॥
पातु चो यमकाष्ठायां दो नैरृत्यां च सर्वदा।
मां पातु तोऽसौ पाश्चात्ये शक्तिर्वायव्यदिग्गता ॥ १२ ॥
यः पातु मां चोत्तरस्यामैशान्यां यस्तथावतु।
मूर्ध्नि रक्षतु मां सोऽसौ बाहौ मां दक्षिणे तु कः ॥ १३ ॥

---

७. अंगि। ८. ततः। ९. द्वितीयायान्त्वत्तरस्य तु।
१०. महादेवो। ११. ईश्वरो देवता। १२. देवी।

मां वामबाहौ चः पातु हृदि टो मां सदावतु ।
तः पातु कण्ठदेशे मां कत्र्योः[13] शक्तिस्तथावतु ॥ १४ ॥
यः पातु दक्षिणे पादे षो मां वामपादे तथा ।
शैलपुत्री तु पूर्वस्यामाग्नेय्यां पातु चण्डिका ॥ १५ ॥
चन्द्रघण्टा पातु याम्यां [14]यमभीतिविवर्धिनी ।
नैर्ऋत्ये त्वथ कूष्माण्डी पातु मां जगतां प्रसूः ॥ १६ ॥
स्कन्दमाता पश्चिमायां[15] मां रक्षतु सदैव हि ।
कात्यायनी मां वायव्ये पातु लोकेश्वरी सदा ॥ १७ ॥
कालरात्री तु कौबेर्यां सदा रक्षतु मां स्वयम् ।
महागौरी तथैशान्यां सततं पातु पावनी ॥ १८ ॥
नेत्रयोर्वासुदेवो मां पातु नित्यं सनातनः ।
ब्रह्मा मां पातु वदने पद्मयोनिरयोनिजः ॥ १९ ॥
नासाभागे रक्षतु मां सर्वदा चन्द्रशेखरः ।
गजवक्त्रः स्तनयुग्मे पातु नित्यं हरात्मजः ॥ २० ॥
वामदक्षिणपाण्योर्मां नित्यं पातु दिवाकरः ।
महामाया स्वयं नाभौ मां पातु परमेश्वरी ॥ २१ ॥
महालक्ष्मीः पातु गुह्ये जानुनोश्च सरस्वती ।
महामाया पूर्वभागे नित्यं रक्षतु मां शुभा ॥ २२ ॥
अग्निज्वाला तथाग्नेय्यां पायान्नित्यं वरासिनी ।
रुद्राणी पातु मां याम्यां नैर्ऋत्यां चण्डनायिका ॥ २३ ॥
उग्रचण्डा पश्चिमायां[16] पातु नित्यं महेश्वरी ।
प्रचण्डा पातु वायव्ये कौबेर्यां घोररूपिणी[17] ॥ २४ ॥
ईश्वरी च तथैशान्यां पातु नित्यं सनातनी ।
ऊर्ध्वं पातु महामाया पात्वधः परमेश्वरी ॥ २५ ॥
अग्रतः पातु मामुग्रा पृष्ठतो वैष्णवी तथा ।
ब्रह्माणी दक्षिणे पार्श्वे नित्यं रक्षतु शोभना ॥ २६ ॥
माहेश्वरी वामपार्श्वे नित्यं पायाद् वृषध्वजा ।
कौमारी पर्वते पातु वाराही सलिले च माम्[18] ॥ २७ ॥
नारसिंही दंष्ट्रिभये पातु मां विपिनेषु च ।
ऐन्द्री मां पातु चाकाशे तथा सर्वजले स्थले ॥ २८ ॥
सेतुः सर्वाङ्गुलीः पातु देवादिः पातु कर्णयोः ।

---

१३. कत्र्यौ । १४. या च भीति… । १५. पश्चिमस्यां ।
१६. पश्चिमस्यां । १७. घोररूपिका । १८. सलिलेऽवतु ।

देवान्तश्चिबुके पातु पार्श्वयोः शक्तिपञ्चमः ॥ २९ ॥
हा पातु मां तथैवोर्वोर्माया[19] रक्षतु जङ्घयोः ।
सर्वेन्द्रियाणि यः[20] पातु रोमकूपेषु [21]सर्वदा ॥ ३० ॥
त्वचि मां वै सदा पातु मां शम्भुः[22] पातु सर्वदा ।
नखदन्तकरोष्ठादौ राँ मां पातु सदैव हि ॥ ३१ ॥
देवादिः पातु मां वस्तौ देवान्तः स्तनकक्षयोः[23] ।
एतदादौ तु यः सेतुर्बाह्ये मां पातु देहतः ॥ ३२ ॥
आज्ञाचक्रे सुषुम्नायां षट्चक्रे हृदि सन्धिषु ।
आदिषोडशचक्रे च ललाटाकाश एव च ॥ ३३ ॥
वैष्णवी तन्त्रमन्त्रो मां नित्यं रक्षंश्च तिष्ठतु ।
[24]कर्णनाडीषु सर्वासु पार्श्वकक्षशिखासु[25] च ॥ ३४ ॥
रुधिरस्नायुमज्जासु मस्तिष्केषु च पर्वसु ।
द्वितीयाष्टाक्षरो मन्त्रः कवचं[26] पातु सर्वतः ॥ ३५ ॥
रेतो वायौ नाभिरन्ध्रे पृष्ठसन्धिषु सर्वतः ।
षडक्षरस्तृतीयोऽयं मन्त्रो मां पातु सर्वदा ॥ ३६ ॥
नासारन्ध्रे महामाया कण्ठरन्ध्रे तु वैष्णवी ।
सर्वसन्धिषु मां पातु दुर्गा दुर्गार्तिहारिणी ॥ ३७ ॥
श्रोत्रयोर्हूं फडित्येवं नित्यं रक्षतु कालिका ।
नेत्रबीजत्रयं नेत्रे सदा तिष्ठतु रक्षितुम्[27] ॥ ३८ ॥
ॐ ऐं ह्लीं ह्रौं नासिकायां रक्षन्ती चास्तु चण्डिका ।
ॐ ह्लीं[28] हूं मां सदा तारा जिह्वामूले तु[29] तिष्ठतु ॥ ४० ॥
हृदि तिष्ठतु मे सेतुर्ज्ञानं रक्षितुमुत्तमम् ।
ॐ क्ष्रौं फट् च महामाया[30] पातु मां सर्वतः सदा ॥ ४० ॥
ॐ यूँ सः प्राणान् कौशिकी मां प्राणान् रक्षतु रक्षिका ।
ह्लीं हूं सौं[31] भर्गदयिता देहशून्येषु पातु माम् ॥ ४१ ॥
ॐ नमः सदा शैलपुत्री सर्वान् रोगान् प्रमृज्यताम्[32] ।
ॐ ह्लीं सः स्फें क्षः[33] फडस्त्राय सिंहव्याघ्रभयाद्रणात् ॥ ४२ ॥
शिवदूती पातु नित्यं ह्लीं सर्वास्त्रेषु तिष्ठतु ।

---

१९. ···मींमां । २०. या । २१. यैः सदा । २२. शेषः ।
२३. स्तस्य कक्षयोः । २४. गर्भ··· । २५. ···कुक्षौ शिरासु ।
२६. कवचः । २७. रक्षितम् । २८. क्लीं । २९. मूलेषु ।
३०. महामारी । ३१. ओं श्रीं सो मां । ३२. प्रमार्जनाम् ।
३३. च्रौं चः ।

ॐ ह्रां[३४] ह्रीं सश्चण्डघण्टा कर्णच्छिद्रेषु पातु माम् ॥ ४३ ॥
ॐ क्रीं सः कामेश्वरी कामानभितिष्ठतु रक्षतु ।
ॐ आं हूं फडुग्रचण्डा रिपून् विघ्नान् विमर्दताम् ॥ ४४ ॥
[३५]ॐ अं शूलात् पातु नित्यं वैष्णवी जगदीश्वरी ।
ओं कं ब्रह्माणी पातु चक्रात् चं रुद्राणी तु शक्तितः ॥ ४५ ॥
ओं टं कौमारी पातु वज्रात् तं[३६] वाराही तु काण्डतः ।
ओं पं पातु नारसिंही मां क्रव्यादेभ्यस्तथास्रतः ॥ ४६ ॥
शस्त्रास्त्रेभ्यः समस्तेभ्यो यन्त्रेभ्योऽनिष्टमन्त्रतः ।
चण्डिका मां सदा पातु यं[३७] सं देव्यै नमो नमः ।
विश्वासघातकेभ्यो मामैन्द्री रक्षतु मन्मनः[३८] ॥ ४७ ॥
ओं नमो महामायायै ओं वैष्णव्यै नमो नमः ।
रक्ष मां सर्वभूतेभ्यः सर्वत्र परमेश्वरि ॥ ४८ ॥
आधारे वायुमार्गे हृदि कमलदले चन्द्रवत् स्मेरसूर्ये,[३९]
वस्तौ वह्नौ समिद्धे[४०] विशतु वरदया[४१] मन्त्रमष्टाक्षरन्तत् ।
यद्ब्रह्मा मूर्ध्नि धत्ते हरिरवति गले चन्द्रचूडो हृदिस्थं,
तं मां पातु प्रधानं निखिलमतिशयं पद्मगर्भाभबीजम् ॥ ४९ ॥
आद्याः शेषाः स्वरौघैर्मयवलवरैरस्वरेणापि[४२] युक्तैः
सानुस्वाराविसर्गैर्हरिहरविदितं यत्सहस्रं च साष्टम् ।
मन्त्राणां सेतुबन्धं निवसति सततं वैष्णवीतन्त्रमन्त्रे
तन्मां पायात्पवित्रं परमपरमजं[४३]भूतलव्योमभागे ॥ ५० ॥
अङ्गान्यष्टौ तथाष्टौ वसव इह तथैवाष्टमूर्तिर्दलानि[४४]
प्रोक्तान्यष्टौ तथाष्टौ मधुमतिरचिताः सिद्धयोऽष्टौ तथैव ।
अष्टावष्टाष्टसंख्या[४५] जगति रतिकलाः क्षिप्रकाष्टांगयोगा
मय्यष्टावक्षराणि क्षरतु न हि गणो यद्वृधृदो।यस्त्वमूषाम्[४६] ॥५१॥
इयि तत्कवचं प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।
इदं रहस्यं परममिदं सर्वार्थसाधकम् ॥ ५२ ॥

---

३४. ह्रीं । ३५. ॐ पं पातु नारसिंही मां क्रव्यादेभ्यस्तथास्रतः । ओं ह्रीं ह्रीं ह्रौं ह्रँ कालरात्रिः खड्गात रक्षतु मां सदा इत्यधिकः पाण्डुलिप्याम् ।
३६. ॐ । ३७. ओं सं० । ३८. सं नमः ।
३९. चन्द्रमध्ये ससूर्ये । ४०. ससन्धौ । ४१. वरद मां ।
४२. याद्या सेवासुरोघैर्नमयवनवरैर्वर्दिद्वयेनापि ।
४३. भूजल । ४४. कुलानि । ४५. काष्ठा अष्टाष्टसंख्या ।
४६. सद्घृदोयं स्त्वमूषाम् ।

यः सकृच्छ्रृणुयादेतत् कवचं मयकोदितम् ।
स सर्वाँल्लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ।। ५३ ।।
सकृद् यस्तु पठेदेतत् कवचं मयकोदितम् ।
स सर्वयज्ञस्य फलं लभते नात्र संशयः ।। ५४ ।।
संग्रामेषु जयेच्छत्रुं[47] मातङ्गानिव केशरी ।
दहेत् तृणं यथा वह्निस्तथा शत्रुं दहेत् सदा ।। ५५ ।।
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रविशन्ति वै ।
न तस्य जायते व्याधिर्न च दुःखं कदाचन ।। ५६ ।।
गुटिकाञ्जनपातालपादलेपरसाञ्जनम् ।
उच्चाटनाद्यास्ताः सर्वाः प्रसीदन्ति च सिद्धयः ।। ५७ ।।
वायोरिव मतिस्तस्य भवेदन्यैरवारिता ।
दीर्घायुः कामभोगी च धनवानभिजायते ।। ५८ ।।
अष्टम्यां संयतो भूत्वा नवम्यां विधिवच्छिवाम् ।
पूजयित्वा विधानेन विचिन्त्य मनसा शिवाम् ।। ५९ ।।
यो न्यसेत् कवचं देहे तस्य "पुण्यफलं[48] शृणु ।
जितव्याधिः शतायुश्च रूपवान् गुणवान् सदा ।। ६० ।।
धनरत्नौघसम्पूर्णो विद्यावान् स च जायते ।
नाग्निर्दहति तत्कायं नापः संक्लेदयन्ति च ।। ६१ ।।
न शोषयति तं वायुः क्रव्यात् तं[49] न हिनस्ति च ।
शस्त्राणि नैनं[50] छिन्दन्ति न तापयति भास्करः ।। ६२ ।।
न तस्य जायते विघ्नो नास्ति तस्य च संज्वरः ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसा गणनायकाः ।। ६३ ।।
सर्वे तस्य वशं यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
नित्यं पठति यो भक्त्या कवचं हरनिर्मितम् ।। ६४ ।।
सोऽहमेव महादेवो महामाया च मातृका ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च तस्य नित्यं करे स्थिताः ।। ६५ ।।
अन्यस्य वरदः सोऽर्थैर्नित्यं भवति पण्डितः ।
कवित्वं सत्यवादित्वं सततं तस्य जायते ।। ६६ ।।
वदेच्छ्लोकसहस्राणि भवेच्छ्रुतिधरस्तथा ।
लिखितं यस्य गेहे तु कवचं भैरव स्थितम् ।। ६७ ।।
न तस्य दुर्गतिः क्वापि जायते तस्य[51] दूषणम् ।
ग्रहाश्च सर्वे तुष्यन्ति वशं गच्छन्ति भूमिपाः ।। ६८ ।।

---

४७. शत्रून् । ४८. सम्यक् । ४९. क्रव्यादो । ५०. नैव । ५१. नापि ।

यद्राज्ये कवचज्ञोऽस्ति जायन्ते तत्र नेतयः।
सेतुर्देवः शक्तिबीजं पंचमोहाय ते नमः† ॥ ६६ ॥
वायुर्बलेन चैतायै द्वितीयाष्टाक्षरं त्विदम्।
सेतुर्देवोऽथ वैष्णव्यै षडक्षरमिदं स्मृतम् ॥ ७० ॥
एतद् द्वयं तु जिह्वाग्रे सततं यस्य वर्तते।
तस्य देवी महामाया काये तिष्ठति वै सदा ॥ ७१ ॥
मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत्सेतुः प्रणवः स्मृतः।
क्षरत्यनोङ्कृतः‡ पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥ ७२ ॥
नमस्कारो महामन्त्रो देव इत्युच्यते सुरैः।
द्विजातीनामयं मन्त्रः शूद्राणां सर्वकर्मणि ॥ ७३ ॥
अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयात्समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा ॥ ७४ ॥
स उदात्तो द्विजातीनां राज्ञां स्यादनुदात्तकः।
प्रचितश्चोरुजातानां मनसापि तथा स्मरेत् ॥ ७५ ॥
चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसंज्ञकः।
स चानुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते ॥ ७६ ॥
निःसेतु च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ॥ ७७ ॥
तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातयः।
पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्मसमारभेत् ॥ ७८ ॥
शूद्राणामादिसेतुर्वा द्विःसेतुर्वा यथेच्छतः।
द्विःसेतवः समाख्याताः सर्वदैव द्विजातयः ॥ ७९ ॥

और्व्य उवाच

एतत् ते सर्वमाख्यातं कवचं त्र्यम्बकोदितम्।
अभेद्यं कवचं तत् तु कवचाष्टकमुत्तमम् ॥ ८० ॥
महामायामन्त्रकल्पं कवचं मन्त्रसंयुतम्[52]।
षडक्षरसमायुक्तं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ ८१ ॥
एतत् त्वं नृपशार्दूल नित्यभक्तियुतः पठन्।
जपन् मन्त्रं च वैष्णव्याः सर्वसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ८२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे महामायामन्त्रकल्पो (कवचं) नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

---

† पंचमोहा दिवाकरः। ‡ स्रवत्यनोंकृतं। ५२. तन्त्रसंयुतम्।

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेमं सगरो राजा संवादं भैरवेण वै।
वेतालेनापि भर्गस्य पुनरौर्व्वमपृच्छत ॥ १ ॥

सगर उवाच

मन्त्रं कलेवरगतं साङ्ग[53] प्रोक्तं त्वया द्विज।
अङ्गमन्त्राणि मे देव्याः कथ्यन्तां भो द्विजोत्तम ॥ २ ॥
तथा मन्त्राणि सर्वाणि पूजास्थानानि सर्वशः।
तथैवोत्तरमन्त्राणि कवचानि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥
कामाख्यायाश्च माहात्म्यं सरहस्यं समन्त्रकम्।
यथा शशंस भगवान् महादेव उमापतिः ॥ ४ ॥
वेतालभैरवाभ्यां तत्[54] समाचक्ष्व सविस्तरात्।
श्रृण्वतो न हि मे तृप्तिर्जायते महदद्भुतम् ॥ ५ ॥
भवता कथ्यमानं हि परं कौतूहलं मम।

और्व्व उवाच

श्रृणु त्वं राजशार्दूल यत्पुत्राभ्यामुमापतिः ॥ ६ ॥
उवाच महदाख्यानं तन्मे निगदतोऽधुना।
एतद्रहस्यं परमं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ७ ॥
परं स्वस्त्ययनं पुंसां[55] गर्भे पुंसवनं स्मृतम्।
कल्याणकारकं भद्रं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ८ ॥
शठाय चलचित्ताय नास्तिकाय जितात्मने।
देवद्विजगुरूणां च मिथ्यानिर्बन्धकारिणे ॥ ९ ॥
न पापायाभिशस्ताय खञ्जकाणादिरोगिणे।
न कथ्यं न च वा देयं श्रद्धाविरहिताय च ॥ १० ॥
महामायामन्त्रकल्पं प्रोक्त्वा ताभ्यामुमापतिः।
वेतालभैरवाभ्यां तु पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ११ ॥

---

५३. सांगप्रोक्तं। ५४. यत्तत्। ५५. सर्वदेवबलं स्मृतम्।

भगवानुवाच

अङ्गमन्त्रं प्रवक्ष्यामि प्रोक्तवाँस्तन्त्रमुत्तमम्[५६]।
तदेव प्रथमं विद्धि सर्वपूजासु सङ्गतम् ॥ १२ ॥
आचान्तः शुचितां प्राप्तः सुस्नातो देवपूजने।
पूजावेद्या बहिःस्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ॥ १३ ॥
गृहे वा[५७] द्वारदेशस्थः प्रणम्य शिरसा[५८] गुरुम्।
प्रणमेदिष्टदेवं स्वं दिक्पालानपि चेतसा ॥ १४ ॥
यत् पूर्वमर्जितं पापं तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा।
प्रायश्चित्तैर्नापनुन्नं तच्च[५९] पापं स्मरेद्धिया ॥ १५ ॥
तत्पापस्यापनोदाय मन्त्रद्वयमुदीरयेत्।
देवि त्वं प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम ॥ १६ ॥
तन्निःसारय चित्तान्मे पापं हूं फट् च ते नमः।
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च वै ॥ १७ ॥
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः।
ततः पुनर्हूं फडिति पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ॥ १८ ॥
आत्मानं क्रोधदृष्ट्याथ निरीक्ष्य सुमना भवेत्।
एवं कृते प्रथमतः पापोत्सारणकर्मणि ॥ १९ ॥
यत् स्याद् दृढतरं पापं तद् दूरे चावतिष्ठते।
अतीते पूजने स्थानं स्वं प्रयाति पुनश्च यत् ॥ २० ॥
यत् स्यादल्पतरं पापं तन्नाशमुपगच्छति।
ॐ अः फडितिमन्त्रेण पूजावेदीं ततो विशेत् ॥ २१ ॥
पूजने त्यक्तपापस्य काममिष्टं क्षणाद् भवेत्।
नाराचमुद्रया दृष्ट्वा समया स प्रलोकयेत् ॥ २२ ॥
पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रीं हूँ फडिति[६०] मन्त्रकैः।
यदात्मनानवज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम् ॥ २३ ॥
अस्पृश्यस्पर्शनं वापि यदन्यायार्जितं च वा।
तथा निर्माल्यसंसृष्टं कीटाद्यारोहणं च यत् ॥ २४ ॥
तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात्।
ततो रमितिमन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत् ॥ २५ ॥
स तस्य सुभगो दीपो भवेत् स्पर्शनमात्रतः[६१]।

---

५६. सेतुमुत्तमम्। ५७. चेद्द्वार···। ५८. मनसा। ५९. तस्य।
६०. ह्रां ह्रीं हूं फट्। ६१. शुभदो दीपो निःक्रव्यादः शुभप्रदः।

पतङ्गकीटकेशादि-दाहात् क्रव्यादसंहतः[६२] ॥ २६ ॥
वसामज्जास्थिसम्पूतिर्यज्ञादावुपयोजनम्[६३] ।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं दोषं स्पर्शाद् विनाशयेत् ॥ २७ ॥
नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन संस्पृशेत् ।
पानीयं घटमध्यस्थं वीक्षन्नभ्युद्य[६४] याजकः ॥ २८ ॥
वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वे स्थितं तदा ।
पात्रमाधारमन्त्रेण संस्कुर्वन् संस्पृशेज्जलम् ॥ २९ ॥
यज्ञदानादपेयादि संसृष्टिरिह सङ्गता ।
यदन्यद् दूषणं पात्रे तोये वा ज्ञानतो भवेत् ॥ ३० ॥
जलाशयं शवस्पर्शाज्जलं स्नानाच्च सङ्गतम् ।
दूषणानि विनश्यन्ति तानि वै देवपूजने ॥ ३१ ॥
प्रजापतिसुतो ह्रान्तप्रान्तः स्वरसमन्वितः ।
चन्द्रार्धबिन्दुसहितो मन्त्रोऽयं नारसिंहकः ॥ ३२ ॥
स्वसंज्ञाद्यक्षरं बिन्दुचन्द्रार्धपरियोजितम् ।
आधारमन्त्रं जानीयात् साधकः कार्यसिद्धये ॥ ३३ ॥
तत आधारमन्त्रेण पाणिभ्यामासनं स्वकम् ।
आदाय विनिधायाशु पुनः संस्पृश्य पाणिना ॥ ३४ ॥
आत्ममन्त्रेणोपविशेत् तदा तस्मिन् वरासने ।
दुःशिल्पिरचितत्वादि यद्वान्यासनभूषणम् ॥ ३५ ॥
अज्ञातं विलयं याति उपवेशात समन्त्रकात्[६५] ।
आहूय स्वाक्षरं[६६] पूर्वं सोमसामिसमन्वितम् ॥ ३६ ॥
सबिन्दुकं विजानीयादात्ममन्त्रं तु साधकः ।
ततस्तु मातृकान्यासं नादबिन्दुसमन्वितम् ॥ ३७ ॥
कुर्यात् तु मातृकामन्त्रैः स्वशरीरे विचक्षणः ।
कल्पेषु च यदज्ञातं[६७] मन्त्रोच्चारणकर्मणि ॥ ३८ ॥
यद् दुष्टं वा तथा स्पृष्टं मात्राभ्रष्टादिदूषणम् ।
तन्न्यस्ता मातृकामन्त्रा नाशयन्ति सदैव हि ॥ ३९ ॥
व्यञ्जनानि च सर्वाणि तथा विष्ण्वादयः स्वराः ।
सर्वे ते मातृकामन्त्राश्चन्द्रबिन्दुविभूषणाः[६८] ॥ ४० ॥
सर्वं युगान्तवन्द्येषु न्यस्तेषु न्यूनपूरणम् ।

---

६२. क्रव्यादतां गतः । ६३. सम्भूतिर्मर्यादा उपभोजनम् ।
६४. वीक्ष्य शुध्यतु । ६५. समन्त्रकः । ६६. पुरुषाद्यक्षरं ।
६७. ···ज्ञानं । ६८. ···रक्तबिन्दुविभूषिताः ।

मन्त्रे कल्पे च कुर्वन्ति विन्यस्ता मातृकाः[६९] स्वयम् ॥ ४१ ॥
एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
प्लुतस्त्रिमात्रो विज्ञेयो वर्णा एते व्यवस्थिताः ॥ ४२ ॥
सर्वेषामेव वर्णानां मात्रादेव्यस्तु मातृकाः ।
शिवदूतीप्रभृतयस्तन्न्यासास्तत्तनुस्थिताः ॥ ४३ ॥
पूरयन्ति च तान् न्यूनांश्चतुर्वर्गं तथाचिरात् ।
ददत्येव सदा रक्षां कुर्वन्ति सुरपूजने ॥ ४४ ॥
चतुर्वर्गप्रदश्चायं सर्वकामफलप्रदः ।
सर्वदामातृकान्यासस्तुष्टिपुष्टिप्रदायकः ॥ ४५ ॥
यः कुर्याद् मातृकान्यासं विनापि सुरपूजनात् ।
तस्माद् बिभेति सततं भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ ४६ ॥
तं द्रष्टुमपि देवाश्च स्पृहयन्ति महौजसम् ।
स सर्वं च वशं कुर्याद् न च याति पराभवम् ॥ ४७ ॥
कुसुमं विष्णुमन्त्रेण अंगुल्यग्रेण साधकः ।
विमर्दनार्थं गृह्णीयात् करशोधनकर्मणि ॥ ४८ ॥
उपान्तः सामि चन्द्रेण रंजितः शून्यसंयुतः ।
रुद्रान्तोपरिसंसृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवो मतः ॥ ४९ ॥
प्रासादेन तु मन्त्रेण अङ्गुल्यग्रेण साधकः ।
गृहीत्वा च ततः कुर्यात् कराभ्यां पुष्पमर्दनम् ॥ ५० ॥
निर्मथेत्[७०] कामबीजेन जिघ्रेद् घ्राणेन तत् पुनः ।
प्रासादेन परित्यागो दिश्यैशान्यां विशेषतः ॥ ५१ ॥
एवं कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत् ।
जलौकागूढपादादिस्पर्शाच्छुद्धिर्विशोधनात् ॥ ५२ ॥
दुर्गन्ध्युच्छिष्टसंस्पर्शाद् दूषणं करयोस्तु यत् ।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं नाशयेत्[७१] सुविधानतः ॥ ५३ ॥
अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणाद् भवेत् ।
तलद्वयं मर्दनात् तु विशुद्धमभिजायते ॥ ५४ ॥
निर्मञ्छनात् पाणिपृष्ठं घ्राणान्नासाग्रमुत्तमम् ।
तीर्थानि च समायान्ति[७२] नासिकायां करं प्रति ॥ ५५ ॥
तस्माद् यत्नेन कार्याणि कर्माण्येतानि भैरव ।
प्रान्तादिर्वासुदेवेन वर्णेनापि च संहितः ॥ ५६ ॥

---

६९. मातृकाः संगताः । ७०. निर्मुञ्चेत् । ७१. नाशयेत इमानि वै ।
७२. ...वशमायान्ति ।

शम्भुचूडाबिन्दुयुक्तः प्रासादश्च स उच्यते ।
कामबीजं तु विज्ञेयं वासुदेवेन्दुबिन्दुभिः ॥ ५७ ॥
व्यञ्जनं चाद्यदन्तं च प्रान्तदन्त्या तु पूर्वकम् ।
आद्यदन्त्यद्वयं पश्चाद् व्यञ्जनं प्रणवोत्तरम् ॥ ५८ ॥
ब्रह्मबीजमिदं प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणवं दीर्घमुच्चार्य प्रथमं मुखशुद्धये ॥ ५९ ॥
वासुदेवस्य बीजेन प्राणायामं समाचरेत् ।
यस्य देवस्य यद्रूपं तथा[७३] भूषणवाहनम् ॥ ६० ॥
तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् पूरकादिभिः ।❀
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य कण्ठाद्यं यत्पुरःसरम् ॥ ६१ ॥
तद् बीजं वासुदेवस्य पूर्णचन्द्रनिभं सदा ।
गङ्गावतारबीजेन प्रथमं धेनुमुद्रया ॥ ६२ ॥❀
अमृतीकरणं कुर्यादर्घपात्राहिते जले ।
शशिखण्डयुतः कण्ठ्यः पञ्चमीबलबीजकः[७४] ॥ ६३ ॥
गङ्गावतारमन्त्रोऽयं सर्वपापप्रणाशकः ।
मात्राद्वययुतो विष्णुर्दलबीजमुदाहृतम् ॥ ६४ ॥
अमृतीकरणे वृत्ते तोयं यद् दीयतेऽमृतम् ।
भूत्वा प्रयाति देवस्य प्रीतये सुरपूजने ॥ ६५ ॥
गङ्गापि स्वयमायाति पूजापात्रजलं प्रति ।
अमृतीकरणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ६६ ॥
स्वस्तिकं गोमुखं पद्ममर्धस्वस्तिकमेव च ।
पर्यङ्कमासनं शस्तमभीष्टसुरपूजने ॥ ६७ ॥
पादयन्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
तद् गृह्णीयाद् वराहस्य बीजेन प्रथमं बुधः ॥ ६८ ॥
मायादिरग्निबीजस्य चतुर्थः समव्याप्तिकः[७५] ।
[७६]षष्ठस्वरोपरिचरो वाराहं बीजमुच्यते ॥ ६९ ॥
वाराहबीजसंशुद्धं मन्त्रपादद्वये कृतम् ।
पश्यन्नभीष्टदेवं तु पाददोषं न पश्यति ॥ ७० ॥
न युक्तमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने ।
मन्त्रेण[७७] लभतेऽभीष्टांस्तस्मान्मन्त्रपरो[७८] भवेत् ॥ ७१ ॥

---

७३. यथा । ❀ श्लोकद्वयं पाण्डुलिप्यां नास्ति ।
७४. पञ्चमो बलबीजगः । ७५. ससमाप्तिकः । ७६. अष्ट ।
७७. यन्त्रेण । ७८. ···पदो ।

पाणिकच्छपिकां कुर्यात् कूर्ममन्त्रेण साधकः ।
तत्र संस्कृतपुष्पेण पूजयेदात्मनो वपुः ॥ ७२ ॥
पूजिते तेन पुष्पेण देवत्वं स्वस्य जायते ।
द्वितीयं वैष्णवीतन्त्रं बीजं बिन्द्विन्दुसंयुतम् ॥ ७३ ॥
षष्ठस्वरोपरिचरं कूर्मबीजं प्रकीर्तितम् ।
दहनप्लवनस्यादौ रन्ध्रस्य दशमस्य तु ॥ ७४ ॥
भेदनं साधकः कुर्यान्मन्त्रेण प्रणवेन तु ।
बीजेन वासुदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ॥ ७५ ॥
प्राणेन सहितं बीजं ततपूर्वं[७९] प्रतिपादितम् ।
अज्ञाता प्रयतानां तु मण्डलस्थानमार्जनात् ॥ ७६ ॥
द्रव्याणां विप्रकारः स्यात् संसर्गाणां तथैव च ।
मधुकैटभयोर्मेदःसंघातैर्दृढतां गता ॥ ७७ ॥
मेदिनी सर्वदा शुद्धा सुरपूजासु सर्वतः ।
अद्यापि सर्वे त्रिदशा न स्पृशन्ति पदा क्षितिम् ॥ ७८ ॥
न च स्वीयतनुच्छायां योजयन्ति च भूतले ।
तस्य दोषस्य मोक्षार्थं मन्त्रराजं[८०] लिखेत् क्षितौ ॥ ७९ ॥
प्रोक्षणाद् वीक्षणाद् वापि शुद्धा भवति मेदिनी ।
वीक्षणं धर्मबीजेन स्थण्डिलस्य समाचरेत् ॥ ८० ॥
दान्तो बलेन संयुक्तश्चूडाबिन्दुसमन्वितः ।
धर्मबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ॥ ८१ ॥
आदानं धारणं चैव तथा संस्थानपूजने ।
पूरणं सलिलेनैव निःक्षेपो गन्धपुष्पयोः ॥ ८२ ॥
मण्डलस्याथ विन्यासः पुनः पुष्पस्य संश्रयः ।
अमृतीकरणं पात्रप्रतिपत्तिरियं नरः ॥ ८३ ॥
आनिरुद्धेन चादाय[८१] अस्त्रमन्त्रेण धारणम् ।
पात्रे तु मण्डलन्यासं वाग्बीजाग्रेण योजयेत् ॥ ८४ ॥
आनिरुद्धं भवेद्बीजमाद्यं बिन्दुद्वयोत्तरम्[८२] ।
फडन्तेनानिरुद्धं तु[८३] अस्त्रमन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ ८५ ॥
शम्भुराद्यवलः प्रान्तः सम्पूर्णा[८४] सहिता[८५] इमे ।
परतः परतः पूर्वं समाप्त्यन्ताः सबिन्दुकाः ॥ ८६ ॥

---

७९. तद्सर्वं । ८०. मंत्रबीजं । ८१. चाद्दानमस्त्र… ।
८२. द्वयोद्भवम् । ८३. फडन्तेनानिरुद्धान्तं । ८४. सपूर्वं ।
८५. संहिता ।

तृतीयं वाग्भवं बीजं सकलं निष्कलाह्वयम् ।
स्वरश्चतुर्थः सकलः संसृष्टौ बिन्दुनेन्दुना ॥ ८७ ॥
वर्गाद्यादिर्द्वितीयं तु वाग्भवं बीजमुच्यते ।
कामराजाह्वयं चैतद् धर्मकामार्थसाधनम् ॥ ८८ ॥
मनोभवस्य बीजं तु कुण्डलीशक्तिसंयुतम् ।
वासुदेवेन सम्पृक्तमाद्यं वाग्भवमुच्यते ॥ ८९ ॥
इदं सारस्वतं नाम यदाद्यं वाग्भवं स्मृतम् ।
एकैकं कामबीजादि त्रिभिस्तु त्रिपुरामहः ॥ ९० ॥
आद्यं तृतीयं सामीन्दुबिन्दुभ्यः समलंकृतम् ।
मदनस्य तु मन्त्रोऽयं कामभोगफलप्रदः ॥ ९१ ॥
औदेतोरूपविन्यस्तं यन्त्रं भास्करसन्निभम् ।
तद् वक्ष्ये कुण्डलीशक्तिमभेदात् तु निगद्यते ॥ ९२ ॥
भूतापसारणं कुर्यान्मन्त्रेणानेन याजकः ।
यस्मिन् कृते स्थानभूता दूरं[८६] यान्ति सुरार्चने ॥ ९३ ॥

स्थितेषु तत्र भूतेषु नैवेद्यमण्डलं तथा ।
विलुम्पन्ति सदा लुब्धा न गृह्णन्ति च देवताः ॥ ९४ ॥
तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं भूतानामपसारणम् ।
अस्त्रमन्त्रेण सहितं तस्य मन्त्रमिदं स्मृतम् ॥ ९५ ॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन पूजाकर्म करोम्यहम्[८७] ॥ ९६ ॥
अनेन स्थण्डिलाद् भूतानपसार्याथ साधकः ।
ततो दिग्बन्धनं कृत्वा दिग्भ्यस्तानपसारयेत् ॥ ९७ ॥
विष्णुबीजं फडन्तं तु मन्त्रं दिग्बन्धने स्थितम् ।
करेण छोटिकापूर्वं[८८] वेष्टनं बन्धनं दिशः ॥ ९८ ॥
आत्मनः पूजनेनाथ कर्मारम्भाधिकारिता ।
पूजितं चासनं योगपीठस्य सदृशं भवेत् ॥ ९९ ॥
स्वभावतः सदा शुद्धं पञ्चभूतात्मकं वपुः ।
मलपूतिसमायुक्त - श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलम् ॥ १०० ॥
रेतोनिष्ठीवलालाभिः[८९] स्रवद्भिरपरिष्कृतम् ।
बीजभूतानि चैतस्य महाभूतानि पञ्च वै ॥ १०१ ॥

---

८६. ···दरं । ८७. देवपूजां करोम्यहम् । ८८. स्फोटिका··· ।
८९. ···निष्ठीवमानाभिः ।

तेषां तु सर्वभूतानां बीजानां देहसङ्गिनाम्।
वायुतेजःपृथिव्यम्भोवियतां शुद्धये क्रमात्॥ १०२॥
शोषणं दहनं भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम्।
आप्लावनं च कर्तव्यं चिन्तामात्रविशुद्धये॥ १०३॥
अण्डस्य चिन्तनाद् भेदात्तन्मध्ये देवचिन्तनात्।
स्वकीयस्येष्टदेवस्य चिन्ता सर्वात्मना भवेत्॥ १०४॥
सोऽहमित्यस्य सततं चिन्तनाद् देवरूपता।
आत्मनो जायते सम्यक् संस्कृतिः पुष्पदानतः॥ १०५॥
अहं देवोऽथ नैवेद्यं पुष्पगन्धादिकं च यत्।
पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते॥ १०६॥
देवाधारो ह्यहं देवो देवं देवाय योजयेत्।
सर्वेषां देवतासृष्ट्या जायते शुद्धतापि च॥ १०७॥*
मनोजीवात्मनोः शुद्धिः प्राणायामेन जायते।
अन्तर्गतं यच्च मलं तच्च शुद्धं प्रजायते॥ १०८॥
गृहे चेत् पूजयेद् देवं तदा तस्य विलोकनम्।
कुर्यादादित्यबीजेन चतुःपार्श्वेष्वपि[९०] क्रमात्॥ १०९॥
हान्तः समाप्तिसहितो वह्निबीजेन संहितः।
उपान्तः सचतुर्थस्तु स तथा सकलोऽग्रतः॥ ११०॥
आदित्यबीजं कथितं सर्वरोगविनाशनम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं तोषदायकम्॥ १११॥
अशुद्धपक्षिसंयोग–पक्षिविष्ठाप्रसेचने।
मूषिकाणां तथा स्पर्शः कृमिकीटादिसंगमः॥ ११२॥
एवमादीनि नश्यन्ति लोकनाद् गृहदूषणम्।
ततस्तु योगपीठस्य ध्यानं प्रथमतश्चरेत्॥ ११३॥
ध्यानमात्रं योगपीठं प्रविशत्येव मण्डलम्।
योगपीठे स्मृते सर्वं योगपीठमयं समम्॥ ११४॥
न योगपीठादधिकं विद्यते परमासनम्।
यस्य ध्यानाज्जगद् व्याप्तं सचराचरमानुषम्॥ ११५॥
तच्चिन्तनस्य माहात्म्यं को वा वक्तुं समुत्सहेत्।
चिन्तामात्रेण मानुष्यं पश्य शोकविनाशनम्॥ ११६॥
धारणाद् योगपीठं तु चतुर्वर्गफलप्रदम्।

---

* इयं पंक्तिः पाण्डुलिप्यां न दृश्यते। ९०. ...पार्श्वे चतुःक्रमात्।

शुद्धस्फटिकसंकाशं चतुष्कोणं चतुर्वृतिम् ॥ ११७ ॥
आधारशक्त्या विहितं प्रग्रहं[९१] सूर्यसन्निभम् ।
आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्षु क्रमतः स्थितम् ॥ ११८ ॥
धर्मो ज्ञानं तथैश्वर्यं वैराग्यं क्रमतः सदा ।
पूर्वादिदिक्षु चैतानि स्थितानि क्रमतो यथा ॥ ११९ ॥
अधर्मश्च तथाज्ञानमनैश्वर्यं ततः परम् ।
अवैराग्यं परं तस्माद्धारणार्थं व्यवस्थितम् ॥ १२० ॥
तस्योपरि जलौघस्तु तस्मिन् ब्रह्माण्डमास्थितम् ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं कूर्मस्तस्योपरि स्थितः ॥ १२१ ॥
कूर्मोपरि तथानन्तः पृथ्वी तस्योपरि स्थिता ।
अनन्तगात्रसंयुक्तं नालं पातालगोचरम् ॥ १२२ ॥
पृथ्वीमध्ये स्थितं पद्मं दिक्पत्रं गिरिकेशरम् ।
तस्याष्टदिक्षु दिक्पालाः स्वर्गो मध्ये व्यवस्थितः ॥ १२३ ॥
कर्णिकायां ब्रह्मलोको महर्लोकादयो ह्यधः ।
स्वर्गे ज्योतींषि देवाश्च चतुर्वेदास्तदन्तरे ॥ १२४ ॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
सदा स्थिताः पद्ममध्ये परं तत्त्वं तथैव च ॥ १२५ ॥
आत्मतत्त्वं तत्र संस्थमूर्ध्वच्छदनमूर्धतः ।
अधोऽधश्छदनं तत्र केशराग्रे स्थितं पुनः ॥ १२६ ॥
सूर्याग्निचन्द्रमरुतां[९२] मण्डलानि क्रमात् ततः ।
शावासनं योगपीठे सुखासनमतः परे ॥ १२७ ॥
आराध्यासनमस्माच्च ततश्च विमलासनम् ।
मध्ये विचिन्तयेत् सर्वं जगद्वै सचराचरम् ॥ १२८ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवांश्चैव भागत्रयविनिश्चितान् ।
आत्मानं चिन्तयेत् तत्र पूजने समुपस्थितम् ॥ १२९ ॥
मण्डलं योगपीठं तु पद्मं पद्मं तु चिन्तयेत् ।
शावादीन्यासनानीह चत्वार्यपि विचिन्तयेत् ॥ १३० ॥
योगपीठं पृथग्ध्यात्वा[९३] मण्डलेन सहैकताम् ।
पुनर्ध्यात्वा ततः पश्चात् पूजयेदासनं ततः ॥ १३१ ॥
ध्यानेन योगपीठस्य यथा यद्दीयते जलम् ।
नैवेद्यपुष्पधूपादि तत् स्वयं चोपतिष्ठते ॥ १३२ ॥

---

९१. ग्रहणं । ९२. वाय्वग्निचन्द्रमरुतां । ९३. पुनर्ध्यात्वा ।

सर्वे देवाः सगन्धर्वाः सचराचरगुह्यकाः ।
चिन्तिताः पूजिताश्च स्युर्योगपीठस्य पूजने ॥ १३३ ॥
अभीष्टदेवतापूजां विना यस्य विचिन्तनात् ।
लभते वै चतुर्वर्गं तुष्टिः पुष्टिश्च जायते ॥ १३४ ॥
आवाहनानन्तरतः पाणिभ्यामवतारयेत् ।
प्रागुत्तानौ करौ कृत्वा ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य सान्तरौ ॥ १३५ ॥
निरन्तरावधः कुर्यान्नामयन् पूजकस्तथा ।
हेरम्बस्य तु बीजेन तस्मादवतरेति च ॥ १३६ ॥
आम्रेडितेन चाभीष्टदेवानां लम्बनाय वै ।
नासिकावायुनिःसाराद्ध्रियत्स्था देवता भवेत् ॥ १३७ ॥
एवं कृते[९४] मण्डले तु स्थितिस्तस्य प्रजायते ।
स्वान्तः शुद्धांशुबिन्दुभ्यां हैरम्बं बीजमुच्यते ॥ १३८ ॥
नाशनं विघ्नबीजानां धर्मकामार्थसाधनम् ।
गन्धपुष्पे तथा धूपदीपौ नैवेद्यमेव च ॥ १३९ ॥
यदन्यद् दीयते वस्त्रमलंकारादिकं च यत्[९५] ।
तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ॥ १४० ॥
उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ।
वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ॥ १४१ ॥
इष्टेन मूलमन्त्रेण तथोत्सर्गनिवेदने[९६] ।
लपरश्चन्द्रबिन्दुभ्यां बीजं वारुणमुच्यते ॥ १४२ ॥*
विलोकनं पूजनं च तथा दानं पृथक् पृथक् ।
जपकर्मणि मालायाः प्रतिपत्तिरिदं त्रयम् ॥ १४३ ॥
इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम् ।
बीजं गाणपतं पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ॥ १४४ ॥
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन च ।
जपान्ते शिरसि न्यासो मालायाः परिकीर्तितः ॥ १४५ ॥
स्रजमादाय पाणिभ्यां श्रीबीजेन तथार्चयेत् ।
अन्त्यदन्त्यान्तमात्राभ्यां चादिवर्गतृतीयकौ[९७] ॥ १४६ ॥
परतः परतः पूर्वं श्रीबीजं बिन्दुनेन्दुना ।
मालाया अवतारस्तु शिरसः क्रियते यदा ॥ १४७ ॥

---

९४. भूते । ९५. किंचन ।
९६. मूलमन्त्रेण मालानां प्रोक्षणं परिकीर्तितम् ।
* मुद्रितपुस्तके अधिकः । ९७. चादिवर्गान्तदुर्यकौ ।

तां समादाय पाणिभ्यां कुर्यात् सारस्वतेन[98] वै ।
श्रीबीजानामाद्यमाद्यं बिन्दुचन्द्रार्धसंयुतम् ॥ १४८ ॥
एतच्चतुष्टयं बीजं सारस्वतमुदीरितम् ।
पौराणिकैर्वैदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि ॥ १४९ ॥
प्रदक्षिणां प्रणामं च कुर्याद्धर्मार्थसाधकम् ।
भूमिं वीक्ष्य तथाभ्युक्ष्य क्षितिबीजेन पूर्वतः ॥ १५० ॥
स्पृशंस्तां शिरसा भूमिं प्रणमेदिष्टदेवताः ।
समाप्तिहीनं वाराहं बीजं विन्द्धिन्दुसंयुतम् ॥ १५१ ॥
क्षितिबीजं विजानीयाच्चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
दर्पणं व्यजनं घण्टां चामरं प्रोक्षयेत् पुनः ॥ १५२ ॥
नैवेद्यालोकमन्त्रेण पूर्वप्रोक्तेन भैरव ।
नामाक्षराणि चाद्यानि चैतेषां बिन्दुनेन्दुना ॥ १५३ ॥
तस्मै नम इति प्रान्ते ग्रहणे मन्त्र उच्यते ।
निवेदनमथैतेषामिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ॥ १५४ ॥
वाग्भवस्य द्वितीयेन कामबीजेन भैरव ।*
मुद्राया बन्धनं कार्यं मूलमन्त्रेण दर्शनम् ॥ १५५ ॥*
परित्यागं तु मुद्रायास्ताराबीजेन चाचरेत् ।*
प्रान्तादिश्चन्द्रबिन्दुभ्यां षष्ठस्वरसमन्वितः ॥ १५६ ॥*
ताराबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।
मुदं ददाति यस्मात् सा मुद्रा तेन प्रकीर्तिता ॥ १५७ ॥
दर्शितायां तु मुद्रायां भवेत् पूजासमापनम् ।
कामं मोक्षं तथा धर्ममर्थमोदयुता स्वयम् ॥ १५८ ॥
ददाति साधकायाशु देवता गन्तुमुत्सुका ।
मुद्रान्ते तु महामन्त्रान् षडिमान् समुदीरयेत् ॥ १५९ ॥
यद् दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
आवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ॥ १६० ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाभावं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि ॥ १६१ ॥
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्यं गतिर्मम[99] ।
अन्तश्चरेण भूतानां त्वं गतिः[100] परमेश्वरि ॥ १६२ ॥
मातर्योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजास्यहम् ।

---

९८. स्वामिसुनेन । * मुद्रितपुस्तके अधिकः ।
९९. नान्यास्ति मे गतिः । १००. द्रष्टी ।

तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ॥ १६३ ॥
देवी दात्री च भोक्त्री च देवी[1] सर्वमिदं जगत् ।
देवी[2] जयति सर्वत्र या[3] देवी सोऽहमेव च ॥ १६४ ॥
यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां[4] देवि कस्य न स्खलितं मनः ॥ १६५ ॥
मन्त्रेषु पठितेष्वेषु स्वयमेव प्रसीदति ।
दातुं देवी[5] चतुर्वर्गं न चिरादेव भैरव ॥ १६६ ॥
ऐशान्यां मण्डलं कुर्याद् द्वारपद्मविवर्जितम् ।
विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्याः पूजनाय वै ॥ १६७ ॥
पाद्यादिभिः पूजयित्वा ध्यात्वा निर्माल्यधारिणीम् ।
निःक्षिप्य तस्मिन् निर्माल्यं मन्त्रेण तु विसर्जयेत् ॥ १६८ ॥
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥ १६९ ॥
विसृज्य मन्त्रेणानेन ततः पूरकवायुना ।
ध्यायंस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा तां स्थापयेद्धृदि ॥ १७० ॥
तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥ १७१ ॥
तत एकजटाबीजैरिष्टदेवीं धिया स्मरन् ।
निर्माल्यं मूर्ध्नि गृह्णीयाद् धर्मकामार्थसाधनम् ॥ १७२ ॥
मण्डलप्रतिपत्तिं तु ततः कुर्याद् विभूतये ।
सर्वाङ्गुलीनामग्रौघैः पद्ममष्टदलान्वितम् ॥ १७३ ॥
निर्मन्थेत् क्षितिबीजेन मण्डलं चापि भैरव ।
ततस्तु मूलमन्त्रेण सर्ववश्येन वा पुनः ॥ १७४ ॥
अनामिकानामग्रेण ललाटमपि संस्पृशेत् ।
समाप्तिसहितः प्रान्तस्ताराबीजं ततः परम् ॥ १७५ ॥
स्मरबीजं[6] विसर्गेण परतः परतः परम् ।
भवेदेकजटाबीजं धर्मकामार्थसाधनम् ॥ १७६ ॥
ततो भास्करबीजेन सहितेनात्मना पुनः ।
मन्त्रेण भास्करायार्घमच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ॥ १७७ ॥

---

१. देवी दाता च भोक्ता च देवः । २. देवो । ३. यो देवो ।
४. क्षन्तुमर्हसि मां । ६. बन्धुबीजं ।

नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥ १७८ ॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम्।
एकाग्रमनसा वाग्भिरच्छिद्रमवधारयेत् ॥ १७९ ॥
यच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः ॥ १८० ॥
ततस्तु पुष्पनैवेद्य-तोयपात्रादिकं च यत्।
देवीबीजेन तत्सर्वं पुनरेव विलोकयेत् ॥ १८१ ॥
हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र यत्र कृतः पुरा।
मन्त्रन्यासस्तत्र तत्र विसृष्टिरमुना भवेत् ॥ १८२ ॥
प्रान्तादिपञ्चमो वह्निबीजषष्ठस्वराहितः।
तथोपान्तं वाग्भवाद्यं दुर्गाबीजं प्रचक्षते ॥ १८३ ॥
स्थण्डिले ज्वलदग्नौ च तोये सूर्यमरीचिषु।
प्रतिमासु च शुद्धासु शालग्रामशिलासु च ॥ १८४ ॥
शिवलिंगे शिलायां तु पूजा कार्या विभूतये।
सर्वत्र मण्डलन्यासं कुर्यादेकाग्रमानसः ॥ १८५ ॥
योगपीठस्य बीजेन स्थण्डिलादिषु साधकः।
वासुदेवस्य रुद्रस्य ब्रह्मणो मिहिरस्य च ॥ १८६ ॥
कुर्यात् सर्वत्र पूजासु प्रतिपत्तिमिमां बुधः।
एवं यः पूजयेद् विष्णुममीभिः प्रतिपत्तिथिः ॥ १८७ ॥
चतुर्वर्गप्रदस्तस्य न चिराज्जायते हरिः।
शिवो वा मिहिरो वापि येऽन्ये लम्बोदरादयः ॥ १८८ ॥
प्रसीदन्ति सुराः सर्वे पूजाया विधिनामुना।
विशेषतो महादेवी महामाया जगन्मयी ॥ १८९ ॥
प्रतिपत्तिमिमां नित्यं स्पृहयत्येव पूजने।
एवं यः कुरुते पूजां सम्यक् स फलभाग्भवेत् ॥ १९० ॥
एतैर्विहीना या पूजा ततोऽल्पाल्पं फलं भवेत्[७]।
अंगहीनस्तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको यथा ॥ १९१ ॥
अंगहीना तथा पूजा न सम्यक् फलभाग्भवेत्।
इदं रहस्यं परममिदं स्वस्त्ययनं परम्।
मन्त्रवेदमयं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १९२ ॥

---

७. ततोऽल्पा फलदा भवेत्।

य: श्रावयेद् ब्राह्मणसन्निधाने
श्राद्धेषु यज्ञे सुरपूजनेषु ।
सम्यक् फलं तस्य लभेत् स कर्मणो
विनापि पूजां तदनन्तमश्नुते ॥ १६३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे उत्तरतन्त्रे सप्तपंचाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

देव्यास्तन्त्रं विशेषेण[8] शृणुतं साम्प्रतं युवाम् ।
येन चाराधिता देवी नचिराद्वरदा भवेत् ॥ १ ॥
[9]पूर्वतन्त्राद्विशेषेण तथा वै तन्त्रमुत्तरम् ।
विशेषेण च सामान्यात् कथितं भवतोः पुरा ॥ २ ॥
पुनर्देव्या विशेषेण पूजायां भक्तिकर्मणि ।
यानि तन्त्राणि शेषाणि[10] तानि वक्ष्याम्यहं पुनः ॥ ३ ॥
यः कुर्यात् तु महामायाभक्तिमेकाग्रमानसः ।
अङ्गिना[11] वाङ्गिमन्त्रेण तेन कार्यमिदं शुभम् ॥ ४ ॥
फलं पुष्पं च ताम्बूलमन्नपानादिकं च यत् ।
अदत्त्वा तु महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन ॥ ५ ॥
पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः ।
यथा तथा निवेद्यैव स्वमर्थमुपकल्पयेत् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वैव मदिराभाण्डं रक्तवर्णास्तथा स्त्रियः[12] ।
सिंहं शवं रक्तपद्मं व्याघ्रवारणसङ्गमम् ॥ ७ ॥
गुरुं राजानमथवा महामायां ततो नमेत् ।
पतिव्रतायां भार्यायां सदैव ऋतुसंगमः ॥ ८ ॥
क्रियते चण्डिकां ध्यात्वा तदा कार्यो विभूतये ।
शान्तिकं पौष्टिकं वापि तथेष्टापूर्त्तकर्मणी ॥ ९ ॥
यदा कुर्यात् तदा नत्वा देवीयात्रां समाचरेत् ।
तौर्य्यत्रिकं यदा पश्येत् केवलं गीतमेव वा ॥ १० ॥
तच्च देव्यै निवेद्यैव कर्तव्यं स्वोपयोजनम् ।
यदेव भूषणं वासो मलयोद्भवमेव वा ॥ ११ ॥
स्वकाये परियुञ्जीत तत्र मन्त्रं धिया न्यसेत् ।
व्यायामे च विधाने च सभायां वा जले स्थले ॥ १२ ॥
यत्र यत्र स्वयं गच्छेत् तत्र देवीं सदा स्मरेत् ।
यद् यत् कर्म तु पूजांगं तत्तन्मन्त्रेण चाचरेत् ॥ १३ ॥
मन्त्रहीनं पूजनाङ्गं कर्म यत् तत्तु निष्फलम् ।

---

८. प्रवक्ष्यामि । ९. सर्व... । १०. तन्त्रविशेषाणि ।
११. वङ्ग... । १२. रक्तवस्त्रं ।

यस्मिन् कर्मणि योद्दिष्टो मन्त्रपूजासु भैरव ॥ १४ ॥❀
नैवेद्यालोकमन्त्रेण तत् तत् कर्म समाचरेत् ।
देव्यास्तु मण्डलन्यासमिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ॥ १५ ॥❀
पूजान्ते मण्डलं लिख्वा तिलकं तेन कारयेत्[13] ।
सर्ववश्येन मन्त्रेण धर्मकामार्थदायिना ॥ १६ ॥
बलिदाने बलिं छित्वा खड्गस्थै रुधिरैः स्वकैः ।
सर्ववश्येन मन्त्रेण ललाटे तिलकं न्यसेत् ॥ १७ ॥
जगद्वशे भवेत् तस्य चतुर्थः कस्य वह्निना[14] ।
षष्ठस्वरेण संयुक्तः कलाबिन्दुसमन्वितः ॥ १८ ॥
अथोपान्तस्थकारान्तः सपरोऽपि तथा पुनः ।
द्विर्मोहीति [15]हकारास्य तुर्यो द्विस्वरसंयुतः ॥ १९ ॥
तृतीयवर्ग-प्रान्तेन तृतीयस्वरसंज्ञिना ।
पूरितान्तो द्विधा वर्णस्तथा[16] [17]वादिचतुर्थकः ॥ २० ॥
स्वरो द्वितीयश्च तथा क्षोभशब्दः पुरःसरः ।
पुरेति सहितः सोऽपि मित्रं शत्रुश्च राक्षसः ॥ २१ ॥
दक्षप्रजा[18] तथा राजा सर्वशास्त्र इति श्रुतः ।
विनापि पूजनं कुर्याद् यो रहस्तिलकं नरः ॥ २२ ॥
मन्त्रेणानेन सततं सर्वं तस्य वशे भवेत् ।
राजा वा राजपुत्रो वा स्त्रियो वा यक्षराक्षसाः ॥ २३ ॥
सर्वे तस्य वशं यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
प्रवासे पथि वा दुर्गे स्थानाप्राप्तौ जलेऽपि वा ॥ २४ ॥
कारागारे निबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि[19] वा ।
कुर्यात् तत्र महामायापूजां वै मानसीं बुधः ॥ २५ ॥
मनोभये[20] समुत्पन्ने सिंहव्याघ्रसमाकुले ।
परचक्रागमे वापि कुर्यान्मानसपूजनम् ॥ २६ ॥
मनसा हृदयस्यान्तर्ध्यात्वा योगाख्यपीठकम् ।
तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजां तत्र समाचरेत् ॥ २७ ॥
मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनकर्म वै ।
अन्यच्च सर्वं मनसा कृत्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥ २८ ॥❀
पश्चात्[21] पुष्पादिभिः पूजा बहिर्देशे विधीयते ।

❀ मुद्रितपुस्तके अधिको दृश्यते । १३. साधयेत् । १४. वह्निः ।
१५. औकारस्य । १६. द्विरावर्तः । १७. भादि··· । १८. यज्ञपूजा ।
१९. प्रायोवेगगतोऽपि । २०. मनस्तुष्टौ । ❀मुद्रितपुस्तके अधिकः ।
२१. यथा ।

तथा ह्यपि कर्तव्या सर्वाश्च प्रतिपत्तयः ॥ २६ ॥
अष्टम्यां सततं देवीयाजकः स्यात् सदा व्रती ।
नवम्यां तु तथा पूजा कर्तव्या निजशोणितैः ॥ ३० ॥
लिंगस्थां पूजयेद् देवीं पुस्तकस्थां तथैव च ।
स्थण्डिलस्थां महामायां पादुकाप्रतिमासु च ॥ ३१ ॥
चित्रे च[22] त्रिशिखे खड्गं जलस्थां वापि पूजयेत् ।
पञ्चाशदङ्गुलं खड्गं त्रिशिखं च त्रिशूलकम् ॥ ३२ ॥
शिलायां पर्वतस्याग्रे तथा पर्वतगह्वरे ।
देवीं सम्पूजयेन्नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ३३ ॥
वाराणस्यां सदा पूजा सम्पूर्णफलदायिनी ।
ततस्तद्द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ ॥ ३४ ॥
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारावत्यां विशेषतः ।
सर्वक्षेत्रेषु तीर्थेषु पूजा द्वारावतीसमा ॥ ३५ ॥
विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गङ्गायामपि तत्समा ।
आर्यावर्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्ते तथैव च ॥ ३६ ॥
विन्ध्यवत् फलदा पूजा प्रयागे पुष्करे तथा ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोया नदीजले ॥ ३७ ॥
तस्माच्चतुर्गुणफला नन्दिकुण्डे च भैरव ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता जल्पिपेश्वरसन्निधौ ॥ ३८ ॥
तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ॥ ३९ ॥
तत्समा कामरूपे तु सर्वत्रैव जले स्थले ।
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मीः सर्वोत्तमा यथा ॥ ४० ॥
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ।
देवीक्षेत्रं कामरूपं विद्यतेऽन्यत्र तत्समम् ॥ ४१ ॥
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।
ततः शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ॥ ४२ ॥
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हेरुके शिवलिङ्गके[23] ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शैलपुत्र्यादियोनिषु ॥ ४३ ॥
ततः शतगुणा प्रोक्ता कामाख्यायोनिमण्डले ।
कामाख्यायां महामायापूजां यः कृतवान् सकृत् ॥ ४४ ॥
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ।

---

२२. मित्रिते । २३. हेरुकेश्वरलिंगके ।

न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति कृत्यं तस्य न विद्यते ॥ ४५ ॥
वाञ्छितार्थमवाप्येह चिरायुरभिजायते ।
वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरबाधिता ॥ ४६ ॥
संग्रामे शास्त्रवादे वा दुर्जयः स च जायते ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कामाख्यायोनिमण्डले ।
सकृत् तु पूजनं कृत्वा फलं शतगुणं लभेत् ॥ ४७ ॥
मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
तस्यास्तु वैष्णवीतन्त्रं मन्त्रं प्राक् प्रतिपादितम् ॥ ४८ ॥
अन्या या मूर्तयः प्रोक्ताः शैलपुत्र्यादयोऽपराः ।
तस्या एव विभागास्तास्तच्छरीरविनिर्गताः ॥ ४९ ॥
निःसरन्ति यथा नित्यं सूर्यबिम्बान्मरीचयः ।
देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या महामायाशरीरतः ॥ ५० ॥
तासामेवाङ्गरूपाणि[२४] वक्तव्यानि मया तव[२५] ।
एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नतां गता ॥ ५१ ॥
कामाख्या तु महामाया मूलमूर्तिः प्रगीयते ।
पीठैर्भिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ॥ ५२ ॥
एक एव[२६] यथा विष्णुर्नित्यत्वाद् हि सनातनः ।
जनानामर्दनात् सोऽपि जनार्दन इति श्रुतः ॥ ५३ ॥
तथैव सा महामाया कामार्थं सङ्गता गिरौ ।
कामाख्येति सदा देवैर्गद्यते सततं नरैः ॥ ५४ ॥
यथा हि पुरुषः कोऽपि च्छत्री च्छत्रग्रहाद् भवेत् ।
स्नापकः स्नानकाले वै कामाख्यापि तथाह्वया ॥ ५५ ॥
महामायाशरीरं तु कामार्थं समुपस्थितम् ।
लोहितैः कुंकुमैः पीतं कामार्थमुपयोजितैः ॥ ५६ ॥
खड्गं त्यक्त्वा कामकाले सा गृह्णाति स्रजं स्वयम् ।
यदा तु त्यक्तकामा सा तदा स्यादसिधारिणी ॥ ५७ ॥
कामकाले शिवप्रेते न्यस्तलोहितपंकजे ।
रमते[२७] त्यक्तकामा तु सितप्रेतोपरि स्थिता ॥ ५८ ॥
तथैवेतस्ततो गत्या सिंहस्था कमदा भवेत् ।
कदाचित् सा सितप्रेते कदाचिद्रक्तपंकजे ॥ ५९ ॥
कदाचित् केशरीपृष्ठे रमते कामरूपिणी ।

२४. तन्त्राणि । २५. यथा । २६. एवमेव । २७. वसते ।

यदा लोहितपद्मस्था तथाग्रे केशरी चरः ॥ ६० ॥
यदा प्रेतगता[28] देवी तदाग्रेऽन्यं निरीक्षते ।
महामायास्वरूपेण यदा सा वरदा भवेत् ॥ ६१ ॥
पूजाकाले तदा प्रेतपद्मसिंहोपरि स्थिता ।
रक्तपद्मे यदा ध्यायेत् तदाग्रे चिन्तयेद्धरिम् ॥ ६२ ॥
यदा ध्यायेद्धरौ चान्यद्वयमग्रे विचिन्तयेत् ।
त्रिषु ध्यातेषु युगपत् प्रेतपद्महरौ[29] क्रमात् ॥ ६३ ॥
स्थितेषु कामदा देवी तेषु ध्यायेत कामदाम्[30] ।
एकैकस्मिन्नपि तथा यथावच्चिन्तयेच्छिवाम् ॥ ६४ ॥
एका समस्ता जगतां प्रकृतिः सा यतस्ततः ।
विष्णुब्रह्मशिवैर्देवैर्ध्रियते सा जगन्मयी ॥ ६५ ॥
सितप्रेतो महादेवो ब्रह्मालोहितपंकजम् ।
हरिर्हरिस्तु विज्ञेयो वाहनानि महौजसः ॥ ६६ ॥
स्वमूर्त्या वाहनत्वं तु तेषां यस्मान्न युज्यते ।
तस्मान्मूर्त्यन्तरं कृत्वा वाहनत्वं गतास्त्रयः ॥ ६७ ॥
यस्मिन् यस्मिन् महामाया प्रीणाति सततं शिवा ।
तेन तेनैव रूपेण आसनान्यभवंस्त्रयः ॥ ६८ ॥
सिंहोपरि स्थितं पद्मं रक्तं तस्योर्ध्वगः शिवः ।
तस्योपरि महामाया वरदाऽभयदायिनी ॥ ६९ ॥
एवं रूपेण यो ध्यात्वा पूजयेत् सततं शिवाम् ।*
ब्रह्मविष्णुशिवास्तेन पूजिताः स्युरसंशयम् ॥ ७० ॥
एवं सदा महामाया कामाख्या चैकरूपिणी ।
ध्यानतो रूपतो भिन्ना तस्मात्तां तत्र पूजयेत् ॥ ७१ ॥
एवं विशेषतन्त्राणि दुर्गायाः कथितानि वाम् ।
अङ्गमन्त्राणि तस्यास्तु श्रूयतां नरसत्तमौ[31] ॥ ७२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टपंचाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

---

२८. ··· सना । २९. प्रेते पद्मे··· । ३०. ध्यातातिकामदा ।
* मुद्रितपुस्तकेऽधिकं दृश्यते । ३१. द्विजसत्तमाः ।

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अङ्गमन्त्राण्यहं वक्ष्ये चण्डिकाया विशेषतः ।
यैः समाराधिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ॥ १ ॥
तालव्यान्तो युतः षष्ठस्वरबिन्द्विन्दुवह्निभिः[32] ।
तथोपान्तः स्वरस्त्वेते बाह्यं वाग्भवमेव च ॥ २ ॥
नेत्रबीजं चण्डिकायास्त्रयमेतत् प्रकीर्तितम् ।
वामललाटदाक्षिण्यनेत्रेषु[33] त्रितयं क्रमात् ॥ ३ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां सर्वदा कारणं परम् ।
मन्त्रमेतन्महागुह्यं दुर्गाबीजमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥
यदा कात्यायनमुनेराश्रमेषु दिवौकसाम्[34] ।
तेजोभिर्धृतकायाभूद् देवी देवौघसंस्तुता ॥ ५ ॥
तदा नेत्रत्रयाद् देव्या मूलमूर्तिर्विनिःसृता ।
तेजोमयी जगद्धात्री महिषासुरघातिनी ॥ ६ ॥
तेजोभिः सर्वदेवानां सा धृत्वा वपुरुत्तमम् ।
अस्त्राण्यनेकान्यादाय देवैर्दत्तानि भागशः ॥ ७ ॥
सगणं सानुबन्धं च सामात्यबलवाहनम् ।
ब्रह्माद्यैः संस्तुता देवी जघान महिषासुरम् ॥ ८ ॥
हते तु महिषे देवी पूजिता त्रिदशैस्ततः ।
अनेनैव तु मन्त्रेण लोके ख्यातिं च सा गता ॥ ९ ॥
ततः प्रभृति सा मूर्तिः सर्वैः सर्वत्र पूज्यते ।
मूलमूर्त्तिः सुगुप्ताभूत् स्वमूर्त्या ख्यातिमागता ॥ १० ॥
देवानां वरदानेन ब्रह्माद्यैरुपयोजनात् ।
यन्मूर्तिः पूज्यते सर्वैस्तां मूर्तिं शृणु भैरव ॥ ११ ॥*
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तां [35]पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥ १२ ॥
तप्तकांचनवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥

---

३२. स्वरविन्दुसवह्निभिः । ३३. वामनासिकाद्विदक्षिण… ।
३४. दिवौकसः । * मुद्रितपुस्तकेऽधिकं । ३५. पद्मेन्दु… ।

सुचारुदशनां तीक्ष्णां[36] पीनोन्नतपयोधराम्।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम्॥ १४॥
मृणालायतसंस्पर्शदशबाहुसमन्विताम्।
त्रिशूलं दक्षिणे देयं[37] खड्गं चक्रं क्रमादधः॥ १५॥
तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिं बाहुसंघेषु सङ्गताम्।
खेटकं पूर्णचापं च पाशं चाङ्कुशमूर्ध्वतः॥ १६॥
घण्टां च परशुं चापि वामेऽधः प्रतियोजयेत्।
अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥ १७॥
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम्।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम्॥ १८॥
रक्तरक्तीकृतांगं च रक्तविस्फुरितेक्षणम्।
वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीकुटिलाननम्॥ १९॥
सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया।
वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्॥ २०॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किंचिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि॥ २१॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका।
चण्डा चण्डवती चैव चामुण्डा चण्डिका तथा॥ २२॥
आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम्।
चिन्तयेत् सततं देवीं धर्मकामार्थमोक्षदाम्॥ २३॥
एतस्याश्चांगमन्त्रं तु दुर्गातन्त्रमिति श्रुतम्।
शृणुष्वैकमना भूत्वा धर्मकामार्थसाधनम्॥ २४॥
वह्निभार्या स्वरः षष्ठो[38] हान्तः प्रान्तोऽग्निरेव च।
दुर्गादिरिति सोङ्कारं दुर्गामन्त्र[39]मिति श्रुतम्॥ २५॥
रवौ मकरराशिस्थे या भवेत् सितपंचमी।
तस्यामनेन मन्त्रेण सम्पूज्य विधिवच्छिवाम्॥ २६॥
शुक्लाष्टम्यां पुनर्देवीं पूजयित्वा यथाविधि।
नवम्यां बलिदानानि प्रभूतानि समाचरेत्॥ २७॥
सन्ध्यायां च बलिं कुर्यान्निजगात्रासृगुक्षितम्।
एवं कृते तु कल्याणैर्युक्तो नित्यं प्रमोदते॥ २८॥
*पुत्रपौत्रसमृद्धस्तु धनधान्यसमृद्धिभिः।

---

३६. तद्वत्। ३७. ध्येयं। ३८. ...स्वरे तुर्जे। ३९. ...तन्त्र।
* न तस्य जायते शोको न च मारी प्रजायते। इत्यधिकः पाण्डुलिप्याम्।

दीर्घायुः सर्वसुभगो लोकेऽस्मिन् स च जायते ॥ २६ ॥
सिताष्टम्यां तु चैत्रस्य पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ।
अशोकैरपि यः कुर्यान्मन्त्रेणानेन पूजनम् ॥ ३० ॥
न तस्य जायते शोको रोमो वाप्यथ दुर्गतिः ।
ज्यैष्ठे तु शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां समुपोषितः ॥ ३१ ॥
नवम्यां सतिलैरन्नैर्यावकैरथ मोदकैः ।
क्षीरैराज्यैस्तथा क्षौद्रैः शर्कराभिः सपिष्टकैः ॥ ३२ ॥
नानापशूनां रुधिरैर्मांसैरपि च पूजयेत् ।
ततो दशम्यां शुक्लायामद्भिस्तु तिलमिश्रितैः ॥ ३३ ॥
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दातव्यमञ्जलित्रयम् ।
एवं कृते दशम्यां तु यत्पापं दशजन्मभिः ॥ ३४ ॥
कृतं तत्प्रलयं याति दीर्घायुरपि जायते ।
आषाढे शुक्लपक्षस्य याष्टमी श्रावणस्य च ॥ ३५ ॥
पवित्रारोपणं[४०] कुर्याद् देवीप्रीतिकरं परम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ॥ ३६ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण पवित्रारोपणं चरेत् ।
विशेषाच्छ्रावणं[४१] प्राप्य देव्याः कुर्यात् पवित्रकम् ॥ ३७ ॥
सर्वेषामेव देवानां पवित्रारोपणं चरेत् ।
आषाढे श्रावणे वापि संवत्सरफलप्रदम् ॥ ३८ ॥
प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथिः ।
द्वितीया तु श्रियो देव्यास्तिथीनामुत्तमा स्मृता ॥ ३९ ॥
तृतीया भवभाविन्याश्चतुर्थी तत्सुतस्य च ।
पंचमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ॥ ४० ॥
सप्तमी भास्करस्योक्ता दुर्गायाश्च तथाष्टमी ।
मातृणां नवमी प्रोक्ता वासुकेर्दशमी मता ॥ ४१ ॥
एकादशी ऋषीणां च द्वादशी चक्रपाणिनः ।
त्रयोदशी त्वनङ्गस्य मम चैव चतुर्दशी ॥ ४२ ॥
ब्रह्मणो दिक्पतीनां च पौर्णमासी तिथिर्मता ।
पवित्रारोपणं यो वै देवानां न समाचरेत् ॥ ४३ ॥
तस्य सांवत्सरीपूजाफलं हरति केशवः ।
तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं पवित्रारोपणं परम् ॥ ४४ ॥
कृते बहुफलप्राप्तिस्तत्पूजा सफला भवेत् ।

---

४०. रोहणं । ४१. ···श्रावणारभ्य··· ।

पवित्रं येन सूत्रेण यथा कार्यं विजानता ॥ ४५ ॥
तच्छ्रृणुष्व प्रमाणं तु वचनान्मम भैरव ।
प्रथमं दर्भसूत्रं च पद्मसूत्रं ततः परम् ॥ ४६ ॥
ततः क्षौमं सुपुण्यं स्यात् कार्पासकमतः परम् ।
पट्टसूत्रं तथान्येन पवित्राणि न कारयेत् ॥ ४७ ॥
विचित्राणि पवित्राणि कर्तव्यानि तु यत्नतः ।
गन्धमाल्यैः सुरभिभिः रचितानि यथोदितम् ॥ ४८ ॥
कन्या च कर्तयेत् सूत्रं प्रमदा च[42] पतिव्रता ।
विधवा साधुशीला वा दुःखशीला न कर्तयेत् ॥ ४९ ॥
यत्सूचिभिन्नं दग्धं च भस्मधूमाभिगुण्ठितम् ।
तद्वर्जनीयं यत्नेन सूत्रमस्मिन् पवित्रके ॥ ५० ॥
उपयुक्तं चाखुजग्धं मद्यरक्तादिदूषितम् ।
मलिनं नीलरक्तं च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥
सूत्रैः पवित्रं कुर्वीत कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।
कनिष्ठं यत पवित्रं तु सप्तविंशतितन्तुभिः ॥ ५२ ॥
मर्त्यलोके यशः कीर्तिः सुखसौभाग्यवर्धनम् ।
चतुःपञ्चाशता प्रोक्तं तन्तूनां मध्यमं परम् ॥ ५३ ॥
दिव्यभोगावहं पुण्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम्[43] ।
उत्तमं चैव तन्तूनामष्टोत्तरशतेन वै ॥ ५४ ॥
तद्दत्वा तु महादेव्यै शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
उत्तमं वासुदेवाय दद्याद् यदि पवित्रकम् ॥ ५५ ॥
तदा याति हरेर्लोकं साधको नात्र संशयः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु रत्नमालेति गीयते ॥ ५६ ॥
पवित्रं तु महादेव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
रत्नमाल्यां तु यो यच्छेन्महादेव्यै पवित्रकम् ॥ ५७ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि स्वर्गे स्थित्वा शिवो भवेत् ।
एतत् तु नागहाराख्यं शंकरस्य पवित्रकम् ॥ ५८ ॥
अष्टोत्तरसहस्रेण तन्तुना सुमनोहरम् ।
यः प्रयच्छति मह्यं तु स[44] यावांस्तन्तुसंचयः ॥ ५९ ॥
तावत्कल्पसहस्राणि मम लोके प्रमोदते ।
अष्टोत्तरसहस्रेण वनमाला हरेः स्मृता ॥ ६० ॥
तन्तूनां तस्य दानेन विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।

---

४२. वा । ४३. ...सौख्य... । ४४. मह्यं तव ।

यत् कनिष्ठं पवित्रं तु नाभिमात्रं भवेत् तु तत् ॥ ६१ ॥
द्वादशग्रन्थिसंयुक्तमात्ममानेन योजयेत् ।
ऊरुप्रमाणं मध्यं स्याद् ग्रन्थीनां तत्र योजयेत् ॥ ६२ ॥
चतुर्विंशतिमध्यस्य मानमात्मन एव च ।
पवित्रमुत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं च भैरव ॥ ६३ ॥
षट्त्रिंशत्तन्तुग्रन्थीनां योजयेदात्ममानतः ।
शतमष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां सुविधानतः ॥ ६४ ॥
नागहाराह्वयं तद्वदन्येषु च विधानतः ।
पवित्रं क्रियते येन सूत्रेण ग्रन्थयः पुनः ॥ ६५ ॥
तदन्यवर्णसूत्रेण कर्तव्या लक्षणान्विता ।
ग्रन्थिं तु सप्तभिः कुर्याद् वेष्टनैस्तु कनिष्ठके ॥ ६६ ॥
द्विगुणैर्मध्यमे कुर्यात्त्रिगुणैरुत्तमे तथा ।
अधिवास्य पवित्राणि पूर्वस्मिन् दिवसे ततः ॥ ६७ ॥
मन्त्रन्यासं पवित्रे तु कुर्यात् तत्रापरेऽहनि ।
दुर्गाबीजेन मन्त्रेण मन्त्रन्यासं द्विजश्चरेत् ॥ ६८ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कुर्युरन्ये च भैरव ।
प्रतिग्रन्थि स्वयं कुर्यान्मन्त्रन्यासं विचक्षणः ॥ ६९ ॥
अङ्गुष्ठाग्रेण जपनं मालायामिह भैरव ।
यावन्तो ग्रन्थयश्चात्र तावन्त्येव च सन्न्यसेत् ॥ ७० ॥
मन्त्राणि तस्य तेन स्यादेवांगोपनियोजनम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्त्वन्यासं तु कारयेत् ॥ ७१ ॥
एकत्र न्यस्य सकलं यज्ञपात्रे पवित्रकम् ।
तस्मिन् निधाय गन्धादि पुष्पाणि च सुशोभनम् ॥ ७२ ॥*
तत्वन्यासं ततः कुर्यादंगुल्यग्रेण भैरव ।
विष्णोस्तु मूलमन्त्रेण तत्त्वन्यासं तु कारयेत् ॥ ७३ ॥*
इदं विष्णुरिति प्रोक्तं मन्त्रन्यासं द्विजस्य हि ।
शूद्राणां मन्त्रविन्यासे मन्त्रो वै द्वादशाक्षरः ॥ ७४ ॥
प्रासादेन तु मन्त्रेण तत्त्वन्यासो मम स्मृतः ।
अनेन मन्त्रन्यासं च दानं चानेन कारयेत् ॥ ७५ ॥
कुंकुमोशीरकर्पूरै[४५]श्चन्दनादिविलेपनैः ।
पवित्राणि विलिप्याथ तत्त्वन्यासं तु योजयेत् ॥ ७६ ॥
सम्पूज्य मण्डले देवीं विधिवत् प्रयतो नरः ।

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिकं दृश्यते । ४५. खर्जूरैः ।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ॥ ७७ ॥
दुर्गाबीजेन दद्यात् तु देव्या मूर्ध्नि पवित्रकम् ।
यस्य देवस्य यः प्रोक्तस्तस्य तेनैव मण्डलम् ॥ ७८ ॥❀
यस्य यस्य तु यो मन्त्रो यथा ध्यानादिपूजनम् ।
तत् तत् तेनैव मन्त्रेण पूजयित्वा प्रयत्नतः ॥ ७९ ॥
तस्यैव बीजमन्त्राभ्यां मूर्ध्नि दद्यात् पवित्रकम् ।
पवित्रं मम यो दद्याद् देवेभ्यश्च पवित्रकम् ॥ ८० ॥
सर्वेषामेव देवानां सम्पूर्णार्थश्च भैरव ।❀
अग्निर्ब्रह्मा भवानी च गजवक्त्रो महोरगः ॥ ८१ ॥
स्कन्दो भानुर्मातृगणो दिक्पालाश्च नवग्रहाः ।
एतान् घटेषु प्रत्येकं पूजयित्वा यथाविधि ॥ ८२ ॥
पवित्रं मूर्ध्नि चैकैकं दद्यादेभ्यः समाहितः ।
पंचगव्यचरुं कृत्वा देव्यै दत्त्वाहुतित्रयम् ॥ ८३ ॥
तेनैव विष्णवे[४६] दत्त्वा शम्भवे च यथाविधि ।
आज्यैरष्टोत्तरशतं तिलैराज्यैस्तथैव च ॥ ८४ ॥
अष्टोत्तरशतं दद्यान्महादेव्यै च साधकः ।
एवमेव विधानेन विष्ण्वादीनां च साधकः[४७] ॥ ८५ ॥
पवित्रारोपणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
नैवेद्यैर्विविधैः पेयैर्वटपिष्टकमोदकैः ॥ ८६ ॥
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्ज्जूरैः पनसैस्तथा ।
आम्रदाडिमकर्कारुद्राक्षादिविविधैः फलैः ॥ ८७ ॥
भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वैर्मत्स्यैर्मांसैस्तथौदनैः ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैश्च सुमनोहरैः ॥ ८८ ॥
वासोभिर्भूषणैश्चैव भवानीसाधको यजेत् ।
नटनर्तकसंघैश्च वेश्याभिश्चैव भैरव ॥ ८९ ॥
नृत्यगीतैः समुदितो जागरं कारयेन्निशि ।
भोजयेद् ब्राह्मणांश्चापि ज्ञातीनपि द्विजातिभिः ॥ ९० ॥
पवित्रारोपणे वृत्ते दक्षिणामुपदापयेत् ।
हिरण्यं गां तिलघृतं वासो वा शाकमेव वा ॥ ९१ ॥
इमं मन्त्रं ततः पश्चात् साधकः समुदीरयेत् ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ॥ ९२ ॥

❀ मुद्रितपुस्तकेऽधिकं दृश्यते ।
४६. वह्नये । ४७. वैष्णवः ।

इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु परमेश्वरि।
ततो विसर्जयेद् देवीं पूजाभिः प्रतिपत्तिभिः ॥ ६३ ॥
एवं कृते पवित्राणां दाने देव्या यथाविधि।
संवत्सरस्य या पूजा सम्पूर्णा वत्सराद् भवेत् ॥ ६४ ॥
कल्पकोटिशतं यावद् देवीगेहे वसेन्नरः।
तत्रापि सुखसौभाग्यसमृद्धिरतुला भवेत् ॥ ६५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितमोध्यायः

श्रीभगवानुवाच

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण कुर्याद् दुर्गामहोत्सवम् ।
महानवम्यां शरदि बलिदानं नृपादयः ॥ १ ॥
आश्विनस्य तु शुक्लस्य भवेद् या अष्टमी तिथिः ।
महाष्टमीति सा प्रोक्ता देव्याः प्रीतिकरी परा ॥ २ ॥
ततोऽनु नवमी या स्यात् सा महानवमी स्मृता ।
सा तिथिः सर्वलोकानां पूजनीया शिवप्रिया[४८] ॥ ३ ॥
अनयोर्वत्स पूजायां विशेषं शृणु भैरव ।
सम्पूज्य मण्डले देवीं विधिवत् प्रयतो नरः ॥ ४ ॥❀
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ।❀
मूर्तिभेदे यथा देवी पूजां गृह्णाति भूतये ॥ ५ ॥
कन्यासंस्थे रवौ वत्स शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ।
अयाचिताशी नक्ताशी एकाशी त्वथ चापदः[४९] ॥ ६ ॥
प्रातःस्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकालं शिवपूजकः ।
जपहोमसमायुक्तो भोजयेच्च कुमारिकाः ॥ ७ ॥
बोधयेद् बिल्वशाखासु षष्ठ्यां देवीफलेषु च ।
सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥ ८ ॥
पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् ।
जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिशि ॥ ९ ॥
प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत् ।
ध्यायेद् दशभुजां देवीं दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥ १० ॥
विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद् वै साधकोत्तमः[५०] ।
कृत्वा विसर्जनं तस्यां तिथौ नक्तं समाचरेत् ॥ ११ ॥
यदा तु षोडशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेषं तत्र वै शृणु ॥ १२ ॥
कन्यायां कृष्णपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यामेकभक्तं तु नक्तं कुर्यात् परेऽहनि ॥ १३ ॥

---

४८. शिवा तथा । ❀ अधिकं दृश्यते ।
४९. अथ वा मदः । ५०. शार्वरोत्सवैः ।

चतुर्दश्यां महामायां बोधयित्वा विधानतः ।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्नानानैवेद्यवेदनैः ॥ १४ ॥
अयाचितं बुधः कुर्यादुपवासं परेऽहनि ।
एवमेव व्रतं कुर्याद् यावद्वै नवमी भवेत् ॥ १५ ॥
ज्येष्ठायां च समभ्यर्च्य मूलेन प्रतिपूजयेत् ।
उत्तरेणार्चनं कृत्वा श्रवणान्ते विसर्जयेत् ॥ १६ ॥
यदा त्वष्टादशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्रापि शृणु भैरव ॥ १७ ॥
कन्यायां कृष्णपक्षस्य पूजयित्वार्द्रभे दिवा ।
नवम्यां बोधयेद् देवीं गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ १८ ॥
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोचनम् ।
प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत् तु शुभैर्जलैः[51] ॥ १९ ॥
सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् ।
पूजाजागरणं चैव नवम्यां विधिवद्बलिः ॥ २० ॥
सम्प्रेषणं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमंगलैः ।
नीराजनं दशम्यां तु बलवृद्धिकरं महत् ॥ २१ ॥
यदा वै वैष्णवीं देवीं महामायां जगन्मयीम् ।
पूजयेत् तत्र च तदा विशेषं शृणु भैरव ॥ २२ ॥
कन्यासंस्थे रवौ पूजा या शुक्ला तिथिरष्टमी ।
तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरैः ॥ २३ ॥
नवम्यां बलिदानं तु कर्तव्यं वै यथाविधि ।
जपं होमं च विधिवत् कुर्यात् तत्र विभूतये ॥ २४ ॥
सम्पूजयेन्महादेवीमष्टपुष्पिकया नरः ।
रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च ॥ २५ ॥
रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा ।
ततस्तु त्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते ॥ २६ ॥
जगाम नगरीं लङ्कां यत्रासीद्राघवः पुरा ।
तत्र गत्वा महादेवी तदा तौ रामरावणौ[52] ॥ २७ ॥
युद्धं नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ।
रक्षसां वानराणां च जग्ध्वा सा मांसशोणिते[53] ॥ २८ ॥

---

५१. सुजलैः शिवाम् । ५२. तौ तदा रामरावणौ ।
५३. शोणितम् ।

रामरावणयोर्युद्धं सप्ताहं सा न्ययोजयत्।
व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं ततः॥ २९॥
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी।
यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षत॥ ३०॥
तावत् तु सप्तरात्राणि सैव देवैः[५४] सुपूजिता।
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः॥ ३१॥
विशेषपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः।
ततः सम्प्रेपिता देवी दशम्यां शार्वरोत्सवैः॥ ३२॥
शक्रोऽपि देवसेनाया नीराजनमथाकरोत्।
शान्त्यर्थं सुरसैन्यानां देवराज्यस्य वृद्धये॥ ३३॥
रामरावणबाणेन युद्धं चावेद्य भीतिदम्।
तृतीयायां तु लंकायाः पूर्वोत्तरदिशि स्थितम्॥ ३४॥
स्वातीनक्षत्रयुक्तायां भीतं सुरबलं महत्।
शान्त्यर्थं वरयामास देवेन्द्रो वचनाद् हरेः॥ ३५॥
ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम्।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलनीराजनं हरिः॥ ३६॥
नीराजितबलः शक्रस्तत्र रामं च राघवम्।
सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवैः शचीपतिः॥ ३७॥
इतिवृत्तं पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वै॥ ३८॥
नृणां त्रेतायुगस्यादौ जगतां हितकाम्यया।
पुराकल्पे यथावृत्तं प्रतिकल्पं तथा तथा॥ ३९॥
प्रवर्तते स्वयं देवी दैत्यानां नाशनाय वै।
प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः॥ ४०॥
तथैव जायते युद्धं तथा त्रिदशसंगमः।
एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः॥ ४१॥
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते।
पूजयन्ति सुराः सर्वे बलं नीराजयन्त्यपि॥ ४२॥
तथैव च नराः सर्वे कुर्युः पूजां यथाविधि।
बलनीराजनं राजा कुर्याद् बलविवृद्धये॥ ४३॥
दिव्यालङ्कारयुक्ताभिर्वारुणीभिः[५५] प्रवर्तनम्।
कर्तव्यं नृत्यगीतानि क्रीडाकौतुकमंगलैः॥ ४४॥

---

५४. सर्वैर्देवी। ५५. ललनाभिः।

मोदकैः पिष्टकैः पेयैर्भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ।
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा ॥ ४५ ॥
द्राक्षामलकशाण्डिल्यैः प्लीहैश्च करुणैस्तथा ।
कशेरुक्रमुकैर्मूलैः सजम्बूतिन्दुकादिभिः[५६] ॥ ४६ ॥
गव्यैर्गुडैस्तथा मांसैर्मद्यैर्मधुभिरेव च ।
बालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलादिभिः ॥ ४७ ॥
इक्षुदण्डैः सिताभिश्च लवलीनागरङ्गकैः ।
अजाभिर्महिषैर्मेषैरात्मशोणितसञ्चयैः[५७] ॥ ४८ ॥
पक्ष्यादिबलिजातीयैस्तथा नानाविधैर्मृगैः ।
पूजयेच्च जगद्धात्रीं मांसशोणितकर्दमैः ॥ ४९ ॥
रात्रौ स्कन्दविशाखस्य कृत्वा पिष्टकपुत्रिकाम् ।
पूजयेच्छत्रुनाशाय दुर्गायाः प्रीतये तथा ॥ ५० ॥
होमं च सतिलैराज्यैर्मांसैरपि तथा चरेत् ।
उग्रचण्डादिकाः पूज्यास्तथाष्टौ योगिनीः शुभाः ॥ ५१ ॥
योगिन्यश्च चतुःषष्टिस्तथा वै कोटियोगिनीः ।
नवदुर्गास्तथा पूज्या देव्याः सन्निहिताः शुभाः ॥ ५२ ॥
जयन्त्यादिर्गन्धपुष्पैस्ता देव्या मूर्तयो यतः ।
देव्यः सर्वाणि चास्त्राणि भूषणानि तथैव च ॥ ५३ ॥
अङ्गप्रत्यङ्गयुक्तानि वाहनं सिंहमेव च ।
महिषासुरमर्दिन्याः पूजयेद् भूतये सदा ॥ ५४ ॥
पुराकल्पे महादेवी मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
नृणां कृतयुगस्यादौ सर्वदेवैः स्तुता सदा ॥ ५५ ॥
महिषासुरनाशाय जगतां हितकाम्यया ।
योगनिद्रा महामाया जगद्धात्री जगन्मयी ॥ ५६ ॥
भुजैः षोडशभिर्युक्ता भद्रकालीति विश्रुता ।
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे बिभ्रती विपुलां तनुम्[५८] ॥ ५७ ॥
अतसीपुष्पवर्णाभा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ।
जटाजूटसखण्डेन्दुमुकुटत्रयभूषिता ॥ ५८ ॥
नागहारेण सहिता स्वर्णहारविभूषिता ।
शूलं चक्रं च खड्गं च शंखं बाणं तथैव च ॥ ५९ ॥

---

५६. दानुजम्बुरिकादिभिः । ५७. संस्रवः ।
५८. विपुलं वपुः ।

शक्तिं वज्रं च दण्डं च नित्यं दक्षिणबाहुभिः ।
बिभ्रती सततं देवी विकाशिदशनोज्ज्वला ॥ ६० ॥
खेटकं चर्म चापं च पाशं चाङ्कुशमेव च ।
घण्टां पशुं च मुषलं बिभ्रती वामपाणिभिः ॥ ६१ ॥
सिंहस्था नयनै रक्तवर्णैस्त्रिभिरतिज्वला ।
शूलेन महिषं भित्त्वा तिष्ठन्ती परमेश्वरी ॥ ६२ ॥
वामपदेन चाक्रम्य तत्र देवी जगन्मयी ।
तां दृष्ट्वा सकला देवाः प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥ ६३ ॥
नोचुः[५९] किञ्चन तं दृष्ट्वा निहतं महिषासुरम् ।
ततः प्रोवाच देवांस्तान् ब्रह्मादीन् परमेश्वरी ॥ ६४ ॥
स्मितप्रभिन्नवदना विकाशिवदनोज्ज्वला ।
गच्छन्तु भोः सुरगणा जम्बुद्वीपान्तरं प्रति ॥ ६५ ॥
हिमवत् - पर्वतासन्ने वरं कात्यायनाश्रमम् ।
तत्रैव भवतां साध्यं भविष्यति न संशयः ॥ ६६ ॥
इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ।
देवा अपि तदा जग्मुः कात्यायनमुनेः पुरम् ॥ ६७ ॥
आश्रमं प्रति ते गत्वा विस्मयाविष्टमानसाः[६०] ।
निहतो महिषो देव्या दिष्टोऽस्माभिर्यदर्थतः ॥ ६८ ॥
स्तुता चैषा महादेवी जगद्धात्री जगन्मयी ।
किमर्थमाह सा देवी गन्तुं कात्यायनाश्रमम् ॥ ६९ ॥
किमन्यद् वाञ्छितं कार्यमस्माकं वा भविष्यति ।
इति ब्रुवन्तस्ते सर्वे गच्छन्ति स्म परस्परम् ॥ ७० ॥
हिमवत्-पर्वतासन्नं मुनि-कात्यायनाश्रमम् ।
ततः सेन्द्राः सदिक्पाला ब्रह्मविष्णुशिवास्तथा ॥ ७१ ॥
निषेदुः सुचिरं प्रीता दुर्गादर्शनलालसाः ।
ततो रुद्रगणाः सर्वे महिषासुरचेष्टितम् ॥ ७२ ॥
आगत्य कथयामासुर्देवलोकपराभवम् ।
ततस्तत्र महाकोपं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७३ ॥
चक्रुः कोऽन्योऽस्ति महिषो हतो देव्या स दानवः ।
पुनर्येनेह क्रियते जगद्विध्वंसनं भृशम् ॥ ७४ ॥
इति प्रकुप्यतां तेषां शरीरेभ्यः पृथक् पृथक् ।
निश्चक्रमुश्च तेजांसि शक्तिरूपाणि तत्क्षणात् ॥ ७५ ॥

---

५९. प्रोचुः । ६०. ...चेतनाः ।

तत्तेजोभिर्धृतवपुर्देवी कात्यायनेन वै ।
सन्धुक्षिता पूजिता च तेन कात्यायनी स्मृता ॥ ७६ ॥
ततस्तेनैव मन्त्रेण[६१] दशबाहुयुतेन वै ।
पश्चाज्जघान महिषं जगद्धात्री जगन्मयी ॥ ७७ ॥
यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च ।
चतुर्दशी कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥ ७८ ॥
देवानां तेजसां मूर्तिः शुक्लपक्षे सुशोभने ।
सप्तम्यां साऽकरोद् देवी अष्टम्यां तैरलङ्कृता ॥ ७९ ॥
नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम् ।
निजघान दशम्यां तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा ॥ ८० ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेमां[६२] सगरो राजा देव्याः सङ्गतिमुत्तमाम् ।
संशयालुश्च तद्रूपे पुनरौर्वमपृच्छत ॥ ८१ ॥

सगर उवाच

यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम् ।
कथं पूर्वं [६३]भद्रकाली-रूपाभून्महिषासुरम् ॥ ८२ ॥
तथाहि दर्शनं तस्याः पादाक्रान्तश्चकार च ।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं ददृशुः सकलाः सुराः ।
एवं तु[६४] संशयं छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ॥ ८३ ॥

और्व उवाच

शृणु त्वं नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥ ८४ ॥
महिषासुर एवासौ निद्रायां निशि पर्वते[६५] ।
स्वप्नं प्रददृशे वीरो दारुणं घोरदर्शनम् ॥ ८५ ॥
महामाया भद्रकाली छित्त्वा खड्गेन मे शिरः ।
पपौ तस्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥ ८६ ॥
ततः प्रातर्भययुतः स दैत्यो महिषासुरः ।
तामेव पूजयामास सुचिरं सानुगस्तदा ॥ ८७ ॥
आराधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजैः षोडशभिर्युता ॥ ८८ ॥

---

६१. रूपेण । ६२. श्रुत्वेत्थं । ६३. तत् कालीरूपाऽहन्... ।
६४. ततस्त्वं । ६५. पूर्वतः ।

ततः प्रणम्य महिषो महामायां जगन्मयीम् ।
उवाचेदं वचो नम्रमूर्तिर्भक्तियुतोऽसुरः ॥ ८९ ॥

महिष उवाच

देवि खड्गेन सञ्छिद्य शोणितानि शिरो मम ।
त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥ ९० ॥
अवश्यं तु त्वया कार्यं मया ज्ञातं प्रमाणतः ।
एतद्रुधिरपानं मे तत्रैकं देहि मे वरम् ॥ ९१ ॥
वध्यस्तवाहं नात्रास्ति संशयः परमेश्वरि ।
ममापि तत्र नो दुःखं नियतिः केन लंघ्यते ॥ ९२ ॥
किन्तु त्वयैव सहितः शम्भुराराधितः पुरा ।
मम पित्रा मदर्थेन जातः पश्चादहं ततः ॥ ९३ ॥
मयाप्याराधितः शम्भुः प्राप्ताश्चेष्टास्तथाविधाः ।[६६]
मन्वन्तरत्रयं यावदासुरं राज्यमुत्तमम् ॥ ९४ ॥
अकण्टकं मया भुक्तमनुतापो न विद्यते ।
कात्यायनेन मुनिना शप्तोऽहं शिष्यकारणात् ॥ ९५ ॥
सीमन्तिनी विनाशं ते करिष्यति न संशयः ।
पुरा मुनिं तपस्यन्तं रौद्राश्वं नाम सत्तमम् ॥ ९६ ॥
मुनेः कात्यायनाख्यस्य शिष्यं हिमवदन्तिके ।
दिव्यस्त्रीरूपमतुलं कृत्वाहं कौतुकात् तदा ॥ ९७ ॥
मया संमोहितो विप्रोऽत्यजत् सद्यस्तदा तपः ।
नदूरात् संस्थितेनाहं मुनिना कात्यसूनुना ॥ ९८ ॥
ज्ञात्वा मायां तदा शप्तः शिष्यार्थे क्रोधवह्निना ।
यस्मात् त्वया मे शिष्योऽयं मोहितस्तपसश्च्युतः ॥ ९९ ॥
कृतस्त्वया स्त्रीरूपेण तत् त्वां स्त्री निहनिष्यति ।
इति मां शप्तवान् पूर्वं मुनिः कात्यायनः स्वयम् ॥ १०० ॥
तस्य शापस्य कालोऽयमागत्य समुपस्थितः ।
देवेन्द्रत्वं मया प्राप्तं भुक्तं त्रिभुवनं समम् ॥ १०१ ॥
किञ्चिन्न शोच्यं मेऽत्रास्ति वाञ्छनीयं हि यन्मया ।
तस्मात् त्वां वै प्रपन्नोऽहं[६७] प्रार्थ्यं शेषं हि यन्मम ।
यद्[६८] देहि देवि दुर्गे त्वं भूयस्तुभ्यं नमो नमः ॥ १०२ ॥

---

६६. तथा वराः । ६७. प्रसन्नोऽहं । ६८. तं ।

देव्युवाच

प्रार्थनीयो वरो यस्ते तं वृणुष्व महासुर।
दास्यामि ते वरं प्रार्थ्यं संशयो नात्र विद्यते॥ १०३॥

महिष उवाच

यज्ञभागमहं भोक्तुमिच्छामि त्वत्-प्रसादतः।
यथा मखेषु सर्वेषु पूज्योऽहं स्यां तथा कुरु॥ १०४॥
त्वत्-पादसेवां न त्यक्ष्ये यावत्सूर्यः प्रवर्तते।
एवं वरद्वयं देहि यदि देयो वरो मम॥ १०५॥

देव्युवाच

यज्ञभागाः सुरेभ्यस्तु कल्पिता वै पृथक् पृथक्।
भागो न विद्यते चान्यो यं दास्यामि तवाधुना॥ १०६॥
किन्तु त्वयि मया युद्धे निहते महिषासुर।
नैव त्यक्ष्यसि मत्पादं सततं नात्र संशयः॥ १०७॥
मम प्रवर्तते पूजा यत्र यत्र च तत्र ते।
पूज्यश्चिन्त्यश्च तत्रैव कायोऽयं तव दानव॥ १०८॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्याः प्रत्यूषे महिषासुरः।
वरं प्राप्येह मुदितः प्रसन्नवदनस्तदा॥ १०९॥
उग्रचण्डे भद्रकालि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।
प्रभूता मूर्तया देवि भवत्या सकलात्मिकाः॥ ११०॥
काभिस्ते मूर्तिभिः पूज्यो यज्ञेऽहं परमेश्वरि।
तत् समाचक्ष्व यदि मे भवत्येह कृपा कृता॥ १११॥

देव्युवाच

यानि नामानि प्रोक्तानि त्वयेह महिषासुर।
तासु मूर्तिषु संपृष्टः पूज्यो लोके भविष्यसि॥ ११२॥
उग्रचण्डेति या मूर्तिर्भद्रकाली ह्यहं पुनः।
यया मूर्त्या त्वां हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्तिता॥ ११३॥
एतासु मूर्तिषु सदा पादलग्नो नृणां भवान्।
पूज्यो भविष्यति स्वर्गे देवानामपि रक्षसाम्॥ ११४॥
आदिसृष्टावुग्रचण्डामूर्त्या त्वं निहतः पुरा।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हतः॥ ११५॥
दुर्गारूपेणाधुना त्वां हनिष्यामि सहानुगम्।

किन्तु पूर्वं न गृहीतस्त्वं मया पादयोस्तले ॥ ११६ ॥
अधुना प्रार्थितवरो गृहीतः पूर्वकामयोः[६९] ।
ग्रहीतव्यश्च पश्चात् त्वं यज्ञभागोपभुक्तये ॥ ११७ ॥

और्व्व उवाच

इत्युक्त्वा सा महामाया उग्रचण्डाह्वयां तनुम् ।
दर्शयामास च तदा महिषायासुराय वै ॥ ११८ ॥
या मूर्तिः षोडशभुजा भद्रकालीति विश्रुता ।
तथैव मूर्तिं बाहुभ्यामपराभ्यां तु बिभ्रती ॥ ११९ ॥
दक्षिणाधो गदां वामपाणिना पानपात्रकम् ।
सुरापूर्णं च शिरसा मुण्डमालां बिलेशयम् ॥ १२० ॥
भिन्नाञ्जनचयप्रख्या प्रचण्डा सिंहवाहिनी ।
रक्तनेत्रा महाकाया युक्ताऽष्टादशबाहुभिः ॥ १२१ ॥
उग्रचण्डा भद्रकाली देव्या मूर्तिद्वयं तथा ।
महिषः प्रणनामाशु दृष्ट्वा विस्मयमागतः[७०] ॥ १२२ ॥
ततो यथा पदाक्रम्य निहतो महिषासुरः ।
तथैव जगृहे पादतले देवीद्वयं तु तम् ॥ १२३ ॥
हृदि शूलेन निर्भिन्नं माहिषं विशिरस्ककम् ।
गृहीतकेशं देव्या तु निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥ १२४ ॥
वमद्रक्तं[७१] महाकायं दृष्ट्वा पूर्वतनुं स्वकम् ।
भयं प्राप्यासुरः सोऽथ शुशोच च मुमोह च ॥ १२५ ॥
ततस्तु क्षणमात्मानं संस्तभ्य स तु दानवः ।
प्रणम्य वचनं देवीमिदमाह स गद्गदम् ॥ १२६ ॥

महिष उवाच

यदि देवि प्रसन्नासि यज्ञभागाश्च कल्पिताः ।
तदा ममान्यदा नाश एवमेतद् भवेन्न हि ॥ १२७ ॥
यथाहं न सुरैः सार्धं करिष्ये वैरमद्भुतम् ।
तथा मां कुरु भो देवि न जन्म प्रलभे यथा ॥ १२८ ॥

देव्युवाच

आराधिताऽहं भवता वरो दत्तो मया तव ।
वध्यश्च त्वं ममैवेह नात्र कार्या विचारणा ॥ १२९ ॥
यत् त्वया प्रार्थितं चापि सर्वैः सुरगणैः सह ।

---

६९. कालयोः । ७०. संयुतः । ७१. निर्यद्रक्तं ।

विरोधो[७२] मे सदा मा भूदिति चापि भविष्यति ॥ १३० ॥
मत्पादतलसंस्पर्शाच्छरीरं तव दानव ।
यज्ञभागोपभोगाय विशीर्णं न भविष्यति ॥ १३१ ॥
तव जीवात्मभिः प्राणाः सर्व एव महासुर ।
हरस्य पादसंयोगाच्चिरं स्थास्यति केवलम् ॥ १३२ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि त्रिंशत् त्वं महिषासुर ।
शतानि चाष्टावन्यानि जन्म ते न भविष्यति ॥ १३३ ॥
इति देवी वरं दत्त्वा महिषायासुराय वै ।
प्रणता तेन शिरसा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १३४ ॥
महिषोऽपि निजस्थानं ययौ संमोहितः पुनः ।
मायया चासुरं भावमादाय नृप पूर्ववत् ॥ १३५ ॥

सगर उवाच

अनेके निहता दैत्या मायया लोकभूतये ।
न ते पुनः प्रगृहीतास्तेभ्यो दत्त्वा वरान् शुभान् ।
केन वा कारणेनायं प्रगृहीतो वराः कथम् ।
दत्तास्तस्मै समाचक्ष्व मम सम्यग् द्विजोत्तम ॥ १३६ ॥

और्व उवाच

आराधितो महादेवो रम्भेण सुरवैरिणा ।
चिरेण स च सुप्रीतस्तपसा तस्य शंकरः ॥ १३७ ॥
अथ तुष्टो महादेवः प्रत्यक्षं रम्भमूचिवान् ।
प्रीतोऽस्मि ते वरं रम्भ वरयस्व यथेप्सितम् ॥ १३८ ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच रम्भस्तं चन्द्रशेखरम् ।
अपुत्रोऽहं महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ १३९ ॥
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शंकर ।
अवध्यः सर्वभूतानां जेता च त्रिदिवौकसाम् ॥ १४० ॥
चिरायुश्च यशस्वी च लक्ष्मीवान् स च शंकर ।
एवमुक्तस्तु दैत्येन प्रत्युवाच वृषध्वजः ॥ १४१ ॥
भवत्वेतद्वाञ्छितं ते भविष्यामि सुतस्तव ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १४२ ॥
रम्भोऽपि यातः स्वस्थानं हर्षोत्फुल्लविलोचनः ।
पथि गच्छन् स रम्भोऽथ ददर्श महिषीं शुभाम् ॥ १४३ ॥

---

७२. विरोधी मे ।

त्रिहायणीं चित्रवर्णां सुन्दरीमृतुशालिनीम् ।
स तां दृष्ट्वाथ महिषीं रम्भः कामेन मोहितः ॥ १४४ ॥
दोर्भ्यां गृहीत्वा च तदा चकार सुरतोत्सवम् ।
तयोः प्रवृत्ते सुरते तदा सा तस्य तेजसा ॥ १४५ ॥
दधार महिषी गर्भं तदाऽभून्महिषासुरः ।
तस्यां स्वांशेन गिरिशस्तत्पुत्रत्वमवाप्तवान् ॥ १४६ ॥
ववृधे स तदा राम्भिः शुक्लपक्षशशांकवत् ।
तं च कात्यायनमुनिः शप्तवान्महिषासुरम् ॥ १४७ ॥
दुर्नयं वीक्ष्य शिष्यार्थे शिष्यानुग्रहकारकः ।
कात्यायनेन शप्तं तं विज्ञाय महिषासुरम् ।
प्राह प्रणामपूर्वं तु चण्डिकां चन्द्रशेखरः ॥ १४८ ॥

ईश्वर उवाच

देवी कात्यायनेनायं शप्तोऽद्य महिषासुरः ।
योषिद्विनाशकर्त्रीति भवितेति जगन्मये ॥ १४९ ॥
निःसंशयमृषेर्वाक्यं भविष्यति न संशयः ।
मदीयो माहिषः कायो देवि कार्यस्त्वया त्वयि[७३] ॥ १५० ॥
हन्तव्यः सततं योगयुक्तः पूर्वे परेऽपि च ।
हरिर्हरिस्वरूपेण न त्वां वोढुं क्षमोऽधुना ॥ १५१ ॥
ममायं माहिषः कायस्तव वोढा भविष्यति ।
इति पूर्वं महादेवो देवीं प्रार्थितवान् पुरा ॥ १५२ ॥
तेन देवी महादेवं जग्राह महिषासुरम् ।
त्रिषु जन्मसु पुत्रोऽभूद्रम्भस्य भगवान् हरः ॥ १५३ ॥
सृष्टित्रये स रम्भोऽपि रम्भ एव व्यजायत ।
आसुरं तादृशं तेपे तपः परमदारुणम् ॥ १५४ ॥
तथैवाराधितः शम्भुः पुत्रार्थे प्रददौ वरम् ।
तथैव महिषीं भेजे प्रथमं सुरताय सः ॥ १५५ ॥
तस्यां तथाऽभवद्वीरो दानवो महिषासुरः ।
तथैव शेपे भगवान् मुनिः कात्यायनस्तु तम् ॥ १५६ ॥
इति प्रवृत्ते पूर्वेऽस्मिन् परस्मिन् स तु जन्मनि ।
महिषः पूजयित्वाऽथ देवीं वरमयाचत ॥ १५७ ॥
तृतीये जन्मनि वरं प्राप्य कल्पानशेषतः ।

---

७३. जगन्मयि ।

नेह मे जन्म भवितेत्येवं वरमयाचत ॥ १५८ ॥
तेन देवीपादतले तिष्ठत्येषोऽसुरोऽधुना ।
नोत्पत्तिरपि तस्याथ संवर्तान्तादभून्नृप ॥ १५९ ॥
एवं देवीप्रसादेन महादेवांशसम्भवः ।
परामवाप सततं प्रतिपत्तिं महासुरः ॥ १६० ॥
इति ते कथितं राजन् यथा स महिषासुरः ।
देवीपादतलं प्राप्य यथा सोऽद्यापि मोदते ।
प्रस्तुतं शृणु भो राजन् कथयामि नृपोत्तम ॥ १६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति वः कथितं राजा सगरः सहितो यथा ।
और्व्वेण चक्रे संवादं देवीमहिषयोजने ॥ १६२ ॥
पुनर्यदाह भूयोऽपि सगराय महात्मने ।
तच्छृण्वन्तु मुनिश्रेष्ठा गुह्याद् गुह्यतरं परम् ॥ १६३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे महिषासुरोपाख्यानो
नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

और्व उवाच

यथाह भगवान् देवो भैरवाय महात्मने ।
वेतालाय नृपश्रेष्ठ तथा त्वं प्रस्तुतं शृणु ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

उग्रचण्डा च या मूर्तिरष्टादशभुजाऽभवत् ।
सा नवम्यां पुरा कृष्णपक्षे कन्यां गते रवौ ॥ २ ॥
प्रादुर्भूता महामाया योगिनीकोटिभिः सह ।
आषाढस्य तु पूर्णायां सत्रं द्वादशवार्षिकम् ॥ ३ ॥
दक्षः कर्तुं समारेभे वृताः सर्वे दिवौकसः ।
ततोऽहं न वृतस्तेन दक्षेण सुमहात्मना ॥ ४ ॥
कपालीति सती चापि तज्जायेति च नो वृता ।
ततो रोषसमायुक्ता प्राणांस्तत्याज सा सती ॥ ५ ॥
त्यक्तदेहा सती चापि चण्डमूर्तिस्तदाऽभवत् ।
ततः प्रवृत्ते यज्ञेऽपि तस्मिन् द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥
नवम्यां कृष्णपक्षे तु कन्यायां चण्डमूर्तिधृक् ।
योगनिद्रा महामाया योगिनीकोटिभिः सह ॥ ७ ॥
सतीरूपं परित्यज्य यज्ञभङ्गमथाकरोत ।
शंकरस्य गणैः सर्वैः सहिता शंकरेण च ॥ ८ ॥
स्वयं बभञ्ज सा देवी महासत्रं महात्मनः ।
ततो देव्या महाक्रोधे व्यतीते त्रिदिवौकसः ॥ ९ ॥
पूजयांचक्रुरतुलां देवीं पूर्वोदितेन वै ।*
पूर्वोदितविधानेन पूजामस्या दिवौकसः ॥ १० ॥
कृत्वैव परमामापुर्निर्वृतिं दुःखहानये ।
एवमन्यैरपि सदा कार्यं देव्याः प्रपूजनम् ॥ ११ ॥
विभूतिमतुलां प्राप्तुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम् ।*
यो मोहादथवाऽऽलस्याद् देवीं दुर्गां महोत्सवे ॥ १२ ॥
न पूजयति दम्भाद् वा द्वेषाद्वाऽप्यथ भैरव ।
क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै ॥ १३ ॥

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिकं दृश्यते ।

परत्र च महामाया-बलिर्भूत्वा प्रजायते[७४]।
अष्टम्यां रुधिरैश्चैव महामांसैः सुगन्धिभिः ॥ १४ ॥
पूजयेद्बहुजातीयैर्बलिभिर्भोजनैः शिवाम्।
सिन्दूरैः पट्टवासोभिर्नानाविधविलेपनैः ॥ १५ ॥
पुष्पैरनेकजातीयैः फलैर्बहुविधैरपि।
उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान् न समाचरेत् ॥ १६ ॥
यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्।
पूजयित्वा महाष्टम्यां नवम्यां बलिभिस्तथा[७५] ॥ १७ ॥
विसर्जयेद् दशम्यां तु श्रवणे शावरोत्सवैः।
अन्त्यपादो दिवाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥ १८ ॥
तदा सम्प्रेषणं देव्या दशम्यां कारयेद् बुधः।
सुवासिनी – कुमारीभिर्वेश्याभिर्नर्तकैस्तथा ॥ १९ ॥
शङ्खतूर्यनिनादैश्च मृदङ्गैः पटहैस्तथा।
ध्वजैर्वस्त्रैर्बहुविधैर्लाजपुष्पप्रकीर्णकैः ॥ २० ॥
धूलिकर्दमविक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः।
भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ॥ २१ ॥
भगलिङ्गादिशब्दैश्च क्रीडयेयुरलं जनाः।
परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपेद् यदि ॥ २२ ॥
क्रुद्धा भगवती तस्य शापं दद्यात् सुदारुणम्।
आदिपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥ २३ ॥
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां न पुनर्दिवा।
अन्त्यपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥ २४ ॥
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां दिनभागतः।
विसर्जनमनेनैव मन्त्रेण वत्स भैरव ॥ २५ ॥
कर्तव्यमम्भसि स्थाप्य विसृज्य च विभूतये।
उत्तिष्ठ देवि चण्डेशे शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥ २६ ॥
कुरुष्व मम कल्याणमष्टभिः शक्तिभिः सह।
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके[७६] ॥ २७ ॥
यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे।
व्रज त्वं स्रोतसि जले तिष्ठ गेहे च भूतये ॥ २८ ॥
निमज्ज्याम्भसि सन्त्यज्य[७७] पत्रिकावर्जिते जले।
पुत्रायुर्धनवृद्ध्यर्थं स्थापितासि जले मया ॥ २९ ॥

---

७४. स जायते। ७५. स्तदा। ७६. परमेश्वरि। ७७. सम्पूज्य।

इत्यनेन तु मन्त्रेण देवीं संस्थापयेज्जले।
सर्वलोक-हितार्थाय सर्वलोकविभूतये ॥ ३० ॥
दुर्गा तन्त्रेण मन्त्रेण पूजितव्ये उभे अपि।
भद्रकालीमुग्रचण्डां महामायां महोत्सवे ॥ ३१ ॥
नेत्रबीजं तु सर्वासां पूजने परिकीर्तितम्।
योगिनीनां तु सर्वासां मूलमूर्तेस्तथैव च ॥ ३२ ॥
मन्त्रं तथोग्रचण्डायाः पृथक् त्वं शृणु भैरव।
आद्यद्वयं नेत्रबीजं मन्त्रस्योपान्तमन्तरे ॥ ३३ ॥
वह्निनाऽन्तःस्वरेणेन्दुबिन्दुभ्यां तन्त्रमौग्रकम्।
नेत्रबीजं द्वितीयं तु द्विधावर्तितमुच्यते ॥ ३४ ॥
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रोऽयं धमकामार्थसिद्धये।
यदा तु वैष्णवी देवी महामाया जगन्मयी ॥ ३५ ॥
पूज्यते वैष्णवी देवी तन्त्रोक्ता अष्टयोगिनीः।
ताः प्रोक्ताः शैलपुत्र्याश्च पूर्वकल्पे च भैरव ॥ ३६ ॥
उग्रचण्डादयश्चाष्टौ दुर्गातन्त्रस्य कीर्तिताः।
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रेण भद्रकालीं प्रपूजयेत्[७८] ॥ ३७ ॥
पूजयेद् भूतिवृद्ध्यर्थमेता एवाष्टयोगिनीः।
जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ॥ ३८ ॥
दुर्गां शिलां क्षमां धात्रीं दलेष्वष्टसु पूजयेत्।
यदोग्रचण्डातन्त्रेण सा देवी तत्र पूज्यते[७९] ॥ ३९ ॥
योगिन्यस्तत्र पूज्याः स्युरष्टावन्याश्च भैरव।
कौशिकी शिवदूती च उमा हैमवतीश्वरी ॥ ४० ॥
शाकम्भरी च दुर्गा च सप्तमी च महोदरी।
उमायाः सौम्यमूर्तेस्तु तन्त्रं त्वं शृणु भैरव ॥ ४१ ॥
पादिः समाप्तिसहितः फडन्तो नान्त एव च।
एकाक्षरस्त्र्यक्षरश्च उमामन्त्र इति स्मृतः ॥ ४२ ॥
सुवर्णसदृशीं गौरीं भुजद्वयसमन्विताम्।
नीलारविन्दं वामेन पाणिना बिभ्रतीं सदा ॥ ४३ ॥
शुक्लं तु चामरं धृत्वा भर्गस्याङ्केऽथ[८०] दक्षिणे।
विन्यस्य दक्षिणं हस्तं तिष्ठन्तीं परिचिन्तयेत् ॥ ४४ ॥
विनापि शम्भुं रुद्राणीं भक्तस्तु परिचिन्तयेत्।
द्विभुजां स्वर्णगौराङ्गीं पद्मचामरधारिणीम् ॥ ४५ ॥

---

७८. प्रपूजने। ७९. प्रतिगृह्यते। ८०. भर्गस्यांशे।

व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मासनगता सदा ।
एतस्याः पूजने प्रोक्ता अष्टौ वेतालभैरव ॥ ४६ ॥
योगिन्यो नायिकाश्चापि पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।
जया च विजया चैव मातङ्गी ललिता तथा ॥ ४७ ॥
नारायण्यथ सावित्री स्वधा स्वाहा तथाऽष्टमी ।
पूर्वं शुम्भो निशुम्भश्च दानवौ भ्रातरावुभौ ॥ ४८ ॥
बभूवतुर्महासत्त्वौ महाकायौ महाबलौ ।
अन्धकस्य सुतौ द्वौ तौ दन्तिनाविव दुर्मदौ ॥ ४९ ॥
मया विनिहिते तस्मिन्नन्धकाख्ये महाबले ।
ससैन्यवाहनौ तौ तु पातालतलमाश्रितौ ॥ ५० ॥
ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं ब्रह्माणन्तौ महासुरौ ।
सम्यक् तदाऽतोषयतां स सुप्रीतो वरं ददौ ॥ ५१ ॥
तौ ब्रह्मवरदृप्तौ तु समासाद्य जगत्त्रयम् ।
इन्द्रत्वमकरोच्छुम्भश्चन्द्रत्वं च निशुम्भकः ॥ ५२ ॥
सर्वेषामेव देवानां यज्ञभागानुपाहरत् ।
स्वयं शुम्भो निशुम्भश्च दिक्पालत्वं च तौ गतौ ॥ ५३ ॥
सर्वे सुरगणाः सेन्द्रास्ततो गत्वा हिमाचलम् ।
गंगावतारनिकटे महामायां प्रतुष्टुवुः ॥ ५४ ॥
अनकेशः स्तुता देवी तदा सर्वामरोत्करैः ।
मातङ्गवनितामूर्तिर्भूत्वा देवानपृच्छत ॥ ५५ ॥
युष्माभिरमरैरत्र स्तूयते का च भामिनी ।
किमर्थमागता यूयं मातंगस्याश्रमं प्रति ॥ ५६ ॥
एवं ब्रुवन्त्या मातंग्यास्तस्यास्तु कायकोषतः ।
समुद्भूताऽब्रवीद् देवी मां स्तुवन्ति सुरा इति ॥ ५७ ॥
शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरौ बाधेते सकलान् सुरान् ।
तस्मात् तयोर्वधायाहं स्तूये तैः सकलैः सुरैः ॥ ५८ ॥
विनिःसृतायां देव्यां तु मातंग्याः कायकोषतः ।
भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साऽभूद् गौरी क्षणादपि ॥ ५९ ॥
कालिकाख्याऽभवत् सापि हिमाचलकृताश्रया ।
तामुग्रतारामृषयो वदन्तीह मनीषिणः ॥ ६० ॥
उग्रादपि भयात्त्राति यस्माद् भक्तान् सदाम्बिका ।
एतस्याः प्रथमं बीजं कथितं त्रयमेव[८१] च ॥ ६१ ॥

---

८१. मन्त्रमेव ।

एषैवैकजटाख्या तु यस्मात्तस्माज्जटैकिका ।
शृणुतं चिन्तनं चास्याः सम्यग्वेतालभैरवौ ॥ ६२ ॥
यथा ध्यात्वा महादेवीं भक्तः प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।
चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥ ६३ ॥
खड्गं दक्षिणपाणिभ्यां[८२]बिभ्रतीं चामरं त्वधः ।
कर्त्रीं च खर्परं चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम् ॥ ६४ ॥
द्यां[८३] लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रतीं शिरसा स्वयम् ।
मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा ॥ ६५ ॥
वक्षसा नागहारं तु बिभ्रतीं रक्तलोचनाम् ।
कृष्णवस्त्रधरां कट्यां व्याघ्राजिन-समन्विताम् ॥ ६६ ॥
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहानां शवं स्वयम् ॥ ६७ ॥
साट्टहासां महाघोरां रावयुक्तातिभीषणाम् ।
चिन्त्याग्रे तारा सततं भक्तिमद्भिः सुखेप्सुभिः ॥ ६८ ॥
एतस्याः सम्प्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनीः स्मृताः ।
महाकाल्यथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ॥ ६९ ॥
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत् ॥ ७० ॥
या कायकोषान्निःसृता कालिकायास्तु भैरव ।
सा कौशिकीति विख्याता चारुरूपा मनोहरा ॥ ७१ ॥
निःसृता हृदयाद् देव्या रसनाग्रेण चण्डिका ।
नैतस्याः सदृशी मूर्त्या चारुरूपेण विद्यते ॥ ७२ ॥
त्रिषु लोकेषु कान्त्या वा नास्यास्तुल्या भविष्यति ।
योगनिद्रा महामाया या मूलप्रकृतिर्मता ॥ ७३ ॥
तस्याः प्राणस्वरूपेयं देवी या कौशिकी स्मृता ।
नेत्रबीजं तथैतस्या वीजं तु परिकीर्तितम् ॥ ७४ ॥
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि मूर्तिरूपं च भैरव ।[८४]
समाप्तिनान्त्यदन्त्यस्तु षड्वर्गादि-सबिन्दुभिः ॥ ७५ ॥
षष्ठस्वरेण संस्पृष्टो बिन्दुना समलंकृतः ।
कौशिकीमन्त्रतन्त्रोऽयं सर्वकामार्थदायकः ॥ ७६ ॥

---

८२. बिभ्रतीन्दीवरं । ८३. खं ।
८४. तन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रदं नृणाम् ।

तस्यास्तु सम्प्रवक्ष्यामि या मूर्तिरिह भैरव ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा जगदाह्लादकारकम् ॥ ७७ ॥
धम्मिल्लसंयतकचां विधोश्चाधोमुखीं कलाम् ।
केशान्ते तिलकस्योर्ध्वे दधती सुमनोहरा ॥ ७८ ॥
मणिकुण्डलसंघृष्टगण्डा मुकुटमण्डिता ।
सज्ज्योतिः कर्णपूराभ्यां कर्णमापूर्य संगता ॥ ७९ ॥
सुवर्णमणिमाणिक्यनागहारविराजिता ।
सदा सुगन्धिभिः [८५]पद्मैरम्लानैरतिसुन्दरी ॥ ८० ॥
मालां बिभर्ति ग्रीवायां रत्नकेयूरधारिणी ।
मृणालायतवृत्तैस्तु बाहुभिः कोमलैः शुभैः ॥ ८१ ॥
राजन्ती कञ्चुकोपेत-पीनोन्नतपयोधरा ।
क्षीणमध्या पीतवस्त्रा त्रिवलीप्रख्यभूषिता ॥ ८२ ॥
शूलं वज्रं च बाणं च खड्गं शक्तिं तथैव च ।
दक्षिणैः पाणिभिर्देवी गृहीत्वा तु विराजिता ॥ ८३ ॥
गदां घण्टां च चापं च चर्म शङ्खं तथैव च ।
ऊर्ध्वादिक्रमतो देवी दधती वामपाणिभिः ॥ ८४ ॥
सिंहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्माणि कौशिकी ।
बिभ्रती रूपमतुलं ससुरासुरमोहनम् ॥ ८५ ॥
एतस्याः शृणु वत्स त्वं याः पूज्या अष्टयोगिनीः ।
ताः पूजिताश्च कुर्वन्ति चतुर्वर्गं नृणां सदा ॥ ८६ ॥
ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता ततो माहेश्वरीं मता ।
कौमारी चैव वाराही वैष्णवी पञ्चमी तथा ॥ ८७ ॥
नारसिंही तथैवैन्द्री शिवदूती तथाऽष्टमी ।
एताः पूज्या महाभागा[८६] योगिन्यः कामदायिकाः ॥ ८८ ॥
देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कालीति च विश्रुता ।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदं शृणु भैरव ॥ ८९ ॥
समाप्तिसहितो दन्त्य. प्रान्तस्तस्मात् पुरःसरः ।
षष्ठस्वराग्निबिन्द्विन्दुसहितः सादिरेव च ॥ ९० ॥
कालीमन्त्रमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थदायकम् ।
एतन्मूर्तिं प्रवक्ष्यामि वत्सैकाग्रमनाः[८७] शृणु ॥ ९१ ॥
नीलोत्पलदलश्यामा चतुर्बाहुसमन्विता ।

---

८५. पुष्पैः··· । ८६. महामाया । ८७. यथैकाग्र··· ।

खट्वांगं चन्द्रहासं च बिभ्रती दक्षिणे करे ॥ ९२ ॥
वामे चर्म[88] च पाशं च ऊर्ध्वाधोभागतः पुनः ।
दधती मुण्डमालां च व्याघ्रचर्मधरा वराम् ॥ ९३ ॥
कृशांगी दीर्घदंष्ट्रा च अतिदीर्घातिभीषणा ।
लोलजिह्वा निम्नरक्त-नयना नादभैरवा ॥ ९४ ॥
कबन्धवाहनासीना[89] विस्तार-श्रवणानना ।
एषा ताराह्वया देवी चामुण्डेति च गीयते ॥ ९५ ॥
एतस्या योगिनीश्चाष्टौ पूजयेच्चिन्तयेद् यदि ।
त्रिपुरा भीषणा चण्डी कर्त्री हर्त्री विधायिनी ॥ ९६ ॥
कराला शूलिनी चेति अष्टौ ताः परिकीर्तिताः ।
एषाऽतिकामदा देवी जाड्यहानिकरी सदा ॥ ९७ ॥
एतस्याः सदृशी काचित् कामदा न हि विद्यते ।
कौशिक्या हृदयाद् देवी निःसृता ध्यायतो हरेः ॥ ९८ ॥
शिवदूतीति सा ख्याता या च देवशतैर्वृता ।
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थदायकम् ॥ ९९ ॥
यच्छ्रुत्वा साधको याति दुर्लभं शिवमन्दिरम् ।
यामाराध्य महादेवीं शिवदूतीं शिवात्मिकाम् ॥ १०० ॥
नचिराल्लभते कामान् नरः सर्वजयी भवेत् ।
अन्तः समाग्निसहितो बिन्दिन्दुभ्यां दशावरः ॥ १०१ ॥
स्वरेणोपान्तदन्त्येन संस्पृष्टोऽन्तेन पूर्वशः ।
स एव बिन्दुयुगलपूर्वस्थोपान्तपावकः ॥ १०२ ॥
षष्ठस्वरकलाशून्यैः सहितः प्रथमस्थितः ।
मन्त्रोऽयं[90] शिवदूत्यास्तु शिवदूतीजयप्रदः ॥ १०३ ॥
रूपमस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु वत्सैकसम्मतः ।
चतुर्भुजं महाकायं सिन्दूरसदृशद्युति ॥ १०४ ॥
रक्तदन्तं मुण्डमाला-जटाजूटार्धचन्द्रधृक् ।
नागकुण्डलहाराभ्यां शोभितं नखरोज्ज्वलम् ॥ १०५ ॥
व्याघ्रचर्म-परीधानं दक्षिणे शूलखड्गधृक् ।
वामे पाशं तथा चर्म बिभ्रदूर्ध्वापरक्रमात् ॥ १०६ ॥
स्थूलवक्त्रं च पीनोष्ठं तुंगमूर्ति भयंकरम् ।
निक्षिप्य दक्षिणं पादं सन्तिष्ठत् कुणपोपरि ॥ १०७ ॥

---

८८. चर्म कपालं च··· । ८९. पीना विस्तार··· । ९०. तन्त्रोऽयं ।

वामपादं शृगालस्य पृष्ठे फेरुशतैर्वृतम् ।
ईदृशीं शिवदूत्यास्तु मूर्तिं ध्यायेद् विभूतये ॥ १०८ ॥
ध्यानमात्रादथैतस्या नरः कल्याणमाप्नुयात् ।
पूजनादचिराद् देवी सर्वान् कामान् ददाति च ॥ १०९ ॥
यः शिवाविरुतं श्रुत्वा शिवदूतीं शुभप्रदाम् ।[९१]
प्रणमेत् साधको भक्त्या तस्य कामाः करे स्थिताः ॥ ११० ॥
यदा जघान जगतां रक्तबीजं हिताय वै ।
महादेवी महामाया तदास्याः कायतः सृताः ॥ १११ ॥
दूतं प्रस्थापयामास शिवं शुम्भाय साम्बिका ।
तेन[९२] सा शिवदूतीति देवैः सर्वैः प्रगीयते ॥ ११२ ॥
क्षेमकारी च शान्ता च वेदमाता महोदरी ।
कराला कामदा देवी भगास्या भगमालिनी ॥ ११३ ॥
भगोदरी भगारोहा भगजिह्वा भगा तथा ।
एता द्वादश योगिन्यः पूजने परिकीर्तिताः ॥ ११४ ॥
एता द्वादश योगिन्यः शिवदूत्याः सदैव हि ।
विचरन्ती स्वयं देवी यत्र तत्रैव गच्छति ॥ ११५ ॥
योगिन्यो ह्यथ सख्यः स्युर्यथान्यासां तथा पुनः ।
चण्डिकायास्तु योगिन्यः सख्योऽत्र च प्रकीर्तिताः ॥ ११६ ॥
इति ते त्वङ्गमन्त्राणि कथितानि समासतः ।
कामाख्यायाश्च माहात्म्यं कल्पमात्रं वदामि वाम् ॥ ११७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यामाहात्म्ये
एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

---

९१. शिवप्रदाम् । ९२. तदा ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

भगवानुवाच

कामार्थमागता यस्मान्मया सार्धं महागिरौ ।
कामाख्या प्रोच्यते देवी नीलकूटे रहोगता ॥ १ ॥
कामदा कामिनी कामा कान्ता कामांगदायिनी ।
कामांगनाशिनी यस्मात् कामाख्या तेन चोच्यते ॥ २ ॥
एतस्याः शृणु माहात्म्यं कामाख्याया विशेषतः ।
या सा प्रकृतिरूपेण जगत्सर्वं नियोजयेत् ॥ ३ ॥
मधुकैटभनाशाय महामायाविमोहितः ।
यदा संयुयुधे विष्णुस्तदैषामोहयद्धरिम्[१३] ॥ ४ ॥
दैनन्दिने तु प्रलये प्रसुप्ते गरुडध्वजे ।
तस्य श्रवणविड्जातावसुरौ मधुकैटभौ ॥ ५ ॥
कूर्मपृष्ठे स्थिता देवी विशीर्णेवाभवज्जलैः[१४] ।
तां विशीर्णां योगनिद्रा महामाया व्यलोकयत् ॥ ६ ॥
तां वै दृढतरां पृथ्वी कर्तुं प्रति तदेश्वरी ।
उपायं चिन्तयामास कथं पृथ्वी भवेद्दृढा ॥ ७ ॥
इदानीमाव्यवत्[१५] पृथ्वी प्रवृत्ता कोमला जलैः ।
सृष्टिकाले जनान् सोढुं कथं शक्ता भविष्यति ॥ ८ ॥
इति संचिन्त्य सा माया जगतां सृष्टिरूपिणी ।
उपगम्य तदा विष्णुमाससाद सुनिद्रितम् ॥ ९ ॥
तं तु सुप्तं समासाद्य जगन्नाथं जगत्पतिम् ।
वामहस्तकनिष्ठाग्रं तस्य कर्णे न्यवेशयत् ॥ १० ॥
निवेश्य नखराग्रेण प्रोद्धृत्य श्रावणं मलम् ।
चूर्णीचकार सा देवी योगनिद्रा जगत्प्रसूः ॥ ११ ॥
तत्कर्णमलचूर्णिभ्यो मधुर्नामासुरोऽभवत् ।
ततो दक्षिणहस्तस्य कनिष्ठाग्रं तु दक्षिणे ॥ १२ ॥
कर्णे न्यवेशयद् देवी तस्मादप्युद्धृतं मलम् ।
तच्चापि क्षोदयामास करशाखाद्वयेन तु ॥ १३ ॥

---

१३. मोहयद् दृढम् । १४. कूर्मपृष्ठगता पृथ्वी प्रवृत्ता कोमलाजलैः ।
१५. इदानीं साभवत् ।

ततोऽभूत् कैटभो नाम बलवान् सोऽसुरो महान् ।
उत्पन्नः स च पानार्थं यस्मान्मृगितवान्मधु ॥ १४ ॥
ततस्तस्य महादेवी मधुनामाकरोत्तदा ।
उत्पन्नः कीटवद्भाति महामायाकरे यतः ॥ १५ ॥
ततोऽस्य कैटभं नाम महामाया तदाकरोत् ।
तावुवाच महामाया युध्यतां हरिणा सह ॥ १६ ॥
युवां नो श्रद्धयेवात्र भवन्तौ निहनिष्यति ।
युवां यदा प्रभाषेथे आवां विष्णो वधान भो ॥ १७ ॥
तदैवायं युवां हन्ता नान्यथा हरिरप्यथ ।
महामायामोहितौ तौ विष्णुगात्रं तदा गतौ ॥ १८ ॥
भ्रममाणौ ददृशतुर्नाभिपद्मोत्थितं विधिम् ।
तमूचतुस्तौ धातारं हनिष्यावोऽद्य त्वामिह ॥ १९ ॥
तं जागरय वैकुण्ठं यदि जीवितुमिच्छसि ।
ततो ब्रह्मा महामायां योगनिद्रां जगत्प्रसूम् ॥ २० ॥
प्रसादयामास तदा स्तुतिभिर्बहुभिर्भयात् ।
चिरं स्तुताथ सा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ॥ २१ ॥
प्रसन्ना तरसा व्यग्रमुवाच च यथाविधि ।
किमर्थं संस्तुता चाहं किं करिष्याम्यहं तव ॥ २२ ॥
तद् वद त्वं महाभाग करिष्याम्यहमद्य ते ।
ततस्तेन महामाया प्रोक्ता धात्रा महात्मना ॥ २३ ॥
प्रबोधय जगन्नाथं यावत्तौ मां हनिष्यतः ।
सम्मोहय दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २४ ॥
इत्युक्ता सा तदा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ।
बोधयामास वैकुण्ठं मोहयामास[९६] तौ तदा ॥ २५ ॥
ततः प्रबुद्धः कृष्णस्तु ददर्श भयशालिनम् ।
ब्रह्माणं तौ तदा घोरावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २६ ॥
ततस्ताभ्यां स युयुधे ह्यसुराभ्यां जनार्दनः ।
नाशकद्धारितुं वीरावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २७ ॥
अनन्तोऽपि फणाग्रेण तान्नो धर्तुं क्षमोऽभवत् ।
युध्यमानान् महावीरान् वैकुण्ठं मधुकैटभान् ॥ २८ ॥
अथ ब्रह्मा शिलारूपां स्थितिशक्तिं तदाकरोत् ।

---

९६. योधयामास ।

अर्धयोजनविस्तीर्णामर्धयोजनमायताम् ॥ २९ ॥
तस्यां शिलायां गोविन्दो युयुधे नृपसत्तम ।
सह ताभ्यां शिला सा तु प्रविवेश जलान्तरम् ॥ ३० ॥
तस्यां तु शक्त्यां मग्नायां तोये स युयुधे हरिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धैर्निरन्तरम् ॥ ३१ ॥
यदा वै नाशकद् हन्तुं तौ विष्णुर्जगतां पतिः ।
परां चिन्तां तदावाप विधातापि भयात् ततः ॥ ३२ ॥
ततस्तावेव तं विष्णुमूचतुर्बलदर्पितौ ।
पुनः पुनर्जगन्मातृ-महामाया-विमोहितौ ॥ ३३ ॥
तुष्टौ स्वस्त्वन्नियुद्धेन वरं वरय माधव ।
तवेष्टं सम्प्रदास्यावः सत्यमेतद् ब्रुवोऽधुना ॥ ३४ ॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा माधवो जगतां पतिः[९७] ।
उवाच तौ युवां वध्यौ भवतां मे महाबलौ ॥ ३५ ॥
इति देहि वरं मह्यं दातव्यं यदि विद्यते ।
तौ तदा प्राहतुर्नाशस्त्वत्तो नौ शोभनोऽधुना[९८] ॥ ३६ ॥
तत्रावां जहि नो यत्र तोयं सम्प्रति विद्यते ।
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा माधवो जगतां पतिः ॥ ३७ ॥
ब्रह्माणं मां च शीघ्रेण प्राहेदं चात्मसंज्ञया ।
ब्रह्मशक्तिशिलां शीघ्रमुद्धृत्य ध्रियतां यथा ॥ ३८ ॥
तत्र स्थित्वा महाघोरौ हनिष्यामि महाबलौ ।
ततो ब्रह्मा ह्यहं चैव उद्दधार शिलां तु ताम् ॥ ३९ ॥
तस्यां मध्ये पूर्वभागे ह्यहं पर्वतरूपधृक् ।
ऊर्ध्वं स्थित्वा शिलां भित्त्वा प्रविवेश रसातलम् ॥ ४० ॥
ऐशान्यामभवत् कूर्मः पर्वतश्चाग्रहीच्छिलाम् ।
वायव्यां च तथानन्तो नैर्ऋत्यां च सुरेश्वरी ॥ ४१ ॥
महामाया जगद्धात्री शैलरूपप्रधारिणी ।
आग्नेय्यां च तथा विष्णुरेकरूपेण संस्थितः ॥ ४२ ॥
ब्रह्मशक्तिशिलां गृह्णन् भगवान् परमेश्वरः ।
मध्ये ब्रह्मा त्वहं चैव वराहश्च तथापरः ॥ ४३ ॥
ततो वराहपृष्ठास्य चरमे जगतांपतिः ।

---

९७. भगवान् गरुडध्वजः ।
९८. तौ तदा प्राह युष्मत्तो योग्यो नौ शोभनो वरः ।

स्थित्वा शिलामवष्टभ्य ब्रह्मशक्तिमधोगताम् ॥ ४४ ॥
वामोरुजघने यत्नादारोप्य शिरसी तयोः ।
जगदाधारभूतः स सर्वयत्नेन संयुतः ॥ ४५ ॥
सर्वैर्बलैः समाक्रम्य चिच्छेद च पृथक् पृथक् ।
मधुकैटभयोः सम्यग् ग्रीवयोः[९९] पृथिवीमृते ॥ ४६ ॥
तस्य चाक्रमत स्थेम्ना ब्रह्मशक्तिरधोगता ।
ध्रियमाणापि देवौघैर्यत्नादपि मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥
ततस्तयोस्तु मृतयोः शरीरे जगतां पतिः ।
ब्रह्मशक्तिं समुद्धृत्य न्यधात् तस्यां प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥
उद्धृतायां पृथिव्यां तु तयोर्मेदोविलेपनैः ।
सुदृढामकरोत् पृथ्वीं क्लेदितां तोयराशिभिः ॥ ४९ ॥
मेदोविलेपनाद् यस्माद् गीयते मेदिनी च सा ।
अद्यापि पृथिवी देवी देवराक्षसमानुषैः ॥ ५० ॥
अथ काले बहुतिथे व्यतीते प्राणिसर्जने ।
अगृह्णां दक्षतनयां भार्यार्थेऽहं वधूं वराम् ॥ ५१ ॥
सा मेऽभूत् प्रेयसी भार्या प्रादाय समयं पितुः ।
अनिष्टकारी त्वं चेत् स्याः प्राणांस्त्यक्ष्ये तदा त्वहम् ॥ ५२ ॥
ततो यज्ञे समस्तांस्तु स च वव्रे चराचरम् ।
न मां नापि सतीं वव्रे तदानीष्टान्मृता तु सा ॥ ५३ ॥
ततो मोहं[१००]समाक्रान्तस्तमादाय मृतामहम् ।
प्रातः[१] पीठवरं तं तु भ्रममाण इतस्ततः ॥ ५४ ॥
तस्यास्त्वङ्गानि पर्यायात् पतितानि यतो यतः ।
तत् तत् पुण्यतमं जातं योगनिद्राप्रभावतः ॥ ५५ ॥
तस्मिंस्तु कुब्जिकापीठे सत्यास्तद्योनिमण्डलम् ।
पतितं तत्र सा देवी महामाया व्यलीयत ॥ ५६ ॥
लीनायां योगनिद्रायां मयि पर्वतरूपिणी ।
स नीलवर्णः शैलोऽभूत्पतिते योनिमण्डले ॥ ५७ ॥
स तु शैलो महातुङ्गः पातालतलमाविशत् ।
तस्या आक्रमणाद्गाढं[२] ह्यन्तस्थं द्रुहिणो ह्यधात् ॥ ५८ ॥
स तु पूर्वं ब्रह्मशक्तिं शिलां धर्तुं चतुर्मुखः ।
शैलरूपोऽभवत् तेन शैलरूपेण मामधात् ॥ ५९ ॥
ब्रह्मा पर्वतरूपी स मयि पर्वतरूपिणी ।

---

९९. वीरयोः । १००. समुत्पन्नः । १. प्राप्तः । २. वांच ।

स शक्तोऽधोऽगमद् गाढमाक्रान्तो मायया विधे:[१] ॥ ६० ॥
ततो वराहः संसक्तो मयि मां स तु माधवः ।
शैलरूपः शैलरूपं धर्तुं समुपचक्रमे ॥ ६१ ॥
सोऽप्यधोऽयान्मया सार्धं तदा पर्वतरूपिणीं ।
आक्रम्य देवीं पृथिवीं स्थितो भुवि निखानितः ॥ ६२ ॥
शतं शतं योजनानां तुङ्गमासीद् गिरित्रयम् ।
तदाक्रान्तं महादेव्या सर्वमेव ह्यधोगतम् ॥ ६३ ॥
क्रोशमात्रस्थितं तुङ्गशेषं तत्त्रितयस्य तु ।
एका समस्तजगतां प्रकृतिः सा यतस्ततः ॥ ६४ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवैर्देवैर्धृता सा जगतां प्रसूः ।
तत्र पूर्वो ब्रह्मशैलः श्वेत इत्युच्यते सुरैः ॥ ६५ ॥
मद्रूपधारी शैलस्तु नील इत्युच्यते तथा ।
स तु मध्यगतः पीठस्त्रिकोणोलूखलाकृतिः ॥ ६६ ॥
विभ्राजमानः सततं मध्ये ब्रह्मवराहयोः ।
वराहः शैलरूपो यः स चित्र इति कथ्यते ॥ ६७ ॥
सर्वेषां संस्थितः पश्चाद् दीर्घः सर्वेभ्य एव तु ।
ऐशान्यां योऽभवत् कूर्मः शैलरूपो महाद्युतिः ॥ ६८ ॥
मणिकर्णः स नाम्ना तु ख्यातो देवौघसेवितः ।
योऽनन्तरूपः शैलस्तु वायव्यां समवस्थितः ॥ ६९ ॥
मणिपर्वतसंज्ञोऽसौ पर्वतो माधवप्रियः ।
महामाया गिरिर्यस्तु नैर्ऋत्यां समवस्थितः ॥ ७० ॥
स गन्धमादनो नाम्ना सर्वदा शंकरप्रियः ।
वराहपृष्ठचरमे यतश्छिन्नौ महासुरौ ॥ ७१ ॥
हरिणा तत्र संयातः पाण्डुनाथ इति स्मृतः ।
ब्रह्मशक्तिशिलायास्तु पूर्वभागे तु मध्यतः ॥ ७२ ॥
यस्तु पर्वतरूपोऽहं स तु भस्मचलाह्वयः ।
एवं पुण्यतमे पीठे कुब्जिकापीठसंज्ञके ॥ ७३ ॥
नीलकूटे मया सार्धं देवी रहसि संस्थिता ।
सत्यास्तु पतितं तत्र विशीर्णं योनिमण्डलम् ॥ ७४ ॥
शिलात्वमगमच्छैले कामाख्या तत्र संस्थिता ।
संस्पृश्य तां शिलां मर्त्यो ह्यमरत्वमवाप्नुयात् ॥ ७५ ॥
अमर्त्यो ब्रह्मसदनं तत्स्थो मोक्षमवाप्नुयात् ।

---

१. विधौ ।

तस्याः शिलाया माहात्म्यं यत्र कामेश्वरी स्थिता ॥ ७६ ॥
अद्भुतं यस्य गुह्ये तु लोहं भस्म भवेद्गतम् ।
सा चापि प्रत्यहं तत्र पञ्चमूर्तिधराभवत् ॥ ७७ ॥
मोहार्थं सर्वलोकानां ममापि प्रीतये शिवा ।
अहं पञ्चमुखेनाशु पञ्चभागे व्यवस्थितः ॥ ७८ ॥
ईशानः पूर्वभागस्थः कामेश्वर्याः प्रधानतः ।
ऐशान्यां वै तत्पुरुषो ह्यघोरस्तस्य सन्निधौ ॥ ७६ ॥
सद्योजातोऽथ वायव्यां वामदेवस्तु संगतः ।
देव्याश्चापि[४] नरश्रेष्ठ पञ्चरूपाणि भैरव ॥ ८० ॥
शृणु वेताल गुह्यानि देवैरपि सदैव हि ।
कामाख्या त्रिपुरा चैव तथा कामेश्वरी शिवा ॥ ८१ ॥
शारदाथ महालोका कामरूपगुणैर्युता ।
मयि लिङ्गत्वमापन्ने शिलायां योनिमण्डले ॥ ८२ ॥
सर्वे शिलात्वमगमच्छैलरूपाश्च निर्जराः ।
यथाहं निजरूपेण रेमे वै सह कामया ॥ ८३ ॥
शिलारूपप्रतिच्छन्नास्तथा सर्वास्तु देवताः ।
शिलारूपप्रतिच्छन्नाः शैले शैले व्यवस्थिताः ॥ ८४ ॥
रमन्ते च स्वरूपेण[५] नित्यं रहसि सङ्गताः ।
ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चात्र दिक्पालाः सर्व एव ते ॥ ८५ ॥
अन्येऽप्यत्र स्थिता देवाः सानुकूलाः सदा मयि ।
उपासितुं तदा देवी कामाख्यां कामरूपिणीम् ॥ ८६ ॥
नीलशैलस्त्रिकोणस्तु मध्यनिम्नः सदाशिवः ।
तन्मध्ये मण्डलं चारु त्रिंशच्छक्तिसमन्वितम् ॥ ८७ ॥
गुहा मनोभवा तत्र मनोभवविनिर्मिता ।
योनिस्तस्यां शिलायां तु शिलारूपा मनोहरा ।
वितस्तिमात्रविस्तीर्णा एकविंशाङ्गुलीयुता ॥ ८८ ॥
क्रमसूक्ष्मविनम्रा सा भस्मशैलानुगामिनी ।
महामायो जगद्धात्री मूलभूता सनातनी ॥ ८६ ॥
सिन्दूरकुंकुमारक्ता सर्वकामप्रदायिनी ।
तस्यां योनौ पञ्चरूपा नित्यं क्रीडति कामिनी ॥ ६० ॥
तत्राष्टौ योगिनीर्नित्या मूलभूताः सनातनीः ।
पूर्वोक्ताः शैलपुत्र्याद्याः स्थिता देव्याः समन्ततः ॥ ६१ ॥

---

४. नो देव्याश्च । ५. शरीरेण ।

तासां तु पीठनामानि शृणु चैकत्र भैरव ।
गुप्तकामा च श्रीकामा तथान्या विन्ध्यवासिनी ॥ ६२ ॥
कोटीश्वरी वनस्था तु पादुर्गा तथापरा ।
दीर्घेश्वरी क्रमादेव प्रकटा भुवनेश्वरी ॥ ६३ ॥
स्वयोगिन्यः पीठनाम्ना ख्याता अष्टौ च देवताः ।
सर्वतीर्थानि चैकत्र जलरूपाणि भैरव ॥ ६४ ॥
स्थितानि नाम्ना सौभाग्यसरस्यल्पापि पुण्यदा ।
विष्णुस्तु तीरे तस्यास्तु नाम्ना कमल इत्युत ॥ ६५ ॥
कामुकाख्यस्तु वटुकः कामाख्याभ्यर्णसंस्थितः ।
लक्ष्मीः सरस्वती देव्यौ देव्याः संगे व्यवस्थिते ॥ ६६ ॥
ललिताख्याभवल्लक्ष्मीर्मातङ्गी तु सरस्वती ।
गणाध्यक्षः पूर्वभागे तस्य शैलस्य संस्थितः ॥ ६७ ॥
सिद्धः स नाम्ना विख्यातो द्वारे देव्याः प्रियः सुतः ।
कल्पवृक्षः कल्पवल्ली तिन्तिडी चापराजिता ॥ ६८ ॥
भूत्वा तस्मिन् महाशैले स्थितो देव्या धृतः प्रिये ।
वराहः पाण्डुनाथाख्यः स्थितस्तत्र हरिर्यतः ॥ ६९ ॥
जघने शिरसी कृत्वा जघान मधुकैटभौ ।
तस्यासन्ने ब्रह्मकुण्डं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ १०० ॥
ईशानाख्यः शिवो यत्र तत् सिद्धेश्वरसंज्ञकम् ।
शिलारूपं सिद्धकुण्डं मध्यस्थं विद्धि[६] भैरव ॥ १०१ ॥
तस्यासन्ने गयाक्षेत्रं क्षत्रं वाराणसी तथा ।
योनिमण्डलसंकाशं कुण्डं भूत्वा व्यवस्थितम् ॥ १०२ ॥
तत्रैवामृतकुण्डं तु सुधासङ्घप्रपूरितम् ।
ममा प्रियार्थमिन्द्रेण स्थापितं सह निर्जरैः ॥ १०३ ॥
वामदेवाह्वयं शीर्षं श्रीकामेश्वरसंज्ञकम् ।
कामकुण्डं महापुण्यं तस्यासन्ने व्यवस्थितम् ॥ १०४ ॥
केदारसंज्ञकं क्षेत्रं मध्यस्थं सिद्धकामयोः ।
दीर्घं चतुर्दशव्यामच्छायाच्छत्राह्वयं तु तत् ॥ १०५ ॥
तस्यासन्ने शैलपुत्री गुप्तकामाह्वया तु सा ।
गुप्तकुण्डस्य मध्यस्था कामेशग्रावणि सङ्गता ॥ १०६ ॥
कामेश्वरशिलासक्ता कामाख्यासंज्ञिता सदा ।

६. सिद्ध ।

पूर्वभागेण संसक्ता योनेस्तु परमार्गतः[7] ॥ १०७ ॥
कामकामाख्ययोर्मध्ये कालरात्रिर्व्यवस्थिता ।
पीठे दीर्घेश्वरी नाम्ना सीमाभागे प्रचण्डिका ॥ १०८ ॥
कामाख्याप्रस्तरप्रान्ते कूष्माण्डी नाम योगिनी ।
पीठे कोटीश्वरी नाम्ना योनिरूपेण संस्थिता ॥ १०९ ॥
यच्चाघोराह्वयं शीर्षं तत्कामायास्तु दक्षिणे ।
पीठे भैरवनामा तु गदिते परमार्थिभिः ॥ ११० ॥
चामुण्डा भैरवी नाम्ना भैरवासन्नसंस्थिता ।
नायिका कामदा भक्तेश्चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ १११ ॥
कामाभैरवयोर्मध्ये[8] स्वयं देवी सुरापगा ।
हिताय सर्वजगतां देव्यास्तु प्रीतये सदा ॥ ११२ ॥
सद्योजाताह्वयं शीर्षं पीठे त्वाम्रातकेश्वरम् ।
भैरवाख्ये गह्वरे तु स्थितं देवर्षिसेवितम् ॥ ११३ ॥
विद्धि तत्रैव दुर्गाख्यां नायिकां योगरूपिणीम् ।
सिद्धकामेश्वरी नाम्ना ख्याता देवेषु नित्यशः ॥ ११४ ॥
अजीर्णपत्रः सुच्छायो वृक्षस्तत्र सुसंस्थितः ।
आम्रातकः कल्पवृक्षः कल्पवल्लीसमन्वितः ॥ ११५ ॥
पीठे तु सिद्धगङ्गाख्या स्वयं गङ्गा समुत्थिता ।
आम्रातकस्य निकटे मम प्रीतिविवृद्धये ॥ ११६ ॥
पुष्कराख्यं तु तत्क्षेत्रं पीठे त्वाम्रातकाह्वयम् ।
ऐशान्यां तत्पुरुषाख्यं मम शीर्षं व्यवस्थितम् ॥ ११७ ॥
भुवनेश्वरनाम्ना तु पीठे ख्यातं च भैरव ।
गह्वरं भुवनेशस्य भुवनानन्दसंज्ञकम् ॥ ११८ ॥
तस्यासन्ने तु सुरभिः शिलारूपेण संस्थिता ।
कामधेनुरिति ख्याता पीठे कामप्रदायिनी ॥ ११९ ॥
योऽसौ शरभमूर्तिर्मे मध्यखण्डप्रचण्डकः ।
महाभैरवनामाभूत् कोटिलिङ्गाह्वयस्तु सः ॥ १२० ॥
मूर्तिभिः पञ्चभिः पञ्चभागेषु समवस्थितः ।
अहं पश्चादतिप्रीत्या भैरवाख्यः स्थितो घरे ॥ १२१ ॥
महागौरी तु या देवी योगिनी सिद्धरूपिणी ।
सा ब्रह्मपर्वते चास्ते शिलारूपेण चोर्ध्वतः ॥ १२२ ॥
अतीवरूपसम्पन्ना नाम्ना सा भुवनेश्वरी ।

---

७. परभागता । ८. कामाख्या भैरवीमध्ये ।

यत्र ब्रह्मा तु संसक्तो मयि पर्वतरूपिणि ॥ १२३ ॥
कल्पवल्ली तु तत्रास्ते नाम्ना सा त्वपराजिता ।
कामधेनुरदूरस्था पूर्वभागे महेश्वरी ॥ १२४ ॥
श्रीकामाख्या योनिरूपा चण्डिका सा तु योगिनी ।
आग्नेय्यां विद्धि तां संस्थां सर्वकामप्रदां शुभाम् ॥ १२५ ॥
योगिनी चन्द्रघण्टाख्या पीठेऽभूद् विन्ध्यवासिनी ।
योगिनी स्कन्दमाता तत्पीठेऽभूद् वनवासिनी ॥ १२६ ॥
कात्यायनी पीठनाम्ना पादुर्गेति गद्यते ।
नैर्ऋत्यां नीलशैलस्य प्रान्ते सा संस्थिता शिवा ॥ १२७ ॥
योऽसौ नन्दी मम तनुः स तु पाषाणरूपधृक् ।
संस्थितः पश्चिमद्वारि हनुमान् पीठनामतः ॥ १२८ ॥

और्व उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शम्भोरमिततेजसः ।
भैरवस्तं तु पप्रच्छ वेतालोऽपि समुत्सुकः ॥ १२९ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

श्रुतः पीठक्रमस्तात देव्याः पूजाक्रमस्तथा ।
श्रोतुमिच्छामि मूर्तीनां पञ्चानामपि शङ्कर ॥ १३० ॥
रूपाणि पञ्चमूर्तीनां मन्त्राणि च समन्ततः ।
तत्र मन्त्राणि[९] तन्त्राणि वद नौ वृषभध्वज ॥ १३१ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि वेताल मन्त्रं तन्त्रं पृथक् पृथक् ।
कामाख्यापंचमूर्तीनां रूपं कल्पं च[१०] भैरव ॥ १३२ ॥
कामस्थं काममध्यस्थं कामदेवपुटीकृतम् ।
कामेन कामयेत् कामी कामं कामे नियोजयेत् ॥ १३३ ॥
ज्येष्ठं तु व्यञ्जनं ब्रह्मन् परः शान्तं तदुच्यते ।
प्रथमं क्रमतः कुर्यात्तत्संसक्तं सुधामयम् ॥ १३४ ॥
प्रजापतिस्तथा शक्रबीजं संस्थादिसंयुतम् ।
चन्द्रार्धसहितं बीजं कामाख्यायाः प्रचक्ष्यते ॥ १३५ ॥

---

९. यन्त्राणि ।
१०. कामं रूपं च ।

इदं धर्मप्रदं काममोक्षार्थानां प्रदायकम्।
इदं रहस्यं परममन्यत्र तु सुदुर्लभम् ॥ १३६ ॥
श्रोत्रेणोद्यम्य शृणुयाद् गुरुवक्त्रान्नरोत्तमः।
स कामानखिलान् प्राप्य शिवलोके महीयते ॥ १३७ ॥

श्रुतिसकलितसारं देवकण्ठौघहारं
सकलकलुषहारि श्रीधरानन्दकारि।
सुनयशुभगगोभिर्भ्राजयेद्यद्यशोभि-
स्तदिह शिवसमस्तं विघ्नहन्त्रीङ्गितार्थम् ॥ १३८ ॥

नयनकरभकारि ध्यानिनां चोपकारि
प्रणयिसुनयसंस्थं देवसत्याह्निकस्थम्।
परमपदविशीर्णं सर्वदौर्भाग्यजीर्णं[11]
शृणु शिवपदरूपं कामदेव्याः स्वरूपम् ॥ १३९ ॥

श्रवणगगनमात्रा चार्दितं यस्य नाम
प्रभवति बहुभूत्यै गीतिमार्गैकधाम।
सुरगणगणनायां कुण्डली यस्य शक्ति-
स्तदिह परमरूपं चिन्तनीयं हताशैः[12] ॥ १४० ॥

रविशशियुतकर्णा कुंकुमापीतवर्णा
मणिकनकविचित्रा लोलकर्णा त्रिनेत्रा।
अभयवरदहस्ता साक्षसूत्रप्रशस्ता
प्रणतसुरनरेशा सिद्धकामेश्वरी सा ॥ १४१ ॥

अरुणकमलसंस्था रक्तपद्मासनस्था
नवतरुणशरीरा मुक्तकेशी सुहारा।
शवहृदि पृथुतुंगस्तन्ययुग्मा मनोज्ञा
शिशुरविसमवस्त्रा सर्वकामेश्वरी सा ॥ १४२ ॥

विपुलविभवदात्री स्मेरवक्त्रा सुकेशी
ललितनखरदन्ता सामिचन्द्रावनम्रा।
मनसिजदृषदिस्था योनिमुद्रालसन्ती
पवनगमनशक्ता संश्रुतस्थानभागा ॥ १४३ ॥
चिन्त्या चैवं विद्युदग्निप्रकाशा
धर्मार्थाद्यं साधकैर्वाञ्छितार्थैः।

---

११. शुद्धं। १२. कृतीशैः।

कल्प्यन्त त्रीण्यस्तदं सम्यगर्धं
वेताल त्वं भैरव श्रीप्रतिष्ठम् ॥ १४४ ॥
तस्मिन्नर्धं[13] मण्डलं यद्धि पश्चात्
कार्यं चैतच्चन्दनैः पुष्पयुक्तैः ।
पर्यायो यो लेखने पूर्वमुक्तो
देवीतन्त्रे सोऽत्र पूर्वं विधेयः ॥ १४५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यापूजातन्त्रे
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

---

१३. तस्मिन्नाद्यं ।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यथापूर्वं मयोदितम् ।
मण्डलं प्रतिपत्त्या तु पर्यायो मण्डलस्य यः ॥ १ ॥
स एवं प्रथमं कार्यः शिलायां पुष्पचन्दनैः ।
पात्रादीनां प्रतिष्ठानं तथैवात्रापि योजयेत् ॥ २ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य प्रोक्ता याः प्रतिपत्तयः ।
अत्र ताः सकला योज्या आसनाद्यैश्च पूजनम् ॥ ३ ॥
तेभ्योऽन्यो यो विशेषोऽत्र तद् वक्ष्ये शृणु भैरव ।
प्रथमं भास्करायार्घ्यं प्रदद्याच्छ्वेतसर्षपैः ॥ ४ ॥
पुष्पचन्दनसंवीतैः सगणाय महात्मने ।
आसनार्चनशेषे तु पीठोक्ताः सर्वदेवताः ॥ ५ ॥
पीठनाम्ना तु संयोज्या मण्डलस्य तु मध्यतः ।
ध्यानस्वरूपं भिन्नं तद् वैष्णव्या सह भैरव ॥ ६ ॥
कामायाः[14] सर्वमन्यत् तु महामायास्तवोदितम्[15] ।
योगिनीस्तु चतुःषष्टिं पूजयेच्च पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
गुहां मनोभवां चापि महोत्साहां तथा सखीम् ।
अनन्तरं पूजयेत् तु दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥ ८ ॥
रूपतस्तान् समुद्दिश्य पूजयेदिष्टसिद्धये ।
पूर्वद्वारे गणपतिं प्रथमं तु प्रपूजयेत् ॥ ९ ॥
नन्दिनं च हनूमन्तं पश्चिमद्वारि पूजयेत् ।
भृङ्गी चोत्तरतः पूज्यो महाकालस्तु दक्षिणे ॥ १० ॥
एते मम द्वारपाला देव्या द्वारे प्रपूजयेत् ।
पात्रामृतीकृतिविधौ[16] कुर्याद् वै काममुद्रया ॥ ११ ॥
भूतापसारणं कुर्यात् पूर्वं तालत्रयेण तु ।
वामहस्ते दक्षिणेन पाणिना तालमाहरेत् ॥ १२ ॥
हूँ हूँ फडितिमन्त्रेण वेतालादींश्च सारयेत् ।
सर्वमुत्तरतन्त्रोक्तं तन्त्रं कुर्यात् तु साधकः ॥ १३ ॥
अत्रोक्तेन स्वरूपेण प्राणायामं तथा चरेत् ।

---

१४. कामाख्यायाः । १५. क्रमाद् गतम् । १६. पात्रस्य सङ्गति... ।

स्नापयेत् प्रथमं देवीं मूलमन्त्रेण पूजकः ॥ १४ ॥
मधुक्षीराज्यदधिभिर्गोमूत्रैर्गोमयैस्तथा ।
रत्नोदकैः शर्कराभिर्गुडरत्नकुशोदकैः ॥ १५ ॥
सितसर्षपमुद्गाभ्यां[17] तिलक्षीरैस्तथा यवैः ।
रक्तचन्दनपुष्पैश्च दूर्वाभी रोचनायुतैः ॥ १६ ॥
नवभिर्वितरेदर्घ्यं शिलायां योनिसन्निधौ ।
आसनं पाद्यमर्घ्यं च तत आचमनीयकम् ॥ १७ ॥
मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं चन्दनभूषणम् ।
पुष्पं धूपं च दीपं च नेत्राञ्जनमतः परम् ॥ १८ ॥
नैवेद्याचमनीये च प्रदक्षिणनमस्कृती ।
एते षोडश निर्दिष्टा उपचारास्तु पीठतः ॥ १९ ॥
आवाहयेन्महादेवीं गायत्र्या कामयोगया ।
तामेव विद्धि वेताल गुह्यं भैरवदैवतम् ॥ २० ॥
कामाख्ये त्वमिहागच्छ यथावन्मम सन्निधौ ।
पूजाकर्मणि सान्निध्यमिह कल्पय कामिनि ॥ २१ ॥
कामाख्यायै च विद्महे कामेश्वर्यै तु धीमहि ।
ततः कुर्यान्महादेवी ततश्चानु प्रचोदयात् ॥ २२ ॥
एषा तु कामगायत्री पूजयेदनया शुभाम् ।
पूजावसाने च बलीन्देव्याः प्रीत्यै निवेदयेत् ॥ २३ ॥
रुद्राक्षमालया जाप्यमादायैव समाचरेत् ।
नाक्षरैर्मूलमन्त्रस्य त्रिधा वृत्तः प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥
कामाख्यायाः षडङ्गानि आह्वानानन्तरे तथा ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य कराङ्गन्यासयोश्च ये ॥ २५ ॥
स्वराः प्रोक्तास्तैः स्वरैस्तु सार्धचन्द्रैः सबिन्दुकैः ।
मूलमन्त्राद्यक्षराभ्यां युगपत्तु नियोजितैः ॥ २६ ॥
कनिष्ठादिक्रमेणैव ह्यङ्गन्यासं समाचरेत् ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा पश्चात्तु साधकः ॥ २७ ॥
हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रास्योदरपृष्ठतः ।
बाह्वोः पाण्योर्जङ्घयोश्च पादयोश्चापि विन्यसेत् ॥ २८ ॥
अभयं वरदं हस्तमक्षमालां च सूत्रकम् ।
पूजयेच्छशिनं सूर्यं शिरश्चान्द्रकलां तथा ॥ २९ ॥
रक्तपद्मं शवं चैव लौहित्यं ब्रह्मपुत्रकम् ।

---

१७. युक्ताभ्यां ।

मनोभवं शिलां तत्र शक्तिस्थां शवमध्यतः[18] ॥ ३० ॥
देव्याः प्रपूजयेद्भक्तः करवालं च पार्श्वतः ।
पीठादिदेवतास्तत्र यजेत् कामेश्वरीं शुभाम् ॥ ३१ ॥
त्रिपुरां पूजयेन्मध्ये पीठप्रत्यधिदेवताम् ।
शारदां च महोत्साहां मध्य एव प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥
चण्डेश्वरी महादेवी देव्या निर्माल्यधारिणी ।
योनिमुद्रा समाख्याता कामाख्याया विसर्जने ॥ ३३ ॥
इदं द्रव्यं तु सिन्दूरचन्दनागुरुकुंकुमैः ।
इति यो हि मया प्रोक्तो विशेषः परिपूजने ॥ ३४ ॥
एभिर्विशेषैः सहितं वैष्णवीतन्त्रगोचरम् ।
सर्वं कल्पं समासाद्य कामाख्यां परिपूजयेत् ॥ ३५ ॥
अनेनैव विधानेन कामाख्यां यस्तु पूजयेत् ।
मनोभवगुहामध्ये स याति परमां गतिम् ॥ ३६ ॥
ब्रह्माणी चण्डिका रौद्री गौरीन्द्राणी तथैव च ।
कौमारी वैष्णवी दुर्गा नारसिंही च कालिका ॥ ३७ ॥
चामुण्डा शिवदूती च वाराही कौशिकी तथा ।
माहेश्वरी शांकरी च जयन्ती सर्वमङ्गला ॥ ३८ ॥
काली कपालिनी मेधा शिवा शाकम्भरी तथा ।
भीमा शान्ता भ्रामरी च रुद्राणी चाम्बिका तथा ॥ ३९ ॥
क्षमा धात्री तथा स्वाहा स्वधा पर्णा महोदरी ।
घोररूपा महाकाली भद्रकाली भयङ्करी ॥ ४० ॥
क्षेमकरी चोग्रचण्डा चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चण्डी महामोहा[19] प्रियङ्करी ॥ ४१ ॥
कलविकरिणी देवी बलप्रमथिनी तथा ।
मदनोन्मथिनी देवी सर्वभूतस्य दामनी ॥ ४२ ॥
उमा तारा महानिद्रा विजया च जया तथा ।
पूर्वोक्ताः शैलपुत्र्याद्या योगिन्यष्टौ च याः क्रमात् ॥ ४३ ॥
ताभिरेभिश्च सहिताः चतुःषष्टिं च योगिनीः ।
पूजयेन्मण्डलस्यान्तः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ४४ ॥
नानाविधं तु नैवेद्यं पानं पायसमेव[20] च ।
मोदकापूपपिष्टादि देव्यै सम्यक् प्रदापयेत् ॥ ४५ ॥
एवं तु पूजयेद् देवीं कामाख्यां वरदायिनीम् ।

---

१८. मन्यतः । १९. महामाया । २०. पानमासवमेव च ।

भक्तियुक्तो नरो यस्तु स सर्वान् लभते प्रियान् ॥ ४६ ॥
महोत्साहा तु या देवी महामाया तु सा स्मृता ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण सा पूज्या योनिमण्डले ॥ ४७ ॥
तदेव मण्डलं चास्य ह्यङ्गन्यासं तथैव च ।
सा एव पूजापर्याये तद्ध्यानं सैव देवता ॥ ४८ ॥
तन्त्रं[21] तदेवमुक्तं तु तस्मान्नान्यं तु किञ्चन ।
मण्डलादिविसृष्ट्यर्थं महामायामहोत्सवे ॥ ४९ ॥
यत्प्रोक्तं तेन तां देवीं महोत्साहां तु मण्डले ।
स्नानपूर्वं पूजयेत्तु मध्वाज्यादिभिरासवैः ॥ ५० ॥
शृणुतं त्रिपुरामूर्तेः कामाख्यायाः प्रपूजनम् ।
एतस्या मूलमन्त्रं तु पूर्वमुत्तरतन्त्रके ॥ ५१ ॥
युवयोरिष्टयोः सम्यक् क्रमात् तत् प्रतिपादितम् ।
वाग्भवं कामबीजं तु डामरं चेति तत्त्रयम् ॥ ५२ ॥
सर्वधर्मार्थकामादिसाधकं कुण्डलीयुतम् ।
त्रीण्यस्मात् पुरतो दद्याद् दुर्गा ध्याता महेश्वरी ॥ ५३ ॥
त्रिपुरेति ततः ख्याता कामाख्या कामरूपिणी ।
तस्यास्तु स्नापनं यादृक्कामाख्यायाः प्रकीर्तितम् ॥ ५४ ॥
तेनैव स्नापनं कुर्यान्मूलमन्त्रेण पूजकः[22] ।
त्रिकोणं मण्डलं चास्यास्त्रिपुरं तु त्रिरेखकम् ॥ ५५ ॥
मन्त्रं तु अक्षरं ज्ञेयं तथा रूपं त्रयं पुनः ।
त्रिविधा[23] कुण्डली शक्तिस्त्रिदेवानां च सृष्टये ॥ ५६ ॥
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात् त्रिपुरा तेन सा स्मृता ।
उदीच्याद्यथ पूर्वान्ता रेखाः कार्यास्तु मण्डले ॥ ५७ ॥
त्रिस्त्रिरेखास्तु कर्तव्यास्ता एव पुष्पचन्दनैः ।
ऐशान्यामथ नैर्ऋत्यां मन्त्रं कृत्वा तु संलिखेत् ॥ ५८ ॥
नैर्ऋत्यां चैव वायव्यां ततो ह्यैशान्यगां पुनः ।
एवं त्रिकोणं विलिखेन्मण्डलस्यान्तरे पुनः ॥ ५९ ॥
ऐशान्याद्यास्तु[24] या रेखा सा तु शक्तिर्निगद्यते ।
नैर्ऋत्यां वायवीं याता ततो ह्यैशान्यगा तु या ॥ ६० ॥
सा तु शम्भुः समाख्याता शक्त्या शम्भुं विभेदयेत् ।

---

२१. मन्त्रं तु देवताभ्यः । २२. साधकः । २३. त्रिपुरा··· ।
२४. ऐशान्यादिषु ।

शक्त्या विभिन्नं भूतेशं वेष्टयेत् कमलेन तु ॥ ६१ ॥
अष्टपत्रेण तां ध्यात्वा त्रिवर्णां प्राक् प्रपूजयेत् ।
त्रिभिस्त्रिभिस्तु रेखाभिः शक्ति शम्भुं च वेष्टयेत् ॥ ६२ ॥
स्थानस्याभ्युक्षणं सम्यद्ध मार्जनं लिखनं तथा ।
अस्त्रमन्त्रप्रयोगाणां भूतानामपसारणम् ॥ ६३ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रोक्तं तथैवोत्तरतन्त्रके ।
यत् प्रोक्तं तत् तु सामान्यं प्राक् कुर्यात् साधको नरः ॥६४॥
त्रिपुराया विशेषेण सहितं पूजनक्रमम् ।
एतत् त्रिकोणं देवानां त्रयाणां स्थानमिष्यते ॥ ६५ ॥
ऐशान्यां तु तथेशानो नैर्ऋत्यां चतुराननः ।
वायव्यां तु तथा ब्रह्मा षट्कोणेषु प्रकीर्तिताः ॥ ६६ ॥
दलं त्वेकपुरं प्रोक्तं केशरं चापरं पुरम् ।
पुरं शेषं त्रिकोणं तु त्रिकोणं मण्डलं स्मृतम् ॥ ६७ ॥
दलेषु केशरे चापि त्रिकोणे च त्रिधा त्रिधा ।
रेखास्तु विहिताः सम्यक् कुर्यात् तत्र पुनः पुनः[२५] ॥ ६८ ॥
उत्तरं तद् भवेद् द्वारं तस्य वै धनुराकृतिः ।
पूर्वद्वारं तु षट्कोणं चतुष्कोणं तु दक्षिणे ॥ ६९ ॥
पश्चिमं तोरणाकारं यथा चान्यत्र मण्डले ।
ऐशान्यां पंचबाणांस्तु लिखेद् वह्नौ च तद्धनुः ॥ ७० ॥
नैर्ऋत्यां पुस्तकं चापि वायव्यामक्षमालिकाम् ।
एवं कृत्वा मण्डलं तु धृत्वा वामेन पाणिना ॥ ७१ ॥
वाग्वेश्सने नम इति मण्डलं पूजयेत् ततः ।
पूजयित्वा ततो भूताम् कालिकात्रितयेन तु ॥ ७२ ॥
मूलमन्त्रेण पूर्वोक्तैर्मन्त्रैरपि समाचरेत्[२६] ।
नवभिश्छोटिकाभिस्तु त्रिधा कृत्वा तु वेष्टनम् ॥ ७३ ॥
अभ्युक्षणं ततः कुर्याद् भूतानामपसारणम् ।
प्रतिपत्तिस्तु पात्रस्य अर्घ्यार्थं नवधा पुनः ॥ ७४ ॥
पूर्ववत् साधकः कुर्याद् दहनं प्लवनं तथा ।
अमृतीकरणं कुर्यात् प्रथमं धेनुमुद्रया ॥ ७५ ॥
योनिमुद्रां ततः कुर्यात् पात्रतोयं तु त्रिः स्पृशेत् ।
मार्तण्डभैरवायार्घ्यं दूर्वाभिः सिद्धसर्षपैः ॥ ७६ ॥

२५. पृथक् पृथक् । २६. च चारयेत् ।

रक्तपुष्पैश्चन्दनैश्च सगणाय निवेदयेत् ।
पाणिकच्छपिकां कृत्वा चिन्तनं योनिमुद्रया ॥ ७७ ॥
आदौ मध्ये च कर्तव्यं क्रमाद् वेतालभैरव ।
अस्त्रमन्त्रेण पात्रस्य स्थापनार्थं तु मण्डलम् ॥ ७८ ॥
षट्कोणं तु लिखेत्पूर्वं तन्मन्त्रस्थापनेऽपि च ।
ऐँ आँ क्लीमिति मन्त्रेण त्रिधा पात्रे जलं क्षिपेत् ॥ ७९ ॥
त्रिधा गन्धं च पुष्पं च त्रिधा दूर्वाक्षतं पुनः ।
ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रैँ ह्रौमिति च अङ्गुष्ठादि क्रमान्न्यसेत् ॥ ८० ॥
ॐ ह्र इत्यस्त्रमन्त्रेण पाणिपृष्ठतले तथा ।
हृदयादिक्रमात् पश्चान्न्यासं कुर्यात त्रिधा त्रिधा ॥ ८१ ॥
संयोज्य पाण्योः क्रमतश्चाङ्गुष्ठादि द्वयं द्वयम् ।
त्रिधा त्रिधा पृथक् कुर्याच्छेषाङ्गानि च विन्यसेत् ॥ ८२ ॥
कर्णरन्ध्रे तथा ब्रह्मद्वारं केशतलं तथा ।
नासिकारन्ध्रयुगलं जानुयुग्मं पदद्वयम् ॥ ८३ ॥
त्रिधा त्रिधा न्यसेदेभिः षड्भिर्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ।
प्राणायामं ततः कुर्यात् पूरकैः स्तम्भकैस्तथा ॥ ८४ ॥
रेचकेनापि त्रिपुरामूर्तिं देवीं विचिन्तयेत् ।
दहनप्लवनं कृत्वा आद्यां मूर्तिं विचिन्तयेत् ॥ ८५ ॥
त्रिधाहृत्याथ हृदये तां मूर्तिं शृणु भैरव ।
सिन्दूरपुञ्जसंकाशां त्रिनेत्रां तु चतुर्भुजाम् ॥ ८६ ॥
वामोर्ध्वे पुष्पकोदण्डं धृत्वाधः पुस्तकं तथा ।
दक्षिणोर्ध्वे पंचबाणानक्षमालां दधात्यधः ॥ ८७ ॥
चतुर्णां कुणपानां तु पृष्ठेऽन्यं कुणपान्तरम् ।
निधाय तस्य पृष्ठे तु समपादेन संस्थिताम् ॥ ८८ ॥
जटाजूटार्धचन्द्रेण सभाबद्धशिरोधराम्[27] ।
नग्नां त्रिवलिभेदेन चारुमध्यां मनोहराम् ॥ ८९ ॥
सर्वालङ्कारसम्पूर्णां सर्वाङ्गसुन्दरीं शुभाम् ।
स्रवद्द्रविणसन्दोहां सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ ९० ॥
एनां तु प्रथमं ध्यात्वा त्रिधात्मानं तु चिन्तयेत् ।
तद्रूपं च ततः पश्चात् पुष्पं तद्वाग्भवेन तु ॥ ९१ ॥
स्वमस्तके पुनर्दद्यादङ्गन्यासं पुनस्तथा ।
मन्त्रद्वयं त्रिधा जप्त्वा वाग्भवाद्यं तु साधकः ॥ ९२ ॥

---

२७. शिरोरुहाम् ।

अर्घ्यपात्रस्य तोयेषु तैस्तोयैः सेचयेच्छिरः।
पूजोपकरणं चापि त्रिरभ्युदय तथैव तु ॥ ९३ ॥
कामपीठं ततो ध्यात्वा पूजयेत् क्रमतस्त्विमान्।
गणेशं च गणाध्यक्षं गणनाथं तथैव च ॥ ९४ ॥
गणक्रीडं च पूर्वादिद्वारे मन्त्रेण पूजयेत्।
हैरम्बबीजमेतेषां मन्त्रस्तु परिकीर्तितः ॥ ९५ ॥
विद्याशान्तिनिवृत्तिश्च प्रतिष्ठा द्वारपालकाः।
कलान्ताः पूजयेत् सम्यक् पूर्वादिक्रमतस्तथा ॥ ९६ ॥
सिद्धपुत्रं ज्ञानपुत्रं तथा सहजपुत्रकम्।
शेषं समयपुत्रं तु पूजयेद् बटुकानिमान् ॥ ९७ ॥
प्रत्येकं तु श्रियं देवीं बटुकानां परे वरे।
श्रीमित्यनेन मन्त्रेण पूर्वादौ पूजयेत् क्रमात् ॥ ९८ ॥
सिद्धस्य सहजस्याथ ज्ञानस्य समयस्य च।
कुमारीं पूजयेत् कोणे ऐशान्यादौ तु मण्डले ॥ ९९॥
गोरटं डामरं चैव लोहजङ्घं तथैव च।
भूतनाथं क्षेत्रपालमीशानादौ प्रपूजयेत् ॥ १०० ॥
मण्डलस्य च मध्ये तु पञ्चबाणान् प्रपूजयेत्।
द्रावणं शोषणं चैव बन्धनं मोहनं तथा ॥ १०१ ॥
आकर्षणं च मध्येन मन्त्रेणैव प्रपूजयेत्।
ततस्त्रिष्वथ कोणेषु पूजयेत् तु त्रियोगिनीः ॥ १०२ ॥
भगं च भगजिह्वां च भगास्यामुत्तरादिकम्।[२८]
क्रमात्तु पूज्यास्तिस्रोऽन्या अन्या मध्ये त्रिकोणके[२९] ॥१०३॥
भागमालिनीं तु प्रथमे द्वितीये तु भगोदरीम्।
तृतीये भगरोहां तु योगिनीं कामरूपिणीम् ॥ १०४ ॥
अनङ्गकुसुमां देवीं तथैवानङ्गमेखलाम्।
अनङ्गमदनां चैव ह्यनङ्गमदनातुराम् ॥ १०५ ॥
अनङ्गवेशां चानङ्गमालिनीं मदनातुराम्।
दलकेशरमध्ये तु ह्यष्टमीं मदनांकुशाम् ॥ १०६ ॥
शैलपुत्र्यादयश्चाष्टौ त्रिपुरापूजनक्रमे।
एतन्नामभिरुग्रा बभूवुः कामयोगिनीः ॥ १०७ ॥
वागभवेन तथा दुर्गा नेत्रबीजान्तकेन तु।

२८. '''मुक्तमेखलाम्। २९. त्रियोन्या मध्येषु चाष्टकोणयोः।

अङ्गन्यासं समन्त्रैस्तु षड्भिरष्टाविमान् पुनः ॥ १०८ ॥
पूजयेत् क्षेत्रपालांस्तु मध्ये किञ्जल्कपत्रयोः ।
हेतुकं त्रिपुरघ्नं च अग्निजिह्वं तथैव च ॥ १०९ ॥
अग्निवेतालसंज्ञं च कालं चाथ करालकम् ।
एकपादं भीमनाथमुत्तरादिक्रमेण तु ॥ ११० ॥
एभिरेवाष्टभिर्मन्त्रैः कामराजेन संयुतैः ।
नवैतानसिताङ्गादीन् नायकान् पूजयेत् क्रमात् ॥ १११ ॥
मण्डलस्य चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ पूर्वादिषु क्रमात् ।
पद्ममण्डलयोर्मध्ये शेषमेकं तु पूजयेत् ॥ ११२ ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तौ भयङ्करः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चेति वै नव ॥ ११३ ॥
ऐशान्यादिक्रमाद् द्वे द्वे नायिकां पूजयेन्नरः ।
पद्ममण्डलयोर्मध्ये अग्नौ द्वे च प्रपूजयेत् ॥ ११४ ॥
ब्रह्माणीं भैरवीं चैव तथा माहेश्वरीमपि ।
कौमारीं वैष्णवीं चैव नारसिंहीं तथैव च ॥ ११५ ॥
वाराहीं च तथेन्द्राणीं चामुण्डां चण्डिकां तथा ।
आधारशक्तिप्रभृतीन् मण्डलस्य तु मध्यतः ॥ ११६ ॥
वैष्णवी तन्त्रकल्पोक्तान् सर्वान् भैरव पूजयेत् ।
शिवस्य पञ्च याः प्रोक्ताः सद्योजातादयः पुरा ॥ ११७ ॥
मूर्तयस्ताः पद्ममध्ये पञ्चप्रेतत्वमागताः ।
ताः पञ्च पूजयेन्मध्ये रक्तपद्मं शवं तथा ॥ ११८ ॥
सिंहं च पूजयेत् तत्र जगदाधारसंज्ञितम् ।
जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ॥ ११९ ॥
दुर्गां क्षमां शिवां धात्रीं स्वधां स्वाहां च पूजयेत् ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥ १२० ॥
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।
एताः सम्पूजयेन्मध्ये मण्डलस्य विशेषतः ॥ १२१ ॥
आदित्यादीन् ग्रहान् सर्वान् रूपतो ह्यस्त्रसंयुतान् ।
क्रमात् प्रत्येकमुद्दिश्य पार्श्वे पार्श्वे प्रपूजयेत् ॥ १२२ ॥
दिक्पालानां तु मन्त्रेण तथा सर्वांस्तु दिक्पतीन् ।
अस्त्रमन्त्रैस्तु तान् सर्वांस्तेषां मन्त्राणि भैरव ॥ १२३ ॥
नाथं कामेश्वरं तत्र एकवक्त्रं चतुर्भुजम् ।

भस्मश्वेतं मध्यहृदि रक्तपुष्पैस्तु कुंकुमैः ॥ १२४ ॥
त्रिशूलं च पिनाकं च वामहस्तद्वये स्थितम् ।[30]
उत्पलं बीजपूरं च दक्षिणद्वितये तथा ॥ १२५ ॥
श्वेतपद्मोपरिस्थं च ध्यात्वा मध्ये प्रपूजयेत् ।
कामाख्यां मूर्तितो ध्यात्वा कामाख्यामपि पूजयेत् ॥ १२६ ॥
कामेश्वरीं तत्र देवीं पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
वक्ष्यमाणेन रूपेण तत्र वेतालभैरवौ ॥ १२७ ॥
करालं क्षेत्रपालं च कर्त्रिखर्परधारिणम् ।
पूजयेदीशमत्यर्थं दंष्ट्राभिन्नाधरं भयम् ॥ १२८ ॥
तिन्तिडीं कल्पवृक्षं च सुच्छायं रत्नभूषितम् ।
त्रिकूटं कृष्णवर्णं च नीलशैलं महाद्युतिम् ॥ १२९ ॥
मनोभवां गुहां तत्र पंचव्यामायतां शुभाम् ।
रत्नमण्डलसंयुक्तां रक्तवर्णां सुवर्त्तुलाम् ॥ १३० ॥
अपराजितां च वल्लीं च व्यामत्रयसुविस्तृताम् ।
आरक्तवर्णां सततं कुसुमैरुपशोभिताम् ॥ १३१ ॥
बटुकं कम्बलाख्यं तु स्वर्णगौरं गजासनम् ।
द्विभुजं दक्षिणे दण्डपाणिं वामे कपालकम्[31] ॥ १३२ ॥
बिभ्रतं पुरतो देव्याः पूज्यो विघ्नविपत्तये ।
भैरवः पाण्डुनाथश्च रक्तगौरश्चतुर्भुजः ॥ १३३ ॥
गदां पद्मं च शक्तिं च चक्रं चापि करेषु च ।
बिभ्रद् देव्याः पुरोभागे पूज्योऽयं विष्णुरूपधृक् ॥ १३४ ॥
श्मशानं हेरुकाख्यं च रक्तवर्णं भयङ्करम् ।
असिचर्मधरं रौद्रं भुञ्जानं मनुजामिषम् ॥ १३५ ॥
तिसृभिर्मुण्डमालाभिर्गलद्रक्ताभिराजितम् ।
अग्निनिर्दग्धविगलद्दन्तप्रेतोपरिस्थितम् ॥ १३६ ॥
पूजयेच्चिन्तनेनैव शववाहनभूषणम् ।
महोत्साहां योगिनीं तु महामायास्वरूपिणीम् ॥ १३७ ॥
ध्यानतो रूपतस्तां तु देव्या अग्रे प्रपूजयेत् ।
पुरीं चन्द्रवतीं देव्या नीलपर्वतपूर्वतः ॥ १३८ ॥
योजनद्वयविस्तीर्णामर्धयोजनमायताम्[32] ।
उच्चैरनेकप्रासाद - सौधसद्मविभूषिताम् ॥ १३९ ॥

३०. ···धृतम् । ३१. कृपाणकम् । ३२. सार्धयोजनविस्तृताम् ।

मणिरत्नसुवर्णौघजातप्रासादविस्तृतम् ।
क्रीडासरोवरैः सद्भिः सञ्छन्नां विकचैः कचैः[33] ॥ १४० ॥
संयुतां पूजयेत् तत्र देव्या अग्रे समन्त्रकम् ।
लौहित्यं रक्तगौराङ्गं नीलवस्त्रविभूषितम् ॥ १४१ ॥
रत्नमालासमायुक्तं चतुर्बाहुसमन्वितम् ।
पुस्तकं श्वेतपद्मं च बिभ्रतं दक्षिणे करे ॥ १४२ ॥
वामे शक्तिध्वजं चैव शिशुमारस्थितं शुभम् ।
पीठेश्वरानिमान् मध्ये मन्त्रैरेतैः प्रपूजयेत् ॥ १४३ ॥
नाथं कामेश्वरं देवं प्रासादे न प्रपूजयेत् ।
कामेश्वर्यास्तु मन्त्रेण यजेत् कामेश्वरीं शुभाम् ॥ १४४ ॥
द्वावुपान्तौ बलेनैव मदनान्ते च तत्क्रमात् ।
योजयेन्नादबिन्दुभ्यां मायाकरणमन्त्रकम्[34] ॥ १४५ ॥
चण्डिकानेत्रबीजस्य यच्छेषमक्षरं तु तत् ।
कल्पं तिन्तिडिकावृक्षमन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ १४६ ॥
उग्राया मध्यबीजं तु नीलशैलस्य मन्त्रकम् ।
मनोभवस्य बीजं तु महादेवेन संहितम् ॥ १४७ ॥
आदिस्थेनेन्दुना बिन्दुयुक्तं वान्तेन योजितम् ।
मनोभवगुहायां तु मन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ १४८ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यच्छेषं बीजमस्वरम् ।
तदधो वान्तसंश्लिष्टं चतुर्थस्वरसंयुतम् ॥ १४९ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तं तन्मत्रञ्चापराजितम् ।
हयग्रीवस्वरूपस्य विष्णोर्यद्बीजमुत्तमम्[35] ॥ १५० ॥
कम्बलस्य तु तन्मन्त्रं पूजनं परिकीर्तितम् ।
केवलः सप्ररोहादिषष्ठस्वरसमन्वितः ॥ १५१ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तं हयग्रीवस्य बीजकम् ।
भैरवं पाण्डुनाथं च वनमालिस्वरूपिणम् ॥ १५२ ॥
वाराहेण तु बीजेन पूजयेत् तु विधानतः ।
सपरौ द्वावनुस्वारविसर्गाभ्यां तु संयुतौ ॥ १५३ ॥
महाभैरवमन्त्रेण भैरवान्तेन पूजयेत् ।
महोत्साहां महामायां द्वितीयाष्टाक्षरेण तु ॥ १५४ ॥
देवीतन्त्रोदितेनैव पूजयेद् भूतिवृद्धये ।

---

३३. विकचपङ्कजैः । ३४. समन्त्रकम् । ३५. बीजमुद्धृतम् ।

आद्याक्षरं तु सामीन्दुबिन्दुभ्यां समलङ्कृतम् ॥ १५५ ॥
स्वनाम्नश्चन्द्रवत्यास्तु पूजामन्त्रं प्रकीर्तितम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वालङ्कारभूषितम् ॥ १५६ ॥
लौहित्यनदराजस्य ब्रह्मपुत्रस्य भूतिदम् ।
ब्रह्मबीजं तु मन्मन्त्रं वह्निभार्यान्तमिष्यते ॥ १५७ ॥
द्वितीयं त्रिपुरारूपं तथैव तु तृतीयकम् ।
आवाहनार्थं देव्यास्तु चिन्तयेद् योनिमुद्रया ॥ १५८ ॥
बन्धूकपुष्पसङ्काशां जटाजूटेन्दुमण्डिताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ १५९ ॥
उद्यद्रविप्रभां[36] पद्मपर्यङ्केषु सुसंस्थिताम् ।
मुक्तारत्नावलीयुक्तां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ १६० ॥
वलीविभङ्गचतुरामासवामोदमोदिताम् ।
नेत्राह्लादकरीं शुभ्रां क्षोभणीं जगतां तथा ॥ १६१ ॥
त्रिनेत्रां योनिमुद्रायामीषद्धाससमायुताम् ।
नवयौवनसम्पन्नां मृणालाभचतुर्भुजाम् ॥ १६२ ॥
वामार्धे पुस्तकं धत्ते अक्षमालां तु दक्षिणे ।
वामेनाभयदां देवीं दक्षिणार्धे वरप्रदाम् ॥ १६३ ॥
स्रवद्रक्तौघसूर्याभां शिरोमालां तु बिभ्रतीम् ।
आपादलम्बिनीं[37] कल्पद्रुममासाद्य संस्थिताम् ॥ १६४ ॥
कदर्पोपवनान्तस्थां कामाह्लादकरीं शुभाम् ।
द्वितीयां त्रिपुरां ध्यायेदेवंरूपां मनोहराम् ॥ १६५ ॥
तृतीयां त्रिपुरारूपं शृणु वेतालभैरव ।
जवाकुसुमसङ्काशां मुक्तकेशीं शुभाननाम् ॥ १६६ ॥
सदाशिवं हसन्तं तु प्रेतवद् विनिधाय वै ।
हृदये तस्य देवस्य ह्यर्द्धपद्मासनस्थिताम् ॥ १६७ ॥
रक्तोत्पलैर्मिश्रितां तु मुण्डमालां पदानुगाम् ।
ग्रीवायां धारयन्तीं तु पीनोन्नतपयोधराम् ॥ १६८ ॥
चतुर्भुजां तथा नग्नां दक्षिणार्धेऽक्षमालिनीम् ।
वरदां तदधो वामे जगन्मायां तथाभयाम् ॥ १६९ ॥
अधस्तु पुस्तकं धत्ते त्रिनेत्रां हसिताननाम् ।
स्रवद्रुधिरभोगार्तां तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ १७० ॥

---

३६. प्रत्ययवस्त्रां पद्मपर्यङ्कसंस्थिताम् । ३७. नलिनीं ।

एवंविधं तृतीयं तु रूपं ध्यायेत् तु पूजकः ।
आद्यं तु वाग्भवं रूपं द्वितीयं कामराजकम् ॥ १७१ ॥
डामरं मोहनं चापि तृतीयं परिकीर्तितम् ।
एकैकं तु त्रिरूपाणि प्राग्विचिन्त्यार्थसाधकः ॥ १७२ ॥
मन्त्रत्रयेण प्रत्येकं हृदि षोडशकैस्तथा ।
पूजयेदुपचारैस्तु बर्हिर्यद्वत्तथैव च ॥ १७३ ॥
मन्त्रत्रयं तथैकत्र कृत्वाचमनमूर्तयः ।
कर्तव्या एकतस्तत्र मध्यरूपे निवेशयेत् ॥ १७४ ॥
नासापुटेन निःसार्य दक्षिणेनाथ तां पुनः ।
अवतार्य कराभ्यां तु देवीमावाहयेत् त्रिधा ॥ १७५ ॥
गायत्रीत्रयमुच्चार्य स्नापयेत् प्रथमं तु ताम् ।
आवाहने तु मन्त्रोऽयं पठितव्यश्च साधकैः ॥ १७६ ॥
एहि देवि शुभावर्ते यज्ञेऽस्मिन् मम सन्निधौ ।
अव्युच्छिन्नां ततः शुभ्रां वाचं कण्ठस्य देहि मे ॥ १७७ ॥
एह्येहि भगवत्यम्ब त्रिपुरे कामदायिनि ।
इमं भागबलिं गृह्य सान्निध्यमिह कल्पय ॥ १७८ ॥
नारायण्यै च विद्महे वाग्मयायै च धीमहि ।
एवमुक्त्वा ततः पश्चात् तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ १७९ ॥
नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै च धीमहि ।
शेषभागे प्रयुञ्जीत तन्नः कुब्जि प्रचोदयात् ॥ १८० ॥
महामायायै विद्महे त्वां सम्मोहिन्यै च धीमहि ।
पश्चादेवं प्रयुञ्जीत तन्नश्चण्डि प्रचोदयात् ॥ १८१ ॥
एतास्तु त्रिपुरादेव्या गायत्र्यः परिकीर्तिताः ।
प्रत्येकं स्नापनं कुर्यात् त्रिपुराणां च तिसृभिः ॥ १८२ ॥
वाग्भवेन तु मन्त्रेण प्रथमं पूजयेच्छिवाम् ।
कामराजेन वै पश्चाड्डामरेणापि पूजयेत् ॥ १८३ ॥
पश्चादेनां त्रिभिर्मन्त्रैरेकत्रैव तु पूजयेत् ।
ततो[38] मन्त्रेण वै दद्यादुपचारांस्तु षोडश ॥ १८४ ॥
कामाख्यातन्त्रगदितान् सम्पूज्याङ्गाक्षरान् पुनः ।
अंगन्यासस्य यन्मत्रैर्देव्या अंगानि पूजयेत् ॥ १८५ ॥
शेषं तु मूलमन्त्रेण चाष्टांगानां प्रपूजनम् ।
एकैकं प्रक्रमं पूज्य त्रिपुरायै नमस्ततः ॥ १८६ ॥

---
३८. तेन ।

नवधा पूजयेद् देवीं त्रिपुरां कामरूपिणीम् ।
उत्तरादिचतुष्पत्रे पद्मस्यैतान् प्रपूजयेत् ।। १८७ ।।
ब्रह्माणं माधवं शम्भुं भास्करं च तथैव च ।
ऐशान्यादिषु तेष्वेवं क्रमाद् देव्याः प्रपूजयेत् ।। १८८ ।।
जयन्तीं प्रथमं पश्चाद् वायव्यामपराजिताम् ।
नैर्ऋत्यां विजयां चैव तथाग्नेय्यां जयाह्वयाम् ।। १८९ ।।
त्रिकोणे केशरस्यान्ते कामं प्रीतिं रतिं तथा ।
पूजयेत् पञ्चबाणांश्च पुष्पं चापं च पुस्तिकाम् ।। १९० ।।
अक्षमालां पञ्चशरान् रत्नपर्यंकमेव च ।
प्रेतपद्मशिवं चैव सम्यक् तत्रैव पूजयेत् ।। १९१ ।।
सम्पूज्य पूर्ववन्मालां स्फाटिकामेव भैरव ।
आदायाथोत्तरीयेण तामाच्छाद्य प्रयत्नतः ।। १९२ ।।
पूर्वोद्धृतं जपेत् सम्यक् साधकस्त्रिपुरामनुम् ।
जप्त्वा स्तुतिं पठित्वा च प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।। १९३ ।।
त्रिपुरायै बलिं दद्यात् सम्भवात् तत् त्रिजातिकम् ।[३९] ❀
सफेनैस्तोयसंयुक्तैः शर्करामधुसैन्धवैः ।। १९४ ।।
अभ्युत्थ्य रुधिरं दद्यात् कामराजेन भैरव ।
छेदयेद् वाग्भवेनैव डामरैर्वितरेच्छिरः ।। १९५ ।।
यत्र यत्र बलिं दद्यात् साधको देवताच्चर्चने ।
वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तमादद्यात् पूजने बलिम् ।। १९६ ।।
ततो देव्यै वलीन् दद्यादेतद्वर्णक्रमात् पुनः ।
गोक्षीरं ब्राह्मणो दद्याद् गव्यमाज्यं तु राजजः ।। १९७ ।।
वैश्यस्तु माक्षिकं दद्याच्छूद्रः पुष्पासवादिकम् ।❀
घ्रात्वा पुष्पमथैशान्यां निर्माल्यं निक्षिपेद् बुधः ।। १९८ ।।
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी त्रिपुरचण्डिका ।
विसृज्यादौ योनिमुद्रां पद्ममुद्रां तथैव च ।। १९९ ।।
अर्धमुद्रां त्रिमुद्रां च प्रत्येकमपि दर्शयेत् ।
निर्माल्यमथ गृह्णीयात् कामराजाह्वयेन तु ।। २०० ।।
एवं यः पूजयेद् देवीं त्रिपुरां कामरूपिणीम् ।
स कामानखिलान् प्राप्य देवीलोकमवाप्नुयात् ।। २०१ ।।

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुरापूजने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

---

३९. शुभ्रपुष्पासवादिकान् । ❀ मुद्रितपुस्तकेऽधिकं दृश्यते ।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

देव्याः कामेश्वरीं मूर्तिं शृणु वक्ष्यामि भैरव।
यस्याश्चिन्तनमात्रेण साधको लभते प्रियान् ॥ १ ॥
तन्त्रं तस्याः प्रथमतस्ततोऽनुध्यानगोचरम्।
ततः पूजाक्रमं वक्ष्ये क्रमाद् वेतालभैरव ॥ २ ॥
प्रजापतिस्ततो वह्निरिन्द्रबीजं ततः परम्।
चूडाचन्द्रार्धसहितं चतुर्थस्वरसंयुतम् ॥ ३ ॥
इदं कामेश्वरं बीजमन्त्रं सर्वार्थसाधनम्।
स्थानाभ्युक्षणयन्त्रादि पात्रन्यासादिकं यथा ॥ ४ ॥
भूतापसारणादींश्च वैष्णवीतन्त्रभाषितान्।
तथोक्तानुत्तरे तन्त्रे गृह्णीयात् साधकोत्तमः[41] ॥ ५ ॥
प्राणायामत्रयं कुर्याद् दहनं प्लवनं तथा।
विशेषमण्डलं चास्याः शृणु वेतालभैरव ॥ ६ ॥
षट्कोणं मण्डलं कुर्याद्रक्तवर्णं तु चिन्तयेत्।
विभेद्य शक्त्या शम्भुं तु त्रिपुरातन्त्रवद् बुधः ॥ ७ ॥
ततः शक्तिं शम्भुनापि भेदयेत् क्रमतः सुधीः।
ऐशान्यादिनैर्ऋतान्तां रेखां कृत्वाथ दक्षिणे[42] ॥ ८ ॥
पश्चिमात् पूर्वगां रेखां पूर्वादपि तथोत्तराम्।
उत्तरात् पश्चिमान्तां तु कृत्वा रेखास्तु योजयेत् ॥ ९ ॥
धनुस्तोरणसङ्काशं द्वारे चोत्तरपश्चिमे।
दक्षिणं तु त्रिकोणं स्यात् षट्कोणं पूर्वमुच्यते ॥ १० ॥
जालन्धरं लिखेत् पीठमुत्तरे पश्चिमे लिखेत्।
ओड्रपीठं दक्षिणे तु कामरूपं तु पूर्वतः ॥ ११ ॥
देव्या द्वादशगुह्यानि यानि द्वादशभिः करैः।
लिखेन्मण्डलकोणेषु तानि दिक्षु त्रयं त्रयम् ॥ १२ ॥
षड्भिः षड्भिस्तु रेखाभिः कर्तव्यो मण्डलक्रमः।
अन्यदुत्तरतन्त्रोक्तं वैष्णवीतन्त्रभाषितम् ॥ १३ ॥
मण्डलस्य क्रमं सर्वं विद्धि वेतालभैरव।

---

४०. ईश्वर। ४१. साधकः स्वयं। ४२. शुभां रेखां तु……।

ॐ क्लीं मण्डलतत्त्वाय[४३] नम इत्यत्र मण्डलम् ॥ १४ ॥
पूजयेत् प्रथमं ध्यात्वा मण्डलं योगपीठकम् ।
पीठे शिलायां विलिखेन्मण्डलं योनिमण्डलम् ॥ १५ ॥
त्रिकोणं विलिखेत् पश्चाद् वेष्टयेत् कमलेन तु ।
रूपं तु चिन्तयेद् देव्याः कामेश्वर्या मनोहरम् ॥ १६ ॥
*प्रभिन्नाञ्जनसङ्काशां नीलस्निग्धशिरोरुहाम् ।
षड्वक्त्रां द्वादशभुजामष्टादशविलोचनाम् ॥ १७ ॥
प्रत्येकं षट्सु शीर्षेषु चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
मणिमाणिक्यमुक्तादिकृतमालामुरःस्थले ॥ १८ ॥
कण्ठे च बिभ्रतीं नित्यं सर्वालङ्कारमण्डिताम् ।
पुस्तकं सिद्धसूत्रं च पञ्चबाणं तु तं तथा ॥ १९ ॥
खड्गं शक्तिं च शूलं च बिभ्रतीं दक्षिणैः करैः ।
अक्षमालां महापद्मं कोदण्डं चाभयं तथा ॥ २० ॥
चर्म पश्चात् पिनाकं च बिभ्रतीं वामपाणिभिः ।
शुक्लं रक्तं च पीतं च हरितं कृष्णमेव च ॥ २१ ॥
विचित्रं क्रमतः शीर्षमैशान्यां पूर्वमेव च ।
दक्षिणं पश्चिमं चैव तथैवोत्तरशीर्षकम् ॥ २२ ॥
मध्यं चेति महाभाग क्रमाच्छीर्षाणि वर्णतः ।
शुक्लं माहेश्वरीवक्त्रं कामाख्यारक्तमुच्यते ॥ २३ ॥
त्रिपुरा पीतसङ्काशा शारदा हरिता तथा ।
कृष्णं कामेश्वरीवक्त्रं[४४] चण्डायाश्चित्रमिष्यते ॥ २४ ॥
धम्मिल्लसंयतकचं प्रतिशीर्षं प्रकीर्तितम् ।
सिंहोपरिसितप्रेतं तस्मिंल्लोहितपङ्कजम् ॥ २५ ॥
कामेश्वरी स्थिता तत्र ईषत्प्रहसितानना ।
विचित्रांशुकसंवीतां व्याघ्रचर्माम्बरां तथा ॥ २६ ॥
एवं कामेश्वरीं ध्यायेद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
पीठेऽन्यत्राथवादेव्याः पूजायां कथ्यते क्रमः ॥ २७ ॥
पीठे विशेषो वक्तव्यः सामान्ये त्वन्यदिष्यते ।
अङ्गुष्ठादिक्रमादेव संयोज्याथ युगं युगम् ॥ २८ ॥
मूलमन्त्रस्याक्षरेण दीर्घस्वरयुतेन च ।
षड्भिराद्यैर्न्यसेत् पूर्वमङ्गुलीयकमेव[४५] च ॥ २९ ॥

---

४३. मदन । * पाण्डुलिप्यां प्रथमान्तं दृश्यते । यथा'''सङ्काशा ।
४४. माहेश्वरी''' । ४५. अंगुलीमन्त्रमेव च ।

हृच्छिरः शीर्षवर्मनेत्रास्त्राणि पुनस्तथा ।
न्यसेद् दक्षिणहस्तेन षड्भिर्मन्त्रैस्तथा क्रमात् ॥ ३० ॥
आस्यं बाहुयुगं कुक्षि गुह्यं जानुयुगं तथा ।
पादयुग्मं क्रमात् तैस्तु षड्भिर्मन्त्रैर्न्यसेत् तथा ॥ ३१ ॥
अष्टधा मूलमन्त्रं तु जप्त्वाथार्घोहिते जले ।
तेनोपकरणं देयं चाभ्युदय क्रममारभेत् ॥ ३२ ॥
दैशिकः पूजयेद् देवीं पीठेनादैशिकः क्वचित् ।
तस्यैव हि करस्पर्शाद् देवी नोद्विजते शिवा ॥ ३३ ॥
यदि देशान्तराद् यातः पीठं देशान्तरं प्रति ।
तद्दैशिकोपदेशेन तदा पूजां समारभेत् ॥ ३४ ॥
यद्यन्यतः समायाता कामरूपादृते नरः ।
तद्देशजोपदेशेन सम्पूज्यफलमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
यस्मिन् देशे तु यः पीठ ओड्रपांचालकादिषु ।
तद्देशजोपदेशेन पूज्यः पीठे सुरो नरैः ॥ ३६ ॥
इतोऽन्यथा पूजने न सम्यक् फलमवाप्नुयात् ।
महाविभवसम्पूर्णैर्विहितेनैव भैरव ॥ ३७ ॥
अनुक्तो यः क्रमश्चात्र वैष्णवीतन्त्रगोचरे ।
तथैवोत्तरतन्त्रेऽपि प्रोक्तो ग्राह्यस्तु साधुकैः ॥ ३८ ॥
पूर्वद्वारि प्रथमतः कामतत्त्वं प्रपूजयेत् ।
दक्षिणे प्रीतितत्त्वं तु रतितत्त्वं च पश्चिमे ॥ ३९ ॥
उत्तरे मोहनं तत्त्वं क्रमादेतानि पूजयेत् ।
ऐशान्यां पूजयेद् देव गणेशं द्वारपालकम् ॥ ४० ॥
अग्नौ तु चाग्निवेतालं नैर्ऋत्यां कालमेव च ।
वायव्यां नन्दिनं[४६] चापि पूजयेत् क्रमतस्त्विमान् ॥ ४१ ॥
चतुष्कं पञ्चकं षट्कं चतुष्कं पञ्चकं चतुः ।
षट्कारं चैव यो वेद स योग्यः पीठपूजने ॥ ४२ ॥
ओड्राख्यं प्रथमं पीठं द्वितीयं जालशैलकम् ।
तृतीयं पूर्णपीठं तु कामरूपं चतुर्थकम् ॥ ४३ ॥
ओड्रपीठं पश्चिमे तु तथैवोड्रेश्वरीं शिवाम् ।
कात्यायनीं जगन्नाथमोड्रेशं च प्रपूजयेत् ॥ ४४ ॥
उत्तरे पूजयेत् पीठं प्रशस्तं जालशैलकम् ।
जालेश्वरं महादेवं चण्डीं जालेश्वरीं तथा ॥ ४५ ॥

---

४६. दक्षिणं ।

दीर्घिकां चोग्रचण्डां च तत्रैव परिपूजयेत् ।
दक्षिणे पूर्णशैलं तु तथा पूर्णेश्वरीं शिवाम् ।। ४६ ।।
पूर्णनाथं महानाथं सरोजामथ चण्डिकाम् ।
पूजयेद् दमनीं[४७] देवीं शान्तामपि तथा शिवाम्[४८] ।। ४७ ।।
कामरूपं महापीठं तथा कामेश्वरीं शिवाम् ।
नीलं च पर्वतश्रेष्ठं नाथं कामेश्वरं तथा ।। ४८ ।।
पूजयेद् द्वारि पूर्वं तु क्रमादेतांस्तु भैरव ।
ओड्रादीनां तु पीठानां क्षेत्रपालान् गुरूंस्तथा ।। ४९ ।।
अन्यांस्तु द्वारपालादीन् स्वे स्वे स्थाने प्रपूजयेत् ।
विशेषात् कामरूपस्य कामेश्वरीं प्रपूजयन् ।। ५० ।।
तामेव नीलशैलस्थां शृणु वेतालभैरव ।
नाथः कामेश्वरो देवो देवी कामेश्वरी तथा ।। ५१ ।।
करालः क्षेत्रपालश्च चिञ्चावृक्षस्तथैव च ।
त्रिकूटे नीलशैलस्तु गुहा चापि मनोभवा ।। ५२ ।।
वटुकः कम्बलो नाम वल्ली चैवापराजिता ।
भैरवः पाण्डुनाथश्च श्मशानं हेरुकाह्वयम् ।। ५३ ।।
योगिनी च महोत्साहा तथा चन्द्रवती पुरी ।
लौहित्यो नदराजश्च प्रान्ता दिक्करवासिनी ।। ५४ ।।
जल्पीशाख्यस्तु वायव्यां केदाराख्योऽथ राक्षसे ।
एतान् सम्पूजयेद् द्वारि[४९] तथा देव्यास्तु मण्डले ।। ५५ ।।
द्वारपालो योगिनी च बटुकाद्या यथा तथा ।
कामरूपे पीठवरे ओड्रादिष्वथ तत् तथा ।। ५६ ।।
मध्ये तु मण्डलस्याथ द्रावणं शोषणं तथा ।
बन्धनं मोहनं चैव तथैवाकर्षणाह्वयम् ।। ५७ ।।
मनोभवस्य बाणांस्तु पञ्चैतान् परिपूजयेत् ।
षट्कोणाग्रेषूत्तरादौ भगादिषट्कमेव च ।। ५८ ।।
त्रिपुरातन्त्रमन्त्रोक्तं पूजयेत् क्रमतः सुधीः ।
गणाक्रीडादिकं तद्वत् तथा विद्याकलादिकान् ।। ५९ ।।
बटुकान् सिद्धपुत्रादीन् सिद्धाद्याश्च कुमारिकाः ।
चतश्चतुष्कमित्येतच्चतुष्कमिति चोच्यते ।। ६० ।।
कामं रतिं च प्रीतिं च अनङ्गमेखलादिकम् ।

---

४७. दशमीं । ४८. तथाम्बिकाम् । ४९. पूर्वं ।

सप्त वै त्रिपुरघ्नाद्या असिताङ्गादयो नव ॥ ६१ ॥
माहेश्वर्यादिका देव्यो दशभिः पञ्चभिर्गणैः ।
द्वितीयं पञ्चकं प्रोक्तं पीठे कामफलप्रदम् ॥ ६२ ॥
आधारशक्तिमुख्या ये नित्यं तत्र प्रतिष्ठिताः ।
धर्माद्याश्च तथैवाष्टौ तथा सत्त्वादिका गुणाः ॥ ६३ ॥
एकत्र ग्रहदिक्पालाश्चतुष्कमपरं स्मृतम् ।
देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या नायिकाः परिपूजयेत् ॥ ६४ ॥
पूर्वोक्तदेशे मन्त्रेण भक्त्या वेतालभैरव ।
आवाहनं षोडशोपचाराणां प्रतिपादनम् ॥ ६५ ॥
जपं च बलिदानं च अङ्गास्त्राणां प्रपूजनम् ।
मुद्रा पूर्वा विसृष्टिश्च षट्कमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ६६ ॥
एतानि सप्त जानाति प्रकारान् पूजकः सुधीः ।
स एवोड्रादिपीठानि सम्पूजयितुमर्हति ॥ ६७ ॥
योऽज्ञात्वा सम्यगेतानि कुरुते पीठपूजनम् ।
न सम्यक् फलमाप्नोति हीनायुरपि जायते ॥ ६८ ॥
त्रिपुरातन्त्रमन्त्रोक्तस्थानेष्वेतेषु भैरव ।
पूजयित्वा प्रथमतः पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ ६९ ॥
कामेश्वरि इहागच्छ सम्मुखीभव चेश्वरि ।
चिन्तयित्वाथ मनसाऽभ्यर्च्य कामेश्वरीं हृदि ॥ ७० ॥
मानसैर्गन्धपुष्पाद्यैस्ततो दक्षिणनासया ।
निःसार्य वायुं तत् पुष्पमारोप्य मण्डलान्तरे ॥ ७१ ॥
आवाहयेन्महादेवीं सर्वकामेश्वरेश्वरीम् ।
कामेश्वरि इहागच्छ सम्मुखीभव सन्निधौ ॥ ७२ ॥
कामेश्वरि विद्महे त्वां कामाख्यायै च धीमहि ।
तन्नः कुब्जि महामाये ततः पश्चात् प्रचोदयात् ॥ ७३ ॥
एह्येहि भगवत्यम्ब लोकानुग्रहकारिणि ।
कामेशे कामरूपे त्वं कामकान्ते प्रसीद मे ॥ ७४ ॥
ततस्तु प्रथमं स्नानं जलं दत्त्वा तु पूजकः ।
मूलमन्त्रेण वितरेदुपचारांस्तु षोडश ॥ ७५ ॥
पूजयेन्मध्यभागे तु षडङ्गानि ततोऽर्चयेत् ।
अङ्गन्यासे तु ये मन्त्राः क्रमे पूर्वं तु भाषिताः ॥ ७६ ॥
तैरेव मन्त्रैरङ्गानि देव्या अपि च पूजयेत् ।
पूर्वाद्यष्टदलेष्वेता योगिनीः परिपूजयेत् ॥ ७७ ॥

यथाक्रमेण कामानां सिद्ध्यर्थं कामदायिकाः ।
गुप्तकामां तु श्रीकामां तथैव विन्ध्यवासिनीम् ॥ ७८ ॥
कोटेश्वरीं वनस्थां तु योगिनीं पादचण्डिकाम् ।
दीर्घेश्वरीं तु प्रकटां भुवनेशीं क्रमाद् यजेत् ॥ ७९ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यान्यष्टावक्षराणि तु ।
तानि बिन्द्विन्दुयुक्तानि मन्त्रन्यासांश्च चक्षते ॥ ८० ॥
मन्त्रेषु षण्णां कोणानां षडिमाः परिपूजयेत् ।
ऐशान्यादिक्रमेणैव कामाख्यां त्रिपुरां तथा ॥ ८१ ॥
शारदां च महोत्साहां प्रकटां भुवनेश्वराम् ।
सिद्धकामेश्वरीं चापि देव्या रूपाणि भैरव ॥ ८२ ॥
अष्टपुष्पिकया देवीं पुनः सम्पूज्य चाष्टधा ।
जप्त्वा स्तुत्वा बलिं दत्त्वा नत्वा मुद्रां प्रदर्श्य च ॥ ८३ ॥
देव्यास्तु सिद्धचण्ड्या वै निर्माल्यं प्रतिपाद्य च ।
विसृज्य मण्डलाद् देवीं स्थापयेद् योनिमण्डले ॥ ८४ ॥
एतत् कामेश्वरीतन्त्रं कथितं युवयोः सुतौ ।
शारदाया महातन्त्रं समन्त्रं शृणु भैरव ॥ ८५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुरापूजनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

शरत्काले पुरा यस्मान्नवम्यां बोधिता सुरैः ।
शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च मानव[50] ॥ १ ॥
तस्यां तु नेत्रबीजाख्यं मन्त्रं प्राक् प्रतिपादितम् ।
दुर्गातन्त्रं च तन्मन्त्रमङ्गमन्त्रं पुरोदितम् ॥ २ ॥
ताभ्यामेव तु मन्त्राभ्यां पूजयेत् तां जगन्मयीम् ।
तृतीयं पीठमन्त्रं तु शारदाया अनुत्तमम् ॥ ३ ॥
शृणुतं चैकमनसा चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
चतुर्थस्वरसंयुक्तमुपान्तो वह्निना युतः ॥ ४ ॥
कामराजं तथा नान्तमुपान्तस्वरसंयुतम् ।
वह्निना चापि सन्दीप्तः सर्वबिन्द्विन्दुसंयुतः ॥ ५ ॥
हादिः समाप्तिसहित एतद्बीजं चतुर्थकम् ।
चतुर्भिरेभिः कथितो मन्त्रोक्तैश्च षडक्षरैः ॥ ६ ॥
अयं तृतीयो मन्त्रस्तु शारदायाः प्रकीर्तितः ।
अनेन पूजयेत् पीठे सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥
रूपमस्याः पुरा प्रोक्तं सिंहस्थं दशबाहुभिः ।
तत्र पूजाक्रमं सम्यक् शृणुतं पुत्रकौ मम ॥ ८ ॥
चतुर्द्वारमण्डलं[51] तु कुर्यात् तत्र विभूतये ।
महामायामण्डलं तु शारदायास्तु मण्डलम् ॥ ९ ॥
वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तैर्मन्त्रस्थानादिमार्जनम् ।
कृत्वा तु नेत्रबीजेन मण्डलं प्रस्तरे लिखेत् ॥ १० ॥
योनावष्टदलं कृत्वा त्रिकोणं मध्यतो न्यसेत् ।
अयं विशेषः कथितो वैष्णवीमण्डलात् पुनः ॥ ११ ॥
मण्डलोल्लेखनं चैव तथा भूतापसारणम् ।
पात्रस्य प्रतिपत्तिस्तु अमृतीकरणं तथा ॥ १२ ॥
गन्धपुष्पाम्भसां चेप आत्मासनप्रपूजनम् ।
प्राणायामश्च त्रिविधो भूतिशुद्धिप्रवेशनम् ॥ १३ ॥

---

५०. नामतः । ५१. बहुद्वार······ ।

दहनप्लवने चैव पाणिकच्छपिका तथा ।
योगपीठस्य च ध्यानं वैष्णवीतन्त्रभाषितम् ॥ १४ ॥
तथैवोत्तरतन्त्रोक्तं कुर्याद् देव्याः प्रपूजनम् ।
अमृतीकरणं कुर्यात् सलिले धेनुमुद्रया ॥ १५ ॥
रूपं त्वेवं दशभुजं पूर्वोक्तं तु विचिन्तयेत् ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ दुर्गातन्त्रेण भैरव ॥ १६ ॥
नवाक्षरेण वै कुर्यादङ्गुष्टादि क्रमेण तु ।
हृदयादिक्रमात् पश्चाद् वक्त्रादावपि पूर्ववत् ॥ १७ ॥
एतदेवार्घपात्रे चाष्टधा मन्त्रं जपेत् सुधीः ।
तत् तोयैः सेचयेच्छीर्षं पुष्पगन्धादिकं तथा ॥ १८ ॥
एवं पूजाक्रमं तत्र कुर्याद् देव्यास्तु मण्डले ।
आदित्यं चण्डिकारूपं ध्यात्वा पूर्वं शिलातले ॥ १९ ॥
तस्मै निवेदयेदर्घ्यं सिद्धार्थाक्षतपुष्पकैः ।
आधारशक्तिप्रभृतीन् क्लीँ मन्त्रेण च साधकः ॥ २० ॥
पूजयेत् प्रथमं मध्ये धर्मादीनपि पूर्ववत् ।
सत्त्वादीन् गुरुपादान्तान् पूर्वतन्त्रोदितान् बुधः ॥ २१ ॥
पूजयेन्मध्यपद्मे तु सुमेरुमपि मध्यतः ।
पूर्वभागे मण्डलस्य देव्याः शक्तीः प्रपूजयेत् ॥ २२ ॥
नाथकामेश्वरादींस्तु लौहित्यान्तान् विशेषतः ।
सर्वान् वै पीठदेवांस्तु मण्डलस्योत्तरे यजेत् ॥ २३ ॥
मणिकर्णं चित्ररथं भस्मकूटं तथैव च ।
श्वेतं नीलं च चित्रं च वाराहं गन्धमादनम् ॥ २४ ॥
मणिकूटं नन्दनं च पश्चिमे पूजयेदिमान् ।
जल्पीशमथ केदारं देवीं दिक्करवासिनीम् ॥ २५ ॥
धात्रीं स्वधां तथा स्वाहां मानस्तोकापराजिते ।
दक्षिणे पूजयेदेताश्चतुःषष्टिं च योगिनीः ॥ २६ ॥
ग्रहांश्च दशदिक्पालान् पूर्वाद्युक्तक्रमेण तु ।
पूर्ववत् पूजयेद् धीमान् भैरवं भैरवीमपि ॥ २७ ॥
ततः कच्छपिकां बद्ध्वा पुनरेव तु पूजकः ।
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीं हृदिस्थां मनसापि च ॥ २८ ॥
मानसैर्गन्धपुष्पाद्यैः पूजयित्वा हृदि स्थिताम् ।
नासापुटेन निःसार्य दक्षिणेनाथ मण्डले ॥ २९ ॥

पुष्पमारोप्य[52] कामाख्यां शारदामाह्वयेन्मुहुः ।
एह्येहि परमेशानि सान्निध्यमिह कल्पय ॥ ३० ॥
पूजाभागं गृहाणेमं मखं रक्ष नमोऽस्तु ते[53] ।
दुर्गे दुर्गे इहागच्छ सर्वैः परिकरैः सह ॥ ३१ ॥
पूजाभागं ग्रहाणेमं मखं रक्ष नमोऽस्तु ते ।
नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै तु धीमहि ॥ ३२ ॥
शेषभागे तु गायत्र्यास्तन्नश्चण्डि प्रचोदयात् ।
दत्त्वा स्नानमनेनैव दुर्गा तन्त्रेण वै पुनः ॥ ३३ ॥
नेत्रबीजेन च तथा पीठमन्त्रेण चान्तरम् ।
चतुरक्षरेण शेषेण त्रिभिर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥ ३४ ॥
चतुरक्षरमन्त्रेण पाद्यादीनथ षोडश ।
वितरेदुपचारांस्तु पूर्वोक्तांस्तांस्तु भैरव ॥ ३५ ॥
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण देव्यङ्गानि प्रपूजयेत् ।
दुर्गेत्यनेन हृदयं पुनर्दुर्गेत्यनेन च ॥ ३६ ॥
शिखाकवचनेत्रांश्च पादपादांश्च पञ्चभिः ।
वादिपञ्चाक्षरैः शेषैः पूजयेत् क्रमतः सुधीः ॥ ३७ ॥
पूर्वाद्यष्टदलेष्वेताः पूजयेन्नाधिकक्रमात् ।
जयन्तीं पूर्वपत्रे तु आग्नेय्यादौ तु मङ्गलाम् ॥ ३८ ॥
कालीं च भद्रकालीं च तथा चैव कपालिनीम् ।
दुर्गां शिवां क्षमां चैव क्रमादेव तु नामतः ॥ ३९ ॥
केशवस्य तु मध्ये तु अष्टावेतास्तु नायिकाः ।
नेत्रबीजस्य मन्त्रेण बीजेन षट्सु[54] नायिकाः ॥ ४० ॥
अमीषां च तथैवासौ षड्भिरेतान्तराहितैः ।
ह्रीँ ह्रीँ श्रीमित्युपान्तां तु प्रान्तामाद्यस्वरेण वै ॥ ४१ ॥
उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् ।
चण्डां चण्डवतीं चैव चण्डरूपां च चण्डिकाम् ॥ ४२ ॥
त्रिकोणकेशरान्तं तु कामं प्रीतिं रतिं तथा ।
पञ्चबाणान् पुष्पधनुः पूजयेत् काममन्त्रकैः ॥ ४३ ॥
अष्टपुष्पिकया पश्चात् सम्पूज्य परमेश्वरीम् ।
देव्यास्तु करगृह्याणि शस्त्राण्यङ्गानि वाहनम् ॥ ४४ ॥
पञ्चाननं केशरं च देव्यग्रे तु प्रपूजयेत् ।
पीठदेवीं शारदां तु कामाख्यामधिदेवताम् ॥ ४५ ॥

---

५२. पूजामारोप्य । ५३. सरहस्यत्र मण्डले । ५४. जटासु ।

त्रिपुराख्यां महादेवीं पीठमत्यधिदेवताम् ।
कामेश्वरीं महोत्साहां मध्य एव प्रपूजयेत् ॥ ४६ ॥
चतुरक्षरमन्त्रेण दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
जप्त्वा स्तुत्वा बलिं दत्त्वा नमस्कृत्यावगुण्ठ्य च ॥ ४७ ॥
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ निर्माल्यं दिशि शूलिनः[५५] ।
चण्डेश्वर्यै नम इति निक्षिप्य च विसर्जयेत् ॥ ४८ ॥
ततस्तु भास्करायार्घ्यं दद्याच्छिद्रावधारणम् ।
देवीं च हृदये स्थाप्य स्थापयेद् योनिमण्डले ॥ ४६ ॥
एवं देवीं तु कामाख्यां योनिमुद्रां[५६] जगन्मयीम् ।
शारदाख्यां महादेवीं योगेन विधिना यजेत् ॥ ५० ॥
सर्वकामान् सुसम्प्राप्य शिवलोकमवाप्नुयात् ।
यदि पीठं विनान्यत्र पूजयेत् कामरूपिणीम् ॥ ५१ ॥
नीलकूटे तदाप्येतत् सर्वमेव समाचरेत् ।
यदान्यत्र यजेद् देवीं जले वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥ ५२ ॥
शिलादिषु[५७] च वह्नौ वा देवपीठे यथेच्छया ।
यजेद् वा न यजेद् वापि पीठेऽवश्यं प्रपूजयेत् ॥ ५३ ॥
एवं यः पञ्चभिर्मन्त्रैः पंचमूर्तिधरां शिवाम् ।
एकैकेनाथ वा तस्य स्वयं स्याद् वरदायिका[५८] ॥ ५४ ॥
विघ्ना न तस्य जायन्ते नाधयो व्याधयस्तथा ।
न तस्य सदृशोऽन्यः स्याद् धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ ५५ ॥
गवां कोटिप्रदानात् तु यत्फलं जायते नृणाम् ।
तत्फलं समवाप्नोति कामाख्यां पूजयन्नरः ॥ ५६ ॥
दशपूर्वान् दशपरान् वंशानुद्धृत्य पापतः ।
सकृत् सम्पूजनेनैव मम लोकमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥
द्विः सम्पूज्य महादेवीं कामाख्यां योनिमण्डले ।
शतं वंशान् समुद्धृत्य देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
यस्त्रिवारान् पूजयेत् तु विधिनानेन मानवः ।
नीलपर्वतमारुह्य कामाख्यां योनिमण्डले ॥ ५६ ॥
स सहस्रं तु वंशानामुद्धृत्य पापकोषतः ।
इहलोके सुखैश्वर्यचिरायुष्यमवाप्नुयात् ॥ ६० ॥

---

५५. निर्माल्यानि त्रिशूलिनः । ५६. योगनिद्रां ।
५७. शिलादिषु तदा देवीं पीठदेवान् । ५८. वरदाम्बिका ।

देहान्ते मद्गृहं प्राप्य गणानामधिपो भवेत् ।
यस्यां कस्यामथाष्टम्यां नवम्यां वापि साधकः ॥ ६१ ॥
पञ्चरूपां तु कामाख्यां पंचमन्त्रैः सतन्त्रकैः ।
पूजयेद् वरदां देवीं मण्डलैश्च पृथक् पृथक् ॥ ६२ ॥
ध्यात्वा तु पंचरूपाणि जप्त्वा मन्त्रांश्च[59] पञ्च वै ।
कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके च मानवः ॥ ६३ ॥
स्थित्वा देवीप्रसादेन परे[60] निर्वाणमाप्नुयात् ।
इह लोके वाञ्छितार्थं सुखं प्राप्य यशस्तथा ॥ ६४ ॥
रिपूञ्जित्वा स धर्मात्मा मातङ्गानिव केसरी ।
चिरायुः पुत्रपौत्रैश्च विभवैश्च समन्वितः ॥ ६५ ॥
क्रीडयित्वा ह्यमरवद् युवतीभिश्च सादरात् ।
यक्षरक्षःपिशाचानां नेता भवति नित्यशः ।
सर्वान् कामानवाप्यैव द्विजराजसमो भवेत् ॥ ६६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

---

५९. मन्त्राणि । ६० दैवे ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

और्व उवाच

एतत्तन्त्रं समस्तं तु श्रुत्वा वेतालभैरवौ।
पप्रच्छतुस्त्र्यम्बकं च हर्षोत्फुल्लविलोचनौ॥१॥

वेतालभैरवावूचतुः

कामाख्यायाः श्रुतं तन्त्रं साङ्गं युष्मत्प्रसादतः।
नमस्कारं तथा मुद्रां बलिदानं तथैव च॥२॥
तथैव मातृकान्यासं पूजायां चान्यतः क्रमम्।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण जगत्प्रभो।
शृण्वतो नहि नौ तृप्तिर्जायते मोदभूमिषु॥३॥

श्रीभगवानुवाच

वक्ष्यामि यदहं पृष्टो भवद्भ्यां पुत्रकोत्तमौ।
शृणुतं नरशार्दूलावेकाग्रमनसाधुना॥४॥
त्रिकोणमथ षट्कोणमर्धचन्द्रं प्रदक्षिणम्।
दण्डमष्टाङ्गमुग्रं च सप्तधा नतिलक्षणम्॥५॥
ऐशानी वाथ कौबेरी दिक् कामाख्याप्रपूजने।
प्रशस्ता स्थण्डिलादौ च सर्वमूर्तेश्च सर्वतः॥६॥
त्रिकोणादिव्यवस्था तु यदि पूर्वमुखो यजेत्।
पश्चिमाच्छाम्भवीं गत्वा व्यवस्थां निर्दिशेत् तदा॥७॥
यदोत्तरामुखः कुर्यात् साधको देवपूजनम्।
तदा याम्यां तु वायव्यां गत्वा कुर्यात् तु संस्थितिम्॥८॥
दक्षिणाद् वायवीं गत्वा दिशं तस्माच्च शाम्भवीम्।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत्॥९॥
त्रिकोणाख्यो नमस्कारस्त्रिपुराप्रीतिदायकः।
दक्षिणाद् वायवीं गत्वा वायव्याच्छाम्भवीं ततः॥१०॥*
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा तां त्यक्त्वाग्नौ प्रविश्य च।
अग्नितो राक्षसीं गत्वा तत्पश्चादुत्तरां दिशम्॥११॥*
उत्तराच्च तथाग्नेयीं भ्रमणं द्वित्रिकोणवत्।

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिकं दृश्यते।

षट्कोणोऽयं नमस्कारः प्रीतिदः शिवदुर्गयोः ॥ १२ ॥
दक्षिणाद् वायवीं गत्वा तस्मादावृत्य दक्षिणम् ।
गत्वा योऽसौ नमस्कारः सोऽर्धचन्द्रः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥
सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा वर्तुलाकृति साधकः ।
नमस्कारः कथ्यतेऽसौ प्रदक्षिण इति द्विजैः ॥ १४ ॥
त्यक्त्वा स्वमासनस्थानं पश्चाद् दुर्गानमस्कृतिः ।
प्रदक्षिणं विना यातु निपत्य भुवि दण्डवत् ॥ १५ ॥
दण्ड इत्युच्यते देवैः सर्वदेवौघमोददः ।
पूर्ववद् दण्डवद् भूमौ निपत्य हृदयेन तु ॥ १६ ॥
चिबुकेन मुखेनाथ नासया हनुकेन च ।
[61]ब्रह्मरन्ध्रेण कर्णाभ्यां यद्भूमिस्पर्शनं क्रमात् ॥ १७ ॥
स चाष्टाङ्ग इति प्रोक्तो नमस्कारो मनीषिभिः ।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा साधको वर्तुलाकृतिः ॥ १८ ॥
ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः क्षितेर्यस्मान्नमस्कृतौ ।
स उग्र इति देवौघैरुच्यते विष्णुतुष्टिदः ॥ १९ ॥
नदानां सागरो यद्वद् द्विपदां ब्राह्मणो यथा ।
नदीनां जाह्नवी यादृग् देवानामपि चक्रधृक् ॥ २० ॥
नमस्कारेषु सर्वेषु तथैवोग्रः प्रशस्यते ।
त्रिकोणाद्यैर्नमस्कारैः कृतैरेव तु भक्तितः ॥ २१ ॥
चतुर्वर्गं लभेद् भक्तो नचिरादेव साधकः ।
नमस्कारो महायज्ञः प्रीतिदः सर्वतः सदा ॥ २२ ॥
सर्वेषामेव देवानामन्येषामपि भैरव ।
योऽसावुग्रो नमस्कारः प्रीतिदः सततो[62] हरेः ॥ २३ ॥
महामायाप्रीतिकरः स नमस्करणोत्तमः ।
उक्तास्तत्र नमस्काराः श्रृणुतं परतो युवाम् ॥ २४ ॥
मुद्राणां परिसंख्यानं स्वरूपं च यथाक्रमम् ।
धेनुश्च सम्पुटश्चैव प्राञ्जलिर्बिल्वपद्मकौ ॥ २५ ॥
नाराचो मुण्डदण्डौ च योनिरर्धं तथैव च ।
[63]वन्दनी च महामुद्रा महायोनिस्तथैव च ॥ २६ ॥
भगश्च पुटकश्चैव निषङ्गोथाऽर्धचन्द्रकः ।
अङ्गश्च द्विमुखं चैव शङ्खमुद्रा च मुष्टिकः ॥ २७ ॥

---

६१. अस्थि । ६२. सततं । ६३. नन्दनी च ।

वज्रं चैव तथा रन्ध्रं षड्योनिर्विमलं तथा।
घटः शिखरिणीतुङ्गः पुण्ड्रोऽथ ह्यर्धपुण्ड्रकः ॥ २८ ॥
सम्मिलनी च कुण्डश्च[६४] चक्रं शूलं तथैव च।
सिंहवक्त्रं गोमुखं च प्रोन्नामोन्नमनं तथा ॥ २९ ॥
बिम्बं पाशुपतं शुद्धं त्यागोऽथोत्सारिणी तथा।
प्रसारिणी चोग्रमुद्रा कुण्डलीव्यूह एव च ॥ ३० ॥
त्रिमुखा चासिवल्ली च योगो भेदोऽथ मोहनम्।
बाणो धनुश्च तूणीरं मुद्रा एताश्च सत्तमाः ॥ ३१ ॥
अष्टोत्तरशतं मुद्रा ब्रह्मणा याः प्रकीर्तिताः।
तासां तु पञ्चपञ्चाशदेता ग्राह्यास्तु पूजने ॥ ३२ ॥
शेषास्तु यास्त्रिपञ्चाशन्मुद्रास्ताः समयेषु च।
द्रव्यानयनसंकेतनटनादिषु ताः स्मृताः ॥ ३३ ॥
देवानां चिन्तने योगे ध्याने जप्ये विसर्जने।
आद्यास्तु पञ्चपञ्चाशन्मुद्रा भैरव कीर्तिताः ॥ ३४ ॥
मुद्रां विना तु यज्जप्यं प्राणायामः सुरार्च्चनम्।
योगो ध्यानासने चापि निष्फलानि च भैरव ॥ ३५ ॥
प्रत्येकं लक्षणं तेषां शृणुतं तनयौ युवाम्।
दक्षिणामध्यमाग्रेण सव्यहस्तस्य तर्जनीम् ॥ ३६ ॥
योजयेत् सव्यमध्यां तु तर्जन्या दक्षिणेन वै।
तथा दक्षिणानामिकया वामहस्तकनिष्ठिकाम् ॥ ३७ ॥
अनामिकां तु वामस्य दक्षिणस्य कनिष्ठया।
योजयेद् भक्तिमान् सम्यग् दक्षिणावर्तनेन तु ॥ ३८ ॥
धेनुमुद्रा समाख्याता सर्वदेवस्य तुष्टिदा।
संयोज्य द्वौ तलौ सर्वाण्यंगुल्यग्राणि हस्तयोः ॥ ३९ ॥
संयोज्य पार्श्वतोऽङ्गुष्ठौ सम्पुटः प्रोच्यते सुरैः।
सर्वेषामथ देवानां सम्पुटः प्रीतिदायकः[६५] ॥ ४० ॥
ध्यानचिन्तनयोगादौ सम्पुटः शस्यते सदा।
निकुब्जयुगलं पाण्योस्तं संयोज्यार्ध एव च ॥ ४१ ॥
मध्यशून्यः पुटाकारः प्राञ्जलिः परिकीर्तितः।
अङ्गुष्ठमन्तरं कृत्वा पाण्योर्मुष्टिं विधाय च ॥ ४२ ॥
संयोज्य बिल्ववत्ते तु बिल्वमुद्रा प्रकीर्तिता।
मणिबन्धादाकरभं संयोज्य करयोर्द्वयोः ॥ ४३ ॥

---

६४. धर्मार्थनीच कुण्डं च। ६५. प्रीतिदः सदा।

अङ्गुष्ठे चापि संयोज्य तथैव च कनिष्ठिके।
तिस्रस्तिस्रस्तयोः पाण्योरङ्गुलीर्विरलास्तथा ॥ ४४ ॥
पद्ममुद्रा समाख्याता चतुर्वर्गफला नृणाम्।
अङ्गुष्ठाग्रेण तर्जन्या संयोज्याथोर्ध्वरेखया ॥ ४५ ॥
अन्याङ्गुलीस्तथानम्य नाराचः स्यात् प्रसार्य ते।
मम चैव शिवायाश्च प्रीतिदेयं प्रियङ्करी ॥ ४६ ॥
नाराचमुद्रा सततं प्रीत्यै वेतालभैरव।
अन्तराङ्गुष्ठमुष्टिं च कृत्वा वामकरस्य तु ॥ ४७ ॥
मध्यमाया दक्षिणस्य तथानम्य प्रयत्नतः।
मध्यमेनाथ तर्जन्या अङ्गुष्ठाग्रं नियोज्य च ॥ ४८ ॥
दक्षिणं योजयेत् पाणिं वाममुष्टौ च साधकः।
दर्शयेद् दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमिष्यते ॥ ४९ ॥
इयं तु गणनाथस्य प्रीतिदा मुद्रिकोत्तमा।
सर्वेषामपि देवानां तुष्टिदा सर्वकर्मसु ॥ ५० ॥
अङ्गुष्ठमध्यमादींश्च सम्यगानम्य तर्जनीम्।
प्रसार्य दण्डमुद्रेति दक्षिणस्य करस्य च ॥ ५१ ॥
सर्वाङ्गुलीस्तु संयोज्य करयोरुभयोरपि।
संवेष्ट्य रज्जुवद् वेति पाण्योरपि कनिष्ठिके ॥ ५२ ॥
वामस्यानाममूले वै उदग्रं विनियोजयेत्।
दक्षस्य मध्यमामूले तथाग्रं वाममेव च ॥ ५३ ॥
योजयेद् योजनात् पश्चादावर्त्य करशाखिकाः।
योन्याकारं तु तन्मध्यं योनिमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ५४ ॥
कामाख्यायाः पञ्चमूर्तेर्दुर्गाया अपि भैरव।❀
प्रीतिदा योनिमुद्रेयं मम कामस्य च प्रिया ॥ ५५ ॥
संसक्ता अङ्गुलीः सर्वाः प्रसार्याङ्गुष्ठपर्वणा।
अग्रेण च कनिष्ठाया अग्रेणापि च योजयेत् ॥ ५६ ॥
करस्य दक्षिणस्यैवमर्धयोनिः प्रकीर्तिता।
महायोनिस्तु कथिता वैष्णवीतन्त्रणे वरे ॥ ५७ ॥
सम्पुटं प्राञ्जलिं वापि यदि शीर्षे प्रदर्शयेत्।
वन्दनीया समाख्याता मुद्रा विष्णुप्रमोदिनी ॥ ५८ ॥
सैव चेच्छ्रवणासक्ता[६६] महामुद्रा प्रकीर्तिता।

❀ अधिकं दृश्यते। ६६. शिखयासक्ता।

दक्षिणांगे तु सा सक्ता वैष्णवी परिकीर्तिता ॥ ५९ ॥
महायोनिस्तु कथिता वैष्णवी तन्त्रगोचरे ।
द्वयोस्तु मूलेऽङ्गुष्ठाग्रमङ्गुलीं च कनिष्ठयोः ॥ ६० ॥
नियोज्य प्रसृतीकृत्य द्वौ पाणी योजयेत् पुनः ।
भगमुद्रा समाख्याता लक्ष्मीवाणीशिवप्रिया ॥ ६१ ॥
सर्वाङ्गुलीनामग्रौघं दक्षिणस्य करस्य च ।
संयोज्यैकत्र पुरतो निर्देशः पुटकः स्मृतः ॥ ६२ ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठाङ्गुलीनां योजयेद् बुधः ।
अग्राण्येकत्र मध्यां तु तर्जनीं च प्रसार्य वै ॥ ६३ ॥
कुब्जीकृत्य करद्वन्द्वं पृथगग्रे निदर्शयेत् ।
निःसङ्गनाममुद्रेयं नरसिंहवराहयोः ॥ ६४ ॥
कनिष्ठानामिकामध्यमाकुञ्चन् दक्षिणेन तु ।
करस्य तर्जन्यङ्गुष्ठे प्रसार्य क्रियते तु या ॥ ६५ ॥
सा मुद्रा ह्यर्धचन्द्राख्या ग्रहाणां प्रीतिदायिनी ।
ऊर्ध्वीकृत्य तथाङ्गुष्ठं करस्य दक्षिणस्य तु ॥ ६६ ॥
कृत्वा मध्यां तदङ्गुष्ठं वाममुष्टिं तथोर्ध्वतः ।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठां तथा कुर्यादङ्गमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ६७ ॥
एतस्या एव मुद्रायाः कनिष्ठादिवियोगतः ।
अष्टौ मुद्राः समाख्याता नाम तासां पृथक् शृणु[६७] ॥ ६८ ॥
द्विमुखं चैव मुष्टिं च वज्रमाबद्धमेव च ।
विमलश्च घटश्चैव तुङ्गः पुण्ड्रस्तथैव च ॥ ६९ ॥
नवानां विष्णुमूर्तिनां सार्धमङ्गेन मुद्रिकाः ।
क्रमान्नव समाख्याता नायिकानां तथैव च ॥ ७० ॥
संयोज्य करयोः पृष्ठे तथावर्त्य तु वै समम् ।
प्रसार्य तर्जनीयुग्मं संयुक्तं सर्वतः पुनः ॥ ७१ ॥
अङ्गुष्ठौ च तथासक्तौ शङ्खमुद्रा प्रकीर्तिता ।
उत्तानमञ्जलिं कृत्वा अङ्गुष्ठे द्वे कनिष्ठयोः ॥ ७२ ॥
मूले निक्षिप्य तु करौ संयोज्याथ प्रदर्शयेत् ।
सा योनिरिति विख्याता मुद्रा देवौघतुष्टिदा ॥ ७३ ॥
मुष्टिर्दक्षिणहस्तस्य यदोर्ध्वाङ्गुष्ठिका भवेत् ।
सा स्याच्छिखरिणीमुद्रा ब्राह्मीसूर्यप्रिया च सा ॥ ७४ ॥
अनामिके कनिष्ठे च संयोज्य वायुना पुनः ।
मध्यमा तर्जनीनां तु धेनुमुद्रेव बन्धनम् ॥ ७५ ॥

---

६७. पृथक् पृथक् ।

सार्धधेनुरिति ख्याता चन्द्रप्रीति विवर्धिनी।
करयोरङ्गुलीनां तु सर्वाग्राण्येकतः स्थिता ॥ ७६ ॥
नियोज्य द्वे तले चैव तदधोऽपि नियोज्य च।
अग्रैरग्रैर्योजयेत् तु मुद्रा सम्मीलनी तु सा ॥ ७७ ॥
भौमभूमिमुनीशानामियं प्रीतिविवर्धिनी।
सर्वाङ्गुलीस्तु संयोज्य दक्षिणस्य करस्य च ॥ ७८ ॥
कियद्भागं तथानम्य तलं कुर्यात् तु कुण्डवत्।
समाख्याता कुण्डमुद्रा बुधवाणीशिवप्रिया ॥ ७६ ॥
सर्वाङ्गुलीनां मध्यं तु वामहस्तस्य चाङ्गुलीः।
प्रसार्याङ्गुष्ठयुगलं संयोज्याग्रेण भैरव ॥ ८० ॥
तदङ्गुष्ठद्वयं कार्यं सम्मुखं वितरेत् ततः।
चक्रमुद्रा समाख्याता गुरुविष्णुशिवप्रिया ॥ ८१ ॥
अङ्गुष्ठं मध्यमां चैव नामयित्वा करस्य तु।
दक्षिणस्य परास्तिस्रो योजयेदग्रतः पुनः ॥ ८२ ॥
शूलमुद्रा समाख्याता मम शुक्रग्रहप्रिया।
निकुब्जीकृत्य तु करौ वामाङ्गुलिगणस्य तु ॥ ८३ ॥
अग्राणि योजयेन्मध्ये तलस्यासव्यहस्ततः।[६८]
अधः कृत्वा वामहस्तं मुद्रा सिंहमुखी स्मृता ॥ ८४ ॥
इयं प्रीत्यै तु दुर्गायाः सूर्यपुत्रस्य चक्रिणः।
भगमुद्रा कर्णमूले गोमुखाख्या प्रकीर्तिता ॥ ८५ ॥
मम विष्णोस्तथा राहोः सर्वदा प्रीतिदायिनी।
मुष्टिद्वयमथोत्तानं कृत्वा संयोज्य पार्श्वतः ॥ ८६ ॥
दक्षिणस्य कनिष्ठादीन् प्रसार्य क्रमतः पुनः।
तथा वामकनिष्ठाभ्यामेकैकेन प्रसारयेत् ॥ ८७ ॥
अष्टौ मुद्राः समाख्याता नामतः क्रमतः शृणु ।✻
प्रोल्लासोन्नमनं चैव विम्वं पाशुपतं तथा ॥ ८८ ॥
शुद्धं त्यागः सारणी च तथा चैव प्रसारणी।
आकुञ्चकरशाखास्तु दक्षिणा सा तु मुद्रिका ॥ ८६ ॥
उग्रमुद्रा समाख्याता स्वहस्तस्य विपर्ययात् ।✻
इन्द्रादिलोकपालानां दशमुद्राः प्रकीर्तिताः ॥ ६० ॥
सर्वेषामेव देवानां परमप्रीतिवर्धनाः।[६९]

---

६८. तलस्य सव्यहस्ततः। ✻ अधिकं लक्ष्यते।
६९. तथा तुष्टिकरं महत्।

अङ्गुष्ठाग्रं तु तर्जन्या अग्रे भागेन योजयेत् ॥ ६१ ॥
आकुञ्चमध्यमाद्यास्तु दक्षहस्तस्य चाङ्गुलीः ।
दर्शयेत् कुण्डलाकारं कुण्डलीशक्तितुष्टिदम् ॥ ६२ ॥
सर्वेषामपि देवानां यथा तुष्टिकरं महत् ।
अङ्गुष्ठतर्जनीमध्या अग्रभागे नियोज्य च ॥ ६३ ॥
मध्यमां च कनिष्ठां च आकुञ्च्य दक्षिणे करे ।
त्रिमुखाख्या समाख्याता विश्वदेवप्रिया सदा ॥ ६४ ॥
केतोः प्रियेयं सततं मातृणामपि तुष्टिदा ।
तर्जन्यंगुष्ठयोरग्रभागौ संयोज्य चाङ्गुलीः ॥ ६५ ॥
अन्या आकुञ्चयेत् तिस्रः साऽसिवल्ली प्रकीर्तिता ।
पितॄणामथ साध्यानां रुद्राणां विश्वकर्मणः ॥ ६६ ॥
सर्वदा प्रीतिजननी साऽसिवल्ली प्रकीर्तिता ।
पादौ तलाभ्यां संयोज्य तदङ्गुष्ठद्वयं यतः ॥ ६७ ॥
ऊर्ध्वं संयोजयेन्नाभौ तस्योपरि तथाञ्जलिः ।
योगमुद्रा समाख्याता योगिनां तत्त्वदायिनी ॥ ६८ ॥
सर्वेषामपि देवानां पूजने चिन्तने तथा ।
योगमुद्रा समाख्याता तुष्टिप्रीतिकरी सदा ॥ ६९ ॥
प्राञ्जलिर्नाम मुद्रा तु ऊर्ध्वाधो भावयोजिता ।
विभिद्य दर्शयेद्धस्तौ ऊर्ध्वाधः प्रसृतीकृतौ ॥ १०० ॥
भेदमुद्रा समाख्याता मम विष्णोर्विधेः प्रिया ।
अङ्गुष्ठे द्वे तु निक्षिप्य करयोरुभयोरपि ॥ १०१ ॥
अग्रेण योजयेत् पश्चात् कनिष्ठायुगलं ततः ।[७०]
उभयोर्हस्तयोश्चान्यास्तर्जन्याद्याश्च योजयेत् ॥ १०२ ॥
अग्राग्रैस्तु पृथक्कृत्य दर्शयेत् तु कनिष्ठिकाम् ।
मुद्रा सम्मोहनं नाम कामदुर्गारमाप्रिया[७१] ॥ १०३ ॥
सर्वेषामिह देवानां मोहनं प्रीतिदं स्मृतम् ।
आनम्यासव्यहस्तस्य मध्यमानामिके तथा ॥ १०४ ॥
तयोः पृष्ठे सुसंयोज्य अंगुष्ठाग्रं ततः परम् ।
कनिष्ठां तर्जनीं चैव अग्रेणायोजयेत् ततः ॥ १०५ ॥
बाणमुद्रा समाख्याता सर्वदेवस्य तुष्टिदा ।
सर्वाङ्गुलीस्तु सङ्कोच्य अङ्गुष्ठमथ तर्जनीम् ॥ १०६ ॥

---

७०. तर्जन्याद्याश्च योजयेत् । ७१. शिवदुर्गावशानुगा ।

प्रसार्य करयोः पश्चादङ्गुष्ठाग्रं तु योजयेत् ।
अगुष्ठाग्रेण तर्जन्या अग्रेणापि च तर्जनीम् ।। १०७ ।।
यथाशक्ति प्रसार्योपि धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ।
सर्वाङ्गुलीनामग्राणि ब्राह्मे तीर्थे नियोजयेत् ।। १०८ ।।
अनामिकायाः पृष्ठे तु अङ्गुष्ठाग्रं नियोज्य च ।
शून्यं तूणीरवत् कृत्वा तेषामन्तस्तु भैरव ।। १०९ ।।
तूणीरमुद्रा चाख्याता सर्वेषां प्रीतिवर्धिनी ।
मुद्रासु संस्थिता पूजा सर्वेषु परिचिन्तनम् ।। ११० ।।
मुद्रासु संस्थिता योगा मुद्रा मोदकरास्ततः ।
यदा यदा पूजनेषु चिन्तने ध्यानकर्मणि ।। १११ ।।
यज्ञादौ स्तवने वापि हस्तकृत्यं न विद्यते ।
तदा मुद्रान्वितं कुर्यादिष्टापूर्ते करद्वयम् ।। ११२ ।।
यज्ञकृत्येषु चेच्छक्तो हस्तो मुद्रासु च क्षमः ।
तदा मुद्रां विधायैव तत्तत् कृत्यं समाचरेत् ।। ११३ ।।
मुद्राविमुक्तहस्तं तु क्रियते कर्म दैविकम् ।
कृत्वा तन्निष्फलं यस्मात् तस्मान्मुद्रान्वितो भवेत् ।। ११४ ।।
विसर्जने तु देवानां यस्य या परिकीर्तिता ।
मुद्रां तां पूजनादौ तु तस्य चैव प्रयोजयेत् ।। ११५ ।।
विसृज्योक्तामृते मुद्रां मुद्रायुक्तः समाचरेत् ।
पूजनादि समस्तं तु कर्मवृद्धौ विचक्षणः ।। ११६ ।।
अतो मुद्रा परं नाम मुद्रा पुण्यप्रदायिनी ।
देवानां मोददा मुद्रा तस्मात् तां यत्नतश्चरेत् ।। ११७ ।।
अर्धयोनिर्महायोनिर्योनिर्ब्राह्मी च वैष्णवी ।
मुद्रा विसर्जने प्रोक्ता शिवात्रिपुरयोः सदा ।। ११८ ।।
दुर्गायाः सर्वरूपेषु मुद्रा एताः प्रकीर्तिताः ।
योनिं च सम्पुटं चैव महायोनिं तथैव च ।। ११९ ।।
वर्जयित्वा व्यस्तभावादुक्तादन्यत्र योजयेत् ।
भवेद् यास्तु त्रिपञ्चाशदन्या मुद्राः समन्ततः ।। १२० ।।
ता व्यस्तभावाद्[७२] वामाः स्युर्मुद्रा मोदकराः पराः ।
एवं वां कथिता मुद्राः पूजने पूज्यतुष्टिदा ।
क्रमस्तु बलिदानस्य शृणु वेतालभैरव ।। १२१ ।।

इति श्रीकालिकापुराणे मुद्राकथने षट्षष्टितमोऽध्यायः ।। ६६ ।।

---

७२. भाव्यस्तु... ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

क्रमस्तु बलिदानस्य स्वरूपं रुधिरादितः[७३] ।
यथा स्यात् प्रीतये सम्यक् तद् वां वक्ष्यामि पुत्रकौ ॥ १ ॥
वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तः क्रमः सर्वत्र सर्वदा ।
साधकैर्बलिदानस्य ग्राह्यः सर्वसुरस्य च ॥ २ ॥
पक्षिणः कच्छपा ग्राहा मत्स्या नवविधा मृगाः ।
महिषो गोधिका गावश्छागो रुरुश्च[७४] शूकरः ॥ ३ ॥
खड्गश्च कृष्णसारश्च गोधिका शरभो हरिः ।
शार्दूलश्च नरश्चैव स्वमात्ररुधिरं तथा ॥ ४ ॥
चण्डिकाभैरवादीनां बलयः परिकीर्तिताः ।
बलिभिः साध्यते मुक्तिर्बलिभिः साध्यते दिवम् ॥ ५ ॥
बलिदानेन सततं जयेच्छत्रून्नृपान् नृपः ।
मत्स्यानां कच्छपानां तु रुधिरैः सततं शिवा ॥ ६ ॥
मासैकं तृप्तिमाप्नोति ग्राहैर्मासांस्तु त्रीनथ ।
मृगाणां शोणितैर्देवी नराणामपि शोणितैः[७५] ॥ ७ ॥
अष्टौ मासानवाप्नोति तृप्तिं कल्याणदा च सा ।
गोधिकानां गोरुधिरैर्वार्षिकीं तृप्तिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥
कृष्णसारस्य रुधिरैः शूकरस्य च शोणितैः ।
प्राप्नोति सततं देवी तृप्तिं द्वादशवार्षिकीम् ॥ ९ ॥
अजाविकानां रुधिरैः पञ्चविंशतिवार्षिकीम् ।
महिषाणां च खड्गानां रुधिरैः शतवार्षिकीम् ॥ १० ॥
तृप्तिमाप्नोति परमां शार्दूलरुधिरैस्तथा ।
सिंहस्य शरभस्याथ स्वगात्रस्य च शोणितैः ॥ ११ ॥
देवी तृप्तिमवाप्नोति सहस्रं परिवत्सरान् ।
मांसैरपि तथा प्रीतिं रुधिरैर्यस्य यावती ॥ १२ ॥
कृष्णसारं मृगं खड्गं तथा मत्स्यं च रोहितम् ।
वार्ध्रीणसयुगं चापि फलं तेषां पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥

---

७३. स्वरूपरुधिरादिभिः । ७४. बभ्रुश्च । ७५. विस्तृतैः ।

कृष्णसारस्य मांसेन तथा खड्गेन चण्डिका।
वर्षाणां च शतान्येव तृप्तिमाप्नोति केवलम् ॥ १४ ॥
रोहितस्य तु मत्स्यस्य मांसैर्वार्ध्रीणसस्य च।
तृप्तिं प्राप्नोति वर्षाणां शतानि त्रीणि मत्प्रिया ॥ १५ ॥
तृप्नुवन्त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्।
वार्ध्रीणसः प्रोच्यतेऽसौ हव्ये कव्ये च सत्कृतः ॥ १६ ॥
नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः।
वार्ध्रीणसः स्यात्पक्षी च मम[76] विष्णोरपि प्रियः ॥ १६ ॥
नरेण बलिना देवी सहस्रं परिवत्सरान्।
विधिदत्तेन चाप्नोति तृप्तिं लक्षं त्रिभिर्नरैः ॥ १८ ॥
नारेणेवाथ मांसेन त्रिसहस्रं च वत्सरान्।
तृप्तिमाप्नोति कामाख्या भैरवी मम रूपधृक् ॥ १६ ॥
मन्त्रपूतं शोणितं तु पीयूषं जायते सदा।
मस्तकं चापि तस्यात्ति मांसं चापि तथा शिवा[77] ॥ २० ॥
तस्मात् तु पूजने दद्याद् बलेः शीर्षं च लोहितम्।
भोज्ये होमे च[78] मांसानि नियुञ्जीयाद्[79] विचक्षणः ॥ २१ ॥
पूजासु नाममांसानि दद्याद् वै साधकः क्वचित्।
ऋते तु लोहितं शीर्षममृतं तत्तु जायते ॥ २२ ॥
कूष्माण्डमिक्षुदण्डं च मद्यमासवमेव च।
एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः सदा ॥ २३ ॥
चन्द्रहासेन कर्त्र्या वा छेदनं मुख्यमिष्यते।
दात्रासिधेनुक्रकचशंकुलाभिस्तु मध्यमम्[80] ॥ २४ ॥
क्षुरक्षुरप्रभल्लैश्च वाधमं परिकीर्तितम्।
एभ्योऽन्यैः शक्तिबाणाद्यैर्बलिश्छेद्यः कदापि न ॥ २५ ॥
नाप्ति देवी बलिं तत्तु दाता मृत्युमवाप्नुयात्।
हस्तेन छेदयेद् यस्तु प्रोक्षितं साधकः पशुम्[81] ॥ २६ ॥
पक्षिणं वा ब्रह्मवध्यामवाप्नोति सुदुःसहाम्[82]।
नामन्त्र्य खण्डं तु बलिं नियुञ्जीत विचक्षणः ॥ २७ ॥
खड्गस्यामन्त्रणे मन्त्रा यावन्तः कथिताः पुरा।
महामायाबलौ ते वै योज्यास्तत्रोदिता बुधैः ॥ २८ ॥

---

७६. पद्दीश्चः स च। ७७. तुष्टिदः यतः। ७८. विलोमे।
७९. विषञ्जीयाद्। ८०. ...खड्गनाभिसुमध्यमम्।
८१. पशुपक्षिणम्। ८२. ब्रध्नवध्यामवाप्नोति प्राप्नोति च दुस्तराम्।

तैः सार्धमेते मन्त्रास्तु योज्याः खड्गादिमन्त्रणे ।
पूजने शारदादीनां कामाख्याया विशेषतः ॥ २६ ॥
ह्रिः कालीति ततो देव्या वज्रेश्वरिपदं ततः ।
ततोऽनु लौहदण्डायै नमः शेषे तु योजयेत् ॥ ३० ॥
सम्पूज्यानेन मन्त्रेण खड्गमादाय पाणिना ।
कालरात्र्यास्तु मन्त्रेण तं खड्गमभिमन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥
नेत्रबीजस्य मध्यं[83] तु द्विरावर्त्य प्रयोजयेत् ।
ततोऽनु कालिकालीति करालोष्ठी ततः परम्[84] ॥ ३२ ॥
हान्तादींश्च तृतीयेन स्वरेणैकादशेन वै[85] ।
योजिता नादबिन्दुभ्यां द्वौ तत् पश्चान्नियोजयेत् ॥ ३३ ॥
फेत्कारिणिपदं तस्मात् खादयच्छेदयेत्यतः ।
सर्वान् दुष्टानिति ततो द्विर्मारय लुलायकम् ॥ ३४ ॥
खड्गेन छिन्धि छिन्धीति ततः किलकिलेति वै ।
ततः चिकिचिकीत्येवं ततः पिबपिबेति च ॥ ३५ ॥
ततोऽनु रुधिरं चेति स्फें स्फेंकिरिं किरीति च ।
कालिकायै नम इति कालरात्र्यास्तु मन्त्रकम् ॥ ३६ ॥
इत्यनेन तु मन्त्रेण करवालेऽभिमन्त्रिते ।
कालरात्री स्वयं तत्र प्रसीदत्यरिहानये ॥ ३७ ॥
बलेः पूर्वोदिता मन्त्रा नित्यं गुह्यास्तु[86] साधकैः ।
अयं मन्त्रस्तु वक्तव्यस्तस्य हत्याविहानये[87] ॥ ३८ ॥
यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
अतस्त्वां घातयिष्यामि[88] तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३६ ॥
ततो दैवतमुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ।
छेदयेत् तेन खड्गेन[89] बलिं पूर्वाननं तु तम् ॥ ४० ॥
अथवोत्तरवक्त्रं स्वयं पूर्वमुखस्तथा ।
पूर्वोक्तान् सैन्धवादींस्तु[90] वक्त्रेऽवश्यं नियोजयेत् ॥ ४१ ॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं रैत्यं[91] पत्रपुटं च वा ।
माहेयं कांस्यमथवा यज्ञकाष्ठमयं च वा ॥ ४२ ॥
पात्रं रुधिरदानाय कर्त्तव्यं विभवावधि ।

---

८३. मन्त्रं । ८४. विकटदंष्ट्रोन्नतं पदम् । ८५. वा ।
८६. साध्याः । ८७. हृद् योऽरिहानये । ८८. घातयाम्यद्य ।
८९. मन्त्रेण । ९०. स्वेसुरादींस्तु । ९१. ऐन्द्रं ।

न लौहे वल्कले वापि वैत्रे राङ्केऽथ सैसके ॥ ४३ ॥
दद्याद्रक्तं बलीनां तु भूमौ स्रुचि स्रुवे तथा[१२] ।
न घटे भूतले वापि देयं क्षुद्रे न भाजने[१३] ॥ ४४ ॥
रुधिराणि प्रदद्यात्तु भूतिकामो नरोत्तमः ।
नरस्य तु सदा रक्तं माहेये तैजसेऽथ वा ॥ ४५ ॥
दद्यान्नरपतिस्तत्तु न पत्रादौ कदाचन ।
हयमेधमृते दद्यान्न कदाचिद्धयं बलिम् ॥ ४६ ॥
तथा दिक्पालमेधे तु गजं दद्यान्नराधिपः ।
न कदाचित् तदा देव्यै प्रदद्याद्धयहस्तिनौ ॥ ४७ ॥
हयाकर्षे चामरं तु बलिं दद्यान्नराधिपः ।
सिंहं व्याघ्रं नरं चापि स्वगात्ररुधिरं तथा ॥ ४८ ॥
न दद्यात् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कदाचन ।
सिंहं व्याघ्रन्नरं दत्वा ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ४९ ॥
इहापि स्यात् स हीनायुः सुखसौभाग्यवर्जितः ।
स्वगात्ररुधिरं दद्याच्चात्मवध्यामवाप्नुयात् ॥ ४० ॥
मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ।
न कृष्णासारं वितरेद् बलिं तु क्षत्रियादिकः ॥ ५१ ॥
ददतः कृष्णसारं तु ब्रह्महत्या भवेद् यतः ।
यत्र सिंहस्य व्याघ्रस्य नरस्य विहितो वधः ॥ ५० ॥
ब्राह्मणोक्ता तु बल्यादौ तत्रायं विहितः क्रमः ।
कृत्वा घृतमयं व्याघ्रं नरं सिंहं च भैरव ॥ ५३ ॥
अथवा पूपविकृतं यवक्षोदमयं च वा ।
घातयेच्चन्द्रहासेन तेन मन्त्रेण संस्कृतम् ॥ ५४ ॥
प्रभूतबलिदाने तु द्वौ वा त्रीन् वाग्रतः कृतान् ।
पूजयेत् प्रमुखान् कृत्वा सर्वान् मन्त्रेण साधकः ॥ ५५ ॥
सामान्यपूजा कथिता बलीनां पूर्वतो मया ।
विशेषो यत्र यत्रास्ति तन्मत्तः शृणु भैरव ॥ ५६ ॥
महिषं प्रददेद् देव्यै भैरव्यै भैरवाय वा ।
अनेनैव तु मन्त्रेण तदा तं पूजयेद् बलिम् ॥ ५७ ॥
यथा वाहं भवान् द्वेष्टि यथा वहसि चण्डिकाम् ।
तथा मम रिपून् हिंस शुभं वह लुलायक ॥ ५८ ॥

१२. यवा । १३. स पद्योउ, खण्डेनापि न चापि पानभाजनं ।

यमस्य वाहनस्त्वं तु वररूपधराव्यय ।
आयुर्वित्तं यशो देहि कासराय नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥
खड्गस्य तु यदा दानं क्रियते तन्त्रमन्त्रकम् ।
जलेनाभ्युद्य कुर्वीत गुहाजातेति भाषयन् ॥ ६० ॥
दैवे पैत्रे च शुभगः खड्गस्त्वं खड्गसन्निभः ।
छिन्धि विघ्नान् महाभाग गुहाजात नमोऽस्तु ते ॥ ६१ ॥
प्रदाने कृष्णसारस्य मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः ।
कृष्णसार ब्रह्ममूर्ते ब्रह्मतेजोविवर्धन ॥ ६२ ॥
चतुर्वेदमयं प्राज्ञ प्रज्ञां देहि यशो महत्[९४] ।
तथा शरभपूजायां मन्त्रमेतत् प्रकीतितम् ॥ ६३ ॥
त्वमष्टपादो विभ्रष्टचन्द्रभागसमुद्भव ।
अष्टमूर्ते महाबाहो भैरवाख्य नमोऽस्तु ते ॥ ६४ ॥
यथा भैरवरूपेण वराहो निहतस्त्वया ।
तथा शरभरूपेण रिपून् विघ्नान् निषूदय ॥ ६५ ॥
हरिस्त्वं हररूपेण यथा वहसि चण्डिकाम् ।
तथा शुभानि मे नित्यं बहुविघ्नांश्च सूदय ॥ ६६ ॥
त्वं हरिः सिंहरूपेण जगत्प्रत्यूहरूपिणम् ।
जघान येन सत्येन हिरण्यकशिपुं हरन् ॥ ६७ ॥
इत्येवं सिंहपूजायां क्रम उक्तो मयानघ ।
नरे स्वगात्ररुधिरे पर्यायं श्रृणु भैरव ॥ ६८ ॥
पीठे चेद् दीयते मर्त्यो बलिं दद्यात् श्मशानके ।
श्मशानं हेरुकाख्यं तु तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ॥ ६९ ॥
कामाख्यानिलये शैले ओडादौ[९५] विद्धि तत् क्रमम् ।
मम रूपं श्मशानं तद् भैरवाख्यं च कथ्यते ॥ ७० ॥
तत्राङ्गत्वं तपःसिद्धौ त्रिभागां तु भविष्यति ।
पूर्वाङ्गे भैरवाख्ये तु समुत्सृष्टिर्नरस्य तु ॥ ७१ ॥
दक्षिणाङ्गे शिरो दद्याद् भैरव्या मुण्डमालया ।
रुधिरं पश्चिमाङ्गे तु हेरुकाख्यै नियोजयेत् ॥ ७२ ॥
दत्त्वा सम्पूज्य तु नरं विसृज्यागमनक्रमे ।
पीठश्मशानेषु बलिं नेद्येत्तु बलिदीपकम् ॥ ७३ ॥
अन्यत्रापि यतो यत्र दीयते यन्महाबलिः ।

---

९४. महः । ९५. तन्त्रादौ ।

तत्राप्यन्यत्र चोत्सृज्यच्छित्वान्यत्र शिरोऽमृतम्[१६] ॥ ७४ ॥
नियोजयेत् साधकस्तु विसृज्य न विलोकयेत् ।
सुस्नातं मनुजं दीप्तं पूर्वाह्ननियताशनम् ॥ ७५ ॥
मांसमैथुनभोग्येन हीनं स्रक्चन्दनोक्षितम् ।
कृत्वोत्तरामुखं तं तु तदङ्गेष्वङ्गदेवताः ॥ ७६ ॥
पूजयेत् तं तु नाम्ना तु दैवतेन च मानुषम् ।
तद्ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्माणं तन्नासायां च मेदिनीम् ॥ ७७ ॥
कर्णयोस्तु तथाकाशं जिह्वायां सर्वतोमुखम् ।
ज्योतींषि नेत्रयोर्विष्णुं वदने परिपूजयेत् ॥ ७८ ॥
ललाटे पूजयेच्चन्द्रं शक्रं दक्षिणगण्डतः ।
वामगण्डे तथा वह्निं ग्रीवायां समवर्तिनम् ॥ ७९ ॥
केशाग्रे निर्ऋतिं मध्ये भ्रुवोश्चापि प्रचेतसम् ।
नासामूले तु श्वसनं स्कन्धे चापि धनेश्वरम् ॥ ८० ॥
हृदये सर्पराजं तु पूजयित्वा पठेदिदम् ।
नरवर्य्य महाभाग सर्वदेवमयोत्तम ॥ ८१ ॥
रक्ष मां शरणापन्नं सपुत्रपशुबान्धवम् ।
सराज्यं मां सहामात्यं चतुरङ्ग[१७]-समन्वितम् ॥ ८२ ॥
रक्ष परित्यज्य प्राणान्मरणे नियते सति ।
महातपोभिर्ज्ञानैश्च यज्ञैर्यत् साध्यतेऽमृतम्[१८] ॥ ८३ ॥
तन्मे देहि महाभाग त्वं चापि प्राप्नुहि श्रियम् ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च वेतालाद्याः सरीसृपाः ॥ ८४ ॥
नृपाश्च रिपवश्चान्ये न मां ते घ्नन्तु त्वत्कृते ।
त्वत्कण्ठनालगलितैः शोणितैरङ्गसंयुतैः ॥ ८५ ॥
आप्यायस्वात्मवन्मृत्वा मरणे नियते सति ।
एवं सम्पूज्य विधिवत् पूर्वतन्त्रैश्च पूजयेत् ॥ ८६ ॥
पूजितो मत्स्वरूपोऽयं दिक्पालाधिष्ठितो भवेत् ।
अधिष्ठितस्तथान्यैश्च ब्रह्माद्यैः सकलैः सुरैः ॥ ८७ ॥
कृतपापोऽपि मनुजो निष्पाप्मा स तु जायते ।
तस्य निष्कलुषस्याशु पीयूषं शोणितं भवेत् ॥ ८८ ॥
प्रीणाति च महादेवी जगन्माता जगन्मयी ।
सोऽपि कायं परित्यज्य मानुषं नचिरान्मृतः ॥ ८९ ॥

---

१६. शुचो । १७. बन्धुवर्गं । १८. नृणा ।

भवेद् गणानामधिपो मयापि बहुसत्कृतः ।
इतोऽन्यथा पापयुक्तं मलमूत्रवसायुतम् ॥ ९० ॥
तं बलिं न हि गृह्णाति कामाख्यान्यापि नामतः ।
अन्येषां महिषादीनां वलीनामथ पूजनात् ॥ ९१ ॥
कायो मेध्यत्वमायाति रक्तं गृह्णाति वै शिवा ।
अन्येभ्योऽपि च देवेभ्यो यदा यत्तु प्रदीयते ॥ ९२ ॥
तदर्चितं प्रदद्यात् तु पूजिताय सुराय वै ।
काणं पङ्गुं चातिवृद्धं रोगिणं च गलद्व्रणम् ॥ ९३ ॥
क्लीबं हीनाङ्गमथवा वृद्धलिङ्गं कुलक्षणम् ।
श्वित्रिणं चातिह्रस्वं च महापातकिनं तथा ॥ ९४ ॥
अद्वादशकवर्षीयं शिशुसूतकसंयुतम् ।
ऊर्ध्वं संवत्सराच्चापि महागुरुनिपातिनम् ॥ ९५ ॥
बलिकर्मणि चैतांस्तु वर्जयेत् पूजितानपि ।
पशूनां पक्षिणां वापि नराणां च विशेषतः ॥ ९६ ॥
स्त्रियं न दद्यात् तु बलीन् दत्त्वा नरकमाप्नुयात् ।
सङ्घातवलिदानेषु योषितं पशुपक्षिणः ॥ ९७ ॥
वलिं दद्यान्मानुषीं तु त्यक्त्वा सङ्घातपूजितम् ।
न त्रिमासीयकान्यूनं पशुं दद्याच्छिवावलिम् ॥ ९८ ॥
न च त्रैपक्षिकान्यूनं प्रदद्याद् वै पतत्त्रिणम् ।
काणव्यङ्गादिदुष्टं तु न पशुं पक्षिणं तथा ॥ ९९ ॥
देव्यै दद्यात् तथा मर्त्यं तथैव पशुपक्षिणौ ।
छिन्नलाङ्गूलकर्णादीन् भग्नदन्ताँस्तथैव च ॥ १०० ॥
भग्नश्रृङ्गादिकं वापि न दद्यात् तु कदाचन ।
न ब्राह्मणं वलिं दद्याच्चाण्डालमपि पार्थिव ॥ १०१ ॥
नोत्सृष्टं द्विजदेवेभ्यो भूपतेस्तनयं तथा ।
रणेन विजितं दद्यात्तनयं रिपुभूभृतः ॥ १०२ ॥
स्वपुत्रं भ्रातरं वापि पितरं चाविरोधिनम् ।
विट्पतिं च न दद्यात्तु भागिनेयं च मातुलम् ॥ १०३ ॥
अनुक्तानपि दद्यात् तु तथाज्ञातान् मृगद्विजान् ।
उक्तालाभे प्रदद्यात्तु गर्दभं चोष्ट्रमेव च ॥ १०४ ॥
लाभेऽन्येषां न वितरेद् व्याघ्रमुष्ट्रं खरं तथा ।
सम्पूज्य विधिवन्मर्त्यं पशुं पक्षिणमेव वा ॥ १०५ ॥

सञ्छिन्नं[99]चापि मन्त्रेण मन्त्रेणैव निवेदयेत्।
नारं मर्त्यशिरोरक्तं देव्याः सम्यग् निवेदयेत्॥ १०६॥
छागं तु वामतो दद्यान्माहिषं वितरेत् पुरः।
पक्षिणं वामतो दद्यादग्रतो देहशोणितम्॥ १०७॥
क्रव्यादानां पशूनां तु पक्षिणां तु शिरोऽसृजम्।
वामे निवेदयेत् पार्श्वे जलजानां च सर्वशः॥ १०८॥
कृष्णसारस्य कूर्मस्य खड्गस्य शशकस्य च।
ग्राहाणामथ मत्स्यानामग्र एव निवेदयेत्॥ १०९॥
सिंहस्य दक्षिणे दद्यात् खड्गिनोऽपि च दक्षिणे।
पृष्ठदेशे न दद्यात् तु शिरो वा रुधिरं बलेः॥ ११०॥
नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो न तु पृष्ठतः।
दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वा न वामतः॥ १११॥
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पं च भूषणम्[100]॥ ११२॥
मण्डले चेन्मध्यभागे वामदक्षादिपूर्ववत्।
मदिरां पृष्ठतो दद्यादन्यत् पानं तु वामतः॥ ११३॥
अवश्यं विहितं यत्र मद्यं तत्र द्विजः पुनः।
नारिकेलजलं कांस्ये ताम्रे वा विसृजेन्मधु॥ ११४॥
नापद्यपि द्विजो मद्यं कदाचिद् विसृजेदपि।
ऋते पुष्पासवादुक्ताद् गृञ्जनाद् वा विशेषतः॥ ११५॥
राजपुत्रस्तथामात्यः सचिवः सौप्तिकादयः।❀
दद्युर्नरबलिं भूप सम्पत्त्या विभवाय च॥ ११६॥
नृपाननुमते मर्त्यं दत्त्वा पापमवाप्नुयात्।
उपप्लवे रणे वापि यथेच्छं वितरेन्नरः॥ ११७॥
यः कश्चिद्राजपुरुषो नान्यस्त्वपि कदाचन।
बलिदानदिनात् पूर्वं दिवसे तु बलिं नरम्॥ ११८॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण देवीसूक्तेन येन च।
गन्धद्वारेत्यनेनापि खड्गशीर्षे निधाय च॥ ११९॥
तस्मिन् खड्गे सुगन्धादि दत्त्वा तेनाधिवासयेत्।
गन्धादिकं तु खड्गस्थं[1] गले तस्य प्रदापयेत्[2]॥ १२०॥

---

९९. संछिद्य। १००. धूपनं। ❀ गौत्रिकादयः।
१. खड्गं तं। २ प्रपातयेत्।

अम्बेऽम्बिकेति मन्त्रेण रौद्रेण भैरवस्य च ।
एवं तु संस्कृते मर्त्ये देवी रक्षति तं बलिम् ॥ १२१ ॥
न तस्य व्याधयश्चापि क्षुण्णतारजसी न च ।
न सूतकं दूषयेत्तज्ज्ञात्युत्पत्तिमृतादिकम् ॥ १२२ ॥
छिन्नं नरस्य शीर्षं तु पतितं यत्र यत्र च ।
यच्छुभं चाशुभं वापि पश्वादीनां च तच्छृणु ॥ १२३ ॥
छिन्नं शिरस्तथैशान्यां नारं दिश्यथ राक्षसे ।
पतितं राज्यहानिं च विनाशं च विनिर्दिशेत् ॥ १२४ ॥
पूर्वाग्नियाम्यवारुण्य-वायव्यादिगतं क्रमात् ।
श्रियं पुष्टिं भयं लाभं पुत्रलाभं धनं तथा ॥ १२५ ॥
क्रमाद् विनिर्दिशेन्नारं छिन्नशीर्षं तु भैरव ।
उत्तरादिक्रमादेव महिषस्यापि मस्तकः ॥ १२६ ॥
पतितो वायुकाष्ठान्ते सूचयेद् यच्छृणुष्व तत् ।
भाग्यहानिन्तथैश्वर्यं वित्तं रिपुजयं भयम् ॥ १२७ ॥
राज्यलाभं श्रियं चापि क्रमाद् विद्धि तु भैरव ।
पशूनां चैव सर्वेषां छागादीनामशेषतः ॥ १२८ ॥
एवं फलं क्रमाद् विद्यादृते जलभवाण्डजौ ।
जलजानां पक्षिणां तु याम्यनैर्ऋत्ययोर्भयम् ॥ १२९ ॥
अन्यत्र तु श्रियं दद्यात् पतितं शातितं शिरः ।
यः स्यात् कटकटाशब्दो दन्तानां छिन्नमस्तके ॥ १३० ॥
नराणां पशुपक्ष्यादिग्राहादीनां च रोगदः ।
लोतकं चक्षुषोर्जातं यदि स्रवति मस्तके ॥ १३१ ॥
छिन्ने नरस्य राज्यस्य तदा हानिं विनिर्दिशेत् ।
महिषे मस्तके नेत्राद् यदि स्रवति लोतकम् ॥ १३२ ॥
छिन्ने निवेदितं वैरिभूपमृत्युं तदादिशेत् ।
अन्येषामथ पश्वादिवलीनां शिरसोऽर्दितात् ॥ १३३ ॥
निर्गतं लोतकं धत्ते परां भीतिं गदं तथा ।
हसतिच्छिन्नशीर्षं चेन्नारं स्यात् तु रिपुक्षयः ॥ १३४ ॥
श्रीवृद्धिरायुषो वृद्धिः सदा दातुरसंशयः ।
यद् यद्वाक्यं निगदति तथा भवति चाचिरात् ॥ १३५ ॥
हूङ्काराद्राज्यहानिः स्याच्छ्लेष्मस्रावाच्च पङ्गता ।
देवानां यदि नामानि भाषते छिन्नमस्तकः ॥ १३६ ॥

विभूतिमतुलां विद्यात् षण्मासाभ्यन्तरे तदा ।
रुधिरादानकाले तु शकृन्मूत्रे यदि स्रवेत् ॥ १३७ ॥

कार्यं तदाधश्चोर्ध्वं वा दातुः स्यान्मरणं तदा ।
आक्षेपाद् वामपादस्य महारोगः प्रजायते ॥ १३८ ॥

अन्यदाक्षेपचलनैः कल्याणमुपजायते ।
माहिषस्य तु रक्तस्य मानुषस्य तु साधकः ॥ १३९ ॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु किंचिदुद्धृत्य भूतले ।
महाकौशिकमन्त्रेण निक्षिपेद् वलिमुत्तमम् ॥ १४० ॥
देवेभ्यः पूतनादिभ्यो नैर्ऋत्यां दिशि पूर्वतः ।
महिषः[३] पञ्चवर्षीयः[४] पञ्चविंशतिवार्षिकः[५] ॥ १४१ ॥
वलिर्देयो नरो देव्यै तस्य रक्तं तु भूतये ।
नेत्रबीजत्रयं कामबीजं हन्ता प्रजापतिः ॥ १४२ ॥

वह्निवीजं षट्स्वराभ्यां संपृक्तश्च तथा परः ।
स एवैतास्तथैतावदादिवर्गान्तसंयुतः ॥ १४३ ॥
षष्ठस्वरशिखाबिन्दुश्चन्द्रयुक्तस्तथापरः ।
द्विर्मासिकाबीजकान्तः कौशिकीत्यभिमन्त्रणम् ॥ १४४ ॥
एष वलिः स्वाहेति मन्त्रोऽयं कौशिकी स्मृतः ।
नृपो वैरिवलिं दद्यात् खड्गमामन्त्र्य पूर्वतः ॥ १४५ ॥
महिषं चाथ छागं वा वैरिनाम्नाभिमन्त्र्य च ।
सूत्रेण वदने[७] बद्धं[८] त्रिधा तस्य तु मन्त्रकैः ॥ १४६ ॥
छित्त्वा तस्योत्तमाङ्गं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः ।
यदा यदा रिपोर्वृद्धिर्वलिदानं तदा परम् ॥ १४७ ॥
दद्यात् तदा शिरश्छित्त्वा रिपोस्तस्य क्षयाय च ।
प्राणप्रतिष्ठां च रिपोः कुर्यात् तस्मिन् पशावथ ॥ १४८ ॥
तस्मिन् क्षीणे रिपोः प्राणाः क्षीयन्ते विपदा युताः ।
आदौ विरुद्धरूपिणि चण्डिके च ततः परम् ॥ १४९ ॥
वैरिणन्त्वमुकं चेति याहीत्याम्रेडितं[९] पुनः ।
वह्निभार्या ततः पश्चात् खड्गमन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ १५० ॥

---

३. महिषं । ४. षर्यि । ५. वार्षिकम् । ६. द्विर्मासिक ।
७. वदनं । ८. वद्ध्वा । ९. याहि त्वमिति तं ।

स्वयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम्।
विनाशय महामारी स्फें स्फें खादय खादय॥ १५१॥
इत्यनेन तु मन्त्रेण वलेः शिरसि पुष्पकम्।
दद्यात् ततस्तद्रुधिरं द्व्यक्षराभ्यां[10] निवेदयेत्॥ १५२॥
महानवम्यां शरदि यद्येवं दीयते वलिः।
तदा तदष्टाङ्गभवैर्मांसैर्होमं समाचरेत्॥ १५३॥
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण प्रणीते दहने शुचौ।
एवं दत्त्वा वलिं मर्त्यो रिपुक्षयमवाप्नुयात्॥ १५४॥
नाभेरधस्ताद्रुधिरं पृष्ठभागस्य च श्रिये।
स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचन साधकः॥ १५५॥
नोष्ठस्य चिबुकस्यापि नेन्द्रियाणां च मानवः।
कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं बाह्वोः पाणिमृते तथा॥ १५६॥
प्रदद्याद्रुधिरं घातं नातिकुर्याच्च साधकः।
गण्डयोश्च ललाटस्य भ्रुवोर्मध्यस्य शोणितम्॥ १५७॥
कर्णाग्रस्य च बाह्वोश्च गलयो[11]रुदरस्य च।
कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं हृद्भागस्य यतस्ततः॥ १५८॥
पार्श्वयोश्चापि रुधिरं दुर्गायै विनिवेदयेत्।
न गुल्फतोऽसृक्प्रदद्यान्न जत्रोर्नापि वक्त्रतः॥ १५९॥
न च रोगबिलादङ्गान्नान्यघाताच्च भैरव।
तदर्थे च कृताघातः सश्रद्धोऽक्षुब्धमानसः॥ १६०॥
श्रुते[12]रक्तं प्रदद्यात्तु पद्मपुष्पस्य पत्रके।
सौवर्णे[13]राजते कांस्ये लौहे फाले च वा नरः॥ १६१॥
निधाय देव्यै दद्यात् तु तद्रक्तं मन्त्रपूर्वकम्।
खननं क्षुरिकाखड्गशङ्कुलादि यदस्त्रकम्॥ १६२॥
घातेन बृहदस्त्रस्य महाफलमवाप्नुयात्।
पद्मपुष्पस्य पत्रं तु यावद् गृह्णाति शोणितम्॥ १६३॥
तत्प्रमाणे चतुर्भागाधिकं रक्तं तु साधकः।
न कदाचित् प्रदद्यात्तु नाङ्गच्छेदमथाचरेत्॥ १६४॥
यः स्वहृदयसञ्जातमांसं माषप्रमाणतः।
तिलमुद्गप्रमाणाद् वा देव्यै दद्यात् तु भक्तितः॥ १६५॥

---

१० अक्षराद्यां। ११. स्तनयोः। १२. एवं।
१३. राजते पात्रे कांस्ये काले च।

षण्मासाभ्यन्तरे तस्मात् काममिष्टमवाप्नुयात् ।
बाह्वोस्तु स्कन्धयोर्वापि यो दद्याद् दीपवर्तिकाम् ॥ १६६ ॥
हृदये वा स्नेहपात्रं विना भक्त्या तु साधकः ।
क्षणमात्रेण तद्दीपप्रदानस्य फलं शृणु ॥ १६७ ॥
भुक्त्वा च विपुलान् भोगान् देवीगेहे यदृच्छया ।
कल्पत्रयं तु संस्थाय सार्वभौमो नृपो भवेत् ॥ १६८ ॥
महिषस्य शिरश्छिन्नं सप्रदीपं शिवापुरः ।
हस्ताभ्यां यः समादाय अहोरात्रं तु तिष्ठति ॥ १६९ ॥
स चिरायुः पूतमूर्तिरिह भुक्त्वा मनोरमान् ।
भोगान्ते मद्गृहगो गणानामधिपो भवेत् ॥ १७० ॥
नरस्य शीर्षमादाय साधको दक्षिणे करे ।
वामेन रौधिरं पात्रं गृहीत्वा निशि जाग्रतः ॥ १७१ ॥
यावद्रात्रं स्थितो मर्त्यो राजा भवति चेह वै ।
मृते मम गृहं प्राप्य गणानामधिपो भवेत् ॥ १७२ ॥
क्षणमात्रं बलीनां यः शिरोरक्तं करद्वये ।
गृहीत्वा चिन्तयेद् देवीं पुरस्तिष्ठति मानवः ॥ १७३ ॥
स कामानिह सम्प्राप्य देवीलोके महीयते ।
महामाये जगन्नाथे सर्वकामप्रदायिनि ॥ १७४ ॥
ददामि देहरुधिरं प्रसीद वरदा भव ।
इत्युक्त्वा मूलमन्त्रेण नतिपूर्वं विचक्षणः ॥ १७५ ॥
स्वगात्ररुधिरं दद्याद् मानवः सिद्धसन्निभः[१४] ।
येनात्ममांसं सत्येन ददामीश्वरि भूतये[१५] ॥ १७६ ॥
निर्वाणं तेन सत्येन देहि हं हं नमो नमः ।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्वमांसं वितरेद् बुधः ॥ १७७ ॥
सौभाग्यं सुखसम्पन्नं प्रदीपं परमं रुचिः ।
दीपयेन्मांसमिह तं दीपं ह्रौं ह्रौं नमो नमः ॥ १७८ ॥
इत्यनेन तु मन्त्रेण दीपं दद्याद् विचक्षणः ।
महानवम्यां शरदि रात्रौ स्कन्दविशाखयोः ॥ १७९ ॥
यवचूर्णमयं कृत्वा रिपुं मृन्मयमेव वा ।
शिरश्छित्त्वा बलिं दद्यात् कृत्वा तस्य तु मन्त्रतः ॥ १८० ॥

---

१४. सम्भवः । १५. भूपते ।

अनेनैव तु मन्त्रेण खड्गमामन्त्र्य यत्नतः।
रक्तं किलिकिली घोर घोराधारविहिंसकः ॥ १८१ ॥
ब्रह्मशिष्याम्बिकाशिष्यममुकं चारिसत्तमम्।
[16]मान्तो विसर्गसहितः स च बिन्दुयुतोऽपरः ॥ १८२ ॥

शिरश्छित्त्वा वलिं दद्यात् कृत्वा तस्य तु मन्त्रतः।
अनेनैव तु मन्त्रेण बिन्दुना च समन्वितः ॥ १८३ ॥

ब्रह्माग्निर्योगचन्द्रेण बिन्दुना च समन्वितः।
फडन्तो वलिषु प्रोक्तः खड्गस्कन्दविशाखयोः ॥ १८४ ॥

रक्तद्रव्यैः शोचयित्वा कृत्रिमं तं वलिं रिपुम्।
कुचन्दनस्य तिलकं ललाटे विनिवेश्य च ॥ १८५ ॥
रक्तमाल्याम्बरं कृत्वा रक्तवस्त्रधरं तथा।
कण्ठे बद्ध्वा रक्तसूत्रैर्नाभौ शल्यं च कृत्रिमम् ॥ १८६ ॥
दत्त्वोत्तरशिरःस्कन्धं कृत्वा खड्गेन छेदयेत्।
शिरस्तस्य ततो दद्यात् स्कन्दमन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ १८७ ॥

चतुर्दशस्वराग्निभ्यां सम्पृक्तः स्यात् पुरःसरम्[17]।
परतः परतः पूर्वं चन्द्रबिन्दुसमन्वितम् ॥ १८८ ॥
स्कन्दस्य मूलमन्त्रोऽयं तेन तस्मै बलिं सृजेत्।
चतुर्दशस्वराग्निभ्यां तृतीयं तु च पूर्ववत् ॥ १८९ ॥

प्रोक्तो विशाखमन्त्रोऽयं तेन तस्मै बलिं सृजेत्।
कुटिलाक्षौ कृष्णपिङ्गवर्णौ रक्ताङ्गधारिणौ ॥ १९० ॥
त्रिशूलं करवालं च पाणिभ्यां दक्षिणे तथा।
बिभ्रतौ नृकपालं च कर्त्रिकां चाति वामतः ॥ १९१ ॥
त्रिनेत्रौ नरमुण्डानां मालामुरसि बिभ्रतौ।
विकटौ दशनैर्भीमैर्गणेशौ द्वारपालकौ ॥ १९२ ॥
ध्यानेन चिन्तयेद् देव्याः पुरतः संस्थितौ सदा।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः ॥ १९३ ॥
वलिभिर्महिषैश्छागैः मां च भैरवरूपिणम्।
तोषयेन्मधुभिर्मांसैस्तेन तुष्याम्यहं सुतौ ॥ १९४ ॥
चण्डिका वलिदाने तु वलिशीर्षं जलेन च।
अभिषिच्य तु मन्त्रेण मूलेनैव निवेदयेत्[18] ॥ १९५ ॥

---

१६. तान्तो। १७. पूर्ववत्। १८. विदर्भयेत्।

ईषत्प्राणं तु बहुधा चलितं पूर्वमर्चितम्।
वीक्षेत् कायसमृद्धिं तु सिद्धभावं च साधकः॥ १६६॥
सितप्रेतो रथस्तेषां[१९] योगपीठस्य सन्निभः।
ध्यायाम्यस्मिन् महामाये सिद्धिं बोधयते नमः॥ १९७॥
अनेनामन्त्रितं शीर्षं न चिराद् यदि वेपते।
तत्कार्यस्य तदा सिद्धिरसिद्धिस्तु विपर्ययात्॥ १९८॥
एवं ददद् वलिं वीरो यथोक्तविधिनाऽमुना।
वलिदानादेव चतुर्वर्गमाप्नोत्यसंशयम्[२०]॥ १९९॥
एवं वलिप्रदानस्य क्रमो रूपं तथैव च।
कथितो रुधिराध्याय उपचाराञ्छृणुष्व मे॥ २००॥

इति श्रीकालिकापुराणे वलिदानविवरणं नाम
सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

---

१९. रथस्थेयं। २०. आप्नुयान्न संशयः।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

उपचारान् प्रवक्ष्यामि शृणु षोडश भैरव।
यैः सम्यक् तुष्यते देवी देवोऽप्यन्यो हि भक्तितः॥ १॥
आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्प्यं दारवमेव वा।
वास्त्रं वा चार्मणं कौशं मण्डलस्योत्तरे सृजेत्॥ २॥
यदैव दीयते पद्मे मण्डलस्य तदुत्सृजेत्[21]।
वाक्पुष्पतोयैः कुसुमं विना यच्छादकं[22] भवेत्॥ ३॥
पद्मस्य तद्बहिर्देशे द्वारादौ विनिवेदयेत्।
अर्घ्यं पाद्यं चाचमनं स्नानीयं नेत्ररञ्जनम्॥ ४॥
मधुपर्कं च गन्धं च पुष्पं पद्मे निवेदयेत्।
प्रतिमासु च यद्योग्यं गात्रे दातुं च तत् तनौ॥ ५॥
दद्याद् योग्यं तु पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम्।
पौष्पासवं यद् विहितं यस्य तद् यदि गर्भकम्॥ ६॥
निवेदयेत् तदा पद्मे विपुलं द्वारि चोत्सृजेत्।
पौष्पं पुष्पौघरचितं कुशसूत्रादिसंयुतम्॥ ७॥
अतिप्रीतिकरं देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव।
यज्ञकाष्ठसमुद्भूतमासनं मसृणं शुभम्॥ ८॥
नोच्छ्रायं नातिविस्तीर्णमासनं विनियोजयेत्।
अन्यद् दारुभवं चापि दद्यादासनमुत्तमम्॥ ९॥
सकण्टकं क्षीरयुतं दारुसारविवर्जितम्।
चैत्यश्मशानसम्भूतं वर्जयित्वा विभीतकम्॥ १०॥
वल्कलं कोषजं शाणं वस्त्रमेतत् त्रयं मतम्।
रोमजं कम्बलं [23]चैतदनेन तु चतुष्टयम्॥ ११॥
अनेन रचितं दद्याद्रासनं चेष्टभूतये।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां छागस्य महिषस्य वा॥ १२॥
गजानां तुरगाणां च कृष्णसारस्य चर्मणः।
सृमरस्याथ रामस्य मृगाणां नवभेदिनाम्॥ १३॥

---

२१. मण्डलस्योत्तरे। २२. च्छादकं। २३. श्वेतं क्रमेण।

चर्मभिः सर्वदेवानामासनं प्रीतिदं श्रुतम् ।
वस्त्रेषु कम्बलं शस्तमासनं देवतुष्टये ॥ १४ ॥
राङ्कवं चार्मणं श्रेष्ठं दारवं चन्दनोद्भवम् ।
यच्चासनं कुशमयं तदासनमनुत्तमम् ॥ १५ ॥
सर्वेषामपि देवानामृषीणां च यतात्मनाम् ।
योगपीठस्य सदृशमासनं स्थानमुच्यते ॥ १६ ॥
आसनस्य प्रदानेन सौभाग्यं मुक्तिमाप्नुयात् ।
शम्बरो रोहितो रामो न्यङ्कुरङ्कुशशा रुरुः ॥ १७ ॥
एणश्च हरिणश्चेति मृगा नवविधा मताः ।
हरिणश्चापि विज्ञेयो पञ्चभेदोऽत्र भैरव ॥ १८ ॥
ऋष्यः खड्गो रुरुश्चैव पृषतश्च मृगस्तथा ।
एते वलिप्रदानेषु चर्मदानेषु कीर्तिताः ॥ १९ ॥
सर्वेषां तैजसानां च आसनं श्रेष्ठमुच्यते ।
आयसं वर्जयित्वा तु कांस्यं सीसकमेव वा ॥ २० ॥
शिलामयं मणिमयं तथा रत्नमयं मतम् ।
आसनं देवताभ्यस्तु मुक्त्यै मुक्त्यै समुत्सृजेत् ॥ २१ ॥
अत्रैव साधकानां च आसनं शृणु भैरव ।
यत्रासीनः पूजयंस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥
ऐन्धनं चार्मणं वास्त्रं तैजसं च चतुष्टयम् ।
आसनं साधकानां च सततं परिकीर्तितम् ॥ २३ ॥
[२४]तत् सर्वमासनं शस्तं पूजाकर्मणि साधके ।
न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्मणि साधकः ॥ २४ ॥
काष्ठादिकासनं कुर्यात् सितमेव सदा बुधः ।
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासनं मतम् ॥ २५ ॥
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्रायं चतुरङ्गुलम् ।
षडङ्गुलं वा कुर्यात् तु नोच्छ्रितञ्चात आचरेत् ॥ २६ ॥
पूर्वोक्तं वर्जयेद् वर्ज्यमासनं पूजनेष्वपि ।
वस्त्रं द्विहस्तान्नो दीर्घं सार्धहस्तान्न विस्तृतम् ॥ २७ ॥
न [२५]त्र्यङ्गुलात् तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि संश्रयेत् ।
यथेष्टं चार्मणं कुर्यात् पूर्वोक्तं सिद्धिदायकम् ॥ २८ ॥

---

२४. पूर्वोक्तं यद् देवेभ्य आसनं परिकीर्त्तितम्— इत्यधिकः पाण्डुलिप्याम् ।

२५. द्व्यङ्गुलात् ।

षडङ्गुलाधिकं कुर्यान्नोच्छ्रितं च कदाचन।
काम्बलं चार्मणं शैलं महामायाप्रपूजने ॥ २९ ॥
प्रशस्तमासनं प्रोक्तं कामाख्यायास्तथैव च।
त्रिपुरायाश्च सततं विष्णोश्चापि कुशासनम् ॥ ३० ॥
बहुदीर्घं बहूच्छ्रायं तथैव बहुविस्तृतम्।
दारुभूमिसमं प्रोक्तमश्मापि सर्वकर्मणि ॥ ३१ ॥
पृथक् पृथक् कल्पयेत् तु बहिर्द्वारि तथासनम्[२६]।
न पत्रमासनं कुर्यात् कदाचिदपि पूजने ॥ ३२ ॥
न प्राण्यङ्ग-समुद्भूतमस्थिजं द्विरदादृते।
मातङ्गदन्तसञ्जातं कामिकेष्वासनं चरेत् ॥ ३३ ॥
चार्मं पूर्वोदितं ग्राह्य तथा गन्धमृगस्य च।
सलिले यदि कुर्वीत देवतानां प्रपूजनम् ॥ ३४ ॥
तत्राप्यासन आसीनो नोत्थितस्तु कदाचन।
तोये शिलामयं कुर्यादासनं कौशमेव वा ॥ ३५ ॥*
दारवं तैजसं वापि नान्यदासनमाचरेत्।*
आसनारोपसंस्थानं स्थानाभावे तु पूजकः ॥ ३६ ॥
आसनं कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेज्जले।
यद्यासितुं न संस्थानं विद्यते तोयमध्यतः ॥ ३७ ॥
अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजां समाचरेत्।
इत्येतत् कथितं पुत्र पूज्यपूजकसङ्गतम् ॥ ३८ ॥
आसनं पाद्यमसुना श्रृणु वेताल भैरव।
पादार्थमुदकं पाद्यं केवलं तोयमेव तत् ॥ ३९ ॥
तत् तैजसेन पात्रेण शङ्खेनापि प्रदापयेत्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सस्थानं पाद्यमिष्यते ॥ ४० ॥
तदासनोत्तरं दद्यान्मूलमन्त्रेण सर्वतः।
कुशपुष्पाक्षतैश्चैव सिद्धार्थैश्चन्दनैस्तथा ॥ ४१ ॥
तोयैर्गन्धैर्यथालब्धैरर्घ्यं दद्यात् तु सिद्धये।
अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ॥ ४२ ॥*
पुत्रायुःसुखमोक्षाणि दानादर्घ्यस्य वै लभेत्।
न दद्याद् भास्करायार्घ्यं शंखतोयैर्विचक्षणः ॥ ४३ ॥

---

२६. वहिर्दारुनीचासनम्। * मुद्रितपुस्तके अधिकः।

तथा न शुक्तिपात्रेण विष्णवेऽर्घ्यं निवेदयेत्*।
दद्यादाचमनीयं तु सुगन्धिसलिलैः शुभैः ॥ ४४ ॥
कर्पूरवासितैर्वापि कृष्णागुरुविधूपितैः।
यथा तथा सुगन्धैर्वा प्रसन्नैः फेनवर्जितैः ॥ ४५ ॥
तत् तैजसेन पात्रेण शंखेनापि प्रदापयेत्।
उदकं दीयते यत् तु प्रसन्नं फेनवर्जितम् ॥ ४६ ॥
आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते।
केवलं तोयमात्रेण तद् वा दद्यान्न मिश्रितम् ॥ ४७ ॥
वासितं तु सुगन्धाद्यैः कर्तव्यं यदि लभ्यते।
आयुर्बलं यशोवृद्धिं प्रदायाचमनीयकम् ॥ ४८ ॥
लभते साधको नित्यं कामांश्चैव यथोत्थितान्[२७]।
दधिसर्पिर्जलं क्षौद्रं सिता ताभिश्च पञ्चभिः ॥ ४९ ॥
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये।
जल तु सर्वतः स्वल्पं सितादधिघृतं समम् ॥ ५० ॥
सर्वेभ्य[२८]श्चाधिकं क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत्।
तद् दद्यात् कांस्यपात्रेण रौक्मश्वेतमयेन वा ॥ ५१ ॥
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ पूर्वे चेष्टे च पूजने।
मधुपर्कः प्रदिष्टोऽयं सर्वदेवौघतुष्टिदः ॥ ५२ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधकः परिकीर्तितः।
मधुपर्कः सौख्यभोग्य-तुष्टि-पुष्टि-प्रदायकः ॥ ५३ ॥
पिष्टातकोऽथ कस्तूरी रोचनं कुङ्कुमं तथा।
गुडः क्षौद्रं पञ्चगव्यं सर्वौषधिगणस्तथा ॥ ५४ ॥
सिता निर्णेजनं तैलं स्निग्धस्नेहेन तत्तिलाः[२९]।
प्रान्ते तोयमिति प्रोक्तं स्नानीयं कल्पकोविदैः ॥ ५५ ॥
स्वर्णरत्नोदकं चैव कर्पूराद्यधिवासितम्।
तैजसैः कांस्यपात्रैर्वा शङ्खैर्वा तन्निवेदयेत् ॥ ५६ ॥
मण्डले केशरे देयमादित्यप्रतिमासु च[३०]।
शिवलिङ्गे तथा भोगे पीठे देवतनौ तथा ॥ ५७ ॥
सद्यःस्निग्धे मृन्मये वा सर्पिःसिन्दुरजे तथा।
श्रीचन्दनप्रतिष्ठे वा लेपयेत् प्रतिमातनौ ॥ ५८ ॥

---

* मुद्रितपुस्तके अधिक। २७. यथेप्सितान्। २८. सर्वेषां।
२९. स्नेहस्तु स्वस्तिमान्। ३०. मण्डलं केसरे देयमग्रेषु प्रतिमास्वथ।

स्वस्तिकस्थापिते[३१] खड्गे स्नापयेद् दर्पणेऽथ वा।
एवं दद्यात् तु स्नानीयं महादेव्यै विशेषतः ॥ ५९ ॥
रवि[३२] विष्णुशिवेभ्यो वा यत्र तत्र प्रपूजने।
पूजकः स्नानदानात् तु चिरायुरुपजायते ॥ ६० ॥
सम्यक् स्नानप्रदानात् तु कल्पान्तं स्वर्गभाग्भवेत्।
यदेव दीयते पाद्यं गन्धपुष्पादिकं तथा ॥ ६१ ॥
उपाचारांस्तथा सर्वानर्घ्यपात्राहितैर्जलैः।
अमृतीकरणाद्यैस्तु संस्कृतैस्त्वभिषिच्य तैः ॥ ६२ ॥
प्रदद्यादिष्टदेवेभ्यो गृह्णाति च ततः स्वयम्।
अर्घ्यपात्राणि तैस्तोयैर्विना[३३] यद्विनिवेदनम् ॥ ६३ ॥
दीयते चेष्टदेवेभ्यः सर्वं तन्निष्फलं भवेत्।
रागाल्लोभात् प्रमादाद् वा ह्यर्घ्यं पात्रामृतीकृतम् ॥ ६४ ॥*
तोयं स्रुतं स्यात् पात्रात् तु पुनः कुर्यात् तदामृतम् ।*
स्वल्पावशेषतोये तु पात्रस्थे ह्यमृतीकृते । ६५ ॥*
तत्रान्यदुदकं दद्यात् तत्तैनैवामृतं भवेत्।
बहूनि यदि पुष्पाणि माला वा प्रचुरा यदि[३४] ॥ ६६ ॥
दीयन्ते चार्घ्यपात्रस्थैर्जलैः संसिच्य चोत्सृजेत्।
अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ॥ ६७ ॥
तन्न गृह्णातीष्टदेवो दत्तं विधिशतैरपि।
संस्कृते त्वर्घ्यपात्रे तु नवभिः प्रतिपत्तिभिः ॥ ६८ ॥
तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि पीयूषाणि च सर्वतः।
तस्मात् तत्र स्थितैस्तोयैरभ्युक्ष्योपचारानुत्सृजेत् ॥ ६९ ॥
न योग्यमर्घ्यपात्रेषु निधाय विनिवेदयेत्।
इदं ते भैरव प्रोक्तं षट्कं चैवासनादिकम्।
वस्त्रादि दश वक्ष्यामि शृणु विज्ञानवृद्धये ॥ ७० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

---

३१. अन्तिक। ३२. विधि। ३३. अर्घ्यपात्राहितैः।
* अधिकः मुद्रिते। ३४. भवेत्।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ।

कार्पासं कम्बलं बाल्कं कोशजं वस्त्रमिष्यते ।
तत्पूर्वं पूजयित्वैव मन्त्रैर्देवाय चोत्सृजेत् ॥ १ ॥
निर्दशं मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलिङ्गितम् ।
परकीयं ह्याखुदष्टं सूचीविद्धं तथोषितम् ॥ २ ॥
उप्तलेशं[34] विधौतं च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ।
प्रदाने देवताभ्यश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ३ ॥
वर्जयेत् स्वोपयोगेन यज्ञादावुपयोजने ।
उत्तरीयोत्तरासङ्गैर्निचोलो मोदचेलकः ॥ ४ ॥
परिधानं च पञ्चैतान्यस्यूतानि[35] प्रयोजयेत् ।
शाण[36]वस्त्रं निशारं च तथैवातपवारणम् ॥ ५ ॥
चण्डातकं तथा द्दश्यं पञ्च स्यूतान्यदुष्टये ।
पताकाध्वजकुण्डादौ स्यूतं वस्त्रं प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥
अन्यत्रावरणादौ च तद्विनाशस्य तेन तत् ।
रक्तं कौशेयवस्त्रं च महादेव्यै प्रशस्यते ॥ ७ ॥
पीतं तथैव कौशेयं वासुदेवाय[37] चोत्सृजेत् ।
रक्तं तु कम्बलं दद्याच्छिवाय परमात्मने ॥ ८ ॥
विचित्रं सर्वदेवेभ्यो देवीभ्योऽशु निवेदयेत् ।
कार्पासं सर्वतोभद्रं दद्यात् सर्वेभ्य एव च ॥ ९ ॥
नैकान्तरक्तं दद्यात् तु वासुदेवाय चैलकम् ।
तथा नैकान्तनीलं तु शिवाय विनिवेदयेत् ॥ १० ॥
नीलीरक्तं तु यद्वस्त्रं तत् सर्वत्र विवर्जितम् ।
दैवे पित्र्ये तूपयोगे वर्जयेत् तु विचक्षणः ॥ ११ ॥
नीलीरक्तं प्रमादात्तु यो दद्याद् विष्णवे वुधः ।
निष्फला तस्य तत्पूजा तदा भवति भैरव ॥ १२ ॥

---

३४. गुप्तकेशं । ३५. पञ्च चैतान् । न च चैतान् ।
३६. वाल....। ३७. वामदेवाय ।

विचित्रे वाससि पुनर्लग्नं नीलीविरञ्जितम्[३८] ।
वस्त्रं दद्यान्महादेव्यै नान्यस्मै तु कदाचन ॥ १३ ॥
द्विपदां ब्राह्मणो यद्वद्देवानां वासवो यथा ।
तथा भूषणवर्गेषु वस्त्रमुत्तममुच्यते ॥ १४ ॥
वस्त्रेण जीयते लज्जा वस्त्रेण हीयते त्वघम् ।
वस्त्रात् स्यात् सर्वतः सिद्धिश्चतुर्वर्गप्रदं च तत् ॥ १५ ॥
वस्त्रं ते कथितं पुत्र सर्वप्रीतिप्रदायकम् ।
भोग्यं भूषोत्तमं नित्यं भूषणानि शृणुष्व मे ॥ १६ ॥
किरीटं च शिरोरत्नं कुण्डलं च ललाटिका ।
तालपत्रं च हारश्च ग्रैवेयकमथोर्मिका ॥ १७ ॥
प्रालम्बिकारत्नसूत्रमुत्तङ्गोतर्क्षमालिका ।
पार्श्वद्योतो नखद्योतो ह्यङ्गुलीच्छादकस्तथा ॥ १८ ॥
जूटालकं[३९] मानवको मूर्धताराखलन्तिका[४०] ।
अङ्गदो बाहुवलयः शिखाभूषण इङ्गिका ॥ १९ ॥
प्राग्दण्डबन्धमुद्भासना[४१]भिपूरोऽथ मालिका ।
सप्तकी शृङ्खलं चैव दन्तपत्रं च कर्णकः ॥ २० ॥
ऊरुसूत्रं च नीवीं च मुष्टिवन्धं प्रकीर्णकम् ।
पादाङ्गदं हंसकश्च नूपुरं क्षुद्रघण्टिका ॥ २१ ॥
सुखपट्टमिति प्रोक्ता अलङ्काराः सुशोभनाः ।
चत्वारिंशदमी प्रोक्ता लोके वेदे तु सौख्यदाः ॥ २२ ॥
अलङ्कारप्रदानेन चतुर्वर्गप्रसाधनम् ।
एतेषां पूजनं कृत्वा प्रदद्यादिष्टसिद्धये ॥ २३ ॥
तेषां दैवतमुच्चार्य पूजयेत् तु विचक्षणः ।
शिरोगतानि वा दद्यात् सौवर्णानि तु सर्वदा ॥ २४ ॥
चूडारत्नादिकानीह भूषणानि तु भैरव ।
ग्रैवेयकादिहंसान्तं सौवर्णं राजतं च वा ॥ २५ ॥
निवेदयेत् तु देवेभ्यो नान्यत् तैजससम्भवम् ।
रीतिरङ्गादि[४२] संजातं पात्रोपकरणादिकम् ॥ २६ ॥
दद्यादायुसमर्जं तु भूषणं न कदाचन ।
घटाचामरकुम्भादिपात्रोपकरणादिकम् ॥ २७ ॥

---

३८. विवर्जितम् । ३९. कुटुम्बकं । ४०. ह्यनन्तिका ।
४१ बलवद् ग्रामः । ४२. रीतिवंशादि ।

तद्भूषणान्तरे दद्यादस्मात् तदुपभूषणम्।
सर्वं ताम्रमयं दद्याद् यत् किंचिद् भूषणादिकम्॥ २८॥
सर्वत्र स्वर्णवत् ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम्।
पूजार्घ्यपात्रनैवेद्याधारपात्रं च पानकम्॥ २९॥
औदुम्बरं सदा विष्णोः प्रीतिदं तोषदं तथा।
ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः सदा॥ ३०॥
सर्वप्रीतिकरं ताम्रं तस्मात् ताम्रं प्रयोजयेत्।
स्वोपयोगे नरः कुर्याद् देवानामपि भैरव॥ ३१॥
ग्रीवोर्ध्वदेशे रौप्यं तु न कदाचिच्च भूषणम्।
प्रावारः पानपात्रं च गण्डको गृहमेव च॥ ३२॥
पर्यङ्कादि यदन्यच्च सर्वं तदुपभूषणम्।
अयोमयमृते कांस्यमृते यद्भूषणं भवेत्॥ ३३॥
स्वर्णरौप्यस्य चाभावे त्वधः काये नियोजयेत्।
एतेषां भूषणादीनां यद् दातुं शक्यते नरैः॥ ३४॥
तत् तद् दद्यात् सम्भवे तु सर्वमेव प्रदापयेत्।
चतुर्वर्गप्रदं त्वित्थं[४३] भूषणं सर्वसौख्यदम्॥ ३५॥
तुष्टिपुष्टिप्रीतिकरं यथाशक्तीष्टये सृजेत्।
इदं वा[४४] भूषणं प्रोक्तं सर्वदेवस्य तुष्टिदम्॥ ३६॥
गन्धं च सम्यक् शृणुतं पुत्रौ वेतालभैरवौ।
चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव वा॥ ३७॥
रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा।*
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिदायकः॥ ३८॥
गन्धचूर्णं गन्धपत्रं चूर्णं सुमनसस्तथा।
प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि तु॥ ३९॥
तानि गन्धवहानि स्युः सगन्धः प्रथमः स्मृतः।
घृष्टो मलयजो गन्धः सचूर्णीकृतमेरुणा॥ ४०॥
अगुरुप्रभृतिश्चापि यस्य पङ्कः प्रदीयते।
गन्धो दृष्ट्वामघृष्टोऽयं[४५] द्वितीयः परिकीर्तितः॥ ४१॥
देवदार्वगुरुपद्मगन्धराशान्त[४६] चन्दनाः।
प्रियादीनां च यो दग्ध्वा[४७] गृह्यते दाहजो रसः॥ ४२॥

---

४३. नित्यं। ४४. नौ। *मुद्रितपुस्तके अधिकः।
४५. घृष्ट्वामघृष्टगन्धोऽयं। ४६. ब्रह्मशालशारान्त। ४७. गन्धः।

सदाहाकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः ।
सुगन्धकरवीबिल्वगन्धीनि तिलकं तथा ॥ ४३ ॥
प्रभृतीनां रसो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते ।
ससम्मर्दोद्भवो गन्धः सम्मर्दज इतीष्यते ॥ ४४ ॥
मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोषोद्भव एव वा ।
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तो मोददः स्वर्गवासिनाम् ॥ ४५ ॥
कर्पूरगन्धसाराद्याः क्षोदे घृष्टे च संस्थिताः ।
चन्द्रभागादयश्चापि रसे पङ्के च सङ्गताः ॥ ४६ ॥
गन्धसारं सर्वरसं गन्धादौ[४८] च प्रयुज्यते ।
मृगनाभिर्भवेद् घृष्टश्चूर्णोऽप्यन्यस्य योगतः ॥ ४७ ॥
एवं सर्वं तु सर्वत्र गन्धो भवति पञ्चधा ।
घृष्टादिभावादन्योन्यं गन्धः प्रीतिकरं परः ॥ ४८ ॥
गन्धस्य विस्तरो भेदः प्रोक्तः कालीयकादयः ।
सर्वः पञ्चविधेष्वेव प्रविष्टो भवति क्षणात् ॥ ४९ ॥
गन्धो मलयजो यस्तु दैवे पित्र्ये च सम्मतः ।
तस्य पङ्को रसो वापि चूर्णो वा विष्णुतुष्टिदः ॥ ५० ॥
सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ॥ ५१ ॥
कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोद्भवैः ।
वैष्णवीप्रीतिदो गन्धः कामाख्यायाश्च भैरव ॥ ५२ ॥
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः ।
त्रिपुराप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्ड्याश्च शस्यते ॥ ५३ ॥
दैवतोद्देशपूर्वेण गन्धं सम्पूज्य साधकः ।
देवायेष्टाय वितरेत् सर्वसिद्धिप्रदं सदा[४९] ॥ ५४ ॥
गन्धेन लभते कामान् गन्धो धर्मप्रदः सदा ।
अर्थानां साधको गन्धो गन्धे मोक्षः प्रतिष्ठितः ॥ ५५ ॥
अयं वां कथितो गन्धः पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
पुष्पाणि देव्या वैष्णव्याः[५०] प्रियाणि शृणु सम्प्रति ॥ ५६ ॥
बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरुण्टकैः ।
करवीरार्कपुष्पैश्च शाल्मलैश्चापराजितैः ॥ ५७ ॥

---

४८. सर्वत्र सम्मदादौ ।　४९. सर्वसाध्यमवाप्नुयात् ।
५०. यानि पुष्पाणि व देव्याः ।

दमनैः सिन्धुवारैश्च सुरभी[५१]कुरुवकैस्तथा ।
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाङ्कुरैश्च कोमलैः ॥ ५८ ॥
मञ्जरीभिः कुशानां च बिल्वपत्रैः सुशोभनैः ।
पूजयेद् वैष्णवीं देवीं कामाख्यां त्रिपुरां तथा ॥ ५९ ॥
अन्याश्च या शिवप्रीत्यै जायन्ते पुष्पजातयः ।
ता इमाः शृणु कथ्यन्ते मया वेतालभैरव ॥ ६० ॥
मालती मल्लिका जाती यूथिका माधवी तथा ।
पाटला करवीरश्च जवा तर्कारिका[५२] तथा ॥ ६१ ॥
कुब्जकस्तगरश्चैव कर्णिकारोऽथ रोचना ।
चम्पकाम्रातकौ बाणो बर्बरा[५३] मल्लिका तथा ॥ ६२ ॥
अशोको लोध्रतिलकौ अटरूषशिरीषकौ ।
शमीपुष्पं च द्रोणश्च पद्मोत्पलबकारुणाः ॥ ६३ ॥
श्वेतारुणत्रिसन्ध्ये च पलाशः खदिरस्तथा ।
वनमालाऽथ सेवन्ती[५४] कुमुदोऽथ कदम्बकः ॥ ६४ ॥
चक्रं कोकनदं चैव तण्डिलो[५५] गिरिकर्णिका ।
नागकेशरपुन्नागौ केतक्यञ्जलिका तथा ॥ ६५ ॥
दोहदा बीजपूरश्च नमेरुः शाल एव च ।
त्रपुषी चण्डबिल्वश्च झिण्टी पंचविधास्तथा ॥ ६६ ॥
एवमाद्युक्तकुसुमैः पूजयेद् वरदां शिवाम् ।
अपामार्गस्य पत्रं तु ततो भृङ्गारपत्रकम् ॥ ६७ ॥
ततोऽपि गन्धिनीपत्रं वलाहकमतः परम् ।
तस्मात् खदिरपत्रं तु वञ्जुलस्तवक[५६]स्तथा ॥ ६८ ॥
आम्रं तु बकगुच्छं तु जम्बुपत्रं ततः परम् ।
बीजपूरस्य पत्रं तु ततोऽपि कुशपत्रकम् ॥ ६९ ॥
दूर्वांकुरं ततः प्रोक्तं शमीपत्रमतः परम् ।
पत्रमामलकं तस्मादामलं पत्रमन्ततः[५७] ॥ ७० ॥
सर्वतो बिल्वपत्रं तु देव्याः प्रीतिकरं मतम् ।
पुष्पं कोकनदं पद्मं जवा बन्धुक एव च ॥ ७१ ॥
पत्रं बिल्वस्य सर्वेभ्यो वैष्णवीतुष्टिदं मतम् ।
सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्ममिहोत्तमम् ॥ ७२ ॥

---

५१. ....मरु... । ५२. तु कारिका । ५३. सर्वरी । ५४. सेमन्ती ।
५५. मण्डिलो । ५६. रञ्जनं स्तवकं । ५७. तस्मादामपत्रं मतं ततः ।

रक्तपद्मसहस्रेण यो मालां सम्प्रयच्छति ।
भक्तियुक्तो महादेव्यै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ७३ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा मम पुरे श्रीमांस्ततो राजा क्षितौ भवेत्[५८] ॥ ७४ ॥
पत्रेषु विल्वपत्रं तु देवीप्रीतिकरं मतम् ।
तत्सहस्रकृता माला पूर्ववत् फलदा भवेत् ॥ ७५ ॥
किंचात्र बहुनोक्तेन समान्येनेदमुच्यते ।
उक्तानुक्तैस्तथापुष्पैर्जलजैः स्थलसम्भवैः ॥ ७६ ॥
पत्रैः सर्वैर्यथालाभं सर्वौषधिगणैरपि ।
वनजैः सर्वपुष्पैश्च पत्रैरपि शिवां यजेत् ॥ ७७ ॥
पूजयेत् परमेशानीं पुष्पाभावेऽपि पत्रकैः ।
पत्राणामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधादिभिः ॥ ७८ ॥
औषधीनामभावे तु तत्फलैरपि पूजयेत् ।
अक्षतैर्वा जलैर्वापि तदभावे तु सर्षपैः ॥ ७९ ॥
सितैस्तस्याप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाचरेत् ।
वाजिदन्तकपत्रैश्च पुष्पौघैरपि पूजयेत्[५९] ॥ ८० ॥
तुलसीकुसुमैः पत्रैरर्चयेच्छ्रीविवृद्धये ।
पुरश्चरणकार्येषु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः ॥ ८१ ॥
साक्षतैः सघृतैर्वापि शिवामुद्दिश्य यत्नतः ।
जुहुयादनलं वृद्धं संस्कृतं कामवृद्धये ॥ ८२ ॥
संकल्पितः कामसिद्ध्यै संख्यया यः कृतो जपः ।
तदन्ते पूजनं यत्तु विहितं क्रियते द्विजैः ॥ ८३ ॥
पुरश्चरणसंज्ञं तु कीर्तितं द्विजसत्तमैः ।
तस्मिन् पुराणके पूर्वं पूर्वोक्तैर्विस्तरोदितैः ॥ ८४ ॥
विधानैः पूजयेद् देवीं कामाख्यां वैष्णवीमपि ।
यथासम्भवमेवात्र दद्यात् षोडश साधकः ॥ ८५ ॥
उपचारांस्तथैवोक्तान् विधिकृत्यान्न लंघयेत् ।
सम्पूर्णं पूजनं कृत्वा कल्पोक्तं शतधा जपेत् ॥ ८६ ॥
जपान्ते जुहुयादग्निं होमान्ते तु वलित्रयम् ।
त्रिजातीयं तु [६०]वितरेत्तौर्यत्रिकमतः परम् ॥ ८७ ॥

५८. श्रीमानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् । ५९. चण्डिकां ।
६०. विभवे तौर्य…

पत्नी स्वयं वा भ्राता वा गुरुर्वा विनियोजयेत् ।
नैवेद्यादीनि सर्वाणि स्वपुत्रः शिष्य एव वा ॥ ८८ ॥
यज्ञावसाने दद्यात् तु गुरवे दक्षिणां शुभाम् ।
चामीकरं तिलान् गाश्च तदशक्तौ तु चेलकम् ॥ ८९ ॥
अष्टम्यां शुक्लपक्षस्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां महादेव्याः पुरश्चरेत् ॥ ९० ॥
आदद्याद् गुरुवक्त्रात् तु विधिना विस्तरेण तु ।
कल्पोदितेन सम्पूज्य तिथिष्वेतासु भैरव ॥ ९१ ॥
सम्पूर्णपूजां नो कृत्वा न दद्यान्मन्त्रमीप्सितम् ।
न पुरश्चरणं वापि कुर्यात् कृत्वाऽवसीदति ॥ ९२ ॥
नित्यपूजा सा तु पुनः सम्पूर्णा यदि शक्यते ।
कल्पोदितं पूजयितुं तदा कुर्यादतन्द्रितः ॥ ९३ ॥
न चेद् विस्तरशः कर्तुं देव्याः पूजां तु भैरव ।
कल्पोक्तां वाऽन्यदेवस्य तत्रायं विधिरुच्यते ॥ ९४ ॥
मार्जनाद्यैस्तु संस्कृत्य स्थण्डिले मण्डलं लिखेत् ।
पात्रस्य प्रतिपत्तिं तु कृत्वा दाहं प्लवं तथा ॥ ९५ ॥
ध्यायेदात्मानमथ च संस्कृत्याङ्गस्वरूपतः ।
अङ्गुष्ठाद्यस्त्रपर्यन्तं द्वादशाङ्गस्य शुद्धये ॥ ९६ ॥
अर्घ्यपात्रेऽष्टधा जप्त्वा उपचारान् प्रसेचयेत् ।
आधारशक्तिप्रमुखं मूलवर्णान् प्रयुज्य च ॥ ९७ ॥
हृदिस्थां देवतां ध्यात्वा बहिःकृत्यं च वायुना ।
आरोप्य मण्डले दद्यादुपचारान् यथाविधि[६१] ॥ ९८ ॥
पूजयित्वा षडङ्गानि तथाष्टौ दलदेवताः ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा जप्त्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥ ९९ ॥
मुद्रामग्रे प्रदर्श्याथ ततः पश्चाद् विसर्जयेत् ।
सर्वेषामेव देवानामेष एव विधिः स्मृतः ॥ १०० ॥
सम्यक् कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।
उपचारांस्तथा दातुं पञ्चैतान् वितरेत् तदा ॥ १०१ ॥
गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ॥ १०२ ॥
संक्षेपपूजा कथिता तथा वस्त्रादिकं पुनः ।

---

६१. यथाशुभान् ।

पुरश्चरणकृत्ये[६२] च प्रदीपं शृणु भैरव ॥ १०३ ॥
दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः ।
चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद् दीपैर्यजेच्छ्रियम् ॥ १०४ ॥
सततं पुष्पदीपाभ्यां पूजयेद् यस्तु देवताम् ।
ताभ्यामेव चतुर्वर्गः[६३] कथितो नात्र[६४] संशयः ॥ १०५ ॥
पुष्पैर्देवाः प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च संस्थिताः ।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्परसाः स्मृताः ॥ १०६ ॥
किंचाति बहुनोक्तेन पुष्पस्योक्तिर्मतल्लिका ।
परं ज्योतिः पुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति ॥ १०७ ॥
त्रिवर्गसाधनं पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम्[६५] ।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः ॥ १०८ ॥
पुष्पाग्रे तु महादेवः सर्वे देवाः स्थिता दले ।
तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवान्नित्यं भक्तियुतो नरः ॥ १०९ ॥
उच्चारितं नाममात्रं जायते सर्वभूतये ।
घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ॥ ११० ॥
सार्षपफलनिर्यासजातो वा राजिकोद्भवः ।
दधिजश्चान्नजश्चैव दीपाः सप्त प्रकीर्तिताः ॥ १११ ॥
पद्मसूत्रभवा दर्भगर्भसूत्रभवाऽथवा ।
शणजा बादरी वापि फलकोषोद्भवा तथा ॥ ११२ ॥
वर्तिका[६६] दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधाः स्मृताः ।
तैजसं दारवं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम् ॥ ११३ ॥
तृणध्वजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते ।
दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्यैस्तु भैरव ॥ ११४ ॥
वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।
सर्वंसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम् ॥ ११५ ॥
अकार्यपादघातं च दीपतापं तथैव च ।
तस्माद् यथा तु पृथिवी तापं नाप्नोति वै तथा ॥ ११६ ॥
दीपं दद्यान्महादेव्यै अन्येभ्योऽपि च भैरव ।
कुर्वन्तं पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः ॥ ११७ ॥
स ताम्रतापं[६७] नरकं प्राप्नोत्येव शतं समाः ।

---

६२. ···कृत्यं । ६३. स्वर्गगः । ६४. स्यान्नास्त्यत्र ।
६५. मोदनम् । ६६. कार्तिका । ६७. पात्रतापनरकं ।

सुवृत्तवर्तिः सुस्नेहः पात्रभग्नः सुदर्शनः[६८] ॥ ११८ ॥
सूच्छाये वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात् प्रयत्नतः ।
लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरङ्गुलात् ॥ ११९ ॥
न स दीप इति ख्यातो ह्योघवह्निस्तु स श्रुतः ।
नेत्राह्लादकरः स्वर्चिर्दूरतापविवर्जितः ॥ १२० ॥
सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।
दक्षिणावर्तवर्तिस्तु प्रदीपः श्रीविवृद्धये ॥ १२१ ॥
दीपवृक्षस्थिते पात्रे शुद्धस्नेहप्रपूरिते ।
दक्षिणावर्तवर्त्या तु चारुदीप्तः प्रदीपकः ॥ १२२ ॥
उत्तमः प्रोच्यते पुत्र[६९] सर्वतुष्टिप्रदायकः ।
वृत्तेण वर्जितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः ॥ १२३ ॥
विहीनः पात्रतैलाभ्यामधमः परिकीर्तितः ।
शाणं वा दारवं वस्त्रं जीर्णं मलिनमेव वा ॥ १२४ ॥
उपयुक्तं च नादद्याद् वर्तिकार्थं तु साधकः ।
उपादद्यान्नूत्नमेव[७०] सततं श्रीविवृद्धये ॥ १२५ ॥
कोषजं रोमजं वस्त्रं वर्तिकार्थं न चाददेत् ।
न मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपे स्नेहघृतादिकान् ॥ १२६ ॥
कृत्वा मिश्रीकृतं स्नेहं तामिस्रं नरकं व्रजेत् ।
वसामज्जास्थिनिर्यासैः स्नेहैः प्राण्यङ्गसम्भवैः ॥ १२७ ॥
प्रदीपं नैव कुर्यात् तु कृत्वा पङ्केऽवसीदति ।
अस्थिपात्रेऽथ वा पच्येद् दुर्गन्धास्थिपवासिनि ॥ १२८ ॥
नैव दीपः प्रतातव्यो विबुधैः श्रीविवृद्धये[७१] ।
नैव निर्वापयेद् दीपं कदाचिदपि यत्नतः ॥ १२९ ॥
सततं लक्षणोपेतं देवार्थमुपकल्पितम् ।
न हरेज्ज्ञानतो दीपं तथा लोभादिना नरः ॥ १३० ॥
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
उद्दीप्तदीप्तप्रतिमः काष्ठकाण्डसमुद्भवः ॥ १३१ ॥
बिल्वेध्मोद्भवमेवाथ दीपालाभे निवेदयेत् ।
उल्मुकं नैव दीपार्थे कदाचिदपि चोत्सृजेत् ॥ १३२ ॥
प्रसन्नार्थं तु तं दद्यादुपचाराद् बहिष्कृतम् ।

---

६८. पात्रेऽभग्ने सुदर्शने । ६९. दीपः । ७०. दद्यात् तृणमेव ।
७१. साधकानां विवृद्धये ।

एवं वां कथितो दीपो धूपं च शृणुतं सुतौ ॥ १३३ ॥
नासाक्षिरन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽतिमनोहरः ।
दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतरस्य च ॥ १३४ ॥
परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्य जायते[७२] ।
स धूप इति विज्ञेयो देवानां तुष्टिदायकः ॥ १३५ ॥
राशीकृतैर्न चैकत्र तैर्द्रव्यैः परिधूपयेत् ।
तुषाग्निवर्तुलां कृत्वा न तत् फलमवाप्नुयात् ॥ १३६ ॥
श्रीचन्दनं च सरलः शालः कृष्णागुरुस्तथा ।
उदयः सुरथस्कन्दो रक्तविद्रुम एव च ॥ १३७ ॥
पीतशालः परिमलो त्रिर्मदी काशलस्तथा ।
नमेरुर्देवदारुश्च बिल्वसारोऽथ खादिरः ॥ १३८ ॥
सन्तानः पारिजातश्च हरिचन्दनवल्लभौ ।
वृक्षेषु धूपाः सर्वेषां प्रीतिदाः परिकीर्तिताः ॥ १३९ ॥
अरालः सह सूत्रेण श्रीवासः पट्टवासकः ।
कर्पूरः श्रीकरश्चैव परागः श्रीहरामलौ ॥ १४० ॥
सर्वौषधीव जातीव वराहश्चूर्ण उत्कलः ।
जातीकोषस्य चूर्णं च गन्धः कस्तूरिका तथा ॥ १४१ ॥
क्षोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृताः ।
यक्षधूपो वृक्षधूपः श्रीपिष्टोऽगुरु झर्झरः ॥ १४२ ॥
पत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलः कण्ठ एव च ।
अन्योन्ययोगा निर्यासा धूपा एते प्रकीर्तिताः ॥ १४३ ॥
एतैर्विधूपयेद् देवान् धूमिभिः कृष्णवर्त्मना ।
येषां धूपोद्भवैर्घ्राणैस्तुष्टिं गच्छन्ति जन्तवः ॥ १४४ ॥
निर्यासश्च परागश्च काष्ठं गन्धं तथैव च ।
कृत्रिमश्चेति पञ्चैते धूपाः प्रीतिकराः पराः ॥ १४५ ॥
न यक्षधूपं वितरेन्माधवाय कदाचन ।
न रक्तं विद्रुमं मह्यं सुरथं कद्रिलं तथा ॥ १४६ ॥
यक्षधूपः पुत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलकः ।
कृष्णागुरुः सकर्पूरो महामायाप्रियः स्मृतः ॥ १४७ ॥
वृकधूपेन वा देवीं महामायां प्रपूजयेत् ।
मेदोमज्जासमायुक्तान् न धूपान् विनियोजयेत् ॥ १४८ ॥
परकीयांस्तथाघ्रातांस्तेऽपि कृत्याभिमर्दितान् ।

---

७२. परागस्याथ निस्तापो धूपादन्यात् प्रजायते ।

पुष्पं धूपं च गन्धं च उपचारांस्तथापरान् ॥ १४९ ॥
घ्रात्वा निवेद्य देवेभ्यो नरो नरकमाप्नुयात् ।
न भूमौ वितरेद् धूपं नासने न घटे तथा ॥ १५० ॥
यथातथाधारगतं कृत्वा तद् विनिवेदयेत् ।
रक्तविद्रुमशालौ च सुरथः[73] सुरलस्तथा[74] ॥ १५१ ॥
सन्तानको नमेरुश्च कालागुरुसमन्वितः ।
जातीकोषाक्षसयुक्तो धूपः कामेश्वरीप्रियः ॥ १५२ ॥
त्रिपुण्यायास्तथैवायं मातृणामपि नित्यशः ।
सर्वेषां पीठदेवानां रुद्रादीनां च पुत्रकः ॥ १५३ ॥
एष वां कथितो धूपः श्रृणु तन्नेत्ररञ्जनम् ।
येन तुष्यति कामाख्या त्रिपुरा वैष्णवी तथा ॥ १५४ ॥
सौवीरं यामुनं तुत्थं मयूरयामुनं तथा ।
दुर्विका मेघनीलश्च अञ्जनानि भवन्ति षट् ॥ १५५ ॥
स्रवद्द्रुमं च सौवीरं यामुनं प्रस्तरं तथा ।
मयूरग्रीवकं रत्नं[75] मेघनीलस्तु तैजसम् ॥ १५६ ॥
घृष्टानि ग्राह्य चैतानि शिलायां तैजसेऽथ वा ।
प्रदद्यात् सर्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्रक ॥ १५७ ॥
घृततैलादियोगेन ताम्रादौ दीपवह्निना ।
यदञ्जनं जायते तु दर्विका परिकीर्तिता ॥ १५८ ॥
सर्वाभावे तु तद् दद्याद् देवीभ्यो दाहजाञ्जनम् ।
महामाया जगद्धात्री कामाख्या त्रिपुरा तथा ॥ १५९ ॥
आप्नुवन्ति महातोषं षड्भिरेभिः सदाञ्जनैः ।
विधवा नाञ्जनं कुर्यान्महामायार्थमुत्तमम् ॥ १६० ॥
नादत्ते त्वञ्जनं देवी वैष्णवी विधवाकृतम् ।
न मृत्पात्रे योजयेत् तु साधको नेत्ररञ्जनम् ॥ १६१ ॥
न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रविहिताञ्जनैः ।
चतुर्वर्गप्रदो धूपः कामदं नेत्ररञ्जनम् ॥ १६२ ॥
तस्माद् द्वयमिदं दद्याद् देवेभ्यो भक्तितो नरः ।
इति वां गदितो धूपस्तथोक्तं नेत्ररञ्जनम् ।
नैवेद्यं तु महादेव्याः श्रृणवैकाग्रमनाः पुनः ॥ १६३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

---

७३. सारथः । ७४. सकलस्तथा । ७५. रूपं ।

सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

निवेदनीयं यद् द्रव्यं प्रशस्तं प्रयतं तथा।
तद्भक्ष्याद्यं पञ्चविधं नैवेद्यमिति गद्यते ॥ १ ॥
भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चमम्।
सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाराध्येष्टे निवेदयेत् ॥ २ ॥
तेषु[७६] प्रियतरं[७७] देव्याः कथये शृणुतं तु वाम्[७८]।
भक्ष्यादिपञ्चकैर्देवी दत्तैरेवाभितुष्यति ॥ ३ ॥
नादत्ते विधिवत् किंचिद् दत्तं चैतन्न विद्यते[७९]।
नागरं[८०] च कपित्थं च द्राक्षां क्रमुकमेव च ॥ ४ ॥
करकं वरदं कोलं कुष्माण्डं पनसं तथा।
बकुलं च मधूकं च रसालाम्रातकेशरम्[८१] ॥ ५ ॥
आक्षोडं पिण्डखर्जूरं करुणं श्रीफलं तथा।
औदुम्बरं च पुन्नागं माधवं कर्कटीफलम् ॥ ६ ॥
जाम्बवं पिण्डखर्जूरं बीजपूरं च जाम्बवम्।
हरीतकीमामलकं षड्विधं नागरङ्गकम् ॥ ७ ॥
देवकं मधुकं शीतं पटोलं क्षीरवृक्षजम्।
पाटलं शालजं वृन्तमग्निजं कदलीफलम् ॥ ८ ॥
तिन्दुकं कुसुमं पीतं कारविन्दं करूषकम्।
गर्भावर्तं च तत्पुष्पं क्षीरस्राव्यमनङ्गजम् ॥ ९ ॥
कुमुदानां पङ्कजानां फलानि विविधानि च।
वन्यानां सकलैर्देवीं फलैः पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ १० ॥
ऋते श्लेष्मातकं विम्बशैलकं वैष्णवीं तथा।
सर्वेषां फलजातीनां मध्ये देवीप्रियं फलम् ॥ ११ ॥
लाङ्गलं मातुलुङ्गं च करमर्दं रसालकम्।
एवं फलानि देयानि कामाख्यायै च भैरव ॥ १२ ॥
त्रिपुरायै तथा सम्यक् पीठदेवीभ्य एव च।
शृङ्गाटकं कशेरुं च शालूकं च मृणालकम् ॥ १३ ॥

---

७६. तेषां। ७७. प्रियतमं। ७८. युवाम्।
७९. वै तद् निवेदयेत्। ८०. लांगलं। ८१. तथा।

शृङ्गवेरं काञ्चनं च स्थूलं कन्दं बकुलकम् ।
एवमादीनि कन्दानि देव्यै सर्वाणि चोत्सृजेत् ॥ १४ ॥
परमान्नं पिष्टकं च यावकं कृशरं तथा ।
मोदकं पृथुकादीनि कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत् ॥ १५ ॥
हविःशाल्योदनं दिव्य[८२]माज्ययुक्तं सशर्करम् ।
निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च ॥ १६ ॥
क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिष्या[८३]णि च सर्वशः ।
अजाविकमृगाणां च क्षीरादीनि निवेदयेत् ॥ १७ ॥
मध्वादीनि[८४]च सर्वाणि गुडधानाः सितां तथा ।
अन्नानि चैव पानानि मांसानि विनिवेदयेत् ॥ १८ ॥
सर्वं सुरभिगन्धाढ्यं व्यञ्जनं सुमनोहरम् ।
शाकमांसादिसम्भूतं महादेव्यै निवेदयेत् ॥ १९ ॥
आमिषं परमान्नं च दधिसर्पिः सशर्करम् ।
महादेव्यै निवेद्याथ वाजिमेधफलं लभेत् ॥ २० ॥
सितासम्मिश्रितां दत्त्वा सुरां मधुसमन्विताम् ।
देवीलोके चिरं स्थित्वा राजा क्षितितले भवेत् ॥ २१ ॥
लाङ्गलं क्रमुकं दत्त्वा रुचकं करमर्दकम् ।
सौभाग्यमतुलं प्राप्य देवीलोके महीयते ॥ २२ ॥
माषान् मुद्गान् मसूरांश्च तिलान् भङ्गास्तथैव च ।
यवादीन्यथ सर्वाणि यथायोग्यं निवेदयेत् ॥ २३ ॥
यथा यथा भवेद्भक्ष्यं यथा द्रव्यं तथा तथा ।
संस्कृत्य वेशवाराद्यैर्महादेव्यै निवेदयेत् ॥ २४ ॥
महावीरो मुनिर्वापि ब्राह्मणश्चेतरोऽथ वा ।
यद् यद् भक्ष्यं स्वमर्थं तु प्रकल्प्यं स्याद् यथा यथा ॥ २५ ॥
तथा तथा महादेव्यै भक्तियुक्तो निवेदयेत् ।
संस्कार्याण्यथ संस्कृत्य यथा संस्कारकं भवेत् ॥ २६ ॥
संस्कार्यश्च यथा तस्यास्तत्तद् दद्यात्तथा तथा ।
यत्पूतिगन्धसंयुक्तं दग्धं भोज्यविवर्जितम्[८५] ॥ २७ ॥
तदुक्तमपि नो दद्यान्महादेव्यै कदाचन ।
ताम्बूलं गन्धसंयुक्तं कर्पूराद्यधिवासितम् ॥ २८ ॥

---

८२. हविषा-चौदनं देव्यामाज्य.... । ८३. घृतादीनि ।
८४. दध्यादीनि । ८५. भोग्यबहिः कृतम् ।

संचूर्णैर्जलजानां च संस्कृतं विनिवेदयेत् ।
वलिदानेषु विहिता य एव मृगपक्षिणः ॥ २९ ॥
तेषां मांसानि मत्स्यानां मांसानि च निवेदयेत् ।
खड्गवार्ध्रीणसच्छागमांसैर्मिश्रीकृतैः कृतम् ॥ ३० ॥
व्यञ्जनं स्वादुगन्धाढयं वासितं सुमनोहरम् ।
सकृद् दत्त्वा महादेव्यै सार्वभौमो नृपो भवेत् ॥ ३१ ॥
मूलकैरेणमांसेन लोहपात्रे सुसंस्कृतम् ।
व्यञ्जनं गन्धिनं दत्त्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥
खर्जूरं पिण्डखर्जूरं यवचूर्णं च साज्यकम् ।
वैष्णव्यै विनिवेद्यैव राजसूयफलं लभेत् ॥ ३३ ॥
कृशरान्नप्रदानेन सौभाग्यमतुलं भवेत् ।
दत्त्वैव नारिकेलाम्बु वह्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३४ ॥
जाम्बवं लवली धात्री श्रीफलानि निवेद्य च ।
वह्निष्टोमफलं लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
द्राक्षां सितासमायुक्तां नागरङ्गकसंयुताम् ।
विनिवेद्य महादेव्यै लक्ष्मीवान् रूपवान् भवेत् ॥ ३६ ॥
धान्यं च पृथुकं देव्यै दत्त्वा श्रियमवाप्नुयात् ।
इक्षुदण्डं मुद्गमण्डं नवनीतं निवेद्य च ॥ ३७ ॥
सौभाग्यमुत्तमं प्राप्य देवीलोके महीयते ।
नवनीतसमायुक्तं तिलं देव्यै निवेद्य च ॥ ३८ ॥
इह कामानवाप्यैव मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।
अभक्ष्यवर्ज्यं सर्वान्नं व्यञ्जनेन समन्वितम् ॥ ३९ ॥
भोज्यवत् परिकल्प्याथ महादेव्यै निवेदयेत् ।
रत्नतोयसमायुक्तं सलिलं नारिकेलजम् ॥ ४० ॥
क्षीराज्यमधुभिर्मिश्रं सितादधिसमन्वितम् ।
यस्तैजसेन पात्रेण पेयं देव्यै निवेदयेत् ॥ ४१ ॥
भक्तिप्रवणचित्तेन तस्य पुण्यफलं शृणु ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ४२ ॥
स्थित्वा देवीपुरे धीरः सार्वभौमो भवेत् क्षितौ ।
ततः परं तु कैवल्यमाप्नोति च यथेच्छया ॥ ४३ ॥
कलायं च सनीवारं क्वथितं दधिसंयुतम् ।
महादेव्यै निवेद्यैव काममिष्टमवाप्नुयात् ॥ ४४ ॥

मरिचं पिप्पलीकोलं जीरकं तन्तुभं तथा।
संस्कारे च समक्ते च महादेव्यै निवेदयेत् ॥ ४५ ॥

तिन्तिडीं खण्डसंयुक्तां भक्तियुक्तो निवेद्य च।
ज्योतिष्टोमफलं लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

राजमाषं मसूरं च पालङ्कं चाथ पोतिकाम्।
कालशाकं कलायं च ब्राह्मीमूलकमेव च ॥ ४७ ॥

वास्तूकं च कलम्वीं च कञ्चुकं हिलमोचिकाम्।
चक्रं[८६] विद्रुमपत्रं च तथैव च पुनर्नवाम् ॥ ४८ ॥

शाकानेतान् महादेव्यै योजयेद् भक्तिसंयुतः।
सोऽतुलां श्रियमाप्नोति मम लोके महीयते ॥ ४९ ॥

श्रद्धापरीष्टिसंस्कारभक्तिद्रव्याभिसम्भ्रमम्[८७]।
रागाधिक्यात् फलाधिक्यं हीनाद् वै हीनतां व्रजेत् ॥ ५० ॥

मन्त्रकालविरुद्धानि नैवेद्यानि कदाचन।
देवेभ्यो नोपयुञ्जीत गुरुताविहितानि च ॥ ५१ ॥

राजते वाऽथ सौवर्णे ताम्रे वा प्रस्तरेऽपि च।
पद्मपत्रेऽथवा दद्यान्नैवेद्यं मत्प्रियाप्रियम् ॥ ५२ ॥
तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णं ताम्रमेव वा।
प्राशनार्थमुपादद्यादर्घ्यपात्रार्थमेव वा ॥ ५३ ॥

यज्ञदारुमयं वापि पात्रं मध्यममिष्यते।
सर्वालाभे तु माहेयं स्वहस्तघटितं यदि ॥ ५४ ॥

एतद् वां कथितं पुत्रौ नैवेद्यं वैष्णवीप्रियम्।
कामाख्यायास्तथा देव्यास्त्रिपुरायां विशेषतः।
प्रदक्षिणनमस्कारौ साम्प्रतं शृणुतं युवाम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

---

८६. चुचु...। ८७. ...मन्त्रणं।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः ।
दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं मनसापि[८८] च दक्षिणः ॥ १ ॥
सकृत् त्रिर्वा वेष्टयेयुर्देव्याः प्रीतिः प्रजायते ।
स च प्रदक्षिणो ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टिदः ॥ २ ॥
अष्टोत्तरशतं यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
स सर्वकासमासाद्य[८९] पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥
मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम ।
प्रदक्षिणाद् यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥ ४ ॥❋
कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।❋
नमस्कारः श्रुतस्तज्ज्ञैरुत्तमाधममध्यमः ॥ ५ ॥
प्रसार्य पादौ हस्तौ च पतित्वा दण्डवत् क्षितौ ।❋
जानुभ्यामवनिं गत्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ॥ ६ ॥
क्रियते यो नमस्कार उत्तमः कायिकस्तु सः ।
जानुभ्यां न क्षितिं स्पृष्ट्वा[९०] शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ॥ ७ ॥
क्रियते यो नमस्कारो मध्यमः कायिकः स्मृतः ।
पुटीकृत्य करौ शीर्षे दीयते यद् यथा तथा ।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षितिं सोऽधम उच्यते ॥ ८ ॥
या स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्कृतिः ।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमस्तु सः ॥ ९ ॥
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्वा क्रियते नतिः ।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद् वाचनिकः सदा ॥ १० ॥
यत् तु मानुष्यवाक्येन नमनं क्रियते सदा ।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु पुत्रकौ ॥ ११ ॥
इष्टमध्यानिष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविधं पुनः ।
नमनं मानसं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥ १२ ॥

---

८८. दक्षिणा । ८९. सर्वान् कामान् समासाद्य ।
❋ मुद्रितपुस्तके अधिकः पाठः । ९० जानुभ्यां क्षितिमस्पृष्ट्वा ।

त्रिविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः स्मृतः।
कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति नित्यशः ॥ १३ ॥
[91]अयमेव नमस्कारो दण्डादिप्रतिनामभिः[92]।
प्रणाम इति विज्ञेयः स पूर्वं प्रतिपादितः ॥ १४ ॥
नैवेद्येन भवेत् सर्वं[93] नैवेद्येनामृतं भवेत्।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ १५ ॥
सर्वयज्ञमयं नित्यं नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम्।
ज्ञानदं कामदं[94] पुण्यं सर्वभोग्यमयं तथा ॥ १६ ॥
मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दातुमिच्छति।
यो नरो भक्तियुक्तः सन् स दीर्घायुः सुखी भवेत् ॥ १७ ॥
महामायां सदा[95] देवीमर्चयिष्यामि भक्तितः[96]।
नानाविधैस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्तु यः।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य मम लोके महीयते ॥ १८ ॥
मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम्।
स दक्षिणे यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥ १९ ॥
देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्ततः ॥ २० ॥
नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महामतिः।
सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं नतिरेव प्रशस्यते ॥ २१ ॥
नत्या विजयते लोकान्नत्यायुरपि वर्धते।
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजाः ॥ २२ ॥
नमस्कुरु महादेव्यै प्रदक्षिणमथो कुरु।
नैवेद्यं देहि नितरामिति यो भाषते मुहुः।
सोऽपि कामानवाप्येह मम लोके प्रमोदते ॥ २३ ॥
विदधाति च नैवेद्यं महादेव्यै सुभक्तिमान्।
दातुं प्रति नरः सोऽपि देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥
इति वां कथिताः सम्यगुपचारास्तु षोडश।
किमन्यद्रुचितं वां तत् कथयिष्यामि पृच्छतोः ॥ २५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे षोडशोपचारनिर्णये
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

---

९१. स्वयमेव। ९२. ""प्रतिपत्तिभिः। ९३. स्वर्गं।
९४. मानदं। ९५. महा"" । ९६. शक्तितः।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं शृणुतं च[९७] वदामि वाम्।
सांगं तद् सरहस्यं च शृणु वेताल भैरव॥ १॥
एकदा गरुडेनाशु विष्णुर्विष्णुपरायणौ[९८]।
गच्छन् देवीं तु कामाख्यां नीलस्थामाससाद ह॥ २॥
आसाद्य तं गिरिश्रेष्ठमवज्ञाय स केशवः।
गच्छ गच्छेति गरुडं चोदयामास तं गतौ॥ ३॥
तं च देवी महामाया कामाख्या जगतां प्रसूः।
गरुडेन समं कृष्णं स्तम्भयामास रोदसी॥ ४॥
स तु गन्तुं महामाया-मायया परिमोहितः[९९]।
न गन्तुमथ वागन्तुमशकद् बद्धवत् स्थितः॥ ५॥
अशक्तं गरुडं दृष्ट्वा गमने गरुडध्वजः।
क्रुद्धस्तं पर्वतश्रेष्ठमुत्सारयितुमुद्यतः॥ ६॥
ततः कराभ्यां तं शैलं क्रोडीकृत्य जगत्पतिः।
अभूत् क्षमश्चालयितुं मनागपि न केशवः॥ ७॥
तं चिचालयिषुं शैलं कामाख्या क्रोधतत्परा।
सिद्धसूत्रेण वैकुण्ठं बबन्ध गरुडेन हि॥ ८॥
तं बद्ध्वा सिद्धसूत्रेण ग्राहाग्रे लवणार्णवे।
चिक्षेप हेलया देवी संक्षेपात् प्रापतत् तलम्॥ ९॥
तं सागरतलं प्राप्तं पुनरेव स्वमायया।
यन्त्रयित्वा समाक्रम्य जग्राहाब्धितल[१००]स्थितम्॥ १०॥
स प्रयत्नेन महता नोत्प्लुतिं कर्तुमिष्टवान्।
महायत्नं प्रकुर्वाणः पुनरुन्मज्जने[१] हरिः॥ ११॥
तस्यासारं प्रसारं च कामाख्या प्रतिषेधयेत्।
ज्ञानोद्गमनमप्यस्य सा देवी प्रतिषेधयेत्॥ १२॥
ततः प्रज्ञानरहितः प्रसारासारवर्जितः।
गरुडेन समं तोयतले शीर्णमभूच्चिरम्॥ १३॥

---

९७. कवचस्य। ९८. ···पदायने। ९९. मोहितः खगः।
१००. ···भवन···। ". ···सर्जने····।

मार्गमाणस्तु तं स्रष्टा सागरान्तरसंस्थितम् ।
हरिमासादयामास विशीर्णं प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥
तमासाद्य सताक्ष्र्यं तु स्रष्टा लोकपितामहः ।
हस्ताभ्यां त समादाय वोत्प्लावयितुमिष्टवान्[२] ॥ १५ ॥
तमुत्प्लावयितुं शक्तो नाभूल्लोकपितामहः ।
स्वय च देवीमायाभिर्बद्धः सन् विस्मयन् स्थितः ॥ १६ ॥
मार्गमाणास्तु ते सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
चिरेण चाथ कालेन समासे दुर्जलान्तरे ॥ १७ ॥
तावासाद्य ततः सर्वे सुराः शक्रपुरोगमाः ।
समुत्प्लावयितुं यत्नं चक्रुर्नाशेक्नुवंश्च ते ॥ १८ ॥
ततः सर्वेऽपि ते देवा मोहिता मायया भृशम् ।
विधिविष्णू स्थितौ यद्वत् तद्वत् ते तत्र संस्थिताः ॥ १९ ॥
मार्गमाणोऽथ तान् सर्वान् देवान् देवगुरुस्तदा ।
बृहस्पतिर्महादेवं हिमवत्-सानुसंस्थितम् ॥ २० ॥
समासाद्य स देवानां वृत्तान्तं देवपूजितः ।
पृष्टवान् सादरं सम्यक् स्तुत्वा नत्वा यथाविधि ॥ २१ ॥

गुरुरुवाच—

महादेव जगद्धाम जगत्प्रशमकारण ।
शक्रादीन्मार्गमाणोऽहं देवांस्त्वां समुपस्थितः ॥ २२ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च न ब्रह्मसदने नापि नाकतः ।
संस्थितौ नापि कुत्रापि ज्ञायेते ह्यन्यदा यथा ॥ २३ ॥
तमिमं संशयं देव च्छिन्धि त्वं देवदेवताः[३] ।
कुत्र तिष्ठन्ति कस्माद् वा तथा भूत्वा ह्यवस्थिताः ॥ २४ ॥
अनुयास्यामि तान् सर्वानुपदेशात् तव प्रभो ।
तेषां स्थितिं त्वं कथय यदि ते वर्तते दया ॥ २५ ॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तद्दुद्देशमहं पुनः ।
तत् सर्वमुक्तवान् कर्म यथा बद्धाश्च मायया ॥ २६ ॥
अवज्ञाता महादेवी महामाया जगन्मयी ।
तेन तन्मायया बद्धो विष्णुस्तिष्ठति सागरे ॥ २७ ॥
तं मार्गमाणास्त्रिदशा ब्रह्माद्या मायया पुनः ।
निबद्धा निकटे तस्य स्थिताश्चात्यर्थसंयताः ॥ २८ ॥

---

२. वोत्तोलयितु···· । ३. वत्समो नास्ति देवता ।

तांस्तु[४] मार्गयितुं यासि यदिह त्वं मया विना ।
बद्धस्तथैव त्वं चापि नायातुं भविता प्रभुः ॥ २९ ॥
तस्माद् गच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते गरुडध्वजः ।
ब्रह्मेन्द्राद्यास्तथा गुप्तान्मोचयिष्ये च तान् क्रमात् ॥ ३० ॥
इत्युक्त्वा गुरुणा सार्धं सम्भूय स वृषध्वजः ।
देवौघा यत्र तिष्ठन्ति गतस्तत्र महेश्वरः ॥ ३१ ॥
तत्र गत्वा महादेवो विष्णुमाभाष्य वेधसम् ।
सर्वांस्तान् परिपप्रच्छ किमर्थं संस्थितास्त्विह ॥ ३२ ॥
गतागतविहीनाश्च जडवज्ज्ञानवर्जिताः ।
किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ॥ ३३ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य केशवः ।
शनैर्भर्गमुवाचेदं ब्रह्मादीनां पुरस्तदा ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।
वियता गरुडस्थेन मया नीलो महागिरिः ॥ ३५ ॥
धृतः करेण चोद्धर्तुं गरुडागतिवारणे[५] ।
तत्र मां सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ॥ ३६ ॥
योगनिद्रा स्वयं धृत्वा चिक्षेपाम्बुधिपुष्करे[६] ।
ततोऽहं तलमासाद्य तोयराशेः सवाहनः ॥ ३७ ॥
पतितो निवसाम्यत्र चिरमन्धकसूदन ।
निवसामि चिरं चाहमत्र सागरतोयके ॥ ३८ ॥
नाद्यापि सा महामाया नुदते[७] मां महेश्वर ।
मदर्थमागता देवा ब्रह्मेन्द्राद्याः समन्ततः ॥ ३९ ॥
तेऽपि बद्धा महादेव्या मायापाशेन वै हठात् ।
तस्मान्नो ह्यनुगृह्णीष्व नयेदानीं शिवालये[८] ॥ ४० ॥
तां च प्रसादयिष्यामः सम्यग्बन्धविहिंसया ।
हरेस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यहं च करुणायुतः ॥ ४१ ॥
उवाच परमप्रीत्या विधिविष्णू प्रति स्वयम् ।
ईश्वर्याः कामपूर्वायाः कवचं सुमनोहरम् ॥ ४२ ॥

---

४. रुवं । ५. बाधने । ६. ...गह्वरं । ७. दयते ।
८. ...लयम् ।

बद्ध्वा शरीरे चाप्लाव्य पश्चाद् गच्छन्तु तां प्रति ।
अहं निबद्धकवचस्तेनाहं मायया त्विह ॥ ४३ ॥
न बद्धो मम संसर्गात् तथा चेह बृहस्पतिः ।
तस्माद् यूयं तु कवचं शृणुध्वं[9] वचनान्मम ॥ ४४ ॥
येन सौख्यात् समुत्प्लुत्य द्रक्ष्यामः परमेश्वरीम् ।
ॐ कामाख्याकवचस्य ऋषिर्बृहस्पतिः स्मृतः ॥ ४५ ॥
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुप्छन्द इष्यते[10] ।
विनियोगः सर्वसिद्धौ तं च शृण्वन्तु देवताः ॥ ४६ ॥
शिरः कामेश्वरी देवी कामाख्या चक्षुषी मम ।
सारदा कर्णयुगलं त्रिपुरावदनं तथा ॥ ४७ ॥
कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ।
कामाख्या जठरे पातु शारदा मां तु नाभितः ॥ ४८ ॥
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ।
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ॥ ४९ ॥
जानुनोः शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयोः ।
महामाया पादयुगे नित्यं रक्षतु कामदा ॥ ५० ॥
केशे कोटेश्वरी पातु नासायां पातु दीर्घिका ।
भैरवी दन्तसंघाते मातंग्यवतु चाङ्गयोः ॥ ५१ ॥
बाह्वोर्मां ललिता पातु पाण्योस्तु वनवासिनी ।
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलिषु श्रीकामा नखकोटिषु[11] ॥ ५२ ॥
रोमकूपेषु सर्वेषु गुप्तकामा सदावतु ।
पादाङ्गुलिपार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी ॥ ५३ ॥
जिह्वायां पातु मां सेतुः कः कण्ठाभ्यन्तरेऽवतु ।
लः पातु चान्तरे वक्ष इः पातु जठरान्तरे ॥ ५४ ॥
सामीन्दुः पातु मां वस्ताविन्दुबिन्द्वन्तरेऽवतु[12] ।
तकारस्त्वचि मां पातु रकारोऽस्थिषु सर्वदा ॥ ५५ ॥
लकारः सर्वनाडीषु ईकारः सर्वसन्धिषु ।
चन्द्रः स्नायुषु मां पातु विन्दुमज्जासु सन्ततम् ॥ ५६ ॥
पूर्वस्यां दिशि चाग्नेय्यां दक्षिणे नैर्ऋते तथा ।
वारुणे चैव वायव्यां कौवेरे हरमन्दिरे ॥ ५७ ॥

---

९. शृणन्तु । १०. उच्यते । ११. कोटिकां ।
१२. वस्तौ गुह्यं बिन्द्वन्तरेऽवतु ।

अकाराद्यास्तु वैष्णव्या अष्टौ वर्णास्तु मन्त्रगाः।
पान्तु तिष्ठन्तु सततं समुद्भवविवृद्धये ॥ ५८ ॥
ऊर्ध्वाधः पातु सततं मां तु सेतुद्वयं सदा।
नवाक्षराणि मन्त्रेषु शारदामन्त्रगोचरे ।५९॥
नवस्वरं तु मां नित्यं नासादिषु समन्ततः।
वातपित्तकफेभ्यस्तु त्रिपुरायास्तु त्र्यक्षरम् । ६० ॥
नित्यं रक्षतु भूतेभ्यः पिशाचेभ्यस्तथैव च।
तत्सेतू[13] सततंपातां क्रव्याद्भ्यो मान्निवारकौ ॥ ६१ ॥
नमः कामेश्वरीं देवीं महामायां जगन्मयीम्।
या भूत्वा प्रकृतिर्नित्यं तनोति जगदायताम् ॥ ६२ ॥

कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरां सिद्धसूत्रैकहस्तां-
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुतां कुङ्कुमापीतवर्णाम् ।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठामतिशयविनयां[15] ब्रह्मशक्रादिवन्द्या-
मग्नौ बिन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषयां नौमि सिद्ध्यै रतिस्थाम्[16]॥६३॥

मध्ये मध्यस्य भागे सततविनमिता भावहावावलीया[17]-
लीला लोकस्य कोष्ठे सकलगुणयुता व्यक्तरूपैकनम्रा।
विद्याविद्यैकशान्ता शमनशमकरी क्षेमकर्त्री वरास्या
नित्यं पातात् पवित्रप्रणववरकरा[18] कामपूर्वेश्वरी नः ॥ ६४ ॥
इति हरकवचं[19]तनुस्थितं शमयति वै शमनं तथा यदि[20]।
इह गृहाण यतस्व विमोक्षणे सहित एष विधिः सह चामरैः॥ ६५ ॥
इत्ययं कवचं यस्तु कामाख्यायाः पठेद् बुधः।
सकृत् तं तु महादेवी त्वनुव्रजति नित्यदा ॥ ६६ ॥
नाधिव्याधिभयं तस्य न क्रव्याद्भ्यो भयं तथा।
नाग्नितो नापि[21] तोयेभ्यो न रिपुभ्यो न राजतः॥ ६७ ॥
दीर्घायुर्बहुभोगी च पुत्रपौत्रसमन्वितः।
आवर्तयञ्छतं देवीं मन्दिरे मोदते परे ॥ ६८ ॥
यथा तथा भवेद् बद्धः संग्रामेऽन्यत्र वा बुधः।
तत् क्षणादेव मुक्तः स्यात् स्मरणात् कवचस्य तु ॥ ६९ ॥

---

१३. ओष्ठे तु सततं पातु । १४. मान्निराकरौ । १५. ...विशदां ।
१६. सिद्धिरभीष्टाम् । १७. सततपरिमिता मारहारावलीया ।
१८. ...प्रबलयुवकरा । १९. हरेः कवचं । २०. तथायति ।
२१. नाति ।

ईश्वर उवाच--

इति श्रुत्वा तु कवचं हरिर्ब्रह्मा सुरास्तथा।
शक्रोऽपि कवचं देहे न्यासं चक्रुः पृथक् पृथक् ॥ ७० ॥
ते तु विन्यस्तकवचा महामायाप्रभावतः।
उत्प्लुप्य सागरस्याम्भ[22] आसेदुः क्षितिमञ्जसा ॥ ७१ ॥
आसाद्य पृथिवीं सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः।
नीलकूटं समासाद्य[23] कामाख्यां द्रष्टुमागताः ॥ ७२ ॥
दृष्ट्वा कामेश्वरीं देवीं केशवस्तां[24] जगन्मयीम्।
इदमाह स्वयं ज्ञात्वा प्रभावं तत् प्रतिष्ठितम् ॥ ७३ ॥
त्वमेव प्रकृतिर्देवी त्वमेव पृथिवी जलम्।
त्वमेव जगतां माता त्वमेव च जगन्मयी ॥ ७४ ॥
त्वं कर्त्री सर्वजगतां विद्या त्वं मुक्तिदायिनी।
परापरात्मिका देवी स्थूलसूक्ष्मात्मिका तथा ॥ ७५ ॥
प्रसीद त्वं महादेवि प्रसन्नायां शुभे त्वयि।
देवाः सर्वे प्रसीदन्ति चतुर्वर्गप्रदेऽनघे ॥ ७६ ॥
प्रत्यक्षरूपा कामाख्या केशवस्य महात्मनः।
प्रत्यक्षरूपा कामाख्या हरिमाभाष्य चाब्रवीत् ॥ ७७ ॥

देव्युवाच—

केशव ब्रह्मणा सार्धं सर्वैर्देवैस्तथा गणैः।
मद्योनिसलिलेष्वद्य स्नानं पानं कुरु द्रुतम् ॥ ७८ ॥
ततस्त्वं निरहङ्कारः[25] परवीर्यसमन्वितः।
आरुह्य गरुडं याहि[26] त्रिदिवं सह वेधसा ॥ ॥ ७९ ॥
एवमुक्तो महादेव्या केशवः सह वेधसा।
योनिमण्डलतोयेषु स्नानं पानं चकार ह ॥ ८० ॥
कृतप्लावास्ततो देवाः कृतस्नानश्च केशवः।
गता देव्याश्च सम्मत्या त्रिदिवं प्रति हर्षिताः ॥ ८१ ॥
गच्छन्तस्ते देवगणाः सहिताः केशवेन च।
ब्रह्मणा च तदाद्राक्षुः कामाख्यां तां वियद्गताम्[27]॥ ८२ ॥
नीलकूटसहस्राणि योनिभिः सह तद्गतैः।
ऊर्ध्वाधोभागयोगेन ददृशुः संस्थितानि च ॥ ८३ ॥

---

२२ '' स्यान्तः। २३. ''''मयासाद्य। २४. शिखरस्थां।
२५. वीताहंकारः। २६. याता। २७. '''गताः।

तानि प्रत्येकतो देवा आरुह्यारुह्य तत्क्षणात् ।
पपुः[२८] सस्नुः पूर्ववत् ते प्रीतिमापुस्तथातुलाम् ॥ ८४ ॥
निरामयास्तथा जग्मुर्विस्मयाक्लिष्टचेतनाः[२९] ।
स्तुवन्तः प्रस्तुवन्तश्च कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥ ८५ ॥

ततो देवगुरुं[३०]नत्वा मां स्तुत्वा च मया[३१]पुनः ।
विसृष्टास्त्रिदिवं[३२] याता[३३] हर्षोत्फुल्लविलोचनाः[३४] ॥ ८६ ॥

माहात्म्यमीदृशं देव्याः कामाख्यायास्तु भैरव ।
कवचं चेदृशं प्रोक्त तत्त्वमासाद्य पुत्रक ॥ ८७ ॥
यथेष्टविनियोगेन तामासाद्य सुखी भव ।
कामाख्यायाश्च माहात्म्यं किमन्यत् कथयामि ते ॥ ८८ ॥

यस्या योनिशिलायोगाल्लोहाद्या यान्ति स्वर्णताम् ।
यद्योनिमण्डले स्नात्वा सकृत् पीत्वा च मानवः ।
नेहोत्पत्तिमवाप्नोति परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ८९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्याकवचमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

---

२८. पुनः । २९. ···विष्टमानसाः । ३०. ···गुरुर्नत्वा ।
३१. मयात् । ३२. विसृष्टस्त्रिदिवं । ३३. यातो ।
३४. ···लोचनः ।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

मातृकान्यासमधुना श्रृणु वेताल भैरव।
येन देवत्वमायाति नरोऽपि विहितेन वै ॥ १ ॥
वाग् ब्रह्माणीमुखा देव्यो मातृकाः परिकीर्तिताः।
तासा मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा ॥ २ ॥
चन्द्रबिन्दुप्रयुक्तानि सर्वकाम[३५]-प्रदानि च।
ऋषिस्तु मातृमन्त्राणां[३६] ब्रह्मैव परिकीर्तितः ॥ ३ ॥
प्रोक्तश्छन्दश्च गायत्री देवता च सरस्वती।
शरीरशुद्धिमुख्ये तु[३७] सर्वकामार्थसाधने ॥ ४ ॥
विनियोगः समुद्दिष्टो मन्त्राणां न्यूनपूरणे[३८]।
अकारेण सम कादिर्वर्गो यः प्रथमः स्मृतः ॥ ५ ॥
तैश्चन्द्रबिन्दुसंयुक्तैस्तत्रस्थैरक्षरैर्वहिः[३९]।
आकारं च तथोच्चार्य अङ्गुष्ठाभ्यां नमस्तथा[४०] ॥ ६ ॥
प्रथमं मातृकामन्त्रमङ्गुष्ठद्वयतो न्यसेत्।
परे वर्गाः स्वरैः सार्धं ये वान्ये न्यासकर्मणि ॥ ७ ॥
ते सर्वे चन्द्रबिन्दुभ्यां युक्ताः कार्यास्तु सर्वतः।
ह्रस्वेकारश्च वर्गेण दीर्घेकारान्तकेन[४१] तु ॥ ८ ॥
तर्जन्योर्विन्यसेत् सम्यक् स्वाहान्तेन तु पूर्ववत्।
ह्रस्वोकारष्टवर्गेण दीर्घोरान्तकेन[४२] तु ॥ ९ ॥
मध्यमायुगले सम्यग्वषडन्तेन विन्यसेत्।
एकारादिटवर्गन्तु ऐकारान्तेन चैव हुम्[४३] ॥ १० ॥
न्यसेदनामिकायुग्मे नियतं तत्र भैरव।
ओकारादिपवर्गं तु औकारान्तमशेषतः ॥ ११ ॥
वौषडन्तं कनिष्ठायां विन्यसेत् कार्यसिद्धये।
अंकारादियकारादिवर्गेण क्षान्तकेन तु ॥ १२ ॥

---

३५. ···सिद्धि···। ३६. एषामृषिस्तु मन्त्राणां।
३७. ···प्रमुखसर्वार्थ···। ३८. ···मूलशोधने। ३९. ···विह।
४०. ···सदा। ४१. ···गेन। ४२. ···गेन। ४३. हुं फट्।

अइत्यन्तेन [४४]वलयोर्विन्यसेत् पाणिपृष्ठयोः ।
वषट्कारं शेषभागे अस्त्रन्यासे नियोजयेत् ॥ १३ ॥
हृदयादिषडङ्गेषु पूर्ववत् क्रमतो न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठाद्युक्तवर्गैस्तु क्रमात् षड्भिस्तथाविधैः[४५] ॥ १४ ॥
पुनस्तथा पादजानुसक्थिगुह्येषु पार्श्वयोः[४६] ।
वस्तौ च विन्यसेन्मन्त्रान् क्रमात् पूर्ववदक्षरैः ॥ १५ ॥
बाह्वोः पाण्योस्तथा कट्यां नाभौ च जठरे तथा ।
स्तनयोरपि विन्यासं तथा षड्भिः समाचरेत् ॥ १६ ॥
वक्त्रे च चिबुके गण्डे कर्णयोश्च ललाटके ।
अंसे कक्षे च षड्वर्गैः पूर्ववन्न्यासमाचरेत ॥ १७ ॥
रोमकूपे ब्रह्मरन्ध्रे गुदे जङ्घायुगे तथा ।
नखेषु पादपार्ष्ण्योश्च तथा पूर्ववदाचरेत् ॥ १८ ॥
एवं तु मातृकान्यासं यः कुर्यान्नरसत्तमः ।
स सर्वयज्ञपूजासु पूतो योग्यस्तु जायते ॥ १९ ॥
नातः परतरं मन्त्रं विद्यते क्वचिदेव हि ।
यत्सर्वकामदं पुण्यं चतुर्वर्गप्रदं परम्[४७] ॥ २० ॥
वाग्देवतां हृदि ध्यात्वा मूर्तिसर्वाक्षराणि च ।
त्रिधा च मातृकामन्त्रैः सक्रमैश्च पिबेज्जलम् ॥ २१ ॥
स वाग्मी पण्डितो धीमान् जायते च वरः कविः ।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तान् स्वरान् पूर्वं पठेद् बुधः ॥ २२ ॥
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि केवलानि पठेत् ततः ।
अकारादिक्षकारान्तान्येवं श्वासैश्च पूरकैः ॥ २३ ॥
जलं करतले गृह्य पठित्वाक्षरसंख्यकम् ।
अभिमन्त्र्य तु तत् तोयं प्रथमं पूरकैः पिबेत् ॥ २४ ॥
कुम्भकेन[४८] द्वितीयं तु तृतीयन्त्वथ रेचकैः ।
एवं सकृत् त्रिवारं तु पीत्वा तोयं विचक्षणः ॥ २५ ॥
दृढाङ्गः पण्डितो भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
त्रिसन्ध्यमथ पीत्वैव मातृकामन्त्रमन्त्रितम्[४९] ॥ २६ ॥
तोयं कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामांस्तथैव च ।
सततं कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥ २७ ॥

---

४४. यो विन्यसेत् । ४५. बुधैः । ४६. ''' पादयोः । ४७. ''''फलप्रदम् ।
४८. स्तम्भकेन । ४९. मातृकामन्त्रितं पुनः ।

तोयपानं महाभाग पूरकुम्भकरेचकैः ।
स सर्वकामान् संप्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥ २८ ॥
भूत्वा महाकविर्लोके बलवान् सत्यविक्रमः ।
सर्वत्र वल्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥
राजानमथवा राजपुत्रं भार्यामथापि वा ।
वशीकरोति नचिरान्मातृकामन्त्रपानतः[५०] ॥ ३० ॥
न्यासक्रमे क्रमः प्रोक्तो वर्गक्रम इहैव तु ।
अक्षराणां क्रमेणाथ तोयपानं समाचरेत् ॥ ३१ ॥
ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ।
ते मन्त्रा मातृकामन्त्रै[५१]र्नित्यमेव प्रतिष्ठिताः ॥ ३२ ॥
सर्वमन्त्रमयश्चायं सर्ववेदमयस्तथा ।
चतुर्वर्गप्रदश्चायं मातृकामन्त्र उच्यते ॥ ३३ ॥
इति ते कथितं पुत्र मातृकान्यासमद्भुतम् ।
विभागमथ मुद्राणां शृणु वेताल भैरव ॥ ३४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे मातृकान्यासवर्णने
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

---

५०. ''''नाममन्त्रतः । ५१. '''मन्त्रे''' ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

या योनिमुद्रा कथिता मुद्राविभजने पुरा।
अष्टधा योनिमुद्रा स्यात् प्रथमा सा तु कीर्तिता॥ १॥
द्वितीया खेचरी मुद्रा कामाख्यायास्तु भैरव।
तां विद्धि चाद्भुतं गुह्यं येन तुष्यति चण्डिका॥ २॥
अनामिकां दक्षिणस्य तर्जन्यां वामतो न्यसेत्।
वामानामां दक्षिणस्य तर्जन्यां विनिवेशयेत्॥ ३॥
ते द्वे तथा तर्जनीभ्यां वेष्टयेदग्रतोऽग्रतः।
मध्ये द्वयं तु विन्यस्य चोर्ध्वभागे त्वनामयोः॥ ४॥
तदग्राग्रेण संयोगात् तथैव च कनिष्ठके।
अग्रेणैव च संयुक्ते तन्मूलेऽङ्गुष्ठके न्यसेत्॥ ५॥
इयं ते खेचरी योनिर्योनिमुद्रा तु[52] कामदा।
एषैवाधः कनिष्ठे द्वे नियोज्य यदि युज्यते॥ ६॥
ग्रह्ययोनिस्तु सा ख्याता कामेश्वर्यास्तु तुष्टिदा।
संवेष्ट्य पूर्ववत् पाण्योर्द्वे कनिष्ठे त्वनामिके॥ ७॥
अधोभागे नियोज्याथ मध्यमे चोर्ध्वतस्तथा।
तासां परस्परश्चाग्रैरन्योऽन्यं योजयेद् यदि[53]॥ ८॥
मध्यां मध्ये तथाङ्गुष्ठे निःक्षिप्याग्रे नियोजयेत्।
योनिस्त्रिशाङ्करी प्रोक्ता त्रिपुरा तुष्टिदा सदा॥ ९॥
मध्ये द्वे च तथा वेष्ट्या पूर्ववच्चाप्यनामिका।
कनिष्ठाभ्यां पुरो न्यस्य अङ्गुष्ठौ मूलयोस्तयोः॥ १०॥
मुद्रेयं शारदी प्रोक्ता शारदायास्तु तुष्टिदा।
मूलयोनिस्तु कथिता वैष्णवीतन्त्रगोचरे॥ ११॥
तर्जन्यनामिकं मध्ये कनिष्ठेऽपि क्रमादपि।
करयोर्योजयित्वैव कनिष्ठामूलदेशतः॥ १२॥
अङ्गुष्ठाग्रं तु निःक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्तिता।
अङ्गुष्ठौ चाथ संवेष्ट्य संयुज्याथ कराङ्गुलीः॥ १३॥

---

५२. सुकामदा। ५३. ···परं परं चाग्रे अन्योऽन्यस्य च योजयेत्।

अग्रभागैर्मध्यशून्यं तत्र कुर्यात् करद्वयम् ।
इयं तु योगिनीयोनिर्योगिनीनां प्रियंकरी ॥ १४ ॥
एता अष्टौ समाख्याता योन्यः कामेश्वरीप्रियाः ।
मूर्तिभेदेन चान्येषां देवानामपि तुष्टिदाः ॥ १५ ॥
यात्रायां युद्धविषये वाग्वादे कलहे तथा ।
अष्टौ योन्यः स्मरेद् यस्तु जयस्तस्य सनातनः ॥ १६ ॥
विसर्जने पूजने च स्मरणे कर्मभेदतः ।
एता योन्यः समाख्याताश्चण्डिकापूजनेषु च ॥ १७ ॥
एतास्तु कथिता योन्यः क्रमात् क्रमविसर्जने ।
रहस्यं वामदाक्षिण्यं मन्त्रशुद्धिं शृणुष्व मे ॥ १८ ॥
मन्त्रेण क्रियते यत् तु शारीरं मन्त्रमुत्तमम् ।
तद्रहस्यमिति प्राहुर्मन्त्रेषु मन्त्रकोविदाः ॥ १९ ॥
कामाख्यायास्तु षट्कोणं मण्डलस्य दलान्तरे ।
त्रिधा लिखेन्मूलमन्त्रमूर्ध्वं त्रिष्वपि सन्धिषु ॥ २० ॥
अधस्त्रिसन्धिषु पुनर्विधिं शक्रं हरं तथा ।
सहितं मदनेनैव लिखेद् भूर्जत्वचि त्रिधा ॥ २१ ॥
तन्तुमादाय साहस्रं[५४] दक्षिणेन करेण वै ।
मालामपि समादाय संजपेदुत्तरामुखः ॥ २२ ॥
तद्भुजे दक्षिणे धार्यं बाहौ वा[५५] साधकोत्तमैः ।
जपान्ते लिखितं यन्त्रं तेन सर्वजयी भवेत् ॥ २३ ॥
दीर्घायुः सर्ववशकृद्धनधान्यसमृद्धिमान् ।
मृतो देवीगृहे याति यन्त्रयन्त्रितबुद्धिमान् ॥ २४ ॥
षट्कोणानन्तरकृतं वेष्टिताष्टदलेष्वथ ।
लिखित्वा भूर्जपत्रेषु विलीनैर्यावकोदकैः ॥ २५ ॥
उत्तरादिक्रमेणैव वैष्णवीतन्त्रसङ्गतान् ।
अष्टो वर्णान्मध्यभागे पूर्ववत् कामराजकम् ॥ २६ ॥
त्रीन् वर्णान् नेत्रबीजस्य त्रिकोणस्याग्रतो लिखेत् ।
एवं त्रिधाकृतं यन्त्रं[५६] कृत्वा वामकरे स्थितः ॥ २७ ॥
जपेत् त्रीणि सहस्राणि मालामादाय दक्षिणे ।
जपान्ते वैष्णवीरूपध्यानं कुर्यादतन्द्रितः ॥ २८ ॥

---

५४. तामादाय सहस्रं तु । ५५. तत् कृत्वा दक्षिणे बाहौ वामे वा ।
५६. मन्त्रं ।

प्राणायामसहस्रं तु ततस्तं लिखितोत्तमम् ।
ग्रीवायां धारयेद् यन्त्रं तेन सर्वजयी भवेत् ॥ २९ ॥
राजपुत्रो भवेद्राजा तदन्यः सचिवो भवेत् ।
द्विजराजो भवेद् विद्वान् कविर्वाग्मी च वा भवेत् ॥ ३० ॥
राक्षसेभ्यः पिशाचेभ्यो भूतेभ्यश्चापि चान्यतः ।
साधु संविद्यते तस्य न कदाचित् पराजयः ॥ ३१ ॥
दीर्घायुर्बलवान् प्राज्ञो मृते मोक्षमवाप्नुयात् ।
सम्पूर्णं मण्डलं कृत्वा अष्टपत्रसमन्वितम् ॥ ३२ ॥
भूर्जत्वचि श्रीफलस्य निर्यासैस्तस्य मध्यतः ।
षट्कोणं विलिखेत् तस्य प्रागग्रेष्वथ त्रिष्वपि ॥ ३३ ॥
विलिखेत् त्रिपुरावर्णानधो बीजं तु नेत्रकम् ।
दलेष्वष्टासु तु पुनर्वैष्णवीतन्त्रसङ्गतान् ॥ ३४ ॥
अष्टौ वर्णांस्तु विलिखेत् तथा द्वार्षु चतुर्ष्वपि ।
षट्कोणेषूत्तराकोणक्रमेणैकाग्रमानसः ॥ ३५ ॥
तद्धृत्वा दक्षिणकरे वैष्णवीतन्त्रमन्त्रकम् ।
जपेत् त्रिभिर्दिनैरेवायुतं संयतमानसः ॥ ३६ ॥
प्राणायामसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तु हर्षितः ।
सन्ध्याकाले नवम्यां तु शीर्षेण धारयेद् बुधः ॥ ३७ ॥
शतायुः सर्वदमनो[५७] मतिमान् पण्डितोत्तमः ।
बलवीर्यधनैश्वर्ययुक्तः पार्थिव एव वा ॥ ३८ ॥
प्रत्यक्षतो महामायां कामाख्यां त्रिपुरामपि ।
नित्यं पश्यति मेधावी महोच्छ्वासां च शारदाम् ॥ ३९ ॥
सिंहव्याघ्रौ[५८] भुजङ्गो वा येऽन्ये वा तस्य हिंसकाः ।
सर्वे तस्य तनुं प्राप्य विषीदन्ति न संशयः ॥ ४० ॥
जयहेतुरतोऽन्यस्मात् संग्रामे शास्त्रवादतः ।
न विद्यते त्रिभुवने तस्मात् कुर्यात् तु यन्त्रकम् ॥ ४१ ॥
अन्ते देवीगृहं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
महामाया शारदाख्या कामाख्या त्रिपुरा तथा ॥ ४२ ॥
महोत्साहा तथैतेषां मन्त्राणां यो गणो भवेत् ।
मण्डलं चाष्टदलकं तन्मध्ये विलिखेत् पुनः ॥ ४३ ॥

---

५७. सर्वदर्शनो । ५८. विषं ग्राह्यो ।

लिखित्वा पूर्ववत् पूर्वं प्रोक्तं मन्त्रगणं समम् ।
अन्यद्वयं द्वारदेशे कोष्ठेष्वक्षरतो लिखेत् ॥ ४४ ॥
शुक्लकौशेयवस्त्रेषु[५९] रसैर्वह्निशिखस्य तु ।
उत्तरीयं तु तद्वस्त्रं कृत्वा जप्यं समाचरेत् ॥ ४५ ॥
कृतोपवासः शुद्धश्च मातृकान्यासपूर्वकम् ।
पञ्चानामपि वर्गाणां सहस्राणि तु पंच वै ॥ ४६ ॥
दिवसैः पञ्चभिर्जप्त्वा तदन्ते च समाचरेत् ।
प्राणायामसहस्राणि पंच वै पंचभिर्दिनैः ॥ ४७ ॥
अन्ते तु कवचन्यासं कात्यायन्याः समाचरेत् ।
ततस्तु मातृकामन्त्रैः श्वासरोधनपूर्वकम् ॥ ४८ ॥
त्रिः पिबेत् कपिलाक्षीरं जागृवांश्च तदा निशि ।
एवं यः कुरुते यन्त्रं शरीरे शुक्लवाससा ॥ ४९ ॥
सोऽत्र सिद्धिमवाप्नोति देवीलोकं च गच्छति ।
य उत्तरीयं बिभृयाद् वस्त्रं मन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ ५० ॥
नित्यमेव महाभाग प्रभावं तस्य वै शृणु ।
न तस्य देहे शस्त्राणि प्रवेक्ष्यन्ति कदाचन ॥ ५१ ॥
नाग्निर्दहति तत्कायं नापः संक्लेदयन्ति च ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताद्या ये तु हिंसकाः ॥ ५२ ॥
ते तं दृष्ट्वा महाभागं भुवं गच्छन्ति वै भिया ।
गच्छेदवारितः सोऽपि सर्वत्र साधकोत्तमः ॥ ५३ ॥
वशीकरोति देवांश्च नृपानन्यांश्च योषितः ।
उत्सहेद् यदि मेधावी वाग्मी राजा च वै भवेत् ॥ ५४ ॥
चिरजीवी महाभागो धनधान्यसमृद्धिमान् ।
कविः प्रज्ञासमायुक्तः सोऽभेद्यो जायतेऽरिभिः ॥ ५५ ॥
यस्मिन् पुरे स निवसेद् वज्रपातो न तत्र वै ।
रसः शरीरं शस्त्राणि दृढहस्तोज्झितान्यपि ॥ ५६ ॥
एतं न घ्नन्ति सततं जयः सर्वत्र भैरव ।
अपराध्यन्ति सततं तस्य सर्वत्र भैरव ॥ ५७ ॥
नाधयो व्याधयस्तस्य जायन्ते तु कदाचन ।
देवीपुत्रः स मतिमान् मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
न्त्रिता स्वामिना यन्त्रं या दधाति पतिव्रता ।

---

५९. ···वस्त्रेण ।

पुत्रैश्वर्यमवाप्नोति दीर्घायुः सा वधूर्भवेत् ॥ ५९ ॥
प्रत्येकमेकं संहत्यावर्धनासहितेन च ।
क्रमाद् विंशतिमन्त्राणि कथितानि मयेह वै ॥ ६० ॥
तानि प्रत्येकतो बुद्ध्वा यो न्यसेत् सर्वदा हृदि ।
लिखित्वा सर्वयन्त्राणि बिभृयाद्योऽथ वा गले ॥ ६१ ॥
देवेन्द्रो जायते सोऽत्र प्रभावेणेह भूतले ।
पूर्वोक्तानि समस्तानि फलान्याप्नोति तत्क्षणात् ।
पिहितः सर्वलोकांस्त्रीन्नित्यमेव प्रपश्यति ॥ ६२ ॥
एवं सार्धं यन्त्रवर्गैः समस्तै-
रष्टाभिर्यत् पूर्वमुक्तं सहस्रम् ।
शुक्ले वस्त्रे संलिखित्वा स्वदेहे
धृत्वा नित्यं प्राप्नुयाद् वै समस्तम् ॥ ६३ ॥
यः क्षत्रजातिर्हृदये स कुर्यात्
संग्रामकाले कवचेष्टधाम्नि ।
मन्त्राक्षराण्यादिकृतानि देव्या
अष्टौ बहिर्गात्रविशेषतश्च ॥ ६४ ॥
गले हरिं वक्षसि वै लिखेद् विधिं
स्तनद्वये पुत्रयुतं महेश्वरम् ।
बाह्वंगसन्ध्योश्च हरिं च वैष्णवीं
वाह्वोस्तु लक्ष्मीं च सरस्वतीं च ॥ ६५ ॥
एवं रणाष्टाङ्गमिदं विधाय
गात्रे सवर्मण्यनुचिन्तयेच्छिवाम्[६१] ।
लिखेल्ललाटे तिलकान्तरे नरः
समस्तमन्त्राक्षरयन्त्रमुत्तमम् ॥ ६६ ॥
ततो जपेदष्टधा तु पाणिं दत्त्वाष्टधामसु च ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रं तु ततो गच्छेद्रणाजिरम् ॥ ६७ ॥
स तु वीरो मम समः संग्रामेषु च जायते ।
तृणानीव पराणि जायन्तेऽग्नौ तथात्मनि[६२] ॥ ६८ ॥
विनिःसरन्ति रिपवो याचका धनिनो धनम्[६३] ।
सिंहाग्रयान्नरशार्दूलो वीर्यवान् बलवान् भवेत् ॥ ६९ ॥

---

६०. एभिः । ६१. गात्रेषु धर्मस्यानुचिन्तयन् शिवाम् ।
६२. तस्याग्नेरिव जायते । ६३. तदग्राद् हरिणा यथा ।

इदं रहस्यं कथितं कामाख्यायास्तु भैरव।
वैष्णव्यास्तन्त्रमुख्येषु त्रिपुरायास्ततः शृणु ॥ ७० ॥
तस्यास्तु सर्वमन्त्राणि त्रयोदशयुतानि वै।
विंशतिं तु सहस्राणां तन्त्राद्यं वाग्भवं स्मृतम् ॥ ७१ ॥
द्वितीयं कामराजाख्यं मोहनं च तृतीयकम्।
आम्रेडितं वाग्भवं तु चतुर्थं परिकीर्तितम् ॥ ७२ ॥
नेत्रबीजं द्वितीयं तु द्विरुक्तं वाग्भवं तथा।
आद्यं तत्पंचमं प्रोक्तं चतुर्भिरपि चाक्षरैः ॥ ७३ ॥
नेत्रबीजं द्वितीयं तु प्रथमं परिकीर्तितम्।
द्वितीयं कामबीजं तु तृतीयं वाग्भवं तथा ॥ ७४ ॥
एभिस्त्रिभिस्तु यन्मन्त्रं तत् षष्ठं परिकीर्तितम्।
नेत्रबीजं द्वितीयं तु वाग्भवं तेन सप्तमम् ॥ ७५ ॥
तदेवं वाग्भवाद्यं तु अष्टमं परिकीर्तितम्।
वाग्भवं कामबीजं तु नेत्राभ्यां नवमं स्मृतम् ॥ ७६ ॥
कामबीजं तथैवाद्यं दशमं चैव मोहनम्।
एकादशमिदं प्रोक्तं डामराद्यं तु वाग्भवम् ॥ ७७ ॥
द्वादशं कीर्तितं मन्त्रं शेषतस्त्रैपुरं महः।
तन्महस्त्रैपुरं मन्त्रं शृणुष्वैकमनास्त्विदम् ॥ ७८ ॥
प्रान्तादिस्तस्य चाप्यादिर्वह्निर्वाग्भवसन्धितः[६४]।
आद्यं त्रिपुरभैरव्या बीजमाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ ७९ ॥
उपान्तश्च तदादिश्च वह्निशेषस्वरस्तथा[६५]।
चतुर्थस्वरबिन्द्विन्दुयुताश्चैतत् द्वितीयकम् ॥ ८० ॥
उपान्तश्च तदादिश्च वह्निशेषस्वरस्तथा।
समाप्तिर्बिन्दुसहिता सहितस्तु तृतीयकः ॥ ८१ ॥
एतत् तत्त्वं विजानाति यो नरो भुवि भूमणिः।
सिद्धविद्याधरेभ्यस्तु सोऽधिकस्तत्समो भवेत्[६६] ॥ ८२ ॥
एते त्रयोदश प्रोक्ता मन्त्रा मन्त्रेषु चोज्ज्वलाः।
विंशतेस्तु सहस्रेभ्यः पराश्चैते प्रकीर्तिताः ॥ ८३ ॥
विंशतेस्तु सहस्राणामाद्यमेतत् प्रकीर्तितम्।
त्रिपुरायास्तु बालाया मन्त्रं तच्छृणु भैरव ॥ ८४ ॥
वाग्भवं कामराजस्तु उपान्तादिः सबिन्दुकः।

---

६४. सन्निभः। ६५. व्यञ्जनाद्यं वृषाननः। ६६. मन्मथो महान्।

शेषस्वरसमाप्तिभ्यां मन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ८५ ॥
एषा तु त्रिपुरा बाला मध्या प्रोक्ता पुरैव हि ।
शेषा तेजस्विनी प्रोक्ता येयं त्रिपुरभैरवी ॥ ८६ ॥
मध्यायाः पूजनं प्रोक्तं बालायाः शृणु साम्प्रतम् ।
तथा त्रिपुरभैरव्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ८७ ॥
विभिद्य शक्त्या शम्भुं तु शक्तिं चापि विभेदयेत् ।
शम्भवे वर्णषट्कोणं केशरं तत्र संलिखेत् ॥ ८८ ॥
मध्यायास्त्रिपुरायास्तु यादृशे द्वारमण्डले ।
तादृशेऽत्रापि कर्तव्यं कोणेषु लिखितं तथा ॥ ८९ ॥
पापोत्सारणकर्माणि[६७] भूम्यादीनां विशोधनम् ।
पूर्वमुत्तरतन्त्रोक्तं त्रिपुरापीठभाषितम् ॥ ९० ॥
कामाख्यापूजने प्रोक्तं सर्वं कुर्यात् तु साधकः ।
दहनप्लवनादीनि प्रतिपत्तिं च पात्रके[६८] ॥ ९१ ॥
सर्वं तु पूर्ववत् कार्यं कामाख्यापूजने यथा ।
कृत्वाऽत्र देहन्यासं तु मन्त्रवर्णैस्तथाक्षरैः ॥ ९२ ॥
सर्वैः स्वरैस्तथा काद्यैस्ततो रूपं विचिन्तयेत् ।
चतुर्भुजां रक्तवर्णां रक्तवस्त्रविभूषिताम् ॥ ९३ ॥
दक्षिणोर्ध्वे स्रजं चाधो बिभ्रतीं पुस्तकोत्तमम् ।
अभयं वामहस्ताभ्यां वरं च दधतीं तथा ॥ ९४ ॥
सहस्रसूर्यसंकाशां त्रिनेत्रां गजगामिनीम् ।
पीनतुङ्गस्तनयुगां सितप्रेतासनस्थिताम् ॥ ९५ ॥
स्मितप्रसन्नवदनां सर्वालंकारसंयुताम् ।
तिसृभिर्मुण्डमालाभिः शिरोवक्षःकटीषु च ॥ ९६ ॥
त्रिगुणां त्रिगुणीभूतैः प्रत्येकं परिभूषिताम् ।
मदिराघूर्णनयनां रक्तदन्तच्छदद्वयाम् ॥ ९७ ॥
चिन्तयेद् वरदां देवीमेवं त्रिपुरभैरवीम् ।
बालायास्त्रिपुरायास्तु रूपं पूर्वं प्रपूजने ॥ ९८ ॥
उक्तः क्रमः पीठयोगे तन्त्रादि शृणु भैरव ।
पुष्पबाणांस्तु[६९] पाशं च धत्ते पौष्पं शरासनम् ॥ ९९ ॥
पाशं च[७०] कुणपारूढा सा बाला त्रिपुरा स्मृता ।
मन्मन्त्रे[७१] त्रिपुरे देवीं विद्महे पदमादितः ॥ १०० ॥

---

६७. कर्मादि । ६८. ....मातृके । ६९. पुष्पबाणं च ।
७०. बाणं । ७१. तन्मध्ये ।

कामेश्वरीं धीमहि त्वां तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।
एषा त्रिपुरगायत्रीत्यावाहनविशेषतः ॥ १०१ ॥
स्नानाद्यैः पूजयेत् सम्यग् बालामन्यां च भैरवीम् ।
अस्याः क्रमे विशेषो यो न्यासे चोत्तरकर्मणि ॥ १०२ ॥
तत्सर्वं सह मन्त्रौघैः श्रृणु वेतालभैरव ।
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय चिन्तयेत् परमं गुरुम् ॥ १०३ ॥
ततोऽनु स्वगुरुं शुद्धं ततस्त्रिपुरभैरवीम् ।
चतुर्भुजां शुक्लवर्णां वरदाभयपुस्तकाम् ॥ १०४ ॥
अक्षमालां च क्रमतो धत्ते वामे च दक्षिणे ।
सुवर्णरत्नखचिते संस्थितां प्रवरासने ॥ १०५ ॥
सौवर्णमुत्तरीयं तु धत्ते सौवर्णकुण्डले ।
स्वगुरुं वर्णतो ध्यानात् तथैव परिचिन्तयेत् ॥ १०६ ॥
भैरवीं चिन्तयित्वा तु तत उत्थाय चाचरेत् ।
मैत्रमाचमनं चैव दन्तानां शोधनं तथा ॥ १०७ ॥
प्रातःस्नानं ततः कुर्यात् त्रैपुरं योजयन् क्रमम् ।
सर्वत्र देवीमन्त्रेषु वैदिकेष्वपि भैरवीम् ॥ १०८ ॥
त्रिपुरां चिन्तयेन्नित्यं देवमन्त्रेषु च क्रमात् ।
त्रिभिस्तु त्रिपुराबीजैस्त्रिधा मज्जनमाचरेत् ॥ १०९ ॥
देवानामपि सर्वेषु भैरवेषु[७२] पदं सदा ।
कुर्याद् विशेषणं नित्यं नोच्चार्यं निर्विशेषणम् ॥ ११० ॥
आपः पुनन्तु पृथिवीमुक्त्वा त्रिपुरभैरवीम् ।
कुर्यादाचमनं विप्रो द्रुपदायां तथाचरेत् ॥ १११ ॥
इदं विष्णुर्भैरवस्तु विचक्रम इतीरितम् ।
मृदालम्भनकृत्येषु नित्यमेवाप्युदीरयेत् ॥ ११२ ॥
गायत्रीं त्रिपुराद्यां तु भैरवीमाह्वयेच्छिवाम् ।
मार्तण्डभैरवायेति सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ११३ ॥
उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यं शेषे भैरवमीरयेत् ॥ ११४ ॥
तर्पणादौ प्रयुंजीत तृप्यतां ब्रह्मभैरवः ।
आवाहने स्वयं पितॄन् भैरवानिति कीर्तयेत् ॥ ११५ ॥

---

७२. समं ।

तृप्यतां भैरवीमातः पितर्भैरव तृप्यताम् ।
आदौ च त्रिपुरापूर्वं तर्पणेऽपि प्रयोजयेत् ॥ ११६ ॥
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ यत्र यं यं प्रपूजयेत् ।
तत्र भैरवरूपेण देवीमपि च भैरवीम् ॥ ११७ ॥
मदिरापात्रमालोक्य रक्तवस्त्रां स्त्रियं तथा ।
शिरो नरस्य दृष्ट्वा तु भैरवीं चिन्तयेद् द्विजः ॥ ११८ ॥
स्त्रियो दृष्ट्वा ह्यथैकत्र युवतीः सुमनोहराः ।
ताभ्यस्त्रिपुरभैरव्याः[७३] प्रीतये वन्दनादिकम् ॥ ११९ ॥
दद्याद् भक्त्या तु मनसा चिन्तयन्नथ भैरवीम् ।
भैरवीं प्रतिगृह्णामि भैरवोऽहं प्रतिग्रही ॥ १२० ॥
कन्यायां भावयेद् धीमांस्त्रिपुरायाः प्रपूजकः ।
भैरवाय ददाम्यद्य देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ १२१ ॥
इतीरयेत् प्रदाने तु कन्यायास्त्रिपुरां ततः ।
तस्याः पूजोपकरणपात्राद्यं यान्यपूजने ॥ १२२ ॥
आसनाद्यं च सततं नोपयोज्यं कदाचन ।
सकृत् तु दापयेदन्यैर्मदिरां साधको द्विजः ॥ १२३ ॥
शूद्रादयस्तु सततं ददुरासवमुत्तमम्[७४] ।
एवं तु वामभावेन यजेत् त्रिपुर भैरवीम् ॥ १२४ ॥
बालां तु वामदाक्षिण्यसमार्गाभ्यामपि पूजयेत्[७५] ।
श्मशानभैरवीं देवीमुग्रतारां तथैव च ॥ १२५ ॥
उच्छिष्टभैरवीं चण्डीं तथा[७६] त्रिपुरभैरवीम् ।
एतास्तु वामभावेन पूज्या दक्षिणतां विना ॥ १२६ ॥
ऋषीन् देवान् पितॄंश्चैव मनुष्यान् सुतसञ्चयान् ।
योजयेत् पंचभिर्यज्ञैर्ऋणानि परिशोधयेत् ॥ १२७ ॥
विधिवत् स्नानदानाभ्यां कुर्वन् यद्विधिपूजनम् ।
क्रियते सरहस्यं तु तद्दाक्षिण्यमिहोच्यते ॥ १२८ ॥
सर्वे च पितृदेवादौ यस्माद् भवति दक्षिणः ।
देवी च दक्षिणा यस्मात् तस्माद् दक्षिण उच्यते ॥ १२९ ॥
या पुनः पूज्यमाना तु देवादीनां च पूर्वतः[७७] ।
यज्ञभागं स्वयं धत्ते[७८] साबला तु प्रकीर्तिता ॥ १३० ॥

---

७३. आद्याः । ७४. दल्पवासरं । ७५. पूजनं । ७६. तारां ।
७७. सर्वतः । ७८. भुंक्ते ।

पूजकोऽपि भवेद् वामस्तत्रैव सततं सुत ।
पंचयज्ञान् न वा कुर्याद् यद् वा वाम्यप्रपूजने ॥ १३१ ॥
अन्यस्य पूजाभागं हि यतो गृह्णाति बालिका ।
यत्पूजयेद्वामभावैर्न तत् स्यादृणशोधनम् ॥ १३२ ॥
पितृदेवनरादीनां जायते च कदाचन ।
सोऽभ्यस्य त्रिपुरायोगं तेन योगेन संयुतः ॥ १३३ ॥
जीयते यदि सुप्राज्ञस्तदा मोक्षमवाप्नुयात् ।
स च मोक्षश्चिरेणैव जायतेऽत्र पुनः[७९] पुनः ॥ १३४ ॥
ऋणशोधनजैः पापैराक्रान्तश्चैव भैरव ।
इह लोके सुखश्वैर्ययुक्तः सर्वत्र वल्लभः ॥ १३५ ॥
मदनोपमकान्तेन शरीरेण विराजता ।
सराष्ट्रकं च राजानं वशीकृत्य समन्ततः ॥ १३६ ॥
मोहयन् वनिताः सर्वाः सर्वाश्च मदविह्वलाः ।
सिंहान् व्याघ्रान् स्तरक्षूंश्च भूतप्रेतपिशाचकान् ॥ १३७ ॥
वशीकुर्वन् विचरति वायुवेगोद्यतस्ततः ।
बालां वा त्रिपुरां देवीं मध्यां वाप्यथ भैरवीम् ॥ १३८ ॥
यो यजेत् परया भक्त्या यश्च बाणोपमाकृतिः ।
कामेश्वरीं तु कामाख्यां पूजयेत् तु यथेच्छया ॥ १३९ ॥
दाक्षिण्याद् वामभावाद् वा सर्वथा सिद्धिमाप्नुयात् ।
महामायां शारदां च शैलपुत्रीं तथैव च ॥ १४० ॥
यथा तथा प्रकारेण दाक्षिण्यादेव पूजयेत् ।
यो दाक्षिण्यं विना भावं महामायां समर्चति ॥ १४१ ॥
स पापः स्वर्गलोकेभ्यश्च्युतो भवति रोगधृक् ।
अन्यास्तु शिवदूत्याद्या देव्यो याः पूर्वमीरिताः ॥ १४२ ॥
तास्तु वां पान्तु दाक्षिण्यात् पूजितव्यास्तु साधकैः ।
किन्तु यः पूजको वामः सोऽन्यासां परिवर्जितः ॥ १४३ ॥
सर्वासां पूजकः[८०] स्यात् तु दक्षिणस्तेन उत्तमः ।
अथ त्रिपुरभैरव्या न्यासं च शृणु भैरव ॥ १४४ ॥
येन वै न्यासमात्रेण देववज्जायते नरः ।
भैरवीतन्त्रमन्त्रस्य ऋषिर्दक्षिण उच्यते ॥ १४५ ॥
छन्दः पंक्तिः समाख्याता देवी त्रिपुरभैरवी ।

---

७९. ...त्रैपुरः । ८० पूरकः ।

कामार्थयोः साधने च विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ १४६ ॥
हकारं विन्यसेन्नाभौ सकारं वस्तितो न्यसेत् ।
वकारं शेफे विन्यस्य एकारं च गुदे तथा ॥ १४७ ॥
पुनरूर्वोस्तथैवाद्यं जानुयुग्मे द्वितीयकम् ।
तृतीयं जङ्घयोर्न्यस्य चतुर्थं पादयोर्न्यसेत् ॥ १४८ ॥
त्रिविधं[८१] विन्यसेद् देवं नाभ्यादेः पादसङ्गतम् ।
द्वितीयस्य तु बीजस्य आद्यं हृद्येव विन्यसेत् ॥ १४९ ॥
वामे स्तने द्वितीयं तु तृतीयं दक्षिणे स्तने ।
चतुर्थमुदरे न्यस्य पंचमं पार्श्वयोर्न्यसेत् ॥ १५० ॥
षष्ठं नाभौ परिन्यस्य न्यसेच्चापि त्रिधा त्रिधा ।
तृतीयस्य तु बीजस्य मूर्ध्नि चाद्यं तु विन्यसेत् ॥ १५१ ॥
द्वितीयं न्यस्य केशान्ते तृतीयं वदने न्यसेत् ।
चतुर्थं हृदये न्यस्य यथा स्यात् तु त्रिधा त्रिधा ॥ १५२ ॥
आद्याद्यं दक्षिणाङ्गुष्ठे द्वितीयं तर्जनीं पुनः ।
तृतीयं च मध्यमायामनामायां चतुर्थकम् ॥ १५३ ॥
तृतीयाद्यं कनिष्ठायां वामाङ्गुष्ठे द्वितीयकम् ।
तृतीयं वामतर्जन्यां चतुर्थं मध्यमातनौ ॥ १५४ ॥
अनामायां पंचमं तु षष्ठं शेषे तु विन्यसेत् ।
एवं त्रिधा तु विन्यस्य तृतीयमथ बीजकम् ॥ १५५ ॥
उभयोर्हस्तयोः कृत्वा अङ्गुष्ठाद्यं युगं युगम् ।
तृतीयं बीजवर्णांस्तु विन्यसेत् क्रमतो बुधः ॥ १५६ ॥
पिण्डितं सर्वबीजं तु विन्यसेत् तु कनिष्ठयोः ।
आद्यं तु [८२]तलयोर्न्यस्य पृष्ठयोश्च द्वितीयकम् ॥ १५७ ॥
तालत्रयं ततो दत्त्वा तृतीयेन तु वेष्टनम् ।
कर्णयोश्चिबुके गण्डे मुखे दृङ्नासयोस्तथा ॥ १५८ ॥
स्कन्धयोश्च कफोणौ[८३] च जठरे शिश्नमूर्धनी ।
पादयोः पार्श्वयोश्चैव हृदये स्तनयुग्मके ॥ १५९ ॥
कण्ठदेशे च न्यस्तव्या मन्त्रवर्णक्रमात् पुनः ।
लिङ्गे रत्यै नम इति वाग्भवाद्येन विन्यसेत् ॥ १६० ॥
ॐ क्लीं प्रीत्यै नम इति हृदये विन्यसेत् ततः ।
मनो भवायेति ततो भ्रुवोर्मध्ये तृतीयकम् ॥ १६१ ॥

---

८१. त्रिरावर्त्यं । ८२. स्तनयोः । ८३. कफल्योश्च ।

विन्यसेत् त्रिपुराबीजं सद्यो देवत्वसिद्धये ।
ॐ ईं ईशानरूपाय ततो मनोभवाय वै ॥ १६२ ॥
नम इत्यन्ततः प्रोक्तो मूर्ध्नीशानं न्यसेत् पुनः ।
वक्त्रे तत्पुरुषं चापि बीजेन मकरध्वजम् ॥ १६३ ॥
हृदये घोरकन्दर्पमाद्यबीजेन वै न्यसेत् ।
शिश्ने वा वामदेवं[८४] तु मन्मथं चापि विन्यसेत् ॥ १६४ ॥
सद्योजातं पादद्वये कामदेवं च विन्यसेत् ।
ॐ[८५] कारं च हकारं च रेफमेकत्र सन्धितम् ॥ १६५ ॥
प्रान्तस्वरं वाग्भवाद्यं स्वरैर्ह्रस्वैस्तु पञ्चभिः ।
एभिस्तु पञ्चभिर्मन्त्रैरीशनादीनि विन्यसेत् ॥ १६६ ॥
वक्त्राणि पूर्वमुक्तानि स्वमुखोर्ध्वे तु पूर्वतः ।
दक्षिणोत्तरयोः पश्चात् पश्चिमे चापि विन्यसेत् ॥ १६७ ॥
हृदयादिषडङ्गानि दीर्घैराद्यस्वरैः पुनः ।
न्यसेत् ततः पञ्चबाणान् मूर्धादिष्वथ विन्यसेत् ॥ १६८ ॥
ॐ ह्रीं क्लीं सौं द्रावणाय न्यसेन्मूर्ध्नि ततः पुनः ।
ॐ ह्रीं क्षोभणबाणाय पद्भ्यां नम इतीरयेत् ॥ १६९ ॥
ॐ क्लीं क्लीं ह्रीं समाप्यन्तु षट्कारान्तार्धचन्द्रकैः ।
वक्त्रे वशीकृतं लिङ्गे सम्मोहनमथो न्यसेत् ॥ १७० ॥
आकर्षणं तथा बाणं हृदि मन्त्रैः क्रमान्न्यसेत् ।
वाग्भवाद्यन्तकारान्तो[८६] वषट्कारसमन्वितः ॥ १७१ ॥
त्रिःशेषस्वर एवात्र चन्द्रार्धो विन्दुसंयुतः ।
एभिस्तु पञ्चभिर्मन्त्रैरष्टशक्तीः क्रमादिमाः ॥ १७२ ॥
एतेषु चाष्टस्थानेषु विन्यसेन्मन्त्रवित् पुनः ।
सुभगां च भगां देवीं तृतीयां भगरूपिणीम् ॥ १७३ ॥
भगमालां चतुर्थीं तु अनङ्गकुसुमां ततः ।
अनङ्गमेखलां पश्चादनङ्गमदनां तथा[८७] ॥ १७४ ॥
अष्टमीं च तथा देवीं मदविभ्रममन्थराम् ।
रूपतो ध्यानतश्चैषा यथा त्रिपुरभैरवी ॥ १७५ ॥
ललाटभ्रूमध्यभागमुखकर्णान्तकण्ठके ।
हृन्नाभिलिंगेष्वेवात्र न्यस्तव्या अष्टशक्तयः ॥ १७६ ॥

---

८४. ···बीजं । ८५. सकारं च । ८६. वाग्भवाद्यं दकारान्तो ।
८७. ततः ।

शिरोललाटभ्रूयुग्मकर्णनेत्रद्वयेषु च।
गण्डयोरथ नासायां दन्तवीथ्यां[८८] मुखे तथा॥ १७७॥
चतुर्दशपदेष्वेषु न्यसेच्चतुर्दशस्वरान्।
चिबुके त्वथ ग्रीवायां कण्ठेदेशे तु पार्श्वयोः॥ १७८॥
स्तनयोः कक्षयोश्चापि कफोण्योर्हस्तयोस्तथा।
तत् पृष्ठयोस्तथा नाभौ लिङ्गे चोरुद्वये तथा॥ १७९॥
अष्ठीवदोर्जङ्घयोस्तु स्फिचोस्तु पदमूलयोः।
चरणाङ्गुष्ठयोः कादिमात्रान् वर्णांस्तु विन्यसेत्॥ १८०॥
मेखलायां कण्ठदेशे बाहुभूषणभागतः।
हारे स्रजि कुण्डले च केशबन्धे तथैव च॥ १८१॥
चूडामणौ च न्यस्तव्या नकाराद्याः क्रमात्पुनः।
मन्त्राक्षराणि त्रीण्येव सन्धितानि पुनस्तथा॥ १८२॥
प्रातिलोम्येन विन्यस्य मन्त्रैर्मूर्ध्नि त्रिधा त्रिधा।
अमृतां योगिनीं विश्वयोगिनीं चाक्षरक्रमात्॥ १८३॥
ततो बीजत्र्यक्षराणि मूर्ध्नि बाहौ[८९] तथा हृदि।
विन्यस्य पूर्ववत् पूजामारभेन्मन्त्रविद् बुधः॥ १८४॥
पूर्ववत् पूजयेद् देवीं पीठदेवविवर्जिताम्।
विशषतो ह्यष्टशक्तीः क्रमात् तु[९०] स्वभगादिकाः॥ १८५॥
मण्डलस्याष्टदिग्भागे पूर्वादौ परिचिन्तयेत्।
त्रिकोणाग्रे मृताद्यास्तु[९१] सम्पूज्यास्तु त्रियोनयः॥ १८६॥
मध्येऽष्टभूषणान्येव पूजयेत् तु ततः[९२] पुनः।
ईशानादीनि वक्त्राणि मम भैरव मध्यतः॥ १८७॥
पूजयेत् तु तथा तत्र मनोभवमुखानपि।
अन्यच्च पूजने तत्र क्रमः पूर्वोदितश्च यः॥ १८८॥
स एव सततं ग्राह्यः त्रिपुरापरिपूजने।
निर्माल्यधारिणी देवी चैतस्याः शृणु भैरवी॥ १८९॥
विसर्जनं चोत्तरस्यां त्यक्त्वा निर्माल्यमाचरेत्।
त्रिमूर्तिं पूजयेत् तां तु देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ १९०॥
न जपेत् त्रिंशता न्यूनं साधकस्तु कदाचन।
अङ्गुष्ठमध्यमानामाङ्गुलीभिस्तिसृभिः पुनः॥ १९१॥

---

८८. अन्तरीचे। ८९. बाह्वोस्तथा। ९०. ताः।
९१. अमृताख्यास्तु। ९२. पूजयेदन्ततः।

सदा पुष्पादिकं दद्यान्मालां तु त्रिगुणां चरेत् ।
चर्मासनमधिष्ठाय पश्चात् कृत्वा पदद्वयम् ॥ १९२ ॥
पूजयेन्निर्जने देशे साधकोऽनन्यमानसः ।
आसादयेत् तु पुष्पादि नैवेद्यादि च यद् भवेत् ॥ १९३ ॥
तद् वामहस्तमुख्येन सततं साधको बुधः[९३] ।
त्रिच्छिद्रा त्रिपुरा प्रोक्ता न सम्यक्पूजिता यदि ॥ १९४ ॥
शरीरे निन्दितो व्याधिर्जायतेऽवश्यमेव हि ।
अवश्याः पुत्रदाराश्च भृत्याद्याश्च भवन्ति हि ॥ १९५ ॥
अस्त्राघातो[९४] भवेत् स्वस्य प्राणत्यागो न संशयः ।
त्रिच्छिद्रदायिनी चैवमन्यथा पूजिता यदि ॥ १९६ ॥
इतः प्रकारां[९५] सततं सम्यग् वेतालभैरव ।
एषा च त्रिपुरादेवी याश्चान्याः पूर्वभाषिताः ॥ १९७ ॥
सर्वास्तु माया भैरव्या योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
तस्याः प्रपंचरूपैस्तु बहुभिः सैव क्रीडति ॥ १९८ ॥
महामाया मूलभूता ततस्तु शारदा पुरा ।
उमा ततः शैलपुत्री मत्प्रियायास्ततस्त्विमाः ॥ १९९ ॥
उग्रचण्डा प्रचण्डाद्यास्त्रिपुराद्यास्तथैव च ।
तासां चापि सदैवाहं महाभैरवरूपधृक् ॥ २०० ॥
नायकः सुतरां ताभिर्नित्यं नित्यं वसेद् बुधः ।
मम भैरवरूपस्य मन्त्रः पूर्वं मयोदितः ॥ २०१ ॥
रूपं चोक्तं पूजनेषु त्रिपुरायाः क्रमः स्मृतः ।
महाभैरवं विद्महे कालरुद्राय[९६] धीमहि ॥ २०२ ॥
तन्नः कामो भैरवस्तु क्लदिन्[९७]नित्यं प्रचोदयात् ।
एषा भैरवरूपस्य गायत्री मे प्रतिष्ठिता ॥ २०३ ॥
यथेष्टमांसमद्यादि भोजनार्थं मया धृतः ।
महाभैरवकायोऽयं तथा स्त्रीरतिसंगमे ॥ २०४ ॥
अयं तु वाम्यभावेन पूज्यो मद्यादिभिः सदा ।
वामः कायो ब्रह्मणोऽपि मांसमद्यादिभुक्तये ॥ २०५ ॥
कृतो महामोहनामा चार्वाकादिप्रवर्तकः ।
विष्णोर्वामात्मिका[९८] मूर्तिर्नरसिंहाह्वया भवेत् ॥ २०६ ॥
सा तु दाक्षिण्यवामाभ्यां पूजनीया सदा बुधैः ।

---

९३. नरः । ९४. शस्त्राघातात् । ९५. ततः प्रकारात् ।
९६. केलिरुद्राय । ९७. क्लेदि । ९८. विघ्नेश्वरात्मिका ।

तथैव बालगोपालमूर्तिर्जरायुवेष्टिता[९९] ॥ २०७ ॥
मद्यमांसाशनो भोगी लोलुपः स्त्रीषु सर्वदा ।
वह्वयस्तु चण्डिकादेव्याः वामिका मूर्तयः स्मृताः ॥ २०८ ॥
लक्ष्म्यास्तु वामिकामूर्तिरुक्ता दहनभैरवी ।
याग्निदाहं पुरग्राममन्दिरेष्वकरोदयम् ॥ २०९ ॥
सुपूजिता[१००] महालक्ष्मीर्देहल्यां तां तु पूजयेत् ।
वाग्भैरवी सरस्वत्या वामिकामूर्तिरीरिता ॥ २१० ॥
तस्या मन्त्रं पुरा प्रोक्तं शुक्लवर्णा तु सा स्मृता ।
मध्यायास्त्रिपुरायास्तु रूपं ध्यानमिहोच्यते ॥ २११ ॥
पूजाक्रमस्तथैवोक्तः सर्वत्रैव तु भैरव ।
मार्तण्डभैरवो नाम[१] मूर्तिः सूर्यस्य कीर्तिता ॥ २१२ ॥
गणेशस्याग्निवेतालः कथितो वामनासकः ।
एते वाम्येन भावेन पूजनीया विशेषतः ॥ २१३ ॥
त्रिधाद्यस्तु यथापूर्वं नमयैर्वलवैस्तथा ।
वान्तैर्द्विरेफैः सर्वत्र यथा कृत्वा तथा तथा ॥ २१४ ॥
अनुस्वारविसर्गाभ्यां प्राक्शेषौ परिकीर्तितौ ।
मध्ये तु केवलाः पूर्वं सानुस्वारविसृष्टिभिः ॥ २१५ ॥
पश्चाद् द्वित्रिक्रमाद् यस्तु वर्णैरेकेन चैव हि ।
व्यस्तैः समस्तैरपि च दकारादिषु संयुतैः[२] ॥ २१६ ॥
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु मन्त्रवद् योजितैस्तथा ।
तथा त्रिपुरभैरव्या मन्त्रवद्वाक्षरैरपि ॥ २१७ ॥
त्रिश्चतुर्दशभिः कृत्वा डादींस्त्रींस्तु विशारयेत् ।
द्वितीयं द्विगुणं कृत्वा शेषेऽत्रादौ[३] च योजयेत् ॥ २१८ ॥
विंशतिस्तु सहस्राणि शेषे चापि त्रयोदश ।
आद्यमाद्यं ततः प्रोक्तं वाग्भवाद्यं तृतीयकम् ॥ २१९ ॥
एवं च परमप्येतन्मन्त्राणां च चतुष्टयम् ।
एतज्ज्ञात्वा नरः कामानखिलान् प्राप्य सङ्गतः ॥ २२० ॥
मृते[४] देवीपुरं याति क्रमादेव तु भैरव ।
यः सकृत् तु जपेदेतत् सकलं मन्त्रसञ्चयम् ॥ २२१ ॥
प्रथमं कामतो[५] न्यस्य साधकस्तु त्रिभिर्दिनैः ।
चिन्तयन्मनसा देवीं सम्यक् त्रिपुरभैरवीम् ॥ २२२ ॥

---

९९. यो वायुरेषित । १००. अपूजिता । १. वाम ।
२. इकारश्चन्द्रसंमतैः । ३. ...चादौ । ४. ततो । ५. कायतो ।

स कामानखिलान् प्राप्य स्वरूपे मदनोपमः ।
धार्मिको नृपतिर्भूयाद् ब्राह्मणो द्विजराड् भवेत् ॥ २२३ ॥
आराधितशरीरस्तु[6] पिशाचाद्यैः सदैव हि ।
नीरोगश्च चिरायुश्च बलवानपि जायते ॥ २२४ ॥
एवं त्रिपुरभैरव्या मया ।प्रोक्तस्त्वयं क्रमः ।
वैष्णव्यास्तु महादेव्याः सहस्राणि तु षोडश ॥ २२५ ॥
शृणु भैरव मन्त्राणि शिवैकाग्रमनाः पुनः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु चतुःषष्टिस्तथा त्रयः ॥ २२६ ॥
मन्त्राः प्रोक्ता महादेव्या मूर्तिभेदेन ताः पुनः ।
अनुस्वारविसर्गाभ्यां द्विगुणास्ते पुनः समाः ॥ २२७ ॥
कादिव्यञ्जनसंयोगादूर्ध्वाधो व्यस्तभावतः ।
द्वाभ्यां त्रिभिश्च सततमुद्धरेन्मन्त्रवित् पुनः ॥ २२८ ॥
अष्टावष्टौ ततः कृत्वा समस्तव्यस्तसंयुतैः ।
विस्वरैः सस्वरैश्चापि सानुस्वारविसर्गकैः ॥ २२९ ॥
केवलैरपि तत्रैव द्विव्यस्तैरन्तरैस्तथा ।
एवमष्टोत्तरं यावत् संयोगयोगभावतः ॥ २३० ॥
देव्यास्तु षट्सहस्राणि सहस्राणि तथा दश ।
मन्त्रास्तु संख्यया ख्याताः क्रमाद् वेतालभैरव ॥ २३१ ॥
समस्तव्यस्तरूपेण वैष्णव्या ये मयोदिताः ।
तान् ज्ञात्वा मानवो याति ममैव सदनं प्रति ॥ २३२ ॥
अष्टम्यां च नवम्यां च[7] सहस्राणि तु षोडश ।
यो जपेन्मन्त्रबीजानि सकृदेव तु भैरव ॥ २३३ ॥
ध्यायंस्तु वैष्णवीं मूर्तिं तदेकाग्रमनाः शृणु ।
नरराजो भवेद् भूमौ पण्डितश्चातिहर्षितः ॥ २३४ ॥
चिरायुः सुखभोगी स्यादुद्रिक्तो बलवाहनैः ।
तान्येव चाष्टधा जप्त्वा सार्वभौमो नृपो भवेत् ।
गणाध्यक्षो मृतेः स स्यात् ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २३५ ॥
इति सकलगुणौघैरस्तदोषस्तु नित्यं
भवति कलुषहन्ता श्रीविवृद्ध्यै सुमन्त्रः ।
सततमखिलवेत्ता यो भवेदेतयोस्तु
स च भवति जितारी रोगशोकप्रमुक्तः ॥ २३६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुरभैरवीबालात्रिधाकल्पे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

---

६. अबाधित । ७. वा ।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

निष्पल्लवद्वादशभिर्लक्षैर्मन्त्रजपैस्तथा ।
पुरश्चरेत् साधकस्तु काममिष्टाप्तिहेतवे ॥ १ ॥
जातीपुष्पं च बकुलं मालतीपुष्पमेव च ।
नन्द्यावर्तं पाटलं च सितपद्ममतः परम् ॥ २ ॥
आज्यमन्नं पायसं च दधिक्षीर तथा मधु ।
लाजाश्चापि सकर्पूरा अमी एव चतुर्दश ॥ ३ ॥
पुरश्चरणसम्भूता त्रिपुरायाः प्रकीर्तिताः ।
द्वादशष्वेव लक्षेषु जप्तेष्वपि च साधकः ॥ ४ ॥
एतानि सर्वद्रव्याणि जुहुयादनलोज्ज्वले ।
लक्षत्रयं तु यो जप्त्वा पुरश्चरणमाचरेत् ॥ ५ ॥
स तु साज्यं सकर्पूरं जुहुयात् तु चतुष्टयम् ।
दशभिर्नवलक्षेषु द्रव्यैर्मन्त्री पुरश्चरेत् ॥ ६ ॥
जप्तेषु चाष्टभिः षट्सु सर्वैः सर्वत्र चाचरेत् ।
हस्तमात्रं तु कुण्डं स्यात् षट्कोणं त्र्यङ्गुलाधिकम् ॥ ७ ॥
त्रिपुरायास्तु मध्याया बालायाश्च सदैव हि ।
तथा त्रिपुरभैरव्याः कुण्डमानं प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥
चतुष्कोणं भवेत् कुण्डं हस्तमात्रद्वयेषु च ।
अष्टाङ्गुलाधिकं प्रोक्तं वैष्णव्यास्तु पुरश्चरे ॥ ९ ॥
त्रिकोणं हस्तमात्रं तु कामाख्यायास्तु कुण्डकम् ।
एवं सर्वप्रपञ्चानामासामपि तथा तथा ॥ १० ॥
संस्कुर्यादनलं वृद्धं विधिवद् वैष्णवीकृतौ ।
कामाख्यायास्तथा कुर्याज्ज्योतिष्टोमादि मत्सुत ॥ ११ ॥
आदौ त्रिपुरभैरव्याश्चतुर्भिर्दशभिस्तथा ।
जुहुयादनले वृद्धे आहुतीश्च चतुर्दश ॥ १२ ॥
पश्चात् तु मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतत्रयम् ।
होमं यन्नव वा तेन शतानि नव वाऽथवा[८] ॥ १३ ॥
जपान्ते तु बलिं दद्याद् वैष्णव्या बलिदानतः ।
रत्नकर्पूरकनकान् यत्रैव गुरुदक्षिणाः ॥ १४ ॥

---

८. द्वादशापि वा ।

अलाभे दधिपुष्पाज्यलाजैर्देव्याः पुरश्चरेत् ।
लाभे चतुर्दशद्रव्यैर्जुहुयाद् विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥
अस्या यन्त्रं रहस्येन शृणु वेतालभैरव ।
यत्कृत्वैवाखिलान् कामाँल्लभते नरसत्तम ॥ १६ ॥
षट्कोणं मण्डलं कृत्वा तत् तु[९] कोणत्रये लिखेत् ।
मन्त्रं त्रिपुरभैरव्यास्त्रिवर्णं तु ततस्त्वधः ॥ १७ ॥
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु त्रिबीजानि लिखेदनु ।
मध्यबीजत्रयं मध्ये लिखित्वा पीठयन्त्रके ॥ १८ ॥
सर्वैस्तु मातृकावन्त्रैस्त्रिधा संवेष्टयेदनु ।
लाक्षारसैर्लिखित्वा तु त्रिलोहैर्वेष्टयेत् ततः ॥ १९ ॥
तद् धार्यं मूर्ध्नि सततं तेन सर्वजयी भवेत् ।
रूपवान् बलवान् वाग्मी धनरत्नयुतः सदा ॥ २० ॥
दीर्घायुः कामभोगी च सुप्रजः स च जायते ।
मध्ये बीजं लिखित्वैकं मूर्ध्नि चाधस्तथापरम् ॥ २१ ॥
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु भैरव्यास्तद्वदेव हि ।
इमानि षट्कमन्त्राणि क्रमाद् वेतालभैरव ॥ २२ ॥
पूर्ववत् सल्लिखित्वैकं संवेष्टयाथ त्रिलोहकैः ।
वामे बाहौ दक्षिणे च हृदि कण्ठे करे तथा ॥ २३ ॥
मूर्ध्नि धार्याणि क्रमतः फलमेतच्च तद्भवम् ।
सम्पत्सौभाग्यसंस्तम्भ-वशीकरणमोहनम् ॥ २४ ॥
कवित्वमथ सर्वत्र भवेदेतन्न संशयः ।
यन्त्रमन्त्राणि तन्त्राणि त्रैपुराणि तु भैरव ॥ २५ ॥
स पञ्च षट् सहस्राणि मन्त्रौघैस्त्रिगुणीकृतैः ।
तज्ज्ञात्वा पूजको धीमान् परत्रेह न सीदति ॥ २६ ॥
मन्त्रौघैस्तन्त्रमन्त्रैरविचलितपदं त्रैपुरं यत् प्रधानं
यद्विप्राद्यैरदेयं विगतभयपदं यत्कवित्वप्रदातृ ।
त्रैवर्गीयं त्रिरूपं त्रिदिवमथ सुरा यत्र सन्ति त्रयोऽपि
तज्ज्ञानौघैः सुभूतं सकलशुभफलं[१०] यन्महस्त्रैपुराख्यम् ॥ २७ ॥
कवचं त्रिपुरायास्तु शृणु वेतालभैरव ।
यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित् सम्यक् फलमाप्नोति पूजने ॥ २८ ॥
उपचाराः पुरा प्रोक्ता येन एवात्र पूजने ।
प्रतिपत्तिस्तु सैवात्र कीर्तिता नित्यपूजने ॥ २९ ॥

---

९. ऊर्द्ध्वकोणत्रये लिखेत् । १०. मयं ।

कवचस्य च माहात्म्यमहं ब्रह्मा न केशवः।
वक्तुं क्षमस्त्वनन्तोऽपि बहुजिह्वः कदाचन ॥ ३० ॥

क्रव्याद् भयं न लभते तथा तोयपरिस्रवे।
कवचस्मरणादेव सर्वं कल्याणमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

ओं त्रिपुराकवचस्यास्य ऋषिर्दक्षिण उच्यते।
छन्दश्चित्राह्वयं प्रोक्तं देवी त्रिपुराभैरवी ॥ ३२ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनियोगस्तु साधने।
यथाद्यात्रिपुराख्याया बीजानि क्रमतः सुत ॥ ३३ ॥

नामतो वाग्भवादीनि कीर्तितानि मया पुरा।
तथा त्रिपुरभैरव्या बीजानामपि नामतः ॥ ३४ ॥
वाग्भवः कामराजश्च तथा त्रैलोक्यमोहनः ॥ ३५ ॥

अवतु सकलशीर्षं वाग्भवे वाचमुग्रां
निखिलरचितकामान् कामराजोऽवतान्मे।
सकलकरणवर्ग-मीश्वरः पातु नित्यं
तनुगतबहुतेजो वर्धयन् बुद्धिहेतुः ॥ ३६ ॥
कूटैस्तु[११] पञ्चभिरिदं गदितं हि यन्त्रम्
मन्त्रं ततोऽनु सततं मम तेज उग्रम्।
तेजोमयं महति[१२] नित्यपरायणस्थं[१३]
तन्त्रे हृदि प्रविततां तनुतां सुबुद्धिम् ॥ ३७ ॥
आधारे वाग्भवः पातु कामराजस्तथा हृदि ॥ ३८ ॥
भ्रुवोर्मध्ये च शीर्षे च पातु त्रैलोक्यमोहनः ॥ ३९ ॥
विततकुलकलाज्ञा[१४] कामिनी भैरवी या
त्रिपुरपुरदहाख्या सर्वलोकस्य माता।
वितरतु मम नित्यं नाभिपद्मे सकुक्षौ
गणपतिवनिता[१५] मां रोगहानिं सुखं च ॥ ४० ॥
योगैर्जगन्ति परिमोहयतीव नित्यं
जागर्ति या त्रिपुरभैरवभामिनीति।
सायं[१६] च भावकलिता मम पञ्चभागे
नासाक्षिकर्णरसनात्वचि पातु नित्यम् ॥ ४१ ॥
आद्या तु त्रिपुरेयं या मध्या या कामदायिनी ॥ ४२ ॥

---

११. हृदयैस्तु। १२. महसि। १३. यणस्य।
१४. विचित्रकनकलाज्ञा। १५. गद्यगतजनिता। १६. सा पञ्चतारकलिता।

त्रिधा तु ह्यवतां नित्यं देवी[17] त्रिपुरभैरवी ॥ ४३ ॥
उदयदिशि सदा मां पातु बाला तु माता
यमदिशि मम मध्याभद्रमुग्रं विदध्यात् ।
वरुणपवनकाष्ठामध्यतो भैरवी मा-
मवतु सकलरक्षां कुर्वती सुन्दरी मे ॥ ४४ ॥
महामाया महायोनिर्विश्वयोनिः सदैव तु[18] ।
सा पातु त्रिपुरा नित्यं सुन्दरी भैरवी च या ॥ ४५ ॥
ललाटे सुभगा देवी पूर्वस्यां दिशि कामदा ।
नित्यं तिष्ठतु रक्षन्ती सदा त्रिपुरसुन्दरी[19] ॥ ४६ ॥
भ्रुवोर्मध्ये तथाग्नेय्यां दिशि मां त्रिपुरा च या[20] ।
वर्धयन्ती भगगणान् पातु[21] त्रिपुरभैरवी ॥ ४७ ॥
वदने दक्षिणस्यां च दिशि मां भगसर्पिणी ।
त्रिपुरा यमदूतादीन् वारयन्ती सदाऽवतु ॥ ४८ ॥
कर्णयोः पश्चिमायां च दिशि[22] मां भगमालिनी ।
अयोनिजा जगद्योनिर्बाला मां त्रिपुराऽवतु ॥ ४९ ॥
अनङ्गकुसुमाकण्ठे प्रतीच्यां दिशि सुन्दरी ।
त्रिपुराभैरवी माता नित्यं पातु महेश्वरी ॥ ५० ॥
हृदि मारुतकाष्ठायां देवी चानङ्गमेखला ।
नाभावुदीच्यां दिशि मां मातङ्गी त्रिपुरापरा ॥ ५१ ॥
अनङ्गमदना देवी पातु त्रिपुरभैरवी ।
ऐशान्यां दिशि लिङ्गे च मदविभ्रममन्थरा ॥ ५२ ॥
वाग्वादिनी रक्षतु मां सदा त्रिपुरभैरवी ।
गुदमेढ्रान्तरे पातु रतिस्त्रिपुरभैरवी ॥ ५३ ॥
हृदयाभ्यन्तरे प्रीतिः पातु त्रिपुरभैरवी[23] ।
भ्रूनासयोर्मध्यदेशे नित्यं पातु मनोभवः ॥ ५४ ॥
द्रावणी मां ग्रहः पातु वाणी[23] मां दुर्गमूर्धनि ।
क्षोभणो मां सदा पातु क्रव्याद्भ्योऽनिष्टभीतितः ॥ ५५ ॥
वशीकरणवाणी[24] मामग्नितः पातु राजतः ।
आकर्षणाह्वया[25] वाणी[26] मां पातु [27]शस्त्रघाततः ॥ ५६ ॥

---

१७. सा मे । १८. या । १९. ....भैरवी । २०. मगा ।
२१ मातां । २२. देवी चानंगमेखला । २३. बाणो ।
२४. ...बाणो । २५. यो । २६. बाणो । २७. शत्रु... ।

मोहनः सर्वभूतेभ्यः पिशाचेभ्यो जलात्तथा।
नित्यं पातु महाबाणस्तन्वानः काममुत्तमम् ॥ ५७ ॥
माला मां शास्त्रबोधाय[२८] शास्त्रवादे सदाऽवतु।
पुस्तकं पातु मनसि संकल्पं वर्धयन् मम ॥ ५८ ॥
वरः पातु सदा धाम्नि[२९] [३०]धामतेजो विवर्धयन्।
अभयं ह्यभयं धत्तां सर्वेभ्यो भूतिभावनम् ॥ ५९ ॥
ऊर्ध्वाधोभावभूतस्थिततरकरगौ रक्तकीर्णा सुचक्रा
कालाग्निप्रख्यरोचिः सकलसुरगणैरर्चिता मुण्डमाला।
ज्ञानध्यानैकतानप्रबलबलकरं तत्त्वभूतप्रतिष्ठं[३१]
पातादूर्ध्वं तथाधः सकलभयभृतो भोगभीरोस्तु विद्या ॥ ६० ॥
ह्ः पातु हृदि मां नित्यं सः शीर्षे पातु नित्यशः।
रः पातु गुह्यदेशे मां सौः पातु कण्ठपार्श्वयोः ॥ ६१ ॥
रकारो मम नाडीषु शिरः सौः पातु सर्वदा।
शक्रः पातु सदाकाशे[३२] ब्रह्मा रक्षतु सर्वतः ॥ ६२ ॥
विद्या विद्याभाविनी कामरूपा,
स्थूला सूक्ष्मा मायया यादिमाया।
ब्रह्मेन्द्राद्यैरर्चिता भूतिदात्री
रक्षां कुर्यात् सर्वतो भैरवी माम् ॥ ६३ ॥
आद्या मध्या भाविनी नीतियुक्ता,
सम्यग्ज्ञानज्ञेयरूपापरा या।
आदावन्ते मध्यभागे च तारा
पायाद् देवी त्रैपुरी भैरवी या ॥ ६४ ॥
यन्मन्त्रभागतन्त्राणां यन्त्राणामपि केशवः।
ब्रह्मा रुद्रश्च जानाति तत्वं नान्यो नमोऽस्तु तान् ॥ ६५ ॥
त्वं ब्रह्माणि भवानि विश्वभवितुर्लक्ष्मीरतिर्योगिनी।
त्वं वाग्मी सुभगा भवायुतयुगं [३३]मन्त्राक्षरं निष्कलम्।
वर्णास्ते निखिला [३४]स्तनावचलितस्त्वं कामिनीकामदा
त्वं देवि त्रिपुरे कवित्वममलं सौभाग्यमुच्चैः कुरु ॥ ६६ ॥
इदं तु कवचं देव्या यो जानाति स मन्त्रवित्।
नाधयो व्याधयस्तस्य न भयं च सदा क्वचित् ॥ ६७ ॥

---

२८. मनो मां ज्ञानवृद्धाय। २९. स्थाम्नि। ३०. स्थान ···।
३१. प्रतिष्ठः। ३२. ···वामे। ३३. मन्त्रसंक्षेप एवं।
३४. स्तवायवनिता त्वं कामिनी कामदा।

इति ते परमं गुह्यमाख्यातं कवचं परम्।
तद्‌भजस्व महाभाग ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ६८ ॥
इदं पवित्र परमं पुण्यं कीर्तिविवर्धनम्।
त्रिपुरायास्त्रिमूर्तेस्तु कवचं मयकोदितम् ॥ ६९ ॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स प्राप्नोति मनोगतम्।
लिखितं कवचं यस्तु कण्ठे गृह्णाति मन्त्रवित् ॥ ७० ॥
न तस्य गात्रं कृन्तन्ति रणे शस्त्राणि भैरव।
संग्रामे शास्त्रवादे च विजयस्तस्य जायते ॥ ७१ ॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत् त्रिपुरां नरः।
स शस्त्रघातमाप्नोति भैरवीं सुन्दरीमपि ॥ ७२ ॥
बीजमुच्चारयेत् स्वस्थो गतवाग् दोषनिश्चितः।
संयोगबोधः प्रत्येकभेद-श्रवणगोचरः ॥ ७३ ॥
यथैव जायते [३५]सम्यग्यज्ञादिदोषवर्जितः।
यस्योच्चारणरणकृत्ये तु संयोगो बोधदूषणम् ॥ ७४ ॥
प्रत्येकभिन्नताबोधः स कुष्ठी जायते नरः।
न्यासानां प्रचुरत्वे तु फलानामपि भूरिता ॥ ७५ ॥
उक्तन्यासो न हि त्याज्यो ह्यधिकं तु समाचरेत्।
मयोक्तन्यासमज्ञात्वा न कृत्वा वा प्रमादतः ॥ ७६ ॥
यः कुर्यात् पूजनं देव्या आप्नुयात् स महापदम्।
मन्त्राक्षरस्य विन्यासः सर्वमन्त्रषु कीर्तितः ॥ ७७ ॥
वैष्णवे चाथवा रौद्रे महाभागेऽथवा पुनः।
मन्त्रे कलेवरगते महामायाप्रपूजने ॥ ७८ ॥
मन्त्रन्यासे न वा कुर्यात् कुर्याद् वान्यत्र वाचरेत्।
अङ्गरागेषु सिन्दूरं पानेषु मदिरा तथा ॥ ७९ ॥
वस्त्रं रक्तं तु कौशेयं त्रिपुराप्रीतिदं मतम्।
त्रयो दीपाः प्रदातव्याः पञ्च वा सप्त भैरव ॥ ८० ॥
इतो न्यूनान् न प्रदद्यात् त्रिपुरायै कदाचन।
मल्लिकामालतीकुन्दं वको द्रोणः सिताम्बुजम् ॥ ८१ ॥
शुक्लपुष्पाणि[३६] त्रिपुराप्रीतिदानि तु भैरव।
रक्ताम्बुजं जवा रक्ता करवीरोऽथ कोमलः ॥ ८२ ॥
रक्तं त्रिपुरभैरव्याः प्रीतिदा स्नेहकाञ्चनैः।
इदं ते कथितं पुत्र संक्षेपादेव भैरव ॥ ८३ ॥

---

३५. प्रज्ञादि। ३६. ··· पक्षेषु।

अवाप्य सिद्धिं परमां स्वयं विस्तारयिष्यसि ।
आराध्य त्वं महामायामवाप्य च गणेशताम् ॥ ८४ ॥
कल्पमन्त्रौघमन्त्राणां भविष्यसि वितानकः[३७] ।
अस्यास्त्रिपुरभैरव्याः शुक्लरूपाणि यानि तु ॥ ८५ ॥
तानि सारस्वताख्यानि मन्त्राः सम्यगुदीरिताः ।
सरस्वती तु या देवी वीणापुस्तकधारिणी ॥ ८६ ॥
स्रक्[३८] कमण्डलुहस्ता च दक्षिणे शुक्लपर्णिका ।
महाचलस्य[३९] पृष्ठस्था सितपद्मोपरिस्थिता ॥ ८७ ॥
शुक्लवर्णा शुक्लवस्त्रा शुक्लाभरणभूषिता ।
तस्यास्तु वाग्भवाद्याभ्यां नेत्रबीजं द्वितीयकम् ॥ ८८ ॥
कृत्वान्ते[४०] विनियोज्यैव मन्त्रं प्राक्प्रतिपादितम् ।
वरदाभयहस्ता च मालापुस्तकधारिणी ॥ ८९ ॥
शुक्लपद्मासनगता सा परा वाग् सरस्वती ।
मालाबीजाद्यक्षरं तु द्विरुक्तं चार्ध[४१] चन्द्रकम् ॥ ९० ॥
मन्त्रमस्याः पुरा प्रोक्तं तन्त्रं सामान्यमीरितम् ।
एषा तु या रक्तवर्णा मुण्डमालाविभूषिता ॥ ९१ ॥
तस्याः प्रोक्तः पुरा मन्त्रः सा तु वृद्धा सरस्वती ।
षष्ठमन्त्रस्तथैतस्यास्त्रयोदशनिरूपणे ॥ ९२ ॥
एषा[४२] कवित्वशास्त्रौघ-तत्त्ववादविनिश्चये[४३] ।
सुखसम्पत्करा[४४] प्रोक्ता नित्यमेव तु भैरव ॥ ९३ ॥
अस्या व्यस्तसमस्तैश्च शुक्लरक्तादिभेदतः ।
चतुःषष्टिमूर्तयश्च त्रैपुरादुत वाग्भवम् ॥ ९४ ॥
महामाया योगनिद्रा मूलभूता जगत्प्रसूः ।
जगन्माता जगद्धात्री विद्याविद्यापरात्मिका ॥ ९५ ॥
तस्या एव महाभाग त्रिपुराद्या विभूतयः ।
प्रस्तुताः कथिता नित्यं ताः स्वयंगत एव हि ॥ ९६ ॥
इति ते कथितं पुत्र महादेव्या मनोहरम् ।
रहस्यं वामदाक्षिण्यं मन्त्रसिद्धिं शृणुष्व मे ॥ ९७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुराकवचं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

---

३७. विभावकः । ३८. शुक्लमण्डलहस्ता । ३९. महाचेलकपुरस्तु ।
४०. त्रिः कृत्वा । ४१. सर्ध.... । ४२. एताः । ४३. ...श्रयाः ।
४४. अत्र सम्यक् पुरा प्रोक्ता ।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

मन्त्रशुद्धिमवेक्ष्यैव गृह्णीयान्मन्त्रमुत्तमम् ।
तत्र सिद्धं[४५]सुसिद्धं च साध्यं शात्रवमेव च ॥ १ ॥
मन्त्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तद्विद्ध्यक्षरभेदतः ।
वर्णक्रमः शाश्वतस्तु यो मया भाषितः पुरा ॥ २ ॥
तत्रादौ भैरव ज्ञात्वा पश्चाच्चक्रं शृणुष्व मे ।
वर्णानां तु मुखादीनां वैष्णवीतन्त्रसंज्ञकः ॥ ३ ॥
यः प्रोक्तोऽभून्महामन्त्रस्तस्यासन्नक्षराणि तु ।
मूलभूतानि तान्येव ततोऽन्यानपि वर्धयेत् ॥ ४ ॥
अकारश्च ककारश्च चटकारौ तथैव च ।
तपकारौ यकारश्च वर्गाद्याः परिकीर्तिताः ॥ ५ ॥
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ[४६] ॡ एतेऽदीर्घदीर्घकाः ।
[४७]ए ऐ ओ औ विसर्गश्च बिन्द्वादिर्याज्ञिकस्तथा ॥ ६ ॥
[४८]ध्वनेरन्तरजाश्चेति कीर्तितास्तु स्वरा अमी ।
खकारश्च गकारश्च घ ङो वर्गः प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥
व्यञ्जनकारादिछजौ टकारौ परमस्मृतः ।
ठकारश्च ङकारश्च भैरवशब्दादिरेव च ॥ ८ ॥
णकारान्तस्तृतीयोऽयं वर्गोष्ठादिः प्रकीर्तितः ।
थकारश्च दकारश्च धर्मशब्दादिरेव च ॥ ९ ॥
नबशब्दस्य चैवादिश्चतुर्थो वर्ग उच्यते ।
फलशब्दस्य यश्चादिर्बहुशब्दादिरेव च ॥ १० ॥
भकारो म न शब्दादिः पञ्चमो वर्ग उच्यते ।
यकारश्च रकारश्च लकारो वस्तथैव च ॥ ११ ॥
एभिश्चतुर्वर्गकोऽयं षष्ठो भैरव उच्यते ।
शषसा हः क्षकारश्च संयोगः परिवेदकः ॥ १२ ॥
पंचभिः शेषवर्गोऽयं सप्तमः परिकीर्तितः ।
संयोगयोगसंलोमप्रतिलोमैरिमे सुत ॥ १३ ॥

---

४५. शुद्धि । ४६. ···दीर्घौ ऌ ॡस्तु दीघकाः ।
४७. एदैदौ च सदादिधीकादि··· । ४८. ध्यानानन्तरयश्चेति ·· ।
४९. व्यञ्जनादौ ककारादिः···· ।

वर्णाः स्युर्मन्त्रनामादौ वाङ्मात्रेऽपि च भैरव ।
चतुर्वर्गप्रदा वर्णाः सुखदुःखकरास्तथा ॥ १४ ॥
रोगं च तेजसम्पूज्यपूजकाः परिकीर्तिताः ।
अहं विष्णुश्च ब्रह्मा च गायत्री ब्रह्ममातृकाः ॥ १५ ॥
अपरं ब्रह्मवर्णार्थे परब्रह्मसुखप्रदम् ।
अपरं ब्रह्मकुशलः परब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥
सिसृक्षुरीश्वरो वर्णाञ्ज[५०]गन्ति स्वेच्छया पुनः ।
ससर्ज मम[५१] वक्त्रे तां ब्रह्मवक्त्रे च वै न्यधात् ॥ १७ ॥
अहं तु सकलान् वर्णान् न्यस्य भैरव तन्त्रकम् ।
अकारबहुलं[५२] पुत्र ज्ञानमार्गं विवर्धयन् ॥ १८ ॥
य[५३] इमे गदिता वर्णा मया वर्णविनिश्चये ।
मन्त्रशुद्धिविवेकार्थं वर्णचक्रं ततः शृणु ॥ १९ ॥
शक्तिशम्भुस्वरूपिण्यो रेखे द्वे प्रथमं न्यसेत् ।
तन्मध्यतः [५४]पुनारेखे विष्णुलक्ष्मीतले तथा ॥ २० ॥
तयोस्तु रेखयोर्मध्ये द्वे रेखे समतो न्यसेत् ।
तस्य चक्रस्य चारेषु रेखास्तु पारसंख्यया ॥ २१ ॥
चतस्रस्तु प्रदातव्याः स्वरमध्ये तु भैरव ।
भिन्नानां च तथा वर्णाः सन्धयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥
नेमयस्तु चतस्रोऽस्य सन्धिमध्येषु कीर्तिताः ।
अष्टारसंयुतं चक्रं चतुर्नेमिसमन्वितम् ॥ २३ ॥
बहिर्वेष्टनसंयुक्तं वर्णचक्रं प्रकीर्तितम् ।
मेषादीनां च राशीनामुदयास्तप्रतिज्ञया ॥ २४ ॥
इदमेव भवेच्चक्रं ज्ञानश्रीवृद्धि-कारकम् ।
इदं चक्रं लिखित्वा तु समभूमावुदङ्मुखः ॥ २५ ॥
प्राङ्मुखो वा लिखेद् वर्णाञ्छुचिरिष्टं नमन् गुरुम् ।
प्रदक्षिणं लिखेत् तस्मिन् वर्णास्तेष्वेव तु क्रमात् ॥ २६ ॥
[५५]पुरोनेमावकारं तु रकारं चापि वै लिखेत् ।
अकारं वर्जयेद् दीर्घमीकारं च स्वरेषु वै ॥ २७ ॥
अकरादिक्षकारान्तं क्त्रा[५६] इ न ञ ण वर्जितम् ।
प्रदक्षिणक्रमादेव लिखित्वा वर्णसंचयम् ॥ २८ ॥

---

५०. वर्णान् । ५१. सवैतान् । ५२. अकार्षं वदनं । ५३. त ।
५४. पुरा । ५५. पुरो नेषारकबिन्दु ककारं··· । ५६. ऋ ऌ ङं ञ च··· ।

स्वनामाद्यक्षरं गृह्य कुर्यात् तु गणनक्रमम् ।
मन्त्रस्याद्यक्षरं यावत् सिद्धाद्यं तत्र योजयेत् ॥ २९ ॥
नवैकपंचके सिद्धः साध्यः षड्युग्मपङ्क्तिषु ।
त्रिसप्तैकादशेष्वेव सुसिद्धः परिकीर्तितः ॥ ३० ॥
द्वादशाष्टचतुर्थेषु [५७]शास्त्रे वः परिकीर्तितः ।
सिद्धेनैवाचिरात् सिद्धिः साध्यः कालेन सिध्यति ॥ ३१ ॥*
क्रमान्नाशयते शत्रुः सुसिद्धः सिद्धिदोऽचिरात् ।
यो यो वर्णक्रमः प्रोक्तो मन्त्रे दक्षिणगोचरे ॥ ३२ ॥
वाम्याराधनमन्त्रेषु क्रमं शृण्विह भैरव ।
ऋॡ द्वयं ङ ञ ण ना वर्ज्याश्च वर्णगोचरे ॥ ३३ ॥
लिखेद् वामक्रमेणैव तत्र वर्णांस्तु मन्त्रवित् ।*
नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रणवस्य च ॥ ३४ ॥
एकाक्षरद्वयक्षराणां न सिद्धादिविचिन्तनम् ।
बीजेषु चापि सर्वेषु दीक्षार्थेषु च भैरव ॥ ३५ ॥
सिद्धादिचिन्ता नो कार्या ग्राह्यास्तु दश वश्यकम् ।
सुसिद्धं कामदं ग्राह्यं साध्यसिद्धविचारणात् ॥ ३६ ॥
न ग्राह्यः शात्रवो [५८]धीरैर्गृहीत्वाप्नोति चापदम् ।
यो यस्यैकाक्षरो मन्त्रस्तन्नाम्ना स निगद्यते ॥ ३७ ॥*
सहितश्चन्द्रबिन्दुभ्यां तद्बीजमिति गद्यते ।
तथा शक्रो नकारः स्यात् सार्धचन्द्रः सबिन्दुकः ॥ ३८ ॥
स एव शक्रबीजं स्यात् तथान्यत्रापि योजयेत् ।*
मन्त्रोद्धारेषु सर्वत्र परतः परतः पुरः ॥ ३९ ॥
पूर्वतोऽपि परे कार्यमनुक्तः पूर्वपक्षकः ।
यदा षोडशसाहस्रं वैष्णव्या मन्त्रसञ्चयम् ॥ ४० ॥
चक्रे निरीक्ष्यते तत्र षोडशारं तु चक्रकम् ।
विंशतिस्तु सहस्राणि त्रिपुराया यदीक्षते ॥ ४१ ॥
द्वात्रिंशारं तत्र चक्रं लेखनीयं सदा बुधैः ।
इदमेव महाचक्रं षोडशारादिकं कृती ॥ ४२ ॥
कुर्यादधिकरेखाभिर्मन्त्रशुद्ध्यन्तरे सुत[५९] ।
इयं ते कथिता पुत्र मन्त्रसिद्धिरभीष्टदा ॥ ४३ ॥*

---

५७. शक्रवर्णास्तु मन्त्रवित् । * अधिको मुद्रितपुस्तके ।
५८. गृहीत्वापदमाप्नुयात् । ५९. भैरव ।

जानाति सम्यक् य इमां स जयी काममाप्नुयात् ।
रहस्यं परमं पुत्र प्रयोगादिप्रकारतः ॥ ४४ ॥
वक्ष्यामि तत् समासेन शृणु वेतालभैरव ।*
दन्तः पक्षविडालस्य तत्त्वचा परिवेष्टितः ॥ ४५ ॥
निर्माल्येन तु वैष्णव्या तत् संवेष्ट्य गुणत्रयम् ।
तत् तद् वा वामसूत्रस्य तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ ४६ ॥
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ मन्त्राणां शतमादितः[६०] ।
सञ्चयेदथ[६१] वैष्णव्या अष्टम्यां नियतेन्द्रियः ॥ ४७ ॥
ततस्तु दक्षिणे बाहौ धार्यं यन्त्रोत्तमं बुधैः ।
ततो द्वादशसिद्धिः स्याद्धर्ताचेन्नाभितित्तिलीम्[६२] ॥ ४८ ॥
जयः संग्रामवादेषु शरीरस्याप्यरोगिता ।
वशकृद्राजपुत्राणां राज्ञामपि च सन्ततम् ॥ ४९ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च नो यान्ति नेत्रगोचरम् ।
योषितां [६३]समदानां तु वशकृच्चिन्तनात्[६४] सकृत् ॥ ५० ॥
रुधिराणां श्लेष्मणां च धातूनां स्तम्भनं तथा ।
तेजसां स्तम्भकं चैव चक्षुस्तेजःप्रदं तथा ॥ ५१ ॥
मूर्ध्नि पक्षविडालस्य हस्तं दत्त्वा शतत्रयम् ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रं तु जप्त्वा तं स्थापयेद् गृहे ॥ ५२ ॥*
तं विडालं तु या पश्येन्मलिनी वनिता सुत ।
नापुत्रा सा भवित्री तु कदाचिदपि भैरव ॥ ५३ ॥
तादृक् पक्षविडालस्तु यस्य तिष्ठति मन्दिरे ।
मृतापत्यापि तद्गेहे जीवत्पुत्रा प्रजायते ॥ ५४ ॥
कोकिलो भृङ्गराजो वा चकोरो वा शुकोऽथवा ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण मन्त्रितो यत्र तिष्ठति ॥ ५५ ॥
विघ्नं न मन्दिरे तस्य भवितृ सुप्रजा भवेत् ।
न सर्पास्तत्र गच्छन्ति गताः खादन्ति नो नरान् ॥ ५६ ॥
नारी न बन्धकी तस्य मन्दिरेऽपि प्रजायते ।
पञ्चमूर्तेश्चण्डिकाया निर्माल्यानि च पञ्चमः ॥ ५७ ॥
तेषां बलीनां मांसेन स्थाल्यां पक्त्वा दिनत्रयम् ।*
अष्टम्यां तत्पुनर्देव्यै दत्त्वा तन्मन्त्रमन्त्रितैः ॥ ५८ ॥

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिकः । ६०. मन्दासु गतमादितः । ६१. संजपेदथ ।
६२. चेन्नाति तिंतिडी । ६३. प्रमदानां । ६४. चित्रपापकृत् ।

तोयैरभ्युक्ष्य भुञ्जीयान्मनसा चिन्तयेच्छिवाम् ।
तस्मिन् भुक्ते तु दीर्घायुर्जरा[६५] शोकविवर्जितः ॥ ५९ ॥
तेजस्वी शत्रुदमनः कविर्वाग्मी च जायते ।
ललाटे मूर्ध्नि कण्ठे च बाह्वोः पाण्योस्तथा हृदि ॥ ६० ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यानि चाष्टाक्षराणि च ।
लिखित्वा तानि चैतेषु स्थानेषु मन्त्रविद् बुधः ॥ ६१ ॥
कुङ्कुमं क्षीरमलयजातपङ्कः सुयावकैः ।
अष्टम्यां संयतो भूत्वा नवम्यां प्रथमं नरः ॥ ६२ ॥
प्रतिष्ठाने न्यस्य करमष्टावष्टौ जपेद् बुधः ।
आवर्तनेन मन्त्राणां ततोऽनु पूजयेच्छिवाम् ॥ ६३ ॥
ततस्तस्मिन् दिने देव्यै विजातीयं बलित्रयम् ।
दत्त्वा सहस्रं मन्त्रस्य संख्यया जपमारभेत् ॥ ६४ ॥
जपान्ते तु हविर्भुक्त्वा संयतो रजनीं नयेत् ।
एवं सकृत्कृते पुत्र रणे तस्य पराजयः ॥ ६५ ॥
कदाचिदपि नो भूयान्न च वादेषु शास्त्रतः ।
विधि[६६]मेवं सकृत् कृत्वा रणकाले यथा तथा ॥ ६६ ॥
सदा लिखेत् क्षत्रियस्तु विजयाय रणेषु च ।
अपरं तु रणाष्टाङ्गं गुह्यमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ६७ ॥
अनेनैव तु गुह्येन विजयी त्वं भविष्यसि ।
इति नौ कथितं सर्वं गुह्याद् गुह्यतरं शुभम्[६७] ॥ ६८ ॥
सुखसम्पत्करं मन्त्रं यन्त्रतन्त्रसमन्वितम् ।
यच्छ्रोतुं त्रिदशाः सर्वे नित्यं वाञ्छन्ति चामृतम् ॥ ६९ ॥
तदिदन्ते समाख्यातं पुत्र वेतालभैरव ।
एतत् सर्वं न यो ज्ञात्वा तत्त्वतः पुत्र भैरव ॥ ७० ॥
स कामानखिलान् प्राप्य नित्यं कैवल्यमाप्नुयात् ।
शृणोति यः सकृदिदं कथ्यमानो द्विजोत्तमैः ॥ ७१ ॥
न तस्य विघ्ना जायन्ते नापुत्रः स च जायते ।
दीर्घायुर्बलयुक्तश्च नित्यं प्रमुदितः कृती ॥ ७२ ॥
वाञ्छितार्थमवाप्नोति देवीगृहमवाप्नुयात् ।
गच्छतं कामरूपान्तःपीठं नीलाचलाह्वयम् ॥ ७३ ॥

---

६५. जरापाक··· । ६६. विधिनैवं । ६७. परम् ।

जानाति सम्यक् य इमां स जयी काममाप्नुयात् ।
रहस्यं परमं पुत्र प्रयोगादिप्रकारतः ॥ ४४ ॥
वक्ष्यामि तत् समासेन श्रृणु वेतालभैरव ।*
दन्तः पक्षविडालस्य तत्त्वचा परिवेष्टितः ॥ ४५ ॥
निर्माल्येन तु वैष्णव्या तत् संवेष्ट्य गुणत्रयम् ।
तत् तद् वा वामसूत्रस्य तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ ४६ ॥

गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ मन्त्राणां शतमादितः[६०] ।
सञ्चयेदथ[६१] वैष्णव्या अष्टम्यां नियतेन्द्रियः ॥ ४७ ॥
ततस्तु दक्षिणे बाहौ धार्यं यन्त्रोत्तमं बुधैः ।
ततो द्वादशसिद्धिः स्याद्धर्ताचेन्नाभितितित्तिलीम्[६२] ॥ ४८ ॥
जयः संग्रामवादेषु शरीरस्याप्यरोगिता ।
वशकृद्राजपुत्राणां राज्ञामपि च सन्ततम् ॥ ४९ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च नो यान्ति नेत्रगोचरम् ।

योषितां[६३] समदानां तु वशकृच्चिन्तनात्[६४] सकृत् ॥ ५० ॥
रुधिराणां श्लेष्मणां च धातूनां स्तम्भनं तथा ।
तेजसां स्तम्भकं चैव चक्षुस्तेजःप्रदं तथा ॥ ५१ ॥
मूर्ध्नि पक्षविडालस्य हस्तं दत्त्वा शतत्रयम् ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रं तु जप्त्वा तं स्थापयेद् गृहे ॥ ५२ ॥*

तं विडालं तु या पश्येन्मलिनी वनिता सुत ।
नापुत्रा सा भवित्री तु कदाचिदपि भैरव ॥ ५३ ॥
तादृक् पक्षविडालस्तु यस्य तिष्ठति मन्दिरे ।
मृतापत्यापि तद्गेहे जीवत्पुत्रा प्रजायते ॥ ५४ ॥

कोकिलो भृङ्गराजो वा चकोरो वा शुकोऽथवा ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण मन्त्रितो यत्र तिष्ठति ॥ ५५ ॥
विघ्नं न मन्दिरे तस्य भवितृ सुप्रजा भवेत् ।
न सर्पास्तत्र गच्छन्ति गताः खादन्ति नो नरान् ॥ ५६ ॥
नारी न बन्धकी तस्य मन्दिरेऽपि प्रजायते ।
पञ्चमूर्तेश्चण्डिकाया निर्माल्यानि च पञ्चमः ॥ ५७ ॥
तेषां वलीनां मांसेन स्थाल्यां पक्त्वा दिनत्रयम् ।*
अष्टम्यां तत्पुनर्देव्यै दत्त्वा तन्मन्त्रमन्त्रितैः ॥ ५८ ॥

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिकः । ६०. मन्दासु गतमादितः । ६१. संजपेदथ ।
६२. चेन्नाति तिंतिडी । ६३. प्रमदानां । ६४. चित्रपापकृत् ।

तोयैरभ्युक्ष्य भुञ्जीयान्मनसा चिन्तयेच्छिवाम्।
तस्मिन् भुक्ते तु दीर्घायुर्जरा[६५] शोकविवर्जितः॥ ५९॥
तेजस्वी शत्रुदमनः कविर्वाग्मी च जायते।
ललाटे मूर्ध्नि कण्ठे च बाह्वोः पाण्योस्तथा हृदि॥ ६०॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यानि चाष्टाक्षराणि च।
लिखित्वा तानि चैतेषु स्थानेषु मन्त्रविद् बुधः॥ ६१॥
कुङ्कुमं क्षीरमलयजातपङ्कः सुयावकैः।
अष्टम्यां संयतो भूत्वा नवम्यां प्रथमं नरः॥ ६२॥
प्रतिष्ठाने न्यस्य करमष्टावष्टौ जपेद् बुधः।
आवर्तनेन मन्त्राणां ततोऽनु पूजयेच्छिवाम्॥ ६३॥
ततस्तस्मिन् दिने देव्यै विजातीयं बलित्रयम्।
दत्त्वा सहस्रं मन्त्रस्य संख्यया जपमारभेत्॥ ६४॥
जपान्ते तु हविर्भुक्त्वा संयतो रजनीं नयेत्।
एवं सकृत्कृते पुत्र रणे तस्य पराजयः॥ ६५॥
कदाचिदपि नो भूयान्न च वादेषु शास्त्रतः।
विधि[६६]मेवं सकृत् कृत्वा रणकाले यथा तथा॥ ६६॥
सदा लिखेत् क्षत्रियस्तु विजयाय रणेषु च।
अपरं तु रणाष्टाङ्गं गृह्यमेतत् प्रकीर्तितम्॥ ६७॥
अनेनैव तु गुह्येन विजयी त्वं भविष्यसि।
इति नौ कथितं सर्वं गुह्याद् गुह्यतरं शुभम्[६७]॥ ६८॥
सुखसम्पत्करं मन्त्रं यन्त्रतन्त्रसमन्वितम्।
यच्छ्रोतुं त्रिदशाः सर्वे नित्यं वाञ्छन्ति चामृतम्॥ ६९॥
तदिदन्ते समाख्यातं पुत्र वेतालभैरव।
एतत् सर्वं न यो ज्ञात्वा तत्त्वतः पुत्र भैरव॥ ७०॥
स कामानखिलान् प्राप्य नित्यं कैवल्यमाप्नुयात्।
शृणोति यः सकृदिदं कथ्यमानो द्विजोत्तमैः॥ ७१॥
न तस्य विघ्ना जायन्ते नापुत्रः स च जायते।
दीर्घायुर्बलयुक्तश्च नित्यं प्रमुदितः कृती॥ ७२॥
वाञ्छितार्थमवाप्नोति देवीगृहमवाप्नुयात्।
गच्छतं कामरूपान्तःपीठं नीलाचलाह्वयम्॥ ७३॥

---

६५. जरा|पा|क... । ६६. विधिनैवं । ६७. परम् ।

कामाख्यानिलयं गुह्यं कुब्जिकापीठसंज्ञकम्।
आकाशगङ्गा यत्रास्ति तज्जलैरभिषिच्य च॥ ७४॥
तत्राराधयतं पुत्रौ महामायां जगन्मयीम्।
मा प्रसन्नाचिराद् देवी वरदा नौ भविष्यति॥ ७५॥

और्व उवाच—

इत्युक्त्वा वृषभारूढस्तदा वेतालभैरवौ।
स पुत्रौ तु परित्यज्य तत्रैवान्तरधीयत॥ ७६॥
ततस्तौ नाटकं शैलं परित्यज्य तपस्विनौ।*
आसेदतुर्महात्मानं वसिष्ठं ब्रह्मणः सुतम्॥ ७७॥
स तु सन्ध्याचलगतस्तौ दृष्ट्वा समुपस्थितौ।
सभाजयामास मुनिः शिष्यवत् तौ हरात्मजौ॥ ७८॥
ततस्तस्योपदेशेन वसिष्ठस्य महात्मनः।*
जग्मतुस्तौ महाशैलं नीलं कामाख्ययागतम्॥ ७९॥
तत्र गत्वा महात्मानौ वैष्णवीतन्त्रगोचरम्।
आदाय यजतां देवीं महामायां जगन्मयीम्॥ ८०॥
भैरवाख्यस्य लिङ्गस्य निकटस्थौ शिवात्मनः।
आकाशगङ्गामासाद्य स्थण्डिले मण्डलोत्तमम॥ ८१॥
विधाय नरशार्दूलौ जेपतुर्मन्त्रमुत्तमम्।
त्वं जप्त्वा विधिवन्मन्त्रं सिद्धमष्टाक्षरात्मकम्॥ ८२॥
वेतालस्य तथासाध्यमष्टलक्षाणि संख्यया।
त्रिभिर्वर्षैस्तु लक्षाणां चतुर्णामन्ततस्ततः॥ ८३॥
त्रिधा पुरश्चरणं च तौ भक्त्या समकुर्वताम्।
यद्यदोत्तरतन्त्रोक्तं कल्पोक्तं पूजने कृतम्॥ ८४॥
तत्सर्वं चक्रतुस्तौ तु तं त्रिहायणसंवृतौ[६८]।
कामाख्या त्रिपुरादीनामन्यासामपि पूजनम्॥ ८५॥
सकृत्कृत्वा पीठयात्रां चेरतुर्विधिवत् तदा।
एवं तौ बद्धकवचौ कृतन्यासौ हरात्मजौ॥ ८६॥
सुप्रीता चानुजग्राह महामायाऽथ तौ तदा।
ध्यानस्थयोस्तु जपतोर्यजतोश्च जगन्मयीम्॥ ८७॥
शिवलिङ्गं विनिर्भिद्य तदा प्रत्यक्षतां गता।
तस्यां विनिर्गतायां तु शिवलिङ्गं त्रिधाऽभवत्॥ ८८॥

---

* अधिको मुद्रितपुस्तके। ६८. ...मध्यतः।

भैरवो भैरवी चेति हेरुकश्च तथा त्रयः।
तां ददर्श तदा देवीं वेतालो भैरवस्तदा ॥ ८९ ॥
यथा ध्यानगता दृष्टा बहिश्चापि तथा तथा।
तां दृष्ट्वा चारु सर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम् ॥ ९० ॥
वरदाभयहस्तां च सिद्धसूत्रासिधारिणीम्।
रक्तपद्मप्रतीकाशां सितप्रेतासनस्थिताम् ॥ ९१ ॥
निमील्य नयनद्वन्द्वं तदा वेतालभैरवौ।
त्राहि त्राहि महामाये ऊचतुस्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ९२ ॥
ततस्तया महादेव्या तेजसाप्यायितौ तु तौ।
पस्पर्श वरहस्तस्य चाग्रभागेन वैष्णवी ॥ ९३ ॥
आप्यायितौ ततस्तौ तु स्पृष्टावपि तथा पुनः।
आसेदतुश्च देवत्वं मनुष्यत्वं विहाय च ॥ ९४ ॥
देवभूतौ तदा तौ तु महामायां जगन्मयीम्।
स्तुतिभिर्नतिभिश्चेति तदा तुष्टुवतुः शिवाम् ॥ ९५ ॥

वेतालभैरवावूचतुः—

जय जय देवि सुरगणार्चितपङ्कजे[६९]
विश्वस्य भूतिभाविनि शशिमौलि-केलिभाविनि गिरिजे।
नेत्रत्रयनिर्जितविवस्वद्विधुवह्निकान्तितुलितकमलजे
मध्यनेत्रनतभ्रूभङ्गभक्तरक्तमतिचयज्वायकविमलजे ॥ ९६ ॥
आज्ञाचक्रान्तशान्तनवकोटि-
करोटितुल्यकान्त शान्तशशधरे।
बहुमायकायभोगयोगतरङ्ग-
[७०]सारस्य पद्मवसुचरे ॥ ९७ ॥
[७१]त्रिनाडिनीतमध्यबद्धविष्किर-
वल्लभशुभसुषुम्नसमाधारपरे।
[७२]विबुधरत्नविमोदिविश्वमूर्ति-
महोमयानवसि[७३] षट्चक्रधरे[७४] ॥ ९८ ॥
आदिषोडशचक्रचुम्बितचारुदेहपीनतुङ्ग-
कुचाचलालिंगितभूमिमध्यनागशाकगते[७५]।

---

६९. गणार्चितपादपंकजे। ७०. ....सारारसास्यप्रध्वंसकरे।
७१. त्रिमात्रिगोमाध्यबहुविस्मितवल्लभसुषुम्नगमाधारपरे।
७२. विविध....। ७३. ... मवसि। ७४. ....परे। ७५. ...नाकभाक...।

सिद्धसूत्रवराभयासिशान्तपातक[76]-
पङ्कजातकमूलमणिचतुर्बाहुयुते ।
ज्ञानतालकमन्त्रतन्त्रयोगियोग-
निबद्धसारसूतभङ्ग[77] विनोदकृते ।
आत्मतत्त्वपरैकशाररत्नहारक-
मुक्तिसूक्तिविवेकसितप्रेतरते ॥ ९९ ॥
रत्नसारसमस्तसङ्गतरंगराग-
वियोगिमन्त्रशान्तपुरविशेषकृते ।
योगिनीगणनृत्यभृत्यभावन-
निबद्धनद्धहारकङ्कणमुख्यभूषणपते ।
साट्टहासविनोदमोदितमुक्त-
केशसुरेशनिबद्धदेहपुटे ।
देहि देवि शोकशोचनबन्ध-
मोचनपापशातनशुद्धमते[78] ॥ १०० ॥
सर्वविद्यात्मिकां गुह्यां मन्त्रयन्त्रमयीं शिवाम् ।
प्रणमामि महामायां लोके वेदे च कीर्तिताम् ॥ १०१ ॥
परापरात्मिकां नित्यां साध्याधारैकसंस्थिताम् ।
कामाह्लादकरीं कान्तां त्वां नमामि जगन्मयीम् ॥ १०२ ॥
प्रपञ्चपरमव्यक्तं जगदेकविवर्धिनि[79] ।
प्रभावेनार्धरक्तांगि[80] देवि तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ १०३ ॥
कामाख्या नित्यरूपाख्या महामाया सरस्वती ।
या लक्ष्मीर्विष्णुवक्षःस्था नमावो ह्यच्युतां शिवाम् ॥ १०४ ॥
मन्त्राणि यस्यास्तन्त्राणि सहस्राणि च षोडश ।
मन्त्रयन्त्रात्मके तुभ्यं नमोऽस्तु मम पार्वति ॥ १०५ ॥
इति स्तुता ततस्ताभ्यां महामाया जगत्प्रसूः ।
उवाच मुदिता चेति वरं वरयतं युवाम् ॥ १०६ ॥
प्रत्यक्षतो महामायां पूर्ववद् ध्यानगोचराम् ।
तौ दृष्ट्वा भर्गतनयौ प्राहतुश्चेदमुत्तमम् ॥ १०७ ॥

वेतालभैरवावूचतुः ।

देव्यनेन शरीरेण भवत्याः शङ्करस्य च ।
प्रार्थये शाश्वतीं सेवां नित्यं यावद्रविः शशी ॥ १०८ ॥

---

७६. ....शातपातक । ७७. ....सारभूतस्थान.... ।
७८. शुभ । ७९. जगदंगविवर्धनि । ८०. रक्तांगि ।

नान्यं वरं साधयावो माये त्वत्तो जगन्मयि ।
अन्यथा तव भक्त्यैव स्थास्यावो गिरिकन्दरे[८१] ॥ १०९ ॥
एवमुक्ता यतस्ताभ्यां महामाया जगन्मयी ।
एवमस्त्विवति चोवाच भवत्येवं मुहुर्मुहुः ॥ ११० ॥
एवं [८२]सिद्धिर्जगद्धात्री प्रोक्ता स्वस्याथ चूचुके ।
निष्पीड्य [८३]कारयामास क्षीरधाराद्वयं शिवा ॥ १११ ॥
ततस्तु निःसृतं क्षीरं पाययामास भैरवम् ।
वेतालं च महाराज पिबतस्तौ च तत् तदा ॥ ११२ ॥
पीत्वा तौ च तदा क्षीरं देवत्वं प्राप्य शाश्वतम् ।
अजरौ चामरौ भूतौ महातेजस्विनौ शुभौ ॥ ११३ ॥
तस्यास्तु क्षीरममृतं तत् पीत्वा तौ महाबलौ[८४] ।
पीयूषपानात् सजातौ ततस्तौ प्राह वैष्णवी ॥ ११४ ॥
गणानां देवदेवस्य भवतश्चाधिपौ युवाम् ।
द्वाःस्थौ च नित्यमासन्नौ नन्दिवद् भवतं सुतौ ॥ ११५ ॥

और्व उवाच—

इत्युक्त्वा हरसम्मत्या महामाया जगन्मयी ।
योगिनीगणसंयुक्ता तत्रैवान्तरधीयत ॥ ११६ ॥
अन्तर्हितायां तस्यां तु तदा वेतालभैरवौ ।
मुदितौ परमप्रीतौ कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥ १'७ ॥
अथागच्छद् देवगणैः सार्धं सप्रमथो हरः ।
सभाजयितुमत्यर्थं पुत्रौ वेतालभैरवौ ॥ ११८ ॥
तावासाद्य महादेवस्तदा नीलाह्वयं गिरिम् ।
सकलं दर्शयामास पीठं तु स्थानभेदतः ॥ ११९ ॥
कामाख्याया गुहां तत्र दर्शयित्वा मनोभवाम् ।
ततः स्वीयां कामगुहां छायाच्छत्रं स्वमालयम् ॥ १२० ॥
स्वकीयं पञ्चमूर्तीनां संस्थानं चाप्यदर्शयत् ।
कामरूपस्य सकलं पीठं देवमयं तथा ॥ १२१ ॥
प्रत्येकं दर्शयामास क्रमतस्त्रिपुरान्तकः ।
प्रथमं करतोयाख्यां सत्यगङ्गां सदाशिवाम् ।
पुण्यतोयमयीं शुद्धां दक्षिणाब्ध्येकगामिनीम् ॥ १२२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वेतालभैरवयोः सिद्धिलाभो नाम
षटसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

---

८१. ···मन्दिरे । ८२. एवमिदं । ८३. सारयामास । ८४. महात्मनौ ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

और्व्व उवाच—

ततस्तु कामरूपस्य वायव्यां त्रिपुरान्तकः।
आत्मनो लिङ्गमतुलं जल्पीशाख्यं व्यदर्शयत् ॥ १ ॥
यत्र नन्दी समाराध्य महादेवं जगत्पतिम्।
अभिन्नेन शरीरेण गाणपत्यमवाप्नुयात्[८५] ॥ २ ॥
नन्दिकुण्डं महाकुण्डं यत्र नन्दी पुराऽकरोत्।
अभिषेकं लब्धवरं पीतं तोयमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च कृतकृत्यो नरोत्तमः।
हरस्य सदनं याति नन्दिनोऽपि महाश्रियः[८६] ॥ ४ ॥
तस्यासन्ने महादेवीं नातिदूरे व्यवस्थिताम्।
सिद्धेश्वरीं योनिरूपां महामायां जगन्मयीम् ॥ ५ ॥
त्र्यम्बको दर्शयामास भैरवाय महात्मने।
यत्र नन्दी महामायामाज्ञया शशिधारिणः ॥ ६ ॥
स्तुतिभिर्नतिभिः पूज्य गाणपत्यमवाप्नुयात्[८७]।
सुवर्णमानसस्तत्र नदमुख्यो मनोहरः ॥ ७ ॥
नन्दिनोऽनुग्रहायाशु मानसाख्यं [८८]सरस्तु तत्।
आगतं चाज्ञया शम्भोः पूर्वमेव तपस्यतः ॥ ८ ॥
जटोद्भवा तत्र नदी हिमवत्प्रभवा शुभा।
यस्यां स्नात्वा नरः पुण्यमाप्नोति जाह्नवीसमम् ॥ ९ ॥
गौरीविवाहसमये सर्वैर्मातृगणैः कृतः।
जलाभिषेको भर्गस्य जटाजूटेषु यः पुरा ॥ १० ॥
तैस्तोयैरभवद्यस्माज्जटोदाख्या नदी ततः।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां स्नात्वा यस्यां नरो व्रजेत् ॥ ११ ॥
पूर्णायुर्वै नरश्रेष्ठ शिवस्य सदनं प्रति।
द्वापरस्य तु या[८९] गङ्गा त्रिःस्रोताख्या सरिद्वरा ॥ १२ ॥
हिमवत्प्रभवा शुद्धचन्द्रविम्बाद् विनिर्गता।
यस्यां स्नात्वा महामाघ्यां मातृयोनौ न जायते ॥ १३ ॥

---

८५. मवाप्तवान्। ८६. ममप्रियः। ८७. ···मवाप्तवान्।
८८. सरः कृतम्। ८९. सा।

चन्द्रसूर्यग्रहे स्नात्वा कैवल्यं प्राप्नुयान्नरः।
सितप्रभा नाम नदी महादेवावतारिता ॥ १४ ॥
हिमवत्प्रभवा सापि सिता दक्ष[९०]समुद्रगा।
तस्यां दशहरायां तु दशम्यां शुक्लपक्षके ॥ १५ ॥
स्नात्वा विष्णुगृहे याति नरो वै मुक्तपातकः।
नवतोया नाम नदी ततः पूर्वस्थिता पुरा ॥ १६ ॥
नवं नवं नवं नित्यं कुर्वन्ती सा पुनाति हि।
नवतोया ततः प्रोक्ता हिमवत्प्रभवैव सा ॥ १७ ॥
तस्यां स्नात्वा महामाघ्यां नरो गच्छति देवताम्।
सम्पूर्णं माघमासं तु स्नात्वा विष्णुगृहं व्रजेत् ॥ १८ ॥
तासां नदीनां तु पतिरगदो नाम वै नदः।
पीठपूर्वे स्थितः पुण्यो ब्रह्मपादसमुद्भवः ॥ १९ ॥
हिमवत्प्रभवः सोऽपि देवगन्धर्वसेवितः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो ब्रह्मगृहं व्रजेत् ॥ २० ॥
कार्तिकं सकलं मासं यो गदाख्ये महानदे।*
स्नानं करोति मनुजस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१ ॥
इह लोके त्वरोगः स प्राप्य चैवोत्तमं सुखम्।
शेषे ब्रह्मगृहं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥
नन्दिकुण्डे नरः स्नात्वा नक्तं कुर्यात् तदा निशि।
ततः परस्मिन् दिवसे गच्छेज्जल्पीशमन्दिरम् ॥ २३ ॥
तत्र स्नात्वा महानद्यां जल्पीशं प्रतिपूज्य च।
तस्यां निशि हविष्याशी संयतस्तां निशां नयेत् ॥ २४ ॥
ततोऽनुदिवसे प्राप्ते गच्छेत् सिद्धेश्वरीं शिवाम्।
तां पूजयेत् तथाष्टम्यामुपवासं तथाचरेत् ॥ २५ ॥
चतुर्भुजा तु सा देवी पीनोन्नतपयोधरा।
सिन्दूरपुञ्जसङ्काशा धत्ते कर्त्रीं च खर्परम् ॥ २६ ॥
दक्षिणे बामबाहुभ्यामभीतिवरदायिनी।

---

९०. सिततोया।

* तासां नदीनां पतिरगदो नाम वै नदः।
पीठपूर्वे स्थितः पुण्ये ब्रह्मपादसमुद्भवः॥
हिमवत्प्रभवः सोऽपि देवगन्धर्वसेवितः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो ब्रह्मगृहं व्रजेत् ॥—पाण्डुलिप्यामधिकः।

जटामण्डितशीर्षा च [९१]रक्तपद्मोपरिस्थिता ॥ २७ ॥
पंचाक्षरजपान्तादिर्मन्त्रेऽस्याः परिकीर्तितः ।
कामख्यातन्त्रमेवास्याः पूजने तन्त्रमीरितम् ॥ २८ ॥
एवं कृत्वा नरो धीरः पुनर्योनौ न जायते ।
जामदग्न्यभयाद् भीताः क्षत्रियाः पूर्वमेव ये ॥ २९ ॥
[९२]म्लेच्छच्छद्मान्युपादाय जल्पीशं शरणं गताः ।
ते[९३] म्लेच्छवाचः सततमार्यवाचश्च सर्वदा ॥ ३० ॥
जल्पीशं सेवमानास्ते गोपायन्ति च तं हरम् ।
त एव तु गणास्तस्य महाराजमनोहराः ॥ ३१ ॥
तोषयित्वा तथा सर्वान् जल्पीशं पूजयेन्नरः ।
वरदाभयहस्तोऽयं द्विभुजः कुन्दसन्निभः ॥ ३२ ॥
तत्पुरुषस्य तु मन्त्रेण पूजयेद् देवमुत्तमम् ।
एवं पुण्यकरः पीठो जल्पीशस्य महात्मनः ।
एवं ज्ञात्वा नरो याति शंकरस्य पुरं प्रति ॥ ३३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

---

९१. ... प्रेत ... । ९२. म्लेच्छत्वं समुपादाय ।
९३. ते म्लेच्छाः सततं चैवा-नार्यवाचश्च सर्वदा ।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु संवादमुत्तमं शंकरस्य च।
भैरवस्य तु वेतालसहितस्य महात्मनः॥ १॥
भूयश्च सगरो राजा मुनिमौर्वं महामतिम्।
पप्रच्छ मोदसंहृष्टः सूनृतं चेदमुत्तमम्॥ २॥

सगर उवाच—

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्मुनिसत्तम।
कामरूपस्य पीठस्य संस्थानं निर्णयं तथा॥ ३॥
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामते।
वायव्यस्याथ मध्यस्य पूर्वभागस्य निर्णयम्॥ ४॥
यथा यस्मिन् निष्ठितोऽस्ति महादेवोऽम्बिका तथा।
तत्सर्वं मुनिशार्दूल कथय श्रोतुमुत्सहे॥ ५॥

और्व उवाच—

उक्तो वायव्यभागस्य निर्णयो नृपसत्तम।
नैर्ऋत्योत्तरमध्याद्रेः शृणिवदानीं विनिर्णयम्॥ ६॥
बहुरोका नाम ननी करतोया प्रदक्षिणे।
उत्तरश्रावणी चास्ते तत् पूर्वं कामरूपकम्॥ ७॥
सुरसो नाम जीमूतः कामरूपं ततः स्थितः।
निःसृता बहुरोकेति नदी तस्माद् वृषप्रदा॥ ८॥
आसन्ने सुरसाख्यस्य शिवलिङ्गो महावृषः।
माहेश्वरी तत्र देवी योनिमण्डलरूपिणी॥ ९॥
स्नात्वा तु बहुरोकायामारुह्य सुरसाचलम्।
महावृषं पूजयित्वा महादेवीं[९३] महेश्वरीम्॥ १०॥
धूतपापो जितद्वन्द्वः पुनर्योनौ न जायते।
चतुर्भुजो वृषारूढो वरदाभयशूलधृक्॥ ११॥

---

९३. पूजयित्वा।

शुद्धस्फटिकसंकाशो जटावान् स महावृषः ।
अघोरस्य तु मन्त्रेण पूजाऽस्य परिकीर्तिता ॥ १२ ॥
कामेश्वर्याः स्वरूपं तु माहेश्वर्याः प्रकीर्तितम् ।
पूजापि यद्वदेवास्यास्तद्वत्फलप्रदायिका ॥ १३ ॥
तत्र वसिष्ठकुण्डं तु वसिष्ठमुनिसेवितम् ।
यत्र स्थितो वसिष्ठस्तु नरकेण निवारितः ॥ १४ ॥
अप्राप्य गन्तुं जीमूतं नीलाख्यं वाशपत्तु तम्[९५] ।
स्वस्नानार्थं कृतं तत्र कुण्डं देवगणार्चितम् ॥ १५ ॥
तत्र स्नात्वा नरो याति नाकपृष्ठं यथेच्छया ।
सुरसस्य च पूर्वस्यां कृत्तिवासाह्वयो गिरिः ॥ १६ ॥
कृत्तिवासाः स्वयं तत्र सत्या सहावसत् पुरा ।
चन्द्रिकाख्या नदी यत्र तस्यां स्नात्वा दिवं व्रजेत् ॥ १७ ॥
चन्द्रिकायां नरः स्नात्वा सम्पूज्य कृत्तिवाससम् ।
भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु निष्कलङ्को भवेन्नरः ॥ १८ ॥
पूर्णभाद्रपदं मासं चन्द्रिकायां नरोत्तमः ।
स्नात्वा गच्छति भूतेशं दृष्ट्वैव कृत्तिवाससम् ॥ १९ ॥
उत्तरस्राविणीं नित्यं चन्द्रिकाख्या सरिद्वरा ।
नातिदूरे चन्द्रिकायाः पूर्वस्यां दिशि फेनिला ॥ २० ॥
संज्ञया च सरिच्छ्रेष्ठा शतानन्दावतारिता ।
ब्रह्मणो दुहिता सा तु गङ्गा पर्वतसम्भवा ॥ २१ ॥
फेनिलायां नरः स्नात्वा ब्रह्मोत्थानदिने पुनः ।
फाल्गुने मासि नरकं जित्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥
ततः सिताह्वया पूर्वं सरिदुत्तरगामिनी ।
तस्यां स्नात्वा महाचैत्र्यां गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ २३ ॥
ततः पूर्वं सुमदना योजनद्वितयान्तरे ।
नदी जनकराजेन समाराध्य वृषध्वजम् ॥ २४ ॥
हिताय भैरवाख्यस्य सुतीक्ष्णादवतारिता ।
सुतीक्ष्णं गिरिमारुह्य स्नात्वा सुमदनाजले ॥ २५ ॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां तु पूजयित्वा महेश्वरम् ।
संप्राप्य सकलान् कामान् शिवलोकाय गच्छति ॥ २६ ॥
एता नद्यः कामरूपैर्नैर्ऋत्यामुत्तरस्रवाः ।

---

९५. शप्तवांस्तु तम् ।

पीठस्य पूर्वतस्तत्र त्रिपुरा यत्र पूज्यते ॥ २७ ॥
एवं ते कथितं राजन् महापुण्यदमुत्तमम् ।
कामरूपस्य नैर्ऋत्यां यत्र शम्भुः सदाम्बिका ॥ २८ ॥
पुनरेव महाराज या नद्यो दक्षिणस्रवाः ।
हिमवत्प्रभवा याताः क्रमशः शृणु भूपते ॥ २९ ॥
अगदस्य नदस्योर्ध्वं भद्राख्या तु महानदी ।
भाद्रे कृष्णचतुर्दश्यां यस्यां स्नात्वा दिवं व्रजेत् ॥ ३० ॥
ततः पूर्वसुभद्राख्या नदी पुण्यतमा सदा ।
वैशाखस्य तृतीयायां यस्यां स्नात्वा दिवं व्रजेत् ॥ ३१ ॥
ततस्तु मानसा नाम नदी पुण्यतमा मता ।
सरसो मानसाख्यात् तु तृणबिन्द्ववतारिता ॥ ३२ ॥
वैशाखं सकलं मासं तस्यां स्नात्वा नरोत्तमः ।
विष्णुलोकमवाप्यैव ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३३ ॥
हिमवन्निकटे शैलो विभ्राटः[९६] स महाद्युतिः ।
यस्मिन् वसति भूतेशः सदा भैरवरूपधृक् ॥ ३४ ॥
तस्मात् तु भैरवी नाम नदी पुण्योदका शुभा ।
प्राङ् मानसाद्या स्रवति गङ्गेव फलदायिनी ॥ ३५ ॥
यस्यां वसन्तसमये स्नात्वा गच्छति वै दिवम् ।
यस्यां सम्पूज्य कामाख्यामिष्टं ज्ञानमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥
सम्पूज्याथ महामायां द्विगुणं प्राप्नुयात् फलम् ।
ऊर्ध्वं ततो [९७]देवगङ्गा वर्णासाख्या सरिद्वरा ॥ ३७ ॥
हिमवत्प्रभवा नित्यं फलदा मानसोपमा ।
सुभद्राद्यास्तु याः प्रोक्ता वर्णासान्ताः सरिद्वराः ॥ ३८ ॥
हिमवत्प्रभवास्तास्तु सर्वा एवोत्तरस्रवाः ।
पूर्वे तु मदनारास्तु ब्रह्मक्षेत्रस्य पश्चिमे ॥ ३९ ॥
रविक्षेत्रं यत्र देव आदित्यः सततं स्थितः ।
भैरवस्य हितार्थाय यत्र सर्वेश्वराः स्थिताः ॥ ४० ॥
कामरूपे महापीठे ब्रह्मेन्द्रवरुणादयः ।
तदा तत्त्वाह्वये शैले श्रीसूर्योऽपि व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥
त्रिस्रोता नाम यस्यास्ति नदी पूर्वदिशि स्थिता ।
कपोतकरणं पश्चादस्य कुण्डद्वयं स्थितम् ॥ ४२ ॥

---

९६. विभ्राटाख्यो महागिरिः । ९७. थ गंगाया नाम्ना ख्याता ।

कपोतकुण्डे विधिवत् स्नात्वा कारणकुण्डके।
तत्त्वाचलं समारुह्य सम्पूज्य च दिवाकरम् ॥ ४३ ॥
सकृदेव नरो याति भास्करस्य गृहं प्रति।
सूर्यरश्मिसमुद्भूतं कपोतकरणामृतम् ॥ ४४ ॥
पुण्यतोयसमाख्यातं पापं कपोत मे हर।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वा कपोतपुष्करे ॥ ४५ ॥
करणं समुपस्पृश्य तत्त्वशैले रविं यजेत्।
त्रिविधं ब्रह्मबीजं तु सहस्रपदमन्ततः ॥ ४६ ॥
रश्मयेऽपि चतुर्थ्यं तु देवीजाया तु चेष्टतः।
अङ्गबीजमिदं प्रोक्तमादित्यस्यातिकामदम् ॥ ४७ ॥
पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजो भास्करः सदा ॥ ४८ ॥
वर्तुलं मण्डलं चास्य अष्टपत्रसमन्वितम्।
अङ्गुष्ठाग्राङ्गुलीनां च हृदादीनां तथा च षट्[९८] ॥ ४९ ॥
अङ्गमन्त्रेण सहित उपान्ते[९९] वह्निसंयुतः।
सर्वन्यासे समुद्दिष्टो मन्त्रः सर्वफलप्रदः ॥ ५० ॥
हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रास्योदरपृष्ठतः।
बाह्वोः पाण्योर्जङ्घयोस्तु पादयोश्चापि विन्यसेत् ॥ ५१ ॥
जघने च समस्तानि क्रमान्मन्त्राक्षराणि च
क्रमोच्चोत्तरतः प्रोक्तः पूजने परिकीर्तितः ॥ ५२ ॥
विसर्जनं तथैशान्यां विद्याद्या दलशक्तयः।
निर्माल्यधृक् तत्त्वचण्डो माठराद्यास्तु पार्श्वयोः ॥ ५३ ॥
बीजमुत्तरतन्त्रस्य पूर्वतः प्रतिपादितम्।
अनेन विधिना तत्त्वे पूजयित्वा नरोत्तमः ॥ ५४ ॥
स कामानखिलान् प्राप्य इहलोके प्रमोदते।
सुखी शेषे तथा गच्छेद् भास्करस्यालयं प्रति ॥ ५५ ॥
नातिदूरे भास्करस्य दक्षिणस्यां शुभाह्वयः।
तस्योर्ध्वसानौ वसति लिङ्गं शांकरमुत्तमम् ॥ ५६ ॥
परिवार्य सदा यान्ति महाकायास्तु वानराः।
परिवार्यावतिष्ठन्ते सेवमानाश्च शङ्करम् ॥ ५७ ॥

---

९८. वषट्। ९९. जपान्ते।

त्रिस्रोतायां नरः स्नात्वा यः पश्येत् तु शुभाचले ।
महात्मानं महादेवं काममिष्टं लभेन्नरः[100] ॥ ५८ ॥
ततः पूर्वं सुरनदी नाम्ना कुसुममालिनी ।
क्षीरोदाख्यापरा तस्मात् ते गते दक्षिणस्रवे ॥ ५९ ॥
एते अपि महाराज पुण्यतोयेऽमृतस्रवे ।
तयोः स्नात्वा नरो याति शङ्करस्यालयं प्रति ॥ ६० ॥
ततोऽपि पूर्वतो देवी लीलाख्या चापरा नदी ।
यस्यां[1] स्नात्वा महानद्यां शिवलोकाय गच्छति ॥ ६१ ॥
ततः पूर्वं शिवा चण्डी चण्डिकाख्या महानदी ।
निर्याति धवलाख्यात् तु पर्वतात् सुमनोहरात् ॥ ६२ ॥
शिवलिङ्गद्वयं तत्र नातिदूरे व्यवस्थितम् ।
गोलोकं चाथ शृङ्गं च क्रोशमात्रान्तरे स्थितम् ॥ ६३ ॥
चण्डिकायां नरः स्नात्वा आरुह्य धवलेश्वरम् ।
दक्षिणं सागरं वीक्ष्य दृष्ट्वा गोलोकसंज्ञकम् ॥ ६४ ॥
ततोऽवतीर्य च पुनः शृङ्गिणं भूमिपीठकम् ।
शिवपूजाविधानेन पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ ६५ ॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं सम्प्राप्य मानवः ।
सर्वान् कामानवाप्येह देहान्ते शिवतां व्रजेत् ॥ ६६ ॥
एता याः कथिता नद्यः सर्वा वै दक्षिणस्रवाः ।
तस्मादीशानकाष्ठायां पर्वतो गन्धमादनः ॥ ६७ ॥
यत्र [2]भृङ्गाह्वयं लिङ्गं शिवस्यास्ते महत्तरम् ।
स एव पर्वतश्रेष्ठः प्राप्तः क्षेत्रस्य पश्चिमे ॥ ६८ ॥
धृत्वा ब्रह्मशिलां देवीं सावित्रं प्रतिगामिनी ।
गन्धमादनकस्यान्ते भृङ्गेशस्य पदद्वयम् ॥ ६९ ॥
*स्रवद्गङ्गाजलं चास्ते कुण्डं तत्रान्तरालकम् ।
अन्तरालककुण्डे तु स्नात्वा पीत्वा च तज्जलम् ॥ ७० ॥
भृङ्गेशस्य ततो दृष्ट्वा शिलासंस्थं पदद्वयम् ।
पूजयित्वा महाभृङ्गं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥
शम्भुपादसमुद्भूतमन्तरालदृशाकरम् ।
वृषध्वजपदानां त्वं संयोजय महावृष ॥ ७२ ॥

---

१००. ""अवाप्नुयात् । १. माघ्यां नरः स्नात्वा । २. दुग्धाह्वयं ।
* स्रवद्गंगाजलस्यान्ते भृंगेशस्य पदद्वयम् । * अधिकः पाण्डुलिप्याम् ।

इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नानं कृत्वान्तराजले।
भृङ्गदेवं ततः पश्येत् कुब्जपीठान्तवासिनम्॥ ७३॥
मणिकूटस्याथ गिरेर्गन्धमादनकस्य च।
मध्ये स्रवति लौहित्यो ब्रह्मणाग्निसमुत्थितः॥ ७४॥
[३]वर्णाशाया दक्षिणस्यां लौहित्यो नाम सागरः।
मणिकूटः स्थितः पूर्वे हयग्रीवो हरिर्यतः॥ ७५॥
स हयग्रीवरूपेण विष्णुर्हत्वा ज्वरासुरम्।
निहत्य स हयग्रीवः क्रीडार्थे यत्र संस्थितः॥ ७६॥
हत्वा ज्वरं तथा विष्णुस्तत्र वासमथाकरोत्।
नरदेवासुरादीनां यथा भवति वै हितम्॥ ७७॥
ज्वरेणापीडित[४]तनुर्ज्वरं हत्वा महासुरम्।
सर्वलोकहितार्थाय सोऽगदस्नानमाहरत्॥ ७८॥
अगदस्नानसम्भूतं संजातं च महासरः[५]।
तस्य स्वयं हयग्रीवो नाम चक्रेऽपुनर्भवम्॥ ७९॥
न पुनर्जायते यस्मात् तत्र स्नात्वा नरोत्तमः।
अपुनर्भवसंज्ञं तत् सरस्तु परिकीर्तितम्॥ ८०॥
मणिकूटाचले विष्णुर्हयग्रीवस्वरूपधृक्।
शतव्यामप्रमाणेन विस्तरेणैव शोभितम्[६]॥ ८१॥
तस्मात् पूर्वे भद्रकामः पर्वतस्तु त्रिकोणकः।
यत्र कालहयो नाम शिवलिङ्गो व्यवस्थितः॥ ८२॥
तस्यासन्ने दक्षिणस्यामपुनर्भवकुण्डकम्।
अपुनर्भूसरस्तीरे पर्वते भद्रकामदे॥ ८३॥
हरवीथीति विख्याता शिला ब्रह्मस्वरूपिणी।
तत्र योगी महादेवो योगज्ञो ध्यानतत्परः॥ ८४॥
यं दृष्ट्वा योगवान् मर्त्यो मृतो मोक्षमवाप्नुयात्।
तस्यामेव शिलायां तु गोकर्णो नाम शङ्करः॥ ८५॥
गोकर्णो निहतो येन अन्धकस्य सखा पुरा।
गोकर्णस्य तथैशान्यां केदारः शम्भुरन्ततः॥ ८६॥
ततोऽन्धकसमः प्रोक्तः कमलाकरभोगधृक्।
यत्रास्ति शम्भुः केदारः स गिरिर्मदनाह्वयः॥ ८७॥

---

३. वर्णालापाः। ४. पीडितस्तत्र। ५. महासुरम्।
६. गाहिते।

तत्रैव कमलः प्रोक्तः स महात्मालयप्रदः ।
स्नात्वाऽपुनर्भवजले दृष्ट्वा गोकर्णयोगिनौ ॥ ८८ ॥
केदारकमलौ दृष्ट्वा मुक्तिर्माधवदर्शने ।
दृष्ट्वा तु माधवं देवं ततः कामं विलोकयेत् ॥ ८९ ॥
कामं विलोक्य तत्रस्थो निरीक्षेदपुनर्भवम् ।
एवं कृत्वा पीठयात्रामनेन क्रमयोगतः ॥ ९० ॥
सप्त पूर्वान् सप्त परानात्मानं दश पञ्च च ।
पितॄनुद्धृत्य त्रिदिवं नयेत् स पुरुषोत्तमः ॥ ९१ ॥
विष्णुस्थानसमुद्भूता पुनर्भवहरीश्वर ।
पापं हर स्वर्गहेतोर्जितसङ्गमहोदधे ॥ ९२ ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण स्नायाद् वीरोऽपुनर्भवेत् ।
हयग्रीवस्य तन्त्रं तु पुरैव प्रतिपादितम् ॥ ९३ ॥
रूपं शृणु महाराज चिन्तयेत् तस्य यादृशम् ।
कर्पूरकुन्दधवलः सितपद्मोपरिस्थितः ॥ ९४ ॥
चतुर्भुजः कुण्डलादिनानालङ्कारभूषितः ।
वरदाभयहस्तस्तु वामहस्तद्वयेन तु ॥ ९५ ॥
पुस्तकं सितपद्मं च धत्ते हस्तद्वयेऽपरे ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कः क्वचिच्च गरुडासनः ॥ ९६ ॥
सर्वं उत्तरतन्त्रोक्तः क्रमो ग्राह्यः प्रपूजने ।
विष्वक्सेनो हयारेस्तु निर्माल्यधृग्विसर्जने ॥ ९७ ॥
शिलारूपप्रतिच्छन्नः सदास्ते गरुडध्वजः ।
क्रीडमानोऽथ गन्धर्वैः स्थितो लोकहिताय च ॥ ९८ ॥
हयग्रीवस्य मन्त्रस्य सिद्धिर्लक्षद्वयेन तु ।
यावकैः पायसैराज्यैर्होमं कुर्वन् पुरश्चरेत् ॥ ९९ ॥
एकेनैव तु राजेन्द्र पुरश्चरणकर्मणा ।
इष्टसिद्धिमवाप्येह विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ १०० ॥
मन्त्रैस्तु पञ्चवक्त्राणां पञ्चमूर्तिं सदार्चयेत् ।
पूर्वे तत्पुरुषादीनां कामादीन् पूजको द्विजः ॥ १०१ ॥
कामस्तत्पुरुषो ज्ञेयो योगीशानः प्रकीर्तितः ।
अघोरो ह्यथ गोकर्णः केदारो वामदेवकः ॥ १०२ ॥
सद्योजातस्तु कमलामन्त्रैस्तैस्तैः प्रपूजयेत् ।

पर्वतश्चैव केदारः[७] शिवगङ्गा तु कालिका ॥ १०३ ॥
हयग्रीवस्य पूर्वस्यां केदारस्य तु पश्चिमे ।
छायाभोगाह्वयस्थानं पुरी भोगवती तथा ॥ १०४ ॥
यो गच्छेन्मणिकूटाख्यां कौतुकाच्च पुनर्भवम् ।
स सर्वतीर्थयात्राणां फलमाप्नोति मानवः ॥ १०५ ॥
ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे पञ्चदश्यष्टमीषु च ।
स्नात्वाऽपुनर्भवजले यः पश्येद् विधिवद्धरिम् ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १०६ ॥
ज्येष्ठं तु सकलं मासं नित्यं पश्येत् तु यो हरिम् ।
हरौ विलीनतां याति स सर्वैः सहितः कुलैः ॥ १०७ ॥
एतत् ते कथितं पुण्यं मणिकूटाह्वयं परम् ।
वाराणसीतो ह्यधिकं सिद्धविद्याधरार्चितम् ॥ १०८ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्विप्रो मणिकूटस्य निर्णयम् ।
स सर्ववेदस्य फलं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ १०९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

---

७. कैलासः ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

और्व्व उवाच—

ततः पूर्वं महाराज दर्पणो नाम पर्वतः।
कुवेरो यत्र वसति धनपालैः समं सदा ॥ १ ॥
यस्मिन्नास्ते मध्यभागे रोहितो रोहिताकृतिः।
यस्मिँल्लोहादिकं स्पृष्टं स्वर्णतां याति तत्क्षणात् ॥ २ ॥
यत्रातिदूरे स्रवति दर्पणो नाम वै नदः।
हिमाद्रिप्रभवो नित्यं लौहित्यसदृशः फलैः ॥ ३ ॥
समुत्पन्नं हि लौहित्यं सर्वैर्देवगणैर्हरिः।
सर्वतीर्थोदकैः सम्यक् स्नापयामास तं सुतम् ॥ ४ ॥
तस्य स्नानसमुद्भूतः पापदर्पस्य पाटनः।
तेनायं दर्पणो नाम पुरा देवगणैः कृतः ॥ ५ ॥
तस्मिन् स्नात्वा नदवरे योऽर्चयेद् दर्पणाचले।
कुवेरं प्रतिपत्तिथ्यां कार्तिके शुक्लपक्षके ॥ ६ ॥
स याति ब्रह्मसदनमिह भूतिशतैर्युतः।
दर्पणाद् दिशि पूर्वस्यामग्निमालाह्वयो गिरिः ॥ ७ ॥
सर्पाकारः सप्तशतव्याम दीर्घोर्ध्वविस्तृतः।
तत्र तिष्ठति वै वह्निरूर्ध्वभागेऽग्निमण्डले ॥ ८ ॥
सिन्दूरपुञ्जसङ्काशे चारुदारुशिलातले।
तस्मिन्निरिन्धनो वह्निर्नित्यमद्यापि काशते ॥ ९ ॥
भैरवस्य हितार्थाय कामाख्यापरिसेवने।
पूर्वमेव स्थितस्तत्र साक्षाद् वह्निर्गणैः सह ॥ १० ॥
लौहित्यपाथसि स्नात्वा त्वग्निमालाह्वयं गिरिम्।
आरुह्य वह्निं सम्पूज्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ११ ॥
पुरस्तादग्निमालस्य कुण्डकं वारुणाह्वयम्।
तस्य तीरे गिरिश्रेष्ठो नाम्ना कंसकरः स्मृतः ॥ १२ ॥
वरुणस्तत्र वसति नित्यमेव जलाधिपः।
तस्मिन् कंसकरे सम्यक् पूजयित्वा प्रचेतसम् ॥ १३ ॥
स्नात्वा च वारुणे कुण्डे वारुणं लोकमाप्नुयात्।
आद्यं व्यञ्जनमेवात्र पञ्चमस्वरसंयुतम् ॥ १४ ॥

शम्भुचूडाशिखायुक्तं कौवेरं बीजमुच्यते।
सप्तमो यः पकारस्य बिन्दुश्चन्द्रार्धसंयुतः॥ १५॥
वह्निबीजमिति ख्यातं तेन वह्निं प्रपूजयेत्।
मकारपञ्चमः सोमबिन्दुना वारुणः स्मृतः॥ १६॥
एभिर्मन्त्रैरिमान् देवान् नित्यमेव प्रपूजयेत्।
वायुकूटो नाम गिरिः पूर्वस्यां वरुणाचलात्॥ १७॥
द्विखण्डो वायुबीजेन मण्डलेन समन्वितः।
वायुलोकस्थितश्चन्द्रो यस्मान्निःसृत्य मारुतः॥ १८॥
ऊर्ध्वाधोभागमासाद्य नित्यं वहति भूपते।
तत्र वायुं समभ्यर्च्य वायुलोकमवाप्नुयात्॥ १९॥
पूर्वं वायुगिरेः शैलश्चन्द्रकूट इति स्मृतः[८]।
त्रिकोणश्चन्द्रसङ्काशस्तदूर्ध्वे चन्द्रमण्डलम्॥ २०॥
द्वितीयवर्गस्याद्यं तु बिन्दुना समलङ्कृतम्।
चन्द्रबीजमिति प्रोक्तं तेन चन्द्रं प्रपूजयेत्॥ २१॥
अद्यापि प्रतिदर्शे[९] तु पर्वतं[१०] तं निशापतिः।
प्रदक्षिणीकरोत्येव दशभिश्चापि खेचरैः॥ २२॥
तस्यैव पूर्वभागे तु सोमकुण्डाह्वयं सरः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरः कैवल्यमश्नुते॥ २३॥
स्वर्गादवतरच्चन्द्रः कामाख्यासेवने यदा।
तदा तद्रश्मिसङ्घातान्निःसृतास्तोयराशयः॥ २४॥
तैस्तोयैर्वासवः कुण्डमकरोदिन्द्रचन्द्रयोः।
मध्ये पुण्यतमे स्थाने स्वयं ब्रह्मशिलोपरि॥ २५॥
चन्द्ररश्मिसमुद्भूतचन्द्रकुण्डमहोदधौ।
यं यं भावं समासाद्य तं चन्द्रकलुषं हरम्॥ २६॥
सुधास्रवणमाह्लाद त्वं चन्द्रकलुषं हर।
इत्यनेन तु मन्त्रेण यः स्नात्वा चन्द्रपाथसि॥ २७॥
चान्द्रकूटं समारुह्य पूजयेद् यस्तु तं नरः।
अविच्छिन्ना सन्ततिस्तु सुकान्ता तस्य जायते॥ २८॥
परत्र चन्द्रभवनं भित्त्वा याति परं पदम्।
तीरे तु चन्द्रकूटस्य नन्दनो नाम वै गिरिः॥ २९॥
तस्मिन् वसति शक्रस्तु कामाख्यासेवने रतः।

---

८. श्रुतः। ९. प्रतिपर्वे। १०. सततं।

पञ्चभावं समासाद्य सर्वदेवेश्वरो हरिः ॥ ३० ॥
सेवितुं त्रिदशेशानीं सततं वर्तते नरः[११] ।
चन्द्रकूटस्य तु गिरेर्नन्दनस्य तथा गिरेः ॥ ३१ ॥
प्रतिदर्शं तथा चन्द्रः प्रदक्षिणयति त्रिधा ।
चन्द्रकूटजले स्नात्वा समारुह्याथ नन्दनम् ॥ ३२ ॥
आराध्य शक्रं लोकेशं महाफलमवाप्नुयात् ।
नन्दनात् पूर्वभागे तु भस्मकूटो महागिरिः ॥ ३३ ॥
यः स्वयं भर्गरूपः स सदा चेच्छान्तमुत्तमम्[१२] ।
दक्षिणे भस्मकूटस्य देवी पीयूषधारिणी ॥ ३४ ॥
उर्वशी नाम विख्याता शक्रप्रीतिकरी सदा ।
देवैर्यत् स्थापितं पूर्वममृतं भोजनाय वै ॥ ३५ ॥
कामाख्यायास्तदादाय स्वयं तिष्ठति चोर्वशी ।
शिलारूपो हरस्तां तु समावृत्यैव तिष्ठति ॥ ३६ ॥
सा चैवामृतराशिं तु कृत्वा किञ्चन किंचन ।
उपस्थापयते नित्यं कामाख्यायोनिमण्डले ॥ ३७ ॥
सुधाशिलान्तरस्था तु उर्वशीकुण्डवासिनी ।
उर्वशीभस्मकूटस्य मध्ये कुण्डं सदावृतम् ॥ ३८ ॥
द्वात्रिंशद्धनुराकीर्णं पञ्चाशद्धनुरायतम् ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३९ ॥
कामाख्यायोनिरैशानीं दिश याति सदैव हि ।
भस्मकूटे प्रविशति उर्वशीमपि योगिनी ॥ ४० ॥
आप्यायिता चामृतेन नित्यं देवी प्रमोदते ।

---

११. नमः ।

* चन्द्रकूटगिरेर्याम्यभागे गिरिजनार्दनः ।
तस्य याम्ये त्वधोभागे अश्वक्रान्ताह्वयं सरः ॥ १ ॥
न तस्य सदृशं तीर्थमस्ति ब्रह्माण्डगोचरे ।
जले स्थले मृता येऽत्र यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥ २ ॥
जनार्दनगिरौ विष्णुः कूर्मरूपस्वरूपधृक् ।
शिलां भित्त्वा स्थितस्तत्र देवगन्धर्वसेवितः ॥ ३ ॥
अश्वक्रान्तजले स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ।
फलकोटिं समुद्धृत्य स्वयं स्यात् पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥
पाण्डुलिप्यामधिकः ।

१२. भर्गरूपस्य स याति शान्तिमुत्तमाम् ।

मोदयुक्ता महादेवी कामेन मोदते सदा ॥ ४१ ॥
भस्मकूटस्य चैशान्यां मणिकूटो महागिरिः ।
मणिकर्णो नाम हरस्तत्र तिष्ठति लिङ्गकम् ॥ ४२ ॥
स सद्योजातरूपस्तु मणिकर्ण इतीरितः ।
सद्योजातस्य मन्त्रेण पूजितव्यः सदाशिवः ॥ ४३ ॥
चन्द्रतीर्थजले स्नात्वा दृष्ट्वा चन्द्रं सवासवम् ।
मणिकर्णेश्वरं दृष्ट्वा मुक्तिर्भस्माचलं गते ॥ ४४ ॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वो हेमभूषितः ।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥ ४५ ॥
सहस्रनेत्रो गौराङ्गो द्विभुजो वामहस्तगम् ।
वज्रं गदांकुशं धत्ते दक्षिणेनापि पाणिना ॥ ४६ ॥
ऐरावतगजस्थस्तु बाणतूणीरबन्धनः ।
धनुश्च कक्षे गृह्णाति सेवमानो महेश्वरीम् ॥ ४७ ॥
वकारानन्तरो वर्णश्चन्द्रबिन्दुसमन्वितः ।
शक्रबीजमिति प्रोक्तं शक्रं तेन प्रपूजयेत् ॥ ४८ ॥
नदी सुभङ्गला नाम हिमपर्वतनिर्गता ।
पूर्वस्यां मणिकूटस्य सदा स्रवति शोभना ॥ ४९ ॥
मणिकूटं समारुह्य यस्तां पश्यति वै नदीम् ।
स गङ्गास्नानजं पुण्यमवाप्य त्रिदिवं व्रजेत् ॥ ५० ॥
मणिकूटाचलात् पूर्वं मत्स्यध्वजकुलाचलः ।
निर्दग्धो यत्र मदनो हरनेत्राग्निना पुनः ॥ ५१ ॥
शरीरं प्राप तपसा समाराध्य वृषध्वजम् ।
तत्र मत्स्यस्वरूपस्तु कामदेवेन[१३] संस्थितः[१४] ॥ ५२ ॥
अधित्यकायां पृथिवीं वीक्षमाणः समन्ततः ।
नदी तु शाश्वती नाम तत्रास्ते दक्षिणस्रवा ॥ ५३ ॥
सरः कामसरो नाम तत्र शैले व्यवस्थितम् ।
शाश्वत्यां विधिवत्स्नात्वा पीत्वा [१५]कामसरोऽम्भसि ॥ ५४ ॥
विमुक्तपापः शुद्धात्मा शिवलोके महीयते ।
गन्धमादनपूर्वस्यां सुक्रान्तो नाम पर्वतः ॥ ५५ ॥
तत्प्रान्ते वासवं कुण्डं वासवामृतभोजनम् ।

---

१३. कामदेवः । १४. समं स्थितः । १५. कामकराम्भसि ।

यत्र स्थित्वा दक्षिणस्यां पुरा शक्रः शचीपतिः ॥ ५६ ॥
अमृतं श्रान्तदेहस्तु[१६] कामरूपान्तरे पपौ ।
स्नात्वा तु वासवे कुण्डे समारुह्य सुकान्तकम् ॥ ५७ ॥
वासवस्य प्रियो भूत्वा शक्रलोकमवाप्नुयात् ।
पूर्वस्यां तु सुकान्तस्य रक्षःकूटाह्वयो गिरिः ॥ ५८ ॥
यत्रास्ते सततं देवो निर्ऋती राक्षसेश्वरः ।
खड्गहस्तो महाकायो वामे चर्मधरस्तथा ॥ ५९ ॥
जटाजूटसमायुक्तः प्रांशुः कृष्णाचलोपमः ।
द्विभुजः कृष्णवासास्तु [१७]गर्दभोपरिसंस्थितः ॥ ६० ॥
प्रान्तोपान्तौ बिन्दुचन्द्रसहितावादिरेव च ।
नैर्ऋत्यं कथितं बीजं तेन त परिपूजयेत् ॥ ६१ ॥
रक्षःकूटं समारुह्य निर्ऋतिं राक्षसेश्वरम् ।
यः पूजयेद् विधानेन चण्डिकां राक्षसेश्वरीम् ॥ ६२ ॥
न तस्य राक्षसेभ्योऽस्ति भयं नृप कदाचन ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च वेताला गणनायकाः ॥ ६३ ॥
तं दृष्ट्वा पुरुषं राजन् सर्वदैव प्रबिभ्यति ।
रक्षःकूटात् पूर्वदिशि भैरवो नाम माधवः ॥ ६४ ॥
पाण्डुनाथ इति ख्यातो ग्रावरूपेण संस्थितः ।
तं पाण्डुनाथं सततमष्टाक्षरभवोत्तरम् ॥ ६५ ॥
तेनैव पूजयेद् देवं पाण्डुनाथाह्वयं हरिम् ।
वर्णेन रक्तगौराङ्गं गदापद्मधरं करे ॥ ६६ ॥
दक्षिणे चक्रशक्ती च बाहुभ्यामपि बिभ्रतम् ।
चतुर्भुजं रक्तपद्मसंस्थितं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ ६७ ॥
कुण्डले बिभ्रतं शुद्धे श्रीवत्सोरस्कमुत्तमम् ।
नमो नारायणायेति मूलबीजेन वा हरेः ॥ ६८ ॥
एवं सम्पूजयेद् भूप चतुर्वर्गस्य सिद्धये ।
पाण्डुनाथस्योत्तरस्यां ब्रह्मकूटाह्वयं सरः ॥ ६९ ॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं स्नानार्थं स्वर्गवासिनाम् ।
आयामेन शतव्यामं विस्तीर्णं त्वेतदर्धकम् ॥ ७० ॥
सर्वपापहरं पुण्यं देवलोकात् समागतम् ।
कमण्डलुसमुद्भूत ब्रह्मकुण्डामृतस्रव ॥ ७१ ॥

---

१६. प्राप्तहेतोस्तु । १७. खड्गकोपरि ।

हर मे सर्वपापानि पुण्यं स्वर्गं च साधय।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वा तस्मिन् सरोजले॥ ७२॥
पाण्डुनाथं च सम्पूज्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।
ब्रह्मकुण्डजले स्नात्वा पूजयित्वा उमापतिम्॥ ७३॥
वायुकूटं समारुह्य मुक्तिमेवाप्नुयान्नरः।
पाण्डुनाथात् पूर्वदिशि गिरिश्चित्रहरो[१८] हरिः॥ ७४॥
सततं यत्र रमते विष्णुर्वाराहरूपधृक्।
ततस्त नीलकटाख्यं कामाख्यानिलयं परम्॥ ७५॥
तत्पूर्वभागे वसति ब्रह्मा ब्रह्मगिरिः पुनः।
ब्रह्मशैलस्य पूर्वस्यां भूमिपीठे व्यवस्थितम्॥ ७६॥
चारुनिम्नशुभावर्तं कामाख्यानाभिमण्डलम्।
[१९]तवोग्रतारारूपेण रमते परमेश्वरी॥ ७७॥
तत्र तेनैव रूपेण पूजितव्या शुभात्मिका।
तस्यास्तु बीजं पूर्वस्मिन्नुत्तरे प्रतिपादितम्॥ ७८॥
रूपं श्रृणु नरश्रेष्ठ येन ध्येया सदा शिवा।
कृष्णा लम्बोदरी दीर्घा विरला रक्तदन्तिका॥ ७९॥
चतुर्भुजा कृशाङ्गी तु दक्षिणे कर्तृखर्परौ।
खड्गं चेन्दीवरं वामे शीर्षे चैकजटा पुनः॥ ८०॥
वामपादं शवस्योर्वोर्निधायाङ्घ्रिं[२०] तु दक्षिणाम्।
शवस्य हृदये न्यास्य साट्टहासं प्रकुर्वती॥ ८१॥
नागहारशिरोमालाभूषिता कामदा परा।
त्रिकोणं मण्डलं चास्या हुङ्कारं मध्यबीजकाम्॥ ८२॥
द्वारेशानां योगिनीनां नामान्यस्यां तु तन्त्रके।
ज्ञेयानि नरशार्दूल यत् प्रोक्तं वाम्यगोचरे॥ ८३॥
उर्वश्यां विधिवत् स्नात्वा स्पृष्ट्वा पाण्डुशिलां तथा।
नीलकूटं समारुह्य पुनर्योनौ न जायते॥ ८४॥
पुरन्दरपुरायाते वाराणस्याः कलाधिके।
सुधासंकीर्णतोयौघैः पापं हर ममोर्वशि॥ ८५॥
अमृतस्राविणी देवी सुधौघपरिपूरणी।
अमृतेनामृतं मेऽद्य देहि देवि ममोर्वशि॥ ८६॥

---

१८. ···रहो। १९ तत्रोग्रतारा···।
२०. ···निधायोत्थाय···।

पुरन्दरप्रिये देवि वाराणस्याः सदाम्बिके[२१] ।
लोहित्यह्रदसंकीर्णे पापं हर ममोर्वशि ॥ ८७ ॥
इत्येभिः स्तुतिभिर्मन्त्रैः स्नात्वा पुण्योर्वशीजले ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके विचेष्टते[२२] ॥ ८८ ॥
उर्वशी द्विभुजा प्रोक्ता स्वर्णकङ्कणधारिणी ।
सौवर्णपात्रममृतस्रावणाय बिभर्ति च ॥ ८९ ॥
शुक्लवस्त्रा गौरवर्णा पीनोन्नतपयोधरा ।
सर्वाङ्गसुन्दरी शुद्धा सर्वाभरणभूषिता ॥ ९० ॥
एतन्नामाद्यक्षरं तु मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ।
उमातन्त्रे तु गदितं मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥
गणेशः पूर्वद्वारस्थः कामाख्यापर्वतस्य तु ।
तत्रैव चाग्निवेतालः स्थितो द्वारि मनोहरः ॥ ९२ ॥
तयो रूपं च मन्त्रं च यथोक्तं शम्भुना पुरा ।
तदहं प्रतिवक्ष्यामि महाराज शृणुष्व मे ॥ ९३ ॥*
ॐ नम उल्कामुखायेति मूलबीजादिसङ्गतम् ।
मन्त्रं सिद्धगणेशस्य द्वारस्थस्य प्रकीर्तितम् ॥ ९४ ॥
रूपं तस्य प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥ ९५ ॥
शूर्पकर्णं बृहद्गण्डमेकदन्तं[२३] पृथूदरम् ।
दक्षिणे तु करे दण्डमुत्पलं च तथापरे ॥ ९६ ॥
लड्डुकं परशुं चैव वामतः परिकीर्तितम् ।
बृहत्त्वाक्षिप्तगगनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिनम् ॥ ९७ ॥
युक्तं बुद्धिकुबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।
[२४]तन्त्रस्तु यादृशः प्रोक्तः पञ्चवक्त्रस्य पूजने ॥ ९८ ॥
स एव तन्त्रो ग्राह्यस्तु तादृग्विधिनिषेधनम्[२५] ।
द्विभुजः पीनवदनो रक्तनेत्रो भयङ्करः ॥ ९९ ॥
छुरिकां दक्षिणे पाणौ वामे रुधिरपात्रकम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं कृशो धमनिसन्ततः ॥ १०० ॥
जटां दीर्घां मूर्ध्नि बिभ्रद्घोररावयुतस्तथा ।
पचतुर्थोऽग्निबीजेन षष्ठस्वरविभूषितः ॥ १०१ ॥

---

२१. सदाधिके । २२. विराजते । * अधिको मुद्रितपुस्तके ।
२३. बृहत् तुण्डमेकदंष्ट्रं । २४. मन्त्रस्तु । २५. निषेधकम् ।

अग्निवेतालबीजोऽयं सर्वत्र भयनाशकः।
पूजयेदग्निवेतालं सर्वत्र भयवारणम् ॥ १०२ ॥
यः पूजयेत् तस्य पुनर्भूतादिभ्यो भयं नहि।
अष्टानामथ मन्त्राणां योगिनीनां क्रमान्नृप ॥ १०३ ॥
शैलपुत्रीप्रमुख्याणां मन्त्राण्यष्टाक्षराणि तु।
वैष्णवीतन्त्रसंस्थानि पूर्वप्रोक्तानि तानि तु ॥ १०४ ॥
शैलपुत्र्यास्तथा चाङ्गमन्त्रं प्राक् प्रतिपादितम्।
रूपं तु नरशार्दूल योगिनीनां विशेषतः ॥ १०५ ॥
प्रत्यक्षरेण[२६] बीजेन दुर्गातन्त्रेण वा त्विमाः।
नेत्रबीजेनैव पूज्या योगिन्यो नृपसत्तम ॥ १०६ ॥*
कात्यायनीं पाददुर्गां दुर्गातन्त्रेण पूजयेत्।
तदेव पूजनं रूपं तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ॥ १०७ ॥
कालरात्र्यास्तु मन्त्रेण कालरात्रिं प्रपूजयेत्।
कालरात्र्या रूपमन्त्रौ पुरैव प्रतिपादितौ ॥ १०८ ॥
महामायातन्त्रमन्त्रैः पूजयेद् भुवनेश्वरीम्।
एताः सर्वास्तु योगिन्यः कामाख्यावत् फलप्रदाः ॥ १०९ ॥
विशेषो यत्र नैवोक्तो रूपे तन्त्रे च पूजने।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्र पूजां समाचरेत् ॥ ११० ॥
प्रत्येकं योगिनीं यस्तु पूजयेन्नरसत्तमः।
स सर्वयज्ञस्य फलं प्राप्नोति नरसत्तमः ॥ १११ ॥
नीलशैलस्य पूर्वस्मिन् स्वरूपं प्रतिपादितम्।
नाभिमण्डलपूर्वस्यां भस्मकूटस्य दक्षिणे ॥ ११२ ॥
पूर्वस्यां कर्पटो नाम पर्वतो यमरूपधृक्।
तत्र याम्यशिला कृष्णा नीलाञ्जनसमप्रभा ॥ ११३ ॥
अधित्यकायां राजेन्द्र व्यामपञ्चसुविस्तृता[२७]।
पूजयेत् तत्र शमनं पाणौ दण्डं सदैव यः ॥ ११४ ॥
धत्ते तु पाणिना नित्यं [२८]प्राणिदण्डस्य साधनम्।
कृष्णवर्णं तु द्विभुजं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ११५ ॥
दधतं चासिपुत्रीं च वामपाणौ सदैव हि।
कृष्णवस्त्रं स्थूलपादं बहिर्निःसृतदन्तकम् ॥ ११६ ॥

---

२६. ... संपूज्या योगिन्यो नृपसत्तम।   * मुद्रितपुस्तकेऽधिकः।

२७. व्यामपंचक...।   २८. प्रायादण्डस्य।

[29]भयाभयप्रदं नित्यं नृणां महिषवाहनम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या याम्यबीजेन साधकः ॥ ११७ ॥
उपान्तवर्गस्यादिर्यो वर्णो बिन्द्विन्दुसंयुतः ।
यमबीजमिति ख्यातं यमस्य प्रीतिदायकम् ॥ ११८ ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण शमनं पूजयेत् तु यः ।
कर्पटाख्येऽचलवरे नापमृत्युमवाप्नुयात् ॥ ११९ ॥
पूर्वस्यां कर्पटाख्यात् तु शैलाच्चित्रं इति स्मृतः ।
यः पूर्वभागप्रान्तेऽभूद् दिश्याग्नेय्यामवस्थितः ॥ १२० ॥
पीठस्तु ब्रह्मग्रावस्तु स[31] प्राक् पर्वत उच्यते ।
तस्मिन् वसन्ति सततं ग्रहा इव यथेच्छया ॥ १२१ ॥
तत्र तान् पूजयेद् यस्तु स नाप्नोत्यापदं क्वचित् ।
रूपं मन्त्रं च सूर्यस्य चन्द्रस्य प्रतिपादितम् ॥ १२२ ॥
सप्तानामितरेषां तु मन्त्रं रूपं शृणुष्व मे ।
रक्ताम्बरधरः शूली शक्तिमांश्च गदाधरः ॥ १२३ ॥
चतुर्भुजो मेषरथो वरदो मङ्गलो मतः ।
पीताम्बरधरः शूली पीतमाल्यानुलेपनः ॥ १२४ ॥
[32]खड्गचर्मगदापणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ।
स्वर्णगौरः पीतवासाः स्वर्णपर्यंकसंस्थितः ॥ १२५ ॥
मालां कमण्डलुं दण्डं वामेन वरदायकम् ।
चतुर्भुजं च सर्वज्ञं चिन्तयेद् देवतीर्थकम् ॥ १२६ ॥
सर्वैर्देवगणैर्नित्यं तप्यमानं[33] मनोहरम् ।
शुक्लवस्त्रं शुक्लवर्णं शङ्खनागोपरिस्थितम् ॥ १२७ ॥
चतुर्भुजं पाशमालां[34] पुस्तकं च वराभये ।
क्रमाद् दक्षिणवामायां धत्ते दैत्यगुरुः सदा ॥ १२८ ॥
इन्द्रनीलनिभः शूली वरदो गृध्रवाहनः ।
[35]पाशबाणासनधरो ध्यातव्योऽर्कसुतः सदा ॥ १२९ ॥
कामदेवस्य बीजं तु मन्त्रं भौमस्य कीर्तितम् ।
दुर्गाया नेत्रबीजस्य यत्तु मध्यावरं शुभम् ॥ १३० ॥
तन्मन्त्रं शशिपुत्रस्य सर्वकामफलप्रदम् ।

---

२९. उभयाभयदं । ३०. ....कारकं । ३१. अर्वाक्.... ।
३२. चक्रचर्मगदा... । ३३. नम्यमानं । ३४. चाक्षमालां ।
३५. पाशपाशाशनधरो.... ।

तकारपञ्चमादिस्तु चतुःषट्स्वरसंयुतम् ॥ १३१ ॥
गणेशबीजान्तमिदं गुरोर्मन्त्रं प्रकीर्तितम् ।
बिन्द्विन्दुसंयुतं चापि पूर्ववर्णद्वयं पुनः ॥ १३२ ॥
सप्तमस्वरसंयुक्तो मकारस्त्वादिरन्तरम् ।
प्रान्तवर्गाद्यक्षरं तु बिन्द्विन्दुभ्यां समन्वितम् ॥ १३३ ॥
भवेच्छुक्रस्य बीजं तु सर्वकामसमृद्धिदम् ।
प्रान्तवर्गाद्यक्षरं तु चन्द्रबिन्दुसमन्वितम् ॥ १३४ ॥
आद्यमन्त्रस्वरोपेतं तदेवेत्यादिसंयुतम् ।
शनैश्चरस्य मन्त्रोऽयं सर्वदोषविनाशनः ॥ १३५ ॥
बिन्दुचन्द्रसमायुक्तं नामाद्यक्षरमेव वा ।
तेषां सर्वग्रहाणां वै मन्त्रमङ्गं प्रकीर्तितम् ॥ १३६ ॥

शान्तिके पौष्टिके कृत्ये एभिर्मन्त्रैर्ग्रहानिमान् ।
पूजयेत् सर्वदा धीरो भूतिकामो महामतिः ॥ १३७ ॥
वरदाभयहस्तश्च खड्गचर्मधरस्तथा ।
सिंहासनगतः कृष्णो राहुर्धीरः प्रचक्ष्यते ॥ १३८ ॥
धूम्रवर्णो विशालाक्षः पुच्छरूपी चतुर्भुजः ।
खड्गचर्मगदाबाणपाणिः केतुः शवासनः ॥ १३९ ॥
उपान्तादिर्द्वादशेन स्वरेण सहितः पुनः ।
उपान्तः पञ्चमेनेन्दुबिन्दुभ्यां सहितावुभौ ॥ १४० ॥
मन्त्रोऽयमनुलोमेन राहोः केतोर्विलोमतः ।
आद्यक्षरं पूर्ववद् वा मन्त्रयुक्तमथैतयोः ॥ १४१ ॥
एवं चित्रे शैलवरे पूजयित्वा नवग्रहान् ।
अभीष्टाँल्लँभते कामान्नरः शान्तिं तथोत्तमाम् ॥ १४२ ॥

चित्रकूटात् तु पूर्वस्यां कज्जलाचल उत्तमः[३६] ।
सर्वविद्याधराद्यास्तु सन्त्यस्मिन् देवयोनयः ॥ १४३ ॥
तं पर्वतं समारुह्य प्रणम्य सकलान् सुरान् ।
स्वर्गं यान्ति नरश्रेष्ठ इह चाप्यतुलां श्रियम् ॥ १४४ ॥
कज्जलाचलशैलात् तु पूर्वस्मिञ्छुभपर्वतः ।
शच्या सार्धं पुरा रेमे यत्र शक्रः सुरेश्वरः ॥ १४५ ॥
तत्पूर्वस्यां महादेवी नदी कपिलगङ्गिका ।
तस्यां स्नात्वा नरो गङ्गास्नानजं फलमाप्नुयात् ॥ १४६ ॥

---

३६. मुद्रितपुस्तके अधिकः ।

कामाख्यानिलयात् पूर्वं दक्षिणस्यां तथा दिशि ।
विद्यते महदावर्तं भुवि ब्रह्मबिलं महत् ॥ १४७ ॥
पंचविंशतिमानेन योजनानां नरेश्वर ।
तस्मादायाति सुनदी सिताम्भोऽपम[३७]तोयभाक् ॥ १४८ ॥
को ब्रह्मा कीर्तितो देवैर्यस्मात् तस्य पिलात्[३८] स्मृता ।
गंगेव फलदा यस्मात् तस्मात् कपिलगंगिका ॥ १४९ ॥
स्नात्वा कपिलगङ्गायां सर्वमन्वन्तरेषु च ।
नरः स्वर्गमवाप्यादौ ब्रह्मलोकं[३९] ततो व्रजेत् ॥ १५० ॥
अतीत्य तां नदीं पूर्वभागे दमनिकाह्वया ।
नदी महाकृष्णतोया पापस्य दमनी तथा ॥ १५१ ॥
ततो वृद्धाह्वया चाभूदपरा सरिदुत्तमा ।
तस्या नद्याः पूर्वभागे गङ्गावत् फलदायिनी ॥ १५२ ॥
माघं तु सकलं मासं[४०] स्नात्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ।
तथा दमनिकायां च परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १५३ ॥

ततः पूर्वे परा देवी नाम्ना सा सरिदुत्तमा ।❀
महती दिव्ययमुना यमुनावत् फलप्रदा ॥ १५४ ॥❀
दक्षिणाद्रिसमुद्भूता दक्षिणोदधिगामिनी ।❀
तस्यां तु कार्तिकं मासं स्नात्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १५५ ॥❀

इह चैवोत्तमान् भोगान् भागधेयान् प्रतिष्ठितान् ।
तन्मध्ये भैरवो देवो भर्गसम्भोगसम्भवः ॥ १५६ ॥
[४१]दुर्जयाख्ये वरगिरावस्त्युपत्यकभूमिगः ।
योऽसौ शरभरूपस्य मध्यखण्डोऽतिभैरवः ॥ १५७ ॥
स एव भैरवाख्योऽयं पञ्चवक्त्रस्य मन्त्रकैः ।
सम्पूज्य तत्र मतिमान् स याति शिवलोकताम् ॥ १५८ ॥
कामेश्वरस्य सा पूजा कथिता नीलनिर्णये ।
सम्पूज्य पर्वतश्रेष्ठे दुर्जये चाचलोत्तमे ॥ १५९ ॥
तत्र[४२] भैरवगङ्गास्ति सरो वै [४३]भैरवाह्वयम् ।
तयोः स्नात्वा नरो याति शिवलोकं सनातनम्[४४] ॥ १६० ॥

---

३७. सितातोयम.... । ३८. तस्या बिलात् । ३९. ...अवाप्नुयात् ।
४०. तस्यां स्नात्वा नरोत्तमः । ❀ मुद्रितपुस्तके अधिकः ।
४१. दुर्जयाख्यो हरगिरौहरसंभोगगः समौ । ४२. तत्रैवाकाशगंगास्ति ।
४३. स्थावरा.... । ४४. अमर्त्यताम् ।

दुर्जयाख्यस्य पूर्वस्यां पुरं नाम वरासनम् ।
तद्दक्षिणे महाशैलः क्षोभको नाम नामतः ॥ १६१ ॥
तस्मिन् गिरौ शिलापृष्ठे रक्तदेवी व्यवस्थिता ।
पञ्चपुष्करिणी नाम्ना पञ्चयोनिस्वरूपिणी ॥ १६२ ॥
पञ्चभिर्दुर्गायोनिभिः पूजयेत् पंचवक्त्रकम् ।
स्थिता रमयितुं तत्र नित्यमेव हिमाद्रिजा ॥ १६३ ॥
तच्छैलपूर्वभागे तु कान्ता नाम महानदी ।
दक्षिणं सागरं याति प्रथमं चोत्तरस्रवा ॥ १६४ ॥
दिव्यं कुण्डं महाकुण्डं [४५]तच्छैलोपत्यकांक्षितौ ।
संस्थितं तत्र स्नात्वा तु तां देवीं परिपूजयेत् ॥ १६५ ॥
दिव्यकुण्डे नरः स्नात्वा पञ्चपुष्करणीं शिवाम् ।
यः पूजयेन्महाभागः स योनौ न हि जायते ॥ १६६ ॥
पञ्चयोन्यः पुष्करिणीः पंचैव परिसंस्थिताः ।
यतस्ततः पञ्चरूपा पञ्चपुष्करिणी मता ॥ १६७ ॥
यथावकुल-पुष्पाणि तथैताः पञ्चयोनयः ।
पञ्चपुष्करिणीदेव्यः प्रचण्डाः सर्वकामदाः ॥ १६८ ॥
त्रिपुराद्यास्तु तन्त्रेण ताः पूज्याः साधकोत्तमैः ।
कामेश्वरीतन्त्रमन्त्रैरथवा पूजयेच्छिवाम् ॥ १६९ ॥
बालायास्त्रिपुरायास्तु मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ।
कामेश्वर्यास्तु वा मन्त्रं पूजनेऽस्याः प्रकीर्तितम् ॥ १७० ॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चेति च योगिन्यः पञ्चास्याः परिकीर्तिताः ॥ १७१ ॥
शिवलिङ्गं च तत्रास्ति शिलायां हेरुकाह्वयम् ।
देवीदक्षिणपूर्वस्यां नायकं तं तु पूजयेत् ॥ १७२ ॥
भैरवस्य तु मन्त्रेण पूजयित्वा दिवं व्रजेत् ।
निर्माल्यधारिणी देवी चण्डगौरीति कीर्तिता ॥ १७३ ॥
एतस्यां नरशार्दूल पुरा भर्गेण भाषिता ।
कान्तायां सलिले स्नात्वा वसन्ते[४६] मानवोत्तमः ॥ १७४ ॥
रूपवान् गुणवान् भूत्वा शिवलोकाय गच्छति ।
क्षोभकाख्याद् महाशैलादैशान्यां पर्वतोत्तमः ॥ १७५ ॥
तुंगसन्ध्याचलो नाम वसिष्ठो यत्र शप्तवान् ।

---

४५. तस्यैव । ४६. रमन्ते ।

निमिनाम्नस्तु राजर्षेः शापाद् ब्रह्मसुतः पुरा ॥ १७६ ॥
वसिष्ठो ह्यशरीरोऽभूत् तच्छापाच्च निमिस्तथा ।
ततो ब्रह्मोपदेशेन निर्जने कामरूपके ॥ १७७ ॥
सन्ध्याचले तपस्तेपे तस्य विष्णुरभूत् तदा ।
प्रत्यक्षस्तस्य देवस्य बरदानान्महामुनिः ॥ १७८ ॥
अमृतान्यवतार्याशु कुण्डं कृत्वा गिरेस्तटे ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च शरीरं प्राप पूरितम् ॥ १७९ ॥
तस्मादमृतकुण्डाच्च सन्ध्या नाम नदीवरा ।
निःसृता तत्र चाप्लुत्य चिरायुरगदो भवेत् ॥ १८० ॥
तस्मात् पूर्वं तु ललिता ललिताख्या सरिद्वरा ।
सागराद् दक्षिणात् पूर्वं महादेवावतारिता ॥ १८१ ॥
वैशाखशुक्लपक्षस्य तृतीयायां नरस्तु यः ।
कुर्याद् वै ललितास्नानं स शम्भुसदनं व्रजेत् ॥ १८२ ॥
ललितायाः [४७]पूर्वतीरे भगवान्नाम पर्वतः ।
स्वयं विष्णुलिङ्गरूपी तत्रास्ते भगवान् हरिः ॥ १८३ ॥
ललितायां नरः स्नात्वा द्वादश्यां शुक्लपक्षके ।
भगवन्तं समारुह्य यो यजेत् परमेश्वरम् ॥ १८४ ॥
स याति विष्णुसदनं शरीरेण विराजता ।
एताः पूर्वोदिता नद्यः सर्वाश्चैवोत्तरस्रवाः ॥ १८५ ॥
क्रमात् तु दक्षिणं यान्ति सागरं जाह्नवीसमाः ।
कामाख्या प्रथमं दृष्ट्वा स्नात्वा चैवोर्वशीजले ।
य एतासु चरेत् स्नानं स तु मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १८६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

---

४७. पूर्वभागे ।

अशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

शाश्वती कथिता या तु नदी मत्स्यध्वजासिता।
तस्याः पूर्वे समाख्याता नदी दीपवती मता॥ १॥
एषा च हिमवज्जाता छिन्दन्ती दीपवत्तमः।
तेन देवमनुष्येषु नदी दीपवती स्मृता॥ २॥
दीपवत्याः पूर्वतस्तु शृङ्गाटो नाम पर्वतः।
तत्र देवस्य भर्गस्य लिङ्गमेकं प्रतिष्ठितम्॥ ३॥
सरित् तु सिद्धा त्रिःस्रोता दक्षिणोदधिगामिनी।
शृङ्गाटकस्य सततं स्रवन्ती सा तु पादतः॥ ४॥
दक्षिणं सागरं याति भर्गस्य प्रियकारिणा।
सलिले यो नरः स्नात्वा त्रिःस्रोताया नरोत्तमः॥ ५॥
शृङ्गाटकं समारुह्य पूजयेल्लिङ्गशङ्करम्।
स दीप्तकायः शुद्धात्मा प्राप्य कामानिहातुलान्॥ ६॥
अन्ते भर्गगृहं याति ततो मोक्षमवाप्नुयात्।
हरस्तु द्विभुजस्तस्मिन् सदा वृषभवाहनः॥ ७॥
उमया रमते सार्धं वामदेवस्य मन्त्रकैः।
तन्त्रैश्च पूजयेद् देवमुमामन्त्रेण चण्डिकाम्॥ ८॥
तत्-पूर्वतो निम्नगा तु नाम्ना तु वृद्धवेदिका।
तस्यां स्नात्वा फलं मर्त्यो वेदिकास्नानजं लभेत्॥ ९॥
ततो भट्टारिका नाम हिमशैलसमुद्भवा।
महानदी देवगणैर्या सदोपास्यते सुखम्॥ १०॥
तस्यां यः कुरुते स्नानं युगादिषु चतुर्ष्वपि।
स याति परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ११॥
अस्ति नाटकशैले तु सरो मानससन्निभम्।
यत्र सार्धं शैलपुत्र्या जलक्रीडां सदा हरः॥ २॥
कुरुते नरशार्दूल स्वर्णपङ्कजशोभिते।
तस्य पश्चान्मध्यपूर्वभागेभ्यस्तु सरित्-त्रयम्॥ १३॥
अवतीर्णं प्रयात्येव दक्षिणं सागरं प्रति।
तस्य पश्चिमभागे तु नदी दिक्करिकाह्वया॥ १४॥

दिग्गजक्षतसंजाता तेन दिक्करिकाह्वया ।
मध्यभागात् सृता या तु[४८] शङ्करेणावतारिता ॥ १५ ॥
वृद्धगंगाह्वया सा तु गंगेव फलदायिनी ।
या निःसृता पूर्वभागात् तस्माद् गिरिवरान्नदी ॥ १६ ॥
सुवर्णस्राविणी ख्याता[४९] सा गङ्गासदृशीफले ।
कुर्वत्याः सरसि स्नानं पार्वत्याश्च शरीरतः ॥ १७ ॥
निःसृताः स्वर्णकणिकास्ता वहन्ति चलैरिमाः ।
क्रीडार्थं शम्भुना गात्रे कणिकाभिः[५०] समाचिताः ॥ १८ ॥
स्वस्थानात् तत्र संलग्नास्ततश्चन्दनबिन्दवः ।
ता उमायाः शरीरात् तु संस्रवन्ति जलैः सह ॥ १९ ॥
ततः स्वर्णवहा नाम स्वर्णश्रीः सर्वतोऽधिका ।
एतासु चैत्रमासं तु स्नात्वा मर्त्यो नरर्षभः ॥ २० ॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां त्रिकालं यत्र मानवः ।
चिरं देवीगृहे स्थित्वा शेषे ब्रह्मगृहं व्रजेत् ॥ २१ ॥
भूमाववगतः पश्चात् सार्वभौमो नृपो भवेत् ।
वृद्धगङ्गाजलस्यान्तस्तीरे ब्रह्मसुतस्य वै ॥ २२ ॥
विश्वनाथाह्वयो देवः शिवलिङ्गसमन्वितः ।
विश्वदेवी महादेवी योनिमण्डलरूपिणी ॥ २३ ॥
हयग्रीवेण युयुधे तत्र देवो जगत्पतिः ।
हयग्रीवं यत्र हत्वा मणिकूटं पुरागतम् ॥ २४ ॥
तत्र यः पूजयेद् दुर्गां शारदां तन्त्रमन्त्रकैः ।
हयग्रीवस्य मन्त्रेण तन्त्रेण गरुडध्वजम् ॥ २५ ॥
कामेश्वरस्य तन्त्रेण मन्त्रेणापि च शङ्करम् ।
यो यजेत् परया भक्त्या द्वादश्यां समुपोषितः ॥ २६ ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तस्य पुण्यफलं शृणु ।
कल्पकोटित्रयं स्थित्वा [५१]शिवगेहे गृहे हरेः ॥ २७ ॥
तावन्तं संस्थितः कालं तावन्तं च शिवागृहे ।
शेषे भुवं समासाद्य वेदविद् ब्राह्मणो भवेत् ॥ २८ ॥
नद्याः स्वर्णश्रियः पूर्वं नदी कामाह्वया शुभा ।
कामायाः पूर्वभागे तु नदी सोमाशनाह्वया ॥ २९ ॥

---

४८. मध्यभागसृतायास्तु । ४९. सुवर्णश्रीरिति विख्याता ।
५०. कलिकाभिः । ५१. शिवलोके गृहे तु सः ।

सोमाशनायाः पूर्वस्यां नदी नाम्ना वृषोदका ।
ततः पूर्वे कामरूपं पीठं ते जगतां प्रसूः ॥ ३० ॥
जगन्मयी महामाया देवी दिक्करवासिनी ।
एता याः कथिता नद्यः सकला दक्षिणस्रवाः ॥ ३१ ॥
तासु स्नात्वा च पीत्वा च स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।
प्रान्ते दिक्करवासिन्याः सदा वहति स्वर्णदी ॥ ३२ ॥
सितगङ्गाह्वया लोके साक्षाद् गङ्गाफलप्रदा ।
सा भूमिपीठसंस्था च देवी दिक्करवासिनी ॥ ३३ ॥
अन्तर्जले[५२] प्लावयन्ती याति प्रत्यक्षतां सुरैः[५३] ।
सितगङ्गाजले स्नात्वा दृष्ट्वा शम्भुं हरिं विधिम् ॥ ३४ ॥
दृष्ट्वा ललितकान्ताख्यां पुनर्योनौ न जायते ।
लिङ्गस्वरूपी भगवाञ्छम्भुस्तत्र स्वयं स्थितः ॥ ३५ ॥
विष्णुः शिलास्वरूपेण ब्रह्मलिङ्गस्वरूपधृक् ।
पीठे दिक्करवासिन्या द्विरूपा रमते शिवा ॥ ३६ ॥
तीक्ष्णकान्ताह्वया त्वेका योग्रतारा प्रकीर्तिता ।
परा ललितकान्ताख्या या[५४] श्रीमङ्गलचण्डिका ॥ ३७ ॥
तस्यास्तु सततं रूपं तीक्ष्णकान्ताह्वयं नृप ।
कृष्णा लम्बोदरी या तु सा स्यादेकजटा शिवा ॥ ३८ ॥
तेन रूपेण तां देवीं सततं परिपूजयेत् ।
अङ्गमन्त्रं च रूपं च तस्याः प्राक्प्रतिपादितम् ॥ ३९ ॥
त्रिकोणं मण्डलं चास्याः कर्तव्यं मन्त्रपूर्वकम् ।
आदौ रेखे ततः पश्चात् सुरेखेति पदं ततः ॥ ४० ॥
तथा पदं चाधिगम्य तिष्ठन्त्विति पदं ततः ।
मण्डलस्यास्य मन्त्रोऽयं तीक्ष्णायाः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
नरत्रिपुरदेवादियमवेतालदुर्धराः ।
गणश्रमेत्यन्तकान्ता द्वारपालाः प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥
एतांस्तु पूजयेत् सम्यङ्मण्डलस्याष्टदिक्षु वै ।
आदौ सम्बोधनं कृत्वा वज्रपुष्पं ततः परम् ॥ ४३ ॥
वह्निजायं[५५] ततः पश्चान्मन्त्रमेषां प्रकीर्तितम् ।
पात्रोपकरणादीनां [५६]स्थानस्यान्यस्य सर्वतः ॥ ४४ ॥

---

५२. ...जलैः । ५३. प्रत्यक्षमान्तरैः । ५४. सा ।
५५. वह्निजाया । ५६. स्थानं न्यासस्य ।

सर्वमुत्तरतन्त्रोक्तं गुह्यं रूपद्वयेऽपि च ।
चामुण्डा च कराला च सुभगा भीषणा भगा ॥ ४५ ॥
विकटेति च योगिन्यः प्रोक्ता यस्यास्तवैव षट् ।
हे भगवत्येकजटे विद्महे पदमन्ततः ॥ ४६ ॥
विकटदंष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात् ।
एषा तु तीक्ष्णगायत्री पीठदेव्याः प्रकीर्तिता ॥ ४७ ॥
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी विकटचण्डिका ।
माला तु मृन्मयी प्रोक्ता रुद्राक्षसम्भवापि वा ॥ ४८ ॥
विशेष एष देव्यास्तु पूजने परिकीर्तितः ।
उपचारादिकं कृत्यं बलिदानं जपादिकम् ॥ ४९ ॥
[५७]सर्वं तु पूर्ववद् ग्राह्यं कामाख्यापूजने यथा ।
*पानेषु मदिरा शस्ता नरो बलिषु पार्थिव ॥ ५० ॥
*मोदको नारिकेलं च मांसव्यञ्जनमैक्षवम् ।
*नैवेद्येषु प्रियकरास्तीक्ष्णायाः परिकीर्तिताः ॥ ५१ ॥
यैषा ललितकान्ताख्या देवी मङ्गलचण्डिका ।
वरदाभयहस्ता सा द्विभुजा गौरदेहिका ॥ ५२ ॥
रक्तपद्मासनस्था च मुकुटोज्ज्वलमण्डिता ।
रक्तकौशेयवसना स्मितवक्त्रा शुभानना ॥ ५३ ॥
नवयौवनसम्पन्ना चार्वङ्गी ललितप्रभा ।
उमाया भाषितं मन्त्रं यत् पूर्वं त्वेकमक्षरम् ॥ ५४ ॥
मन्त्रमस्यास्तु तज्ज्ञेयं तेन देवीं प्रपूजयेत् ।
नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै तु धीमहि ॥ ५५ ॥
तन्नो ललितकान्तेति ततः पश्चात् प्रचोदयात् ।
एषा ललितगायत्री देव्या इष्ट्यै प्रकीर्तिता[५८] ॥ ५६ ॥

---

५७. सर्वमुत्तरतन्त्रोक्तं ग्राह्यं रूपद्वयेऽपि च ।
*चामुण्डा च कराला च शुभदा भीषणा वृषा ।
विकटेति च योगिन्यः प्रोक्तास्तस्यास्तु भूपते ॥ (क)
ईं भगवत्येकजटे विद्महे पदमन्ततः ।
विकटदंष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचयोदयात् ॥
एषा तु तीक्ष्णगायत्री पीठदेव्याः प्रकीर्तिता ॥ (ख)

* मुद्रितपुस्तके अधिकः । ५८. प्रतिष्ठिता ।

लोहितांगस्य दिवसः प्रियोऽस्याः परिकीर्तितः ।
कालो वसन्तकालश्च स्वरश्चापि तु पञ्चमः ॥ ५७ ॥
अष्टम्यां च नवम्यां च पूजा कार्या विभूतये ।
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी ललितचण्डिका ॥ ५८ ॥
दूर्वाङ्कुरैः समायुक्तमक्षतं प्रीतिदं परम् ।
अयमस्या विशेषस्तु पूजने परिकीर्तितः ॥ ५९ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य[५९] [६०]तन्त्रं ग्राह्यं तु पूजने ।
उपचारो बलिश्चास्या विहितो यः क्रमः पुरा ॥ ६० ॥
महामायामहादेव्यास्तद्ग्राह्यं परिपूजने ।
स्वगात्ररुधिरं दद्यादात्मनश्च हिताय वै ॥ ६१ ॥
पटेषु प्रतिमायां वा घटे मङ्गलचण्डिकाम् ।
यः पूजयेद् भौमदिने शुभैर्दूर्वाङ्कुरैः[६१] शिवाम् ॥ ६२ ॥
सततं साधकः सोऽपि काममिष्टमवाप्नुयात् ।
एवं दिक्करवासिन्याः कथितः पूजनक्रमः ॥ ६३ ॥
यच्छ्रुत्वा नाशुभं किञ्चिदाप्नोति श्रवणे रतः ।
दिक्करस्त्वरुणः[६२] प्रोक्तस्तथा शम्भुश्च दिक्करः ॥ ६४ ॥
तस्मिन्नध्युषिता देवी तस्माद् दिक्करवासिनी ।
जगत्त्रयेऽपि यस्यास्तु सदृशी क्वापि सुन्दरी ॥ ६५ ॥
नान्यास्ति ललिता तेन देवी ललितकान्तिका ।
शङ्करस्य पुरा प्रोक्तो ग्राह्यो वै पूजनक्रमः ॥ ६६ ॥
शृणु राजन्नवहितो ब्रह्मणः पूजनक्रमम् ।
ब्रह्मबीजं पुरा प्रोक्तं तन्मन्त्रं सर्वतश्चरेत् ॥ ६७ ॥
तेनैव तं तु सम्पूज्य परं निर्वाणमाप्नुयात् ।
एतस्य चाङ्गमन्त्रं तु यथा भर्गेण भाषितम् ॥ ६८ ॥
वेतालभैरवाभ्यां तु रूपं च शृणु भूमिप ।
यस्तृतीयश्च वह्निश्च शेषः स्वरसमन्वितः ॥ ६९ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तो ब्रह्ममन्त्रं प्रकीर्तितम् ।
अनेनैव तु मन्त्रेण ब्रह्मणा यः प्रपूजयेत् ॥ ७० ॥
स काममिष्टं संप्राप्य ब्रह्मलोकेषु मोदते ।
ब्रह्मा कमण्डलुधरश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः ॥ ७१ ॥

---

५९. ....मन्त्रं च । ६० यन्त्रं । ६१. ...दूर्वाक्षतैः ।
६२. दिक्करस्तरुणः ।

कदाचिद्रक्तकमले हंसारूढः कदाचन।
वर्णेन रक्तगौराङ्गः प्रांशुस्तुङ्गाङ्ग उन्नतः॥ ७२॥
कमण्डलुं वामकरे स्रुचं[६३] हस्ते च दक्षिणे।
दक्षिणाधस्तथा मालां वामाधश्च तथा स्रुवम्[६४]॥ ७३॥
आज्यस्थाली वामपार्श्वे देवाः[६५]सर्वेऽग्रतः स्थिताः।
सावित्री वामपार्श्वस्था दक्षिणस्था सरस्वती॥ ७४॥
सर्वे च ऋषयो ह्यग्रे कुर्यादेवं विचिन्तनम्।
चतुष्कोणं चतुर्द्वारमष्टपत्रसमन्वितम्॥ ७५॥
चतुष्कोणेष्वङ्कितं तु स्रक्कमण्डलुस्रुक्स्रुवैः।
सम्मार्जनादिकं सर्वं याश्चान्याः प्रतिपत्तयः॥ ७६॥
दृष्टाश्चोत्तरतन्त्रोक्ता योगपीठेऽङ्गिकादिकाः।
आधारशक्तिप्रमुखांस्तथा सर्वांस्तु पूजयेत्॥ ७७॥
अष्टपत्रेषु [६६]पद्मस्य दिक्पालांश्च प्रपूजयेत्।
पद्मासनाय विद्महे हंसरूढाय धीमहि॥ ७८॥
तन्नो ब्रह्मन्निति पदं ततः पश्चात् प्रचोदयात्।
एषा तु ब्रह्मगायत्री पूजयेदनया विधिम्॥ ७९॥
निर्माल्यधारी चैतस्य सनत्कुमार उच्यते।
उपचाराः पूर्ववत् तु [६७]नेत्राञ्जनविवर्जिताः॥ ८०॥
रक्तकौशेयवस्त्रं तु ब्रह्मप्रीतिकरं परम्।
अन्नं सपायस सर्पिस्तिलयुक्तं च भाजनम्॥ ८१॥
सितरक्तसमायुक्तं चन्दनं परिकीर्तितम्।
पार्श्वयोः शंकरं विष्णुं [६८]पूजने पूजयेत् पुरः॥ ८२॥
स्रुवादीन् करसंस्थांस्तु मण्डले परिपूजयेत्।
सरस्वतीं च सावित्रीं हंसं पद्मं तथैव च॥ ८३॥
अयं विशेषः कथितः प्रणामश्चास्य दण्डवत्।
पद्मबीजभवा माला जपकर्मणि कीर्तिता॥ ८४॥
पूर्णादर्शौ तिथी ग्राह्यौ पूजाकर्मणि सर्वदा।
क्षीरेणार्घं प्रदद्यात् तु सर्वदा ब्रह्मणे नृप॥ ८५॥
अयं ते कथितो भूप यथा भर्गेण भाषितः।
दर्शयता स्वपुत्राभ्यां कामरूपाह्वयं शुभम्॥ ८६॥

---

६३. श्रुवं। ६४. श्रुचः। ६५. वेदाः। ६६. पद्मस्याष्टदिक्पालानपि।
६७. नेत्ररञ्जन····। ६८. पूजयेत् पूजयेत् पुनः।

यत्र तत्र विधिश्चैव साधकः परिपूजयेत्।
पीठे सम्यक् पूजयित्वा परं निर्वाणमाप्नुयात्॥ ८७॥
कथिता ब्रह्मणः पूजा पूजनं श्रृणु वैष्णवम्।
बीजं तु वासुदेवस्य पुरैव प्रतिपादितम्॥ ८८॥
तदङ्गमन्त्रं राजेन्द्र द्वादशाक्षरमुच्यते।
नमो भगवते पूर्वं वासुदेवाय वै परम्॥ ८९॥
अङ्गमन्त्रमिदं चैव[६९] वासुदेवस्य कीर्तितम्।
अस्य प्रत्यङ्गरूपं तु दधिवामनसंज्ञकम्॥ ९०॥
तस्य मन्त्रं नरश्रेष्ठ शम्भुना भाषितं श्रृणु।
ॐ नमो विष्णवे[७०] पूर्वं पदं तस्य प्रकीर्तितम्॥ ९१॥
पदं च सुरपतये चतुर्थ्यन्तं महाबलम्।
स्वाहान्तं हृदयासन्नं प्रत्यङ्गवैष्णवं मतम्॥ ९२॥
[७१]मन्त्रत्रयं तु यो वेद बीजं प्रत्यङ्गसंज्ञकम्।
स पुमान् देवकायस्तु न स भूयोऽभिजायते॥ ९३॥
सर्वं उत्तरतन्त्रोक्तः क्रमो ग्राह्यः प्रपूजने।
त्रिषु मन्त्रेषु च सदा विशेषं श्रृणु भूपते॥ ९४॥
रूपं तु बीजमन्त्रस्य प्रथमं श्रृणु भूपते।
पूर्णचन्द्रोपमः शुक्लः पक्षिराजोपरिस्थितः॥ ९५॥
चतुर्भुजः पीतवस्त्रैस्त्रिभिः संवीतदेहभृत्।
दक्षिणोर्ध्वे गदां धत्ते तदधो विकचाम्बुजम्॥ ९६॥
वामोर्ध्वे चक्रमत्युग्रं धत्तेऽधः शङ्खमेव च।
श्रीवत्सवक्षाः सततं कौस्तुभं हृदि चांशुमत्॥ ९७॥
धत्ते कक्षे ह्यधोवामे तूणीरं बाणपूरितम्।
दक्षिणे कोषगं खड्गं नन्दकं सशरासनम्॥ ९८॥
शीर्षे किरीटं सूद्योतं कर्णयोः कुण्डलद्वयम्।
आजानुलम्बिनीं चित्रां वनमालां गले स्थिताम्॥ ९९॥
दधानं दक्षिणे देवीं श्रियं पार्श्वे तु बिभ्रतम्।
सरस्वतीं वामपार्श्वे चिन्तयेद् वरदं[७२] हरिम्॥ १००॥
बीजमन्त्रस्य रूपं च कथितं तव पार्थिव।
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य रूपमेतच्छृणुष्व मे॥ १०१॥

---

६९. ...मन्त्रं तथैतस्य। ७०. तस्य पूर्वंपदं प्रकीर्तितम्।
७१. मन्त्रं यन्त्रं। ७२. अथ तं।

नीलोत्पलदलश्यामं तथैव च चतुर्भुजम् ।
दक्षिणोर्ध्वस्थितं पद्मं गदां चाथ प्रयोजयेत् ॥ १०२ ॥
वामेऽधश्चक्रमतुलमूर्ध्वे शंखं च बिभ्रतम् ।
चिन्तयेद् वरदं देवं सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ॥ १०३ ॥
अष्टादशाक्षरस्यास्य प्रत्यङ्गस्य च चिन्तनम्[७३] ।
शृणु राजन्नवहितो दारिद्र्यभयनाशनम्[७४] ॥ १०४ ॥
पूर्णेन्दुसदृशं कान्त्या शुक्लवर्णं विचिन्तयेत् ।
करे विचिन्तयेद् वामे पीयूषापूरितं घटम् ॥ १०५ ॥
दध्यन्नखण्डसंयुक्तं दक्षिणे स्वर्णभाजनम् ।
पद्मासनगतं देवं चन्द्रमण्डलमध्यगम् ॥ १०६ ॥
शुक्लवस्त्रधरं देवं प्रमाणाद् वामनं सदा ।
ईषद्धाससमायुक्तं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ॥ १०७ ॥
चिन्तयेद् वरदं देव सर्वकामफलप्रदम् ।
दहनप्लवनादौ च पूर्वतन्त्रोदिता यथा ॥ १०८ ॥
तथा मन्त्राः परिग्राह्यास्तथा चोत्तरतन्त्रगाः ।
मण्डलस्य क्रमं तस्य शृणु भर्गेण भाषितम् ॥ १०९ ॥
रेखया नित्यपूजासु रजोभिः पंचभिस्तथा ।
नैमित्तिके यथा कार्यं भेदाभेदेन साम्प्रतम् ॥ ११० ॥
हस्तमात्रं[७५]चतुर्द्वारं वतुलाम्बुजसन्निभम् ।
चतुष्कोणे चतुर्भिस्तु शङ्खैर्युक्तं मनोहरम् ॥ १११ ॥
[७६]बद्धद्वारं दिक्पतीनामायुधैः करणैस्तथा ।
अष्टासु दिक्षु निहितं सबहिर्वेष्टपद्मकम् ॥ ११२ ॥
एवं यथा रजोभिस्तु कार्यं तच्छृणु पार्थिव ।
सितैः पीतैस्तथा रक्तैः श्यामैश्च हरितैः क्रमात् ॥ ११३ ॥
रजोभिर्मण्डलं कुर्यादन्यथा न समाचरेत् ।※
चतुर्हस्तं त्रिहस्तं च द्विहस्तं हस्तमात्रकम् ॥ ११४ ॥※
सर्वत्र मण्डलं कुर्याद् यथोक्तं वाधिकं पुनः ।
राजसूयाश्वमेधादौ चतुर्हस्ताधिकं मतम् ॥ ११५ ॥※
कल्पानतिक्रमाद् भूप यथोक्तं यत्र यत्र च ।※
दिक्पालायुधपद्मानां पूर्ववल्लिखनक्रमः ॥ ११६ ॥

---

७३. विस्तरम् । ७४. '''मञ्जनम् । ७५. हस्तमानं ।
७६. चतुर्द्वारं । ※ अधिकाः मुद्रितपुस्तके ।

सितै रजोभिः कर्तव्यं मध्ये पद्मं सुवर्तुलम्।
कर्णिका पीतवर्णास्य केशराग्रं तथारुणम्[७७] ॥ ११७ ॥
रक्तैः पीतैः पूरयेत् तु बहिः पद्मस्य सर्वतः।
वज्रं शक्तिं लोहदण्डं खड्गं पाशाङ्कुशं[७८] गदाम् ॥ ११८ ॥
शूलमष्टदिगीशानामायुधानि क्रमात् पुनः।
शम्भुर्गौरी तथा ब्रह्मा रामः कृष्णस्तथैव च ॥ ११९ ॥
एतास्तु सततं पूज्याः संस्थिताः[७९] पञ्चदेवताः।
न कदाचिदधः[८०] कुर्याच्छम्भुगौर्यो[८१]र्वियोजनम् ॥ १२० ॥
वियोगे तु कृता पूजा निष्फला तस्य जायते।
विच्छिन्नं मूर्ध्नि भूतं तु पूजितं शक्तमेव च ॥ १२१ ॥
न्यासे तु मण्डलस्यास्य रजोदोषं विवर्जयेत्।
सर्वत्र मण्डलं कार्यं वासुदेवस्य पूजने ॥ १२२ ॥
एवमेव नृपश्रेष्ठ निष्फलं चान्यथेतरत्[८२]।
बलभद्रश्च कामश्च ह्यनिरुद्धस्तदुद्भवः ॥ १२३ ॥
नारायणस्तथा ब्रह्मा विष्णुः षष्ठः प्रकीर्तितः।
नरसिंहो वराहश्च योगिन्योऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १२४ ॥
पूर्वाद्यष्टदले श्वेतां रूपतो मन्त्रतः पृथक्।
पूजयेत् कर्णिकामध्ये वासुदेवं तु नायकम् ॥ १२५ ॥
विमला नायिका तस्य वासुदेवस्य कीर्तिता।
बलभद्रमुखानां तु योगिनीः शृणु पार्थिव ॥ १२६ ॥
आदावुत्कर्षिणी ज्ञेया ज्ञाना पश्चात् क्रियापरा।
योगा प्रह्वी तथैशानी अनुग्राही तथाष्टमी ॥ १२७ ॥
सर्वाश्चतुर्भुजाः प्रोक्ताः शङ्खचक्रगदाधराः।
योगिन्यो बलभद्रं[८३] तु कामं विधिमृते तथा ॥ १२८ ॥
[८४]विधिखड्गं तु पूर्वोक्तं हलं च मुषलं बलः[८५]।
[८६]खड्गं चक्रं च धत्ते यो गदां पार्श्वे स्थितां सदा ॥ १२९ ॥
कामस्तु पुष्पकोदण्डं धत्ते वामेन पाणिना।
गदां चक्रं[८७] च पुष्पं च धत्तेऽन्यैः पाणिभिः पुनः ॥ १३० ॥

---

७७. ···रुणम्। ७८. पाशं ध्वजं। ७९. दिक्पालाः।
८०. कदाचिद् बुधः। ८१. शम्भुगौर्योर्वा। ८२. चान्यचेतनम्।
८३. बलभद्रस्य। ८४. विधे रूपं। ८५. तथा। ८६. चक्रं शंखं।
८७. शार्ङ्गञ्च चक्रं च। श्वेत····।

पार्श्वे पद्मं तथा धत्ते सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ।
चक्रं शङ्खो वराहस्य दक्षिणे परिकीर्तितौ ॥ १३१ ॥
नृसिंहस्य पुनश्चक्रशङ्खौ दक्षिणवामयोः ।
शङ्खं पद्मं तथा विष्णोः पाण्योर्दक्षिणयोः स्थितम् ॥ १३२ ॥
शंखो गदा वामतस्तु नारायणकरस्थितौ ।
दक्षिणाधो गदां धत्ते ह्यनिरुद्धो नरोत्तमः ॥ १३३ ॥
[८८]सितरक्तस्तथा पीतो भिन्नाञ्जननिभस्तथा ।
नीलोत्पलदलश्यामस्तथा रक्तघनप्रभः ॥ १३४ ॥
भ्रमरश्यामलः पिङ्गः स्वर्णगौरः क्रमादिमे ।
वर्णतो योगिनः प्रोक्ता वासुदेवस्य पार्थिव ॥ १३५ ॥
यादृग्वर्णश्च ध्यानं च यस्य यस्य च योगिनः ।
तादृशीर्योगिनीस्तस्य चिन्तयेत् तत्समीपगाः ॥ १३६ ॥
आधारशक्तिप्रमुखाः सर्वा आसनदेवताः ।
ग्रहाश्च सर्वे दिक्पाला ध्यानतो मन्त्रतस्तथा ॥ १३७ ॥
पूजनीया यथोद्देशे मण्डलस्य क्रमान्नृप ।
देवस्य चिन्तितं यद्यच्छरीरे कमलादिकम् ॥ १३८ ॥
धृतास्त्रं वज्रशक्त्यादिगरुडादींश्च पूजयेत् ।
वणमालां शम्भुमतामासाद्य क्रमयोगतः ॥ १३९ ॥
आद्यद्वितीयक्रमतो गदादीनां तु मन्त्रकम् ।
पञ्चरात्रोदिते भागे नारदेन यथोदिताः ॥ १४० ॥
मन्त्राश्चक्रगदादीनां ग्राह्याः सर्वत्र पूजने ।
गरुत्मान् सूर्यसङ्काशो गदा कृष्णायसी पुनः ॥ १४१ ॥
सरस्वती शुक्लवर्णा लक्ष्मीर्हेमप्रभा सदा ।
मध्याह्नसूर्यप्रतिमं चक्रं तु परिकीर्तितम् ॥ १४२ ॥
सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमः शङ्खस्तु परिकीर्तितः ।
कौस्तुभो ह्यरुणः प्रोक्तः श्रीवत्सो ह्यरुणद्युतिः ॥ १४३ ॥
आरक्तकौस्तुभो ज्ञेयो माला चित्रा प्रकीर्तिता ।
विद्युत्प्रभा सर्वबाणाः शक्रचापप्रभं धनुः ॥ १४४ ॥
स्वर्णचूर्णप्रकाशं तु वस्त्रमस्य प्रकीर्त्तितम् ।
बालसूर्यप्रतीकाशे[८८] कुण्डले द्वे श्रवोगते ॥ १४५ ॥
सूर्यस्य सदृशं शीर्षे किरीटं परिकीर्त्तितम् ।

---

८८. ...सूर्यस्य सदृशे ।

श्रृणु न्यासं ततो भूप यैर्न्यासैर्विष्णुरूपधृक् ॥ १४६ ॥
साधको हि भवेन्नित्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।
न्यासं तु प्रथमं कुर्यान्मन्त्रविद् द्वादशाक्षरैः ॥ १४७ ॥
वासुदेवस्य बीजेन बीजं चैवाथ योगिनाम् ।
ततो न्यसेन्महामन्त्रे ततश्चाष्टादशाक्षरैः ॥ १४८ ॥
ततस्तु हृदयादीनां षड्भिर्मन्त्रैर्द्विधा पुनः ।
एवं चतुर्भिर्न्यासैस्तु पूजामेकां समाचरेत्[८९] ॥ १४९ ॥
प्रथमं दक्षिणाङ्गुष्ठे न्यसेदाद्यक्षरं बुधः ।
*द्वादशाक्षरमन्त्रस्य [९०]शेषबीजानि तु क्रमात् ॥ १५० ॥
*तर्जन्यादौ दक्षिणस्य वामाङ्गुष्ठान्तमेव च ।
*शेषाक्षरद्वयं पश्चाद् न्यसेत् पाणितलद्वये ॥ १५१ ॥
*हृदि शीर्षे शिखायां च स्कन्धयोर्दृक्पिचण्डयोः ।
*पृष्ठे तु भुजयोः पाण्योर्जंघयोः पादयोः क्रमात् ॥ १५२ ॥
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य बीजानि च ततो न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठयोस्तु प्रथमं वासुदेवस्य तत्त्वकम् ॥ १५३ ॥
तर्जन्यादौ योगिनां तु बीजान्यष्टौ द्वयोर्न्यसेत् ।
शिरोदृगा[९१]स्यकण्ठोरोनाभिगुह्येषु जानुनोः ॥ १५४ ॥
पादयोर्वासुदेवस्य योगिबीजानि विन्यसेत् ।
मन्त्राणि हृदयादीनां यान्युक्तानि पुरा नृप ॥ १५५ ॥
तानि न्यस्याङ्गुष्ठमूलेऽङ्गुलीजाते द्वये द्वये ।
वामदक्षिणपाण्योस्तु शेषं तु तलयोर्न्यसेत् ॥ १५६ ॥
हृदयाद्यस्त्रपर्यन्तं पुनस्तानि क्रमान्न्यसेसेत् ।
अष्टादशाक्षरस्यादिनववर्णान् न्यसेद् बुधः ॥ १५७ ॥
शिरोनेत्रादिपूर्वोक्ते नवबीजस्य गोचरे ।
शेषान् वर्णान[९२]सङ्कीर्णपार्श्ववस्तिषु शेफसि ॥ १५८ ॥
कट्यामूर्वोर्जङ्घयोश्च न्यसेत् पादाङ्गुलीषु च ।
यस्य मन्त्रस्य या पूजा तन्त्रैस्तु यत्र चोदिता ॥ १५९ ॥
तस्य तन्त्रस्य तत्रैव न्यासं मन्त्री समाचरेत् ।
अथ चैकत्र सर्वेषां न्यासं कुर्याद विचक्षणः ॥ १६० ॥
चतुर्विधैः कृतैर्न्यासैः पूतात्मा धूतकल्मषः ।

---

८९. समारभेत् । ९० बीजानि च ततो न्यसेत् ।

* अधिकः पाठः मुद्रितपुस्तके । ९१. शिरोदेशास्य । ९२. मुखे ।

साक्षाद् विष्णुर्भवेन्मन्त्री सम्यक् पूजाफलं लभेत् ॥ १६१ ॥
विनापि पूजनं यस्तु न्यासं कुर्याच्चतुर्विधम् ।
स धीरो विष्णुसायुज्यमाप्नोति परमं पदम् ॥ १६२ ॥
योगपीठं ततो ध्यात्वा गरुडं चक्रशङ्खं च ।
गदां लक्ष्मीं तथा पद्मं क्रमादेतेषु विन्यसेत् ॥ १६३ ॥
पूर्वदक्षिणकौवेरपश्चात्[९३]कोणेषु वै क्रमात् ।
दक्षिणे चोत्तरे वापि विन्यसेन्मन्त्रविद् बुधः ॥ १६४ ॥
वनमालां पद्ममध्ये श्रीवत्सं कौस्तुभं मणिम् ।
विन्यस्य दक्षिणे तस्य न्यसेच्छार्ङ्गं शरासनम् ॥ १६५ ॥
तूणीरयुगलं वामे खड्गं दक्षिणतो न्यसेत्
वामे चर्म निधायाशु तत्र कुर्यात् सरस्वतीम् ॥ १६६ ॥
पूजयित्वा च सर्वाणि ततो मुद्रां प्रदर्शयेत् ।
मुद्राः पुटाद्या याः प्रोक्ता विष्णुर्याश्चापि योगिनाम् ॥ १६७ ॥
ग्रहाणां दिक्पतीनां च मुद्रास्ता दर्शयेत् पृथक् ।
शेषमन्त्राः पुरा प्रोक्ता अच्छिद्रस्यावधारणे ॥ १६८ ॥
तन्मन्त्रान् संपठित्वैव सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।
निर्माल्यधारी विष्णोस्तु विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥ १६९ ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्दीर्घश्मश्रुजटाधरः ।
रक्तपिङ्गलवर्णस्तु सितपद्मोपरिस्थितः ॥ १७० ॥
यत् तृतीयस्वरान्तेन संयुक्तो बिन्दुनेन्दुना ।
कीर्तितस्तस्य मन्त्रोऽयं तेन तं परिपूजयेत् ॥ १७१ ॥
विसर्जनं तथा विष्णोरैशान्यां परिकीर्तितम् ।
अन्येषां मनसा कुर्याद् बलादीनां विसर्जनम् ॥ १७२ ॥
एवं यः कुरुते पूजां विष्णोः शम्भोर्विधेः क्वचित् ।
पीठे दिक्करवासिन्याः स याति परमं पदम् ॥ १७३ ॥
यत्र यत्र भवेद् विष्णोः पूजनं नृपसत्तम ।
तत्र तत्रैव तन्त्रोऽयं ग्राह्यो वै वैष्णवैर्बुधैः ॥ १७४ ॥
सङ्क्षेपेणैव तत्रैव पूजयेदधिवामनम् ।
हृदयाद्यङ्गपूजा तु न कर्तव्याऽस्य पूजने ॥ १७५ ॥*

---

९३. द्वार । * मुद्रिते अधिकः ।

संक्षेपैर्विस्तरैर्वापि वासुदेवं प्रपूजयेत् ।
रक्तं कौशेयवस्त्रं च पीतं शुक्लं तथैव च ।। १७६ ।।
प्रीतिदं वासुदेवस्य वस्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ।
घृतप्रदीपो दीपेषु गन्धेषु मलयोद्भवः ।। १७७ ।।
पानार्घ्यभोज्यपात्रेषु ताम्रं प्रीतकरं मतम् ।
किरीटं कुण्डलं हारो भूषणं[९४] विष्णुतुष्टिदम् ।। १७८ ।।
शङ्खः स्नानीयपात्रेषु धूपेष्वगुरुरेव च ।
प्रीतिदो वासुदेवस्य सततं परिकीर्तितः ।। १७९ ।।
कदम्बं कुब्जकं जाती मल्लिका मालती तथा ।
पङ्कजं चेति पुष्पाणि तद् विष्णोः प्रीतिदान्युत ।। १८० ।।
निर्जलं स्थण्डिलं स्थानं तीर्थं तोयमथापि वा ।
तद् विष्णोरिति मन्त्रस्तु स्तुतिः पुरुषसूक्तकम् ।। १८१ ।।
पुत्रञ्जीवोद्भवा माला प्रशस्ता विष्णुपूजने ।*
तिथिश्च द्वादशी प्रोक्ता वसन्तः काल उत्तमः ।। १८२ ।।*
शाल्योदनं हविष्यान्नं यावकं पायसं घृतम् ।
कृशरान्नं तथान्नेषु पानेषु क्षीरमिष्यते ।। १८३ ।।
दलेषु तुलसीपत्रं बैल्वमामलमेव च ।
हरेः प्रीतिकराणि स्युरेतानि नृपसत्तम ।। १८४ ।।
सर्वाणि परकीयाणि यानि तानि च वर्जयेत् ।
एवं यः पूजयेद् विष्णुं सततं नरसत्तमः ।। १८५ ।।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स स्वयं स्याज्जनार्दनः ।
इदं ते कथितं भूप वासुदेवस्य मन्त्रकम् ।। १८६ ।।
पीठस्य कामरूपस्य सङ्क्षेपान्निर्णयं तथा ।
इति सर्वं कामरूपपीठं शम्भुरदर्शयत् ।। १८७ ।।
पुत्राभ्यां स पुनस्ताभ्यां कैलासं प्रययौ गिरिम् ।
तत्र गत्वा यथायोगं निधाय तनयौ स्वकौ ।। १८८ ।।
विमुक्तशापास्ते जाताः शम्भुर्गिरिसुता तथा ।
वेतालो भैरवश्चेति नृपसत्तमनिर्जराः ।। १८९ ।।
इदं यो महदाख्यानं शृणोत्येकाग्रमानसः ।
शापभीतिर्न तस्यास्ति व्याधयस्तस्य नाधयः ।। १९० ।।

---

९४. पुष्टि··· ।

पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययुक्तः सर्वत्र वल्लभः।
सर्वकल्याणसंयुक्तो दीर्घकालं स जीवति ॥ १६१ ॥
कामरूपं महापीठं यो जानाति नरोत्तमः।
स दिव्यज्ञानसम्पन्नः परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १६२ ॥
यः कामरूपे सकले पीठयात्रां समाचरेत्।
आसाद्य सकलान् पीठान् पूजयेत् सर्वदेवताः ॥ १६३ ॥
दशपूर्वान् दश परानात्मानं चैकविंशतिम्[९५]।
दिव्ये ज्ञाने विधायाशु सर्वं मुक्तिमियात् सह ॥ १६४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

---

९५ चैकविंशकम्।

एकाशीतितमोऽध्यायः

और्व्व उवाच—

कामरूपे महापीठे स्नात्वा पीत्वा च देवताः ।
पूजयित्वा च [९६]विपुला लोकाः स्वर्गं पुरा ययुः ॥ १ ॥

केचिद् भेजुश्च निर्वाणं केचिद् यान्ति स्म शम्भुताम् ।
न यमस्तान् वारयितुं नेतुं च निजमन्दिरम् ॥ २ ॥
क्षमोऽभून्नरशार्दूल शिवाया जातसाध्वसः ।
यमदूतं तत्र यान्तं बाधन्ते शंकरा गणाः ॥ ३ ॥
न तद्भिया तत्र यान्ति यमदूताः प्रचोदिताः ।
तथा दृष्ट्वाथ शमनः स्वक्रियापरिवर्जितः ॥ ४ ॥
विधातारं समासाद्य वचनं चेदमब्रवीत् ।
विधातुः कामरूपेऽस्मिन् स्नात्वा पीत्वा च मानवः ॥ ५ ॥

कामाख्यागणतां याति तथा शम्भुगणेशताम् ।
तत्र मे नाधिकारोऽस्ति न तान् वारयितुं क्षमः ॥ ६ ॥

विधत्स्वात्रोचितं नीतिं युज्यते यदि गोचरे ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ७ ॥
जगाम विष्णुभवनं सहैव समवर्तिना ।
तमासाद्य तथा प्राह विष्णुर्वै यमभाषितम् ॥ ८ ॥
यथावत् सर्वलोकेशः स च तद्वाक्यमग्रहीत् ।
सह ब्रह्मयमाभ्यां तु विष्णुः शम्भुं ययौ ततः ।
सत्कृतस्ततेन पृष्टश्च प्राहेदं यमभाषितम् ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

सर्वदेवैः सर्वतीर्थैः सर्वक्षेत्रैस्तथैव च ।
एतद् व्याप्तं कामरूपं नातोऽन्यद् विद्यते परम् ॥ १० ॥
इदं पीठं समासाद्य देवत्वं यान्ति मानवाः ।
अमृतत्वं गणत्वं च तत्र शक्तो यमो नहि ॥ ११ ॥

---

९६. सकलाः लोकाः स्वर्गं पुरा ययुः ।

[९७]तथा कुरु महादेव यथा तत्र क्षमो यमः ।
यमो निरस्तो यत्रास्ति मर्यादा न [९८]प्रदृश्यते ॥ १२ ॥

और्व्व उवाच—

एतद् विष्णुवचः श्रुत्वा विधिना सहितस्य[९९] तु ।
अङ्गीचकार हृदये तद्वचः साध्यसाधने ॥ १३ ॥
विसृज्य तान् ब्रह्मविष्णुयमान् वृषभवाहनः ।
आदाय स्वगणान् सर्वान् कामरूपान्तरं ययौ ॥ १४ ॥
उग्रतारां ततो देवीं गणं च प्राह शङ्करः ।
उत्सारयन्तु सकलानिमाँल्लोकान् गणा द्रुतम् ॥ १५ ॥
उग्रतारे महादेवि त्वं चाप्युत्सारय द्रुतम् ।
ततो गणाः कामरूपाद् देवी चाप्यपराजिता ॥ १६ ॥
लोकानुत्सारयामासुः पीठं कर्तुं रहस्यकम् [१००] ।
उत्सार्यमाणे लोके तु चतुर्वर्णद्विजातिषु ॥ १७ ॥
सन्ध्याचलगतो विप्रो वसिष्ठः कुपितो मुनिः ।
सोऽप्युग्रतारया देव्या उत्सारयितुमीशया ॥ १८ ॥
गणैः सह धृतः प्राह शापं कुर्वन् सुदारुणम् ।
यस्मादहं धृतो वामे त्वयोत्सारयितुं मुनिः ॥ १९ ॥
तस्मात् त्वं वाम्यभावेन पूज्या भव समन्त्रिका ।
[१]भ्रमन्ति म्लेच्छवद् यस्माद् गणानां सन्दबुद्धयः ॥ २० ॥
भवन्तु म्लेच्छास्तस्माद् वै भवन्तः कामरूपके ।
महादेवोऽपि यस्मान्मां निःसारयितुमुद्यतः ॥ २१ ॥
तपोधनं मुनिं दान्तं म्लेच्छवद् वेदपारगम् ।
तस्माद् म्लेच्छप्रियो भूयाच्छङ्करश्चास्थिभस्मधृक् ॥ २२ ॥
एतत् तु कामरूपाख्यं म्लेच्छैर्गुप्तं मदत्वरम् ।
स्वयं विष्णुर्न चायाति यावत् स्थानमिदं पुनः ॥ २३ ॥
विरलाश्चागमाः सन्तु य एतत्प्रतिपादकाः ।
विरलं यस्तु जानाति कामरूपागमं बुधः ॥ २४ ॥
स एव प्राप्ते कालेऽपि सम्पूर्णं फलमाप्स्यति ।
एवमुक्त्वा वसिष्ठस्तु तत्रैवान्तरधीयत ॥ २५ ॥
ते गणा म्लेच्छतां याताः कामरूपे सुरालये ।

---

९७. तस्मात् । ९८. प्रवर्तते । ९९. सहितः स ।
१००. हरस्यकम् । १. भत्संयन्ति स्वेच्छया ।

वामाऽभूदुग्रतारापि शम्भुर्म्लेच्छरतोऽभवत् ॥ २६ ॥
आगमा विरलाश्चासन् ये च मत्प्रतिपादकाः ।
वेदमन्त्रविहीनं तु चतुर्वर्णविवर्जितम् ॥ २७ ॥
कामरूपं क्षणाज्जातं यद् यमेनानुसारितम् ।
आगतेऽपि हरौ मुक्ते शापात् पीठे फलप्रदे ॥ २८ ॥
यथा न सम्यक् स्थास्यन्ति तत्पीठे देवमानुषाः ।
गुप्तये सर्वकुण्डानां ब्रह्मोपायं तथाऽकरोत् ॥ २९ ॥
अपुनर्भवकुण्डस्य सोमकुण्डस्य चोभयोः ।
ब्रह्मोर्वशीकुण्डयोस्तु नदीनामपि भूरिशः ॥ ३० ॥
नदीनां पूर्वमुक्तानामनुक्तानां च गुप्तये ।
सर्वस्यैकफलज्ञाने ब्रह्मोपायं तथाऽकरोत् ॥ ३१ ॥
अमोघायां शान्तनोस्तु भार्यायां तनयं स्वकम् ।
जलरूपं समुत्पाद्य जामदग्न्येन धीमता ॥ ३२ ॥
अवतारयदव्यग्रं स्रावयन् कामरूपकम् ।
स तु ब्रह्मसुतो धीरः स्रावयन् कुण्डसञ्चयान् ॥ ३३ ॥
आच्छाद्य सर्वतीर्थानि भुवि गुप्तानि चाकरोत् ।
लौहित्यमात्रं ये केचिज्जानन्ति तत्र वै नराः ॥ ३४ ॥
ते लौहित्यस्नानफलं प्राप्नुवन्ति सुनिश्चितम् ।
न जानन्ति च कुण्डानि नापि[२] तीर्थानि चान्यतः ॥ ३५ ॥
वसिष्ठशापादेतत् तु प्रवृत्तं तीर्थगोपनम् ।
यः कश्चित् तत्र जानाति तीर्थानां च विशेषताम् ॥ ३६ ॥
समवाप्नोति तत् स्नानफलं सम्यग् नरोत्तम ।
सर्वा नदीः समाप्लाव्य सर्वतीर्थानि सर्वतः ॥ ३७ ॥
लौहित्यो ब्रह्मणः पुत्रो याति दक्षिणसागरम् ।
एवं ते कथितं राजन् कामरूपस्य कीर्तनम् ।
यदन्यद्रोचते तुभ्यं तत् पृच्छ निगदामि ते ॥ ३८ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

---

२. यानि ।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

और्वस्य वचनं श्रुत्वा सगरस्तं मुनिं पुनः।
पप्रच्छेदं द्विजश्रेष्ठा हर्षसंप्लुतमानसः ॥ १ ॥

सगर उवाच—

अमोघायां कथं यज्ञे लौहित्यो ब्रह्मणः सुतः।
कथं शान्तनुजायायां[३] रतः स कमलासनः ॥ २ ॥
पारस्त्रैणेयपुत्रो वा कथं जज्ञे पितामहात्।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व द्विजोत्तम ॥ ३ ॥
शृणु त्वं राजशार्दूल !कथयामि महत्तरम्।
आख्यानं ब्रह्मपुत्रस्य लौहित्यस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
हरिवर्षे महावर्षे शान्तनुर्नाम नामतः।
मुनिरासीन्महाभागो ज्ञानवान् स तपोरतः ॥ ५ ॥
तस्य भार्या महाभागा अमोघाख्या महासती।
हिरण्यगर्भस्य मुनेस्तृणबिन्द्वाश्रमोद्भवा ॥ ६ ॥
तया सार्धं स कैलासं मर्यादापर्वते वसन्।
लोहिताख्यस्य सरसस्तीरे वै गन्धमादने ॥ ७ ॥
एकदा स तपोनिष्ठो निजपुष्पादिगोचरम्[४]।
जगाम वनमध्यं तु चिन्वन् बहुफलानि च ॥ ८ ॥
तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
तत्राजगाम यत्रास्ति अमोघा शान्तनोः प्रिया ॥ ९ ॥
तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां युवतीमतिसुन्दरीम्।
मोहितो मदनेनाशु तदाऽभूद् दूषितेन्द्रियः ॥ १० ॥
उदीरितेन्द्रियो भूत्वा जिघृक्षुस्तां महासतीम्।
अथाधावत् ततो ब्रह्मा सम्मुखो मदनार्दितः ॥ ११ ॥
धावमानं विधातारं दृष्ट्वाऽमोघा महासती।
नैवं नैवमिति प्रोक्त्वा पर्णशालां व्यलीयत ॥ १२ ॥

---

३. ···भार्यायां। ४. गोचरे।

इदं चोवाच धातारममोघा कुपिता तदा।
पर्णशालान्तरं गत्वा द्वारमावृत्य तत्क्षणात् ॥ १३ ॥
अकार्यं न मया कार्यं मुनिपत्न्या विगर्हितम्।
बलात् प्रमथ्य चाहं चेत् त्वया त्वां च शपाम्यहम् ॥ १४ ॥
अमोघया चैवमुक्ते विधातुश्च तदा नृप।
रेतश्चस्कन्द तत्रैव आश्रमे शान्तनोर्मुनेः ॥ १५ ॥
च्युते रेतसि धाताऽपि हंसयानं समुत्थितः[५]।
लज्जयाऽतिपरीतात्मा द्रुतं वै स्वाश्रमं ययौ ॥ १६ ॥
गते वेधसि शान्तनुश्च निजमाश्रममागतः।
आगत्य दृष्ट्वा हंसानां पादक्षोभं तदा भुवि ॥ १७ ॥
तेजश्च पतितं भूमौ विधातुर्ज्वलनोपमम्।
अमोघां परिपप्रच्छ पर्णशालान्तरस्थिताम् ॥ १८ ॥
किमेतदत्र सुभगे प्रवृत्तं दृश्यते तु यत्।
पक्षिणां च पदक्षोभं तेजश्चेदं च कीदृशम् ॥ १९ ॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा शान्तनुं मुनिसत्तमम्।
अमर्षितैव न्यगदद्‌दाकुला विकलानना[६] ॥ २० ॥
हंसयुक्तस्यन्दनेन कोऽप्यागत्य चतुर्मुखः[७]।
कमण्डलुकरोऽतीव रतिं मां समयाचत ॥ २१ ॥
[८]ततो मया तर्जितः स उटजान्तरलीनया।
प्रच्याव्य तेजः संयातो मम शापभयार्दितः ॥ २२ ॥
कुरु तत्र प्रतीकारं यदि शक्नोषि शान्तनो।
न हीमां धर्षणां सोढुं कश्चिच्छक्नोति जीवभृत् ॥ २३ ॥
स तस्या वचनं श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा समागतः।
इति निश्चित्य [९]मनसा[१०]तदा ध्यानपरोऽभवत् ॥ २४ ॥
दिव्यज्ञानेन स ज्ञात्वा देवकार्यमुपस्थितम्।
तीर्थावतरणं चापि हिताय जगतां मुनिः ॥ २५ ॥
ज्ञात्वोदकं चिन्तयित्वा स्वभार्यामिदमब्रवीत्।
इदं तेजो ब्रह्मणस्त्वं पिबामोघे ममाज्ञया ॥ २६ ॥
हिताय सर्वजगतां देवकार्यार्थसिद्धये।
भवत्या निकटं ब्रह्मा स्वयमेव समागतः ॥ २७ ॥

---

५. समास्थितः। ६. विकचानना। ७. चतुर्भुजः।
८. तदतो मया भर्त्सितः। ९. स तदा। १०. तत्र।

त्वामप्राप्य महत् कृत्यमावयोः स समर्प्य च ।
गतो निजास्पदं तत् त्वं कर्तुमर्हसि तद् वचः ॥ २८ ॥
तच्छ्रुत्वा शान्तनोर्वाक्यममोघातीव लज्जिता ।*
सान्त्वयन्तीव तं प्राह पतिं नत्वा महासती ॥ २९ ॥
नान्यस्य तेजो धास्यामि न च ते विमनस्कता ।*
अवश्यं यदि कर्तव्यं पीत्वा त्वं मयि चोत्सृज ॥ ३० ॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा युक्तं तथ्यं च शान्तनुः ।
स्वयं पीत्वा तु तत् तेजः [11]स्वभार्यायां न्यषेचयत् ॥ ३१ ॥
संक्रामितैः [12] शान्तनुना तेजोभिर्ब्रह्मणः सती ।
गर्भं दधारामोघाख्या हिताय जगतां ततः[13] ॥ ३२ ॥
तस्याः काले तु सम्प्राप्ते नासातो[14] जलसञ्चयः ।
तन्मध्ये तनयश्चापि नीलवासाः किरीटधृक् ॥ ३३ ॥
रत्नमालासमायुक्तो रक्तगौरश्च ब्रह्मवत् ।
चतुर्भुजः पद्मविद्याध्वजशक्तिधरस्तथा ॥ ३४ ॥
शिशुमारशिरस्थश्च तुल्यकायो जलोत्करैः ।
तज्जातं च तथाभूतं शान्तनुर्लोकशान्तनुः ॥ ३५ ॥
चतुर्णां पर्वतानां च मध्यदेशे न्यवीविशत्[15] ।
कैलासश्चोत्तरे पार्श्वे दक्षिणे गन्धमादनः ॥ ३६ ॥
जारुधिः पश्चिमे शैलः पूर्वे संवर्तकादयः ।
तेषां मध्ये स्वयं कुण्डं पर्वतानां विधेः सुतः ॥ ३७ ॥
कृत्वाऽतिववृधे नित्यं शरदीव निशाकरः ।
तं तोयमध्यगं पुत्रमासाद्य द्रुहिणः सुतम् ॥ ३८ ॥
क्रमतस्तस्य संस्कारानकरोद् देहशुद्धये ।
अथ काले बहुतिथे व्यतीते ब्रह्मणः सुतः । ३९ ॥
तोयराशिस्वरूपेण ववृधे पञ्चयोजनान् ।
तस्मिन् देवाः पपुः सस्नुर्द्वितीय इव सागरे ॥ ४० ॥
सितामलजले ह्यद्य दिव्यैश्चाप्सरसां गणैः ।
तस्मिन्नवसरे रामो जामदग्न्यः प्रतापवान् । ४१ ॥
चक्रे मातृवधं घोरमयुक्तं पितुराज्ञया ।
तस्य पापस्य मोक्षाय स्वपितुश्चोपदेशतः ॥ ४२ ॥

---

* मुद्रितपुस्तके अधिकः । ११. तस्या गर्भे । १२. संक्रमिते । १३. पतिं । १४. संजातो । १५. न्यवेशयत् ।

स जगाम महाकुण्डं ब्रह्माख्यं[१६] स्नातुमिच्छया।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मातृहत्यामपानयन्।
वीथीं परशुना कृत्वा तं[१७] मह्यामवतारयत्॥ ४३॥

सगर उवाच—

जमदग्नेः सुतो रामः किमर्थं निजमातरम्।
जघान तस्य माता च किन्नाम्नी कस्य चात्मजा॥ ४४॥
मुनेः पुत्रः कथं जातस्तथा क्रूरो महाबलः।
यो युद्धकुशलो वीरो राजन्यान् समपोथयत्॥ ४५॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो मुनिसत्तम।
कथयस्व महाभाग यदि गुह्यं तथापि मे॥ ४६॥
शृणु राजन्नवहितो जमदग्नेः सुतस्य वै।
चरितं स यथा जघ्ने प्रसूं क्रूरतरश्च सः॥ ४७॥
ब्रह्मपुत्रो[१८] भृगुर्नाम ऋचीकस्तत्सुतोऽभवत्।
स भार्यार्थी चरन् भूमौ कान्यकुब्जं गतः पुरा॥ ४८॥
ददर्श चारण्यगतं जह्नोर्वंशसमुद्भवम्।
कुशिकस्य सुतं गाधिं तपःस्थं[१९] नृपसत्तम॥ ४९॥
अरण्यस्थस्य तस्याथ पुत्रकामस्य भूभृतः।
सभार्यस्य सुता जज्ञे देवकन्यासमा गुणैः॥ ५०॥
ऋचीको भृगुपुत्रस्तां भार्यार्थं समयाचत।
दातुं[२०] योग्या सुता मेऽद्य तद् विधाय महामुने॥ ५१॥
किं त्वेकः कुलधर्मो मे विद्यते शुल्कसंग्रहे।
एकत्र [२१]कृष्णवर्णानामश्वानां चन्द्रवर्चसाम्।
सहस्रमेकं यो दद्यात् तस्मै पुत्री प्रदीयते॥ ५२॥
दास्याम्यश्वसहस्रं वै तव राजंस्तथाविधम्।
किंचित् कालं प्रतीक्षस्व यावत् तदहमानये॥ ५३॥
एवमस्त्विवति तं गाधिरुवाच भृगुसूनवे।
गङ्गातीरं कान्यकुब्जं सोऽगच्छद्धयसाधने॥ ५४॥
तत्राराध्य भृगोः पुत्रो वरुणं यादसां पतिम्।
तेन दत्तं तदा लेभे सहस्रं वाजिनां मुनिः॥ ५५॥

---

१६. ब्रह्मणः। १७. च क्ष्मामवतारयत्। १८. तदा पुत्री। १९. तपन्तं।
२०. गाधिं नृपतिशार्दूल स चोवाच नृपो मुनिम्।
दातुं भोग्यां सुतां राजन् यदीच्छा ते ददाम्यहम्॥—पाण्डुलिप्याम्।
२१. श्याम....।

तेन यत्र तदा लब्धा अश्वान् नृपतिसत्तम ।
तदश्वतीर्थं विख्यातं महाफलकरं परम् ॥ ५६ ॥
गङ्गाजलादुत्थितं तु दत्तं सम्यक् प्रचेतसा
आदायाश्वसहस्रं तु मुनिर्गाधिमथाम्ययात् ॥ ५७ ॥
तानश्वान् गाधिरादाय पुत्रीं सत्यवतीं सुताम् ।
ऋचीकाय ददौ लक्ष्मीं केशवायेव सागरः ॥ ५८ ॥
ऋचीको गाधितनयां लब्ध्वा भार्यामनिन्दिताम् ।
मुदितः स तया रेमे यथाकामं स्वकाश्रमे ॥ ५९ ॥
कृतदारं सुतं श्रुत्वा द्रष्टुं पुत्रं स्नुषां भृगुः ।
अथाजगाम मतिमान् स्नुषां दृष्ट्वा ननन्द च ॥ ६० ॥
दम्पती तं समासीनं भृगुं देवगणार्चितम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं[२२] तस्थतुस्तौ[२३] कृताञ्जली ॥ ६१ ॥
ततो भृगुः स्नुषां स्वीयां सुप्रीत इदमब्रवीत् ।
वरं वृणीष्व दास्यामि वाञ्छितं वरवर्णिनि ॥ ६२ ॥
अदेयं दुष्करं वापि यत्र ते विद्यते स्पृहा ।
ततः सत्यवतीं पुत्रं तप-आम्नाय-पारगम् ॥ ६३ ॥
मातुश्च वीरमतुलं पुत्रं वरमयाचत ।
स चैवमस्त्वित्युक्त्वैव भूत्वा ध्यानपरस्तदा ॥ ६४ ॥
विश्वमाधृत्य मनसा यत्नाच्छ्वासं ससर्ज सः ।
तस्य निःश्वासवातात् तु निःसृतं वै चरुद्वयम् ॥ ६५ ॥
तस्यैतद् द्वितयं दत्त्वा भृगुस्तामिदमब्रवीत् ।
चरुद्वयं गृहाणेदं[२४] स्नुषे सत्यवति स्वयम् ॥ ६६ ॥
स्नात्वा ऋतौ ऋतौ माता स्नुषे त्वं च करिष्यथः ।
आलिङ्ग्याश्वत्थवृक्ष ते माता पुंसवनाय वै ॥ ६७ ॥
चरुमारक्तकं[२५] चेमं सा भोक्ष्यति सुतस्ततः ।
त्वं चोदुम्बरवृक्षं तु समालिङ्ग्यासितं चरुम् ॥ ६८ ॥
भोक्ष्यसे तव[२६] पुत्रस्तु[२७] भविष्यति सनातनः ।
एवमुक्त्वा भृगुर्यातो यथेच्छं सापि संमुदम् ॥ ६९ ॥
अवाप मात्रा सहिता भर्त्रा पित्रा च भामिनी ।
अथ स्नानदिनेऽश्वत्थमालिङ्ग्यारक्तकं चरुम् ॥ ७० ॥

---

२२. समासीनं । २३. तं दूरतः । २४. गृहाण त्वं ।
२५. चरुमारक्षकं । २६. तेन । २७. पुत्रस्ते ।

आदात् सत्यवती तस्या माता फल्गुसितं चरुम् ।
परिवर्तं तु तज् ज्ञात्वा दिव्यज्ञानो भृगुर्मुनिः ॥ ७१ ॥
अथागत्य स्नुषां तां तु वचनं चेदमब्रवीत् ।
विपर्ययस्त्वया भद्रे वृक्षालिङ्गनकर्मणि ॥ ७२ ॥
तथा [२८]चरुप्राशने तु[२९] [३०]तत्रेदं ते भविष्यति ।
ब्राह्मणः क्षत्रियाचारस्तव पुत्रो भविष्यति ॥ ७३ ॥
क्षत्रियो ब्राह्मणाचारो मातुस्ते भविता सुतः ।
इत्युक्त्वा भृगुणा साध्वी तदा सत्यवती भृगुम् ॥ ७४ ॥
पुनः प्रसादयामास पौत्रो मेऽस्त्विति तादृशः ।
एवमस्त्विति स प्रोच्य तत्रैवान्तर्दधे भृगुः ॥ ७५ ॥
अथ काले सुतं दीप्तं जमदग्निं च गाधिजा ।
सुषुवे जननी तस्या विश्वामित्रं तपोनिधिम् ॥ ७६ ॥
जमदग्निस्ततो वेदांश्चतुरः प्राप मा चिरम् ।
प्रादुरासीद् धनुर्वेदः स्वयं तस्मिन् महात्मनि ॥ ७७ ॥
विश्वामित्रोऽपि सकलान् वेदानाप तथाऽचिरात् ।
धनुर्वेदं तथा कृत्स्नं विप्रश्चाभूत् तपोबलात् ॥ ७८ ॥
जाज्वल्यमानस्तेजस्वी जमदग्निर्महातपाः ।
वेदैस्तपोभिः स मुनीनत्यक्रामच्च सूर्यवत् ॥ ७९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

—:०:—

२८. च प्रासने । २९. भद्रे । ३०. तदा पुत्रो भविष्यति ।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

और्व उवाच[31]—

अथ काले व्यतीते तु जमदग्निर्महातपाः ।
विदर्भराजस्य सुतां प्रयत्नेन जितां स्वयम् ॥ १ ॥
भार्यार्थं प्रतिजग्राह रेणुकां लक्षणान्विताम् ।
सा तस्मात् सुषुवे पुत्रांश्चतुरो वेदसम्मितान् ॥ २ ॥
रुषण्वन्तं सुषेणं च वसुं विश्वावसुं तथा ।
पश्चात् तस्यां स्वयं जज्ञे भगवान् मधुसूदनः ॥ ३ ॥
कार्तवीर्यवधायाशु शक्राद्यैः सकलैः सुरैः ।
याचितः पंचमः सोऽभूत् तेषां रामाह्वयस्तु सः[32] ॥ ४ ॥
भारावतरणार्थाय जातः परशुना सह ।
सहजं परशुं तस्य [33]न जहाति [34]कदाचन ॥ ५ ॥
अयं निजपितामह्याश्चरुभुक्तिविपर्ययात् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियाचारो रामोऽभूत् क्रूरकर्मकृत् ॥ ६ ॥
स वेदानखिलान् ज्ञात्वा धनुर्वेदं च सर्वशः ।
सततं[35] कृतकृत्योऽभूद् वेदविद्याविशारदः ॥ ७ ॥
एकदा तस्य जननी स्नानार्थं रेणुका गता ।
गङ्गातोये ह्यथापश्यन्नाम्ना चित्ररथं नृपम् ॥ ८ ॥
भार्याभिः सदृशीभिश्च जलक्रीडारतं शुभम् ।
सुमालिनं सुवस्त्रं[36] तं तरुणं [37]चन्द्रमालिनम् ॥ ९ ॥
तथाविधं नृपं दृष्ट्वा सञ्जातमदना भृशम् ।
रेणुका स्पृहयामास तस्मै राज्ञे सुवर्चसे[38] ॥ १० ॥
स्पृहायुतायास्तस्यास्तु संक्लेदः समजायत ।
विचेतनाम्भसा क्लिन्ना त्रस्ता सा स्वाश्रमं ययौ ॥ ११ ॥
अबोधि जमदग्निस्तां रेणुकां विकृतां तथा ।
धिग् धिक्काररतेत्येवं निनिन्द च समन्ततः ॥ १२ ॥

---

३१. मार्कण्डेय उवाच । ३२. यः । ३३. तं । ३४. कदापि न ।
३५. स्वतातात् । ३६. सुकान्तं । ३७. चन्द्रसन्निभं । ३८. सुमानसे ।

ततः स तनयान् प्राह चतुरः प्रथमं मुनिः ।
रुषण्वत्प्रमुखान् सर्वानेकैकं क्रमतो द्रुतम् ॥ १३ ॥
छिन्धीमां पापनिरतां रेणुकां व्यभिचारिणीम् ।
ते तद्वचो नैव चक्रुर्मूकाश्चासन् जडा इव ॥ १४ ॥
कुपितो जमदग्निस्ताञ्छशापेति विचेतसः[३९] ।
गाधिं नृपतिशार्दूलं स चोवाच नृपो मुनिम् ॥ १५ ॥*
भवध्वं [४०]यूयमाचिराज्जडा गोबुद्धिगर्धिताः ।
अथाजगाम चरमो जामदग्न्येऽतिवीर्यवान् ॥ १६ ॥
तं च रामं पिता प्राह पापिष्ठां छिन्धि मातरम् ।
स भ्रातृंश्च तथाभूतान् दृष्ट्वा ज्ञानविवर्जितान् ॥ १७ ॥
पित्रा शप्तान् महातेजाः प्रसूं परशुनाच्छिनत् ।
रामेण रेणुकां छिन्नां दृष्ट्वा विक्रोधनोऽभवत् ॥ १८ ॥
जमदग्निः प्रसन्नः सन्निति वाचमुवाच ह ।
प्रीतोऽस्मि पुत्र भद्र ते यत् त्वया मद्वचः कृतम् ॥ १९ ॥
तस्मादिष्टान् वरान् कामांस्त्वं वै वरय साम्प्रतम् ।
स तु रामो वरान् वव्रे मातुरुत्थानमादितः ॥ २० ॥
वधस्यास्मरणं तस्या भ्रातृणां शापमोचनम् ।
मातृहत्याव्यपनयं युद्धे सर्वत्र वै जयम् ॥ २१ ॥
आयुः कल्पान्तपर्यन्तं क्रमाद् वै नृपसत्तम ।
सर्वान् वरान् स प्रददौ जमदग्निर्महातपाः ॥ २२ ॥
सुप्तिस्थितेव जननी रेणुका च तदाभवत् ।
वधं न चापि सस्मार सहजा प्रकृतिस्थिता ॥ २३ ॥
युद्धे जयं चिरायुष्यं लेभे रामस्तदैव हि ।
मातृहत्याव्यपोहाय पिता तं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥
न पुत्र वरदानेन मातृहत्यापगच्छति ।
तस्मात् त्वं ब्रह्मकुण्डाय गच्छ स्नातुं च तज्जले ॥ २५ ॥
तत्र स्नात्वा मुक्तपापो नचिरात् पुनरेष्यसि ।
जगद्धिताय पुत्र त्वं ब्रह्मकुण्डं व्रज द्रुतम् ॥ २६ ॥
स तस्य वचनं श्रुत्वा रामः परशुधृक् तदा ।
उपदेशात् पितुर्यातो ब्रह्मकुण्डं वृषोदकम् ॥ २७ ॥

---

३९. विचेतनः । * मुद्रिते अधिकः ।
४०. यूयमाचाराज्जडा गोवद्धिवर्जिताः ।

तत्र स्नानं च विधिवत् कृत्वा धौतपरश्वधः।
शरीरान्निःसृतां मातृहत्यां सम्यग् व्यलोकयत् ॥ २८ ॥
जातसंप्रत्ययः सोऽथ तीर्थमासाद्य तद्वरम्।
वीथीं परशुना कृत्वा ब्रह्मपुत्रमवाहयत् ॥ २९ ॥
ब्रह्मकुण्डात् सृतः सोऽथ कासारे लोहिताह्वये।
कैलासोपत्यकायां तु न्यपतद् ब्रह्मणः सुतः ॥ ३० ॥
तस्यापि सरसस्तीरे समुत्थाय महाबलः।
कुठारेण दिशं पूर्वामनयद् ब्रह्मणः सुतम् ॥ ३१ ॥
ततः परत्रापि गिरिं हेमशृङ्गं विभिद्य च।
कामरूपान्तरं पीठमावहद्यदमुं हरिः ॥ ३२ ॥
तस्य नाम स्वयं चक्रे विधिर्लोहितगङ्गकम्।
लोहितात् सरसो जातो लोहिताख्यस्ततोऽभवत् ॥ ३३ ॥
स कामरूपमखिलं पीठमाप्लाव्य वारिणा।
गोपयन् सर्वतीर्थानि दक्षिणं याति सागरम् ॥ ३४ ॥
प्रागेव दिव्ययमुनां स त्यक्त्वा ब्रह्मणः सुतः।
पुनः पतति लौहित्ये गत्वा द्वादशयोजनम् ॥ ३५ ॥
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः।
चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः ॥ ३६ ॥
स्नाति लौहित्यतोये तु स याति ब्रह्मणः पदम्।
लौहित्यतोये यः स्नाति स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥ ३७ ॥
इति ते कथितं राजन् यदर्थं मातरं पुरा।*
अहन् वीरो जामदग्न्यो यस्माद् वा क्रूरकर्मकृत् ॥ ३८ ॥
इदं तु महदाख्यानं यः शृणोति दिने दिने।
स दीर्घायुः प्रमुदितो बलवानभिजायते ॥ ३९ ॥
इति ते कथितं राजञ्छरीरार्धं यथाद्रिजा।
शम्भोर्जहार वेतालभैरवौ च यथाह्वयौ ॥ ४० ॥
यस्य वा तनयौ जातौ यथा यातौ गणेशताम्।
किमन्यत् कथये तुभ्यं तद्वदस्व नृपोत्तम ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

इत्यौर्वस्य च संवादः सगरेण महात्मना।
योऽसौ कायार्धहरणं शम्भोर्गिरिजया कृतः ॥ ४२ ॥

---

* मुद्रिते अधिकः।

सर्वोऽद्य कथितो विप्राः पृष्टं यच्चान्यदुत्तमम् ।
सिद्धस्य भैरवाख्यस्य पीठानां च विनिर्णयम् ॥ ४३ ॥

भृङ्गिणश्च यथोत्पत्तिर्महाकालस्य चैव हि ।
उक्तं हि वः किमन्यत् तु पृच्छन्तु द्विजसत्तमाः ॥ ४४ ॥

इति सकलसुतन्त्रं तन्त्रमन्त्रावदातं
बहुतरफलकारि प्राज्ञविश्रामकल्पम् ।
उपनिषदमवेत्य ज्ञानमार्गैकतानं
स्रवति स इह नित्यं यः पठेत् तन्त्रमेतत् ॥ ४५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः—

कथितो भवता सर्गः संशयश्चापि शातिताः ।
त्वत्प्रसादान्महाभाग कृतकृत्या वयं गुरो ॥ १ ॥
भूयश्च श्रोतुमिच्छामो वयमेतद् द्विजोत्तम ।
कोऽन्यो भृङ्गी महाकालो जातौ[४१] वेतालभैरवौ ॥ २ ॥
वेतालं च महाकालं भैरवं भृङ्गिणं तथा ।
शृणुमो द्विजशार्दूल कथमेषां चतुष्टयम् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

भुवं गते महाकाले मानुष्यस्थे च भृङ्गिणि ।
वेतालभैरवाख्ये च तयोर्भूते द्विजोत्तमाः ॥ ४ ॥
वरलब्धे च वेताले भैरवे तेन सङ्गते ।
अन्धकं तपसा युक्त भृङ्गिणं चाकरोद्धरः ॥ ५ ॥
अन्धकस्तु हरं पूर्वं विरुध्यापदमागतः ।
पश्चाद्धरं समाराध्य पुत्रोऽभूत् तस्य सोऽसुरः ॥ ६ ॥
भृङ्गिस्नेहाद् भृङ्गिणं तं संज्ञया चाकरोद्धरः ।
स्नेहेन तु महाकाले बाणं बलिसुतं हरः ॥ ७ ॥
विष्णुना छिन्नबाहुं तु महाकालमथाकरोत् ।
एवं मुनिवरस्तेषां संयतं च चतुष्टयम् ।
वेतालभैरवौ . भृङ्गिमहाकालौ ह्यनुक्रमात् ॥ ८ ॥

ऋषय उवाच—

यत् पृष्टं सगरेणैव मुनिमौर्व्वं महाधियम् ।
नीत्या योज्या यया भार्या सुत आत्माऽथवा गुरो ॥ ९ ॥
राजनीतौ सतां[४२] नीतौ सदाचारे च ये स्थिताः ।
विशेषास्तेन ये प्रोक्ता और्वेण सुमहात्मना ॥ १० ॥
विशेषेण द्विजश्रेष्ठ श्रोतुं सम्यक् तपोधन ।
इच्छामस्तान् महाभाग कथयस्व जगद्गुरो ॥ ११ ॥

---

४१. ताभ्यां सुतौ गुरो । ४२. सभा··· ।

मार्कण्डेय उवाच—

ये ये विशेषाः कथिता और्वेण सुमहात्मना।
तद् वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ॥ १२ ॥
श्रुत्वैवं[४३] सगरो राजा मन्त्रकल्पादिकं पुनः।
विशेषं परिपप्रच्छ नीत्यादीनां महामुनिम् ॥ १३ ॥

सगर उवाच—

यया नीत्या प्रयोक्तव्यः सुत आत्मा प्रिया तथा।
तेषां विशेषैः सहितं सदाचारं वदस्व मे ॥ १४ ॥

***और्व उवाच—**

क्रमेण शृणु राजेन्द्र यया नीत्या नियोजिताः।
आत्मा सुतो वा भार्या वा तद्विशेषं शृणुष्व मे ॥ १५ ॥*
ज्ञानविद्यातपोवृद्धान् वयोवृद्धान् सुदक्षिणान्।
सेवेत प्रथमं विप्रानसूयापरिवर्जितान् ॥ १६ ॥
तेभ्यश्च शृणुयान्नित्यं वेदशास्त्रविनिश्चयम्।
यदूचुस्ते च तत् कार्यं प्राज्ञं चैव नृपश्चरेत् ॥ १७ ॥
पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चाश्वाः शरीरं रथ उच्यते।
आत्मा रथी कशा ज्ञानं सारथिर्मन उच्यते ॥ १८ ॥
अश्वान् सुदान्तान् कुर्वीत सारथिं चात्मनो वशम्।
कशा दृढा सदा कार्या शरीरस्थिरता तथा ॥ १९ ॥
अदान्तांस्तु समारुह्य सैन्धवान् स्पन्दनी यथा।[४४]
अश्वानामिच्छया गच्छन्नुत्पथं प्रतिपद्यते ॥ २० ॥
तत्रावशः सारथिस्तु स्वेच्छया प्रेरयन् हयान्।
नयेत् परवशं सम्यग् प्रथितं वीरमप्युत ॥ २१ ॥
तथेन्द्रियाणि नृपतिर्विषयाणां परिग्रहे।
स्ववश्यानि प्रकुर्वीत मनो ज्ञानं दृढं तथा ॥ २२ ॥
ज्ञाने दृढे कशायां च दृढायां नृपसत्तम।
सारथिः स्ववशो दान्तानीशः प्रेरयितुं हयान् ॥ २३ ॥
अतो नृपः स्वेन्द्रियाणि वशे कृत्वा मनस्तथा।
ज्ञानमार्गमधिष्ठाय प्रकुर्वीतात्मनो हितम् ॥ २४ ॥
भोक्तव्यं स्वेच्छया भूयो[४५] न कुर्याल्लोभमासवे।
द्रष्टव्यमिति द्रष्टव्यं न द्रष्टव्यं च स्वेच्छया ॥ २५ ॥

---

४३. श्रुत्वेदं। ४४. मुद्रिते अधिकः। ४५. भूप।

श्रोतव्यमिति श्रोतव्यं नाधिकं श्रवणे चरेत्।
शास्त्रतत्त्वामृते धीरः श्रुतिवश्यो भवेन्न हि ॥ २६ ॥
एवं घ्राणं त्वचं चापि वशीकृत्येच्छया नृपः।
स्वेच्छया नोपभुञ्जीत नोद्दामं विषयं व्रजेत् ॥ २७ ॥
एवं यदि भवेद्राजा तदा स स्याज्जितेन्द्रियः।
जितेन्द्रियत्वे हेतुश्च शास्त्रवृद्धोपसेवनम् ॥ २८ ॥
अवृद्धसेव्याशास्त्रज्ञो[४६] नृपः शत्रुवशो भवेत्।
तस्माच्छास्त्रमधिष्ठाय भवेद्राजा जितेन्द्रियः ॥ २९ ॥
धृतिः प्रागल्भ्यमुत्साहो वाक्पटुत्वं विवेचनम्।
दक्षत्वं धारयिष्णुत्वं दानमैत्रीकृतज्ञता ॥ ३० ॥
दृढशासनतासत्यशौचं मतिविनिश्चयम्।
पराभिप्रायवेदित्वं चरित्रं धैर्यमापदि ॥ ३१ ॥
क्लेशधारणशक्तिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम्।
अनसूया ह्यकोपित्वं गुणानेतान्नृपोऽभ्यसेत् ॥ ३२ ॥
कार्याकार्यविभागश्च धर्मार्थे काम एव च।
सततं प्रतिबुध्येत कुर्यादवसरेऽपि तत् ॥ ३३ ॥
सामदानं च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम्।
ज्ञात्वोपायांस्तु तत्काले तदुपायान् प्रयोजयेत् ॥ ३४ ॥
सामस्तु विषये भेदो मध्यमः परिकीर्तितः।
दानस्य विषये साम योग्यमेवोपलक्ष्यते ॥ ३५ ॥
दानस्य विषये दण्डो ह्यधनः परिकीर्तितः।
दण्डस्य विषये दानं तदप्यधममुच्यते ॥ ३६ ॥
साम्नस्तु गोचरे दण्डो ह्यधमादधमः स्मृतः।*
सौजन्यं सततं ज्ञेयं भूभृतो भेददण्डयोः ॥ ३७ ॥
साम्नो दानस्य च तथा सौजन्यं याति गोचरे।
कामः क्रोधश्च लोभश्च हर्षो मानो मदस्तथा ॥ ३८ ॥
एतानतिशयान् राजा शत्रूनिव विशातयेत्।
सेव्याः काले सुयुक्तौ ते लोभगर्वौ विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥*
तेज एव नृपाणां तु तीव्रं सूर्यस्य वै यथा।
तत्र गर्वं रोगयुक्तं कायवांस्तं तु संत्यजेत् ॥ ४० ॥
आखेटकाक्षौ स्त्रीसेवा पानं चैवार्थदूषणम्।

---

४६. ·· सेवी।   * मुद्रिते अधिकः।

वाग्दण्डयोश्च पारुष्यं सप्तैतानि विवर्जयेत्[४७] ॥ ४१ ॥
परस्त्रीषु विरक्तासु सेवामेकान्ततस्त्यजेत् ।
सतीषु निजनारीषु युक्तं कुर्यान्निवेशनम् ॥ ४२ ॥
रतिपुत्रफला दारास्तांस्तु नैकान्ततस्त्यजेत् ।
तयोः सिद्ध्यै स्त्रियः सेव्या वर्जयित्वातिसक्तताम् ॥ ४३ ॥
मृगयां तु प्रमादानां स्थानं नित्यं विवर्जयेत् ।
अक्षांस्तथा न कुर्वीत सत्कार्यासक्तिनाशनम् ॥ ४४ ॥
अन्यैः कृतं कदाचित् तु सेवेत नात्मनाचरेत् ।
अकार्यकरणे बीजं कृत्यानां च विवर्जने ॥ ४५ ॥
अकालमन्त्रभेदे च कलहे सत्कृतिक्षये ।
वर्जयेत् सततं पानं शौचमाङ्गल्यनाशनम् ॥ ४६ ॥
अर्थक्षयकरं नित्यं त्यजेच्चैवात्मदूषणम् ।
अभिशस्तेषु चोरेषु घातकेष्वाततायिषु ॥ ४७ ॥
सततं पृथिवीपालो दण्डपारुष्यमाचरेत् ।
नान्यत्र दण्डपारुष्यं कुर्यान्नृपतिसत्तमः ॥ ४८ ॥
वाक्पारुष्यं च सर्वत्र नैव कुर्यात् कदाचन ।
रक्षणीयं सदा सत्यं सत्यमेकं परायणम् ॥ ४९ ॥
क्षमां तेजस्वितां चैव प्रस्तावान्नृप आचरेत् ।
यानासनाश्रयद्वैधसन्धयो विग्रहस्तथा ॥ ५० ॥
अभ्यसेत् षड्गुणानेतांस्तेषां स्थानं च शाश्वतम् ।
यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ॥ ५१ ॥
कोषे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ।
कोषे जनपदे दण्डे चैकैकत्र त्रयं त्रयम् ॥ ५२ ॥
प्रस्तावाद्विनियुञ्जीत रक्षेन्नैकांस्ततस्त्विमान् ।
मित्रे शत्रावुदासीने प्रभावं त्रिष्वपीरयेत् ॥ ५३ ॥
उत्साहो विजिगीषायां धर्मकृत्येऽष्टवर्गके ।
शरीरयात्रानिर्वाहे क्रियेत सततं नृपैः ॥ ५४ ॥
मन्त्रनिश्चयसम्भूतां बुद्धिं सर्वत्र योजयेत् ।
अमात्ये शात्रवे राज्ये पुत्रेष्वन्तःपुरेषु च ॥ ५५ ॥
कृषिं दुर्गं च वाणिज्यं खड्गानां करसाधनम् ।
आदानं सैन्यकरयोर्बन्धनं गजवाजिनोः ॥ ५६ ॥

---

४७. मुद्रिते अधिकः ।

शून्ये सद्ममुखानां च योजनं[४८] सततं जनैः।
[४९]त्रयाणां सारसेतूनां बन्धनं चेति चाष्टमम् ॥ ५७ ॥
एतदष्टसु वर्गेषु चारान् सम्यक् प्रयोजयेत्।
कार्याकार्यविभागाय चाष्टवर्गाधिकारिणाम् ॥ ५८ ॥
अष्टौ चारान्नियुञ्जीयादष्टवर्गेषु पार्थिवः।
दश शून्येषु युञ्जीत क्रमतः शृणु तानि मे ॥ ५९ ॥
स्वामी सचिव-राष्ट्राणि मित्रं कोशो बलं तथा।
दुर्गं तु सप्तमं ज्ञेयं राज्याङ्गं गुरुभाषितम् ॥ ६० ॥
दुर्गयुक्तं चाष्टवर्गे चारान्नात्मनि योजयेत्।
तस्मादिमानि शेषाणि पंच चारपदानि च ॥ ६१ ॥
शुद्धान्तेषु च पुत्रेषु स[५०]यूथादौ महानसे।
शत्रूदासीनयोश्चापि बलाबलविनिश्चये ॥ ६२ ॥
अष्टादशसु चैतेषु चारान् राजा प्रयोजयेत्।
न यत्प्रकाशं जानीयात् तत् तच्चारैर्निरूपयेत् ॥ ६३ ॥
निरूप्य तत्-प्रतीकारमवश्यं छिद्रतश्चरेत्।
यथानियोगमेतेषां यो यो यत्रान्यथाचरेत् ॥ ६४ ॥
ज्ञात्वा तत्र नृपश्चारै[५१]र्दण्डयेद् वा वियोजयेत्।
चारांस्तु मन्त्रिणा, सार्धं रहस्ये संस्थितो नृपः ॥ ६५ ॥
प्रदोषसमये पृच्छेत् तदानीमेव साधयेत्।
स्वपुत्रे चाथ शुद्धान्ते ये तु चारा महानसे ॥ ६६ ॥
नियुक्तास्तान्मध्यरात्रे पृच्छेत् स्वेऽपि च मन्त्रिणि।
एतांश्चारान् स्वयं पश्येन्नृपातमन्त्रिणा विना ॥ ६७ ॥
अन्यांस्तु मन्त्रिणा सार्धं निरूप्य प्रदिशेत् फलम्।
नैकवेशधरश्चारो नैको नोत्साहवर्जितः ॥ ६८ ॥
संस्तुतो नहि सर्वत्र नातिदीर्घो न वामनः।
सततं न दिवाचारी न रोगी नाप्यबुद्धिमान् ॥ ६९ ॥
न वित्तविभवैर्हीनो न भार्यापुत्रवर्जितः।
कार्यश्चारो नृपतिना तत्त्वगुह्यविनिर्णये ॥ ७० ॥
अनेकवेशग्रहणक्षमं भार्यासुतैर्युतम्।
[५२]बहुदेशवचोऽभिज्ञं पराभिप्रायवेदकम् ॥ ७१ ॥

---

४८. भोजनं। ४९. प्रयाणाभावः शत्रूणां। ५०. स्रक् पूगादौ।
५१. खण्डयेद्। ५२. दुर्गं।

दृढभक्तं प्रकुर्वीत चारं शक्तमसाध्वसम्।
अभितिष्ठेत् स्वयं राजा कृषिमात्मसमैस्तथा ॥ ७२ ॥
वणिक्पथे तु दुर्गादौ तेषु शक्तान्नियोजयेत्।
अन्तःपुरे पितुस्तुल्यान् धीरान् वृद्धान्नियोजयेत् ॥ ७३ ॥
षण्ढान् पण्डांस्तथा वृद्धां स्त्रियो वा बुद्धितत्पराः।
शुद्धान्ते द्वारि युञ्जीयात् स्त्रियो वृद्धा मनीषिणीः ॥ ७४ ॥
नैकः स्वपेत् कदाचित् तु नैको भुञ्जीत पार्थिवः।
नैकाकिनीं तु महिषीं व्रजेन्मैत्राय नैककः[५३] ॥ ७५ ॥
अमात्यानुपधाशुद्धान् भार्याः पुत्रांस्तथैव च।
प्रकुर्यात् सततं भूपः सप्रसादं समाचरन् ॥ ७६ ॥
धर्मार्थकाममोक्षैश्च प्रत्येकं परिशोधनैः।
उपेत्य धीयते यस्मादुपधा सा प्रकीर्तिता ॥ ७७ ॥
अर्थकामोपधाभ्यां तु भार्यापुत्रांश्च शोधयेत्।
धर्मोपधाभिर्विप्रांस्तु सर्वाभिः सचिवान् पुनः ॥ ७८ ॥
एभिर्यज्ञैस्तथा दानैरिहैव नृपतिर्भवेत्।
तस्माद् भवांस्तु राज्यार्थी धर्ममेवं समाचरेत् ॥ ७९ ॥
अनेनैवाभिचारेण यज्ञैर्वा पार्थिवो ह्ययम्।
प्राणांस्त्यजति राजा त्वं भविष्यसि न संशयः ॥ ८० ॥
इति धर्मो नृपस्यैव अश्वमेधादिकश्च यः।
स्वयं न कुरुते भूपस्तस्मात् त्वं कुरु सत्तम ॥ ८१ ॥
एवं मन्त्रैर्मन्त्रयित्वा नृपः कार्यान्तिकाद् द्विजात्।
[५४]तैरज्ञातान् स्वयं ज्ञात्वा गृह्णीयात् तस्य तैर्मनः ॥ ८२ ॥
यदि राज्याभिलाषेण सचिवोऽधर्ममाचरेत्।
नृपतौ वाधिकं कुर्याद् धर्मं तं हीनतां नयेत् ॥ ८३ ॥
आभिचारिकमत्यर्थं कुर्वाणं तु विघातयेत्।
प्रवासयेद् ब्राह्मणं तु पार्थिवश्चाभिचारिकम् ॥ ८४ ॥
एषा धर्मोपधा ज्ञेया तैरमात्यान् सुतान् जयेत्।
एतादृशीं तथैवान्यामुपधां धर्मतश्चरेत् ॥ ८५ ॥
कोशाध्यक्षान् समामन्त्र्य राजामात्यान् प्रतारयेत्।
पुत्रानन्यान् प्रति तथा मन्त्रसंवरणाक्षमान् ॥ ८६ ॥
अयं हि प्रचुरः कोषो मदायत्तो नरोत्तम।

---

५३. ···कश्चः। ५४. तरज्ञाता स्वयं ज्ञाता न गृह्णीयात्।

आनये तव संमत्या तद् यदि त्वं प्रतीक्षसि ।: ८७ ॥
तवार्थलग्नादस्माकं जीवनं च भविष्यति ॥
त्वं चापि प्रचुरैः कोषैः किं किं वा न करिष्यसि ॥ ८८ ॥
एवमन्यैः कोषगतैरुपायैर्नृपसत्तमः ।
पुत्रामात्यादिकान् सर्वान् सततं परिशोधयेत् ॥ ८९ ॥
कोषदोषकरान् हन्यात् कर्तुमिच्छून् विवासयेत् ।
द्वैधचित्तान् विमन्येत कुर्याद् वै कोशरक्षणम् ॥ ९० ॥
दासीश्च शिल्पिनीर्वृद्धा मेधाधृतिमतीः स्त्रियः ।
अन्तर्बहिश्च या यान्ति विदिताः सचिवादिभिः ॥ ९१ ॥
ता राजा रहसि स्थित्वा भार्यादिभिरलक्षितः ।
अभिमन्त्र्याथ संमन्त्र्य प्रेषयेत् सचिवान् प्रति ॥ ९२ ॥
ता गत्वा हृदयं बुद्धा स्त्रियो विज्ञानतत्पराः ।
महिषीप्रमुखा राज्ञस्त्वां वै कामयते शुभाः ॥ ९३ ॥
तत्राहं योजयिष्यामि यदि ते विद्यते स्पृहा ।
सचिवस्त्वां कामयते त्वद्योग्यो वरवर्णिनि ॥ ९४ ॥
तं संगमयितुं शक्ता यदि श्रद्धा तवास्त्यहम् ।
इत्यनेन प्रकारेण नानोपायैस्तथोत्तरैः ॥ ९५ ॥
भार्याः पुत्रदुहित्रीश्च स्नुषाश्च प्रस्नुषास्तथा ।
शोधयेत् सचिवान् पुत्रान् पौत्रादीन् सेवकांस्तथा ॥ ९६ ॥
कामोपधाविशुद्धांस्तु [55]घातयेदविचारयन् ।
स्त्रियस्तु योज्या दण्डेन ब्राह्मणांस्तु प्रवासयेत् ॥ ९७ ॥
मोक्षमार्गावसक्तं तु हिंसापैशुन्यवर्जितम् ।
क्षमैकसारं नृपतिः सचिवं परिवर्जयेत् ॥ ९८ ॥
मोक्षमार्गविषक्तांस्तु दण्ड्यानपि न दण्डयेत् ।
समबुद्धिस्तु सर्वत्र तस्मात् तं परिवर्जयेत् ॥ ९९ ॥*
इति सूत्रं चोपधानामुपधा बहुधा पुनः ।
विवेचिता चोशनसा तच्छास्त्रे तत्र बोधयेत् ॥ १०० ॥
विग्रहं सततं राजा परैर्न सम्यगाचरेत् ।
भूवित्तमित्रलाभेषु निश्चितेष्वेव विग्रहाः ॥ १०१ ॥
सप्ताङ्गेषु प्रसादश्च सदा कार्यो नृपोत्तमैः ।
कोषस्य सञ्चयं रक्षां सततं सम्यगाचरेत् ॥ १०२ ॥
मन्त्रिणस्तु नृपः कुर्याद् विप्रान् विद्याविशारदान् ।

---

५५. घातयेदभिचारिकान् ।

विनयाज्ञान् कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून् ॥ १०३ ॥
मन्त्रयेत् तैः समं ज्ञानं नात्यर्थं बहुभिश्चरेत् ।
एकैकेनैव कर्तव्यं मन्त्रस्य च विनिश्चयम् ॥ १०४ ॥
[५६]व्यस्तैः समस्तैश्चान्यस्य व्यपदेशैः समन्ततः ।
सुसंवृतं मन्त्रगृहं स्थलं वारुह्य मन्त्रयेत् ॥ १०५ ॥
अरण्ये निःशलाके वा न[५७] यामिन्यां कदाचन ।
शिशूञ्छाखामृगान् पण्डाञ्छुकान् वै सारिकास्तथा ॥ १०६ ॥
वर्जयेन्मन्त्रगेहे तु मनुष्यान् विकृतांस्तथा ।
दूषणं मन्त्रभेदेषु नृपाणां यत् तु जायते ॥ १०७ ॥
न तच्छक्यं समाधातुं दक्षैर्नृपशतैरपि ।
दण्ड्यांस्तु दण्डयेद् दण्डैरदण्ड्यान् दण्डयेन्नहि ॥ १०८ ॥
अदण्डयन् नृपो दण्ड्यान्नदण्ड्यांश्चापि दण्डयन् ।
नृपतिर्वाच्यतां प्राप्य चौरकिल्विषमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥
दुर्गं[५८] तु समतां[५९] कुर्यात् प्राकाराट्टालतोरणैः ।
भूषितान्नगराद्राजा दूरे दुर्गाश्रयं चरेत् ॥ ११० ॥
दुर्गं बलं नृपाणां तु नित्यं दुर्गं प्रशस्यते ।
शतमेको योधयति दुर्गस्थो यो धनुर्द्धरः ॥ १११ ॥
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं [६०]प्रशस्यते ।
जलदुर्गं भूमिदुर्गं वृक्षदुर्गं तथैव च ॥ ११२ ॥
अरण्यमरुदुर्गं च शैलजं [६१]परिखोद्भवम् ।
दुर्गं कार्यं नृपतिना यथा दुर्गं[६२] स्वदेशतः ॥ ११३ ॥
दुर्गं कुर्वन् पुरं कुर्यात् त्रिकोणं धनुराकृति ।
वर्तुलं च चतुष्कोणं नान्यथा नगरं चरेत् ॥ ११४ ॥
मृदङ्गाकृतिदुर्गं तु सततं कुलनाशनम् ।
यथा राक्षसराज्यस्य लङ्का दुर्गान्विता पुरा ॥ ११५ ॥
वलेः पुरं शोणिताख्यं तेजो दुर्गैः प्रतिष्ठितम् ।
तद् यस्माद् व्यञ्जनाकारं मनोभ्रष्टः शिवावलिः ॥ ११६ ॥
सौभाग्यं [६३]शाल्वराजस्य नगरं पंचकोणकम् ।
दिवि यद् वर्तते राज्यं तच्च भ्रष्टं भविष्यति ॥ ११७ ॥
यच्चायोध्याह्वयं भूप पुरमिक्ष्वाकुभूभृताम् ।

---

५६. व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च वाप्यस्य व्यपदेशतः । ५७. सखादीनां ।
५८. दुर्गं । ५९. सततं । ६०. विशिष्यते । ६१. परिखोत्तमम् ।
६२. ''''मशेषतः । ६३. शाम्बराज ।

धनुराकृति तच्चापि ततोऽभूद् विजयप्रदम् ॥ ११८ ॥
दुर्गभूमौ जयेद् दुर्गां दिक्पालांश्चैव द्वारतः ।
पूजयित्वा विधानेन जयं भूपः समाप्नुयात् ॥ ११९ ॥
अतो दुर्गं नृपः कुर्यात् सततं जयवृद्धये ।
न ब्राह्मणान् सदा राजा केनाप्यवमनीकृतान् ॥ १२० ॥
अवमन्य नृपो विप्रान् प्रेत्येह दुःखभाग् भवेत् ।
न विरोधस्तु तैः कार्यः स्वानि तेषां न चाददेत् ॥ १२१ ॥
कृत्यकालेषु सततं तानेव परिपूजयेत् ।
नैषां निन्दां प्रकुर्वीत नाभ्यसूयां तथाचरेत् ॥ १२२ ॥
एवं नृपो महाबुद्धिस्तत्त्वमण्डलसंयुतः ।
अप्रमादी चारचक्षुर्गुणवान् सुप्रियंवदः ॥ १२३ ॥
प्रेत्येह महतीं सिद्धिं प्राप्नोति सुखभोगवान् ।
यैर्गुणैर्योजितश्चात्मा तैः पुत्रानपि योजयेत् ॥ १२४ ॥
[64]नृपस्य च स्वतन्त्रत्वं सततं स्वं विनाशयेत् ।
स्वतन्त्रो भूपतनयो विकारं याति निश्चितम् ॥ १२५ ॥
निर्विकाराय सततं वृद्धांश्च परियोजयेत् ।
भोजने [65]शयने याने पुरुषाणां च वीक्षणे ॥ १२६ ॥
वियोजयेत् सदा दारान् भूपः कामविचेष्टने ।
अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः सततं पार्थिवेन तु ॥ १२७ ॥
ताः स्वतन्त्राः स्त्रियो नित्यं हानये सम्भवन्ति हि ।
तस्मात् कुमारं महिषीमुपधाभिर्मनोहरैः ॥ १२८ ॥
शोधयित्वा नियुञ्जीत यौवराज्यावरोधयोः ।
अन्तःपुरप्रवेशे तु स्वतन्त्रत्वं निषेधयेत् ॥ १२९ ॥
भूपपुत्रस्य भार्याया बहिःसारे तथैव च ।
अयं विशेषः संक्षेपान्नृपधर्मो मयोदितः ॥ १३० ॥
पुत्राणां गुणविन्यासे भार्याणामपि भूपते ।
उशना राजनीतीनां तन्त्राणि तु बृहस्पतिः ॥ १३१ ॥
चकारान्यान् विशेषांस्तु तयोस्तन्त्रेषु बोधयेत्[66] ।
एवं राजा महाभागो राजनीतौ विशेषताम् ।
कुर्वन्न सीदति सदा भूयसीं श्रियमश्नुते ॥ १३२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नृपधर्मकथने चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

---

६४. नृपः किं स्वस्य तन्त्रत्वं सततं भूरिनाशये । ६५. वमने पाने । ६६. बोधय ।

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

सदाचारेषु राजेन्द्र विशेषान् शृणु सम्प्रति।
यानवश्यं नृपः कुर्यात् तान्सत्तः सकलान् शृणु ॥ १ ॥
साधवः क्षीणदोषाश्च सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरणं यत् तत् सदाचारः स उच्यते ॥ २ ॥
आगमेषु पुराणेषु संहितासु यथोदितान्।
समुद्दिष्टसदाचारान् गृह्णीयात् तान् गृहस्थवत् ॥ ३ ॥
ऋषीन् यजेद् वेदपाठैर्देवान् होमैः प्रपूजयेत्।
श्राद्धैः पितृंस्तर्पयेत् तु भूतानि बलिभिस्तथा ॥ ४ ॥
मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्।
सर्वं गृहस्थवत् कुर्यान्निषेकाद्यं विधिं तथा ॥ ५ ॥
षट्कर्मसु नियुञ्जीत राजा विप्रान् समन्ततः।
तथैव क्षत्रियादींश्च स्वे स्वे[67] धर्मे नियोजयेत् ॥ ६ ॥
यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत्।
तं शतेन नृपो दण्डं पुनस्तस्मिन् नियोजयेत् ॥ ७ ॥
सांवत्सरेषु कृत्येषु विशिष्यैतान् समाचरेत्।*
[68]अवश्यं पार्थिवो राजन् तान् विशेषान् शृणुष्व मे ॥ ८ ॥
शरत्काले महाष्टम्यां दुर्गायाः परिपूजनम्।
नीराजनं दशम्यां तु कुर्याद् वै बलवृद्धये ॥ ९ ॥
पौषे मासि तृतीयायां कुर्यात् पुष्याभिषेचनम्।
पूजयित्वा श्रियं देवीं पञ्चम्यां नृपतिश्चरेत् ॥ १० ॥
श्रीयज्ञं धनधान्यस्य वृद्धये नृपसत्तम।
ज्यैष्ठे दशहरायां तु विष्णोरिष्टिं [69]तथाचरेत् ॥ ११ ॥
रवौ हरिस्थे द्वादश्यां शक्रपूजां समाचरेत्।
विशिष्यैतांस्तु नृपतिः कुर्याद् यज्ञान् बहुव्ययैः ॥ १२ ॥
एभिः कृतैर्बलं राज्यं कोषश्चापि विवर्धते।
अकृतेष्वेषु यज्ञेषु दुर्भिक्षं मरणं[70] तथा ॥ १३ ॥
जायन्ते चेतयः सर्वा विशिष्यैतांस्ततश्चरेत्।
शरत्काले महाष्टम्यां दुर्गायाः पूजने विधिः ॥ १४ ॥

---

६७. कर्मणि योजयेत्। * मुद्रिते अधिकः। ६८. अरण्यं पार्थिवान् राजन्।
६९. समाचरेत्। ७०. मरकस्तथा।

पुरा प्रोक्तस्तु विधिना तेन कार्यं तु पूजनम् ।
विधिं नीराजनस्य त्वं श्रृणु पार्थिवसत्तम ॥ १५ ॥
कृतेन येन चाश्वानां गजानामपि वर्धनम् ।
आश्विने शुक्लपक्षे[७१] तु तृतीया स्वातीयोगिनी ॥ १६ ॥
ऐशान्यां स्वपुरस्यैव गृह्णीयात् स्थानमुत्तमम् ।
नीराजनं ततः कुर्यात् संप्राप्ते दिवसेऽष्टमे ॥ १७ ॥
नीराजनस्य कालस्तु पूर्वमुक्तो मया तव ।
विधानमात्रं श्रृणु मे कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ १८ ॥
एकं हयं महासत्त्व सुमनोहरमेव च ।
पूजयेत् सप्तदिवसान् गन्धपुष्पांशुकादिभिः ॥ १९ ॥
तृतीयादौ पूजयित्वा नयेत[७२] यज्ञमण्डलम् ।
चेष्टां निरूपयंस्तस्य जानीयात् तु शुभाशुभम् ॥ २० ॥
परराष्ट्रावमर्दः स्यादश्वो यदि पलायते ।
म्रियते राजपुत्रस्तु यदि चाश्रूणि मुञ्चति ॥ २१ ॥
नीयमानो न गच्छेत् तु महिषीमरणं ततः ।
तथैव मुखनासाक्षि शब्दं कुर्याद्धयो यदि ॥ २२ ॥
यः काष्ठाभिमुखः कुर्यात् तत् काष्ठायां जयेद्रिपून् ।
उत्क्षिप्य दक्षिणाग्रं तु पदमश्वो भवेत् पुरः ॥ २३ ॥
तदा यदि समस्तांश्च नृपतिर्विजयेद्रिपून् ।
प्रातर्नीराजनं कुर्याद् दशम्यां नृपसत्तम ॥ २४ ॥
तदप्राप्तौ च द्वादश्यां तस्यामेव समाचरेत् ।
कार्तिके पंचदश्यां वा तत्राभावे तु पार्थिव ॥ २५ ॥
ऐशान्यां स्वपुरस्योच्चैर्हस्तमानेन षोडश ।
दशहस्तं तु विपुलां कुर्याद् वै तत्र तोरणम् ॥ २६ ॥
द्वात्रिंशद्धस्तमात्रं तु हस्तषोडशविस्तृतम् ।
यज्ञार्थं मण्डलं कुर्यान्मध्ये वेदिं विनिर्दिशेत् ॥ २७ ॥
वेद्याश्चोत्तरतश्चाश्व-वेदिं कुर्यादनुत्तमाम् ।
यत्र संस्थाप्य चाश्वश्च पूजितव्यः पुरोहितैः ॥ २८ ॥
सर्जोदुम्बरशाखानामर्जुनस्याथवा नृप ।
मत्स्यशङ्खाङ्कितैश्चक्रैर्ध्वजैश्चाप्यभिभूषयेत् ॥ २९ ॥
तोरणं कनकरत्नैस्तथा नानाविधैः फलैः ।
भल्लातकं शालिकुष्ठं सिद्ध्यर्थं सैन्धवस्य तु ॥ ३० ॥

---

७१. या दशमो । ७२. नयेत् तं ।

कण्ठदेशे निबध्नीयात् पुष्टिशान्त्यर्थमेव च।
वैष्णवं मण्डलं कृत्वा दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥ ३१ ॥
विश्वेदेवांस्तु मन्त्रेण विष्णुमुख्यान् प्रपूजयेत्।
आज्यैस्तिलैश्च पुष्पैश्च मिश्रीकृत्य पुरोहितः ॥ ३२ ॥
रवेस्तु वरुणस्यैव प्रजेशस्य तथैव च।
पुरुहूतस्य विष्णोश्च होमं सप्ताहमाचरेत् ॥ ३३ ॥
एकैकस्य सहस्रं वा अष्टोत्तरशतं च वा।
कुर्यात् तु प्रत्यहं होमं चतुर्वर्गस्य सिद्धये ॥ ३४ ॥
समिधश्चापि होतव्याः पालाशाः खादिरास्तथा।
औदुम्बर्यश्च काश्मर्या आश्वत्थाश्च पुरोधसा ॥ ३५ ॥
सौवर्णान् राजतान् वापि मार्तिकान् वा यथेच्छया।
कुर्यात् तु कलशानष्टौ फलाम्राम्वरयोजितान् ॥ ३६ ॥
क्षिपेत् तेषु घटेष्वेव समङ्गहरितालकम्।
चन्दनं च तथा कुष्ठं प्रियङ्गुं च मनःशिलाम् ॥ ३७ ॥
*अञ्जनं च हरिद्रां च श्वेतां दन्तीं तथैव च।
भल्लातकं पूर्णकोशं सहदेवीं शतावरीम् ॥ ३८ ॥
वचां सनागकुसुमां सोमराजीं सुगुप्तिकाम्।
[७३]तुत्थं च करवीरं च तुलसीदलमेव च ॥ ३९ ॥
एतानि निक्षिपेन्मध्ये कलशानां पुरोहितः।
कनकैरम्बुजैर्यज्ञदारुभिः स्रुक्स्रुवौ तथा ॥ ४० ॥
कर्तव्ये शान्तिकामेन नीराजनविधौ नृप।
एवं सप्ताहपर्यन्तं पूजाभिहवनैस्तथा ॥ ४१ ॥
पूर्वोक्तान् पूजयित्वा तु नृपः सप्ताहमाचरेत्।
यावन्नीराजनं कुर्यात् तावद्राजा वसेद् गृहे ॥ ४२ ॥
रात्रौ न यज्ञभूमौ तु निवसेच्छान्तिमिच्छुकः।
नारोहयेत् तुरङ्गं तं गजं वा तत्र पार्थिवः ॥ ४३ ॥
यावत् सप्ताहपर्यन्तं यानेनान्येन वै व्रजेत्।
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चैव मधुपायसयावकैः ॥ ४४ ॥
मोदकैर्वा वलिं कुर्यादन्नव्यञ्जनसम्भवैः।
पूर्वोक्तानां तु देवानां सप्ताहं यावदुत्तमम् ॥ ४५ ॥
सप्तमेऽह्नि तु रेभन्तं[७४] पूजयेत् तोरणान्तरे।

* अञ्जनं च तथा कुष्ठां प्रियं च सुमनःशिलां। ...अधिकः पाण्डुलिप्याम्। ७३. मन्दाञ्च कवरीञ्चैव। ७४. भवेनान्तं।

सूर्यपुत्रं महाबाहुं द्विभुजं कवचोज्ज्वलम् ॥ ४६ ॥
ज्वलन्तं शुक्लवस्त्रेण केशानुद्ग्रथ्य वाससा ।
कशां वामकरे विभ्रद् दक्षिणं तु करं पुनः ॥ ४७ ॥
स खड्गं न्यस्य वामायां सितसैन्धवसंस्थितम् ।
एवंविधं तु[७५] रेभन्तं प्रतिमायां घटेऽपि वा ॥ ४८ ॥
सूर्यपूजाविधानेन पूजयेत् तोरणान्तरे ।
पूजयित्वा तु रेभन्त[७६] द्विरदं तुरगं तथा ॥ ४९ ॥
अहताम्बरसंवीतं स्रक्चन्दनसमन्वितम् ।
सुवर्णविद्धनिस्त्रिंशं विचित्रं कवचादिभिः ॥ ५० ॥
युक्तं तु होमकुण्डस्य ऐशान्यामश्ववेदिकाम् ।
पूर्वं कृतां नयेदश्वगजपालौ पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥
नीयमाने गजे चाश्वे पूर्वोक्तं तु निमित्तकम् ।
यत्नाद् वीक्षेत नृपतिः फलं चैवावधारयेत् ॥ ५२ ॥
होमकुण्डस्योत्तरस्यां वैयाघ्रे चर्मणि स्थितः ।
वेदविदा चाश्वविदा सहितो वीक्ष्य सैन्धवम् ॥ ५३ ॥
नीताय तुरगायाशु भक्तपिण्डीं सुगन्धिनीम् ।
दद्यात् पुरोहितस्तत्र संमन्त्र्य शान्तिमन्त्रकैः ॥ ५४ ॥
भक्षणाद् यदि जिघ्रेत् तदश्नीयाद् वा हयः स च ।
तदा स्यात् सर्वकल्याणं विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ५५ ॥
शाखामौदुम्बरीमाम्रीं सकुशां च घटोदके ।
आप्लाव्याप्लाव्य तुरगान् गजान् भूपं च सैनिकान् ॥ ५६ ॥
रथांश्च संस्पृशन्मन्त्रैः शान्तिकैः पौष्टिकैस्तथा ।
सेचयेत् सहितैर्विप्रैश्चतुरङ्गं पुरोहितः ॥ ५७ ॥
दिक्पालानां ग्रहाणां च मन्त्रैश्च वैष्णवैस्तथा ।
बहुधा चाभिषिच्याथ ततः सौवर्ण[७७]दर्पणम् ॥ ५८ ॥
वीक्षयित्वा नृपं चर्त्विक् ततो मन्त्रिणमेव च ।
राजपुत्रं तथामात्यानन्यानपि च सैनिकान् ॥ ५९ ॥
कम्पयन् द्विजशार्दूलः सर्वानेव तु दर्शयेत् ।
चतुरंगस्य स्वस्यापि कृत्वैवं शान्तिपौष्टिके ॥ ६० ॥
मृन्मय शात्रवं कृत्वा चाभिचारिकमन्त्रकैः ।
हृदि शूलेन विध्वा तं शिरं खड्गेन छेदयेत् ॥ ६१ ॥

---

७५. रेवन्तं । ७६. रेवन्तं । ७७. तर्पणम् ।

आचार्यः कविकां पश्चादभिमन्त्र्य हयाय वै।
ऐन्द्रैः प्राभाकरैर्मन्त्रैर्दद्याद् वक्त्रे स्वयं पुनः ॥ ६२ ॥
तमनेन तु मन्त्रेण समारुह्य नृपस्तदा।
गच्छेदुत्तरपूर्वां तु दिशं सर्वैर्बलैर्युतः ॥ ६३ ॥
ऋत्विक् पुरोहिताचार्याः सर्व एव नृपं तदा।
अनुगच्छेयुरन्यानि निमित्तानि विलोकितुम् ॥ ६४ ॥
वादित्रघोषैस्तुमुलैरातपत्रैर्वृतस्तथा।
गच्छेन्नीराजने राजा दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ६५ ॥
मणिविद्रुममुक्तादि-स्वर्ण-रत्नैरलङ्कृतः।
क्रोशमात्रं ततो गत्वा पूर्वद्वारेण पार्थिवः ॥ ६६ ॥
स्वपुरं प्रविशेद् विप्रैर्यज्ञं यायात् पुरोहितः।
तत्र गत्वा दक्षिणां तु हिरण्यं गां तथा तिलम् ॥ ६७ ॥
दत्त्वा पश्चाद् द्विजेभ्यस्तु दद्याद् दानानि शक्तितः।
एवं नीराजनं कृत्वा बलानां च महीक्षितः ॥ ६८ ॥
प्रेत्येह सुस्थिरां लक्ष्मीं नृपतिः प्राप्नुयात् तथा।
त्वमश्वामृतसञ्जात सागरोद्भव सैन्धव ॥ ६९ ॥
येन सत्येन वहसे शक्रं तेनेह मां वह।
येन सत्येन रेभन्तं येन सत्येन भास्करम् ॥ ७० ॥
वहसे तेन सत्येन विजयाय वहस्व माम्।
आभ्यां तु भूपमन्त्राभ्यामश्वारोहणमाचरेत् ॥ ७१ ॥
आरुह्याग्रे महिष्यास्तु शुद्धान्ते लम्बयेत् ततः।
महिषी च ततो भूपं पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥ ७२ ॥
दूर्वाक्षतैः ससिद्धार्थैः स्त्रीभिः सह तमर्चयेत्।
कृते तु भूमिग्रहणे तृतीयायां निराजने ॥ ७३ ॥
सूतकं यदि जायेत तत्र दुष्यति केवलम्।
सूतकी मृतकी वापि पार्थिवस्तु यथा तथा ॥ ७४ ॥
बलनीराजनं कुर्यात् तन्मात्रं च विशेषतः।
सद्यः शौचं भवेद्राज्ञो व्यवहारविलोकने ॥ ७५ ॥
तथाधिवासने यज्ञे परराष्ट्रविमर्दने।
अयं ते कथितो राजन्नीराजनक्रमो मया।
पुष्यस्नानविधानं तु पार्थिव शृणु साम्प्रतम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

———

षडशीतितमोऽध्यायः ।

और्व उवाच—

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुष्यस्नानविधिक्रमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण विघ्ना नश्यन्ति सन्ततम् ॥ १ ॥

पौषे पुष्यर्क्षगे चन्द्रे पुष्यस्नानं नृपश्चरेत् ।
सौभाग्यकल्याणकरं दुर्भिक्षमरणापहम् ॥ २ ॥

विष्टयादिदुष्टकरणे व्यतीपाते च वैधृतौ ।
वज्रे शूले हर्षणादौ योगे तु यदि लभ्यते ॥ ३ ॥
तृतीयायुक्तपुष्यर्क्षं रविशौरिकुजेऽहनि ।
तदा समस्तदोषाणां तत् स्नानं हानिकारकम् ॥ ४ ॥

ग्रहदोषाश्च जायन्ते यदि राज्येषु चेतयः ।
तदा पुष्ये तु नक्षत्रे कुर्यान्मासान्तरेऽपि च ॥ ५ ॥

इयं तु ब्रह्मणा शान्तिरुद्दिष्टा गुरवे पुरा ।
शक्रादिसर्वदेवानां शान्त्यर्थं च जगत्पतिः ॥ ६ ॥
तुषकेशास्थिवल्मीक-कीटदेशादिवर्जिते ।
शर्कराकृमिकुष्माण्ड-वहुकृष्टविवर्जिते ॥ ७ ॥
काकोलूकैश्च कङ्कैश्च काकोलैर्गृध्रशौनकैः ।
वर्जिते कण्टकिवने विभीतकविवर्जिते ॥ ८ ॥

शिग्रुश्लेष्मातकाभ्यां तु जलौकाद्यैर्विवर्जिते ।
स्वस्थाने [७८]चम्पकाशोक-वकुलादिविराजिते ॥ ९ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णे सरस्तीरेथवा शुचौ ।
पुष्यस्नानाय नृपतिर्गृह्णीयात् स्थानमुत्तमम् ॥ १० ॥

ततः पुरोहितो राजा नाना वादित्रनिःस्वनैः ।
प्रदोषसमये गच्छेत् तत् स्थानं पूर्ववासरे ॥ ११ ॥
तस्य स्थानस्य कौवेर्यां दिशि स्थित्वा पुरोहितः ।

सुगन्धचन्दनैः पानैः कर्पूराद्यधिवासितैः ॥ १२ ॥
गोरोचनाभिः सिद्धार्थैरक्षतैः सफलादिभिः ।

---

७८. रम्याकाशोकवसालादिविभूषिते ।

गन्धद्वारेत्यादिभि[७९]र्मन्त्रैः सर्वाधिसिक्तकैः ॥ १३ ॥
अधिवास्य तु तत्स्थानं पूजयेत् तत्र देवताः ।
गणेशं केशवं शक्रं ब्रह्माणं चापि शङ्करम् ॥ १४ ॥
उमया सहितं देवं सर्वाश्च गणदेवताः ।
मातृश्च पूजयेत् तत्र नृपतिः सपुरोहितः ॥ १५ ॥
मङ्गलान् कलशान् कृत्वा नानानैवेद्यसञ्चयान् ।
प्रदद्यात् पायसं स्वादुफलं मोदकयावकौ ॥ १६ ॥
अधिवास्य च तत् स्थानं दूर्वासिद्धार्थकाक्षतैः ।
तत्स्थानाच्चापि भूतानि सारयेन्मन्त्रमीरयन् ॥ १७ ॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन स्नानकर्म करोम्यहम् ॥ १८ ॥
ततः करौ पुटीकृत्य मन्त्रेणानेन पार्थिवः ।
आवाहयेदिमान् देवान् पूज्यान् पुष्याभिषेकतः ॥ १९ ॥
आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
दिशो हि पालकाः सर्वे ये चान्येऽप्यंशभागिनः ॥ २० ॥
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्मन्त्रं पठेदिमम् ।
अद्य तिष्ठन्तु विबुधाः स्थानमासाद्य मामकम् ॥ २१ ॥
स्वपूजां प्राप्य पातारो दत्त्वा शान्तिं महीभुजे ।
ततस्तां नृपती रात्रिं नयेत् तु सपुरोहितः ॥ २२ ॥
स्वप्ने शुभाशुभं विद्यान्नृपस्तु सपुरोहितः ।
कृत्वा पूजां तु देवानां रात्रौ स्थाने नृपः स्वपेत् ॥ २३ ॥
शुभाशुभफलं स्वप्ने ज्ञेयं [८०]दोषज्ञसम्मते ।
दुःस्वप्नदर्शनं चेत् स्यात् तदा पुष्याभिषेचने ॥ २४ ॥
होमं चतुर्गुणं कुर्याद् दत्त्वा चापि गवां शतम् ।
गोवाजिकुंजराणां तु प्रासादस्य गिरेस्तरोः ॥ २५ ॥
आरोहणं शुभकरं राज्यश्रीवृद्धिकारकम् ।
दधिदेवसुवर्णानां [८१]ब्राह्मणस्य प्रदर्शनम् ॥ २६ ॥
वीणादूर्वाक्षतफल पुष्पच्छत्रविलेपनम् ।
शीतांशु[८२]चक्रशत्रूणां पद्मस्य सुहृदस्तथा ॥ २७ ॥
लाभाः क्षयकराः शत्रौ रत्नकारस्य भूभृतः ।
दर्शनं चोपरागस्य निगडेन च बन्धनम् ॥ २८ ॥

---

७९. सर्वौषध्यादिवासितैः ।   ८०. दैवज्ञ ।

८१. भुजंगस्य च दर्शनम् ।   ८२. छत्रशंखानां ।

मांसस्य भोजनं चैव पर्वतस्य विवर्तनम् ।
[८३]नाभिमध्ये तरूत्पत्तिर्मृतं प्रत्यनुरोदनम् ॥ २९ ॥
अगम्यागमनं कूपं पङ्कगर्भावतीर्णता ।
पर्वतस्य तथा नद्याः [८४]स्रोतसां लङ्घनं तथा ॥ ३० ॥
स्वपुत्रमरणं चैव पानं रुधिरमद्ययोः ।
भोजनं पायसस्यापि मनुष्यारोहणं तथा ॥ ३१ ॥
कल्याणसुखसौभाग्य-राज्य-शत्रुक्षयं तथा ।
एते स्वप्नाः प्रकुर्वन्ति नृपस्य नृपसत्तम ॥ ३२ ॥
खरोष्ट्रमहिषाणां च आरोहो राज्यनाशनः ।
नृत्यं गीतं तथा हास्यं पाठश्चाप्यशुभप्रदः ॥ ३३ ॥
रक्तवस्त्रपरिधानं रक्तमालानुलेपनम् ।
रक्तां कृष्णां स्त्रियं चैव कामयन् मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥
कूपान्तरे प्रवेशः स्याद् दक्षिणाशागतिस्तथा ।
पङ्के निमज्जनं स्नानं भार्यापुत्रविनाशनम् ॥ ३५ ॥
लाभस्तस्य भवेत् स्वप्नेऽप्यरुतूपत्तिर्नृपस्य च ।
आदाय गर्भनाडीं तु सकुलो याति [८५]खञ्जनम् ॥ ३६ ॥
स तु राज्यान्तरं प्राप्य महाकल्याणमाप्नुयात् ।
दीर्घं विंशतिहस्तं तु हस्तषोडशविस्तृतम् ॥ ३७ ॥
कुर्यात् तु लक्षणोपेतं यज्ञमण्डलमुत्तमम् ।
ततोऽपरेऽह्नि पूर्वाह्णे मातृणां पूजनं चरेत् ॥ ३८ ॥
कुड्यलग्नां वसोर्धारां वृद्धिश्राद्धं तथैव च ।
चन्दनागुरुकस्तूरीधूमकर्पूरचूर्णकैः ॥ ३९ ॥
सम्पूज्य मण्डलस्थानं तस्मिन् ह्रौं शम्भवे नमः ।
अस्त्राय हुं फडित्येवं लिखेन्मन्त्रद्वयं बुधः ॥ ४० ॥
मन्त्रविन्मण्डलज्ञश्च सूत्रैः कम्बलसम्भवैः ।
कौशेयैर्वा स्वस्तिकाख्यं प्रथमं मण्डलं लिखेत् ॥ ४१ ॥
चतुर्हस्तप्रमाणं तु मण्डलं विलिखेत् ततः ।
हस्तप्रमाणं पद्मं तु मण्डलस्य प्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥
द्वाराणि सार्धहस्तानि कर्णिकाकेशरोज्ज्वलम् ।
सितं रक्तं च पीतं च कृष्णं हरितमेव च ॥ ४३ ॥

---

८३. नाभिमूले । ८४. प्रोक्तारः शत्रुकर्तनं । ८५. खं द्रुतम् ।

शालिचूर्णैश्च कौसुम्भैर्हारिद्रैर्हरिदुद्भवैः ।
कुर्यात् तथाञ्जनैश्चूर्णैं राजा मण्डलवृद्धये ॥ ४४ ॥
पद्मान्ततः समारभ्य तालं पश्चिमगामिनम् ।
पश्चिसद्वारमध्ये च शतहस्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४५ ॥
प्रत्येकं द्वारमध्ये तु पद्मं चैवाष्टपत्रकम् ।
कुर्यान्मण्डलभागज्ञश्चूर्णैरेव पृथक् पृथक् ॥ ४६ ॥
चूर्णैस्तु मण्डलं कृत्वा सूत्राण्युत्सारयेत् ततः ।
उत्सार्य सूत्रं प्रथमं मण्डलं पूजयेत् ततः ॥ ४७ ॥
[८६]भवनाय नम इति ततो हस्तं वियोजयेत् ।
सव्यावलम्बहस्तं तु रजःपात्रं समाचरेत् ॥ ४८ ॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरुपरिष्टाद् यथेच्छया ।
अधोमुखाङ्गुलीः[८७] कृत्वा पातयेच्च विचक्षणः ॥ ४९ ॥
समारेखा तु कर्तव्या विच्छिन्ना पुष्परञ्जिता ।
अङ्गुष्ठपर्वनैपुण्यात् समा कार्या विजानता ॥ ५० ॥
संसक्तविषमं स्थूलं विच्छिन्नं कृसराकृतम् ।
पर्यन्तमर्पितं ह्रस्वमालिखेन्न कदाचन ॥ ५१ ॥
संसक्ते कलहं विद्यादूर्ध्वं रेखे तु विग्रहम् ।
अतिस्थूले भवेद् व्याधिर्नित्यं पीडाविमिश्रिते ॥ ५२ ॥
बिन्दुभिर्भयमाप्नोति शत्रुपक्षान्न संशयः ।
कृशायां चार्थहानिः स्याच्छिन्नायां मरणं ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
वियोगो वा भवेत् तस्य इष्टद्रव्यसुतस्य वा ।
अविदित्वा लिखेद् यस्तु मण्डलं तु यथेच्छया ॥ ५४ ॥
सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषाः [८८]पूर्वमीरिताः ।
सितसर्षपदूर्वाया रेखाः कार्या विजानता[८९] ॥ ५५ ॥
विमलं विजयं भद्रं विमानं शुभदं शिवम् ।
वर्धमानं च देवं च शताक्षं कामदायकम् ॥ ५६ ॥
रुचिकं स्वस्तिकं चैव द्वादशैते तु मण्डलाः ।
यथास्थानं यथायज्ञं योजनीया विचक्षणैः ॥ ५७ ॥
सागरे मथ्यमाने तु पीयूषार्थं सुरोत्करैः ।
पीयूषधारणार्थाय निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ५८ ॥

---

८६. भवभवनाय इति । ८७. अधोमुखाञ्जलिं ।
८८. पूर्वभाषिताः । ८९. प्रमाणतः ।

कलां कलां तु देवानामसित्वा ते पृथक् पृथक् ।
यतः कृतास्तु कलसास्ततस्ते परिकीर्तिताः ॥ ५९ ॥
नवैव कलसाः प्रोक्ता नामतस्तान्निबोधत ।
गोह्योपगोह्यो मरुतो मयूखश्च तथापरः ॥ ६० ॥
मनोहाचार्यभद्रश्च विजयस्तनु[९०]दूषकः ।
इन्द्रियघ्नोऽथ विजयो नवमः परिकीर्तितः ॥ ६१ ॥
तेषामेव क्रमाद् भूप नव नामानि यानि तु ।
शृणु तान्यपराण्येव शान्तिदानि सदैव हि ॥ ६२ ॥
क्षितीन्द्रः प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो जनसम्भवः ।
पवनाग्नी ततो द्वे तु यजमानस्ततः परः ॥ ६३ ॥
कोषसम्भवनाभ्यां[९१] तु षष्ठः स परिकीर्तितः ।
सोमस्तु सप्तमः प्रोक्त आदित्यस्तु तथाष्टमः ॥ ६४ ॥
विजयो नाम कलसो योऽसौ नवम उच्यते ।
स तु पंचमुखः प्रोक्तो महादेवस्वरूपधृक् ॥ ६५ ॥
घटस्य पञ्चवक्त्रेषु पञ्चवक्त्रः स्वयं तथा ।
यथाकाष्ठां स्थितः सम्यग्वामदेवादिनामतः ॥ ६६ ॥
मण्डलस्य तु पद्मान्तः पञ्चवक्त्रं घटं न्यसेत् ।
क्षितीन्द्रं पूर्वतो[९२] न्यस्य पश्चिमे जलसम्भवम् ॥ ६७ ॥
वायव्ये वायवं न्यस्य आग्नेये ह्यग्निसम्भवम् ।
नैर्ऋत्ये यजमानं तु ऐशान्यां कोषसम्भवम् ॥ ६८ ॥
सोममुत्तरतो योज्यं सौरं दक्षिणतो न्यसेत् ।
न्यस्यैवं कलसांश्चैव तेषु चैतान् विचिन्तयेत् ॥ ६९ ॥
कलसानां मुखे ब्रह्मा ग्रीवायां शङ्करः स्थितः ।
मूले तु संस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणाः स्थिताः ॥ ७० ॥
दिक्पाला देवताः सर्वा वेष्टयन्ति दिशो दश ।
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपाश्च संस्थिताः ॥ ७१ ॥
नक्षत्राणि ग्रहाः सर्वे तथैव कुलपर्वताः ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥ ७२ ॥
कलसे संस्थिताः सर्वे तेषु तानि विचिन्तयेत् ।
[९३]रत्नानि सर्वबीजानि पुष्पाणि च फलानि च ॥ ७३ ॥

---

९०. ···शोषकः । ९१. ···नाम्ना । ९२. पुरतो ।
९३. तथा रत्नानि सर्वाणि ।

वज्रमौक्तिकवैदूर्यमहापद्मेन्द्रस्फाटिकैः ।
सर्वधाममयं बिल्वं नागरोदुम्बरं तथा ॥ ७४ ॥
बीजपूरकजम्बीरकाश्मीराम्रातदाडिमम् ।
यवं शालिं च नीवारं गोधूमं सितसर्षपम् ॥ ७५ ॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदनं रोचनं तथा ।
चन्दनं च तथा मांसीमेलां कुष्ठं तथैव च ॥ ७६ ॥
[१४]कस्तूरीपत्रचूर्णं च जलनिर्यासकाम्बुदम् ।
शैलेयं बदरं जातीपत्रपुष्पे तथैव च ॥ ७७ ॥
कालशाकं तथा पृक्का[१५] देवीपर्णकमेव च ।
वचां धात्रीं समञ्जिष्ठां तुरुष्कं सङ्कलाष्टकम् ॥ ७८ ॥
दूर्वां मोहनिकां भद्रां शतमूलीं शतावरीम् ।
[१६]वर्णानां सरलां क्षुद्रां सहदेवीं गजाह्वयाम् ॥ ७९ ॥
पूर्णकोषां सितां पीठां गुञ्जां शिरसिकानलौ[१७] ।
व्यामकं गजदन्तं च शतपुष्पं पुनर्नवाम् ॥ ८० ॥
ब्राह्मीं देवीं शिवां रुद्रां सर्वसन्धानिकां तथा ।
समाहृत्य शुभानेतान् कलसेषु निधापयेत् ॥ ८१ ॥
कलसस्य यथादेशं विधिं शम्भुं गदाधरम् ।
यथाक्रमं पूजयित्वा शम्भुं मुख्यतया यजेत् ॥ ८२ ॥
प्रासादेन तु मन्त्रेण शम्भुं तन्त्रेण शङ्करम् ।
प्रथमं पूजयेन्मध्ये नाना नैवेद्यवेदनैः ॥ ८३ ॥
दिक्पालानां घटेष्वेव दिक्पालानपि पूजयेत् ।
पूर्वं बहिः स्थापितेषु ग्रहाणां कलसेषु च ॥ ८४ ॥
नवग्रहान् पूजयेत् तु मातृर्मातृघटेषु च ।
सर्वे देवा घटे पूज्या घटास्तेषां पृथक् पृथक् ॥ ८५ ॥
नवैव तत्र पूर्वोक्ताः स्मृता मुख्यतया नृप ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ॥ ८६ ॥
यावकैः पायसैश्चैव यथासम्भवयोजितैः ।
पुष्यस्नानाय नृपतिः पूजयेत् सकलान् सुरान् ॥ ८७ ॥
दक्षिणे मण्डलस्याथ कुण्डं निर्माय पायसैः ।
समिद्भिः शालिसिद्धार्थैर्घृतैर्दूर्वाक्षतैस्तथा ॥ ८८ ॥

---

१४. कर्पूरपत्रचण्डञ्च । १५. पुन्नां । १६. पर्णानां ।
१७. ···शिरसिकामलौ ।

केवलैश्च तथैवाज्यैः पूजितान् सकलान् सुरान् ।
होमेन तोषयेद् वृद्धयै नृपः[९७] सर्त्विक्पुरोहितः ॥ ८९ ॥
होमान्ते मण्डलोदीच्यां वेदिकायां सपट्टकम् ।
रोचनाख्यमलंकारांस्तथा सर्वान् नियोजयेत् ॥ ९० ॥
वृद्धावङ्गुलमङ्गुल्या षड्विंशाङ्गुलिकावधि ।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा पद्मं [९८]त्रिकोणसंज्ञकम् ॥ ९१ ॥
रत्नेशं पद्ममध्ये तु गोमुष्टिकविनायकैः ।
श्रीश्रीवृक्षवरारोहामुमादेवीं शुभान्विताम् ॥ ९२ ॥
रत्नैः सर्वैरलङ्कारैः पट्टं कार्यं द्विहस्तकम् ।
हस्तविस्तारमुच्छ्रायं नवहस्तं दशाङ्गुलम् ॥ ९३ ॥
स्नानार्थं सार्धहस्तं च पट्टं वृत्तं गुणान्वितम् ।
शय्या चतुर्गुणा दीर्घा धनुर्मानं तु पीठकम् ॥ ९४ ॥
गजसिंहकृताटोपं हेमरत्नविभूषितम् ।
सिंहाख्यं [९९]सार्धविस्ताराद् दण्डासनमथापि वा ॥ ९५ ॥
व्याघ्रचित्रकपट्टैर्वा उपधानानि कारयेत् ।
अन्यैर्वा निर्मितां चर्ममृदुतूलकपूरिता ॥ ९६ ॥
शय्या दीर्घार्धविस्तीर्णा चतुर्हस्ता सुलक्षणा ।
वितस्त्यधिकमिच्छन्ति नृपस्य गुरुविद्यया ॥ ९७ ॥
अर्धचन्द्रसमं कुर्यादासनं चतुरस्रकम् ।
उपधानानि शय्यायाः कर्णादिमूलभेदतः[१००]॥ ९८ ॥
षोडशैवात्र कार्याणि वर्णचित्रयुतानि च ।
यानं सिंहासनं पट्टं शय्योपकरणादिकम् ॥ ९९ ॥
राज्ञो नूतनयोग्यं तद् वेद्या उत्तरतो न्यसेत् ।
तेषां तु पश्चिमे स्वर्णरत्नौघखचिते वरे ॥ १०० ॥
पर्यङ्के यज्ञदार्वौघनिर्मिते महदास्तरे ।
अर्धाच्छादनसंयुक्ते चर्मावृतचतुष्टये ॥ १०१ ॥
वृषभस्य तथोर्णायाः सिंहशार्दूलयोरपि ।
पादपीठे रत्नयुते पादावारोप्य पार्थिवः ॥ १०२ ॥*
(क)तस्मिन् पर्यङ्कपीठस्थे चमखड्गचतुष्टये ।

---

९७. नृपस्यर्त्विक् । ९८. त्रिकोणकं द्रुतं । ९९. सार्धहस्तं वा ।
१००. ...देशतः । * मुद्रिते अधिकः ।
(क) शिवैर्नारायणैरिन्द्रैर्ब्रह्मशक्रपर्यंक......पाण्डुलिप्यामधिकः ।

नानालङ्कारभूषाढ्यं नृपतिं रत्नशालिनम् ॥ १०३ ॥
स्नापयेद् ब्राह्मणैः सार्धं राजानं सुखसङ्गतम् ।
संवीतकम्बलं कृष्णं [1]बहुवस्त्रैश्च शोभितम् ॥ १०४ ॥
कलसैर्वलिपुष्पाद्यैः [2]शालिचूर्णैश्च स्नापयेत् ।
(क)अष्टौ षोडश विंशाष्टशतमधिकं च वा ॥ १०५ ॥
कलसानां समाख्याता अधिकस्योत्तरोत्तरम् ।
जयकल्याणदैर्मन्त्रैर्मङ्गलोत्थैश्च शाम्भवैः ॥ १०६ ॥
वैष्णवैरथ दिक्पालैर्ग्रहमन्त्रैश्च मातृकैः ।
आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् ॥ १०७ ॥
आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
(ख)भौमान्तरिक्षं दिव्यं वा यत् ते कल्मषमागतम् ॥ १०८ ॥
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छत ।
ततोऽपनीयगात्रात् तु कम्बलं वस्त्रमेव च ॥ १०९ ॥
कलसैः स्नापयेद् भूपं पुष्पस्नानीयपूरितैः ।
एभिर्मन्त्रैर्नरश्रेष्ठ तनुतत्त्वार्थसाधकैः ॥ ११० ॥
(ग)सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ १११ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यौ भिषग्वरौ ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ ११२ ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ ११३ ॥
देवपत्न्यश्च याः प्रोक्ता देवमातर एव च ।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ११४ ॥
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।*
संवत्सरा निमेषाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥ ११५ ॥
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवस्तथा ।

---

१. नृपं वस्त्रावगाहितं । २. सर्पिश्चूर्णैः ।
(क) आचम्य च ततोदेवान् गुरून् विप्रांश्च पूजयेत् । ....पाण्डुलिप्यामधिकः ।
(ख) वादित्रघोषैस्तुमुलैस्तथा तौर्यत्रिकैः शुभैः ।
कृत्वाप आज्ञासंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु । " "
(ग) एवं कृत्वा नृपः पश्चात् त्रिरात्रं संयतो भवेत् । " "
* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥ ११६ ॥
सरितश्च महानागा नागाः किंपुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥ ११७ ॥
सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि तु ।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ ११८ ॥
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकश्च सनन्दनः ।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्योऽभिनन्दनः ॥ ११९ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकाश्यपौ ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥ १२० ॥
मार्कण्डेयो दीर्घतमाः शुनःशेफो विदूरथः ।
और्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥ १२१ ॥
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातः सहात्मजः ।
एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणाः ॥ १२२ ॥
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ।
पर्वतास्तरवो नद्यः पुण्यान्यायततनानि च ॥ १२३ ॥
प्रजापतिः क्षितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वे लोकाश्चराचराः ॥ १२४ ॥
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसंकीर्तनाः शुभाः ॥ १२५ ॥
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः ।*
इत्येवं शुभदैरेतैर्दिव्यैर्मन्त्रैस्तथापरैः ॥ १२६ ॥
सौरैर्नारायणै रौद्रैर्ब्रह्मशक्रसमुद्भवैः ।
अपोहिष्ठा हिरण्येति सम्भवेति सुरेति च ॥ १२७ ॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेत्यनेन च ।
सर्वमंगलमांगल्ये श्रीश्च ते ग्रहयोगिभिः ॥ १२८ ॥
इत्येवं स्नानमासाद्य गात्रमावृत्य कम्बलैः ।
सर्वमंगलमन्त्रेण वस्त्रं कार्पासकं ध्रियात् ॥ १२९ ॥
आचम्य च ततो देवान् गुरुं विप्रांश्च पूजयेत् ।
ध्वजच्छत्रं चामरं च घण्टां चाश्वान् गजांस्तथा ॥ १३० ॥
मन्त्रं जप्त्वा धारयेत् तु ततो गच्छेद्धुताशनम् ।
तत्र गत्वा वह्निमध्ये वह्नेः श्रीर्वीक्ष्य पार्थिवः ॥ १३१ ॥

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

निमित्तान्यनिमित्तानि लक्षयेत् तत्र विन्दुभिः ।
दैवज्ञकञ्चुक्यमात्यवन्दिपौरजनैर्वृतः ॥ १३२ ॥
वादित्रघोषैस्तुमलैस्तथा तौर्यत्रिकैः शुभैः ।
कृत्वा शेषे पुनः शान्तिमाशीर्वाच्य च वै द्विजान् ॥ १३३ ॥
पूर्णां विधाय विधिवद् दक्षिणां कनकान्विताम् ।
धान्यानि चाथ वासांसि दत्त्वा कुर्याद् विसर्जनम् ॥ १३४ ॥
ततः शेषजलैः सर्वानमात्यादीन् पुरोहितः ।
सेचयेच्चतुरङ्गं च बलं चापि सराष्ट्रकम् ॥ १३५ ॥
एवं कृत्वा नृपः पश्चात् त्रिरात्रं संयतो भवेत् ।
मांसमैथुनहीनश्च कुर्यान्माङ्गल्यसेवनम् ॥ १३६ ॥
पुष्यनक्षत्रयुक्ता तु तृतीया यदि लभ्यते ।
तस्यां पूज्या सदा देवी चण्डिका शंकरेण ह ॥ १३७ ॥
पाञ्चालिकाविहाराद्यैः शिशूनां कौतुकैस्तथा ।*
वैवाहिकेन विधिना मोहयेच्चण्डिकां शिवाम् ॥ १३८ ॥
चतुष्पथेषु सर्वेषु देवदेवीगृहेषु च ।
पताकाभिरलं कुर्यादेवं कुर्वन्न सीदति ॥ १३९ ॥
एवं कृत्वा शान्तियागं तथा पुष्याभिषेचनम् ।
चतुरङ्गैः समं राजा भार्याभिस्तु नरैः सह ॥ १४० ॥
राज्यमण्डलसंयुक्तः परत्रेह न सीदति ।
नातः परतरो यज्ञो नातः परतरोत्सवः ॥ १४१ ॥
नातः परतरा शान्तिर्नातः परतरं शिवम् ।
अनेनैव विधानेन नृपतेरभिषेचनम् ॥ १४२ ॥
युवराज्याभिषेकं च कुर्याद्राजपुरोहितः ।
नृपाभिषेककरणमादौ यदि समाचरेत् ॥ १४३ ॥
अनेनैव विधानेन स्थिरः स्यान्नृपतिस्तदा ।
अयं यज्ञः समुद्दिष्टः शक्रार्थं ब्रह्मणा पुरा ।
एवं यज्ञं नृपः कृत्वा परत्रेह न सीदति ॥ १४४ ॥*

इति श्रीकालिकापुराणे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

अथातः [१]शृणु राजेन्द्र शक्रोत्थानं ध्वजोत्सवम्।
यत् कृत्वा नृपतिर्याति न कदाचित् पराभवम् ॥ १ ॥
रवौ हरिस्थे द्वादश्यां श्रवणेन विडौजसम्।
आराधयेन्नृपः सम्यक् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २ ॥
राजोपरिचरो नाम वसुनामापरस्तु यः।
नृपस्तेनायमतुलो यज्ञः प्रावर्तितः पुरा ॥ ३ ॥
प्रावृट्काले च नभसि द्वादश्यामसितेतरे।
पुरोहितो बहुविधैर्वाद्यैस्तूर्यैः समन्वितः ॥ ४ ॥*
प्रथमं शक्रकेत्वर्थं वृक्षमामन्त्र्य वर्धयेत्।
संवत्सरो वार्धकिश्च कृतमङ्गलकौतुकः ॥ ५ ॥
उद्याने देवतागारे श्मशाने मार्गमध्यतः।
ये जातास्तरवस्तांस्तु वर्जयेद् वासवध्वजे ॥ ६ ॥
बहुवल्लीयुतं शुष्कं बहुकण्टकसंयुतम्।
कुब्जं वृक्षादनीयुक्तं लताच्छन्नतरुं त्यजेत् ॥ ७ ॥
पक्षिवाससमाकीर्णं कोटरैर्बहुभिर्युतम्।
पवनानलविध्वस्तं तरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८ ॥
नारीसंज्ञाश्च ये वृक्षा अतिह्रस्वा अतिकृशाः।
तान् सदा वर्जयेद् धीरः सर्वदा शक्रपूजने ॥ ९ ॥
अर्जुनोऽप्यश्वकर्णश्च प्रियकोषक एव च।
औदुम्बरश्च पंचैते केत्वर्थे ह्युत्तमाः स्मृताः ॥ १० ॥
अन्ये च देवदार्वाद्याः शालाद्यास्तरवस्तथा।
प्रशस्तास्तु परिग्राह्या नाप्रशस्ताः कदाचन ॥ ११ ॥
धृत्वा वृक्षं ततो रात्रौ स्पृष्ट्वा मन्त्रमिमं पठेत्।
यानि वृक्षेषु भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः ॥ १२ ॥
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासवध्वजम्।
पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम ॥ १३ ॥

---

१. संप्रवक्ष्यामि। * मुद्रिते इत आरभ्य अधिकः।

ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।
ततोऽपरेऽह्नि तं छित्त्वा मूलमष्टांगुलं पुनः ॥ १४ ॥
जले क्षिपेत् तथाग्रस्य च्छित्वैव चतुरङ्गुलम् ।
ततो नीत्वा पुरद्वारं केतुं निर्माय तत्र वै ॥ १५ ॥
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे केतुं वेदीं प्रवेशयेत् ।
द्वाविंशद्धस्तमानस्तु अधमः केतुरुच्यते ॥ १६ ॥
द्वात्रिंशत् तु ततो ज्यायान् द्वाचत्वारिंशदेव च ।
ततोऽधिकः समाख्यातो द्वापञ्चाशत् तथोत्तमः ॥ १७ ॥
कुमार्यः पञ्च कर्तव्याः शक्रस्य नृपसत्तम ।
शालमय्यस्तु ताः सर्वा अपराः शक्रमातृकाः ॥ १८ ॥
केतोः पादप्रमाणेन कार्याः शक्रकुमारिकाः ।
मातृकार्धप्रमाणां तु मन्त्रिहस्तद्वयं तथा ॥ १९ ॥
एवं कृत्वा कुमारीश्च मातृकाः केतुमेव च ।
एकादश्यां सिते पक्षे यष्टिं तामधिवासयेत् ॥ २० ॥
अधिवास्य ततो यष्टिं गन्धद्वारादिमन्त्रकैः ।
द्वादश्यां मण्डलं कृत्वा वासवं विस्तृतात्मकम् ॥ २१ ॥
अच्युतं पूजयित्वा तु शक्रं पश्चात् प्रपूजयेत् ।
शक्रस्य प्रतिमां कुर्यात् काञ्चनीं दारवीं च वा ॥ २२ ॥
अन्यतैजससम्भूतां सर्वाभावे तु मृन्मयीम् ।
तां मण्डलस्य मध्ये तु पूजयित्वा विशेषतः ॥ २३ ॥
ततः शुभे मुहूर्ते तु केतुमुत्थापयेन्नृपः ।
वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ।
क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ २४ ॥
एह्येहि सर्वामरसिद्धसङ्घैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।
समुत्थितस्त्वं श्रवणाद्यपादे गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ २५ ॥
एवमुत्तरतन्त्रोक्तैर्दहनप्लवनादिभिः ।
इति मन्त्रेण तन्त्रेण नाना नैवेद्यवेदनैः ॥ २६ ॥
अपूपैः पायसैः पानैर्गुडैर्धानाभिरेव च ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च विविधैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धये ॥ २७ ॥
घटे तु दशदिक्पालान् ग्रहांश्च परिपूजयेत् ।
साध्यादीन् सकलान् देवान् मातृः सर्वा अनुक्रमात् ॥ २८ ॥
ततः शुभे मुहूर्ते तु ज्ञानी वर्धकिसंयुतः ।

केतूत्थापनभूमिं तु यज्ञवेद्यास्तु पश्चिमे ॥ २९ ॥
विप्रैः पुरोहितैः सार्धं गच्छेद्राजा सुमंगलैः ।
रज्जुभिः पंचभिर्बद्धं यन्त्रश्लिष्टं समातृकम् ॥ ३० ॥
कुमारीभिस्तु संयुक्तं दिक्पालानां च पट्टकैः ।
बृहद्भिरतिकान्तैश्च नानाद्रव्यैः सुपूरितैः ॥ ३१ ॥
यथावर्णैर्यथादेशे योजितैर्वस्त्रवेष्टितैः ।
युक्तं तं किङ्किणीजालैर्बृहद्घण्टौघचामरैः ॥ ३२ ॥
भूषितं मुकुरैरुच्चैर्माल्यैर्बहुविधैस्तथा ।
बहुपुष्पैः सुगन्धैश्च भूषितं रत्नमालया ॥ ३३ ॥
चित्रमाल्याम्बरैश्चैव चतुर्भिरपि तोरणैः ।
उत्थापयेन्महाकेतुं राजकीयैः शनैः शनैः ॥ ३४ ॥
तमुत्थाय महाकेतुं पूजितं मण्डलान्तरे ।
प्रतिमां तां नयेन्मूलं केतोः शक्रं विचिन्तयन् ॥ ३५ ॥
यजेत् तं पूर्ववत् तत्र शचीं मातलिमेव च ।
जयन्तं तनयं तस्य वज्रमैरावतं तथा ॥ ३६ ॥
ग्रहांश्चाप्यथ दिक्पालान् सर्वांश्च गणदेवताः ।
अपूपाद्यैः पूजयेत् तु वलिभिः पायसादिभिः ॥ ३७ ॥
पूजितानां च देवानां शश्वद्धोमं समाचरेत् ।
होमान्ते तु वलिं दद्याद् वासवाय महात्मने ॥ ३८ ॥
तिलं घृत चाक्षतं च पुष्पं दूर्वां तथैव च ।
एतैस्तु जुहुयाद् देवान् स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्नरोत्तम ॥ ३९ ॥
ततो होमावसाने तु भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
एवं सम्पूजयेन्नित्यं सप्तरात्रं दिने दिने ॥ ४० ॥
ब्राह्मणैः सहिता राजा वेदवेदांगपारगैः ।
सर्वत्र शक्रपूजासु यज्ञेषु परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
त्रातारमिति मन्त्रोऽयं वासवस्य प्रियः परः ।
एव कृत्वा दिवाभागे शक्रोत्थापनमादितः ॥ ४२ ॥
श्रवणर्क्षयुतायां तु द्वादश्यां पार्थिवः स्वयम् ।
अन्तपादे भरण्यां तु निशि शक्रं विसर्जयेत् ॥ ४३ ॥
सुप्तेषु सर्वलोकेषु यथा राजा न पश्यति ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति राजा दृष्ट्वा विसर्जनम् ॥ ४४ ॥
शक्रस्य नृपशार्दूल तस्मान्नेक्षेत तन्नृपः ।
विसर्जनस्य मन्त्रोऽयं पुराविद्भिरुदीरितः ॥ ४५ ॥

सार्धं सुरासुरगणैः पुरन्दरः शतक्रतोः ।
उपहारं गृहीत्वेम महेन्द्रध्वज गम्यताम् ॥ ४६ ॥
सूतके तु समुत्पन्ने वारे भौमस्य वा शनेः ।
भूमिकम्पादिकोत्पाते वासवं न विसर्जयेत् ॥ ४७ ॥
उत्पाते सप्तरात्रं तु तथोपप्लवदर्शने ।
व्यतीत्य शनिभौमौ च ह्यन्यर्क्षेऽपि विसर्जयेत् ॥ ४८ ॥
सूतके त्वथ संप्राप्ते व्यतीते सूतके पुनः ।
यस्मिन् तस्मिन् दिने चैव सूतकान्ते विसर्जयेत् ॥ ४९ ॥
तथा केतुं नृपो रक्षेत् पतन्ति शकुना यथा ।
न केतौ नृपशार्दूल यावन्नहि विसर्जनम् ॥ ५० ॥
शनैः शनैः पातयेत् तु यथोत्थापनमादितः ।
कृतं तथा यथा भग्ने केतौ मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
विसृष्टं शक्रकेतुं तु सालङ्कारं तथा निशि ।
क्षिपेदनेन मन्त्रेण त्वगाधे सलिले नृप ॥ ५२ ॥
तिष्ठ केतो महाभाग यावत् संवत्सरं जले ।
भवाय सर्वलोकानामन्तराय विनाशक ॥ ५३ ॥
उत्थापयेत् तूर्यरवैः सर्वलोकस्य वै पुरः ।
रहो विसर्जयेत् केतुं विशेषो यः प्रपूजने ॥ ५४ ॥
एवं यः कुरुते पूजां वासवस्य महात्मनः ।
स चिरं पृथिवीं भुक्त्वा वासवं लोकमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयः क्वचित् ।
स्थास्यन्ति मृत्युर्नाकाले जनानां तत्र जायते ॥ ५६ ॥
तत्तुल्यः कोऽपि नान्योऽस्ति प्रियः शक्रस्य पार्थिव ।
तस्य पूजा सर्वपूजा केशवाद्याश्च तत्रगाः ॥ ५७ ॥
सकलकलुषहारि व्याधिदुर्भिक्षनाशं
सकलभवनिवेशं सर्वसौभाग्यकारि ।
सुरपतिगृहगाभिर्वार्चनं शक्रकेतोः
प्रतिशरदमनेकैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धयै ॥ ५८ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

ज्येष्ठ दशहरायां तु विष्णोरिष्टिं नृप शृणु ।*
येन वा विधिना कुर्यादिष्टिं विष्णोर्नृपः सदाः ॥ १ ॥
प्रत्यब्दं पार्थिवः कुर्यात् प्रतिमां काञ्चनीं हरेः ।
अन्यतेजीमयीं वापि दारवीं वा शिलामयीम् ॥ २ ॥
तां प्रतिष्ठाप्य विधिना मानोन्मानैस्तु शिल्पिभिः ।
प्रतिष्ठां विधिवत् तस्याः कुर्याद् विप्रैः पुरोहितैः ॥ ३ ॥
तां संस्थाप्य सुरागारे स्वयं वा यत्नतः कृते ।
वासुदेवस्य बीजेन पूर्वोक्तविधिना तथा ॥ ४ ॥
सर्वोपचारैर्भक्त्या तु वासुदेवं प्रपूजयेत् ।
पूजान्ते संस्कृते वह्नौ कुण्डमध्ये स्थितो द्विजः ॥ ५ ॥
आज्यैः सहस्रं जुहुयादाहुतीनां हरेः प्रियम् ।*
संपूज्य वासुदेवं तु होमं कृत्वा ततो द्विजः ॥ ६ ॥
नृपस्यानुमते तां तु प्रतिमां मण्डलं नयेत् ।
प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ॥ ७ ॥
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्य वै हरेः ।
कृतायां तु प्रतिष्ठायां प्राणानां नृपसत्तम ॥ ८ ॥
विष्णुप्राणास्तां प्रतिमामायान्ति नियतं स्वयम् ।
प्राणेष्वथागतेष्वस्यां देवत्वं नियतं भवेत् ॥ ९ ॥
अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च ।
यथापूर्वं तथाभावः स्वर्णादीनां न विष्णुता ॥ १० ॥
अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव ।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्या देवत्वसिद्धये ॥ ११ ॥
सुवर्णं तु सुवर्णं स्याच्छिला दारु तथा शिला ।
अन्यच्च स्वस्वरूपं स्यात् प्राणस्थानमृते सदा ॥ १२ ॥
वासुदेवस्य बीजेन तद् विष्णोरित्यनेन च ।
तथैवाङ्गाङ्गिमन्त्राभ्यां प्रतिष्ठामाचरेद्धरेः ॥ १३ ॥

---

* मुद्रिते अधिकः ।

तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ।
एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य हृदयेऽपि समाचरेत् ॥ १४ ॥
अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु यत् ।
असौ देवत्वसंख्यायै स्वाहेति यजुरुच्चरन् ॥ १५ ॥
अङ्गमन्त्रैरङ्गिमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च ।
प्राणप्रतिष्ठां सर्वत्र प्रतिमासु समाचरेत् ॥ १६ ॥
प्रतिमापूजने कुर्यादात्मन्यपि च मन्त्रवित् ।
प्राणप्रतिष्ठां प्रथमं पूजाभागविशुद्धये ॥ १७ ॥*
अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठां तु प्रतिमापूजनादृते ।
न कश्चित् तु बुधः कुर्यात् कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥
विष्णोरिष्टिमिमां कृत्वा दशम्यां पार्थिवोत्तमः ।
तस्यामेव तु पूर्णायां प्रतिमां स्थापयेत् ततः ॥ १९ ॥
एवं दशहरायां तु कृत्वेष्टिं पार्थिवो हरेः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति निर्विघ्नोऽपि स जायते ॥ २० ॥
श्रीपंचम्यां श्रियं देवीं कुन्दैः संपूजयेत्सदा ।
वासवं गजराजस्थमुपहारैस्तथोत्तमैः ॥ २१ ॥
लक्ष्म्यास्तन्त्रं महामन्त्रं वासवस्य पुरोदितम् ।
अत्रापि पूजने ग्राह्यं मण्डलादि यथाक्रमम् ॥ २२ ॥
एवं कृते पूजने तु श्रीपंचम्यां विशेषतः ।
श्रीयुतो नृपतिर्भूयान्न श्रीहानिमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥
सदाचारविशेषोऽयं कथितस्तव पार्थिव ।
निषेधे तु विशेषांश्च शृणु येन श्रियेष्यते ॥ २४ ॥
असंपूज्य तथा विष्णुं शिवमग्निं पुरन्दरम् ।
अदत्त्वा च तथा दानं न भुञ्जीत नृपः क्वचित् ॥ २५ ॥
हावयेदग्निहोत्रं तु नित्यमेव पुरोहितैः ।
अकृत्वा चाग्निहोत्रं तु भुञ्जन्नरकमाप्नुयात् ॥ २६ ॥
नारक्षिते गृहे राजा रत्नदीपविवर्जिते ।
स्वपेत् तथा स्त्रिया सार्धं न कदाचन संविशेत् ॥ २७ ॥
भुक्त्वान्नं श्रीफलं नाद्यात् तथा धात्रीफलं नृपः ।
बुद्धिक्षयकरा ह्येता माष आसवमृत्तिकाः ॥ २८ ॥

* मुद्रिते अधिकः ।

निम्बाटरूषच्युताश्च बुद्धिवृद्धिकरा मताः ।
वृद्धिक्षयकरां नित्यं त्यजेद्राजा च भोजने ॥ २९ ॥
भक्षयेदन्वहं बुद्धिवृद्धिहेतुं नृपोत्तमः ।
न पर्यायविहीनं तु प्रारोहेदासनं नृपः ॥ ३० ॥
न यानं न गजं नाश्वमारोहेद्धीनमासनैः ।
नैकस्तु विचरेद्राजा कदाचिदपि निर्जने ॥ ३१ ॥
मदहेतुं न भुंजीयात् कदाचिदपि भोजने ।
कदाचिन्नापि सेवेत ह्यष्टम्यां मांसमैथुने ॥ ३२ ॥
दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च ।
न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाघमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥
न क्षेत्रजादींस्तनयान् राज्ये राजाभिषेचयेत् ।
पितृणां शुद्धये निल्यमौरसे तनये सति ॥ ३४ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च भागार्हास्तनया इमे ॥ ३५ ॥
कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयंदत्तश्च दासश्च षडते पुत्रपांसुलाः ॥ ३६ ॥
अभावे पूर्वपूर्वेषां परान् समभिषेचयेत् ।
पौनर्भवं स्वयंदत्तं दासं राज्ये न योजयेत् ॥ ३७ ॥
दत्ताद्याश्चापि तनया निजगोत्रेण संस्कृताः ।
आयान्ति पुत्रतां सम्यगन्यबीजसमुद्भवाः ॥ ३८ ॥
पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपतेः ।
आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ॥ ३९ ॥
चूडान्ता यदि संस्कारा निजगोत्रेण संस्थिताः ।
दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ ४० ॥
ऊर्ध्वं तु पंचमाद् वर्षाद् दत्ताद्यांश्च सुतान्नृप ।
गृहीत्वा पंचवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत् ॥ ४१ ॥
पौनर्भवं तु तनयां जातमात्रं समानयेत् ।
कृत्वा पौनर्भवष्टोमं जातमात्रस्य तस्य वै ॥ ४२ ॥
सर्वांस्तु कुर्यात् संस्कारान् जातकर्मादिकान्नरः ।
कृते पौनर्भवष्टोमे सुतः पौनर्भवः स्मृतः ॥ ४३ ॥
एकोद्दिष्टं पितुः कुर्यान्न श्राद्धं पार्वणादिकम् ।
क्रीता या वनिता मूल्यैः सा दासीति निगद्यते ॥ ४४ ॥

तस्यां यो जायते पुत्रो दासः पुत्रस्तु स स्मृतः ।
न राज्ञो राज्यभाक् स स्याद् विप्राणां नापि श्राद्धकृत् ॥ ४५ ॥
अधमः सर्वपुत्रेभ्यस्तं तस्मात् परिवर्जयेत् ।
पुराणं धर्मशास्त्राणि संहिताश्च मुनीरिताः ॥ ४६ ॥
नाध्यापयेन्नृपः शूद्रैर्विहितानि यदृच्छया ।
यस्य राज्ये सदा शूद्राः पुराणं संहितां तथा ॥ ४७ ॥
पठन्ति स्यात् स हीनायुः राजा राष्ट्रेण सान्वयः ।
मोहाद् वा कामतः शूद्रः पुराणं संहितां स्मृतिम् ॥ ४८ ॥
पठन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह पापकृत् ।
शूद्रेभ्यो विहितं यत् तु यश्च मन्त्र उदाहृतः ॥ ४९ ॥
तद्विप्रवचनाद् ग्राह्यं द्वयं शूद्रैः सदैव हि ।
न योजयेन्नृपः शूद्रं व्यवहारस्य दर्शने ॥ ५० ॥
नियोज्य तत्र तं भूपस्तामिस्रे तेन पच्यते ।
हीनायुश्च भवेल्लोको राजा वापि सहायजः ॥ ५१ ॥
काणं व्यङ्गमपुत्रं वा नाभिज्ञमजितेन्द्रियम् ।
न ह्रस्वं व्याधितं वापि नृपः कुर्यात् पुरोहितम् ॥ ५२ ॥
कृपणस्य धनं राजा न गृह्णीयात् कदाचन ।
न द्विजानां तथा दद्याद् धनानि विपुलान्यपि ॥ ५३ ॥
नारोहेत् कामुकोन्मत्तगजं राजा कदाचन ।
आरुह्य कामुकस्तं तु परत्रेह विषीदति ॥ ५४ ॥
अनायुष्यं न कुर्यात् तु कर्म भूपः कदाचन ।
सततं चायुषो वृद्ध्यै यतेत सकलैर्धनैः ॥ ५५ ॥
न क्रूरवारे नाष्टम्यां न षष्ठ्यां च नृपोत्तमः ।
अञ्जनाभ्यञ्जने कुर्यात् ताम्बूलस्यापि भोजनम् ॥ ५६ ॥
अतिसूक्ष्मं तथा पूर्णं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
नालोकयेत् स्वयं राजा रक्तं सूर्यं तथैव च ॥ ५७ ॥
उत्पातं जायते यत्तु दिव्यं भौमं च नाभसम् ।
नेक्षेत यत्नान्नृपतिर्दृष्ट्वा नाद्यात् त्र्यहं पुनः ॥ ५८ ॥
सर्वदा मङ्गलं रत्नं धारयेत् सह दूर्वया ।
अवस्त्राच्छादितं गात्रं न विप्रेभ्यः प्रदर्शयेत् ॥ ५९ ॥
न तोयेषु मुखं पश्येन्नाद्यान्मांसानि पर्वसु ।
नारोहयेत् खरं चोष्ट्रं न वामीमपि गुर्विणीम् ॥ ६० ॥

एवं नययुतो राजा चतुरङ्गं विवर्धयन् ।
आत्मानं सततं रक्षन् सदा वीर्यं विवर्धयेत् ॥ ६१ ॥
वीजक्षयकरन्नित्यं भक्ष्यं भोज्यं च पानकम् ।
वर्जयेत् क्षारशाकाद्यान् बह्वम्लं बहुतिक्तकम् ॥ ६२ ॥
कांस्य-राजतपात्रस्थं तोयं नद्याश्च वर्धनम् ।
मूत्रवृद्धिकरं वीर्यक्षयकारि विवर्जयेत् ॥ ६३ ॥
ताम्रायःस्वर्णशीसानां पात्रस्थं फलचर्मणोः ।
शुक्रवृद्धिकरं तोयं तदुपासीत यत्नतः ॥ ६४ ॥
सर्वमूलेषु कृत्येषु सदाचारेषु तिष्ठतः ।
भुक्त्वेह विविधान् भोगानैन्द्रं स्थानं व्रजेत् परम् ॥ ६५ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

एवमौर्वस्तु सगरं शशास मुनिपुङ्गवः ।
शास्त्राणि चैव सर्वाणि सदाचारांश्च गृह्यकान् ॥ ६६ ॥
बहुशः कथयामास सगराय महात्मने ।
तन्नास्ति यत् पुरौर्वेण कथितं सगराय न ॥ ६७ ॥
राजनीतिः सतां नीतिर्यच्चान्यच्छास्त्रसम्भवम् ।
संहितासु पुराणेषु यच्चागमचये स्थितम् ॥ ६८ ॥
सर्वं शुश्राव सगरो मुखादौर्वस्य धीमतः ।
तेषां तु कथितं किंचिदुद्धृत्य द्विजसत्तमाः ॥ ६९ ॥
विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रहसि भाषितम् ।
राजनीतिं सदाचारं वेदवेदाङ्गसङ्गतम् ॥ ७० ॥
रहस्यं सततं विष्णोर्वीक्षध्वं द्विजसत्तमाः ।
यच्चानुदितमन्यत्र गदितं वा ससंशयम् ॥ ७१ ॥
संशयच्छेदनं तेषु युष्मभ्यं कथितं द्विजाः ।
अनुक्तसंशयच्छेदि पुराणं कालिकाह्वयम्
योऽभ्यसेत् सततं विप्रः स वेदानां फलं लभेत् ॥ ७२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः—

संक्षेपतः सदाचारो विशेषो राजनीतिषु ।*
श्रुतस्त्वद्वचनादौर्वः सगराय यथोक्तवान् ॥ १ ॥
विष्णुधर्मोत्तरे तन्त्रे बाहुल्यं सर्वतः पुनः ।
द्रष्टव्यस्तु सदाचारो द्रष्टव्यास्ते प्रसादतः ॥ २ ॥
भूयो नः संशयो योऽस्ति तदनुक्तं त्वया पुरा ।
छिन्धि विप्रेन्द्र पृच्छामः परं कौतहलं हि नः ॥ ३ ॥
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति श्रूयते वेदलोकयोः ।
वेतालभैरवौ यातौ पुरा वै तपसे गिरिम् ॥ ४ ॥
पूर्वस्त्वकृतदारौ तौ तयोः पुत्रा न च श्रुताः ।
न जाता अथवा जाता यदि नाना द्विजोत्तम ।
तेषां तु सम्यगिच्छामि श्रोतुं स स्थानमुत्तमम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति निश्चितं चेति सत्तमाः ।
स्वपुत्रैर्भ्रातृपुत्रैर्वा पुत्रवन्तो हि स्वर्गताः ॥ ६ ॥
जातापत्यौ च तौ विप्रा धीरौ वेतालभैरवौ ।
तयोर्वंशान् प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु च महर्षयः ॥ ७ ॥
सम्यक् सिद्धिमवाप्यैव यदा वेतालभैरवौ ।
हरस्य मन्दिरं प्राप्तौ कैलासं प्रतिहर्षितौ ॥ ८ ॥
तदा हरस्य वजनान्नन्दी तौ रहसि द्विजाः ।
प्राहेदं वचनं तथ्यं सान्त्वयन्निव बोधकृत् ॥ ९ ॥

नन्द्युवाच—

अपुत्रौ पुत्रजनने भवन्तौ शङ्करात्मजौ ।
यततां जातपुत्रस्य सर्वत्र सुलभा गतिः ॥ १० ॥*
पुन्नाम नरकं पुत्रविहीनः परिपश्यति ।
न तपोभिर्न धर्मेण तन्मोचयितुमीश्वरः ॥ ११ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

केवलात् पुत्रजननात् तस्मान्मोक्षः प्रजायते ।
तदुत्पादयतां पुत्रं भवन्तौ देवयोनिषु ॥ १२ ॥
अमर्त्यता तु युवयोः क्षीरपानादजायत ।
कात्यायन्यास्ततः पुत्रानमर्त्याः स्वसमा यतः ॥ १३ ॥
तस्माद् यथा तथा पुत्रानुत्पाद्य सुरयोनिषु ।
प्रियौ भवन्तौ शिवयोर्भवनं न चिरादिति ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

तस्येति वचनं श्रुत्वा नन्दिनः प्रीतमानसौ ।
एवमेव करिष्यावो नन्दिनं चेत्यभाषताम् ॥ १५ ॥
ततस्तौ सततं कृत्वा नन्दिनो वचनं हृदि ।
अचेष्टतां स्वपुत्रार्थे व्रजन्तौ तावितस्ततः ॥ १६ ॥
अथैकदा भैरवोऽसौ उर्वशीमप्सरोवराम् ।
हिमवत्-पर्वतप्रस्थे ददर्श सुमनोहराम् ॥ १७ ॥
अथ तां कामुको भूत्वा ययाचे सुरतोत्सवम् ।
वेश्याभावाच्च सुप्रीता सा यथेच्छमुवाच तम् ॥ १८ ॥
ततस्तस्यां भैरवस्तु चकार सुरतोत्सवम् ।
प्रीतायामुर्वशीदेव्यां सुप्रीतोऽभूच्च केलिभिः ॥ १९ ॥
सुप्रीतायामथोर्वश्यां तेजोभिर्भैरवस्य तु ।
सद्योजातोऽभवत् पुत्रो बालसूर्यसमप्रभः ॥ २० ॥
तं तु पुत्र परित्यज्य ययौ स्वस्थानमुर्वशी ।
आदाय तनयं पश्चाद् भैरवः स्वपदं ययौ ॥ २१ ॥*
संस्कृत्य तनयं तं तु भैरवो मोदसंयुतः ।*
सुवेशमिति तन्नाम चकार सगणाधिपः ॥ २२ ॥
अथ तं जातवयसं शक्रसूर्यसमप्रभम् ।
विद्याधराधिपत्ये तु सुवेशमभ्यषेचयत् ॥ २३ ॥
स तु विद्याधराध्यक्षस्तनयामतिसुन्दरीम् ।
येमे गन्धर्वराजस्य धृतराष्ट्राह्वयस्य च ॥ २४ ॥
तस्यां तस्य सुतो जज्ञे रुरुर्नाम मनोहरः ।
रुरोस्तु तनयो बाहुर्मैनाक्यामभ्यजायत ॥ २५ ॥
बाहोस्तु पुत्राश्चत्वारस्तपनोऽङ्गद ईश्वरः ।
कुमुदोऽभूत् कनीयांस्तु चार्वत्यां तु मनोहरः ॥ २६ ॥
कुमदस्य सुतो जज्ञे देवसेनो महाबलः ।
स देवसेनः पृथिवीमवतीर्य मनोहरः ॥ २७ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

मान्धातुर्यौवनाश्वस्य तनयां केशिनीं मुहुः ।
वरयामास भार्यार्थे मृदङ्गीमप्सरःसमाम् ॥ २८ ॥
यौवनाश्वोऽपि मान्धाता शक्रस्य वचनाद् ददौ ।
केशिनीं तनयां स्वीयां देवसेनाय वाञ्छया ॥ २९ ॥
केशिनीमुपयम्याथ देवसेनस्तया वसह् ।
वाराणस्यां शम्भुपुर्यां हरमाराधयच्छिवम् ॥ ३० ॥
आराधितो हरः प्रीतस्तस्येष्टं प्रददौ रम् ।
सोऽप्याददे हरात् तस्मादिष्टमेव वरत्रयम् ॥ ३१ ॥
यावच्च सूर्यो भविता तावत् स्थास्यति संततिः ।
अस्यामेव नगर्य्यां ये मद्वंशस्यापि राजता ॥ ३२ ॥
प्रसन्नो मम वंशे त्वं नित्यमेव भविष्यसि ।*
इत्यादाय वरं सोऽपि देवसेनो महाकृती ॥ ३३ ॥
शङ्करस्य प्रसादेन चिरं तां बुभुजे पुरीम् ।
देवसेनोऽथ केशिन्यां जनयामास पुत्रकान् ॥ ३४ ॥
यूयं शृणुत सप्तैतान्नामतः कीर्तितांस्तथा ।
सुमना वसुदानश्च ऋतुधृग् यवनः कृती ॥ ३५ ॥
नीलो विवेकी ह्येते वै सर्वशास्त्रविशारदाः ।
सर्वे वंशकराः पुत्रा देवसेनस्य सत्तमाः ॥ ३६ ॥
अथ काले तु संप्राप्ते देवसेनोऽपि भार्यया ।
पुत्रेषु राज्यं निःक्षिप्य यातो विद्याधरक्षयम् ॥ ३७ ॥
ततस्ते तस्य तनयाः कृत्वा सुमनसं नृपम् ।
वसुदानादयः सर्वे बुभुजुश्चोत्तमां श्रियम् ॥ ३८ ॥
जाताः सुमनसः पुत्रास्त्रयः शूरा महाबलाः ।
सुमतिश्च विरूपश्च सत्यः शास्त्रार्थपारगाः ॥ ३९ ॥
सुमतेरभवत् कन्या सुतः सत्यस्य डिण्डिमः ।
विरूपस्याभवद् गाधिर्गाधेर्मित्रोऽभवत् सुतः ॥ ४० ॥
तेषां कल्पोऽभवद्राजा कल्पात् तु विजयोऽभवत् ।
यो विजित्य क्षितिं सर्वां पार्थिवान् भूरितेजसः ॥ ४१ ॥
शक्रस्यानुमते चक्रे खाण्डवं शतयोजनम् ।
यत् सव्यसाची ह्यदहत् पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ।
आवहत् परमां प्रीतिं ज्वलनस्य महात्मनः ॥ ४२ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

ऋषय उचुः—

कथं स खाण्डवं चक्रे विजयः शतयोजनम् ।
तद् वयं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व तपोधन ॥ ४३ ॥*

मार्कण्डेय उवाच—

सोमवंशेऽभवद्राजा महाबलपराक्रमः ।*
धीरः सुदर्शनो नाम चारुरूपः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
स वै हिमवतो नातिदूरे भङ्क्त्वा महावनम् ।
सिंहान् व्याघ्रान् समुत्सार्य क्वचिच्चापि तपोधनान् ॥ ४५ ॥
खाण्डवीं नाम नगरीमकरोत् तत्र शोभनाम् ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णामायतां शतयोजनाम् ॥ ४६ ॥
उच्चप्राकारसंयुक्तां साट्टालाम्बुदतोरणाम् ।
निम्नाभिरतिदीर्घाभिः परिखाभिः समावृताम् ॥ ४७ ॥
अधृष्यामपरैर्वारैर्नानाजनसमावृताम् ।
दीर्घिकाभिश्चोपवनैर्बहुभिश्चाप्सरोगणैः ॥ ४८ ॥
आकीर्णां च तथारामैरुत्तमैरपि मानवैः ।
सोत्सवाः सततं यत्र जना देवान् दिवि स्थितान् ॥ ४९ ॥
स्पर्धन्ते स्म मुदा युक्ता आढ्या-भोगसमन्विताः ।
स वै सुदर्शनो राजा खात्वा भूमिं विदार्य च ॥ ५० ॥
गङ्गां कनखलां देवीं वाहयामास खाण्डवीम् ।
संप्लाव्याखाण्डवीमध्यं तेन खातैश्च वर्त्मभिः ॥ ५१ ॥
वक्रानुवक्रगा भूत्वा याति सीतां नदीं प्रति ।
स जित्वा सकलान् भूपान् वित्तानाहृत्य भूरिशः ॥ ५२ ॥
वशीचकार खाण्डव्यां मध्ये रत्नैरनेकशः ।
अन्येषां नगरेभ्यस्तु जनानानीय भूपतिः ॥ ५३ ॥
खाण्डव्यां वासयामास हठादपि सुदर्शनः ।
देवदानवगन्धर्वान् जित्वा जित्वा युधा कृती ॥ ५४ ॥*
देववृक्षं देवरत्नं देवीं चापि तथौषधिम् ।*
खाण्डव्यां रोपयामास स भूपालः सुदर्शनः ॥ ५५ ॥
विष्णुस्ततोऽपि वै जिष्णुर्नृपतिं तं सुदर्शनम् ।
उपचारं च बहुधा देवानां च तथा नृणाम् ॥ ५६ ॥

---

* मुद्रिते अधिकः ।

वाराणसीपतिं वीरं विजयं जयशालिनम् ।
युद्धाय कृतसाचिव्यं तद्वैरे समयोजयत् ॥ ५७ ॥
विजयो विवरं प्राप्य महाबलपराक्रमः ।
सुदर्शनस्य नृपतेरवस्कन्दमथाकरोत् ॥ ५८ ॥
असहत् स ह्यवस्कन्धं विजयस्य सुदर्शनः ।
चतुरङ्गबलेनाशु युद्धायाभिमुखोऽभवत् ॥ ५९ ॥
विजयो रथमारुह्य नियोज्य चतुरङ्गिणीम् ।
ततः सुदर्शनं योद्धुं सम्मुखोऽभवदञ्जसा ॥ ६० ॥
तदा महायुद्धमासीद्विजयेन महात्मना ।
सुदर्शनस्य नृपतेर्वृत्रवासवयोर्यथा ॥ ६१ ॥
सुदर्शनस्य सेनानी रुमण्वान्नाम वीर्यवान् ।
कांचनं रथमारुह्य विजय संमुखोऽभ्ययात् ॥ ६२ ॥
अक्षौहिण्यस्तु सप्तास्य परिवार्य समन्ततः ।
व्यधमत्तां शत्रुसेनां यावतीमुद्यतायुधः ॥ ६३ ॥
विजयस्य च सेनानीः सञ्जयः स रिपुञ्जयः ।
नागानीकेन जग्राह रुमण्वन्तं ससैनिकम् ॥ ६४ ॥
तयोर्महदभूद् युद्धं सेनान्योर्वीरयोर्महत् ।
ववर्ष शरवर्षेण रुमण्वानथ संजयम् ॥६५ ॥
कुर्वंश्चापि महानादं गजं दृष्ट्वैव केशरी ।
रुमण्वानथ विंशत्या बाणैर्विद्ध्वाथ सञ्जयम् ॥ ६६ ॥*
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद कृतहस्तवत् ।*
सोऽपि कार्मुकमादाय तदाऽन्यत् संजयस्त्रिभिः ॥ ६७ ॥
बाणैर्विव्याध भल्लेन धनुश्चिच्छेद तत्क्षणात् ।
शतान्यष्टौ च नागानां सहस्राणि च पंचषट् ॥ ६८ ॥
पत्तीनां वाजिनां त्रीणि सहस्राणि समन्ततः ।
संजयो निर्जघानाशु बाणवर्षैः सुदारुणैः ॥ ६९ ॥
अथान्यद् धनुरादाय रुमण्वान् कुपितो भृशम् ।
भल्लेन सारथेरस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७० ॥
हयांश्चास्य चतुर्भिस्तु बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
चतुरः पंचभिर्बाणैरविध्यच्चापि सञ्जयम् ॥ ७१ ॥
संजयोऽप्यतिवेगेन गदामादाय तत् क्षणात् ।
अवतीर्य रथोपस्थाद्रुमण्वन्तमधावत ॥ ७२ ॥

---

* मुद्रितं अधिकः ।

स धावन्तं सञ्जयं तं रुमण्वान् द्रुतहस्तवत् ।
शरवर्षेण सञ्छाद्य वारयामास संजयम् ॥ ७३ ॥
गदाया भ्रामणेनासौ निवार्य शरवर्षणम् ।
आससाद रुमण्वन्तं केसरीव महागजम् ॥ ७४ ॥
आसाद्य तां गदां गुर्वीमाविध्यातीव सञ्जयः ।
एकेनैव प्रहारेण सरथं तं व्यपोथयत् ॥ ७५ ॥
स पपात महावीरः पृथिव्यां गदया हतः ।
वज्रहतो यथा शालः प्रफुल्लो वनमध्यगः ॥ ७६ ॥
रुमण्वन्तं निपतितं दृष्ट्वा राजा सुदर्शनः ।
शोक-कोपसमाविष्टः सधूम इव पावकः ॥ ७७ ॥
जज्वालाकुलदेहोऽपि क्रोधेनातीव संयुतः ।
आरुह्य जवनैरश्वैर्युक्तं वैयाघ्रकृत्तिना ॥ ७८ ॥*
रथं कांचन-चित्रांगं सिंहध्वज-विभूषितम् ।*
आमुक्तो धनुरादाय विस्फार्य च पुनः पुनः ॥ ७९ ॥
ससैन्यः सञ्जयं राजा समाद्रवत वेगवान् ।
अथास्य निशितैः शस्त्रैः सेनामग्रगतां भृशम् ॥ ८० ॥
न्यहनत् सकलां राजा मृगानिव मृगाधिपः ।
एकामक्षौहिणीमग्रगामिनीं विपुलौजसाम् ॥ ८१ ॥
क्रोशद्वयेन न्यहनत् तमांसीव दिवाकरः ।
हत्वा चाक्षौहिणीमेकामासाद्य संजयं नृपः ॥ ८२ ॥
बाणैः षष्ट्या तु विव्याध ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।
संजयोऽप्यथ विंशत्या हृदि विद्ध्वा सुदर्शनम् ॥ ८३ ॥
ललाटे त्वेकबाणेन प्राविध्यत् कृतहस्तवत् ।
क्षुरप्रेणास्य कोदण्डं छित्त्वा राज्ञः प्रतापवान् ॥ ८४ ॥
सारथिं दशभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सञ्जयः ।
कोदण्डमन्यमादाय तदा राजा सुदर्शनः ॥ ८५ ॥
शरवर्षेण तीव्रेण ववर्षातीव सञ्जयम् ।
तयोर्महदभूद् युद्धं मुनिविस्मयकारकम् ॥ ८६ ॥
शस्त्रैरस्त्रैर्भृशं तीक्ष्णैर्बलिवासवयोरिव ।
ततः सुदर्शनो राजा भल्लेनास्य दृढं धनुः ॥ ८७ ॥
चिच्छेद सारथिं चास्य जघान निशितैः शरैः ।

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

स्वयं संयम्य वाहान् स सञ्जयः परवीरहा ॥ ८८ ॥
धनुरन्यत् समादाय परिवार्य सुदर्शनम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैर्धनुरप्यच्छिनद् दृढम् ॥ ८९ ॥
शरासनान्तरं राजा समादाय सुदर्शनः ।
सञ्जयस्य चतुर्वाहाञ्छरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ९० ॥*
मुष्टौ धनुश्च चिच्छेद तं च विव्याध पंचभिः ।*
विरथश्छिन्नवाहश्च सञ्जयः खड्गचर्मणी ॥ ९१ ॥
आदाय सम्मुखं राज्ञेऽभ्यद्रवत् कुपितो भृशम् ।
तस्य चापं ततः खड्गं क्षुरप्रेण सुदर्शनः ॥ ९२ ॥
द्विधा चिच्छेद भल्लेन चर्म चाप्यच्छिनत्तदा ।
अथ द्रुतं तदोपेत्य सञ्जयः स्यन्दनोत्तमम् ॥ ९३ ॥
सुदर्शनस्य सूतं तु कराभ्यां पातयत् क्षितौ ।
रथाभ्याशे गतस्यास्य सञ्जयस्य सुदर्शनः ॥ ९४ ॥
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसौ न्यपतद् भुवि ।
स पपात तदा तस्य रथाभ्याशे महाबलः ॥ ९५ ॥
कृत्तः परशुनाऽरण्ये पुष्पितः शालवृक्षवत् ।
सञ्जयं पतितं दृष्ट्वा विजयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ९६ ॥
महता शङ्खनादेन नादयंस्तु नभःस्थलम् ।
रथेन स्वर्णचित्रेण व्याघ्रचर्मविराजिना ॥ ९७ ॥
केतुना वृषभेणाथ योजनार्धोच्छ्रितेन च ।
नादयन् ककुभः सर्वा रथौघपरिवेष्टितः ॥ ९८ ॥
विमुञ्चञ्छरवर्षाणि ससाद च सुदर्शनम् ।
आसाद्य तं नृपं भूपो विजयः परवीरहा ॥ ९९ ॥
हृदि विद्ध्वा त्रिभिर्बाणैस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।
सुदर्शनोऽपि विजयं नदन्तं कुंजरोपमम् ॥ १०० ॥
दशभिर्निशितैर्बाणैर्विद्ध्वा चिच्छेद तद्-धनुः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं जत्रुदेशे त्रिभिः शरैः ॥ १०१ ॥
निर्भिद्याथ महानादं ननाद स सुदर्शनः ।
सोऽन्यद्धनुः समादाय कंकपत्रैस्त्रिभिः शरैः ॥ १०२ ॥*
विव्याध हृदये वीरो विजयोऽपि सुदर्शनम् ।*
ततस्तन्नृपमुद्दिश्य महाशक्तिं सुदीपिताम् ॥ १०३ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

नागकन्यां कोपयुक्तां लेलिहानामिवातुलाम् ।
स्वर्णदण्डां सुतीक्ष्णाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ॥ १०४ ॥
समुद्यम्याथाचिक्षेप विजयः शात्रवं प्रति ।
सुदर्शनस्य हृदयं सा शक्तिः प्रविवेश ह ॥ १०५ ॥
स विह्वलो रथोपस्थे ह्यधोवक्त्र उपाविशत् ।
तस्मिन् मोह-समापन्ने नृपतौ च सुदर्शने ॥ १०६ ॥
तस्याग्रतस्तथा पार्श्वे ये स्थितास्तत्र सैनिकाः ।
तान् सर्वानहनद्राजा क्षणमात्राद् द्विजोत्तमाः ॥ १०७ ॥
रथान् दशसहस्राणि तावन्त्येव च दन्तिनाम् ।
पंचविंशसहस्राणि वाजिनां च तरस्विनाम् ॥ १०८ ॥
लक्षद्वयं तु पत्तीनां क्षणमात्रादपोथयत् ।
स तु लब्ध्वा ततः संज्ञां धनुरादाय वै दृढम् ॥ १०९ ॥
शरवर्षेण विजयं ववर्ष स सुदर्शनः ।
निवार्य शरवर्षेण विजयं तु सुदर्शनः ॥ ११० ॥
भल्लेन कार्मुकं सज्यं तस्य चिच्छेद तत्क्षणात् ।
सारथेस्तु शिरः कायाद् भल्लेनापाहरत् ततः ॥ १११ ॥
हयांश्च चतुरश्चास्य प्रेषयामास मृत्यवे ।
अथैवं विरथं भूपं दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ११२ ॥
विव्याध हृदये भूयो ननाद च सुदर्शनः ।
स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वेगवान् ॥ ११३ ॥
विजयो विजयाकाङ्क्षी सुदर्शनमधावत ।
आपतन्तं महावीरं बाणवर्षैः सुदर्शनः ॥ ११४ ॥*
ववर्ष वर्षासु यथा वारिदः पृथिवीधरम् ।*
विजयः शरवृष्टिं तां प्राच्छाद्य स्वशरेण वै ॥ ११५ ॥
गदया तं रथारूढमाससाद तु तत्क्षणात् ।
आसाद्य तं महावीर्यं विजयोऽथ सुदर्शनम् ॥ ११६ ॥
शीर्षे प्रहृत्य गदया पातयामास भूतले ।
गिरेः शृङ्गं यथा तुङ्गं वज्राशनिविदारितम् ॥ ११७ ॥
तथा सुदर्शनो राजा दारितो गदयाऽपतत् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे सेनाभिस्तस्य सैनिकाः ॥ ११८ ॥
भयात् संप्राद्रवंस्तस्माद् दिशश्च प्रदिशस्तथा ।

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

नष्टेषु तस्य सैन्येषु विजयः खाण्डवीं पुरीम् ॥ ११९ ॥
प्रविश्य ददृशे तत्र राशीभूतान् गिरीनिव ।
सुवर्णानां च रत्नानां संचयान् बहुशः पुनः ॥ १२० ॥
दृष्ट्वा सरांसि तत्रैष प्रफुल्लकमलानि च ।
हंसकारण्डवानादैर्नादितानि समन्ततः ॥ १२१ ॥
राशीन् सुवर्णरत्नानां पर्वतानिव विस्तृतान् ।
पुष्पितान् देववृक्षांश्च भ्रमद्भ्रमरभूषितान् ॥ १२२ ॥
प्रासादान् विपुलाञ्छुभ्रान् कैलाससदृशान् गजान् ।
प्रस्फुटांश्च सुगन्धाढ्यान् प्रतिगेहे व्यवस्थितान् ॥ १२३ ॥
उत्फुल्लनयनो राजा विजयः परवीरहा ।
मेनेऽमरावतीं तां तु पुरीम् क्षितिगतामिव ॥ १२४ ॥
तं वीक्षन्तं नरपतिं नगरीं तां सुरेश्वरः ।
समेत्य विजयं प्राह सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ १२५ ॥

इन्द्र उवाच—

राजन् महावनमिदमासीद् देवगणावृतम् ।
न च गन्धर्वयक्षाणां मुनीनां च मनोहरम् ॥ १२६ ॥*
सर्वानुत्सार्य देवादीन् मम चाप्यप्रिये रतः ।*
भङ्क्त्वा वनमिदं गुह्यमुत्साद्य च तपोधनम् ॥ १२७ ॥
खाण्डवीं नगरीं चक्रे हठाद्राजा सुदर्शनः ।
तदिदं पुनरेव त्वं वनं कुरु नरोत्तम ॥ १२८ ॥
तत्राहं विहरिष्यामि तक्षकेण समं रहः ।
मुनीनां च तपः स्थानमतुलं ते प्रसादतः ।
भविष्यति च यक्षाणां किन्नराणां च पार्थिव ॥ १२९ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य विजयस्तदा ।
वनमेवाकरोत् तान्तं खाण्डवीं शक्रगौरवात् ॥ १३० ॥
गच्छन्तु भो यथास्थानं प्रजाः सर्वा यथेच्छया ।
येषां वाञ्छास्ति लोकानां मद्राज्यगमने पुनः ॥ १३१ ॥
वाराणसीं ते गच्छन्तु मयैव प्रतिपालिताम् ।
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा जनाः केचिन्निजास्पदम् ॥ १३२ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

जग्मुर्वाराणसीं केचिद् विजयेनाभिपालिताम् ।
ततो धनानां तान् राशीन् रत्नानां च पृथक् पृथक् । १३३ ॥
मणीनां कनकानां च कुप्यानां विजयस्तथा ।
विविधैर्वारयामास पुरीं वाराणसीं प्रति ॥ १३४ ॥
गन्धर्वाणां च देवानां यदानीतं हठात् पुरा ।
रत्नदार्वादिकं यत् तु विजयं तत् प्रसाद्य च ॥ १३५ ॥
तैस्तैर्नीतं च खाण्डव्याः स्वस्थानं प्रतिहर्षितैः ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णां शतयोजनमायताम् ॥ १३६ ॥
तां पुरीं विजयश्चक्रे नचिरादेव वै वनम् ।
तस्मिञ्छक्रस्य सम्मत्या तक्षकः सहितो गणैः ॥ १३७ ॥
उवास सुचिरं तत्र ततोऽभून्निर्जनं वनम् ।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः क्रीडन्तेऽप्सरसां गणाः ॥ १३८ ॥*
आशंसन्तश्च विजयं रणेषु विजयावहम् ।
प्राप्तेऽष्टाविंशतितमे युगे द्वापरशेषतः ॥ १३९ ॥
वह्निर्ब्राह्मणरूपेण भिक्षां जिष्णुममाचत ।
दातुमङ्गीकृते भिक्षां तदा पाण्डुसुतेन वै ॥ १४० ॥
वह्निः स्वरूपमास्थाय जिष्णुं वचनमब्रवीत् ।
अहमग्निः पाण्डुपुत्र यज्ञभागाभिभोजनात् ॥ १४१ ॥
व्याधितोऽहं ततो व्याधिं मम त्वं नाशयाधुना ।
खाण्डवं नाम विपिनं सपत्रिमृगराक्षसम् ॥ १४२ ॥
यदि त्वं मां भोजयितुं शक्नोषि श्वेतवाहन ।
तदा मम ह्यसौ व्याधिरपयास्यति नो चिरात् ॥ १४३ ॥
पुरा तु विजयो राजा खाण्डवीं नाम तां पुरीम् ।
भङ्क्त्वा वनं यतश्चक्रे तेन तत् खाण्डवं वनम् ॥ १४४ ॥
मदर्थं देवविहितं वनं तु श्वेतवाहन ।
विरोधात् तत् तु शक्रस्य न स्वयं भोक्तुमुत्सहे ॥ १४५ ॥
तस्मात् त्राहि महाभाग वने तस्मिन्नियोजय ।
यथाहं सकलं भोक्तुं शक्नोमि त्वत्प्रसादतः ॥ १४६ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महाबलः ।
दाहयामास विपिनं तत्सर्वं प्राणिसंयुतम् ॥ १४७ ॥
देवकीतनयेनासौ वासुदेवेन पालितः ।

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

खाण्डवं दाहयामास ज्वलनस्य हिते रतः ॥ १४८ ॥
सुप्रीतः प्रददौ तस्मादर्जुनाय महात्मने ।
वह्निर्धनुश्च गाण्डीवं वारुणं देवनिर्मितम् ॥ १४९ ॥
अक्षय्ये चेषुधी दिव्ये रूपाढ्यांश्चतुरो हयान् ।
हनूमताधिष्ठितं तु महान्तं वानरध्वजम् ॥ १५० ॥*
खड्गं च त्रिशिखं तीक्ष्णं दहनः सव्यसाचिने ।*
नीरोगश्चाभवद् वह्निस्तथा जिष्णुप्रसादतः ॥ १५१ ॥
तैर्बाणैस्तेन धनुषा तेन खड्गेन केतुना ।
तदश्वस्यन्दनेनापि विजिग्ये फाल्गुनो रिपून् ॥ १५२ ॥
एवं भैरववंशेषु सञ्जातो विजयो नृपः ।
खाण्डवं नाम विपिनं चकार सुमहाकृती ॥ १५३ ॥
विजयस्य सुता जातास्त्रयोदश महाबलाः ।
द्युतिमान् सौम्यदर्शी च भूरिः प्रद्युम्न एव च ॥ १५४ ॥
क्रतुस्तुण्डो विरूपाक्षो विक्रान्तोऽथ धनंजयः ।
प्रहर्षः प्रबलः केतुस्तथोपरिचरोऽपरः ॥ १५५ ॥
एषां राजाऽभवद् वीरः शेषोपरिचरस्तु यः ।
वाराणस्यां नगर्यां यो यज्ञलक्षं पुराऽकरोत् ॥ १५६ ॥
लक्षयज्ञकरः कोऽपि नासीन्नापि भविष्यति ।
राजा क्षितौ महाभागो यथोपरिचरस्तथा ॥ १५७ ॥
एषां सूतिप्रसूतैश्च व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।
चिरेण तान् कः संख्यातुं शक्नोति भुवि मानुषः ॥ १५८ ॥
क्रमाद् भैरववंशेन व्याप्तं लोकत्रयं त्विदम् ।
एतद् वः कथितं विप्राः सन्तानं भैरवस्य तु ॥ १५९ ॥
येषां श्रुत्वा कथामात्रं नापुत्रो जायते नरः ।
इदं यः कीर्तयेत् पुण्यं चरितं विजयस्य तु ॥ १६० ॥
सततं विजयस्तस्य जायते न पराभवः ।
एकाग्रमनसा यस्तु शृणुयादिदमुत्तमम् ।
तस्य वंशस्य विच्छेदो न कदाचिद् भविष्यति ॥ १६१ ॥*

इति श्रीकालिकापुराणे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

नवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

वेतालस्य च सन्तानं श्रृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ।*
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव हीयते ॥ १ ॥

दक्षस्य तनया चाभूत् सुरभिर्नाम नामतः ।
गवां माता महाभागा सर्वलोकोपकारिणी ॥ २ ॥

तस्यां तु तनया जज्ञे कश्यपात् तु प्रजापतेः ।
नाम्ना सा रोहिणी शुभ्रा सर्वकामदुघा नृणाम् ॥ ३ ॥

तस्यां जज्ञे शुनःशेफान्मुनेरतितपोधनात् ।
कामधेनुरिति ख्याता सर्वलक्षणसयुता ॥ ४ ॥

सा सिताभ्रप्रतीकाशा चतुर्वेदचतुष्पदा ।
स्तनैश्चतुर्भिर्धर्मार्थकामप्रसवकारिणी ॥ ५ ॥

सा सुवर्णशरीरा तु कालेन महता सती ।
निर्मलं यौवनं प्राप कामधेनुर्मनोहरम् ॥ ६ ॥*

तां चरन्तीं मेरुपृष्ठे चारुरूपां सुलक्षणाम् ।†
ददर्श स तु वेतालः कामुकश्चाभ्यपद्यत ॥ ७ ॥

तं कामुकं च वेतालं विदित्वा कामधेनुका ।
पशुधर्मात् स्वयं भेजे तं पुत्रं शशभृद्भृतः ॥ ८ ॥

सोऽवाप तस्यां परममामोदं शङ्करात्मजः ।
सा चापि परमां तस्मिन् मुदमापातिहर्षिता ॥ ९ ॥

तयोः प्रवृत्ते सुरते तस्यां गर्भोऽभवत् तदा ।
काले प्राप्ते तु सुषुवे कामधेनुर्महावृषम् ॥ १० ॥

सोऽचिरेणैव कालेन सुमहान् वृषभोऽभवत् ।
महाककुदसंयुक्तश्चारुश्रृङ्गसमन्वितः ॥ ११ ॥

उत्क्षिप्य विचलत्-कर्णयुगलो दीर्घबालधिः ।
ककुदेन च श्रृङ्गाभ्यां कर्णाभ्यां ससिताभ्रवत् ॥ १२ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः । † पाण्डुलिप्यां दृश्यते ।

विचलन् ददृशे देवैः शृङ्गैरिव सिताचलः ।
वेतालस्त्वकरोत् तस्य नाम शृङ्ग इति द्विजाः ॥ १३ ॥
स तु शृङ्गो ज्ञानशाली समाराधयदीश्वरम् ।
सोऽपि तुष्टो वरं तस्मै ददाविष्टं हरः[४] प्रभुः ॥ १४ ॥
तमेव वाहनं चक्रे कृत्वा देवतनुं वृषम् ।*
सुचिरायुश्च बलवान् पृथिवीधारणे क्षमः ॥ १५ ॥
शृङ्गो नाम महातेजाः केतुः सोऽप्यभवत् प्रभोः ।
शृङ्गो भूत्वा मतो यस्माच्छङ्करस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
अतः शृङ्ग इति ख्यातिमथ प्राह महेश्वरः ।*
स तु शृङ्गो महादेवे ध्यानासक्ते क्वचित् क्वचित् ॥ १७ ॥
वरुणस्य गृहं गत्वा सुरभेस्तनयास्तु याः ।
रूपयौवनसम्पन्ना भेजेऽलं सुरतेन ताः ॥ १८ ॥
वरुणस्य गृहे गावः सर्वलक्षणसंयुताः ।
तिष्ठन्ति सततं विप्रास्तासु तासु सुताः पुनः ॥ १९ ॥
बह्व्यस्तु च समुत्पन्नास्तेषां सूतिप्रसूतिभिः ।
सर्वं जगदिदं व्याप्तं तेभ्यो यज्ञं प्रवर्तते ॥ २० ॥
आज्येन देवास्तुष्यन्ति यज्ञा आज्ये प्रतिष्ठिताः ।
यज्ञाधानमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ २१ ॥
तदाज्यं तु गवाधीनं ततः सर्वं गवि स्थितम् ।
तदिदं सकलं विश्वं गवाधीनं द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥
वेतालस्य च ता गावो वंश्याः सर्वप्रियाः सदा ।
य इदं शृणुयान्नित्यं वेतालस्य महात्मनः ॥ २३ ॥
वंशानां जन्म विप्रेन्द्राः स सुखी बलवान् भवेत् ।
न गावो नापि विभवास्तस्य नश्यन्ति वै क्वचित् ॥ २४ ॥
न च भूतपिशाचाद्यास्तं पश्यन्ति कदाचन ।
वेतालः सततं तस्य रक्षामाचरति स्वयम् ॥ २५ ॥
इति वः कथितं विप्रा यथा वेतालभैरवौ ।
जनयामासतुः पुत्रान् विच्छिन्नाः संशयाश्च वः ॥ २६ ॥
यथा च कालिका देवी मोहयामास शंकरम् ।
यथोत्पन्ना शरीरार्धं कृतं शम्भोर्यथा तथा ॥ २७ ॥

४. महेश्वरः । * मुद्रिते अधिकः ।

कालिकायै नमस्तुभ्यमिति यो भाषते स्वयम् ।
तस्य हस्ते स्थिता मुक्तिस्त्रिवर्गस्तु वशानुगः ॥ २८ ॥
इति वः कथितं पुण्यं पुराणं कालिकाह्वयम् ।
मन्त्रयन्त्रमयं[5] शुद्धं ज्ञानदं कामदं परम् ॥ २९ ॥
इति गुह्यतमं लोके वेदेषु च तथा द्विजाः ।
देवगन्धर्वसिद्धाद्यैः स्पृहणीयमिदं सदा ॥ ३० ॥
अधीतं च श्रुतं मत्तो वसिष्ठेन महात्मना ।
इदं पुराणममृतं कालिकाह्वयमुत्तमम् ॥ ३१ ॥
तेन गुप्तमिदं सर्वं कामरूपे सुरालये ।
तमिदानीं समाख्यातं व्यक्तीकृत्य महर्षयः ॥ ३२ ॥
युष्माभिरपि नो देयं गोप्यं लोकेषु सर्वदा ।
शठाय चलचित्ताय नास्तिकायाजितात्मने ॥ ३३ ॥
भक्तिश्रद्धाविहीनाय न दातव्यं कदाचन ।
इदं सकृत् पठेद् यस्तु पुराणं कालिकाह्वयम् ॥ ३४ ॥
स कामानखिलान् प्राप्य शेषेऽमृतमवाप्नुयात् ।
मन्दिरे लिखितं यस्य पुराणमिदमुत्तमम् ॥ ३५ ॥
सदा तिष्ठति नो तस्य विघ्नः संजायते द्विजाः ।
योऽधीतेऽहन्यहन्येतद् गुह्यं तन्त्रमिदं परम् ॥ ३६ ॥
अधीताः सकला वेदास्तेनेह द्विजसत्तमाः ।
तस्मान्नैवाधिकोऽन्योऽस्ति कृतकृत्यो विचक्षणः ॥ ३७ ॥
स सुखी बल्लवाँल्लोके दीर्घायुरपि जायते ॥ ३८ ॥

[6]यो लोकमीशं सततं बिभर्ति
यः पालयत्यन्तकरस्तथान्ते ।
इदं समस्तं भ्रममभ्रमं वा
मदीयरूपं च नमोऽस्तु तस्मै ॥ ३९ ॥

प्रधानपुरुषो यस्य प्रपञ्चो योगिनां हृदि ।
यः पुराणाधिपो विष्णुः प्रसीदतु स वः शिवः[7] ॥ ४० ॥

---

5. एतद् वेदमयं ।
6. यो लोक ईशः सततं बिभर्ति । यः पादपद्मान्तकरस्तथाते ॥
7. स्थितः ।

यो हेतुरुग्रः पुरुषः पुराणः
सनातनः शाश्वत ईश्वरः परः ।
पुराणकृद् वेदपुराणवेद्यः
प्रस्तौमि तन्नौमि पुराणशेषे ॥ ४१ ॥

इति सकलजगद् बिभर्ति यासां
मधुरिपुमोहकरी [8]रमास्वरूपा ।
रमयति च हरं शिवास्वरूपा
वितरतु वो विभवं शुभानि माया ॥ ४२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इति श्रीकालिकापुराणं समाप्तम् ।

---

८. दिव्य···· ।